Saraswati - 1937
Part - I

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल श्रीनाथसिंह

जनवरी १९३७ | भाग ३८, खंड १ संख्या १, पूर्ण संख्या ४४५ | पौष १९९३

सम्राट् एडवर्ड अष्टम के प्रति

लेखक, श्रीयुत सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

वीक्षण अराल :—
बज रहे जहाँ
जीवन का स्वर भर छन्द, ताल
मौन में मन्द्र,
ये दीपक जिसके सूर्य-चन्द्र,
बँध रहा जहाँ दिग्देशकाल,
सम्राट् ! उसी स्पर्श से खिली
प्रणय के प्रियङ्गु की डाल डाल !

विंशति शताब्दि,
धन के, मान के बाँध को जर्जर कर महाब्धि
ज्ञान का, बहा जो भर गर्जन—
साहित्यिक स्वर—
"जो करे गन्ध-मधु का वर्जन
वह नहीं भ्रमर;
मानव मानव से नहीं भिन्न,
निश्चय, हो श्वेत, कृष्ण अथवा,
वह नहीं क्लिन्न;

Contributed by: Prabhat Kumar

भेद कर पङ्क
निकलता कमल जो मानव का
वह निष्कलङ्क,
हो कोई सर"
था सुना, रहे, सम्राट्! अमर—
मानव के वर!

वैभव विशाल,
साम्राज्य सप्त-सागर-तरङ्ग-दल-दत्त-माल,
है सूर्य छत्र
मस्तक पर सदा विराजित
ले कर-आतपत्र,
विच्छुरित छटा—
जल, स्थल, नभ में
विजयिनी वाहिनी—विपुल घटा,
क्षण क्षण भर पर
बदलती इन्द्रधनु इस दिशि से
उस दिशि सत्वर,
वह महासद्म
लक्ष्मी का शत-मणि-लाल-जटित
ज्यों रक्त पद्म,
बैठे उस पर
नरेन्द्र-वन्दित, ज्यों देवेश्वर।

हे मुक्त,
बन्ध का सुखद भार भी सह न सके।

उर की पुकार
जो नव संस्कृति की सुनी
विशद, मार्जित, उदार,
था मिला दिया उससे पहले ही
अपना उर,
इसलिए खिंचे फिर नहीं कभी,
पाया निज पुर
जन-जन के जीवन में सहास,
है नहीं जहाँ वैशिष्ट्य-धर्म का
भ्रू-विलास—
भेदों का क्रम,
मानव हो जहाँ पड़ा—
चढ़ जहाँ बड़ा सम्भ्रम।
सिंहासन तज उतरे भू पर,
सम्राट्! दिखाया
सत्य कौन-सा वह सुन्दर।
जो प्रिया, प्रिया वह
रही सदा ही अनामिका,
तुम नहीं मिले,—
तुमसे हैं मिले आज नव
योरप-अमेरिका।

सौरभ प्रमुक्त!
प्रेयसी के हृदय से हो
तुम प्रतिदेशयुक्त
आलिङ्गित तुमसे हुई
सभ्यता यह नूतन!

प्रायः मरते समय बहुत से लोग ऐसी बातें कह जाते हैं जो वे जीवित अवस्था में कदापि न कहते। मनुष्य के ऐसे वाक्य समस्त जाति के पथप्रदर्शक हो सकते हैं क्योंकि वे शुद्ध अन्तरात्मा से निकले हैं। इस लेख में कुँवर साहब ने विदेशी महापुरुषों के ऐसे ही अन्तिम वाक्य संग्रह करके हिन्दी-पाठकों को एक सर्वथा नवीन वस्तु भेंट की है। हमारे देश के स्वर्गगत महापुरुषों के ऐसे वाक्य भी अवश्य इधर-उधर बिखरे पड़े होंगे। क्या अच्छा हो कि कुँवर साहब या अन्य विद्वान् इधर भी ध्यान दें।

जीवन के नाटक के अन्तिम दृश्य के ऊपर यवनिका-पतन होने के पहले के वाक्यों में जो दुख और दर्द, जो अनुताप और पश्चात्ताप या जो शान्ति और सन्तोष होता है वह और किसी समय के वाक्यों में होना असम्भव है। उसी समय इस कठोर यथार्थता का पता चलता है कि जीवन केवल एक परिहास है। एक समाधि-स्थान पर यह मृत्यु-आलेख अङ्कित है—"लाइफ़ इज़ ए जेस्ट, आल थिंग्ज़ शो इट, आई थाट सो वंस, नाउ आई नो इट" अर्थात् जीवन एक परिहास है, सब चीज़ें यही विदित करती हैं। मैं भी कभी यही ख़याल करता था। अब मैं जानता हूँ। जब मौत की ज़द पर उम्र आ गई हो और संसार से प्रस्थान करने के ... उनके वो दिल खुल जाते हैं जिनके जन्म-पर्यन्त कभी नहीं खुले थे। भविष्य अनिश्चित होने के कारण भय-प्रद होता है और प्रायः भय में सच्ची बात मुँह से निकल ही जाती है।

पहले तो कहने का कुछ मौक़ा ही नहीं मिलता है, क्योंकि त्रिदोष के प्रकोप से ऐसा कंठावरोध हो जाता है कि गले से आवाज़ ही नहीं निकलती है। उस पर माया और मोह, फिर संशयग्रस्त भविष्य का भय—ये सब बातें मस्तिष्क को ऐसा सम्भ्रम कर देती हैं कि कुछ कहना तो दूर रहा, शान्ति-पूर्वक मरते भी नहीं बनता है। हमारे देश का दृष्टि-कोण और है। अगर मरने के वक़्त राम का नाम मुँह से निकल जाय और समस्त जीवन चाहे जैसा व्यतीत हुआ हो, तो समझ लिया जाता है कि बिना किसी रोक-टोक के वह सीधा वैकुण्ठ पहुँच गया, और यदि किसी के मुँह से कोई और बात निकल गई तो किसी महात्मा के लिए भी यही समझा जाता है कि वह शैतान का साथी बनेगा। सबके लिए यही कहा जाता है कि राम-नाम रटते उनका शरीरान्त हो गया, सत्यता चाहे जो कुछ हो। इस वजह से अपने देश के बड़े आदमियों के अन्तिम वाक्यों का कोई संग्रह नहीं है।

परन्तु पाश्चात्य देशों में ऐसे ... कुछ प्रसिद्ध देशों में ऐसे वाक्य प्राप्य हैं, अतएव ... आदमियों के अन्तिम वाक्य दिये जाते हैं।

अडीसन (जोजेफ़) १६७२-१७१९—ये टैटलर पत्रिका में प्रायः लिखते थे। १७११ में स्पेक्टेटर पत्र की स्थापना की और उसी से इनको इतना लाभ हुआ कि १०,००० पौंड की रियासत ख़रीदी! इनका दुःखान्त नाटक 'केटो' लोगों ने इतना पसन्द किया कि वह पैंतीस रातों तक बराबर खेला गया। इन्होंने एक दूसरा सुखान्त नाटक लिखा, परन्तु इसे सफलता नहीं प्राप्त हुई। इनके निबंधों की बड़ी प्रशंसा है। इनकी शैली बहुत बढ़िया थी। ...

भेद कर पङ्क
निकलता कमल जो मानव का
वह निष्कलङ्क,
हो कोई सर"
था सुना, रहे, सम्राट्! अमर—
मानव के वर!

वैभव विशाल,
साम्राज्य सप्त-सागर-तरङ्ग-दल-दत्त-माल,
है सूर्य छत्र
मस्तक पर सदा विराजित
ले कर-आतपत्र,
विच्छुरित छटा—
जल, स्थल, नभ में
विजयिनी वाहिनी—विपुल घटा,
क्षण क्षण भर पर
बदलती इन्द्रधनु इस दिशि से
उस दिशि सत्वर,
वह महासद्म
लक्ष्मी का शत-मणि-लाल-जटित
ज्यों रक्त पद्म,
बैठे उस पर
नरेन्द्र-वन्दित, ज्यों देवेश्वर।

पर रह न सके,
हे मुक्त,
बन्ध का सुखद भार भी सह न सके।

उर की पुकार
जो नव संस्कृति की सुनी
विशद, मार्जित, उदार,
था मिला दिया उससे पहले ही
अपना उर,
इसलिए खिंचे फिर नहीं कभी,
पाया निज पुर।
जन-जन के जीवन में सहास,
है नहीं जहाँ वैशिष्ट्य-धर्म का
भ्रू-विलास—
भेदों का क्रम,
मानव हो जहाँ पड़ा—
चढ़ जहाँ बड़ा सम्भ्रम।
सिंहासन तज उतरे भू पर,
सम्राट्! दिखाया
सत्य कौन-सा वह सुन्दर।
जो प्रिया, प्रिया वह
रही सदा ही अनामिका,
तुम नहीं मिले,—
तुमसे हैं मिले आज नव
योरप-अमेरिका।

सौरभ प्रमुक्त!
प्रेयसी के हृदय से हो
तुम प्रतिदेशयुक्त,
प्रतिजन, प्रतिमन,
आलिङ्गित तुमसे हुई
सभ्यता यह नूतन!

अन्तिम वाक्य

लेखक—कुँवर राजेन्द्र सिंह

प्रायः मरते समय बहुत-से लोग ऐसी बातें कह जाते हैं जो वे जीवित अवस्था में कदापि न कहते। मनुष्य के ऐसे वाक्य समस्त जाति के पथप्रदर्शक हो सकते हैं क्योंकि वे शुद्ध अन्तरात्मा से निकलते हैं। इस लेख में कुँवर साहब ने विदेशी महापुरुषों के ऐसे ही अन्तिम वाक्य संग्रह करके हिन्दी-पाठकों को एक सर्वथा नवीन वस्तु भेंट की है। हमारे देश के स्वर्गगत महापुरुषों के ऐसे वाक्य भी अवश्य इधर-उधर बिखरे पड़े होंगे। क्या अच्छा हो कि कुँवर साहब या अन्य विद्वान् इधर भी ध्यान दें।

जीवन के नाटक के अन्तिम दृश्य के ऊपर यवनिका-पतन होने के पहले के वाक्यों में जो दुख और दर्द, जो अनुताप और पश्चात्ताप या जो शान्ति और सन्तोष होता है वह और किसी समय के वाक्यों में होना असम्भव है। उसी समय इस कठोर यथार्थता का पता चलता है कि जीवन केवल एक परिहास है। एक समाधि-स्थान पर यह मृत्यु-आलेख अङ्कित है—"लाइफ़ इज़ ए जेस्ट, आल थिंग्ज़ शो इट, आई थाट सो वंस, नाउ आई नो इट" अर्थात् जीवन एक परिहास है, सब चीज़ें यही विदित करती हैं। मैं भी कभी यही ख़याल करता था। अब मैं जानता हूँ। जब मौत की ज़द पर उम्र आ गई हो और संसार से प्रस्थान करने के सब सामान प्रस्तुत हों तब उनके भी दिल खुल जाते हैं जिनके जन्म-पर्यन्त कभी नहीं खुले थे। भविष्य अनिश्चित होने के कारण भय-प्रद होता है और प्रायः भय में सच्ची बात मुँह से निकल ही जाती है।

पहले तो कहने का कुछ मौक़ा ही नहीं मिलता है, क्योंकि त्रिदोष के प्रकोप से ऐसा कंठावरोध हो जाता है कि गले से आवाज़ ही नहीं निकलती है। उस पर माया और मोह, फिर संशयग्रस्त भविष्य का भय—ये सब बातें मस्तिष्क को ऐसा सम्भ्रम कर देती हैं कि कुछ कहना तो दूर रहा, शान्ति-पूर्वक मरते भी नहीं बनता है। हमारे देश का दृष्टि-कोण और है। अगर मरने के वक़् राम का नाम मुँह से निकल जाय और समस्त जीवन चाहे जैसा व्यतीत हुआ हो, तो समझ लिया जाता है कि बिना किसी रोक-टोक के वह सीधा वैकुण्ठ पहुँच गया, और यदि किसी के मुँह से कोई और बात निकल गई तो किसी महात्मा के लिए भी यही समझा जाता है कि वह शैतान का साथी बनेगा। सबके लिए यही कहा जाता है कि राम-नाम रटते उनका शरीरान्त हो गया, सत्यता चाहे जो कुछ हो। इस वजह से अपने देश के बड़े आदमियों के अन्तिम वाक्यों का कोई संग्रह नहीं है।

परन्तु पाश्चात्य देशों में ऐसे वाक्य प्राप्य हैं, अतएव यहाँ कुछ प्रसिद्ध आदमियों के अन्तिम वाक्य दिये जाते हैं।

अडीसन (जोजेफ़) १६७२-१७१९—ये टेटलर पत्रिका में प्रायः लिखते थे। १७११ में स्पेक्टेटर पत्र की स्थापना की और उसी से इनको इतना लाभ हुआ कि १०,००० पौंड की रियासत ख़रीदी! इनका दुःखान्त नाटक 'केटो' लोगों ने इतना पसन्द किया कि वह पैंतीस रातों तक बराबर खेला गया। इन्होंने एक दूसरा सुखान्त नाटक लिखा, परन्तु इसे सफलता नहीं प्राप्त हुई। इनके निबंधों की बड़ी प्रशंसा है। इनकी शैली बहुत बढ़िया थी। आधुनिक

अँगरेज़ी-भाषा इनकी ऋणी है। इन्होंने मरने के समय कहा था—"देखो, एक क्रिश्चियन किस तरह मरता है।" यह वाक्य उसी के मुँह से निकल सकता है जिसने धार्मिक जीवन व्यतीत किया हो। ट्राई आन एडवर्ड्स ने लिखा है कि "मृत्यु ज़रा भी भयानक नहीं है, यदि अपने ही जीवन ने उसे भयानक न बना दिया हो।"

बर्क (एड्मंड) १७२९-१७९७—इनकी गिनती संसार के बड़े वक्ताओं में है। ये राजनैतिक विचारों की गम्भीरता, उदारता, स्वतंत्रता और दृढ़ता के लिए भी प्रसिद्ध हैं। अपनी राय के लिए सब कुछ सहने को तैयार रहते थे। यह इन्हीं का कहना है कि 'किसी मनुष्य की त्रुटियों के कारण उससे झगड़ा करना ईश्वर की कारीगरी पर आक्षेप करना है।' इन्होंने अपनी एक स्पीच में कहा था कि मेरा यह कहना है कि "उन सब झगड़ों में जो शासक और शासित के बीच में उठ खड़े होते हैं उनसे यही अनुमान किया जा सकता है कि शासित का पक्ष ठीक होगा।" एक दफ़ा इन्होंने अपने वोट देनेवालों के सामने भाषण करते हुए कहा था कि "प्रतिनिधि को हर तरह की सेवा करने के लिए तैयार रहना चाहिए, परन्तु उसे अपनी आत्मा, अपने ज्ञान और अपनी राय का किसी के लिए भी बलिदान नहीं करना चाहिए।" इन अमूल्य वाक्यों से आज-कल के 'जी हुज़ूर'-सम्प्रदाय के भी लोगों का काम चल जाता है। सायमन-कमीशन के आगमन के पहले से ही इस देश में 'बायकाट' की धूम मची हुई थी और जो लोग किसी वजह से उसके पक्ष में थे वे स्वयं लज्जित थे। परन्तु इस लज्जा को छिपाने के लिए उपर्युक्त वाक्यों का पाठ किया करते थे। बर्क की प्रकृति में अतिथि-सत्कार बहुत था। जब रघुनाथराव पेशवा के दो ब्राह्मण राजकर्मचारी इँग्लेंड गये तब उनको वहाँ बड़े कष्ट उठाने पड़े। जब यह बात बर्क को मालूम हुई तब उन्हें अपने मकान में ठहराया और बाग़ में उनके खाना पकाने का प्रबन्ध करवा दिया। बर्क सदा ऋण के बोझ से दबे रहे और इसी वजह से किसी बड़ी जगह पर नहीं पहुँच पाये। उन्होंने वारेन हेस्टिंग्ज़ पर अभियोग लगाने में जो स्पीच दी थी उसका आज भी बड़ा नाम है। उसे सुनकर बहुत-सी सुननेवाली महिलायें बेहोश हो गई थीं, और स्वयं वारेन हेस्टिंग्ज़ का भी दिल दहल गया था। इस स्पीच से भी अधिक महत्त्व की स्पीच उन्होंने आर्कट के नवाब के क़र्ज़ के विषय में दी थी। बर्क का अन्तिम वाक्य यह था—"ईश्वर तुम्हारा (सबका) भला करे।" इससे उनके धार्मिक विचारों का पता चलता है।

बायरन (जार्ज गार्डन) लार्ड १७८८-१८२४—साहित्यिक क्षेत्र में अपने समय में वे बेजोड़ थे। जर्मनी के महान् विद्वान् गेटे की राय है कि शेक्सपियर के बाद बैरन का ही स्थान है। वे बड़े अभिमानी स्वभाव के थे, साथ ही दुश्चरित्र भी। उनके मरते ही उनका जीवन-चरित लिख लेने के बाद उनके सारे काग़ज़-पत्र जला दिये गये थे। उन्होंने जो शादी की थी उससे एक लड़की पैदा हुई थी, जिसका नाम एडा था। एडा के जन्म के बाद फिर उनकी पत्नी ने उनके घर का मुँह नहीं देखा। उन्होंने एक बार अपनी सौतेली बहन को लिखा था—"जब मैं किसी अमीर औरत को ढूँढ़ पाऊँगा जो मेरी सुविधा के अनुसार होगी और जो इतनी बेवक़ूफ़ होगी कि मुझे स्वीकार करे तब उसे मैं अपने को दुखी करने दूँगा। दौलत चुम्बक-पत्थर की तरह है और वैसे ही औरत भी है। वह जितनी ही बुड्ढी हो, उतना ही अच्छा है, क्योंकि उसे स्वर्ग भेजने का मौक़ा मिलता है।" जिसके ये विचार हों वह कैसे एक का होकर रह सकता था? अपव्ययी होने के कारण बैरन धनाभाव से पीड़ित रहते थे और उनकी सदैव रुपये पर ही निगाह रहती थी। अन्त में बाप-दादे की सारी जायदाद, यहाँ तक कि मकान भी बिक गया था। उन्होंने एक दफ़ा अपने मित्र को लिखा था कि उनकी उपाधि कम-से-कम दस या पन्द्रह पौंड में ज़रूर बिक जायगी—यही अच्छा है जब पास इतने आने भी नहीं हैं। 'आरत काह न करहि कुकर्मा'। नित्य प्रति कोई नई बात हो, यही उनकी इच्छा रहती थी और इसी को वे अपने जीवन का उद्देश समझते थे और कहते थे कि इसी से पता चलता है कि हम जीवित हैं, चाहे तकलीफ़ में ही क्यों न हों। (नग्न हाये ग़म को भी ऐ दिल ग़नीमत जानिये—बे सदा हो जायगा यह साज़ हस्ती एक दिन) उसी इच्छा की पूर्ति के लिए वे तम्बाकू खाते थे। वे इतने बदनाम हो गये थे कि इँग्लेंड में रहना मुश्किल हो गया था। जब देश छोड़े जा रहे थे तब उन्होंने एक कविता लिखकर अपने मित्र टाम मूर को भेजी थी, जिस

का भावार्थ यह है—"उनके लिए आह है जो मुझसे प्रेम करते हैं और उनके लिए उपहासजनक मुस्कराहट है जो मुझसे नफ़रत करते हैं। चाहे जिस देश में मैं रहूँ, यह हृदय हर एक भवितव्यता के लिए तैयार है।" वे इँग्लेंड को फिर ज़िन्दा नहीं लौटे। तुर्कों के ख़िलाफ़ वे ग्रीस के पक्ष में थे। उनकी इच्छा युद्धस्थल में लड़ते हुए मरने की थी, परन्तु ऐसा नहीं हुआ। उनकी 'चाइल्ड हेराल्ड' नाम की कविता बहुत प्रसिद्ध है। यह २० फ़रवरी १८१२ को प्रकाशित हुई थी और मार्च के अन्त तक इसके सात संस्करण निकल गये थे। उनका अन्तिम वाक्य यह था—"मैं ख़याल करता हूँ, मैं अब सो जाऊँ।" ऐसे अशान्तिमय जीवन के बाद ऐसे ही वाक्य का मुँह से निकलना स्वाभाविक था।

चार्ल्स (द्वितीय) १६३०-१६८५—ये 'प्रजापीड़क, विश्वासघाती, और घातक' चार्ल्स (प्रथम) के पुत्र थे। इनके पिता को क्रामवेल की आज्ञा से प्राण-दण्ड दिया गया था। इँग्लेंड के इतिहास में इनसे अधिक बुरी हुकूमत और किसी राजा की नहीं हुई है। इनकी दूसरी विशेषता यह थी कि शायद वहाँ के और किसी बादशाह के इतनी रखेलियाँ नहीं थीं। इन्हीं के समय में लन्दन में प्लेग का प्रकोप हुआ था और बहुत बड़ी आग भी लगी थी। मरने के थोड़ी देर पहले इन्होंने कहा था—"देखना, बेचारी बेली (आपकी एक प्रेमिका) भूखों न मरे।" इनका आख़िरी वाक्य यह था—"मुझे खेद है कि मरने में मैं देर लगा रहा हूँ।" यह वाक्य उन दरबारियों से कहा था जो इनकी मत्युशय्या के पास खड़े थे। कहने का मतलब यह था कि आप लोगों को बेकार खड़े खड़े कष्ट हो रहा है। शून्य हृदय के शून्य शब्द हैं!

चार्ल्स नवम (फ़्रांस) १५५०-१५७४—इनमें शारीरिक बल की कमी नहीं थी और न कभी बहादुरी की थी। ये साहित्य के भी अच्छे जानकार थे। इन सब गुणों के होते हुए भी ये बड़े चालाक थे, विचारों में न स्थिरता थी, न दृढ़ता थी, और सर्वोपरि यह अवगुण था कि इनका हृदय दया-शून्य था। ये अपनी मा के हाथों के कठपुतली थे। वह जो नाच नचाती थी वही नाचते थे। अपनी माता के आदेशानुसार इन्होंने सेन्ट बार्थोलोम्यू को वध किये जाने की आज्ञा दी थी। इस दुष्ट और पापपूर्ण कार्य का प्रभाव कैथलिक-सम्प्रदाय के लोगों पर बहुत बुरा पड़ा था। इस घटना के दो वर्ष के अन्दर ही इनकी मृत्यु हो गई थी। इन्होंने मरने के समय कहा था—"दाई! दाई! कैसे कैसे वध मैंने करवाये हैं, कितना कितना ख़ून बहाया है। मैंने अपराध किया है। क्षमा करो, ईश्वर।" कैसे पश्चात्ताप-पूर्ण शब्द हैं।

कापर नीकस (निकोलस) १४७३-१५४३—ये खगोल-विद्या के बहुत बड़े विद्वान् थे। योरपीय लोग इन्हें इस विद्या का संस्थापक मानते हैं। उन्हीं लोगों की यह राय है कि इन्होंने इस बात का पता लगाया था कि सूर्य ही इस विश्व का केन्द्र है। इन्होंने बहुत-सी पुस्तकें लिखी हैं। देहावसान के समय यह वाक्य इनके मुँह से निकला था—"अब, हे ईश्वर, अपने सेवक को कष्टों से मुक्त कर।" तकलीफ़ में लोग उसी को पुकारते हैं जिससे कुछ आशा होती है, और यह वाक्य आशा का एक सुन्दर नमूना है।

क्रैन्मर (टामस) १४८९-१५५६—ये केन्टरबरी के बड़े पादरी थे। इनके विचारों में उदारता नहीं थी। जो राय होती थी, बस उसी को ठीक समझते थे। जिनके विचार इनके विचारों से नहीं मिलते थे उनके ये दुश्मन हो जाते थे। धार्मिक सहनशीलता इनमें नाम को भी नहीं थी। कहा जाता है कि बहुतों को ज़िन्दा जलवा देने में भी इनका हाथ था। उस समय पादरियों के बहुत अधिकार थे। हेनरी (अष्टम) का ज़माना था, जो इन पर बहुत कृपा करता था। ये धीरे धीरे 'प्रोटेस्टेंट-सम्प्रदाय' की तरफ़ झुक रहे थे, लेकिन हेनरी के देहान्त के बाद इनके पैर उखड़ गये और अपने धर्मशास्त्र के विरुद्ध सेमूर के प्राणदण्ड के आज्ञापत्र पर हस्ताक्षर कर दिया। विशप वोनर, गार्डिनर और डे को पदच्युत करने और कारावास का दण्ड देने में ये सहमत थे। बाद को इन पर झूठी क़सम खाने का अभियोग लगाया गया। रोम के बड़े पादरी के कमिश्नर की अदालत में इनका मुक़द्दमा पेश हुआ। इनका यह कहना था कि यह मुक़द्दमा कमिश्नर नहीं कर सकता। दूसरा अभियोग राजद्रोह का था, जिसे इन्होंने स्वीकार कर लिया और इनको प्राणदण्ड दिया गया। इन्होंने यह इच्छा प्रकट की थी कि ये ज़िन्दा जलाये जायँ। जब लकड़ियों में आग लगाई गई तब इन्होंने अपने दाहने हाथ को आग में बढ़ा दिया और

कहा "इस हाथ ने अपराध किया है। यह अयोग्य हाथ।" इसी हाथ से इन्होंने अपना धर्म बदलनेवाले काग़ज़ पर हस्ताक्षर किया था। चरित्र तो उतना उच्च नहीं था, पर अपनी भूल मान लेने की हिम्मत अवश्य थी और उसी का सूचक उनका उपर्युक्त अन्तिम वाक्य है।

डैन्टन (जार्जेज़ जेक्यूज़) १७५९-१७९४—राजविप्लव के पहले ये पेरिस में वकालत करते थे। इनकी सहानुभूति क्रांतिकारियों की तरफ़ थी। योग्य योग्य को पहचानता है। इन पर मिराबो की निगाह पड़ी और उन्होंने इनको अपने साथ काम करने के लिए रख लिया। मिराबो भी अपने ज़माने का बहुत बड़ा आदमी था। फ्रांस के विप्लव का इतिहास उसी का इतिहास है। एक के बिना दूसरा अपूर्ण है। सुनने में चाहे अयुक्ताभास मालूम हो, पर यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि प्रायः विद्वत्ता और सच्चरित्रता एक दूसरे का साथी नहीं है। इनका कोई सिद्धान्त नहीं था और अगर कोई था तो समय की सेवा करना। इनके विचारों में स्थिरता नहीं थी—दृढ़ता तो दूर रही। ये एक दफ़ा अपने पिता के पक्ष में इतना हो गये कि मा ने इन पर गाली चला दी और जब माता के पक्ष में हुए तब बाप को बुरा भला कहने में कोई कसर नहीं उठा रक्खी और फिर जब पलटा खाया और पिता के पक्ष में गये तब माता के चरित्र तक पर आक्षेप किया। इनमें सभी अवगुण थे, परन्तु उस समय ये जनता के आराध्यदेव थे। क़र्ज़ लेकर उसे चुकाना इन्होंने नहीं सीखा था। इनके मरने पर इनकी शादी के कपड़ों के दाम देना बाक़ी था। इनके भाषण सदा उनके ख़िलाफ़ होते थे जो विप्लव के पक्ष में नहीं थे। थोड़े दिनों के बाद ये न्याय-मंत्री नियुक्त हुए। इस समय समस्त देश में बड़ा जोश था। बड़ी जगह पर पहुँचते ही उनकी संख्या बड़ी हो जाती है जो 'बिन काज दाहने बायें' रहते हैं। ये अपने घर चले गये और वहीं रहने लगे। लोगों ने इनको बुला भेजा और पेरिस पहुँचते ही ये गिरफ़्तार कर लिये गये और उसी न्यायालय के सामने इनका मुक़द्दमा हुआ जिसकी स्थापना इन्होंने की थी। इन पर न्याय का अपमान करने का अभियोग लगाया गया। इन्होंने अपने बचाव में बहस की, पर एक न सुनी गई और इन्हें प्राणदण्ड दिया गया। राज-विद्रोह का एक बड़ा पक्षपाती स्वयं उसका शिकार बन गया। उन्होंने सिर काटनेवाले से कहा था—"मेरा सिर लोगों को अवश्य दिखला देना, क्योंकि ऐसा सिर लोगों को बहुत दिनों के बाद देखने को मिलेगा।" अभिमान ने मरते वक्त तक इनका साथ नहीं छोड़ा।

फ़ाक्स, चार्ल्स जेम्स १७४९–१८०६—ये आजीवन अनियमित ही रहे। १९ वें वर्ष में पार्लियामेंट के मेम्बर चुने गये। जब अमरीका से युद्ध हो रहा था तब इन्होंने उन सब क़ानूनों का विरोध किया जिनके द्वारा गवर्नमेंट को मनमानी करने का अधिकार प्राप्त होता था। ये अपने समय के श्रेष्ठ वक्ताओं में थे। इनका स्वभाव सरल और विचार बहुत उदार थे। उनके साथ भी बहुत अच्छा व्यवहार करते थे जो इनके ख़िलाफ़ रहते थे। एक दफ़ा जब ये पार्लियामेंट की मेम्बरी के लिए खड़े हुए तब बहुत ज़ोरों से इनका विरोध किया गया। ऐसे मौक़ों पर प्रत्येक वोट बहुमूल्य होता है। डिवनशायर की डचेज़ इनके पक्ष में थीं। डचेज़ बड़ी सुन्दर थीं। वे एक क़स्साब से वोट माँगने गईं। उसने वोट देने से इनकार किया। अन्त में यह तय हुआ कि वह उनका चुम्बन करले और अपना वोट दे दे। फ़ाक्स में ये सब गुण होते हुए भी कुछ अवगुण थे। वे बहुत बड़े शराबी और जुवाँरी थे। बर्क के समकालीन थे। बर्क ने एक दफ़ा इनकी प्रशंसा में कहा था कि फ़ाक्स जैसा तार्किक संसार में कभी नहीं पैदा हुआ। बर्क और फ़ाक्स का आख़िरी ज़िन्दगी में वैमनस्य हो गया था। तब भी बर्क के मरने पर फ़ाक्स ने पार्लियामेंट में यह प्रस्ताव पेश किया था कि वे वेस्टमिंस्टर-एबे में गाड़े जायँ। परन्तु बर्क कह गये थे कि साधारण आदमियों की ही तरह वे दफ़न किये जायँ। फ़ाक्स ने अपनी मित्रता का ऋण चुका दिया। इन्होंने मरने के पहले कहा था—"मैं सुखी मर रहा हूँ।" ये शब्द उसी के मुँह से निकल सकते हैं जिस पर कोई लाञ्छन न हो।

जार्ज (चतुर्थ) १७६२–१८३०— १९ वर्ष की अवस्था तक ये कड़ी देख-भाल में रक्खे गये। १८ वें वर्ष से ही अपने चरित्र का पता देना शुरू कर दिया था। एक नाटक करनेवाली मिसेज़ राबिंसन से इनका प्रेम हो गया और फिर २० साल की उम्र में एक रोमन कैथलिक सम्प्रदाय की स्त्री से शादी कर ली। १७९५ में फिर प्रिंसेस केरोलीन

से शादी की और पार्लियामेंट ने इनका क़र्ज़ जो ६,५०,००० पौंड था, अदा कर दिया। बादशाह होने पर इन्होंने अपनी पत्नी को तलाक़ दे दिया। जैसे को तैसा मिल जाता है। इनके सम्बन्ध में लोगों की राय है कि ये अभक्त पुत्र, बुरे पति और निठुर पिता थे। मरने के वक्त कहा था—"यह क्या है? क्या यह मौत है?"

गिबन (एडवर्ड) १७३७–१७९४— इँग्लैंड के इतिहास-लेखकों की सूची में इनका नाम सबसे ऊँचा है। बचपन में ये प्रायः बीमार रहते थे। सिर्फ़ दो वर्ष स्कूल में पढ़ा था और १४ महीने कालेज में। यही इनकी शिक्षा की नींव थी। ये लैटिन और फ्रेंच के भी अच्छे विद्वान् थे। 'डिक्लाइन ऐंड फ़ाल आफ़ दि रोमन इम्पायर' इन्हीं की अमर रचना है। इन्होंने स्वयं लिखा है कि १५ अक्टूबर १७६४ को जब मैं रोम में बृहस्पति-ग्रह के मंदिर में बैठा हुआ था और नंगे पैर पुजारी स्तुति कर रहे थे तब पहले दफ़े उस साम्राज्य के ह्रास और पतन का इतिहास लिखने का ख़याल मेरे दिमाग़ में आया था। ये पार्लियामेंट के मेम्बर भी रहे। ये हमेशा गवर्नमेंट की तरफ़ वोट देते थे और इसी कारण इनको अच्छे वेतन की एक जगह मिल गई थी। इनके कौंसिलों में वोट देने के सम्बन्ध में किसी ने ख़ूब कहा है—"अरू दुधारा भूल न जाना कौंसिल का है वोट, या तो पाँचों उँगली घी में या सर पर है चोट"। इनका अन्तिम वाक्य यह था—"हे ईश्वर! हे ईश्वर!" जिनके 'रास्ते में फूल बिछे रहे हैं' या जिन्होंने 'चैन की बंशी' बजाई है या जो 'लक्ष्मी के पुत्र' रहे हैं उन्हें ईश्वर से क्या सरोकार? सरोकार तो ईश्वर से उन्हें रहता है जिनका रास्ता कण्टकपूर्ण है या जो 'चौंकत चैन को नाम सुने' या जिनके पास भूख को 'धोखा' देने भर का भी इन्तिज़ाम नहीं है या जिनकी ज़िन्दगी 'ज़िन्दा मौत' है। यदि इन सब कष्टों का सामना गिबन को करना पड़ा था तो फिर कोई वजह नहीं थी कि मरने के समय ईश्वर न याद आता।

गेटे (जान उल्फ़गैंग) १७४९–१८३२—इनका जन्मस्थान फ्रैंकफ़ोर्ट (जर्मनी) है। ये अपने समय के अद्वितीय विद्वान् थे या यह भी कहना ठीक होगा कि संसार के बड़े विद्वानों में इनकी गणना है। कोई भी बात ये बहुत जल्दी सीख लेते थे। इनको शिक्षा देने का इनके पिता ने बड़ा अच्छा प्रबन्ध किया था। १७६९ में जब फ्रांस की फ़ौज ने फ्रैंकफ़ोर्ट में प्रवेश किया तब वहाँ एक थियेटर की स्थापना हुई और इनकी तबीयत उधर खिँच गई और प्रसिद्ध नाटक लिखनेवालों से उनकी जान-पहचान हुई, जिनका बहुत प्रभाव इन पर पड़ा। जब ये यूनिवर्सिटी में भर्ती हुए तब इनको क़ानून से कुछ भी नहीं और साहित्य से बहुत थोड़ी रुचि थी। स्वतंत्र आत्माओं को किसी क़िस्म के बंधन से अरुचि होती है। इनको समालोचना लिखने और कविता रचने का शौक़ था। अब प्रेम पथ-प्रदर्शक हुआ—सोने में सुगन्ध आगई। ये अपनी प्रेमिका को इतना चाहते थे कि एक दफ़ा जब इनको एक आवश्यक कार्यवश बाहर जाना पड़ा तब ये उसकी कंचुकी साथ ले गये थे। इनका कहना है कि कई दिनों तक इनको उसमें एक मनोहारी सुगंध मिलती रही। प्रेम प्रत्येक अंग को सुवासित कर देता है। राजवंश में भी इनका आदर और सत्कार था और ऊँचे पद पर ये नियुक्त थे। इन्होंने बहुत-सी पुस्तकें लिखी हैं, जो अभी तक प्रसिद्ध हैं। समय ने पल्टा खाया—अच्छे दिन गये, बुरे दिन आये। १८१६ में इनकी पत्नी का शरीरान्त हो गया। इनकी अत्यन्त शोचनीय दशा हो जाती, यदि इनकी बहू इनकी अच्छी देख-रेख न रखती और पौत्र इनका दिल न बहलाया करते। अँगरेज़ी में एक कहावत है कि 'मुसीबत कभी अकेली नहीं आती है।' एक एक करके इनके दोस्त चलते बने और अन्त में १८३० में इनको पुत्र-शोक भी देखना पड़ा। इनका अन्तिम वाक्य यह था—"प्रकाश, और अधिक प्रकाश"। अर्थात् जीवन अन्धकारमय है और किसी गूढ़ तत्त्व पर काफ़ी प्रकाश नहीं पड़ता है।

हैज़्लिट (विलियम) १७७८–१८३०—ये अँगरेज़ी के बहुत बड़े लेखक थे। इन्होंने कई विवाह किये, परन्तु किसी से इनको वास्तविक सुख नहीं प्राप्त हुआ। इनका अन्तिम समय दुःख-पूर्ण रहा। स्वास्थ्य बहुत ख़राब होगया था और उससे अधिक आर्थिक दशा बिगड़ी हुई थी। इतने पर भी मरते समय इन्होंने कहा था—"मेरा जीवन सुखी व्यतीत हुआ है।" सन्तोषी सदा सुखी रहता है।

हर्बर्ट (जार्ज) १५९३-१६३३—ये कवि थे। कालेज से निकलने पर आँखें नौकरी पर थीं, पर इनके कुछ मित्रों ने इनका ध्यान धर्म की तरफ़ आकर्षित कर दिया और

ये थोड़े दिनों तक एक पदाधिकारी भी रहे। इनकी कुछ कवितायें बड़ी प्रशंसा की दृष्टि से देखी जाती हैं। मृत्यु के समय इन्होंने कहा था—"ईश्वर, अब मेरी आत्मा को स्वीकार कर।" ये शब्द उनके धार्मिक विचारों के प्रतिबिम्ब हैं।

/ कीट्स (जान) १७९५-१८२१—इन्होंने पहले चिकित्सा-शास्त्र पढ़ा और थोड़े दिनों तक एक डाक्टर के साथ काम भी सीखा। परन्तु अन्त में यह सब छोड़कर सरस्वती के उपासक बन गये। अँगरेज़ी-भाषा के कवियों में इनका स्थान बहुत ऊँचा है। इनकी कविता की जो प्रशंसा की जाय वह थोड़ी है। विद्वत्ता और दरिद्रता की मित्रता है। ये भी धनाभाव से पीड़ित रहते थे। पैतृक सम्पत्ति बहुत कुछ 'सिकुड़' आई थी और स्वास्थ्य ने भी साथ छोड़ दिया था। बहुत दिनों से क्षय-रोग का भय हो रहा था और वही आखिर में ठीक निकला। एक स्त्री से इनका असफल प्रेम था। अँगरेज़ी की एक कविता का भावार्थ यह है कि सब वेदनाओं से अधिक यह वेदना है कि किसी का किसी से असफल प्रेम हो। इन्होंने स्वयं अपना मृत्यु-आलेख लिखा था—"यहाँ वह लेटा हुआ है जिसका नाम पानी पर लिखा है।" कितने भावपूर्ण शब्द हैं। इनको फूलों का बड़ा शौक़ था। इनका आखिरी वाक्य यह था—"मुझे मालूम होता है कि जैसे मुझ पर फूल उग रहे हों।"

मेकाले, टामस बैबिंग्टन (लार्ड) १८००-१८५९—ये इतनी तीव्र बुद्धि के थे कि चार ही वर्ष में स्कूल से कालेज पहुँच गये। ये गणित से बहुत घबराते थे और हमेशा इसका उन्हें डर रहता था। इन्होंने बैरिस्टरी की परीक्षा पास की, परन्तु इस पेशे से इनको वैसी रुचि नहीं थी—ये साहित्य की तरफ़ खिँच गये। १८२५ में इन्होंने मिल्टन पर एक लेख लिखा था। इस लेख से साहित्य में इनका स्थान निश्चित हो गया। जब ये पार्लियामेंट में पहुँचे और 'रिफ़ार्म-बिल' पर स्पीच दी तब लोगों को मालूम हुआ कि ये बड़े भारी वक्ता भी हैं। इनका 'हाथ खुला' हुआ था, इस वजह से रुपया की कमी रहती थी और इसी वजह से १०,००० पौंड का सालाना वेतन स्वीकार कर ये भारत-सरकार के क़ानूनी सलाहकार के रूप में १८३४ में हिन्दुस्तान आये थे। इनके ज़ोर देने की वजह से हिन्दुस्तानियों को अँगरेज़ी की शिक्षा दी जाने लगी। १८३८ में ये वापस गये। इतिहास और निबन्ध के नामी लेखक थे। एक ने इनकी प्रशंसा में कहा है कि किसी विद्यार्थी का इससे अधिक अभाग्य नहीं हो सकता है कि इनकी शैली का अनुसरण करे। इन्होंने मरने के वक्त कहा था—"अब मैं जीवन के मञ्च पर से हटूँगा। मैं बहुत थक गया हूँ।"

नेपोलियन (बोनापार्ट) १७६९-१८२१—नेपोलियन के सम्बन्ध में किसी का यह कहना है कि जो उन्हें नहीं जानता है, वह सूचित करता है कि वह स्वयं अपरिचित है। मिल्टन ने अपने 'पेराडाइज़ लास्ट' में लिखा है कि शैतान ने एक मौक़े पर कहा था—नाट टु नो मी इज़ टु अर्गू योर सेल्फ़ अननोन। अर्थात् मुझे न जानना इस बात का प्रमाण है कि स्वयं तुम्हें कोई नहीं जानता है। यह पंक्ति अब अँगरेज़ी में एक प्रसिद्ध लोकोक्ति हो गई है। जब तक भाग्य ने साथ दिया, कीर्ति और विजय नेपोलियन के पीछे दौड़ती थी जैसा किसी के पीछे उनके पहले और उनके बाद कभी नहीं दौड़ी है और बुरे दिन आते ही फिर ऐसा मुँह फेरा कि एक नज़र भी लौटकर नहीं देखा। नेपोलियन की भी निगाह हिन्दुस्तान पर थी और इँग्लेंड से तो वे जलते ही थे, लेकिन उनके इरादे पूरे नहीं हुए। नील और ट्रेफ़ालगर के युद्धों की असफलता ने उनकी समस्त शक्ति को समाप्त कर दिया। वाटरलू के प्रसिद्ध युद्ध में वे पकड़े गये और सेन्ट हेलिना द्वीप में रहने को भेज दिये गये और वहीं क़ैद में उनकी मृत्यु हो गई। मरने के वक्त उन्होंने कहा था—"हे ईश्वर, फ़्रांस की फ़ौज का प्रधान सेनापति।" यह शायद इस भाव का सूचक है कि हे ईश्वर, फ़्रांस की फ़ौज का प्रधान सेनापति आज क़ैदी के रूप में मर रहा है। नेपोलियन को सम्राट् होने से अधिक अभिमान प्रधान सेनापति होने का था।

नेलसन (हुरेशियो) वाईकाउंट १७५८-१८०५—इन पर इँग्लेंड को उचित अभिमान है। इसमें सन्देह नहीं कि ये एक बहुत बड़े वीर पुरुष थे, और इनके वीरत्व की तुलना केवल इनकी अनुपम देश-भक्ति से की जा सकती है। ट्रेफ़ालगर के युद्ध का इतिहास बिना इनके इतिहास के अपूर्ण है। उस समय इँग्लेंड पर घोर संकट था और देशवासियों से प्रार्थना करते हुए इन्होंने लिखा

था कि नेल्सन हर एक आदमी से आशा रखता है कि वह अपने कर्त्तव्य का पालन करेगा। इन्होंने पुनरावृत्ति में 'नेल्सन' की जगह 'इँग्लेंड' शब्द बढ़ा दिया। इससे इनके उदार विचारों का पता चलता है। १८०० में इन्होंने अपनी पत्नी को तलाक़ दे दिया था, क्योंकि इनका प्रेम लेडी हैमिल्टन से हो गया था।

युद्ध हो रहा था और ये सामने खड़े कैप्टेन हार्डी को आज्ञा दे रहे थे कि इनके बायें कन्धे में गोली आ लगी, जिससे प्राणघातक घाव लगा और तीन घंटे के बाद इनका शरीरान्त हो गया। इनका अन्तिम वाक्य यह था—"ईश्वर को धन्यवाद है। मैंने अपने कर्त्तव्य का पालन किया है।" मनुष्य को कभी इतना सन्तोष और प्रसन्नता नहीं होती, जितनी कर्तव्य-पालन से होती है।

नेरो (रोम का बादशाह) ३७-६८ इन्होंने कुल चौदह वर्ष राज्य किया था। सच्चरित्रता का अभाव यों तो बहुतों में होता है, परन्तु ये उन लोगों में थे "जिनके पहलू से हवा भी बचकर चलती थी।" इनके पिता के मरने पर इनकी माता ने बादशाह क्लाडियस से शादी कर ली और उसने इन्हें अपना उत्तराधिकारी मान लिया। उसके मरने पर ये तख़्त पर बैठे और बड़ी कड़ाई से शासन किया। इन्होंने क्लाडियस के लड़के को ज़हर दिलवा दिया और अपनी प्रेमिका को प्रसन्न करने के लिए अपनी माता और फिर अपनी पत्नी का वध कर डाला। सन् ६४ ईसवी की जुलाई में रोम में इतनी बड़ी आग लगी कि दो तिहाई शहर जल गया। कहा जाता है कि इन्हीं ने आग लगवा दी थी और यह भी कहा जाता है कि ये दूर से इस भयानक और हृदय-विदारक दृश्य को देख रहे थे और एक पुरानी कविता पढ़ रहे थे, जिसमें एक दूसरे शहर के जलने का वर्णन था। बहुत-से ईसाइयों को मरवा डाला और बहुतों के साथ बड़ी कठोरता का बर्ताव किया। इनके ख़िलाफ़ रियाया ने षड्यन्त्र रचा, परन्तु वह सफल नहीं हुआ और सब षड्यन्त्रकारी मार डाले गये। इन्होंने फिर शहर बनवाना शुरू किया और स्वयं अपना महल बनवाने के लिए इटली के कई सूबे लूटे। एक दफ़ा गुस्से में आकर अपनी पत्नी को एक लात मार दी। वह गर्भवती थी और इस चोट से उसकी मृत्यु हो गई। फिर क्लाडियस की लड़की से शादी करनी चाही, लेकिन उसने इनकार कर दिया। इस वजह से उसे मरवा डाला। वहाँ से जब नाउम्मीदी हुई तब एक दूसरी स्त्री पर तबीयत आई और उसके पति का वध करवाकर उससे विवाह किया। इनके ज़माने में किसी में सद्गुणों का होना एक बड़ा अभिशाप था। ये अपने ज़माने के बहुत बड़े कवि, तत्त्वज्ञानी और संगीतशास्त्र-विशारद कहलाना चाहते थे। रियाया बिगड़ी हुई थी। अन्त में विद्रोह सफल हुआ और ये भागे और आत्महत्या कर ली। मरने के वक्त इन्होंने कहा था—"संसार मुझमें कितना बड़ा कला-कौशल खो रहा है।" शायद यह मिथ्याभिमान की चरमसीमा है।

पामर्स्टन (हेनरी जान टेम्पेल) लार्ड १७८४-१८६५—ये इँग्लेंड के प्रधानमंत्री के पद तक पहुँचे थे। इनके चरित्र में कुछ विचित्रतायें भी थीं। ये अपनी राय का ऐसे ज़ोरों से समर्थन करते थे कि तर्क की सीमा को भी उल्लंघन कर जाते थे। इनके भाषणों में प्रायः एक प्रकार का रूखापन होता था, जो सभ्य समाज की दृष्टि में अनुचित मालूम होता था। ये अक्सर अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में हस्तक्षेप किया करते थे। इन्होंने मरने के वक्त कहा था—"मरना, डाक्टर, यही एक चीज़ है जो मैं कभी नहीं करूँगा"। संसार की यही एक चीज़ है, जो सबको करना पड़ती है। उर्दू का एक कवि कहता है—"लाश पर इबरत यह कहती है 'अमीर', आये थे दुनिया में इस दिन के लिए।"

/ पो (इडगर एलन) १८०९-४९—ये तीन ही वर्ष की अवस्था में अनाथ हो गये थे। इनको एक अमीर और पुत्रविहीन सौदागर ने अपना उत्तराधिकारी बना लिया था। अभी ये पढ़ ही रहे थे कि इनको जुआँ खेलने की आदत पड़ गई। इन्होंने फ़ौज में नौकरी की। वहाँ ठीक काम न करने की वजह से निकाल दिये गये। ये भूखों मरते, यदि इनको लिखना न आता होता। ये अख़बारों में लिखा करते थे। उससे कुछ मिल जाता था और कुछ किताबें भी लिखी थीं। लिखकर जो कमाते थे वह फिर उड़ा देते थे और फिर रोटियों के लाले पड़ जाते थे। इनकी पत्नी अत्यन्त दरिद्रता में मरी। इन्होंने एक दफ़ा आत्महत्या करने की चेष्टा की थी। अन्त में इनकी एक अस्पताल में मृत्यु हुई। इनका आखिरी वाक्य यह था—"हे ईश्वर, मेरी आत्मा की सहायता

करो, अगर कर सकते हो"। जिसे जन्म भर किसी से सहायता न मिली हो उसे सहायता पर कैसे विश्वास होता ? कोई भी अपने अवगुणों पर निगाह नहीं डालता है और यही ख़याल किया करता है कि वह सहायता और दया के योग्य है और जो कुछ ग़ल्ती है वह दया और सहायता न करनेवाले की है। अँगरेज़ी में एक कहावत है कि 'पहले योग्य बनो तब इच्छा करो'। एक दूसरा कहता है कि 'योग्य बनो परन्तु इच्छा न करो'।

टेवेल (फ्रैंसिस) १४८३-१५५३—ये अपने समय के बहुत बड़े विद्वान् थे। ग्रीक, हेब्रू, अरबी, लेटिन और फ्रेंच आदि भाषायें अच्छी तरह जानते थे। स्वतंत्र विचारों के आदमी थे। कभी साधुओं के किसी सम्प्रदाय में सम्मिलित हो जाते थे और कभी उसे छोड़ देते थे और वहाँ से चलते बनते थे। सबसे बड़े पादरी से इनकी मित्रता थी और इस वजह से इनको अगम्य कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ा था। इनको चिकित्सा-शास्त्र का भी अच्छा ज्ञान था और चिकित्सक का भी काम किया था। ये अच्छे व्यंग्य-लेखक थे। बहुत-सी पुस्तकें लिखी हैं। इनकी लिखी एक पुस्तक से रोमन कैथलिक और प्रोटेस्टेंट दोनों इतना नाख़ुश हुए कि किताब की बिक्री रोक देने और लेखक को जला देने का शोर मचाया था। हास्य के लिखते समय सभ्यता को उठाकर ताख पर रख देते थे। उसमें ग्रामीणता आ जाती थी। यदि यह दोष न होता तो इनकी कविता उच्च कोटि की गिनी जाती। इनकी मृत्यु के पश्चात् इनकी जो पुस्तक प्रकाशित हुई उसमें भी उपर्युक्त दोष था। इनको विद्वत्ता के जितने लोग प्रशंसक थे, उतने ही या उससे अधिक निन्दक थे। इन्होंने मरने के समय कहा था—"परदा गिरने दो ! (जीवनरूपी) प्रहसन समाप्त हो गया।" बहुत अच्छा भाव बहुत अच्छे शब्दों में प्रकट हुआ है।

स्काट (सर वाल्टर) १७७१-१८३२—अँगरेज़ी-साहित्य में इनका बहुत नाम है। ये एक प्रसिद्ध सैनिक घराने के थे, पर इन्होंने साहित्य-क्षेत्र में नाम कमाया। साहित्यिक विशेषताओं के अतिरिक्त इनमें दो शारीरिक विशेषतायें भी थीं। ये चलने में लँगड़ाते थे और इनका मुँह अधिक चौड़ा था। बचपन में बीमार पड़ गये थे। जान तो बच गई, परन्तु न मालूम किस कारण से पैर में ढबक आ गई। मुँह चौड़ा होने के सम्बन्ध में कहा जाता है कि इनके छः पुश्त पहले के वाल्टर स्काट का पुत्र विलियम बहुत ख़ूबसूरत था, और एक दफ़ा जब उसने सर गिडन मरे की ज़मीन पर धावा किया तब पकड़ लिया गया। सर गिडन ने यह शर्त की कि या तो प्राणदण्ड स्वीकार करो या उसकी तीन लड़कियों में से जो सबसे अधिक कुरूप है उससे शादी करो। विलियम ने शादी करना स्वीकार किया और वह कुरूप कन्या एक आदर्श पत्नी निकली। तब से इस वंश के सब लोगों के मुँह चौड़े होते आते थे। ये ग़ज़ब की मेहनत करने वाले थे। जब काम करने लगते तब न खाने का ख़याल रहता, न आराम का। निर्भीक भी बहुत थे। एक क़िस्सा स्वयं कहा करते थे। एक दफ़ा ये एक सराय में पहुँचे। उसके मालिक ने कहा कि सोने के लिए एक कमरे में प्रबन्ध कर दीजिए। मालिक ने खेद प्रकट किया और कहा कि कोई कमरा ख़ाली नहीं है सिवा उस कमरे के जिसमें एक पलँग पर लाश पड़ी हुई है और दूसरा पलँग ख़ाली है। उन्होंने पूछा कि क्या वह आदमी किसी संक्रामक रोग से मरा था। मालिक ने कहा, नहीं। तब इन्होंने कहा कि उसी कमरे के दूसरे पलँग पर मेरे सोने का इन्तिज़ाम कर दो। ये कहा करते थे कि उस रात से अधिक अच्छी तरह मैं कभी नहीं सोया। इनकी पुस्तकों की बड़ी धूम थी, हाथों-हाथ बिकती थीं। कहा जाता है कि इन्होंने पुस्तकें लिखकर १,४०,००० पौंड कमाया था, परन्तु जिस ठाट-बाट से ये रहते थे उसके लिए वह आमदनी काफ़ी नहीं थी। इनके मकान की प्रशंसा में एक ने कहा था कि वह पत्थर में कविता थी। ये केवल लेखक ही नहीं थे, बहुत बड़े कवि भी थे। अन्त में ऋणी हो गये। पक्षाघात हो गया था। प्राणान्त के समय इन्होंने कहा था—"तुम सबका ईश्वर भला करे। अब मैं फिर अपने को जानता हूँ।" यही वह समय है जब लोग अपनी वास्तविकता पहचानते हैं।

शेरीडन (रिचर्ड ब्रिस्ली) १७५१-१८१६—इनमें वाणी-बल बहुत था। इनका वह भाषण अब भी आदर की दृष्टि से देखा जाता है जो इन्होंने वारेन हेस्टिंग्ज़ पर अभियोग लगाये जाने के समर्थन में दिया था। कहा जाता है कि अँगरेज़ी-भाषा में इसके जोड़ की स्पीच नहीं है। इसको सुनकर लोग मुग्ध हो गये थे। इसकी प्रशंसा में पिट ने कहा था कि यह मालूम होता था कि जैसे 'कामन्स

सभा' के मेम्बर जादूगर की छड़ी के नीचे हों। ये बहुत अच्छे नाटक लिखनेवालों में से थे। इनके नाटक 'दि रायवल्स' और 'दि स्कूल फ़ार स्कैंडल्स' बहुत मशहूर हैं। इनके नाटक जब खेले जाते थे तब ये भी अभिनय करते थे। थोड़े दिनों के बाद नाटकों से इनकी तबीयत हट गई, यहाँ तक कि साहित्य से भी। अब ये अपनी पत्नी को लेकर लंदन चले आये और वहीं रहने लगे। वहाँ आकर ये फ़ैशन के पंजे में फँसे और वह जीवन व्यतीत होने लगा जो अतिव्ययता का परमोच्च शिखर था। १७८० में २९ वर्ष की अवस्था में ये पहली दफ़ा पार्लियामेंट के मेम्बर हुए। परन्तु इनका पहला भाषण असफलता का प्रतिरूप था। इनके एक मित्र ने इनको सलाह देते हुए कहा था कि बहुत अच्छा होता यदि ये अपना पुराना पेशा करते रहते। शेरीडन ने अपना सिर अपने हाथ पर रखकर उत्तर दिया कि वाक्-शक्ति मुझमें है और वह प्रकट होगी। अब ये अपनी स्पीचें रट कर देने लगे। और जब अपने ऊपर विश्वास बढ़ा तब जो कुछ कहना होता था संक्षेप में एक काग़ज़ के टुकड़े पर लिख लेते थे। परिश्रम प्रत्येक कठिनाई पर विजय प्राप्त कर सकता है, झिझक जाती रही। फिर इनका जो नाम हुआ वह अब भी जीवित है। अब बुरे दिन आये। इनकी पत्नी का देहान्त हो गया और जिस औरत से इन्होंने फिर शादी की वह इनसे ज़्यादा रुपया बरबाद करने में बढ़ी हुई थी। इनको थियेटर से भी कुछ आमदनी नहीं थी। ऋणग्रस्त हो गये थे। इन्होंने मरने के वक़्त कहा था—"आह ! मैं बिलकुल बरबाद हो गया !" यह दुखी हृदय के दुख के शब्द हैं।

साक्रेटीज़—इनका जन्म सन् ईसवी के ४६९ वर्ष पहले बतलाया जाता है। ये ग्रीकदेश के सबसे बड़े तत्त्व-ज्ञानी थे। इनकी विशेष रुचि आचार-नीति से थी। ये पहले फ़ौज में काम करते थे और इनका बहादुरी में बड़ा नाम था। राजनीति-क्षेत्र इनका क्षेत्र नहीं था। केवल कुछ दिनों के लिए ये सचिव-सभा में रहे थे। इन्होंने कोई किताब नहीं लिखी। ये प्रश्नोत्तरों से उपदेश देते थे। इनका कहना था—"सद्गुण ज्ञान है, दुर्गुण अज्ञान है।" ३९९ में इन पर यह अभियोग लगाया गया कि राज्य-द्वारा पूजित पुराने देवताओं के ये ख़िलाफ़ हैं और नये देवताओं के पूजन के पक्षपाती हैं और इनके उपदेशों से नवयुवकों के चरित्र बिगड़ रहे हैं। मुक़द्दमा चला और इनको प्राणदण्ड दिया गया। इन्होंने तमाम दिन अपने मित्रों के साथ व्यतीत किया और शाम को आज्ञानुसार ज़हर पी लिया। मरने के समय इन्होंने कहा था—"क्रायटो, (आपका एक मित्र) एक मुर्ग़ा का बलिप्रदान एसक्यूलापियस (एक देवता) को करना रह गया है।" शब्द यद्यपि मामूली हैं, तथापि इस बात के सूचक अवश्य हैं कि मृत्यु के समय के कष्टों ने प्रतिज्ञा को नहीं भूला पाया था।

वाल्टेर, फ्रैंसिस मेरी एरूट डी १६९४-१७७८—इनका जीवन विचित्र था। पहले क़ानून पढ़ने का इरादा था, परन्तु ये उससे बहुत जल्दी घबरा गये। अतिव्ययी शुरू से ही थे, इस वजह से बाप नाख़ुश था। बाप ने इनको फ़्रांस के प्रतिनिधि के साथ जो हालेंड में रहता था, कर दिया और वहाँ से भी ये अपमानित होकर लौटे। इन्होंने एक कविता लिखी, जिसमें इतने बड़े आक्षेपों और खुली तरह के व्यंग्यों से काम लिया कि इनको जेलख़ाना जाना पड़ा, और इसी अपराध में और भी कई दफ़ा उसकी हवा खानी पड़ी। लेकिन इनकी आदत नहीं छूटी। इनकी विद्वत्ता में कोई सन्देह नहीं था और न कोई सन्देह इनकी चरित्र-हीनता में था। बहुत-से कारबारों में इनका रुपया लगा था, जिससे इनको अच्छी आमदनी थी। इनका अन्तिम वाक्य था—'कृपा करके मुझे शान्ति से मरने दीजिए।" अगर जीवन में शान्ति नहीं मिली तो मरने के समय उसकी आशा करनी व्यर्थ है।

कार्टरेट जान, अर्ल ग्रेनविल १६९०-१७३६—ये स्वीडेन में इँग्लेंड के प्रतिनिधि रहे थे और अन्तर्राष्ट्रीय सिक्रेटरी भी। शरीरान्त के समय होमर के महाकाव्य के युद्ध का एक दृश्य इनको याद आ गया, जिसमें सरापीडन सेनापति ने एक सैनिक से कहा था—"भाग करके मौत से कैसे बच सकते हो ? यदि हम सब मौत और वृद्धावस्था से बच सकते तो भागना तर्कयुक्त होता। परन्तु मौत हमें चारों तरफ़ से घेरे हुए है, इसलिए मैं तुमको उपदेश दूँगा कि युद्ध करो और आगे बढ़ो।"

अन्तिम वाक्यों में शान्ति और सन्तोष के अतिरिक्त उपदेश भी होते हैं।

हमारा आज का आर्थिक प्रश्न

लेखक, श्रीयुत सीतलासहाय

आक्टोबर के प्रथम सप्ताह में, लेजिस्लेटिव असेंबली में राष्ट्रीय पक्ष की ओर से यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया था कि रुपये की क़ीमत घटा दी जाय। रुपये पर विशेष रूप से बट्टा लगाने का यह प्रस्ताव उचित नहीं मालूम होता, लेकिन सम्पूर्ण राष्ट्रीय पक्ष ने जिसमें कांग्रेस के प्रतिनिधि भी शामिल थे, बट्टा लगाने के इस प्रस्ताव का ज़ोरदार तरीक़े से समर्थन किया। गवर्नमेंट की ओर से सर जेम्स ग्रिग ने कहा कि जब तक मैं ज़िन्दा हूँ, रुपये की क़ीमत में कमी न होने दूँगा। परिणाम यह हुआ कि रुपये की क़ीमत पूर्ववत् एक शिलिंग छः पेंस ही क़ायम रही।

प्रस्ताव क्यों उठा—व्यवस्थापक असेम्बली के सामने इस प्रस्ताव के आने का मौक़ा यह था कि लगभग उसी समय फ्रांस ने अपने सिक्के फ्रेंक की क़ीमत एकदम घटा दी, और स्वीज़रलेंड, हालेंड तथा इटली ने फ्रांस का अनुसरण किया। ब्रिटेन और अमरीका ने फ्रांस के इस कार्य को प्रोत्साहन दिया और उसमें सहयोग भी किया। इसलिए भारतीय राष्ट्रीय पक्ष ने यह कहा कि जब योरपीय राष्ट्र अपने-अपने सिक्कों की क़ीमत घटाकर अपने निर्यात-व्यापार को प्रोत्साहन दे रहे हैं और अपनी समस्यायें हल कर रहे हैं, हिन्दुस्तान भी उसी मार्ग का अनुकरण क्यों न करे।

फ्रांस की स्थिति—फ्रांस के सामने अनेक आर्थिक समस्यायें आगई थीं। जो चीज़ें फ्रांस बनाता था उनकी बिक्री विदेशों में नहीं होती थी, इसलिए उनका भाव मन्दा था। फ्रांस विदेशों से ख़रीद ज़्यादा रहा था और विदेशों में बेच कम पाता था। फ्रांसीसी किसान आर्थिक संकट में पड़ गये थे और उनके ऊपर क़र्ज़ की मात्रा बढ़ती जाती थी। फ्रांसीसी व्यवसायी कमज़ोर पड़ रहे थे। विदेशी व्यवसायों के मुक़ाबिले में उनका माल गराँ पड़ता था। इसलिए संरक्षण की पुकार उठ रही थी। बेकारी ज़ोरों से बढ़ रही थी और सोना बाहर खिंचा जा रहा था।

लन्दन के 'टाईम्स' ने फ्रांस की स्थिति निम्नलिखित शब्दों में बयान की है—

"इस वर्ष की प्रथम छमाही भर फ्रांस की राष्ट्रीय आर्थिक अवस्था अधिकाधिक शोचनीय होती रही। १९३२ से ही फ्रेंच गवर्नमेंट के बजट में घाटा रहता आया है और पिछले पाँच बरस में तो सरकारी क़र्ज़ ३० प्रतिशत बढ़ गया। अर्थात् २७० अरब फ्रेंक से ३५० अरब फ्रेंक हो गया था।

चूँकि डालर और पौंड तथा अन्य देशों के सिक्कों के बदले में फ्रांस का सिक्का महँगा मिलता था, इसलिए फ्रांस के निर्यात पर बड़ा भयङ्कर आघात पड़ता था। फ्रांस की ६२ अरब फ्रेंक (८२,५०,००,००० पौंड) से अधिक पूँजी पिछले १८ महीने में वहाँ से निकलकर विदेशों को चली गई थी। फ्रांस का निर्यात-व्यापार आयात के मुक़ाबिले में इतना कम हो गया था कि प्रतिदिन ५,००,००० पौंड का सोना फ्रांस से विदेशों को ढोया चला जा रहा था।

इटली की स्थिति—इटली के सामने भी क़रीब-क़रीब यही समस्यायें थीं। पहले तो मुसोलिनी ने लीरा की क़ीमत

घटाना मुनासिब नहीं समझा। उन्होंने इन समस्याओं का मुक़ाबिला करने के लिए पहले तो अपनी यह नीति बनाई कि उपज बढ़ाई जाय। कृषि की उपज और व्यावसायिक उपज इतनी ज़्यादा की जाय कि इटली को उन चीज़ों के लिए किसी देश का आश्रित न रहना पड़े। उन्होंने इस बात का अनुरोध किया कि इटली के लोग केवल इटली का ही बना हुआ माल ख़रीदें। उन्होंने उपज में सरलता पैदा करने के लिए हड़ताल इत्यादि करना क़ानून बनाकर वर्जित कर दिया। विदेशी माल पर सख़्त चुंगी लगा दी। लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली। इसी अवसर पर उन्होंने भी लीरा की क़ीमत ४० प्रतिशत कम कर दी। जो लीरा महायुद्ध के पहले एक पौंड में २५ मिलते थे, वे ही १०० मिलने लग गये।

भारतवर्ष की समस्यायें—भारत के सामने भी आज वही समस्यायें हैं।

(१) जो चीज़ें भारतवर्ष पैदा करता है उनका भाव बहुत मन्दा हो गया है।

(२) जो माल हम विदेशों में बेचते थे उनकी माँग बहुत कम हो गई है।

(३) हमारी विदेशी माल की ख़रीद ज़्यादा है। दिसावर की बिक्री कम है। और सोना तो द्रुत गति से ढोया चला जा रहा है।

(४) भारतीय आसामी संकट में हैं और क़र्ज़ उन पर बहुत बढ़ रहा है।

(५) भारतीय व्यवसाय कमज़ोर हो रहे हैं।

(६) बेकारी बहुत ज़्यादा है।

राष्ट्रीय पक्ष का यह कहना है कि जब यही समस्यायें इँग्लेंड, फ्रांस, बेलजियम, स्वीज़रलेंड, हालेंड, जापान, इटली अमरीका के सामने थीं तब उन्होंने अपने अपने सिक्के की क़ीमत घटाकर ही इन समस्याओं को हल किया। हम रुपये की क़ीमत क्यों न घटायें?

पं० गोविन्दवल्लभ पन्त का मत—असेम्बली में कांग्रेस-पक्ष के उपनेता पन्त जी ने इस विषय पर अपनी राय देते हुए कहा था—

"आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलेंड ने अपने अपने सिक्के की क़ीमत घटा दी है। मुसोलिनी किसी समय कहते थे कि इटली ने लीरा के लिए रक्त बहाया है। वे अन्तिम वक़्त तक लीरा की क़ीमत क़ायम रक्खेंगे। उन्हीं मुसोलिनी ने आज लीरा का दाम घटा दिया है। जब हिन्दुस्तान के चारों ओर इस प्रकार अग्नि जल रही है तब क्या हिन्दुस्तान को चुपचाप बैठना चाहिए? मेरा यह अनुरोध है कि रुपये का सम्बन्ध स्टर्लिंग से तोड़ दिया जाय और भारत की स्थिति देखकर उसकी नीति निर्धारित की जाय। इस देश के हितों को भेड़-बकरी की तरह योरप के हित के लिए कदापि बलिदान न करना चाहिए।" (हिन्दुस्तान टाइम्स १० आक्टोबर)

किन्तु इस विषय को हम अच्छी तरह नहीं समझ सकते जब तक हम यह न जान लें कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार कैसे चलता है, रुपया की क़ीमत कैसे निश्चित होती है और विनिमय की दर क्या है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार कैसे चलता है?—रुपया हिन्दुस्तान का क़ानूनी सिक्का है। हिन्दुस्तान भर में रुपये से हम अपनी आवश्यकताओं की चीज़ ख़रीद सकते हैं। लेकिन हिन्दुस्तान के बाहर अगर हम रुपया लेकर जायँ तो वह सिक्का नहीं चलेगा। ईरान का दिरम या ग्वालियर का पैसा हिन्दुस्तान के बाज़ार में नहीं चल सकता। हर एक देश का सिक्का अलग अलग है। इँग्लेंड में पौंड चलता है, फ्रांस में फ्रेंक, इटली में लीरा, रूस में रूबल, जर्मनी में मार्क और अमरीका में डालर।

अब प्रश्न यह उठता है कि जब हर एक देश का सिक्का जुदा जुदा है तब अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार कैसे चलता है। अँगरेज़ सेठिया अपना कपड़ा हिन्दुस्तानी मारवाड़ी के हाथ बेचकर उसकी क़ीमत पौंड के रूप में चाहेगा। मारवाड़ी उसे पौंड कहाँ से देगा, क्योंकि हिन्दुस्तान में तो पौंड का चलन ही नहीं है। अमरीकन टाइपरायटर की कम्पनियाँ हिन्दुस्तान में अपनी मशीनें बेचकर अगर रुपया ही पायें तो वे अमरीका में वह रुपया ले जाकर क्या करेंगी? वहाँ तो डालर चाहिए। लेकिन जब जब हम विदेशी माल मोल लेते हैं, तब दाम रुपये के रूप में ही देते हैं। क्या इस देश से रुपया विदेशों को लद जाता है और वहाँ गला दिया जाता है?

आयात और निर्यात की परिभाषा—अन्तर्राष्ट्रीय

ख़रीदते हैं उसे 'आयात' कहते हैं और जो माल विदेशों को भेजते हैं अर्थात् विदेशों में बेचते हैं वह 'निर्यात' कहलाता है। जैसे १९३०-३१ में भारतवर्ष ने २ अरब रुपये का माल विदेशों से ख़रीदा था। भारत का 'आयात'-व्यापार २ अरब का था। इसी वर्ष इस देश ने २ अरब २६ करोड़ का माल विदेशों के हाथ बेचा था। यह 'निर्यात' व्यापार हुआ।

अगर 'निर्यात' और 'आयात' के व्यापार की क़ीमत बराबर हुई तो लेन-देन बराबर हो जाता है। अगर इँग्लेंड से भारत ने पचास करोड़ का कपड़ा ख़रीदा और इँग्लेंड के हाथ पचास करोड़ का गेहूँ बेचा तो इसकी ज़रूरत नहीं रह जाती कि कोई रक़म इँग्लेंड से हिन्दुस्तान आये या हिन्दुस्तान से इँग्लेंड जाय। व्यापारी लोग एक-दूसरे पर हुण्डी-पुरज़ी करके लेखा-जोखा बराबर कर लेते हैं। लेकिन अगर इस देश ने माल बेचा ज़्यादा और ख़रीदा कम तो ज़्यादा ख़रीदनेवाले देश को यहाँ सोना भेजना पड़ेगा।

अप्रत्यक्ष आयात व निर्यात—एक बात और ध्यान देने की है। 'निर्यात' प्रत्यक्ष भी होता है और अप्रत्यक्ष भी। 'आयात' प्रत्यक्ष भी होता है और अप्रत्यक्ष भी। प्रत्यक्ष आयात तो वह है जो वास्तविक माल की सूरत में आता है, जैसे कपड़ा, मशीन, मोटर इत्यादि। अप्रत्यक्ष आयात वह है जो आता तो नहीं है, लेकिन उसकी क़ीमत देनी पड़ती है। प्रत्यक्ष निर्यात वह है, जिसे हम जहाज़ पर लादकर भेजते हैं, जैसे गेहूँ, चावल इत्यादि। अप्रत्यक्ष निर्यात में माल तो नहीं जाता है, लेकिन उसकी क़ीमत हमें मिल जाती है।

तो क्या यह पहेली है? अप्रत्यक्ष आयात और निर्यात कौन-सी चीज़ है जो आती तो नहीं है, लेकिन उसकी क़ीमत देनी पड़ती है और जाती नहीं, लेकिन दाम मिल जाते हैं।

अप्रत्यक्ष निर्यात वह नक़द रक़म है जो देश में पूँजी के लिए आती है और व्यवसाय में लगाई जाती है। जो नक़द रक़म विदेशों में लगी हुई पूँजी के मुनाफ़े या सूद में आती है वह अप्रत्यक्ष निर्यात है। जो रुपया मुसाफ़िर लोग किसी देश में जाकर ख़र्च कर आते हैं वह उस देश के निर्यात में समझा जाता है। अप्रत्यक्ष आयात वह रक़म है जिसे कोई देश अपने यहाँ लगी हुई विदेशी पूँजी की मद में सूद या मुनाफ़े के खाते में अदा करता है। जो पेंशनें विदेशी मुलाज़िमों को दी जाती हैं उनकी रक़म अप्रत्यक्ष आयात में ही समझी जाती है।

अप्रत्यक्ष आयात और निर्यात को अधिक स्पष्ट करने के लिए मैं भारतवर्ष का उदाहरण लेता हूँ। इस देश में रेलवे में तथा अन्य परदेशी कम्पनियों में करोड़ों रुपये लगे हुए हैं। रेलवे में जो मुनाफ़ा होता है, परदेशी पूँजीपतियों को प्रतिवर्ष दिया जाता है। यह रक़म अप्रत्यक्ष आयात कही जायगी, क्योंकि इस रक़म के बदले में हमारे पास कोई माल नहीं आता है, प्रतिवर्ष रक़म ही अदा करनी पड़ती है। जो अँगरेज़ मुलाज़िम भारत-सरकार में काम कर चुके हैं, प्रतिवर्ष अपनी पेंशनें लेते हैं। अनेक मुलाज़िम अपनी अपनी तनख़्वाहों से बचाकर प्रतिवर्ष करोड़ों रुपया इँग्लेंड भेजते हैं। यह सब अप्रत्यक्ष आयात समझा जाता है, क्योंकि इस रक़म के बदले में जो चीज़ हिन्दुस्तान को मिलती है वह अप्रत्यक्ष है।

इसी प्रकार अप्रत्यक्ष निर्यात को भी समझ लीजिए।

हिन्दुस्तान का अप्रत्यक्ष निर्यात बहुत कम है, क्योंकि भारतवर्ष की पूँजी विदेशों में कहीं नहीं लगी है और न हिन्दुस्तानी ही विदेशों में जाकर ऐसी ऊँची ऊँची जगहों पर नियुक्त हैं कि स्वदेश को धन भेजें। इस देश का अप्रत्यक्ष आयात बहुत ज़्यादा है। हिन्दुस्तान के ऊपर क़र्ज़ है, उसे पेंशनें देनी पड़ती हैं और यहाँ से करोड़ों रुपया अँगरेज़ मुलाज़िम बचाकर अपने देश को भेजते हैं। केवल क़र्ज़ की अदायगी की मद में ५० से ६० करोड़ रुपये तक की रक़म भारतवर्ष प्रतिवर्ष इँग्लिस्तान को भेजता है—

३१ मार्च १९३१ को भारत सरकार पर इँग्लिस्तान का निम्नलिखित क़र्ज़ था—

		लाख पौंड	करोड़ रुपया
३१ मार्च १९३१ तक पुराना क़र्ज़		२९२७	३९०·२६
महायुद्ध की सहायता की मद में		१६१·३	
रेलवे की अन्यूटी	,,	५१८·६	
इंडिया-बिल	,,	६०	
प्रावीडेंट-फ़ंड	,,	२६·६	
			करोड़
		७६६·५ = १०२·२	

प्रश्न यह था कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार कैसे चलता है? इसका नियम यह है कि पहले आयात (चाहे वह प्रत्यक्ष हो या अप्रत्यक्ष) की क़ीमत निर्यात के रूप में (चाहे वह प्रत्यक्ष हो या अप्रत्यक्ष) अदा की जाती है और अगर निर्यात से आयात ज़्यादा हुआ तो बैलेंस आफ़ ट्रेड अपने ख़िलाफ़ माना जाता है। अगर आयात कम है और निर्यात ज़्यादा तो बैलेंस आफ़ ट्रेड अनुकूल कहा जाता है।

सोने का प्रवाह—अगर ऊपर बयान की हुई बातें हम अच्छी तरह समझ गये हैं तो हमें स्पष्ट हो जायगा कि हिन्दुस्तान जो कुछ माल विलायतों से ख़रीदता है उसके दाम वह अपने देश में पैदा हुई चीज़ों के रूप में अदा करता है। अप्रत्यक्ष आयात के लिए भी उसे स्वदेश की चीज़ें भेजनी होती हैं, अर्थात् जो करोड़ों रुपया क़र्ज़ के सूद के रूप में या पेंशनों के रूप में जाता है वह सबका सब गेहूँ, चावल, जूट इत्यादि भारतीय उपज की सूरत में उसे देना होता है। अगर आयात इतना अधिक हो गया कि निर्यात की सूरत में अदा नहीं हो सका तो उसके बदले में सोना जाता है। आज-कल भारतवर्ष का यही हाल है। अरबों का सोना इस देश से विलायतों को चला गया और बराबर जा रहा है केवल इसलिए कि हम विदेशों में अपना निर्यात-व्यापार इतना नहीं बढ़ा पाते कि उससे अपने आयात की क़ीमत अदा कर सकें। उसकी पूर्ति के लिए हमें सोना भेजना पड़ता है।

इस प्रकार आयात, निर्यात और सोना ये तीनों मिलकर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का लेखा-जोखा बराबर रखते हैं। अगर निर्यात आयात से कम हो जाता है तो हमें सोना भेजना पड़ता है। अगर आयात कम हो जाता है तो सोना आता है।

एक बात और होती है। अगर हिन्दुस्तान में निर्यात के मुक़ाबिले में आयात ज़्यादा हुआ तो हिन्दुस्तान के ऊपर विदेशी व्यापारियों की हुंडी ज़्यादा होगी। ऐसी हालत में हिन्दुस्तान के सिक्के की क़ीमत अर्थात् रुपये की क़ीमत में बट्टा लगने लगेगा। रुपये की क़ीमत घट जायगी।

विनिमय की दर—गवर्नमेंट अगर स्वदेशी और विदेशी सिक्कों के पारस्परिक सम्बन्ध को स्वतन्त्र छोड़ दें तो आर्थिक शक्तियाँ उसका समतोल अपने ढंग से निश्चित कर लें। लेकिन दुनिया की सभी गवर्नमेंटें स्वदेशी और विदेशी सिक्के की सराफ़ी में हस्तक्षेप करती हैं और क़ानून-द्वारा यह निश्चित करती हैं कि उनका भाव क्या हो। जैसे भारत-सरकार ने सन् १९२७ में यह निश्चित कर दिया है कि एक रुपया का दाम एक शिलिंग छः पेंस हो। जिस भाव पर एक मुल्क का सिक्का दूसरे मुल्क के सिक्के के रूप में भुनता है, अर्थशास्त्रीय परिभाषा में उसे 'विनिमय की दर' कहते हैं।

विनिमय का व्यापार पर प्रभाव—विनिमय की दर का देश की व्यापारिक स्थिति पर काफ़ी प्रभाव पड़ता है। अगर आज भारत-सरकार विनिमय की दर बदल दे, अर्थात् रुपये की क़ीमत एक शिलिंग ६ पेंस न रखकर कम या ज़्यादा कर दे तो भारत के निर्यात और आयात व्यापार पर बहुत प्रभाव पड़ जाय। अगर आज रुपया एक शिलिंग ६ पेंस का न रह कर एक शिलिंग ८ पेंस का हो जाय तो हमारा निर्यात व्यापार बहुत ही कम हो जायगा। अँगरेज़ व्यापारी आज एक शिलिंग ६ पेंस देकर १० सेर गेहूँ भारत में ख़रीद सकता है। परन्तु विनिमय की दर के बदल जाने पर उसी १० सेर गेहूँ के लिए उसे १ शिलिंग ८ पेंस देने पड़ेंगे, अर्थात् २ पेंस ज़्यादा। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक है कि वह भारत के बाज़ार में न ख़रीदकर किसी दूसरे बाज़ार में ख़रीदेगा, जहाँ उसे सस्ता मिलेगा। परिणाम यह होगा कि गेहूँ का दिसावर में जाना बन्द हो जायगा। मारवाड़ी लोग गाँव और क़स्बे क़स्बे ख़रीद बन्द कर देंगे। गेहूँ का भाव गिर जायगा। १० सेर के बजाय वह ११ सेर का बिकने लगेगा। किसानों की आर्थिक दशा बदतर हो जायगी, क्योंकि वही मन भर गेहूँ जिसे बेचकर वे ४) पा सकते थे, केवल ३॥≡) का हो जायगा। इस तब्दीली का एक परिणाम और भी होगा। विलायती माल हिन्दुस्तान में सस्ता पड़ने लगेगा। आज जब विनिमय की दर १८ पेंस है (१ शिलिंग ६ पेंस), एक रुपया देकर हम पाँच गज़ लङ्काशायर की बनी हुई मारकीन ख़रीद लेते हैं, क्योंकि १८ पेंस में ५ गज़ मारकीन बेचने में ब्रिटिश व्यापारी का परता पड़ जाता है। अगर विनिमय की दर बदल गई और रुपया २० पेंस का हो गया तो ब्रिटिश व्यापारी २० पेंस में ५ गज़ २ गिरह मारकीन परते के साथ दे सकेगा,

५ गज़ २ गिरह मारकीन मिलने लगेगी। किसान ≡)। के बजाय ≡) गज़ मारकीन पा जायगा।

दूसरा उदाहरण लीजिए। अगर मुझे आज एक ब्रिटिश कार ख़रीदनी है। उसका दाम २४० पौंड है. १८ पेंस विनिमय की दर होने पर मुझे उस कार के लिए ३२००) देने होंगे। अगर विनिमय की दर २० पेंस हो जाय तो वही कार मुझे २८८०) में मिल जायगी। मुझे ३२०) की बचत हो जायगी। ऐसी हालत में, साफ़ ज़ाहिर है, इस देश में मोटर की बिक्री बढ़ जायगी।

विनिमय की दर से निर्यात और आयात व्यापार पर अंकुश रक्खा जा सकता है। अर्थ-शास्त्र के इस सिद्धान्त से फ़ायदा उठाकर स्वतन्त्र क़ौमें विनिमय की दर अपने अनुकूल निश्चित करके अपने देश का आर्थिक संकट मिटाने का प्रयत्न करती हैं।

इसी सिद्धान्त से प्रेरित होकर फ़्रांस, इटली, इँगलैंड आदि देशों ने अपने अपने सिक्कों की क़ीमत घटाई है।

राष्ट्रीय और सरकारी धारणा—राष्ट्रीय पक्ष की यह धारणा है कि अगर गवर्नमेंट अपनी ज़िद छोड़ दे और रुपये की क़ीमत १८ पेंस से घटा दे तो हिन्दुस्तान को बहुत फ़ायदा होगा।

किन्तु सर जेम्स ग्रिग का अपना मत जुदा है। वे समझते हैं कि रुपये का वर्तमान भाव क़ायम रखने में ही हिन्दुस्तान की भलाई है। ग्रेट ब्रिटेन ने १९३१ में गोल्ड-स्टैंडर्ड छोड़ा, रुपये का भाव काफ़ी घट गया। अमरीका ने चाँदी की क़ीमत बढ़ाने का यत्न किया। इससे भी रुपये का भाव घटा है। इत्यादि इत्यादि।

श्री अडरकर का मत—इलाहाबाद-विश्व-विद्यालय के एक अध्यापक महोदय ने भी राष्ट्रीय पक्ष का समर्थन किया है। वे लिखते हैं—

"यह बात अनिवार्य है कि योरपीय देशों का अपने सिक्कों की क़ीमत घटाने का यह निश्चय योरप के साथ भारत के निर्यात-व्यापार पर विशेष अंकुश का काम करेगा। इस समय भारत के वैदेशिक व्यापार का लेखा उसके बहुत ख़िलाफ़ है। अब उसकी हालत और भी बदतर हो जायगी। हिन्दुस्तान इस बात के लिए चिल्ला रहा था कि उसके सिक्के की क़ीमत और भी घटाई जाय, क्योंकि उसके प्रतिद्वन्द्वी उन बाज़ारों में जहाँ उसका माल बिकता था, अब भारतवर्ष को नीचा दिखाकर अपना माल बेच रहे हैं। भाव बढ़ने की कोई सम्भावना तो बहुत दिनों तक नहीं दिखाई देती और चीज़ों की क़ीमतें ऐसे पैमाने पर आकर रुक गई हैं कि उसे स्थिर ही कहना चाहिए। इस देश में चीज़ों के बनाने या पैदा करने का ख़र्चमात्र भी आज-कल क़ीमत से नहीं वसूल होता। योरपीय देशों का सिक्कों की क़ीमत घटाना स्थिति को निःसन्देह बदतर बना देता है। इससे भारतवर्ष में बेरोज़गारी बढ़ेगी। क़र्ज़ का भार ज़्यादा हो जायगा और अगर संसार के व्यापार में कुछ गरमी आई तो हिन्दुस्तान उससे फ़ायदा न उठा सकेगा।"

'लीडर' का मत—अँगरेज़ी दैनिक 'लीडर' का मत है कि "भारतीय पत्रकार और व्यापारी बरसों से इस बात के लिए आन्दोलन कर रहे हैं कि रुपये का भाव घटा दिया जाय, लेकिन गवर्नमेंट बिलकुल अटल रही है। गवर्नमेंट अपनी मुद्रा-नीति वैदेशिक पूँजी के हित की दृष्टि से निश्चित करती है, भारतीय लोकमत से नहीं। यही कारण है कि गवर्नमेंट 'विनिमय की दर' घटाने का बराबर विरोध करती रही है। निःसन्देह रुपये की क़ीमत में कमी कर देने का प्रभाव यह पड़ेगा कि विदेशों में हमारे माल की बिक्री बढ़ेगी, स्वदेशी बाज़ार में भी भाव में उन्नति होगी और विदेशी माल का आना कम हो जायगा। भारतीय व्यवसाय पर यह नीति संरक्षण का काम कर जायगी। लेकिन इसका प्रभाव उन लोगों पर भी पड़ेगा जो अपनी आमदनी की बचत ब्रिटेन भेजते हैं। जब आर्थिक मामलों में ब्रिटिश और भारतीय हितों में ज़ाहिरा संघर्ष हो, ब्रिटिश हित ही सफलमनोरथ होता है। ......मौजूदा नीति ब्रिटेन और हिन्दुस्तान दोनों के लिए हानिकर है।

श्री खेतान का मत—इस सम्बन्ध में इंडियन चेम्बर आफ़ कमर्स के फ़ेडरेशन के प्रमुख श्री खेतान ने अपना वक्तव्य प्रकाशित किया है। वे भी इसी सिद्धान्त का समर्थन करते हैं कि रुपये की क़ीमत घटाई जाय। इनका तो यह मत है कि अगर भारत-सरकार रुपये के सम्बन्ध में राष्ट्रीय पक्ष के इस प्रस्ताव को मान ले तो हिन्दुस्तान की अनेक समस्यायें हल हो सकती हैं।

श्री खेतान कहते हैं—

"सर जेम्स ग्रिग ने भारत-सरकार की ओर से यह घोषणा की है कि वे रुपये का मौजूदा भाव क़ायम रक्खेंगे।" सर जेम्स ग्रिग ने यह भी कहा है कि "इसके विपरीत कोई भी फ़ैसला हिन्दुस्तान के हितों के ख़िलाफ़ जायगा।" मुझे यह खेद के साथ कहना पड़ता है कि गवर्नमेंट की यह घोषणा किसी भी प्रकार भारतवर्ष के हित में नहीं कही जा सकती, क्योंकि भारतवर्ष का तो हित सबसे अधिक आज इसी बात में है कि रुपये का भाव घटा दिया जाय।—

पहली बात तो यह है कि हिन्दुस्तान से विदेशों को सोने का लगातार ढोया जाना केवल इसी लिए है कि हमारा निर्यात-व्यापार इतना नहीं है कि आयात माल की क़ीमत हम उससे पूरी करदें और सोने के भेजने की ज़रूरत न पड़े। अगर रुपये की (विनिमय) दर मुनासिब तौर से घटा दी जाय तो नतीजा यह होगा कि बेलेंस आफ़ ट्रेड हमारे पक्ष में हो जायगा और सोने का प्रवाह रुक सकेगा।

दूसरी बात यह है कि सभी मानते हैं कि अनाज का भाव बहुत मन्दा है। और इसकी वजह से किसानों को बहुत कष्ट है। अगर रुपये (विनिमय) की दर घटा दी जाय तो अनाज का भाव बढ़ जायगा और इस प्रकार इस देश के रहनेवालों की बहुत बड़ी संख्या को बहुत काफ़ी सहायता पहुँच सकेगी।

तीसरी बात यह है कि मध्यवर्ग की दुःख-जनक बेरोज़गारी जो इस समय ख़ूब बढ़ी हुई है, उसी समय दूर हो सकती है जब स्वदेशी व्यापार और व्यवसाय उन्नति करे। अगर रुपये (विनिमय) की दर घट जाय तो स्वदेशी व्यापार और व्यवसाय को बहुत सहायता मिल जायगी।

इसलिए अगर देश के हित की बात की जाती है तो देश-हित तो निष्पक्ष आलोचक की दृष्टि से रुपये के मौजूदा भाव को क़ायम रखने में कदापि नहीं है।

अगर गवर्नमेंट इस विषय पर अपनी नीति बदल दे तो वह देश के साथ बहुत उपकार करेगी।

भविष्य का स्वप्न

लेखक, श्रीयुत गिरीशचन्द्र पन्त

फिर जाग उठेंगे रोम रोम में
 ज्ञान-प्रेम के सोम-सिन्धु,
फिर बरस पड़ेंगे सृष्टि-हृदय में
 पूर्ण प्रेम के अमृत-बिन्दु।
रे, विश्व-प्रेम की ज्वलित ज्वाल में
 जल जायेंगे दैन्य ताप।
रे, गूँज उठेगा प्रेम प्रेम का,
 हृदय हृदय में अमर जाप।
अब तुरत भस्म होगा रे संचित,
 अहंकार का अन्धकार।
रे, बाट जोहती जगन्मात
 देगी प्राणों में अमृत ढार।

मानव रे, उठ, अब बीत चुकी
 कलि की सपनों सी दुःख-रात।
लख, भीतर, देख, उमड़ पड़ने
 शत शत नव जीवन के प्रभात!
ये नव प्रभात, लो, लिये आ रहे,
 नव नव सत्यों की दिव्य सृष्टि,
यह दिव्य सृष्टि भर लाई,
 आलोक प्रेम की अमर वृष्टि।
ओ अमर वृष्टि की मन्दाकिनि,
 भर भर प्राणों में महोल्लास।
मानवता के ये आर्द्र नेत्र,
 रो रो थककर बैठे उदास।

सरस्वती-तट की सभ्यता

लेखक, श्रीयुत पंडित अमृत वसंत

इस लेख के लेखक पंडित अमृत वसन्त पुरातत्त्व के मार्मिक विद्वान् हैं। उन्होंने अपने इस लेख में अपने विषय के विशिष्ट ज्ञान का ही नहीं परिचय दिया है, किन्तु नर्मदा-सभ्यता के सिद्धान्त का खण्डन करते हुए यह बात भले प्रकार सिद्ध कर दी है कि सरस्वती-तट की सभ्यता ही संसार की सबसे प्राचीन आर्य-सभ्यता है। उन्होंने अपने सिद्धान्त के समर्थन में जो विचारकोटि उपस्थित की है वह अकाट्य ही नहीं, हृदयग्राही और मनोरञ्जक भी है।

इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् श्री करन्दीकर ने एक विलक्षण ऐतिहासिक सिद्धान्त की सृष्टि की है। इस सिद्धान्त का नाम है 'नर्मदा-घाटी की सभ्यता'। श्रीयुत करन्दीकर के इस सिद्धान्त का आशय यह है कि भारत में प्रलय से भी पूर्व नर्मदा-घाटी में एक उच्च प्रकार की सभ्यता थी, और यही भारत की आदिम सभ्यता थी, जिसकी नींव राजा पृथु वैन्य ने डाली थी। वैवस्वत मनु के समय में (ई० पू० ४२०० में) सारे उत्तर-भारत में प्रलय आया, जिससे भारत की सारी सभ्यता नष्ट हो गई। पुराणों में कहा गया है कि नर्मदा-प्रदेश प्रलय में नहीं डूबा था, अतः इसकी सभ्यता उस प्रलय से भी पूर्व की होनी चाहिए। श्रीयुत करन्दीकर ने इस विषय पर बड़ोदा में सातवीं ओरियन्टल कान्फ़रेन्स के समक्ष एक भाषण किया था और नर्मदा-घाटी में अन्वेषण करवाने के लिए अपील की थी। इसके परिणाम-स्वरूप कान्फ़रेन्स ने 'नर्मदा-घाटी-अन्वेषण-मंडल' नामक एक मंडल की नियुक्ति करके यह कार्य उसको सौंप दिया। तब से नर्मदा-घाटी की सभ्यता का सिद्धान्त ऐतिहासिकों का बहुत कुछ ध्यान अपनी ओर खींच रहा है। उक्त मंडल आज दो वर्ष से नर्मदा-घाटी में अन्वेषण कर रहा है, परन्तु उसको इस सभ्यता तथा इसकी प्राचीनता की पुष्टि में एक भी महत्त्व-पूर्ण प्रमाण नहीं मिला और उसे निराश होना पड़ा। उसे न तो प्रलय के पूर्व की कोई वस्तु प्राप्त हुई, न उसके बाद की। श्रीयुत करन्दीकर का कहना है कि नर्मदा-सभ्यता वह सभ्यता थी जो सिन्धु-सभ्यता से भी पूर्व वहाँ प्रचलित थी तथा उसी सभ्यता में से भारतीय और मेसोपोटामिया की सुमेरु-सभ्यता का जन्म हुआ था। परन्तु सिन्धु-सभ्यता से पूर्व की क्या, उसके पश्चात् की भी कोई वस्तु अब तक नर्मदा-घाटी में नहीं मिली। इस अन्वेषण के विषय में पत्रों में जो समाचार और लेख प्रकाशित हुए हैं उनसे यही ज्ञात होता है कि वहाँ मौर्य-काल के पश्चात् की ही अधिकांश ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त हुई है। हाँ, कुछ प्राचीन स्थानों का अवश्य पता लगा है। परन्तु न तो वे सिन्धु-सभ्यता के समय के हैं और न उनके द्वारा उन सिद्धान्तों की पुष्टि ही होती है जिनको श्री करन्दीकर ने नर्मदा-सभ्यता की प्राचीनता तथा महत्त्व के समर्थन में पेश किया है। श्रीकरन्दीकर की इस असफलता का मूल कारण यह कि उन्होंने पुराणों में वर्णित घटनाओं को आँखें मूँदकर सत्य मान लिया है और फिर अपने सिद्धान्तों की सृष्टि कर डाली है। प्रस्तुत लेख में पुरातत्त्व के प्रमाणों-द्वारा इस बात का दिग्दर्शन कराया जायगा कि प्रलय के पूर्व भारत में एक और ही सभ्यता थी, जिसकी उत्पत्ति सरस्वती-नदी के तटवर्त्ती प्रदेश में हुई थी। वास्तव में यही भारत की प्रारम्भिक सभ्यता थी और सिन्धु-सभ्यता इसी का विकसित रूप थी। मैंने इस सभ्यता को 'सरस्वती-सभ्यता' का नाम दिया है। केवल भारत ही नहीं, वरन सारे संसार की सबसे प्राचीन सभ्यता यही 'सरस्वती-सभ्यता' थी।

पाषाण-युग

भूगर्भ-शास्त्र तथा पुरातत्त्व के अन्वेषणों-द्वारा ज्ञात हुआ है कि आदि में मानव-जाति जीवन-निर्वाह के कार्य में पत्थरों के टुकड़ों को हथियार-औज़ार के तौर पर व्यवहार करती थी। उस समय वह नर-वानर के रूप में थी। इसके पश्चात् शारीरिक विकास-द्वारा ज्यों-ज्यों वह अधिकाधिक मानवता की ओर अग्रसर होने लगी, त्यों-त्यों उसके इन पत्थरों के हथियार-औज़ारों में

सुधार होने लगा। नुकीले पत्थरों के ऐसे सुधरे हुए औज़ार 'यूलिथ' कहलाते हैं। इन यूलिथों के काल की मानव-सभ्यता को 'यूलिथ-सभ्यता' कहते हैं। ये यूलिथ भी अन्य पत्थरों-द्वारा छीलकर और अधिक उपयुक्त बनाये गये और इनके उपयोग के समय की सभ्यता 'चिलियन-सभ्यता' कहलाई। इसके पश्चात् और भी सुधार हुआ। उस समय की सभ्यता 'मुस्टेरियन-सभ्यता' कहलाई। इन हथियार-औज़ारों की सभ्यता के समय का मनुष्य अधिक अंशों में नर-वानर (एप) ही था और उसमें वास्तविक मनुष्यत्व का बीजारोपण नहीं हुआ था। मुस्टेरियन-सभ्यता के पश्चात् की 'रेनडियर-सभ्यता' आती है। इसके समय के हथियार-औज़ारों को देखने से पता चलता है कि इस समय मानव-जाति में मानवोचित बुद्धि का विकास होने लगा था। इसके पश्चात् की सभ्यतायें ही वास्तविक मानव-सभ्यतायें कहलाती हैं। इनमें से पहली सभ्यता नव-पाषाण-कालीन कही जाती है। इसके युग का मनुष्य अपने जैसा ही वास्तविक मनुष्य था। आज भी अफ़्रीका, प्रशान्त महासागर के द्वीप-पुंज तथा दक्षिण-अमरीका की जंगली जातियों में यही सभ्यता पाई जाती है। उनके शिकार तथा गृह-कार्य के हथियार-औज़ार तथा पात्र आदि पत्थरों के ही होते हैं। यूलिथ-सभ्यता से लेकर नव-पाषाण-कालीन सभ्यता तक के काल को विद्वान् लोग पाषाण-युग कहते हैं।

कृषि का आविष्कार तथा सभ्यता का प्रारम्भ

पाषाण-युग के पश्चात् मानव-जाति में धातु-युग का प्रादुर्भाव हुआ। धातु-युग का प्रारम्भ ताम्र-युग से होता है। नव-पाषाण-युग के अंत तक मनुष्य की बुद्धि बहुत-कुछ विकसित हो गई थी। इसी समय कृषि का आविष्कार हुआ। कश्मीर के पश्चिमी भाग और पश्चिमोत्तर-सीमा-प्रांत के चित्राल-प्रदेश में घास की कुछ इस प्रकार की जातियाँ प्राप्त हुई हैं जिनके क्रम-विकास-द्वारा ही गेहूँ और जौ के पौधे उत्पन्न हुए हैं। गत वर्ष एक जर्मन अन्वेषक-दल इस विषय में अनुसंधान कर गया है और उसने यही निष्कर्ष निकाला है कि भारत के इसी भूभाग में सर्व-प्रथम गेहूँ और जौ की उत्पत्ति हुई थी। अब तक मिस्र या मेसोपोटामिया गेहूँ का उत्पत्तिस्थान माने जाते थे। परन्तु इस बात का वहाँ कोई प्रमाण नहीं प्राप्त हुआ था। अब भारतवर्ष में इन धान्यों की उत्पत्ति का प्रत्यक्ष प्रमाण मिल गया है, अतः भारतवर्ष ही वह देश है जहाँ सबसे प्रथम मनुष्य-जाति ने खेती करना सीखा। यह एक सर्वमान्य सिद्धान्त है कि जिस देश में कृषि का प्रारम्भ हुआ, वहीं सभ्यता का भी जन्म हुआ है, अर्थात् सभ्यता की माता कृषि ही है।

सप्तसिन्धु

कृषि के जन्मस्थान पश्चिमोत्तर-सीमाप्रान्त में चित्राल, पश्चिमी-कश्मीर आदि प्रदेश अति प्राचीन काल से ही आर्य-जाति के निवासस्थान रहे हैं। आर्य-जाति ने ही सर्व-प्रथम कृषि का आविष्कार किया। आर्यों के प्राचीन-तम ग्रंथ ऋग्वेद में कृषि-जीवन का ही चित्र पाया जाता है। जिस भूमि में आर्यों-द्वारा कृषि का आविष्कार हुआ वह पार्वत्य प्रदेश होने के कारण इस कार्य के उपयुक्त नहीं थी; अतः आर्यों को दक्षिण में पंजाब की उर्वरा भूमि की ओर खिसकना पड़ा। यह प्रदेश कृषि-कार्य के लिए सर्वथा उपयुक्त था। इसमें से होकर सात नदियाँ बहती थीं। अतः इसका नाम 'सप्तसिन्धु' रक्खा गया। सारा पंजाब, राजपूताने का उत्तरी और पश्चिमी भाग और सिन्ध इस सप्तसिन्धु के अन्तर्गत थे। सप्तसिन्धु की नदियों में सरस्वती और सिन्धु बहुत बड़ी थीं। सरस्वती सिन्धु से भी बड़ी थी। यों तो आर्य लोग सारे सप्तसिन्धु में फैल गये थे, परन्तु उनकी सभ्यता का केन्द्र सरस्वती ही थी। इसका तटवर्ती प्रदेश उनके लिए बड़ा पवित्र था। सरस्वती उस समय आर्यावर्त्त को दो सीमाओं में विभक्त करती थी। इसके पश्चिम की ओर का भाग 'उदीच्य' तथा पूर्व की ओर का 'प्राच्य' कहलाता था। इसी कारण इन देशों के निवासी आर्य 'प्राच्य' और 'उदीच्य' कहलाते थे। उत्तर-भारत के ब्राह्मण आज भी 'प्राच्य' और 'उदीच्य' दो भागों में विभक्त हैं। कान्यकुब्ज, मैथिल आदि प्राच्य हैं तथा पंजाब, सिन्ध, सुराष्ट्र (काठिया-वाड़) और गुजरात के ब्राह्मण उदीच्य हैं। इन्हीं दो शाखाओं में से सारी ब्राह्मण उपजातियाँ उत्पन्न हुई हैं। उदीच्य-प्रदेश सरस्वती के पश्चिमीतट देवयोनिवृत्त मेसोपोटामिया तक फैला हुआ था और प्राच्य-प्रदेश की सीमा इसके पूर्वी-तट से बंगाल तक थी। आर्य सरस्वती को इतना पवित्र क्यों मानते थे? यह एक रहस्य-पूर्ण

विषय है। इस पर प्रकाश डालने के पूर्व सरस्वती कहाँ से होकर बहती थी, यह निश्चित कर लेना चाहिए।

सरस्वती के प्रवाह की खोज

ऋग्वेद-द्वारा सरस्वती की ठीक स्थिति का पता नहीं लगता। वह यमुना से पश्चिम की ओर बहनेवाली नदी बताई गई है। आज भी यमुना से पश्चिम की ओर सरस्वती नाम की एक छोटी-सी नदी बहती है, जो शिवालिक पर्वतमाला से निकल कर पटियाले के रेगिस्तान में जाकर सूख जाती है। कुरुक्षेत्र इसी सरस्वती के तट पर स्थित है।

'अवेस्ता' तथा एक ईरानी शिलालेख के अनुसार सिन्धु-नदी के पूर्व की ओर का प्रदेश 'हरह्वती' कहलाता था। इससे ज्ञात होता है कि सिन्धु से पूर्व की ओर सरस्वती बहती थी। मनु के अनुसार सिन्धु और सरस्वती के बीच का यह प्रदेश 'ब्रह्मावर्त्त' और 'देवयोनिवृत्त' कहलाता था। अमरकोष में सरस्वती को 'पश्चिमाब्धिगामिनी' कहा है। इससे ज्ञात होता है कि यह 'पश्चिमाब्धि' अर्थात् वर्तमान अरब-सागर से गिरती थी। उत्तर राजपूताने की दन्त-कथाओं तथा मध्यकाल की मुसलमानी तवारीख़ों-द्वारा ज्ञात होता है कि उत्तर-राजपूताने में मध्यकाल में एक 'हाकड़ा' नाम की नदी बहती थी, जिसका शुष्क प्रवाह-मार्ग अब तक दिखाई देता है। सातवीं सदी से अरबों के सिन्ध-आगमन के विवरण से पता चलता है कि उस समय सिन्धु-नदी के पूर्व में 'मिहिरान' नामक एक बहुत बड़ी नदी बहती थी। 'इम्पीरियल गेज़ेटियर आफ़ इंडिया' की पहली जिल्द के पृष्ठ ३० पर लिखा है कि "सिन्धु-नदी के पूर्व की ओर उन रेगिस्तानों में जो किसी समय उपजाऊ भूमि थे, एक प्राचीन नदी का शुष्क प्रवाह-मार्ग दृष्टिगोचर होता है जो 'रनकच्छ' में जाकर गिरती थी।" यही प्राचीन मिहिरान का प्रवाह-मार्ग था जो रनकच्छ में गिरती थी। वास्तव में हाकड़ा और मिहिरान का प्रवाह ही सरस्वती का प्रवाह था। कुरुक्षेत्र की सरस्वती पटियाले के ठीक उस रेगिस्तान में जाकर सूख जाती है जिसमें होकर हाकड़ा बहती थी। इससे जान पड़ता है कि सरस्वती कुरुक्षेत्र के पास से गुज़रती हुई, उत्तरी और पश्चिमी राजपूताना में बहती हुई, रनकच्छ में [illegible] गिरती थी। परन्तु रनकच्छ के स्थान में प्राचीन काल में समुद्र नहीं था। कच्छ की मिट्टी की परीक्षा-द्वारा विदित होता है कि वह समुद्र की बालू-द्वारा नहीं बनी है, बरन नदियों की मिट्टी-द्वारा बनी है, अतः सरस्वती को पश्चिमाब्धि अर्थात् अरब-सागर में गिरने के लिए और आगे जाना पड़ता होगा। रनकच्छ के दक्षिण में सुराष्ट्र अर्थात् काठियावाड़ है। इस प्रदेश के भूगर्भ-शास्त्र-सम्बन्धी अन्वेषण से पता लगा है कि आज से १००० वर्ष पूर्व सुराष्ट्र और गुजराज की सीमा के बीच से एक बड़ी नदी प्रवाहित होती थी जो रनकच्छ की ओर से आती हुई खम्भात की खाड़ी में गिरती थी। इसका प्रवाह सुराष्ट्र को गुजरात से अलग करता था और इस प्रकार सुराष्ट्र एक बड़ा द्वीप था। कहते हैं कि यह सिन्धु-नदी का प्रवाह था। इस नदी का शुष्क प्रवाह-मार्ग अब तक पाया जाता है। जब इस प्रदेश में किसी वर्ष अत्यधिक वर्षा होती है तब पानी इसके प्रवाह में बह चलता है और सुराष्ट्र फिर एक द्वीप बन जाता है। सन् १९२७ की भीषण वर्षा में दो मास तक यही दशा रही थी। रेल-मार्ग बन्द हो गया था और समुद्र-मार्ग-द्वारा आवागमन होता था। इस प्राचीन नदी का प्रवाह इतना प्रबल था कि इसके कारण सुराष्ट्र और गुजरात के बीच खम्भात से इस ओर एक झील बन गई थी, जो 'नल-सरोवर' कहलाती थी। यह सूखी हुई अवस्था में अब तक विद्यमान है और वर्षा के दिनों में भर जाती है। इसके आस-पास का प्रदेश 'नल-कांठा' कहलाता है। इस प्रकार सरस्वती रनकच्छ (जो उस समय उपजाऊ भू-प्रदेश था) को पार करती हुई गुजरात (गुर्जर-राष्ट्र) और सुराष्ट्र (सुजाति का राष्ट्र) के बीच से प्रवाहित होती हुई खम्भात की खाड़ी में, जो अरब-सागर का ही एक भाग है, मिल जाती थी। महाभारत, शल्य-पर्व, में कृष्ण के बड़े भाई बलदेव की प्रतिस्रोतसरस्वती-यात्रा का भौगोलिक विवरण पाया जाता है। बलदेव ने यह यात्रा सुराष्ट्र में प्रभास (यहाँ सोमनाथ का इतिहास-प्रसिद्ध मंदिर था) से प्रारम्भ की थी। इस यात्रा में जो जो स्थान मार्ग में आये थे उनका विवरण महाभारत में दिया हुआ है। बलदेव प्रभास से चलकर सुराष्ट्र, रनकच्छवाला भू-प्रदेश, पश्चिमी और उत्तरी राजपूताने को पार करते हुए ४२ दिन में कुरुक्षेत्र पहुँचे थे। इसके पश्चात् वे हिमालय पर स्थित सक्षप्रस्रवण

पर्वत पर पहुँचे, जहाँ सरस्वती का उद्गम था। इस प्रकार सरस्वती शिवालिक पर्वत-माला से निकल कर कुरुक्षेत्र के पास से बहती हुई उत्तरी-पश्चिमी राजपूताना, रनकच्छ और सुराष्ट्र को पार करती हुई खम्भात की खाड़ी में समुद्र से मिल जाती थी। यह स्थान 'सरस्वती-सागर-संगम' कहलाता था। पुराणों में प्रभास (सुराष्ट्र) के निकट सरस्वती-सागर-संगम का उल्लेख भी है। परन्तु वास्तव में यह स्थान यहाँ से कुछ हटकर खम्भात के निकट था।

सरस्वती के तट-प्रदेश में ताम्र-युग की उत्पत्ति

प्राचीन काल में राजपूताना में ताँबा प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता था। अब भी अनेक स्थानों में यहाँ ताँबा निकलता है। सरस्वती इस प्रदेश में से होकर बहती थी, अतः उसका तट-प्रदेश ताँबे का प्राप्ति-स्थान था। उत्तर से आकर जब आर्य लोग सप्त-सिन्धु में बसे तब सरस्वती का तट-प्रदेश ही उनकी सभ्यता का केन्द्र रहा। यहाँ कृषि और गृह-कार्य के उपयुक्त हथियार-औज़ार बनाने के लिए पत्थर के स्थान में उनको ताँबा प्राप्त हुआ। यह धातु नरम होती है, अतः सरलता के साथ इसमें से मनचाहे आकार की वस्तुएँ बनाई जा सकती हैं। इस प्रकार सरस्वती-तट पर सर्वप्रथम मनुष्य-जाति पत्थर-युग से ताम्र-युग में आई। 'चान्हूडेरो' तथा 'विजनोत' नामक स्थानों की खुदाई में ताम्र-युग की इस शुद्ध सभ्यता के अवशेष मिल चुके हैं। ये स्थान सरस्वती के शुष्क प्रवाह-मार्ग पर ही पाये गये हैं। यह ताम्र-सभ्यता सरस्वती के प्रवाह के दोनों ओर प्राच्य तथा उदीच्य प्रदेशों में फैल गई थी। संयुक्त-प्रान्त में बिठूर, फ़तेहगढ़, बिहार और उड़ीसा में राँची, पाचम्बा, हज़ारीबाग़, मध्य-प्रान्त में बालाघाट, गँगेरिया तथा बंगाल में सिलदा नामक स्थानों में इस ताम्र-सभ्यता की वस्तुएँ मिल चुकी हैं। दूसरी ओर सिन्धु, पश्चिमोत्तर-सीमाप्रान्त, बिलोचिस्तान, सीस्तान, फ़ारस, इलाम तथा मेसोपोटामिया में फ़ुरात के तट तक इस सभ्यता के चिह्न प्राप्त हुए हैं। मेसोपोटामिया तथा इलाम में यही सभ्यता 'प्रोटोइला-माइट-सभ्यता' के नाम से प्रसिद्ध हुई, जिसको संसार की सबसे प्राचीन सभ्यता कहते हैं। सुमेरु-जाति प्रोटो-इलामाइट-जाति के पश्चात् मेसोपोटामिया में आकर बसी थी। सुमेरु-सभ्यता के पश्चात मिस्र में सभ्यता का उदय हुआ था।

संसार की सर्वप्राचीन प्रोटो-इलामाइट-सभ्यता और प्रलय

इस प्रकार आर्यावर्त्त में सरस्वती के तट-प्रदेश पर मानव-जाति ने सर्वप्रथम पत्थर-युग से धातु-युग में पदार्पण किया। डाक्टर डी० टेरा नामक अमेरिकन विद्वान् के मतानुसार भी सिन्ध-प्रदेश ही वह भूमि है जो मनुष्य को पत्थर और धातु-युग से मिलाती है। मिस्र, मेसोपोटामिया, लघु-एशिया, क्रीट, मध्य-एशिया, ईरान आदि संसार के अति प्राचीन कहे जानेवाले देशों के प्राचीनतम नगरों की अन्तिम तह की खुदाई में पाषाण-युग की सभ्यता के अवशेषों पर काँसे की सभ्यता के ही अवशेष प्राप्त हुए हैं। पाषाण और काँसे की सभ्यता की मध्यवर्त्ती ताम्र-सभ्यता के चिह्न कहीं नहीं प्राप्त हुए। इससे विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला कि काँसे की सभ्यतावाली ये सुमेरु, खत्ती (हिटाइट), क्रीटन, मिस्री आदि जातियों की सभ्यतायें किसी अन्य अज्ञात देश में ताँबे की सभ्यता में से विकसित हुई थीं। इन सभ्यताओं की आदि-भूमि कौन-सा देश था, यह अब तक ज्ञात नहीं हुआ है। जहाँ पाषाण, ताम्र और काँसा इन तीनों प्रकार की सभ्यताओं के अवशेष एक-दूसरे पर क्रमबद्ध पाये जायँ, वहीं इन सभ्यताओं की उत्पत्ति की सम्भावना दिखाई दे सकती है। मेसोपोटामिया के उर, फरा, किश तथा इलाम (ईरान का दक्षिण-पश्चिमी भाग) के सुसा और तपा-मुस्यान आदि स्थानों की खुदाई में काँसे की सभ्यता के नीचे ताम्र-सभ्यता के अवशेष प्राप्त हुए हैं और इसके नीचे पाषाण-सभ्यता के भी चिह्न मिले हैं। मेसोपोटामिया में जहाँ-जहाँ इस प्रोटो-इलामाइट कही जानेवाली ताम्र-सभ्यता के अवशेष मिले हैं, उसके और सुमेरु-जाति की काँसे की सभ्यता के स्तरों के बीच में किसी बहुत बड़ी बाढ़ के पानी-द्वारा जमी हुई चिकनी मिट्टी का अनेक फ़ुट (३ से ८) मोटा स्तर प्राप्त हुआ है। योरपीय पुरातत्त्ववेत्ताओं का मत है कि यह मिट्टी का स्तर उस बड़ी बाढ़-द्वारा बना था जिसको प्राचीन ग्रन्थों में नूह का प्रलय कहा है। ताम्र-युग की प्रोटो-इलामाइट-सभ्यता के अवशेष इस प्रलय के स्तर के नीचे प्राप्त हुए हैं, अतः सिद्ध होता है कि प्रोटो-इलामाइट-सभ्यता का अस्तित्व प्रलय से भी पहले था। इस सभ्यता के अवशेषों के नीचे कुछ स्थानों में निम्न श्रेणी की पाषाण-

सभ्यता के चिह्न प्राप्त हुए हैं। यह पाषाण-सभ्यता अत्यन्त निम्न श्रेणी की थी और इसमें से प्रोटो-इलामाइट-सभ्यता के विकसित होने के कुछ प्रमाण नहीं मिले, अतः पुरातत्त्ववेत्ताओं का कथन है कि प्रोटो-इलामाइट लोग अपनी ताम्र-सभ्यता के साथ किसी अन्य देश से इलाम और मेसोपोटामिया में आकर बसे थे। यहाँ आकर इन्होंने यहाँ के मूल-निवासी पाषाण-सभ्यतावाली जाति को नष्ट कर दिया या भगा दिया और स्वयं यहाँ बस गये। ये प्रोटो-इलामाइट खेती करते थे। इनकी एक चित्र-लिपि के नमूने भी प्राप्त हुए हैं। ये कृषि तथा गृह-कार्य के लिए पशु पालते थे। ऊन के वस्त्र पहनते थे। ताँबे के हथियार तथा औज़ारों को उपयोग में लाते थे। ये लोग किस मूल-देश के निवासी थे, इसका अब तक पता नहीं लगा। यह जाति प्रलय की बाढ़ में नष्ट हो गई, क्योंकि प्रलय के स्तर के ऊपर इसकी सभ्यता के चिह्न नहीं प्राप्त हुए, अपितु सुमेरु-जाति की काँसे की सभ्यता के चिह्न प्राप्त हुए हैं। प्रलय की विनाशकारी घटना से इन लोगों की जो कुछ जन-संख्या बची वह पुनः अपने मूल-देश को वापस चली गई। इलाम में सुसा तथा तपा-मुस्यान तक प्रलय की बाढ़ नहीं पहुँच पाई थी, तथापि वहाँ इन लोगों की उजड़ी हुई बस्तियाँ पाई गई हैं। इससे यही सिद्ध हुआ है कि प्रलय के पश्चात् इस जाति के जो कुछ लोग बचे वे पुनः अपने देश को लौट गये।

सुमेरु-जाति

इलाम में केरखा नदी के तट पर सुसा-नगरी इन लोगों की सभ्यता का केन्द्र थी। सुसा तक प्रलय का जल नहीं पहुँच पाया था, तथापि ये लोग उसको छोड़कर चले गये और सुसा उजड़ गया। इस उजड़े नगर पर धूल जमनी शुरू हो गई और कालान्तर में यह धूल का स्तर पाँच फुट मोटा हो गया। इसके पश्चात् एक काँसे की सभ्यतावाली जाति कहीं से आई और सुसा तथा सारे मेसोपोटामिया में बस गई। यह जाति सुमेरु कहलाती थी। सुमेरु का अर्थ है 'सु' जाति। प्रोटो-इलामाइट तथा सुमेरु-सभ्यता के अवशेषों की परीक्षा करके डाक्टर फ्रेंकफ़ोर्ट, डी० मोर्गन, डाक्टर लेंग्डन आदि विद्वानों ने निर्णय किया है कि प्रोटो-इलामाइट-सभ्यता का ही विकसित रूप सुमेरु-सभ्यता थी। अर्थात् सुमेरु-सभ्यता प्रोटो-इलामाइट-सभ्यता से ही उत्पन्न हुई थी। प्रोटो-इलामाइट-जाति प्रलय के कारण स्वदेश वापस चली गई और वहाँ इसकी सभ्यता का विकास हुआ। इस विकसित सभ्यता का ही नाम सुमेरु-सभ्यता हुआ। सुमेर-जाति पुनः अपने पूर्वज प्रोटो-इलामाइट लोगों के निवासस्थान इलाम और मेसोपोटामिया में आकर बसी। प्रोटो-इलामाइट-जाति का स्वदेश कौन-सा था, प्रलय के पश्चात् वह कहाँ चली गई थी और कहाँ से पुनः सुमेरु-सभ्यता को लेकर मेसोपोटामिया में आई, संसार के प्राचीन इतिहास का यह एक महत्त्वपूर्ण उलझा हुआ प्रश्न है।

प्रोटो-इलामाइट तथा भारत की आमरी-सभ्यता

कुछ वर्ष पूर्व सिन्ध-प्रदेश में जो प्रागैतिहासिक स्थलों की खुदाइयाँ हुई हैं उनसे इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर मिल जाता है। इस प्रदेश में सरस्वती-नदी के तट-प्रदेश पर किस प्रकार पाषाण-सभ्यता में से ताम्र-सभ्यता की उत्पत्ति हुई, इस विषय में पहले लिखा जा चुका है। इस ताम्र-सभ्यता के अवशेष सिन्ध-प्रदेश तथा उस प्रदेश में जहाँ से होकर सरस्वती बहती थी, काफ़ी परिमाण में प्राप्त हो चुके हैं। सिन्ध-प्रदेश के आमरी नामक स्थान में इसकी नियमित खुदाई हुई है, अतः सरकारी पुरातत्त्व-विभाग के उस समय के अधिकारी सर जान मार्शल ने इस ताम्र-सभ्यता को आमरी-सभ्यता का नाम दिया है। आमरी-सभ्यता तथा प्रोटो-इलामाइट-सभ्यता की वस्तुएँ एक-दूसरे से बिलकुल मिलती-जुलती हैं। आमरी-सभ्यता के अवशेष-स्वरूप जो हथियार-औज़ार, मिट्टी के पात्र आदि वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं, ठीक वैसी ही वस्तुएँ प्रोटो-इलामाइट-सभ्यता की पाई गई हैं, अतः सिद्ध होता है कि आमरी तथा प्रोटो-इलामाइट एक ही प्रकार की सभ्यता थीं, जिसके सप्तसिन्धु में सरस्वती-तट पर उत्पन्न होने के विषय में लिखा जा चुका है। प्रोटो-इलामाइट लोग वास्तव में सप्तसिन्धु में निवास करनेवाले वे आर्य-कृषक थे जो बिलोचिस्तान और ईरान होते हुए इलाम तथा मेसोपोटामिया की उर्वरा भूमि में प्रलय के पूर्व जा बसे थे। मेसोपोटामिया की मुख्य नदी फ़ुरात आर्मीनिया के बर्फ़ीले पर्वतों में से निकलती है। ऐसी नदियों में अक्सर भयंकर बाढ़ें आया करती हैं। कुछ वर्ष पूर्व कश्मीर में बर्फ़ का एक बंध टूट जाने से सिन्धु-नदी में भयंकर बाढ़ आगई थी। ठीक ऐसी ही एक बड़ी बाढ़

फ़ुरात-नदी में आई, जिसके कारण इसके तट पर बसनेवाली प्रोटो-इलामाइट-जाति नष्ट हो गई। यही प्रलय की बाढ़ थी, जिसका वर्णन मेसोपोटामिया तथा भारत दोनों देशों के प्राचीन ग्रन्थों में पाया जाता है। सुमेरु-जाति की गिलगमेश की कथा में यह मूल प्रलय-कथा पाई जाती है और इसमें से ही यह बेबीलोनियन, हिटाइट (खत्ती) तथा हिब्रू साहित्य में पहुँची।

प्रलय के कारण प्रोटो-इलामाइट-जाति का भारत-आगमन

इलाम तथा ईरान के जिन ऊँचे प्रदेशों पर प्रोटो-इलामाइट-जाति का जो जन-समुदाय रहता था और जो ऊँचाई पर रहने के कारण प्रलय से बच गया था वह पुनः अपनी मातृभूमि आर्यावर्त्त को वापस चला गया। इस समय यहाँ वैवस्वत मनु का राज्य था और ऋषि गण शतपथ ब्राह्मण की रचना कर रहे थे। प्रलय के कारण मेसोपोटामिया में आर्य-जाति के जन-धन की भयंकर हानि हुई थी, अतः इस जातीय घटना को शतपथ ब्राह्मण में स्थान दिया गया। शतपथ ब्राह्मण में जो प्रलय-कथा पाई जाती है उसमें यह कहीं नहीं लिखा है कि प्रलय की यह घटना भारतवर्ष में घटित हुई थी। उसमें लिखा है कि प्रलय के समय मनु की नाव उत्तरी पर्वत की ओर चल दी। इस उत्तरी पर्वत को भारतीय विद्वानों ने बिना समझे-बूझे ही हिमालय-पर्वत मान लिया है। भारत के भूगर्भ-द्वारा यह बात सिद्ध नहीं होती है कि किसी समय सारे उत्तर-भारत पर जल-प्रलय आया था। यदि प्रलय वास्तव में भारतवर्ष की ही घटना थी तो मुहें-जो डेरो* और हड़प्पा की खुदाइयों में इसके चिह्न प्राप्त होने चाहिए। परन्तु इन खुदाइयों में कहीं भी प्रलय के चिह्न नहीं प्राप्त हुए हैं। परन्तु मेसोपोटामिया में इसके प्रत्यक्ष चिह्न पाये गये हैं और वे भी ठीक वहाँ के प्रथम राजवंश की वस्तुओं के नीचे के स्तर में। मेसोपोटामिया तथा भारत दोनों देशों के राजवंशों का प्रारम्भ प्रलय से ही होता है। अतः प्रलय के चिह्नों का मेसोपोटामिया में वहाँ के प्रथम राजवंश की वस्तुओं के नीचे मिलना स्वाभाविक ही है।

* हिन्दी में इसको मोहन जो दारो या दड़ो कहते हैं जो बिलकुल अशुद्ध है। इस स्थान का वास्तविक नाम 'मुहें-जो-डेरो' है, जिसका अर्थ सिन्धी-भाषा में मुर्दों का स्थान है।

प्रलय के विषय में श्रीजायसवाल जी का सिद्धान्त

मेसोपोटामिया में प्रलय के चिह्न मिलने के पश्चात् श्रीकाशीप्रसाद जी जायसवाल ने यह सिद्धान्त पेश किया है कि प्रलय की बाढ़ मेसोपोटामिया से भारत में राजपूताने तक फैली थी, क्योंकि प्रलय की कथा मेसोपोटामिया तथा भारत दोनों देशों में पाई जाती है। श्रीजायसवाल जी से मेरा प्रश्न है कि भारत के अतिरिक्त यह कथा पेसेफ़िक में स्थित पोलीनीशिया के द्वीप, मेक्सिको तथा पेरू में भी पाई जाती है तो क्या हम यह मान सकते हैं कि प्रलय मेसोपोटामिया से प्रारम्भ होकर भारत को डुबाता हुआ, पोलीनीशिया पर फैलता हुआ, मेक्सिको और पेरू तक जा पहुँचा था, क्योंकि इन देशों में भी यह कथा पाई जाती है। इतना ही नहीं, योरप के अनेक प्रदेशों में भी यह कथा प्रचलित है। प्रलय के विस्तार को मेसोपोटामिया से भारत तक मानना बिलकुल अयुक्त है। मेसोपोटामिया और राजपूताना के मध्य में ईरान और बिलोचिस्तान का सैकड़ों मील लम्बा प्रदेश है, जिसमें अनेक पर्वतमालायें भी हैं। क्या हम मान सकते हैं कि प्रलय मेसोपोटामिया से प्रारम्भ होकर इस सैकड़ों मील लम्बे प्रदेश को पार करता हुआ तथा वहाँ की पर्वत-मालाओं को डुबाता हुआ राजपूताने तक आ पहुँचा था? यदि यही बात थी तो वह राजपूताने से भी आगे क्यों नहीं बढ़ा? इन प्रदेशों के भूगर्भ-द्वारा किसी ऐसी घटना का होना बिलकुल प्रमाणित नहीं होता।

प्राचीन भारत की सीमा और मेसोपोटामिया

मैं इस बात का वर्णन कर चुका हूँ कि प्रलय की कथा भारत में किस प्रकार आई। शतपथ ब्राह्मण तथा सुमेरु-साहित्य की प्रलय-कथायें एक दूसरे के समान ही हैं। केवल नायक के नामों में फ़र्क़ है। शतपथ ब्राह्मण की कथा का नायक मनु है और सुमेरु-प्रलय-कथा का नायक ऊतानपिश्तिम है। मेसोपोटामिया में जिस प्रोटो-इलामाइट-जाति को इस घटना का सामना करना पड़ा था वह भारतीय वैदिक आर्य-जाति ही थी, यह मैं सिद्ध कर चुका हूँ। आज के भारत को हमको प्राचीन काल का भारत नहीं समझना चाहिए। उस समय लघु-एशिया से आसाम तक भारत की सीमा थी। ऋग्वेद में ईरान तक का भौगोलिक विवरण पाया जाता है। इससे सिद्ध होता है

कि उस समय गंगा की तलहटी से ईरान तक आर्यावर्त्त की सीमा थी। ज्यों-ज्यों आर्य-जाति का अधिकाधिक विस्तार होता गया, त्यों-त्यों आर्यावर्त्त की सीमा भी विस्तृत होने लगी और शतपथ ब्राह्मण के रचना-काल में वह मेसोपोटामिया तक जा पहुँची। इसके पश्चात् वह लघु-एशिया तक जा पहुँची थी। विष्णु-पुराण (तीसरा अध्याय) में भारत की पूर्व से पश्चिम की सीमा के विषय में लिखा है—

पूर्वे किराता यस्यान्ते पश्चिमे यवनाः स्थिताः ॥८॥

अर्थात् इसके पूर्वी भाग में किरात तथा पश्चिमी भाग में यवन बसे हुए हैं। किरात आसाम की प्राचीन जाति थी। आज भी वहाँ की याखा, जिमदार, खाम्बु आदि भाषायें किराती भाषायें कहलाती हैं। यवन यूनानियों का प्राचीन नाम है, यह प्रसिद्ध ही है। यूनानी 'ग्रीक' कहलाने के पूर्व 'यवन' कहलाते थे, इसी लिए लघु-एशिया के निकट जहाँ वे रहते थे वह भूभाग 'आयोनिया' कहलाता था। बाइबिल में भी इनका नाम 'जवन' लिखा हुआ है। जब भारत की सीमा पश्चिम में लघु-एशिया तक थी तब मेसोपोटामिया भी भारत के अन्तर्गत था। इस स्थिति में प्रलय की घटना को वर्तमान संकुचित भारत की सीमा में घसीटने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। मेसोपोटामिया तथा भारत के एक देश होने का प्रमाण यह भी है कि दोनों देशों के राजा भी एक ही थे। भारत का राजवंश जिस प्रकार प्रलय से प्रारम्भ होता है, उसी प्रकार सुमेरु (मेसोपोटामिया) का भी। केवल एक राजा के नाम का अन्तर पाया जाता है। भारत का प्रथम राजा मनु था और सुमेरु का इक्ष्वाकु था। इनके पश्चात् राम के तीन पीढ़ी पश्चात् तक के राजाओं के नाम क्रमपूर्वक दोनों देशों की वंशावलियों में एक-से पाये जाते हैं—

भारतीय वंशावली	सुमेरु-वंशावली
मनु	——
इक्ष्वाकु	उक्कुसि
विकुक्षि (भाई निमि)	वक्कुसि (भाई निमी)
पुरंजय	पुन पुन
अनेना	अनेनु

सुमेरु-वंशावली में इक्ष्वाकु को प्रथम राजा माने जाने का यह कारण है कि मनु के काल में मेसोपोटामिया में प्रलय की बाढ़ आने के कारण आर्य लोग भारत वापस आ गये थे। इसके पश्चात् ही शीघ्र प्रलय का भय जाते रहने पर इक्ष्वाकु के साथ वे पुनः मेसोपोटामिया पहुँचे, जहाँ उन्होंने सुमेरु-सभ्यता की स्थापना की। यह सुमेरु-आर्य-सभ्यता सुराष्ट्र (काठियावाड़) से इक्ष्वाकु के साथ समुद्र-मार्ग-द्वारा मेसोपोटामिया पहुँची थी।

उपसंहार

प्रलय के पूर्व और पश्चात् भारत में कौन-सी सभ्यता थी, इसका इस लेख में भली भाँति विवेचन हो चुका है। नर्मदा-सभ्यता न तो वास्तव में कोई सभ्यता थी, न प्रलय के पूर्व इसका अस्तित्व था। प्रलय उत्तर-भारत में घटित ही नहीं हुआ था। अतः नर्मदा-उपत्यका का प्रलय में न डूबना पौराणिक कपोल-कल्पना ही है। इन पुराणों के आधार पर ही श्री करन्दीकर ने अपनी 'नर्मदा-सभ्यता' के सिद्धान्त की सृष्टि कर डाली है। यदि उन्होंने पुरातत्त्व का आधार लिया होता तो कभी नर्मदा-सभ्यता के विषय में विद्वानों के सम्मुख वे उक्त निर्णय न रखते जिसके अनुसन्धान में अब उनको असफलता प्राप्त हो रही है। प्रलय के पूर्व वास्तव में भारत में वह सभ्यता थी, जिसका हमने इस लेख में 'सरस्वती-सभ्यता' नाम दिया है। सिन्धु-सभ्यता सरस्वती-सभ्यता का ही विकसित रूप थी और सुमेर, हिटाइट, क्रीटन, मिस्री आदि सभ्यतायें सिन्धु-सभ्यता की ही पुत्रियाँ थीं। इस महत्त्वपूर्ण विषय पर मैंने अभी हाल में 'मनुष्य और सभ्यता की जन्मभूमि भारत' नामक ग्रन्थ लिखा है, जिसमें संसार भर के पुरातत्त्व तथा प्राचीन साहित्य का मंथन करके अकाट्य युक्तियों द्वारा यह सिद्ध किया है कि मनुष्य का विकास भारत में ही हुआ था और यहीं उसकी सभ्यता की उत्पत्ति हुई थी और यहीं से वह संसार भर में फैली। प्रलय की घटना का काल ई० पू० ४२०० नहीं था, जैसा कि श्री करन्दीकर मानते हैं, किन्तु ई० पू० ३४७५ था।

रंगून से आस्ट्रेलिया

लेखक, श्रीयुत भगवानदीन दुबे

श्रीयुत दुबे जी उन थोड़े-से भारतीयों में हैं जिन्होंने संसार का ख़ूब भ्रमण किया है। अपने इस लेख में दुबे जी ने अपनी रंगून से आस्ट्रेलिया की हवाई यात्रा का सुन्दर वर्णन किया है, जो पाठकों के लिए रोचक होगा।

रंगून तथा भारतवर्ष से आस्ट्रेलिया जाने के लिए तीन रास्ते हैं। पहला कोलम्बो होकर, दूसरा सिंगापुर से जावा-बाली-द्वीप होते हुए और तीसरा वायुयान से। पहले और दूसरे समुद्री मार्ग हैं और जहाज़-कम्पनियाँ बम्बई और कोलम्बो से निहायत सस्ते किराये पर वापसी टिकट बेचती हैं। कोलम्बो से ब्रिसबेन तक का एक तरफ़ का पहले दर्जे का किराया ७००) है, पर २ महीने का वापसी टिकट ७२५) में मिलता है। बहुत-से सरकारी अफ़सर दो महीने की छुट्टी लेकर इस वापसी टिकट का लाभ उठाते हैं। यात्री-दर्जे का वापसी किराया ४००) है। आने-जाने में दो महीने लगते हैं।

हवाई जहाज़ का रंगून से ब्रिसबेन का १२००) एक तरफ़ का किराया है। वापसी टिकट २१४०) में मिलता है। मुझे इतना सावकाश नहीं था कि मैं समुद्री यात्रा कर सकता, इसलिए मैंने वायुयान-द्वारा ही आना-जाना तय किया। वायुयान रंगून से ब्रिसबेन ५ रोज़ में पहुँचा जाता है। रंगून से सिंगापुर तक का विवरण बहुत दफ़ा निकल चुका है। मैं सिंगापुर से आस्ट्रेलिया तक के अपने हवाई यात्रा के अनुभव इस लेख में लिखता हूँ।

सिंगापुर में वायुयान के यात्री वहाँ के विख्यात रैफ़िल्स होटल में ठहराये जाते हैं। रात का भोजन करके जब मैं कमरे में आया तब कन्टास एम्पायर एयरवेज़ का जिसके वायुयान आस्ट्रेलिया जाते हैं, नोटिस मेज़ पर रक्खा पाया। उसमें लिखा था कि मैं ४॥ बजे सुबह जगाया जाऊँगा। ४॥। बजे छोटा नाश्ता मिलेगा। ५ बजे मोटर आवेगा, जो मुझे एयरोड्रोम ले जायगी। ५॥। बजे वायुयान रवाना होगा। पाठक जानते होंगे कि 'इंपीरियल एयरवेज़' के वायुयान लन्दन से कराची तक आते हैं। कराची से सिंगापुर तक इंडियन एंड ट्रान्सकान्टीनेंटल एयरवेज़ के वायुयान चलते हैं। सिंगापुर से ब्रिसबेन तक 'कन्टास एम्पायर एयरवेज़' का दौरा रहता है। ये तीनों कम्पनियाँ अलग अलग हैं, पर 'इंपीरियल एयरवेज़' का सबमें हाथ है। इंपीरियल व इंडियन एयरवेज़ में मुसाफ़िरों को ३३ पौंड तक सामान मुफ़्त में ले जाने को मिलता ही है, पर यदि मुसाफ़िर का वज़न १७८ पौंड से कम है तो इतना सामान वह और मुफ़्त ले जा सकता है जितना उसका वज़न १७८ पौंड से कम हो। कन्टास में सिर्फ़ ३३ पौंड सामान मुफ़्त ले जाने की इजाज़त है, मुसाफ़िर का वज़न कितना भी हो।

इंडियन एयरवेज़ की अपेक्षा कन्टास के वायुयान छोटे हैं। आठ आदमियों की जगह है, पर डाक इतनी ज़्यादा रहती है कि तीन मुसाफ़िरों से ज़्यादा नहीं लिये जाते। छोटे होने पर भी इन वायुयानों की गति इंडियन एयरवेज़ की तुलना में अधिक है। आस्ट्रेलिया जानेवाले दो मुसाफ़िर और थे। एक मिस्टर बर्टराम जो ब्रिटिश एयर मिनिस्टरी के मुहकमे के थे और जो नई फ़्लाइंग बोट के सम्बन्ध में न्यूज़ीलेंड जा रहे थे। दूसरी मिसेज़ स्मिथ थीं, जिन्होंने लन्दन २२ अगस्त को छोड़ा था, पर

[आस्ट्रेलिया की भेड़ों का एक झुंड]
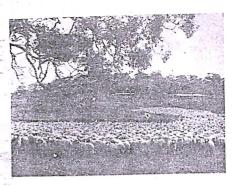
मार्गगत दुर्घटनाओं के कारण मिस्टर बर्टराम से जिन्होंने लन्दन २ सितम्बर को छोड़ा था, सिंगापुर में मिल गई थीं। फ़्लाइंग बोट के पानी में गिर जाने के कारण इनको ब्रिडसी अलेक्ज़ेंड्रिया जहाज़ से आना पड़ा। फिर बैहरीन में एयरोड्रोम न मिलने के कारण मरुस्थल में उतरना पड़ा, जहाँ से ३४ घंटे के बाद आर० ए० एफ़० के वायुयान-द्वारा अन्य यात्रियों के साथ बचाई गईं। कानपुर में इंजिन के बिगड़ जाने के कारण एक रोज़ पड़ी रहीं और रंगून में चार रोज़। इतनी विपत्ति झेलने पर भी ये ज़रा भी हतोत्साह नहीं हुई थीं। मिसेज़ स्मिथ और मिस्टर बर्टराम दोनों मिलनसार व हँसमुख थे, और हम लोग आपस में खूब हिल-मिल गये।

वायुयान यथासमय उड़ा। बहुसंख्यक विदेश-यात्राओं में मैंने अनेक हवाई सफ़र किये हैं। इसलिए आदी हो जाने के कारण नये चढ़वैये की तरह मुझे वायुयान के ज़मीन छोड़ने पर कोई धड़कन नहीं मालूम पड़ी। गोधूलि की बेला थी। सूरज की सिर्फ़ लालिमा नज़र आती थी। धीरे धीरे प्रकाश बढ़ने लगा। छोटे छोटे कई द्वीप-समुदाय नीले समुद्र में फैले हुए थे। बिखरे हुए बादलों की छाया सूरज के निकलने पर समुद्र में काले धब्बों की तरह दिखती थी। सात बजे कंट्रोल-रूम जहाँ बैठ कर वायुयान-वाहक वायुयान चलाते हैं, खुला। इस वायुयान में भी चार इंजिन थे और दो चलानेवाले। चलानेवालों में एक कैप्टन था और दूसरा फ़र्स्ट आफ़िसर। कन्टास के सभी चलानेवाले आस्ट्रेलियन हैं। फ़र्स्ट आफ़िसर ने डिब्बे से निकालकर सैंडविच व फल प्रत्येक मुसाफ़िर को दिये और खा लेने के बाद एक एक गिलास लेमोनेड।

वायुयान की उड़ान समुद्र के ऊपर से ही ज़्यादातर थी। कभी कभी जावा-द्वीप का किनारा दिख जाता था। १० बजे के क़रीब बेटेविया शहर का दर्शन हुआ। सवा दस बजे वहाँ के एयरोड्रोम में वायुयान उतरा। एयरोड्रोम के एक कमरे में नाश्ते का सामान लगा हुआ था। हम लोग खाने के लिए बैठ गये। उधर वायुयान में पेट्रोल और तेल भरा जाने लगा। खाना डच तरीक़े का था और उम्दा बना हुआ था। इतने में कप्तान को मौसिम की रिपोर्ट दी गई। पढ़कर उसने मुँह बिगाड़ा। मालूम हुआ कि 'हेड-विंड' है।

हवा व पानी की जाँच के लिए जगह जगह पर मेटेरिओलाजिकल दफ़्तर खुले हुए हैं। ज़मीन से १०-१२ हज़ार फ़ुट की उँचाई तक जिसके बीच में वायुयान उड़ा करते हैं, हवा एक-सी नहीं रहती। कभी कभी तो दस हज़ार फ़ुट के ऊपर हवा का रुख़ बिलकुल विपरीत रहता है। ज़मीन पर हवा पूर्व से पश्चिम है तो वहाँ पश्चिम से पूर्व हो सकती है। इसी तरह हवा के वेग में भी परिवर्तन होता रहता है। नीचे आँधी चलती हो तो ऊपर शान्त भाव हो सकता है। बहुधा मेटिरिओलाजिकल दफ़्तरवाले गुब्बारे उड़ाकर इसकी जाँच किया करते हैं। वायुयान-वाहक भी ख़बरें देकर मेटिरिओलाजिकल दफ़्तरों की
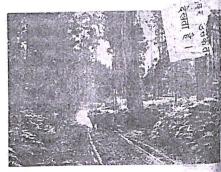
[आस्ट्रेलिया का एक जङ्गल का मार्ग]

सहायता करते रहते हैं। देश के भिन्न भिन्न स्थानों से भी बादल और हवा के सम्बन्ध में उस दफ़्तर में घड़ी घड़ी पर तार आया करते हैं। ख़बरों और स्वकीय जाँचों का सारांश निकालकर वायुविज्ञानविशारद अपनी राय क़ायम करता है और उसकी सब वायुयानवाहकों को सूचना देता है। वायुयानवाहक यथार्थ सूचना पाकर जिस उँचान में उन्हें मुनासिब समझ पड़ता है, अपना वायुयान चलाते हैं।

जो रिपोर्ट कप्तान को मिली उससे ज़ाहिर हुआ कि दो हज़ार फ़ुट के ऊपर हवा का वेग बढ़ता जाता था और १५,००० फ़ुट तक भी उससे बचने की गुंजाइश नहीं थी। कप्तान ने तय किया कि २,००० फ़ुट के नीचे से ही उड़ना होगा। ख़ैर ११ बजे हम लोग अपनी अपनी जगह पर बैठे। बेटेविया से सोइराबेया को ज़मीन के ऊपर से राह थी। केवल १,६०० फ़ुट की उँचाई से उड़ने की वजह से नीचे का दृश्य साफ़ साफ़ दिखाई देता था। झोकों से वायुयान करवटें लेता तथा ऊपर-नीचे हो जाता था। यान के कई फ़ुट एकाएक गिरने पर दिल धड़कने लगता था। वैसे ही उसके एकाएक ऊपर उड़ने पर हम चौंक पड़ते थे। ऐसे ही मौक़ों पर 'एयर-सिकनेस' मुसाफ़िरों को हो जाती है, पर ईश्वर की दया से एयर-सिकनेस और सी-सिकनेस से मैं बिलकुल बरी हूँ।

काँच की खिड़कियों से नीचे हरे-भरे खेत लहलहाते नज़र आते थे। बस्तियाँ दूर दूर पर साफ़-सुथरी थीं। कहीं कहीं उच्च ज़मींदारों के बँगले सुंदर फुलवारियों के बीच में नज़र पड़ते थे। आबपाशी के लिए बहुत-सी नहरें कटी थीं। गन्ने के अगणित खेत इधर-उधर अधकटे खड़े थे। मिट्टी का तेल भी जावा में निकलता है, इसलिए एक जगह तेल के कई कुएँ भी नज़र पड़े। सोइराबेया के नज़दीक चीनी के कारख़ाने भी कई दिखे। ढाई बजे वायुयान सोइराबेया के बंदरगाह में पहुँचा। नाश्ते का सामान तैयार था। कप्तान ने जल्दी करने को कहा, जिससे अँधेरा होने के पहले पड़ाव पर पहुँच जायँ। हेड-विंड के कारण वायुयान की गति में बाधा पड़ रही थी। जल्दी जल्दी खा-पीकर वायुयान पर सब कोई आये और वायुयान उड़ा।

हवा के झोंकों से बचने के लिए कप्तान ने समुद्री रास्ता पकड़ा। ज़मीन के बनिस्बत पानी पर हवा की समता

[एक भारी जङ्गली वृक्ष गिराया जा रहा है (आस्ट्रेलिया)]

ज़्यादा रहती है। बहुत शीघ्र ही इसका अनुभव होने लगा। वायुयान बहुत कुछ स्थिरता के साथ जा रहा था। जावा-द्वीप के बाद बाली-द्वीप आया। खेती यहाँ बहुत अच्छी नज़र आई। भूमि उपजाऊ जान पड़ी। इस द्वीप में हर तरह की खेती होती है। थोड़ी देर में फ़र्स्ट आफ़िसर ने आकर हम लोगों को एक बस्ती दिखाकर कहा कि पहले बाली के राजभवन यहाँ थे, जो अब 'विश्रामगृह' बना दिये गये हैं। साढ़े पाँच बजे वायुयान रामबंग नामक एयरोड्रोम में उतरा। रात को यहाँ रुकना था। क़रीब १२ घंटे में आज १२०० मील का सफ़र तय हुआ।

मोटर तैयार थे, जिन पर बिठाकर हम विश्रामगृह पहुँचाये गये। एयरोड्रोम से विश्रामगृह क़रीब ५ मील दूर था। मोटर से जाते हुए कई बस्तियाँ मिलीं, जिनमें वहाँ के लोगों के घर और रहन-सहन, वस्त्राभूषण इत्यादि का कुछ ज्ञान हो सका। पुरुष व स्त्रियाँ छोटे क़द के थे।

उत्तर-भारत के पहाड़ियों से मिलते थे। स्त्रियाँ नीचे सारंग व ऊपर एक कोटनुमा कमर तक का कुर्ता-सा पहने थीं। यह कुर्ता हृदय के ऊपर बटन से बँधा और नीचे पेट तक खुला था।

समुद्र-तट पर रामबंग एक छोटी-सी जगह है। कन्टास ने यहाँ एयरोड्रोम अपनी सुविधा के लिए बनाया है। कन्टास का पड़ाव बन जाने के कारण यहाँ के विश्राम-गृह में बहुत कुछ सुधार हो गया है। इसमें तीन कमरे थे। एक में मिसेज़ स्मिथ, दूसरे में मिस्टर बर्टमैन और मैं, तीसरे में कैप्टन व फ़र्स्ट आफ़िसर ने रात काटने को डेरा डाला।

देखने के लायक़ यहाँ कुछ नहीं था। इसलिए भोजन कर व थोड़ी देर तक गप-शप कर सो रहे। सुबह नाश्ता कर सवा पाँच बजे एयरोड्रोम पहुँचे और साढ़े पाँच बजे आकाश में मँड़राने लगे। इस उड़ान में कोईपाँग में ठहरना था, जो वहाँ से ६०० मील पड़ता था। समुद्र पर से ही ज़्यादातर उड़ान रही और हम लोग १० बजे के क़रीब कोईपाँग पहुँच गये। स्वागत के लिए एक वृद्ध सज्जन खड़े थे। मुझे देखते ही हिन्दुस्तानी में बोले और मेरे आश्चर्य-चकित होने पर कहा कि वे कश्मीरी हैं और वहाँ बीस साल से बसे हुए हैं। राजनैतिक शरणागत होने के कारण भारतवर्ष नहीं लौट सकते। अपना कारबार वहाँ अच्छा जमा लिया है और अपने दो लड़कों को भी देश से बुला लिया है। प्रमुख नागरिक होने की वजह से एयरोड्रोम के वे एक अवैतनिक अधिकारी हैं। मैं पहला ही भारतवासी था जो इतने दिनों के बाद वायुयान से सफ़र करता हुआ उन्हें मिला था, इसलिए वे बहुत ख़ुश हुए थे। मुझसे कहने लगे कि आप रुक जायँ और दूसरे वायुयान से आस्ट्रेलिया जायँ। यह तो असंभव था, पर मुझसे वादा ले लिया कि लौटती बार उनके यहाँ ज़रूर मुक़ाम करूँ। इसी तरह बातें करते नाश्ता किया और साढ़े दस बजे वायुयान पर चलने का आदेश मिला। कप्तान ने चारों ओर देखकर हमेशा की तरह वायुयान की परीक्षा की। एक पखने में न जाने कैसे एक फ़ुट तक पट्टी फटकर खुल गई थी। इसकी मरम्मत करना ज़रूरी थी। चिपकाने का मसाला निकाला गया और एक सज्जन ने फटी पट्टी की जगह चिपकाने के लिए अपना बड़ा-सा रूमाल दे दिया। सधन्यवाद स्वीकार कर पलास्तर से वह रूमाल फटी जगह के चारों ओर चिपका दिया गया और हम लोग अपनी जगहों में जा बैठे। यहाँ से पोर्ट डार्विन जाना था। बीच में ५०० मील में टिमूर समुद्र पड़ता था। कहीं ज़मीन नहीं मिलती है। कई वायुयान इस समुद्र में गिरकर ग़ायब हो गये हैं। लंडन-आस्ट्रेलिया हवाई यात्रा में यह जगह बड़ी ख़तरनाक समझी जाती है। हवाई यात्रा के भीरु व्यक्ति अपने वक्तव्य में टिमूर समुद्र का नाम सबसे आगे रक्खा करते हैं। इस समुद्र को पार करने के समय वायुयान-वाहकों को यह आदेश रहता है कि वे फ़ालतू पेट्रोल टैंक को जो हर वायुयान में आकस्मिक घटना के लिए लगा रहता है, अवश्य भर लिया करें। पर इस बार मौसम की रिपोर्ट अनुकूल थी, जिससे तथा बोझा के भी काफ़ी होने से कप्तान ने फ़ालतू पेट्रोल-टैंक को नहीं भरा। मगर उसे १२००० फ़ुट की ऊँचाई से उड़ना था।

कोईपाँग छोड़ने के बाद ही हम लोग ऊँचे उठने लगे और १४,००० फ़ुट की ऊँचाई की सतह पाकर आगे बढ़े। नीचे जल ही जल था, इसलिए किताब निकाली और पढ़ने में समय काटना उचित समझा। सर्दी बढ़ने लगी और शीघ्र ही ओवरकोट का सहारा लेना पड़ा। इंजिन का शोर भी ज़्यादा था, इसलिए कान में रुई भरनी पड़ी। तीन बजे आस्ट्रेलिया का किनारा नज़र आया। साढ़े तीन बजे पोर्ट डार्विन के 'एयरोड्रोम' में उतरे।

हम लोग नीचे उतरनेवाले थे कि हुक्म मिला कि जब तक डाक्टरी न हो जाय, नहीं उत[illegible] डाक्टर साहब वायुयान के भीतर आये। [illegible]टिफ़िकेट माँगा। टीका दो साल के अंदर लगा [illegible]हिए, नहीं तो यहाँ टीका लगाकर क्वैरेन्टाइन में भे[illegible] विदेश-यात्रा के सम्बन्ध में मुझे ऐसे क़ानूनों से हमेशा सतर्क रहना पड़ता है और मैंने अपना सर्टिफ़िकेट दिखला दिया। अन्य मुसाफ़िर भी सचेत थे और इस परीक्षा के बाद डाक्टर ने अपने पीछे पीछे सबको आने के लिए कहा। उसके दफ़्तर में पहुँचने पर सब मुसाफ़िरों से एक काग़ज़ पर दस्तख़त कराये गये कि अगर दो हफ़्ते के अन्दर आस्ट्रेलिया में किसी को भी कोई बीमारी हो तो वह स्वास्थ्य-विभाग को फ़ौरन सूचित करे, नहीं तो क़ानून-भंग के इल्ज़ाम में जुर्माना व सज़ा का ज़िम्मेदार होना पड़ेगा।

[एक आस्ट्रेलियन चरागाह]

अब चुंगीवालों की बारी आई। सारा सामान अच्छी तरह खोलकर देखा गया। ख़ैर, किसी के पास चुंगीवाली कोई वस्तु नहीं थी।

मुसाफ़िरों के पास आस्ट्रेलिया के सिक्के नहीं थे। इनकी सहूलियत के लिए वायुयान से एजेंट को तार कर दिया गया था और उसने बैंक के [illegible] से बंदोबस्त करके बैंक खोल रखने के लिए कह दिया था, जिससे हम लोगों के वहाँ जाने पर हुंडी भुनाकर आस्ट्रेलियन रुपया मिल सके। चुंगीघर से निकलकर रुपया भुनाकर विश्रामगृह में पहुँचे। पोर्ट डार्विन में केवल २,००० मनुष्य बसते हैं। दूर दूर पर बँगले नज़र आते थे। भूमि समतल थी। उसी पर से मोटर की लीक बन गई थी। पक्की सड़क का नामोनिशान नहीं था। विश्रामगृह लकड़ी का बना हुआ था और समुद्र-तट पर था। इसमें १२ आदमियों के ठहरने की जगह थी। बरामदा बहुत बड़ा था। गर्मी थी, इसलिए बरामदे में ही सोने का प्रबन्ध था। विश्रामगृह की संचालिका एक बूढ़ी मेम थी। एक नौकरानी भी थी। यहाँ का समय जावा के समय से २ घंटे आगे था। इसलिए घड़ियाँ २ घंटे बढ़ाई गईं। सकुशल आस्ट्रेलियन भूमि पर पैर रखने के तार करने थे, जो टेलीफ़ोन से तार आफ़िस में कर दिये गये। थोड़ी देर के बाद उनकी क़ीमत की ख़बर मिली, जो विश्रामगृह की मालकिन को चुका दी गई।

स्नानकर व थोड़ी देर टहलकर रात का भोजन किया। समुद्री हवा बह रही थी। ख़ूब नींद आई। सुबह हमेशा की तरह उठकर नाश्ता किया और एयरोड्रोम आये।

पोर्ट डार्विन से उड़ने पर विशाल जंगल ही जंगल नज़र आये। आबादी का कहीं नामोनिशान नहीं था। वृक्षाच्छादित समतल भूमि में जहाँ-तहाँ मरुभूमि के पीले पीले टुकड़े दृश्य की समानता को भंग करते थे। आठ बजे वायुयान डेलीवाटर्स नामक जगह पर आया। यहाँ सिर्फ़ एक घर एक अँगरेज़ का है, जो किसी तरह अपना गुज़र करते हैं। वायुयान का अड्डा बन जाने के कारण इन बेचारे के परिवार को जीविका का एक साधन मिल गया है। हवाई मुसाफ़िरों को नाश्ता देने का प्रबन्ध इन्हीं के ज़िम्मे रहता है। बूढ़ी मेम एक कमरे में मेज़ पर नाश्ते का सामान चुने हुए तैयार थीं। घर का मधु भी रक्खा था, जो बहुत ही सुस्वादु था। बातचीत करने पर मालूम हुआ कि वे लन्दन की रहनेवाली हैं, एक भद्र परिवार में उनका जन्म हुआ है, शिक्षा भी अच्छी पाई है, पर भाग्य की ठोकर से इस निर्जन प्रान्त में आ बसी हैं।
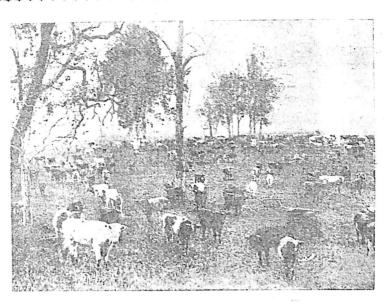
इसी बीच में एक दूसरे हवाई जहाज़ के आने की आवाज़ आई। पूछने पर मालूम हुआ कि वह वायुयान दक्षिण-पश्चिमीय आस्ट्रेलिया के पर्थ नामक शहर को हवाई डाक ढोता है। फ़र्स्ट आफ़िसर जल्दी से उठकर

डाक देने-लेने के लिए चला गया और पीछे से हम लोग भी पहुँच गये।

डाक का काम समाप्त होने पर हम लोग फिर उड़े। न्यूकैसिल वाटर्स और बूनेटडाउन्स में ज़रा ज़रा देर रुक-कर डाक दे-लेकर फ़ौरन उड़ते हुए केमोवील आये! भोजन का सामान यहाँ तैयार था। यहाँ कुछ घरों की एक बस्ती है। गाय, बैल, घोड़े, बकरी, भेड़ पालकर यहाँ गुज़र होता है। यहाँ हमने क़रीब ५० घोड़ों के झुण्ड को दो घुड़सवारों को ले जाते हुए देखा। यहाँ के घुड़सवार अपनी कला में निहायत दक्ष हैं। सौ सौ जङ्गली घोड़ों के गिरोह को दो घुड़सवार जहाँ चाहते हैं, ले जाते हैं। हाथ में चाबुक रहता है। घोड़े खुले रहते हैं।

जानवर यहाँ घास पर ही पलते हैं। सौ सौ या इससे कुछ कम ज़्यादा बीघों के लकड़ी के हातों में गाय, बैल, घोड़ों को घेर देते हैं। भेड़ बकरियों के लिए तार के हाते होते हैं। इन हातों में सब मवेशी स्वच्छन्द चरते हैं। बरसात बहुत कम होती है। नदी-नाले नहीं हैं। इधर-उधर पानी पड़ने पर गड़े भर जाते हैं, जो जानवरों को पानी पीने के काम आते हैं। बरसात के न होने से या कम होने से जैसे अपने यहाँ फ़सल का नुक़सान होता है, उसी तरह पानी न होने या गड़ों और चारा के सूख जाने की वजह से यहाँ जानवर लाखों की संख्या में मर जाते हैं।

केमोवील के बाद माउंट ईसा का पड़ाव था, यहाँ जस्ता और चाँदी की खानें हैं। उनमें काम करनेवाले २५०० मनुष्यों की अच्छी-सी बस्ती हो गई है। माउंट ईसा के बाद ग्लोन कुर्री और फिर लोनग्रीच। लोनग्रीच में उतरने के समय तक अँधेरा हो गया था। एयरोड्रोम के चारों तरफ़ बत्तियों के कारण जगमग हो रहा था। बड़ी सावधानी से कप्तान ने वायुयान उतारा। मोटर खड़े थे, जिनमें बिठाकर हम लोग होटल पहुँचाये गये। लाँगरीच में अच्छा पानी निकल आने से बड़ी सुविधा हो गई है। इस मुल्क में केवल बरसात की तो कमी है ही, किन्तु ज़मीन के अन्दर भी पानी नहीं है। बहुत तलाश करने पर कहीं पानी निकला भी तो वह प्रायः इतना ख़राब होता है कि मवेशियों को पिलाने के भी काम नहीं आता। पाइप गलाकर ज़मीन से पानी निकाला जाता है। कुएँ कहीं नहीं हैं। कदाचित् कहीं कुछ अच्छा पानी निकल आया तो हवा-चक्की लगा दी जाती है, जो पानी खींच कर हौज़ में भरा करती है, जहाँ से पाइप-द्वारा दूर दूर तक पानी ले जाया जाता है। जहाँ-तहाँ हवा में फरफराती हुई ऐसी हवा-चक्कियाँ वहाँ के अनन्त जङ्गली प्रदेशों में मानव-निवास का संकेत करती रहती हैं।

होटल में पहुँचते पहुँचते सात बज गया था। अपने कमरे में दाख़िल होने के बाद ही बेटर ने आकर कहा कि चलिए चाय तैयार है। आज १,३०० मील से ज़्यादा का सफ़र हुआ था। थकाई मिटाने के लिए मैं नहाने की फ़िक्र में था। मैंने कहा चलो, आता हूँ। नहा-धोकर कपड़े पहन नीचे उतरा। कुछ गर्मी थी। इरादा हुआ, दस मिनट बाहर टहल लूँ तो भोजन करने बैठूँ। जैसे ही फाटक पर आया, बेटर ने फिर बड़ी आतुरता से कहा, भोजन तैयार है, पहले भोजन कर लीजिए तब टहलने जाइए। दूसरे मुसाफ़िर भी आ गये और हम सब भोजन करने बैठे। मैंने कप्तान से पूछा कि ऐसी जल्दी का क्या कारण है। तब मालूम हुआ कि भोजनालय यहाँ साढ़े सात बजे बन्द हो जाता है। हम लोगों के कारण नौकरों की छुट्टी में देर हो रही है।

इस जगह मच्छड़ों का बड़ा ज़ोर था। दिन में मक्खियाँ भी बहुत ज़्यादा रहती हैं। सुबह फिर यथासमय एयरोड्रोम पर आये। आज सफ़र का अन्तिम दिन था। वायुयान ६ बजे सुबह उड़ा। आठ बजे चारल्यूली पहुँचे। नाश्ते का इन्तिज़ाम वहाँ था। मोटर से शहर में ले जाकर एक अच्छे होटल में भोजन कराया गया और फिर एयरोड्रोम पर पहुँचा दिया गया। अब की [illegible] शहर में वायुयान को ठहराना था।

मेरे भूतपूर्व साझीदार व परम [illegible]र नाइट अवकाश प्राप्तकर आस्ट्रेलिया में आ [illegible]को मैंने अपने आगमन की सूचना दे रक्खी थी। उन्होंने ख़बर दी कि ब्रिसबेन न जाकर मैं एक स्टेशन इसी तरफ़ रोमा में उतर जाऊँ, जहाँ वे मुझे मिलेंगे। ११ बजे वायुयान रोमा एयरोड्रोम पर उतरा। मिस्टर नाइट वहाँ खड़े थे। मिलकर एक दूसरे को बड़ी प्रसन्नता हुई। साथी मुसाफ़िरों और वायुयान-संचालकों से विदा ले मिस्टर नाइट के मोटर पर आया और बातचीत करते हुए रोमा शहर के एक होटल में पहुँचा। आज रोमा में ही ठहरना था। मिस्टर नाइट ने यहाँ ज़मीन लेकर 'फ़ार्म' खोल रक्खा

है। एक छोटी सी दूकान भी की है। निहायत हँसमुख व सज्जन होने की वजह से उनकी लगभग दो सौ कोस के इर्द-गिर्द सभी ज़मींदारों व अन्य व्यवसायियों में काफ़ी मेल-जोल व प्रतिष्ठा हो गई है।

[बटेवा (जावा) की एक सड़क]

लंच के पहले मिस्टर नाइट ने मुझे ले जाकर अपने क्लब में अपने मित्रों से मेरा परिचय कराया। भोजनोपरान्त का समय भी यहाँ-वहाँ जाने में बीता। रोमा में क़रीब ३००० मनुष्यों की आबादी है। सड़कें सीधी व स्वच्छ हैं। हर एक परिवार का अपना अलग अलग बँगला है। रात को भोजन के लिए रोमा के एक बड़े ज़मींदार के यहाँ न्योता था। उनका घर शहर से १० मील पर था। मालूम हुआ, उनके पास डेढ़ लाख एकड़ ज़मीन है, जिसमें भेड़-बकरी, घोड़े, गाय-बैल इत्यादि पाले जाते हैं। शाम को उनके घर जाने पर निहायत सुन्दर बँगला पाया। अँगरेज़ी सभ्यतोचित रीति-रस्म के साथ भोजन हुआ। इन ज़मींदार का नाम मिस्टर मैकगिग है। वे बड़े सुशिक्षित व अनुभवी जान पड़े। बातचीत ऊँचे दर्जे की थी। उन्होंने दूसरे दिन शीपडिपिंग (भेड़ों को नहलाना) देखने के लिए मुझे आमन्त्रित किया। मिस्टर नाइट का इशारा पाकर मैंने सधन्यवाद स्वीकार किया। होटल में वापस लौटने पर १२ बज गया था।

सुबह भोजन कर शीपडिपिंग देखते हुए डुलक्का नामक जगह पर जहाँ मिस्टर नाइट का फ़ार्म व कारोबार है, जाने के लिए मोटर पर बैठे। क्वीन्सलेंड-प्रान्त का सारा प्रदेश सरकारी जालीदार हातों से घिरा हुआ है, जहाँ-तहाँ फ़ार्मों में जाने के लिए फाटक बने हुए हैं। उन पर नोटिस टँगे हुए हैं, जिनमें लिखा है कि इनको बन्द कर दो। खुला छोड़ने पर १,५००) जुर्माना देना पड़ेगा। ये सरकारी हाते पगडंडी छोड़कर बने हुए हैं। यहाँ ख़रगोश व कंगारू बहुत हैं, जो यदि हाते न हों तो मवेशियों के चारे को चर लें। इसलिए सरकार ने बहुत पैसा ख़र्च कर सारे प्रदेश को जालीदार तार के हातों से घेर दिया है। इनके भीतर ज़मींदार अपनी ज़मीन में पचास से सौ एकड़ तक के तार के अथवा लकड़ी के हाते घेर लेते हैं, जिनमें भेड़, गाय, बैल, घोड़े इत्यादि स्वच्छंद चरा करते हैं। दूध देनेवाली गायों को जब तक वे दूध देती हैं, अलग रखते हैं। बाद को फिर उन्हें हातों में छोड़ देते हैं। गाय-बैल दो तरह के हैं। एक तो डेरी के काम आते हैं याने दूध के व्यवसाय के लिए पाले जाते हैं। दूसरे सिर्फ़ हट्टे-कट्टे कर क़साईख़ानों को बेच दिये जाते हैं। आस्ट्रेलिया से बहुत बड़े परिमाण में विदेशों को मांस भेजा जाता है।

मिस्टर मेकिगग की ज़मीन की सरहद पर पहुँच सरकारी हाते के अन्दर घुसे। वहाँ से फिर अनेक हातों के फाटक खोलते-बन्द करते हुए उनके बँगले पर आये। मालूम हुआ कि वे कोई चार मील पर शीपडिपिंग में लगे हुए हैं। उनकी श्रीमती राह बतलाने को साथ हो
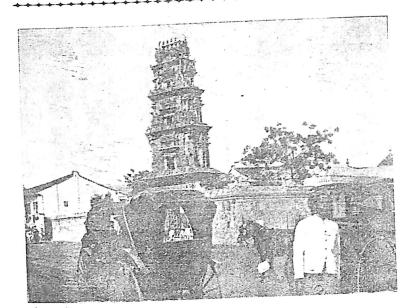
[सिङ्गापुर का एक हिन्दू मंदिर]

लीं। प्रायः सभी हातों में कहीं भेड़, कहीं गाय-बैल, कहीं घोड़े, कहीं बकरियाँ, अलग अलग चर रहे थे। जहाँ-तहाँ जंगल भी खड़ा था। पानी के दो-चार नालों के समान गड्ढे मिले। इनको 'क्रीक' कहते हैं। बरसात होने पर इनमें पानी भर जाता है। वही जानवरों को पिलाने के काम आता है। थोड़ी दूर जाने पर गेहूँ के खेत मिले। यहाँ खेत मशीनों से ही जोते, बोये और काटे जाते हैं। फ़सल असींच होती है। बरसात का सहारा ज़रूर रहता है। बीहड़ भूमि में गेहूँ के हरे हरे खेत लहलहा रहे थे। ऐसा भी एक भाग मिला, जहाँ सूखे पेड़ खड़े हुए थे। बतलाया गया कि यहाँ जंगल साफ़ किया जा रहा है। पेड़ों की वजह से घास नहीं बढ़ती है। जहाँ पेड़ कट गये कि घास ज़ोर पकड़ जाती है और मवेशी पालने के काम आने लगती है। जंगल साफ़ करने का मतलब भूमि को वृक्ष-रहित कर देना है। पेड़ों को जड़ से काटने व उनके ढोने में ज़्यादा ख़र्च पड़ने की वजह से वृक्षों की छाल उधेड़ने की रीति काम में लाई जाती है। वह रीति यह है कि पेड़ में ज़मीन से दो फ़ुट की ऊँचाई पर चारों तरफ़ से गोलाकार कुल्हाड़ी से एक एक घाव मार दिया जाता है, जिससे छिलका कट कर कुल्हाड़ी कुछ अन्दर घुस जाती है। इस तरह पेड़ को काटकर छोड़ देते हैं। बाद को वह पेड़ सूखकर आँधी-पानी का शिकार बन कर ख़ुद गिर जाता है। यदि सूखा खड़ा भी रहा तो घास को हानि नहीं पहुँचाता।

इस तरह देखते-भालते हम लोग उस जगह पहुँचे, जहाँ शीपडिपिंग हो रहा था। मिस्टर मेक्गिग जो कल शाम को निहायत सभ्य की पोशाक में बँगले में थे, आज वही 'अबरआल' डाले हुए हाथ में डंडा लिये गड़रियों की बोली बोलते हुए भेड़ों के गिरोह में दिखे। उनके लड़के भी अन्य मज़दूरों की तरह खुले बदन मदद में लगे हुए थे। कई बाड़ों में भेड़ें भरी हुई थीं। भेड़ों के ऊन के ऊपर एक प्रकार के कीड़े बैठ जाते हैं, जो अंडे-बच्चे देकर शीघ्र खाल में बैठकर उनकी [illegible]ान लेकर छोड़ते हैं। इसलिए समय समय पर [illegible] ज़हर के पानी में डुबाया जाता है, जिससे कीटा[illegible]श हो जाय। उस रोज़ उन्हें १० हज़ार भे[illegible]रह डुबाना था।

बाड़ों में से लकड़ी के बने हुए एक तंग रास्ते से एक एक भेड़ हँका ली जाती थी। रास्ता तिरछा था। भेड़ नीचे से ऊपर की तरफ़ ठेली जाती थी, जिससे नीचे क्या है, भेड़ को न दिखे। उच्च स्थान पर आने पर एक घूमती हुई पटरी पर वह ठेल दी जाती थी जिससे वह पीछे नहीं हट सकती थी। यह पटरी एक नाली में ख़तम होती थी, जो क़रीब तीन हाथ चौड़ी व दस हाथ लम्बी थी। गहराई

पाँच हाथ थी, जिसमें चार हाथ ज़हर का पानी भरा था। इस नाली में गिर कर भेड़ तैरती हुई उस पार निकल कर पक्के बाड़े में इकट्ठा होती थी। नाली के किनारे एक मज़दूर एक विशेष प्रकार की बनी लकड़ी लिये खड़ा था, जो भेड़ की गर्दन पर दबा देता था जिससे भेड़ का सिर भी ज़हरीले पानी में डूब जाय। यह काम बड़ी फ़ुर्ती से हो रहा था। मिस्टर मेक्गिग को लेकर कुल ६ आदमी इस काम में लगे थे, जो दिन भर में दस हज़ार भेड़ों को इस तरीक़े पर नहला कर छोड़ेंगे। पन्द्रह मिनट तक यह दृश्य देखकर मिस्टर मेक्गिग को धन्यवाद देकर हम लोगों ने डुलक्का की राह पकड़ी, जो वहाँ से क़रीब ७० मील दूर था।

[क्वीन्सलेंड में पशुओं का एक बाड़ा]

समुद्र के किनारे के प्रमुख शहरों में आने-जाने के लिए पक्की सड़कें हैं। आस्ट्रेलिया के भीतरी प्रदेश में भूमि समतल होने के कारण तथा नदी-नालों के अभाव में आमदरफ़्त के लिए पेड़ काटकर ज़मीन साफ़ कर दी गई है और वह 'ट्रेक' के नाम से मशहूर है। इन्हीं ट्रेकों पर से मोटर आते-जाते हैं। जानवरों को भी इन्हीं से एक जगह से दूसरी जगह ले जाते हैं। इन सबकी वजह से लीक-सी बन गई है। वर्षा की निहायत कमी के कारण ही यह मार्ग सदा काम देता रहता है। जहाँ एक इंच भी पानी पड़ा कि वहाँ की चिकनी और लसदार मिट्टी जब तक सूख नहीं जाती सारी आवाजाही बन्द रहती है। रोमा से डुलक्का के लिए ऐसी ही राह से मोटर पर जाना था। मारे धक्कों के बदन चूर चूर हो रहा था। आश्चर्य है कि मोटर ऐसे रास्तों पर किस तरह ठहरते हैं। मगर निहायत पुराने ढंग के मोटर आते-जाते देखकर उनके टिकाऊपन पर दङ्ग हो जाना पड़ता था। सभी मोटर रखनेवाले मोटर दुरुस्त करना जानते हैं, क्योंकि अगर कहीं मोटर बिगड़ गया तो मीलों किसी का सहारा मिलना कठिन है। रोमा से डुलक्का ७० मील दूर था, पर मोटर की गति १५ मील प्रतिघंटे से ज़्यादे की नहीं थी। औसत १० मील प्रतिघंटा समझिए। एक जगह दोपहर को जल-पान किया। चार बजे के लगभग काले बादलों का एक झुंड दिखलाई दिया। उस समय तय हुआ कि जैक्सन नामक जगह में चाय पी जाय। इतने में बूँदें पड़ने लगीं और पाव इंच के लगभग पानी भी बरसा। मिस्टर नाइट कहने लगे कि अब डुलक्का जो वहाँ से केवल दस मील रह गया था, जाना असम्भव है। मिट्टी गीली हो जाने से चिकनी पड़ गई होगी और फँस जाने का डर है। यह बातचीत हो रही थी कि नई उम्र का एक आदमी आया, जो मिस्टर नाइट का परिचित था। उसने कहा कि मैं भी डुलक्का जा रहा हूँ। यदि आप कहें तो आपका मोटर
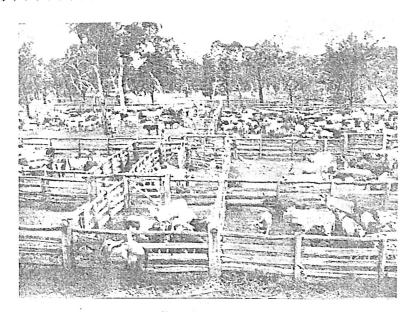
मैं सकुशल चला ले जाऊँगा। जैक्सन बीस घरों की बस्ती थी। होटल सामने था, जिसमें इतनी ही सुविधा थी कि छप्पर के नीचे रात कट सकती थी। विचार कर मिस्टर नाइट ने डुलक्का जाना तय किया और मोटर चलाने का काम उस आदमी को सौंपा। वह बेशक मोटर चलाने में प्रवीण था। गीली चिकनी मिट्टी में चक्के फ़िसल रहे थे। जान पड़ता था कि नाव पर हैं। मुझे तो इस तरह का पहले कभी अनुभव नहीं हुआ था, इसलिए पग पग पर यही जान पड़ता था कि अब उलटे तब उलटे। तीन-चार मील इस तरह कलेजे पर हाथ रक्खे जाने पर एक ऐसी जगह आई, जहाँ ढलुआ होने की वजह से पानी इकट्ठा हो गया था और ज़मीन इतनी गल गई थी कि मोटर के पिछले चक्के आधे धँस गये और फड़फड़ाने लगे। यह तय हुआ कि उतरकर मोटर ठेला जाय। इतने में एक दूसरा मोटर आता दिखा। भाग्यवश वह मिस्टर नाइट के मैनेजर का था, जिसमें दो आदमी और थे। उन लोगों ने उतरकर किसी तरह ठेल-ढाल कर मोटर उस बोगदे के बाहर निकाला और हमारे मोटर की मदद से उनकी गाड़ी भी पार हुई। डुलक्का पहुँचते पहुँचते सात बज गये।

मिस्टर नाइट का अपना घर टूवूम्बा में है, जो डुलक्का से १५० मील और ब्रिसबेन से ७० मील इस तरफ़ है। मिस्टर नाइट को कुछ आवश्यकीय काम होने की वजह से दो रोज़ डुलक्का में रुकना था। मैंने तय किया कि मैं रेल से दूसरे दिन टूवूम्बा चला जाऊँ, जहाँ मिस्टर नाइट दो दिन के बाद आ जायँगे, क्योंकि डुलक्का में सिर्फ़ दस घर की बस्ती थी और ठहरने का अच्छा प्रबन्ध नहीं था। सुबह सात बजे रेलगाड़ी जाती थी और मैं उस पर सवार हुआ। उसमें सिर्फ़ दो डिब्बे थे और वह हर स्टेशन पर ठहरती थी। आख़िरकार २ बजे टूवूम्बा पहुँचा।

मिस्टर नाइट ने अपनी पत्नी को मेरे आने की सूचना दे दी थी। वे टूवूम्बा-स्टेशन पर आकर मुझसे मिलीं और मुझे अपने घर पर ही ठहरने के लिए विवश किया। श्रीमती नाइट जो रंगून में आधे दर्जन नौकरों से घिरी रहती थीं, वहाँ घर का सारा कामकाज ख़ुद करती थीं। बँगला निहायत उम्दा था। बग़ीचा भी विविध प्रकार के फूलों से सुशोभित था। भाजी तथा फल के पेड़ भी लगा रक्खे थे। मुर्ग़-बतख़ें भी पली हुई थीं। मदद के लिए एक लड़की दो-चार घंटे को आ जाया करती थी। एक आदमी बग़ीचा गोड़ने के लिए हफ़्ते में एक रोज़ चार घंटे के लिए आता था। उनको इतना काम करते हुए देखकर मुझे दंग होना पड़ा।

पचमढ़ी वग़ैरह की तरह टूवूम्बा एक पहाड़ी पर बसा हुआ है, जो दो हज़ार फ़ुट ऊँची है। यहाँ अधिकतर अवकाशप्राप्त पुरुष बसे हुए हैं। बस्ती २५,००० मनुष्यों की हो गई है। टूवूम्बा पहाड़ी के नीचे को डार्लिङ्ग डाउन्स नाम की ज़मीन बड़ी उपजाऊ समझी जाती है। यहाँ छोटे छोटे बहुत-से फ़ार्म हैं। इन्हीं के कारण आबादी ज़्यादा है, जिसकी वजह से यहाँ दूकानों का अच्छा जमघट है। सिनेमा-थियेटर भी बहुत से हैं। आस्ट्रेलिया में पहले-पहल मुझे यही जगह शहर-सा लगी। शहर भर में सड़कें उम्दा बनी हुई हैं। सारा शहर बँगलों का बना हुआ है और हर एक बँगले में अपनी फुलवाड़ी है, जिसे विविध फूलों से सजाने में हर कोई दिलचस्पी रखता है। पहाड़ी के ऊपर से घाटियों का अनुपम दृश्य देखने में आता है।

आस्ट्रेलिया में जल की कमी का मैंने ऊपर ज़िक्र किया है। बरसात के पानी का पूरा लाभ उठाने के लिए सारे घर टीन से छाये हुए हैं। बारिश का पानी टीन पर से लुढ़ककर पनारों में आता है और पनारों का पानी बटोरने के लिए हर एक घर में बड़े बड़े हौज़ बने हुए हैं। टूवूम्बों में पानी का समुचित प्रबन्ध है, तो भी इस तरह के हौज़ प्रायः सब घरों में हैं और उनका पानी काम में लाया जाता है।

[अगले अङ्क में समाप्य

मृणालवती-प्रणय

लेखक, श्रीयुत सूर्यनारायण व्यास

[पात्र—

मुंज—मालव का प्रतापी राजा,

मृणालवती—तैलंगण के राजा तैलप की विधवा बहन,

वीरबाहु—मृणालवती का सैनिक,

समय—संध्याकाल, स्थल तैलंगण में राज-विहार के नीचे का कारागृह।]

ज (हाथ में बेड़ियों से जकड़ा हुआ इधर-उधर फिर रहा है।)—विधिगति विचित्र है। मालवा के राजसिंहासन पर बैठनेवाला और पृथ्वी का प्यारा राजा कहलानेवाला, आज एक सप्ताह से इस देश में पड़ा हुआ है! उस समय एक शब्द मुख से निकलते ही हज़ारों सेवक हाज़िर हो जाते थे और आज इस समय मेरे शब्द का प्रत्युत्तर ये जड़ दीवारें अट्टहास करके—जैसे मेरी यह दशा देखकर ख़ुश हो रही हों, देती हैं। दैव! तेरी विचित्र गति है! जिस हाथ में चमकती तलवार शोभा देती थी, उसी हाथ में आज लोह-शृंखला शोभा दे रही है। (मृणालवती प्रवेश करती है।) कौन? मृणालवती? इस समय मेरे निवास में?

मृणालवती—हाँ, मुंज! वीर तैलप की बहन, इस समय तुम्हारे सामने खड़ी है।

मुंज—आने का प्रयोजन?

मृणालवती—लोगों के मुख से सुनती थी कि मुंज बड़ा बुद्धिमान् है, किन्तु तुम्हारे प्रश्न से ज्ञात होता है कि लोगों का कहना झूठ था। भला कोई बिना प्रयोजन के आता है?

मुंज—अच्छा! हाँ, हाँ, तुमने मेरा मूल्य तो ठीक आँका। अब अपने आने के प्रयोजन का प्रकरण तो खोलो।

मृणालवती—तुम्हारा घमंड दूर करने के लिए ही मेरा इस समय यहाँ आना हुआ है।

मुंज—(आश्चर्य से) ओह! मेरा घमंड दूर करने को ही इस समय आप पधारी हैं? ख़ूब!

मृणालवती—हाँ, समर-क्षेत्र में जीतकर विजय की वरमाल धारण-करनेवाले अपने विजयी भाई की तरफ़ से तुम्हारा घमंड दूर करने के लिए आई हूँ।

मुंज—(क्रोध से) यह तुम क्या बक रही हो मृणालवती? छल-कपट से विजय प्राप्त करना ही क्या क्षत्रियों का लक्षण है? छल-कपट से मैं क़ैद में डाला गया हूँ। अपने भाई की ऐसी ही बहादुरी पर गर्व कर रही हो?

मृणालवती—जो कुछ समझो, मगर इस समय तो तुम मेरे क़ैदी हो न? इस समय तो तुम मेरे जीते हुए हो न?

मुंज—नहीं, नहीं। ऐसा समझती हो तो तुम्हारी भूल है। तुम्हारे पिशाच हृदय-भ्राता तैलप ने मुझे बन्दी नहीं बनाया। मुझे बन्दी बनानेवाला तो वीर भिल्लमदेव है। यह मालवपति अपने जीवन-काल में यह पहली बार ही भिल्लमदेव-द्वारा बन्दी किया गया है। धन्य है उसकी वीरता को और धन्य है उसके गर्म रक्त को और उसकी तेजस्विनी तलवार को!

मृणालवती—किन्तु मुंज, भिल्लम तो हमारा सरदार है। वह तो हमारा नमक खाता है, इससे उसकी हर एक विजय पर हमारा पूर्ण अधिकार है—हमारी सम्पूर्ण सत्ता है।

मुंज—किन्तु तुम्हारा नमक खाकर वह तुम्हारे विश्वासघाती भाई की तरह नीच नहीं हुआ। यह जानकर मैं सहज ही अपनी आत्मा को शान्ति देता हूँ कि मुंज क़ैद में डाला तो गया, किन्तु वीर के हाथ ही, क्षत्रियत्व को लजानेवाले कायर-डरपोक मनुष्य के हाथ से क़ैद में नहीं गया।

मृणालवती—यह तुम क्या कह रहे हो मुंज? मेरा भाई क्षत्रियत्व को लजानेवाला कायर है? तुम्हें पता है कि इस समय तुम किसके सामने बोल रहे हो?

मुंज (हँसते हुए)—हाँ, हाँ, मृणालवती! यह मत समझना कि मुंज कारागृह के दुःख से ज्ञान-बुद्धि खो बैठा है। मैं पूर्णतया ज्ञान-बुद्धि में ही हूँ। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि मुंज इस समय तैलंगण के कारागृह में तैलप की बहन से बात-चीत कर रहा है। सम्पूर्ण तैलंगण की नगरी को रसहीन बनानेवाली मृणालवती से बात कर रहा है।

मृणालवती (क्रोध से लाल-पीली होकर)—तैलंगण को रसहीन बनाने का आक्षेप करनेवाले तथा मेरे विजयी बन्धु का अपमान करनेवाले मुंज क़ैदी, सोच-समझकर ही ज़बान खोल, अंधा मत बन।

मुंज—मुंज जो कुछ कहता है, समझकर-विचारकर ही कहता है। अकेले तुम्हीं ने सम्पूर्ण नगरी को रसहीन बना दिया है। रस और रसिकता का क्या अर्थ है, इस बात का तुमने अपनी सत्ता के बल से, सत्ता के नशे में आकर बेचारी प्रजा को भान ही नहीं होने दिया है।

मृणालवती—इसमें मैंने क्या बुरा किया? रस, गान-तान तथा मौज-शौक़ पर मैंने प्रतिबन्ध लगाये हैं, इसमें क्या अनुचित हुआ? रस, गान तान तथा विलास-वैभव से लोग कमज़ोर हो जाते हैं, शौर्यहीन हो जाते हैं।

मुंज—शाबाश मृणालवती! शाबाश तुम्हें! तभी तो तुम्हारे भाई ने सोलह सोलह बार चढ़ाई करके हारने का कलंक सिर पर मढ़ा?

मृणालवती—दो पक्ष लड़ेंगे तो उसमें एक की विजय, दूसरे की हार होनी स्वाभाविक है। यह विश्व में चला आनेवाला एक अटल नियम है।

मुंज—अगर यही समझा होता तो आज आठ-आठ दिन से मुझे क़ैद में न सड़ाया होता, मुझे दुःखी न करते।

मृणालवती—क्या तुम्हें क़ैद में दुःख होता है? तब क[illegible] तुम्हें इस कारागृह में राज-वैभव चाहिए? वाह! वाह! मुंज यह सब आशा छोड़ देनी होगी।

मुंज—किसलिए छोड़ दूँ? मैं नहीं जानता था कि तुम्हारा भाई ऐसा क़साई है। और वह युद्ध में पकड़े गये अपने ही जैसे नरेश के साथ ऐसा बर्ताव करेगा।

मृणालवती—मेरी अशान्त आत्मा को अपने नीच शब्दों से अधिक अशान्त न करो।

मुंज—अहा! हा! हा!! हा!!!

मृणालवती—अगर अधिक बोला तो मुंज—तेरी जीभ खींच लूँगी। याद रख, कल तू कुत्ते की मौत से मारा जायगा। तेरे मांस के टुकड़ों से कौए-कुत्ते—गीधों का पेट भरेगा।

मुंज—(हँसता हुआ) वाह! डर तो बहुत बड़ा दिखाया। मुंज, मौत से कभी नहीं डरता। मौत को तो मुट्ठी में लिये फिरता है। युद्ध-क्षेत्र में तुम्हारे दस सैनिकों का एक ही तलवार के झटके से सिर उतारनेवाले मुंज को कहीं मृत्यु का भय हो सकता है? मुंज जैसे यशस्वी को तो मृत्यु ही शोभा देती है।

मृणालवती—यह सब ज़बानी जमा-ख़र्च है। जब, काल प्रत्यक्ष दिखाई देगा तब देखूँगी तेरी शूर-वीरता।

मुंज—अच्छा! तुम्हें मेरी शूर-वीरता देखनी है? यदि शूर-वीरता देखनी हो तो इन लौह-शृंखलाओं को खुलवा दो, और लाओ एक तलवार। फिर बुलाओ अपने भाई को या और जो कोई बलवान योद्धा हो तुम्हारे राज्य में! फिर देखो मेरा रण-स्वरूप! सिंह को दुःखी करने से या क़ैद में रखने से वह बकरा नहीं बन जाता, और न अपनी माता का दूध ही भूल जाता है, प्रचंड सूर्य के सामने धूल उड़ाने से कहीं उसका तेज घटता है?

मृणालवती—ओ अहंकार के मद में चूर नृपति! ईश्वर ने समझ-बूझ कर ही तुम्हारा गर्व चूर किया है।

मुंज—ऐसा मत समझो कि मुंज अभिमानी है। मुंज के हृदय में अभिमान का तिलमात्र स्थान नहीं है।

मृणालवती—(स्वगत) कैसी इस पुरुष में मोहकता है! इसकी बोलने की कैसी छटा है? मेरी आत्मा आज क्यों इसके प्रति आकर्षित हो रही है? इसके प्रति प्रेम [illegible] करना चाहती है? (कुछ क्षण बाद) कुछ नहीं—तो सहज मन की कमज़ोरी है, (प्रकट में—मुंज) मुझे पहले तुम्हें बोलना सिखलाना पड़ेगा।

मुंज—अच्छा! तुम मुझे बोलना सिखाओगी? बताओ—बताओ, तुम मुझे क्या बोलना सिखाओगी!

मृणालवती—महान्-नृपति, तैलप की बहन के साथ कैसे बोलना चाहिए, यह सिखाऊँगी।

मुंज—यह पृथ्वीवल्लभ ने सब सीखा है। जिस प्रकार समर-क्षेत्र में रिपु-दल का संहार करना सीखा है, उसी तरह बल्कि उससे अधिक सरस्वती का पक्का पुजारी है, अर्थात् बोलना भी अच्छी तरह जानता है!

मृणालवती—तो तुम इस तरह से न बोलते।

मुंज—तो क्या मुझे सिखाने की तुम्हारी आकांक्षा है? मेरा शिक्षक बनने की तुम्हारी मनोभावना है! किन्तु मृणालवती! पूर्ण ज्ञान सम्पादन किये बिना शिक्षक नहीं बना जाता। तुम्हें तो अभी बहुत कुछ सीखना बाक़ी है।

मृणालवती (स्वगत)—आज मेरा हृदय क्यों ज़ोर से चल रहा है? मेरा हृदय आज क्यों इसके प्रति पक्षपात कर रहा है? (प्रकट) नहीं महोदय! मुझे सीखने को कुछ बाक़ी नहीं है।

मुंज—देखो, तुम्हें अभी प्रियतम के मनाने की शिक्षा लेना बाक़ी है। राग-रस में मस्त होकर यौवन का रस पीना बाक़ी है। मधुर जीवन का आनन्द लेना बाक़ी है।

मृणालवती—यह तू क्या बक रहा है?

मुंज—मैं सच ही बक रहा हूँ। मैंने क्या झूठ कहा है? देखो, सुनो अभी। तुम्हें नाच-गान-तान सीखना बाक़ी है। नयन-कटाक्ष से वीरों को आहत करना बाक़ी है। यह सब अभी तुम्हें सीखना है। इसी से ईश्वर ने मुझे तुम्हारे कारागृह में भेजा है।

मृणालवती—(स्वगत) अहा! इतनी विह्वलता शरीर में क्यों मालूम होती है? इसके एक एक शब्द आज मुझे इसकी तरफ़ आकर्षित कर रहे हैं। ज़िन्दगी में किसी समय जितना मेरा मन प्रफुल्लित नहीं हुआ था, उतना आज इसके शब्दों के कानों में पड़ते ही क्यों प्रफुल्लित हो उठा है? अरे, रसिकता के पुजारी मुंज! रसिकता और यौवन का मज़ा ही क्या जीवन का सच्चा लाभ है? अरे, यह क्या? ऐसे नीच विचार मेरे मन में? छिः साध्वी के हृदय में ऐसे विकारों को स्थान मिला? (मुंज से प्रकट में)—साध्वी मृणालवती के सामने इस तरह बोलने में तेरी जीभ क्यों नहीं कट जाती?

मुंज—वाह! मृणालवती! साध्वी कहलाना चाहती हो? साध्वी होना तुम्हारे भाग्य में लिखा ही कहाँ है?

मृणालवती—मैं साध्वी हूँ, और साध्वी ही रहूँगी!

मुंज—विधि के लेख को मिटाने की किसी में शक्ति नहीं! किन्तु कहता हूँ, तुम्हारे भाग्य में साध्वी होने का लिखा पृष्ठ उलट गया है, पुछ गया है।

मृणालवती—एक क़ैदी के साथ अधिक विवेचन करना ठीक नहीं। चल मेरे पैर प्रक्षालन करने को तैयार हो। (अपने नौकर से)—वीरबाहु! यहाँ आ, (कारा-गृह के द्वार पर खड़ा हुआ वीरबाहु आता है।) जा, जल से भरी हुई झारी ले आ।

वीरबाहु—लाता हूँ सरकार! (जाता है)

मुंज—क्या तुम मुझसे अपने पैर प्रक्षालन कराओगी? अहा, तुम्हें चरण धुलवाना है? (वीरबाहु झारी लेकर आता है)

मृणालवती—(वीरबाहु के हाथ से झारी लेकर) चल मुंज! ले यह झारी, और कर मेरे पैर प्रक्षालन। (वीरबाहु जाता है)

मुंज—पहले इन लौह-शृङ्खलाओं को खुलवा दो, जिससे ठीक तौर से पैर धो सकूँ।

मृणालवती—वीरबाहु! यहाँ आ, (वीरबाहु आता है।) चल, मुंज के हाथ से बेड़ी निकाल दे। (वीरबाहु बेड़ी खोल देता है)

मुंज—अब लाओ, सुन्दरी, गजगामिनी! (मुंज मृणालवती के हाथ से झारी लेकर दूर फेंक देता है) सुन्दरी! देखो पाद-प्रक्षालन तो इस तरह होता है। लाओ, अपना हाथ (एक हाथ पकड़कर आलिंगन करने का प्रयत्न करता है। मृणालवती दूर हट जाती है, स्तब्ध होकर थोड़ी देर दूर खड़ी रहती है।)

मृणालवती—दुष्ट! तूने मेरे पवित्र हाथ को छूकर अपवित्र कर दिया। वीरबाहु! जा लोहे की जलती हुई एक छड़ तो ला। (वीरबाहु जाता है।)

मुंज—लौह की जलती हुई छड़ से मुझे क्या करोगी?

मृणालवती—तेरे हाथों में लगाऊँगी—तुझे जलाऊँगी। तभी मेरी आत्मा को शान्ति होगी। और तुझे मालूम

होगा कि पवित्र हाथों को इस तरह स्पर्श करने से क्या भोगना पड़ता है।

मुंज—ओ दण्ड देनेवाली सुन्दरी! जलती हुई लोहे की छड़ से मुझे दागना है? यदि मुझे जलाने से ही तुम्हारी आत्मा को शान्ति होती हो तो मैं वह दुःख सहने के लिए इसी क्षण तैयार हूँ।

मृणालवती—तू तैयार हो या न हो, पर मैं तुझे कब छोड़ सकती हूँ?

मुंज—किन्तु मेरे दाग देखते ही तुम्हारे हृदय में तीव्र वेदना न हो, इसका ख़याल रखना। मेरा दाग तुम्हारे कोमल हृदय में प्रवेश न कर सके, इसकी सावधानी रखना। तुम्हारे हृदय में होलिका प्रज्वलित न हो, इसका ध्यान रखना। (वीरबाहु हाथ में तप्त लौह का छड़ लेकर आता है।) ला, यहाँ ला. मैं स्वयम् इसे दाग दूँगी तू जा। (वीरबाहु जाता है।)

मुंज—लाओ, लाओ मोहमूर्त्ति! अपने कोमल हाथ को इतना कष्ट मत दो। मुझे दागते समय कहीं तुम्हारा कुसुम-सम कोमल कर कुम्हला न जाय! इसलिए यह रक्तवर्ण लोह मेरे हाथ में (मुंज मृणालवती के हाथ से उसे लेकर अपने हाथ को दाग देता है। हाथ का चर्म जलने से उसकी गन्ध से सारा वातावरण भर जाता है।) क्यों अब तो तुम्हारे हृदय में शान्ति का साम्राज्य स्थापित हुआ न?

मृणालवती—(स्वगत) आह! कैसी इसकी हिम्मत है? जलने पर भी इसके मुख पर कष्ट की ज़रा भी छाया दृष्टिगोचर नहीं होती। सच्चे वीर ऐसे ही होते हैं! भय और मौत क्या, यह तो ये जानते ही नहीं। ऐसा ही निडर राज-सिंहासन पर शोभित होता है। ऐसे सिंह ही सार्वभौम शक्ति स्थापित करने में शक्तिमान् होते हैं। कायर-डरपोक मनुष्य कभी राजा बनने लायक़ नहीं।

मुंज—अभी और कुछ बाक़ी रहा जाता है क्या? अगर बाक़ी रहा जाता हो तो स्मरण-शक्ति को ताज़ा करके ढूँढ़ निकालो।

मृणालवती—(स्वगत) कैसे कोमल हाथ हैं इसके! आँखों में कैसा अद्भुत जादू भरा है! चंद्र-सा शोभित मुखारविन्द है। पृथ्वी का चन्द्र चकोरी के बिना रह नहीं सकता और चकोरी चन्द्र के बिना क्षण भर भी नहीं जी सकती। मुंज मेरा चन्द्र है और मैं उसकी चकोरी। (प्रकट में) मुंज! वीर मुंज तुम्हें जीतने आई थी, किन्तु तुम अजेय रहे। मैं हार गई। आज मुझमें विचित्र परिवर्तन हुआ है।

मुंज—आओ! आओ सुन्दरी! ज़रा नज़दीक आओ!

मृणालवती—आज से आप मेरे प्रियतम और मैं आपकी प्रियतमा। प्रियतम! आज से मैं मालव-नगरी की महारानी हुई हूँ और आपकी पटरानी। प्यारे! मेरा हृदय तुम्हारे मिलन के लिए आतुर हो रहा था।

मुंज—आओ प्रिये! तब तो तुम आज से मालव-नरेश की महारानी हुईं। जगत् देखेगा और कहेगा कि तैलप की बहन मालवा की महारानी है।

(पर्दा गिरता है)

['पृथ्वीवल्लभ' के आधार पर]

झगड़ा

लेखक, श्रीयुत बिसमिल

बलन्दी का बखेड़ा है, न कुछ पस्ती का झगड़ा [illegible] ...क़न में फ़क़त मज़हब की अब मस्ती का झगड़ा है।
कोई मुझसे अगर पूछे तो कह दूँ साफ़ ऐ 'बिस[illegible] ...न मज़हब है, न मस्ती है, जबरदस्ती का झगड़ा है॥

प्रवासियों की परिस्थिति

लेखक, श्रीयुत भवानीदयाल संन्यासी

श्री स्वामी भवानीदयाल जी प्रवासी भारतीयों की समस्या के विशेषज्ञ हैं। उनका यह लेख प्रामाणिक और विचारणीय है। इस लेख में उन्होंने प्रायः समस्त उपनिवेशों के प्रवासी भारतीयों की वर्त्तमान दुर्वस्था का विहङ्गम दृष्टि से वर्णन किया है।

इस समय संसार के भिन्न भिन्न देशों और उपनिवेशों में लगभग २५ लाख प्रवासी भारतीयों की आबादी है। जहाँ जहाँ वे बसे हुए हैं, वहाँ वहाँ उनको अपने देश की पराधीनता के कारण अपमान का कड़ुआ प्याला पीना पड़ता है। पौन सदी तक ज़ारी रहनेवाली शर्तबन्दी-प्रथा का इतिहास वास्तव में भारतीयों की अपकीर्ति का इतिहास है और उसमें विशेषतः अन्यायों, अत्याचारों और अपमानों के ही अध्याय मिलेंगे। यद्यपि अनेक सहृदय महानुभावों के उद्योग से अब इस प्रथा का अन्त हो गया है, तो भी इससे उत्पन्न परिस्थिति की सीमा अभी तक अगोचर है। इतने आन्दोलनों और बलिदानों के बाद भी न तो प्रवासियों के सङ्कटों का अन्त हुआ है और न उनकी अवस्था में आशाजनक अन्तर ही पड़ा है। मज़ा तो यह है कि ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत उपनिवेशों में ही उन्हें सबसे अधिक धक्के खाने और अपमान सहने पड़ते हैं। पिछली लखनऊ-कांग्रेस में राष्ट्रपति पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने प्रवासियों के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव उपस्थित किया था और जिसकी व्याख्या करने का भार मुझे सौंपा गया था, समय-सङ्कोच के कारण मैं उसकी व्याख्या भला क्या कर सकता था—केवल इधर-उधर की दो-चार बातें कहकर सन्तोष कर लेना पड़ा था। उसी समय मैंने सरस्वती-सम्पादक को इस विषय पर कुछ लिखने का वचन दिया था, किन्तु बीमारी और कमज़ोरी के कारण आज से पहले मैं अपने वचन का पालन नहीं कर सका।

दक्षिण-अफ़्रीका तो रङ्ग-द्वेष की दौड़ में सबसे आगे बढ़ गया है। यहाँ भारतीय 'कुली-कबाड़ी' समझे जाते हैं और उनके साथ वैसा ही व्यवहार भी होता है। महात्मा गांधी के सत्याग्रह और भारत-सरकार के राजदूतों की वाणी और नीति से भी उनकी स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हो सका। आज भी भारतीयों के लिए ट्रेनों में अलग डिब्बे और ट्रामों में अलग बैठकें हैं; डाकघरों, स्टेशनों और दफ़्तरों में रङ्ग-भेद का नग्न-प्रदर्शन है। होटलों और थियेटरों के दरवाज़े उनके लिए बन्द हैं। न उन्हें पार्लियामेंटरी मताधिकार है और न म्युनिसिपल मताधिकार ही। कुलीगीरी के सिवा उन्हें और कोई सरकारी नौकरी नहीं मिल सकती। जो भाई खेती और रोज़गार करते हैं उनकी राह में इतने काँटे बिखेर दिये गये हैं जो पग पग पर चुभते हैं। राम और कृष्ण के वंशज एवं बुद्ध, ईसा, मुहम्मद, शङ्कर और दयानन्द के अनुयायी यहाँ असभ्य हब्शियों से भी निम्न समझे जाते हैं।

दक्षिणी-अफ़्रीका के श्वेताङ्गों के रङ्ग-द्वेष की कुछ बानगी देखिए। दक्षिण-अफ़्रीका की संहति के चारों प्रान्त नेटाल, केप, आरेञ्ज फ़्री स्टेट और ट्रांसवाल—में केप अपनी उदारता के लिए प्रसिद्ध है, किन्तु वहाँ के राष्ट्रवादी श्वेताङ्गों की परिषद् ने हाल में ही जो प्रस्ताव पास किया है वह यह है—"योरपीय क्रिश्चियन संस्कृति की रक्षा के लिए यह आवश्यक है कि योरपीयों और ग़ैर-योरपीयों के मध्य में जहाँ तक बन पड़े, अन्तर रक्खा जाय; उनका विवाह-सम्बन्ध क़ानून से जुर्म ठहराया जाय, ग़ैर-योरपीय स्कूलों में अन्य वर्णों के साथ गौराङ्ग अध्यापक की नियुक्ति रोकी जाय, कोई भी श्वेताङ्ग किसी ग़ैर-श्वेताङ्ग से नौकरी में नीचे के ओहदे पर न रक्खा जाय और गोरी स्त्रियाँ ग़ैर-योरपीय के यहाँ नौकरी करने से रोकी जायँ।" यहाँ यह कह देना उचित होगा कि इस गौराङ्ग-दल के नेता हैं डाक्टर मलान, जो कुछ दिनों पहले तक यूनियन-सरकार के अन्तर्विभाग के मंत्री
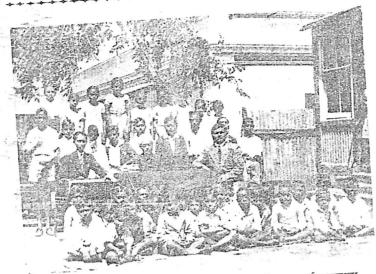
[लोरेन्सो मार्क्विस (अफ़्रीका) में भारत-समाज द्वारा संचालित गुजराती पाठशाला के कुछ अध्यापक और विद्यार्थी।]

रह चुके हैं। इससे भी बढ़कर रङ्ग-द्वेष की एक और विचित्र बानगी लीजिए। डंडी में एक हबशी औरत ने एक अँगरेज़ गृहस्थ की कुछ मुर्ग़ियाँ चुरा लीं और उन्हें एक भारतीय के हाथों बेच डाला। वह पकड़ी गई, मामला चला और उसे सज़ा मिली। यहाँ तक तो किसी को शिकायत नहीं, किन्तु आगे मजिस्ट्रेट महोदय ने भारतीय ख़रीदार को ताक़ीद करते हुए फ़र्माया—तुम्हें योरपीय और नेटिव की मुर्ग़ी का अन्तर जानना चाहिए था। तुम व्यापारी लोग उनसे अच्छी मुर्ग़ियाँ ख़रीदकर नेटिवों को चोरी करने के लिए प्रोत्साहन देते हो। यहाँ तक रङ्ग-भेद का विष फैल चुका है। आदमी अपने रङ्ग से पहचाने जा सकते हैं, लेकिन यह जान लेना कि अमुक मुर्ग़ी काले की है और अमुक गोरे की, कैसे सम्भव हो सकता है? यहाँ की मुर्ग़ियाँ भी काली-गोरी जातियों में परिणत हो रही हैं और डंडी के मजिस्ट्रेट गेई साहब के दिमाग़-शरीफ़ में तिजारती भारतीयों को इसकी पहचान होनी चाहिए। यह किसी पिछली सदी की बात नहीं है, बल्कि अक्टूबर १९३६ की घटना है। क्या रङ्ग-भेद की ऐसी मिसाल दुनिया में और कहीं मिल सकती है?

फ़ीजी का मामला और भी अनोखा है। जहाँ संसार में स्वेच्छाचारी शासनों का अन्त हो रहा है और जनतन्त्र की स्थापना हो रही है, वहाँ फ़िजी के सत्ताधिकारी अपनी निरङ्कुशता को बनाये रखने के लिए अठारहवीं-सदी की ओर वापस जा रहे हैं। चौंकानेवाली बात तो यह है कि फ़ीजी ब्रिटेन की काउन-कलोनी है और उसे दक्षिण-अफ़्रीका की भाँति स्वराज्य नहीं मिला है। हाल में वहाँ म्युनिसिपल-प्रथा का अन्त किया गया है, और अब ख़ुद वहाँ की सरकार शहरों की सफ़ाई की व्यवस्था किया करेगी। बेचारे नागरिक 'रेट और टैक्स' भरने के लिए मजबूर होंगे, लेकिन उसकी व्यय-व्यवस्था में उनको चूँ-चकार करने का हक़ नहीं रहेगा। यह भी आन्दोलन शुरू हुआ था और बड़े उग्ररूप से कि कौंसिल के लिए जो चुनाव-प्रथा है उसकी भी अन्त्येष्टि हो जाय और सरकार-द्वारा नामज़द किये गये लोग ही कौंसिलर हुआ करें। दुःख की बात तो यह है कि मौजूदा कौंसिल के श्री के० बी० सिंह और श्री मुदालियर नामक दो भारतीय मेम्बरों ने इस आन्दोलन का श्रीगणेश किया था, यद्यपि ये दोनों महाशय भारतीय मतदाताओं की ओर से चुने जाकर कौंसिल की कुर्सियों की शोभा बढ़ा रहे हैं। सरकार की सहायता ने कौंसिल में उनका प्रस्ताव बहुमत से पास हो गया, किन्तु यह सौदा कुछ महँगा पड़ा, क्योंकि एक ओर तो भारतीयों ने घोर आन्दोलन आरम्भ कर दिया और दूसरी ओर योरपीयों का एक डेपुटेशन विलायत जा पहुँचा। भारत-सरकार ने भी इस 'पीछे फिरो' नीति का विरोध किया। नतीजा यह हुआ कि औपनिवेशिक सचिव को हाल में ही एक घोषणा करनी

[लोरेन्सो मार्क्विस के कुछ प्रवासी भारतीय। स्वामी जी हाथ में छड़ी लिये खड़े हैं।]

पड़ी है, जिसके द्वारा दोनों पक्षों को राज़ी रखने का प्रयत्न किया गया है। अब तक तीन भारतीय निर्वाचित होते थे, पर अब तीन निर्वाचित होंगे और दो मनोनीत। इस नवीन व्यवस्था से सिंह और मुदालियर को राजभक्ति का पुरस्कार मिल गया और कौंसिल में उनकी कुर्सी बरक़रार रह गई।

केनिया और यूगाण्डा की अवस्था भी दयाजनक है। यद्यपि केनिया-कौंसिल में पाँच भारतीयों को कुर्सी मिली है, तो भी अल्प-संख्यक होने के कारण उनकी आवाज़ में कुछ दम नहीं है। केनिया की ऊँची ज़मीन श्वेताङ्गों के लिए संरक्षित कर दी गई है, चाहे उन श्वेताङ्गों में कुछ श्वेताङ्ग ब्रिटिश साम्राज्य के शत्रु ही क्यों न हों? प्रवासी भाइयों को यही तो सबसे बड़ा आश्चर्य है कि ब्रिटिश उपनिवेशों में योरप की सारी जातियाँ और एशिया के यहूदी भी केवल श्वेताङ्ग होने के कारण समानाधिकार भोगते हैं, किन्तु भारतीयों के प्रति—ब्रिटिश साम्राज्य की प्रजा होते हुए भी—केवल रङ्ग के कारण ऐसा व्यवहार किया जाता है जो पग-पग पर उन्हें पराधीनता का स्मरण दिलानेवाला और आठ-आठ आँसू रुलानेवाला है। यह स्थिति स्वयं ब्रिटिश साम्राज्य के हित की दृष्टि से भी वाञ्छनीय नहीं है।

टँगेनिका जब तक जर्मनी के अधिकार में था तब तक वहाँ के भारतीय सुख-शान्ति से रहते थे—उनकी कभी कोई शिकायत नहीं सुनी गई, किन्तु ब्रिटिश मेंडेट में आते ही टँगेनिका के प्रवासी भारतीयों ने हाय-तोबा मचाना शुरू कर दिया। आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलेंड और कनाडा तो ब्रिटेन के स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेश ठहरे, वे भला प्रवासी भारतीयों को किस खेत की मूली समझ सकते हैं? उन्होंने अपना दरवाज़ा मज़बूती से बन्द कर रक्खा है और उस पर यह 'साइन-बोर्ड' लगा रक्खा है कि इन उपनिवेशों में प्रवासी भारतीयों का प्रवेश वर्जित है।
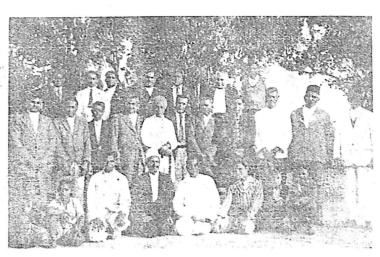
मारिशस की जन-संख्या में तीन हिस्सा भारतीयों की आबादी है, फिर भी राजनैतिक दृष्टि से उनका न कोई मूल्य है और न महत्त्व ही। जनतन्त्र के सिद्धान्त के अनुसार वहाँ का शासन-सूत्र भारतीयों के हाथ में होना चाहिए, किन्तु कहावत है कि "ज़रदार मर्द नाहर, घर रहे चाहे बाहर। बेज़र का मर्द बिल्ली, घर रहे चाहे दिल्ली"। वास्तव में हम घर में भी ग़ुलाम हैं और बाहर भी—इसी प्रकार ट्रिनीडाड, जमैका और डेमरारा की बात मत पूछिए। इन ब्रिटिश उपनिवेशों में भी भारतीयों की संख्या काफ़ी है, लेकिन उनकी राजनैतिक स्थिति पर दृष्टि डालते ही दर्दभरी आह निकल आती है।

ब्रिटिश उपनिवेशों की देखादेखी अन्य उपनिवेशवाले भी अपने यहाँ इसी नीति का अवलम्बन करने लगे हैं। मारिशस का प्रभाव मेडागास्कर पर पड़ रहा है। फ़्रेंच-उपनिवेश होने के कारण मेडागास्कर में भारतीयों के साथ अपमानजनक व्यवहार तो नहीं होता, फिर भी उनकी वह सम्मानपूर्ण स्थिति नहीं है जो होनी चाहिए। उधर डेम-

[लेखक का अफ़्रीका का हबशी रसोइया भोजन परोस रहा है ।]

रारा आदि के असर से डच-उपनिवेश सुरीनाम कैसे बच सकता है ? वहाँ भी प्रवासी भाई 'लकड़हारों और पनिहारों' में शुमार किये जाते हैं। इधर दक्षिण अफ़्रीका के पास ही पोर्तुगीज़-पूर्व-अफ़्रीका है। पड़ोस की विषैली वायु से यहाँ के भारतीयों का भी दम घुट रहा है। पहले जहाँ पोर्तुगीज़-सरकार भारतीयों को यहाँ बसने के लिए प्रोत्साहित करती थी, वहाँ अब दूध की मक्खी की भाँति निकाल फेंकने पर तुल गई है। नवागत भारतीयों का प्रवेश तो वर्जित है ही, किन्तु पुराने प्रवासी भी यदि यहाँ से एक बार समुद्र को पारकर स्वदेश गये तो फिर उधर से लौटना बहुतों के लिए असम्भव हो जाता है। इस नीति से यहाँ की भारतीय आबादी दिन पर दिन घटती जाती है। ज़ंज़ीबार नाम-मात्र के लिए सुलतान का है—वास्तव में वहाँ के शासन की बागडोर अँगरेज़ों के हाथ में है। वहाँ लौंग के व्यापार के सम्बन्ध में जो नया क़ानून बनाया गया है और जिसके कारण असन्तोष की लहर उठ रही है वह वास्तव में भारतीयों के हितों का विघातक है।

इस प्रकार सारे संसार में प्रवासी भारतीयों के भाग्याकाश पर आपत्तियों की घटा घिरी हुई है। इधर भारत में जब से सत्याग्रह-संग्राम स्थगित हुआ और कांग्रेस दल ने लेजिस्लेटिव असेम्बली में प्रवेश किया तब से असेम्बली में प्रवासियों की कुछ चर्चा होने लगी है। प्रवासी-विभाग के सर्वेसर्वा हैं कुँवर सर जगदीशप्रसाद जी और सर गिरजाशंकर बाजपेयी, किन्तु इनके ज़िम्मे भूमि, स्वास्थ्य और शिक्षा-विभाग भी हैं, अतएव प्रवासी-विभाग के लिए एक विशेष सेक्रेटरी की नियुक्ति हुई है। इस पद पर श्री मेनन की जगह अब श्री बोज़मेन नियत हुए हैं। सर बाजपेयी आदि प्रवासियों के प्रति विशेष सहानुभूति रखते हैं और उनके प्रश्न पर उचित ध्यान भी देते हैं, लेकिन असल में भारत-सरकार ही कमज़ोर है। उसकी कोई स्वतन्त्र सत्ता तो है नहीं, वह साम्राज्य-सरकार के अधीन है और उसके आदेशों का पालन करने के लिए बाध्य। केनिया, युगाण्डा, फ़ीजी, मारिशस, ट्रिनीडाड, डेमरारा आदि क्राउन-कलोनी हैं, उनके नियन्त्रण और शासन की व्यवस्था इँग्लैंड के औपनिवेशिक सचिव के आदेशों से होती है। अतएव इन उपनिवेशों में भारतीयों के प्रति होनेवाले दुर्व्यवहारों का खुल्लमखुल्ला विरोध करना मानो अपने स्वामी साम्राज्य-सरकार के सामने विद्रोह करना होगा और इस स्थिति में भारत-सरकार वास्तव में दया का पात्र है।

स्वराज्य-प्राप्त दक्षिण-अफ़्रीका, आस्ट्रेलिया, कनाडा आदि उपनिवेशों के विषय में साम्राज्य-सरकार का यह बहाना चल सकता है कि वे अपने देश की आन्तरिक व्यवस्था करने में स्वतंत्र हैं और उनके कामों में हस्तक्षेप करना साम्राज्य-सरकार की शक्ति और सत्ता के बाहर की बात है। परन्तु क्राउन-कलोनियों के बारे में यह कथन कहाँ तक युक्तिसङ्गत हो सकता है ? भारत स्वराज्याधिकार से वंचित है और उसके शासन का असली सूत्र ब्रिटिश

[लोरेन्सो मार्क्विस के एक जंगल की झोपड़ी में प्रवासी भाई वैदिक विधि से हवन कर रहे हैं।]

पार्लियामेंट के हाथ में है। तब मालिक का विरोध करना मातहत के लिए कैसे सम्भव हो सकता है ? असली रहस्य यही है और इसी लिए साम्राज्य-सरकार के इशारे पर भारत-सरकार को नाचना पड़ता है।

कांग्रेस में भी अब विदेशी विभाग क़ायम हो गया है। इस विभाग की कहानी भी लम्बी है। सन १९२५ में इन पंक्तियों के लेखक के ही विशेष उद्योग से श्रीमती सरोजिनी देवी की अध्यक्षता में कानपुर-कांग्रेस में प्रवासी-विभाग की स्थापना के लिए एक प्रस्ताव पास हुआ था, किन्तु वह कई साल तक केवल काग़ज़ की ही शोभा बढ़ाता रहा। कलकत्ता-कांग्रेस में पंडित मोतीलाल जी नेहरू के नेतृत्व में इस प्रस्ताव की पुनरावृत्ति की गई—केवल अन्तर यह हुआ कि 'प्रवासी-विभाग' की जगह उसका नाम 'विदेशी विभाग' रक्खा गया। कुछ दिनों तक एक विशेष मंत्री-द्वारा कुछ काम भी हुआ, किन्तु सन् १९३० में सत्याग्रह-संग्राम के समय कांग्रेस के अन्य विभागों की भाँति यह विभाग भी लुप्त हो गया। अब पंडित जवाहरलाल नेहरू की इच्छा से इस विभाग का काम फिर शुरू हुआ है। कांग्रेस के नवीन विधान के अनुसार देश में बाहर की कोई संस्था उसमें शामिल नहीं रह गई है, प्रवासियों के प्रतिनिधित्व का अन्त हो गया है और कांग्रेस में उनके लिए कोई स्थान नहीं रहा। मुझे तो राष्ट्रपति के विशेष निमन्त्रण-द्वारा लखनऊ-कांग्रेस में शामिल होने और कांग्रेस-मंच से बोलने का अवसर दिया गया था। कांग्रेस के इस नवीन विधान से प्रवासी भारतीयों में असन्तोष की अभिवृद्धि होना अस्वाभाविक नहीं है।

ऐसी स्थिति में प्रवासियों का परमात्मा ही रक्षक है। फिर भी प्रवासी भाई निराश नहीं हुए हैं। वे अपने पैरों के बल खड़ा होना सीख गये हैं और अपनी मातृभूमि की

[स्वामी भवानीदयाल संन्यासी श्रीयुत भीखाभाई मूलाभाई के साथ।]

प्रतिष्ठा एवं मर्यादा की रक्षा और उसकी वृद्धि के लिए लगातार आन्दोलन करने में कटिबद्ध हैं। उनको पूर्ण विश्वास है कि कभी न कभी इस अमावस की अँधेरी रात का अन्त होगा और भाग्य-भानु की सुनहरी किरणें अवश्य छिटकेंगी। वह दिन चाहे शीघ्र आवे अथवा कुछ देर में, किन्तु आवेगा अवश्य। प्रवासी भाई उसी मंगलमय दिवस की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

पंडित भगवतीप्रसाद वाजपेयी हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ कहानी-लेखक हैं। इस कहानी में इनकी दार्शनिकता खूब प्रस्फुटित हुई है।

प्रायश्चित्त

लेखक, श्रीयुत भगवतीप्रसाद वाजपेयी

विपिन अपनी बैठक में बैठा हुआ एक संवाद-पत्र देख रहा था। प्रशान्त मानस में यदि वह ऐसा उपक्रम करता तो कोई बात ही न थी। किन्तु वह तो अपने अन्तःकरण के साथ परिहास कर रहा था। एक पंक्ति भी, निश्चित रूप से, वह ग्रहण नहीं कर सका था।

वह विपिन इस समय जो अतिशय उद्विग्न है और किसी भी काम में उसकी जो प्रवृत्ति नहीं है उसका एक कारण है। बात यह है कि वह आशावादी रहा है। वह मानता आया है कि चेष्टा-शीलता ही जीवन है। किन्तु आज उसे प्रतीत हुआ है कि नियति के राज्य में आशा और आस्था की कहीं कोई गति नहीं है। यह समस्त विश्व कवि का एक स्वप्न है। वास्तव में कामना और उसकी सफलता, तृप्ति और संतोष, भोग और शान्ति एक कल्पित शब्द-सृष्टि है।

पाकेट से सिगरेट-केस निकालकर उसने एक सिगरेट होठों से दबा ली। दियासलाई जलाकर वह धूम्र-पान करने लगा।

ओह! विपिन का जो आनन सदा उल्लास-दोलित रहा है, आज कैसा विपण्ण और कैसा विवर्ण हो गया है! मानो उसका अब तक का समस्त ज्ञान कोई वस्तु नहीं है, नितान्त क्षुद्र है वह।

निकटवर्ती आकाश में धूम्र-शिखाओं के वारिद उड़ाता हुआ विपिन सोच रहा है—इस वीणा पर वह कितना विश्वास करता था! वह मानने लगा था कि वह तो उसके हृदय की रानी है, मनोमन्दिर की देवी। मानो उसके प्रस्ताव की स्वीकारोक्ति का भी वह स्वयं ही अधिकारी है; उसका आत्म-विश्वास ही उसकी सिद्धि है, जीवन का चरम साफल्य। किन्तु—

"उसने तो कल कह डाला—मैं?.......मैं तो चाह[illegible] कि तुम मुझे भूल जाओ, मुझसे घृणा करो। क्योंकि तुम्हारी चरम कुत्सा ही मेरे जीवन की तृप्ति है—उसका एकमात्र अवलम्ब। मैं प्रेम नहीं जानती, प्रीति नहीं जानती। मैं नहीं जानती कि प्यार क्या चीज़ है! मैं विश्वास नहीं करती कि नारी के लिए स्वामी एक-मात्र आश्रय है, आधार है। मैं तो नारी की स्वतन्त्र सत्ता पर विश्वास रखती हूँ।"

—कहते-कहते न तो उसकी चेष्टा में कहीं कोई असंगति का लेश दृष्टिगत हुआ, न अप्रकृत धारणा की-सी कोई अप्रतीति।

यही सब सोच-सोचकर विपिन दिन भर नितान्त विमूढ़-सा, पराजित-सा बना रहा।

उसकी मा ने पूछा—"आज तू कुछ उदास-सा क्यों देख पड़ता है?" उसके पिता ने कहा—"क्या कुछ तबीअत ख़राब है?" उसके अग्रज ने टोंक दिया—"बात क्या है रे, विपिन कि आज तू मेरे साथ पेट भर खाना भी नहीं खा सका?" उसकी भाभी चाय लेकर आई तब उसने लौटा दी। किन्तु वह इन प्रश्नों के उत्तर में कुछ कह न सका। अपनी स्थिति के मर्म को उसने किसी को भी स्पर्श न करने दिया। दिन भर वह निश्चेष्ट बना रहा।

किन्तु यह बात उस विपिन के लिए केवल एक दिन की तो थी नहीं। वह तो उसके जीवन की एक-मात्र समस्या बन गई थी। अतएव अकर्मण्य बनकर वह कैसे रहता? धीरे-धीरे उसने एक विचार स्थिर कर लिया। एक निश्चय में वह आबद्ध हो गया। वह यह समझने की चेष्टा में रहने लगा कि वीणा उसकी कोई नहीं थी। वह तो उसके लिए एक भ्रम-मात्र थी—स्वप्न-सी अकल्पित, मृग-तृष्णा-सी ऐन्द्रजालिक। वह अकेला आया है और अकेला जायगा।

लोग कहा करते हैं, मानव-प्रकृति अपरिवर्तनशील है। लोग समझ बैठते हैं कि मनुष्य की आन्तरिक रूप-

पर वि

रेखा नहीं बदलती। संसार बदल जाता है, किन्तु मानवात्मा की प्रेरणा सदा एकरस अक्षुण्ण रहती है। किन्तु इस प्रकार के निष्कर्ष निकालते समय लोग यह भूल जाते हैं कि मनुष्य की स्थिति वास्तव में है क्या? जो सत्ता जगत् के जन-जन के साथ समन्वित है, जिसकी चेतना और अनुभूति ही उसकी मूर्त अवस्था है, किसी के स्पर्श और आघात के अनुषंग से उसका अपरिवर्तन कैसे सम्भव है?

दिन आये और गये। विपिन अब कलाविद् न रहकर दार्शनिक हो गया।

[२]

उनके पिता अत्यधिक बीमार थे। यहाँ तक कि उनके जीवन की कोई आशा न रह गई थी। वे रायसाहब थे। उन्होंने अपने जीवन में यथेष्ट सम्पत्ति और वैभव का अर्जन किया था। अपनी सदाशयता और विनयशीलता के कारण नगर भर में उनकी-सी सर्वाधिक प्रतिष्ठा का कहीं किसी में सादृश्य न था। नित्य ही अनेक व्यक्ति उनके दर्शन तथा मङ्गल-कामना प्रकट करने के लिए आते रहते थे।

वृद्धता में तो रायसाहब का अंग-अंग शिथिल-ध्वस्त हो रहा था; किन्तु मोतियाबिन्द के कारण उनके नेत्रों की ज्योति अत्यन्त क्षीण हो गई थी। यहाँ तक कि वे अपने आत्मीय जनों का परिचय दृष्टि से ग्रहण न करके स्वर से प्राप्त करते थे।

एक दिन की बात है। रात के आठ बजे का समय था। रायसाहब बोले—"कहाँ गया रे विपिन?"

विपिन ने तुरन्त उत्तर दिया—"मैं यहाँ पास ही तो बैठा हूँ बाबू। कहो, क्या कहते हो?"

रायसाहब ने पूछा—"यहाँ और कोई तो नहीं है?"

"नहीं है और कोई बाबू। मैं यहाँ अकेला ही बैठा हूँ।" विपिन ने उत्तर दिया।

"एक बात कहने को रह गई है। उसे और किसी को न बतलाकर तुझको बतलाना चाहता हूँ। बात यह है कि तू थिंकर है, चिन्तक। तेरी आत्मा में मेरा सारा प्रतिनिधित्व आलोकित है। मुझे विश्वास है कि तू मेरी उस बात को स्थायी रूप से ग्रहण करेगा।" रायसाहब ने अटूट विश्वास के साथ अधिकार-पूर्वक दृढ़ होकर कहा।

"कहो न, इतना सोच-विचार क्यों करते हो?" विपिन कहते-कहते अत्यधिक आतुर हो उठा।

रायसाहब का मुख म्लान पड़ गया। प्रतीत हुआ, जैसे कोई अवर्णनीय अतीत अपने समस्त कल्याण के साथ उनके उस अनुताप-दग्ध आनन पर मुद्रित हो उठा है।

उन्होंने कहा—"किन्तु मुझे कुछ कहना न होगा। सभी कुछ मैंने अपनी डायरी में लिख दिया है। मेरे विदा हो जाने के बाद उसे देख लेना। मुझे विश्वास है कि उस समय जो कुछ तुमको उचित प्रतीत होगा वही मेरी कामना और तुम्हारा कर्तव्य होगा।

[३]

विपिन का जीवन पूर्ववत् चल रहा था। यद्यपि वीणा के प्रति उसमें अब वह मदिर आकर्षण न था, तथापि शिष्टाचार और साधारण कर्तव्य के जगत् में वह एक वीणा के प्रति ही नहीं; किसी के लिए भी अपने आपको बदल न सका था। सभी से वह उसी प्रकार विहँसकर बातें करता था। चटुल-हास में तो वह कहीं भी अपना सादृश्य न देख सकता था।

यह सब कुछ था। किन्तु भीतर से विपिन अब कुछ और था। उसकी स्थिति प्रस्तावक की न रहकर अब अनुमोदक की हो गई थी। वह स्थल-पद्म का एक शुष्क-दल-मात्र था। रंग वही था, सौरभ भी अमन्द था, किन्तु मृदुल कोंपल की-सी स्पर्श-मोहक कमनीयता अब उसमें कहाँ से होती? वह तो अब उसका इतिहास बन गई थी।

उस दिन के वार्तालाप के पश्चात् एक दिन साधारण रूप से ही वीणा ने पूछ दिया—"मेरी उस दिन की बातों का तुम कुछ बुरा तो नहीं मान गये?"

विपिन वृश्चिक-दंश के समान उत्क्लेश-ध्वस्त होकर रह गया। बड़ी चतुरता के साथ अपनी स्थिति की रक्षा करते हुए उसने उत्तर दिया—"बुरा क्यों मानूँगा वीणा? बुरा मानने की उसमें बात ही क्या थी? वह तो अपने-अपने निजत्व की बात है। प्रत्येक व्यक्ति कुछ अपने विचार रखता है, उसके कुछ अपने सिद्धान्त होते हैं। तुम भी यदि अपने कुछ सिद्धान्त रखती हो तो इसमें मेरे या किसी के भी बुरा मानने की क्या बात हो सकती है?"

यह वीणा भी एक विलक्षण नारी है—अपने विश्वासों की रानी, निराशा से हीन, उत्तरंग और अपराजिता। उस दिन उसने विपिन को जान-बूझकर विशिष्ट विभ्रम में डाल दिया था। मानवात्मा की निर्बाध कल्लोल-राशि में पली हुई इस नारी की यह एक प्रकृत-क्रीड़ा है। अभीप्सित विलास-गर्भित हो-होकर वह जगत् का समस्त रूप इस एक ही जीवन के विकल्प में अनुभव कर लेना चाहती है। वह किसी से भी अपनी आकांक्षा प्रकट नहीं करती और किसी की भी आकांक्षा को अपने निजत्व के साथ स्थापित नहीं करती। वह सदा-सर्वदा निर्द्वन्द्व रहना चाहती है। वह मानती है कि उसे निर्झरिणी की भाँति सदा मुखरित रहना है। मानो यह भी नहीं देखना है कि कितनी पाषाण-शिलायें उसके कोलाहल में आईं और गईं और उसके निनाद की गति में यदि कभी मति उपस्थित हो गई तो उसकी क्या स्थिति होगी।

विपिन के इस उत्तर से वीणा के जलजात-दुर्लभ अधर-पल्लव खिल उठे, दाड़िमदशन युग्म झलक पड़े। विहँसती हुई वह बोली—"तुम पागल हो गये हो विपिन। मेरी उस दिन की बातों ने तुम्हें बिलकुल बदल दिया है। फिर भी तुम इसे स्वीकार नहीं कर रहे हो! आघात सहते हुए कोई व्यक्ति कभी अस्पर्श्य रह भी सका है कि एक तुम्हीं रह पाओगे?"

"मनुष्य का हृदय मिट्टी का घरौंदा नहीं है वीणा, जिसे जब चाहोगी तब ठोकर मारकर नष्ट कर डालोगी और फिर उमङ्ग में आकर उसे इच्छानुकूल बना लोगी। संसार में ऐसा कौन है जो परिस्थिति के अनुसार बदलता न हो। मैं तुम्हीं से पूछता हूँ वीणा, बतलाओ, तुम्हीं क्यों बदल रही हो। आज तुम्हीं को यह पागलपन क्यों सूझ रहा है, जिस व्यक्ति से तुम्हारा कोई सौहार्द्र नहीं है, जिसकी आत्मीयता तुम्हारे लिए सर्वथा क्षुद्र हो गई है, उसके मर्मस्थल को कोंच-कोंचकर तुम जिस आनन्द का अनुभव कर रही हो वीणा, वह आनन्द, वह उल्लास, मानवात्मा का नहीं। मुझसे मत कहलाओ कि किसका है।"

विपिन अकस्मात् उत्तेजित होकर कह गया। उसकी अपरूप भाव-भंगी देखकर वीणा कुछ क्षणों के लिए अवाक् रह गई।

विपिन तब स्थिर न रहकर फिर बोला—"रह गई बात बुरा मानने की। मैं जानना चाहता हूँ वीणा, बुरा और भला संसार में है क्या। कौन कह सकता है कि आज मैं जो हो सका हूँ उसके मूल में कहीं कोई ऐसी बात भी है जिसे तुम 'बुरा मानना' कह सकने का दम भर सकती हो। मैंने बुरा मानकर उसे भला मान लिया है वीणा। मैं बुराई-मात्र को भलाई की दृष्टि से देखने का अभ्यासी हूँ। दुनिया के लिए तुम चाहे जो हो वीणा, मेरे लिए तुम वही जगत्तारिणी मन्दाकिनी ही हो। मैं तुम्हारा कितना उपकृत हूँ, कह नहीं सकता।

उसका आनन ज्वलन्त कान्ति से जगमग हो उठा।

वीणा समझती थी, वह अपराजिता है—किसी के समक्ष वह कभी हार नहीं सकती। एक वीणा ही नहीं, संसार की निखिल यौवन-दृप्त अंगनायें कदाचित् ऐसा ही समझती हैं। वे नहीं जानतीं कि व्यक्तित्व के चरम उत्कर्ष की क्षमता उन्हें किस अर्थ में ग्रहण करती है। वे नहीं अनुभव करतीं कि कोई उत्क्षेप उनके लिए अकल्पित भी हो सकता है। वे नहीं देखतीं कि किसी के अन्तस्तल की शून्यता भी उन्हें आकण्ठ प्लावित बना रही है। वीणा भी ऐसी ही नारी थी। किन्तु आज के इस क्षण में वीणा को ऐसा प्रतीत हुआ, मानो इस विपिन के आगे वह क्षुद्र, अतिशय क्षुद्र होगई है। कोई भी उसकी मर्यादा नहीं है, कहीं भी उसकी गति नहीं है। यही एक विपिन इसमें समर्थ है कि वह चाहे तो उसे उठाकर चरम नारीत्व तक पहुँचा दे।

इस वीणा ने अभी तक जान पड़ता है, अपना हृदय कहीं कुछ अवशिष्ट भी रख छोड़ा था। तभी तो यही सब सोचती हुई उसकी नयन-कटोरियाँ भी भर आईं। अटकते हुए अस्थिर आर्द्र स्वर में उसने कहा— तुम मुझे क्षमा करो विपिन या चाहे तो न भी करो; लेकिन हाय! तुम भी तो यह जानते कि मैं कितनी दुखिया नारी हूँ। मैं किसी को चाह नहीं सकती, किसी का हृदय अपना नहीं बना सकती! और अधिक क्या बताऊँ! जब कि मैं खुद ही नहीं जानती कि मैं क्या हूँ, कौन हूँ।

कथन के अन्तिम छोर तक पहुँचती-पहुँचती वीणा रो पड़ी।

वक्ष से लगाकर उसकी सुरभित कुन्तल-राशि पर

दक्षिण कर फेरते हुए विपिन बोला—तुम सचमुच पगली बन रही हो वीणा! स्नेह के राज्य में वर्ण, जाति और समाज की कोई भी सत्ता मैं नहीं मानता। तुम नारी हो। बस, तुम्हारा एक यही लक्षण पुरुष के लिए यथेष्ट है—रोओ मत वीणा। यह पार्क है। कोई देखेगा तो क्या कहेगा? न, मैं तुम्हें और अधिक न रोने दूँगा—किसी तरह नहीं।

उस दिन के पश्चात् वीणा अब विपिन के घर पूर्ववत् आने लगी थी।

[४]

विपिन को पिता का संस्कार किये हुए कई मास बीत चुके थे। यद्यपि उसकी दिनचर्या फिर पूर्ववत् चलने लगी थी, तो भी इधर कुछ दिनों से उसके जीवन की अनुभूति का एक नया पृष्ठ खुल रहा था। विनोद विपिन का सहचर था और वह निरन्तर उसके साथ रहता था। यहाँ तक कि दोनों एक ही बँगले में साथ ही साथ रहने लगे थे। इधर यह बात थी, उधर वीणा जब कभी उससे मिलने आती तब साथ में अपनी सखी लतिका को भी अवश्य लाती थी। क्रमशः विनोद और लतिका के मिश्रण से इस मण्डली का वातावरण अधिकाधिक मनोरञ्जक होता जा रहा था।

विनोद यों तो संस्कृत का प्रोफ़ेसर था, किन्तु विचार-जगत् की दृष्टि से वह एग्नास्टिक था। विवाद के अवसर पर वह प्रायः कहा करता—हम ईश्वर के विषय में न कुछ जानते हैं, न जान सकते हैं।

और लतिका?

वह पूर्ण बल्कि सम्पूर्ण अर्थों में कट्टर आस्तिक थी। उसका कथन था कि एक ईश्वर ही नहीं, मनुष्य की विविध अनुभूतियाँ अमूर्त होती हैं, फिर भी हम उनको ग्रहण ही करते हैं, कभी उनके प्रति अविश्वासी नहीं होते। तब कोई कारण नहीं कि जिस अजेय सत्ता का अनुभव हम अपने जीवन में क्षण-क्षण पर करते हैं उसके प्रति अविश्वासी बनें। यह तो हमारी कृतघ्नता की पराकाष्ठा है। यह तो मानवता का चरम अपमान है—एक तरह का जंगलीपन, जहालत। दोनों वक्तृत्वकला में, तर्कशास्त्र में, एक दूसरे को चुनौती देते थे। कभी-कभी जब विवाद बढ़ जाता तब विपिन और वीणा को बीच-बचाव तक करना पड़ता। ऐसी भयंकर परिस्थिति उत्पन्न हो जाती थी।

एक दिन की बात है, बात बढ़ जाने पर उत्तेजना में आकर विनोद कह बैठा—स्वामी राम! स्वामी राम तो भक्त थे। और भक्त ज्ञानी नहीं होता, क्योंकि वह तो साधना पर विश्वास रखता है। दूसरे शब्दों में हम उसे मूर्ख कह सकते हैं।

लतिका ने आरक्त मुद्रा में उत्तर दिया—बस अब हद हो गई मिस्टर विनोद! अब तुमको सावधान होना पड़ेगा। स्वामी राम के लिए यदि फिर कभी तुमने ऐसे घृणित विशेषण का प्रयोग किया तो मैं इसे किसी तरह बरदाश्त न कर सकूँगी। यह मैं तुमको अभी से बतला देना चाहती हूँ।

अभी तक विनोद बैठा था। अब वह उठ खड़ा हुआ। अदम्य उत्तेजित स्वर में उसने कहा—पशुता की मात्रा हम में जितनी ही अधिक हो, देश-भक्ति की दुनिया में यद्यपि हम इस समय उसका आदर ही करेंगे, फिर भी मैं उसे जंगलीपन तो मानता ही हूँ। तो भी मिस लतिका, मैं तुम्हें बतला देना चाहता हूँ कि असहनशीलता के क्षेत्र में भी अन्त में पश्चात्ताप ही तुम्हारे हाथ लगेगा।

फिर तो बातें इतनी बढ़ीं कि एक ने कहा—बस, अब तुम्हारी ज़बान निकली कि मैंने तुम्हें यहीं समाप्त किया।

दूसरे ने जवाब दिया—मैं तुम्हारे इस दम्भ को मिट्टी में मिलाकर छोड़ूँगा।

उस दिन बड़ी मुश्किल से उस उभड़ते हुए काण्ड की रक्षा की जा सकी।

विपिन पहले तो इस घटना को कुछ दिन तक अमांगलिक ही मानता रहा, परन्तु फिर आगे चलकर जब उसने अनुभव किया कि वीणा और विनोद उस दिन के पश्चात् परस्पर अधिकाधिक आत्मीय हो रहे हैं तब उसे व्यक्तिगत रूप से बोध हुआ कि हमारा कोई भी क्षण व्यर्थ नहीं है। जीवन का पल-पल हमारे भविष्य-निर्माण के लिए सर्वथा सूत्र-बद्ध ही है।

दिन बीतते गये और विपिन की दृष्टि वीणा पर से उचट कर लतिका पर जा पहुँची। पहले तो अपने इस नवीन परिवर्तन की वह बराबर उपेक्षा करता रहा। बार बार वह यही सोचता कि मनुष्य का यह मन भी सचमुच क्या चिड़ियों की फुदक की भाँति ही चटुल है? क्या वास्तव में उसके भीतर अक्षय प्रेम की ज्योति का अभाव

ही है? परन्तु फिर वह यह भी स्थिर करने लगा कि पहले यह भी निश्चित हो जाय कि प्रेम है क्या? क्या यह सम्भव नहीं हो सकता कि कल जिसे हम प्रेम समझते थे, आज वही जो हमें मृगतृष्णावत् प्रतीत होता है, एकदम अकारण नहीं है? जैसे धर्म के अनेक रूप हैं, वैसे ही क्या प्रेम के अनेक रूप नहीं हो सकते? वीणा विनोद को चाहती है—निस्सन्देह हृदय से चाहती है। और उनका यह मिलन भी सर्वथा श्रेयस्कर ही है। तब, ऐसी दशा में, मैं यदि उसका पथ प्रशस्त करके उसके सामने से हट जाता हूँ तो यह बात क्या वीणा के प्रति मेरे उत्सर्ग की, दूसरे शब्दों में, प्रेम की नहीं है?

विपिन जल्दबाज़ नहीं है। वह अतुलनीय धीर-गम्भीर है। वह कभी लतिका के जीवन का अनुभव करता है, कभी वीणा-वादन का। इसी भाँति उसके दिन बीत रहे हैं। इस कालक्षेप में वह उद्विग्न नहीं बनता। क्योंकि वह मानता है कि जैसे ज्ञान के लिए यह विश्व असीम है, वैसे ही जीवन के लिए ज्ञान भी असीम है। तब उसके समन्वय में काल के अनन्त राज्य में यह आज क्या और कल क्या?

[५]

पिता के द्विवार्षिक श्राद्ध से निश्चिन्त होकर एक दिन विपिन उनकी डायरी के पृष्ठ उलटने लगा। उसमें एक जगह लिखा था—

संसार मुझे कितनी प्रतिष्ठा देता है! नगर का कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं, जिसकी श्रद्धा, जिसका सम्मान मुझे प्राप्त न हो! सांसारिक वैभव भी मैंने थोड़ा अर्जन नहीं किया है। लोग समझते हैं, मेरा जीवन बहुत ऊँचा है। मैं सब प्रकार से सुखी हूँ। बड़े संतोष की मृत्यु मैं लाभ करूँगा। इसी अक्षय कीर्ति मुझे अपने इस जीवन-काल में मिली है, परलोक-यात्रा में भी मैं वैसे ही महत्तम पुण्य का भागी बनूँगा! किन्तु लोग नहीं जानते; अपने यौवन-काल में मैंने कैसे-कैसे गुरुतर पाप किये हैं!

तारा एक सम्भ्रान्त कुल की युवती कन्या थी। अपूर्व सौन्दर्य था उसमें, सर्वथा अलौकिक। एक बार प्रसंगवश उसे देखकर मैं सदा के लिए खो सा गया था। किसी प्रकार मैं उसे प्राप्त करने का लोभ संवरण न कर सका। तब विवश होकर अपने ताल्लुक़े की देख-भाल में मैं उसे ज़बर्दस्ती ले आया था।

अनेक वर्ष तक मैंने उसे संसार से अछूता रक्खा था! किन्तु संयोग की बात, कुछ ऐसे कार्यों में लग गया कि फिर आगे चलकर उसकी आत्मीयता का निर्वाह न कर सका।

मेरी बड़ी आकांक्षा थी कि मैं एक कन्या का पिता होता। किन्तु यह कैसे सम्भव था? हम जो चाहते हैं, केवल वही हमें नहीं प्राप्त होता। यही इस संसार की विलक्षणता है।

किन्तु मैं कन्या से सर्वथा हीन ही हूँ, ऐसी बात नहीं है। तारा से एक कन्या हुई थी। मैंने उसका नाम...... रक्खा था; क्योंकि उसका कण्ठ-स्वर बड़ा मृदुल था। बल्कि रूप-सौन्दर्य में भी वह अपनी मा के समान थी। बल्कि उससे बढ़कर। उसके वाम स्कन्ध पर पास ही पास दो तिल हैं। जब मैंने सुना कि वह पढ़ रही है तब मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई थी। मैंने हठ-पूर्वक उसके व्यय के लिए पचीस रुपये मासिक वृत्ति देने पर तारा को राज़ी कर लिया था। मैंने उसे शपथ देकर वचन ले लिया था कि वह उसका ब्याह अवश्य कर दे।

किन्तु यह तो कोई प्रायश्चित्त नहीं है। जिसका मैंने सर्वस्व अपहरण कर लिया है उसके लिए यह सब क्या चीज़ है! मैं अनुताप से बराबर जलता रहा हूँ; और मुझे ऐसा जान पड़ता है कि मेरी इस जलन की सीमा नहीं है, थाह नहीं है, उसका अन्त नहीं है। आह! मुँह खोलकर मैं किससे पूछूँ, कैसे पूछूँ कि मैं तारा के लिए अब क्या कर सकता हूँ? ऐसा जान पड़ता है कि यह जीवन ही नहीं, अगले जीवन में भी मुझे इसके लिए इसी तरह जलना पड़ेगा।

तो यह भी ठीक ही है। जीवन जैसे एक दीप है, जलना ही जैसे उसका धर्म है, वैसे ही अगर मैं जलता ही रहूँ, तो भी वह मेरे जीवन की एक सार्थकता ही है! जो हो, आज अगर वह साकार होता तो उससे मैं यह पूछे बिना न रहता कि मेरी इस जलन का अन्त कहाँ है?

× × ×

और विपिन बोला—अब चलो वीणा, मैं तुम्हें लेने आया हूँ। मेरी प्रापर्टी का तीसरा भाग तुम्हारा है। पिता जी की ओर से मैंने उसे विनोद को कन्या-दान में देने का निश्चय किया है।

राजस्थान की रसधार

लेखक—श्रीयुत सूर्यकरण पारीक, एम० ए०

पनिहारी

राजस्थान देश अपने त्योहारों, गीतों और रंग-बिरंगे वेष-भूषा के लिए भारतवर्ष में विशेषरूप से प्रसिद्ध है। बल्कि यह कहा जाय तो अन्यथा न होगा कि सभ्यता और विज्ञान के इस युग में जब सब ओर सादगी, सौकुमार्य और हलकापन ही श्रेष्ठता और सौन्दर्य के मान माने जा रहे हैं, राजस्थान इन्हीं तीनों के लिए बदनाम भी है। हमें विज्ञान और सभ्यता के विकास से विरोध नहीं होना चाहिए, परन्तु हमें अपने निजी संस्कारों और प्राचीन संस्थाओं के साथ प्रेम और पक्षपात भी होना चाहिए। विश्वधर्म-मानवता और राष्ट्रीयता की रक्षा के लिए जातीयता की रक्षा करना मानव का पहला धर्म है।

[पनिहारिनों का एक दृश्य—उदयपुर।]

लोकगीत किसी जाति अथवा देश के हृदय और संस्कारों के जितने सच्चे परिचायक होते हैं, उतनी उस देश की शास्त्रीय शैली से रची हुई कवितायें और काव्य नहीं। इसका एक कारण यह है कि लोकगीतों का निर्माण लोकहृदय से होता है और काव्य की उपज कवि के हृदय से होती है। एक सामूहिक रुचि की उपज है, दूसरा व्यक्ति के हृदय का प्रतिबिम्ब।

'पनिहारी' के गीत राजस्थान की आत्मा के सर्वोत्तम परिचायक हैं। उनमें जिस सौन्दर्य, जिस देशी छटा का विवरण रहता है, उसके प्रत्येक अंश पर राजस्थानी जीवन की गहरी छाप लगी रहती है। बरसात राजस्थान की सर्वोत्तम ऋतु है। इस ऋतु में सरोवरों के तट पर सन्ध्या-सवेरे पनिहारिनों के समूह—'झूलरा' का वस्त्राभूषण से सज-धज कर एक-स्वर से मर्मस्पर्शी गीत गाते हुए आना-जाना, एक ऐसा स्वर्गोपम दृश्य उपस्थित करता है जिसकी कल्पना-

मात्र से सौन्दर्य की विभूतियाँ जाग्रत हो उठती हैं। साक्षात् देखने से तो और ही आनन्द मिलता है।

कला की दृष्टि से भी यह दृश्य भारतीय संस्कृति को राजस्थान की एक उत्तम देन समझा जा सकता है। 'पणिहारी'-प्रथा के आयोजन में साहित्य, संगीत और कला तीनों आदर्शों का पूर्ण समन्वय हुआ है। इस प्रकार के गीतों को केवल पढ़कर साहित्यिक सन्तोष कर लेने से ही पूर्णानन्द का लाभ नहीं समझना चाहिए। इसका सजीव और सुन्दर रूप तो इसके वास्तविक दृश्य में रहता है और इसकी कलात्मक मधुरिमा बसती है इसके संगीत में। बाहरी जगत् के अधिकाधिक सम्पर्क से तथा ज़माने की बदलनेवाली हवा से अब यह मनोहारिणी प्रथा शिथिल होती जा रही है, तो भी लुप्त नहीं हो गई है। यों तो राजपूताना के प्रायः सभी राज्यों में यह दृश्य देखने को मिलता है, परन्तु मारवाड़ की पनिहारिनों का दृश्य विशेष मनोरम होता है। नागौर, मेड़ता, मूँडवा, जोधपुर और उदयपुर आदि नगरों में यह दृश्य अब भी वर्षा-ऋतु में सुलभता से देखा जा सकता है।

इस प्रथा ने वैयक्तिक दृष्टि से भी गृहस्थ जीवन में कलात्मक भावना की सुरुचि का समावेश किया है और नागरिक जीवन में सौन्दर्योपासना, स्वच्छता और स्वातन्त्र्य की वृत्ति की ज्योति का कुछ आभास दिया है।

अब ज़रा इसके साहित्य-सौन्दर्य को भी देखिए। 'पणिहार' के बहुत-से प्रचलित गीतों में से पश्चिमी राजस्थान में बहु-प्रचलित एक गीत नीचे दिया जाता है—

काळी ए काळायण ऊमटी, पणिहारी ए लो।
मोटोड़ी छाँटाँ रो बरसै मेह, वाला जो॥
भर नाडा भर नाडिया, पणिहारी ए लो।
भरियो भरियो समँद-तळाव, वाला जो॥
किण जी खुणाया नाडा-नाडिया, पणिहारी ए लो।
किणाँ जी खुणाया तळाव, वाला जो॥
सुसरैजी खुणाया नाडा-नाडिया, ए पणिहारी ए लो।
पिवजी खुणाया तळाव, वाला जो॥
सात सहेल्याँ रे झूलरे, ए पणिहारी ए लो।
पाणीड़े ने चाली रे तळाव, वाला जो॥
घडो य न डूबे बेवड़ो, ए पणिहारी ए लो।
ईढुँणी तिर-तिर जाय, वाला जो॥
सातूँ रे सहेल्याँ पाँणी भर चाली, ए पणिहारी ए लो।
पणिहारी रही ए तळाव, वाला जो॥
वैंवते ओठी ने हेलो मारियो, लंजा ओठीड़ा ए लो।
घड़ियो उखणावतो जाय, वाला जो॥
ओरॉं रे काजळ-टीकियाँ, पणिहारी ए लो।
थारोड़ा फीकरिया नैंण, वाला जो॥
ओराँ रे ओढण चूनड़ी, पणिहारी ए लो।
थारोड़ो मैलो सो वेस, वाला जो॥
ओराँ रा पिवजी घर बसै, लंजा ओठीड़ा हे लो।
म्हारोड़ा बसै परदेस, वाला जो॥
घड़ो पटक देनी ताळ में, पणिहारी ए लो।
चालै नी ओठीड़ै री लार, वाला जो॥
बाळू तो जाळूँ थारी जीभड़ी, रे लंजा ओठीड़ा ए लो।
डसै तनें काळो नाग, वाला जो॥
घड़ियो तो भर नै पाछी वळी, पणिहारी ए लो।
आई आई फळसे रे बार, वाला जो॥
घड़ियो पटक दूँ ऊभी चौक में, म्हारा सासूजी ए लो।
बेगेरो घड़ियो उतराव, वाला जो॥
किण थाँने मोसो मारियो, म्हारा बहूजी ए लो।
किण थाँने दीवी है गाळ, वाला जो॥
एक ओठी मनें इसो मिल्यो, म्हारा सासूजी ए लो।
पूछो म्हारे मनड़े री बात, वाला जो॥
देवर जी सरीसो डीघो-पातळो, म्हारा सासूजी ए लो।
नणदल बाई-सा रे उणिहार, वाला जो॥
थे तो बहूजी भोळा घणा, म्हारा बहूजी ए लो।
ओ तो थाँरो ही भरतार, वाला जो॥

अर्थ—

पावस की काली काली घन-घटायें उमड़ आई हैं और मोटी मोटी बूँदोंवाला मेह बरसने लगा है। ताल-पोखरे भर गये हैं और समुद्र की तरह विशाल सरोवर भी भर कर उतरा रहा है।

ए पनिहारी, ये ताल-तलैयाँ किसने खुदवाये हैं? और किसने खुदवाया है यह विशाल तालाब?

स्वसुरजी ने ताल-तलैयाँ खुदवाये हैं। प्रियतम ने तालाब खुदवाया है। सात सहेलियों के झूलरे के साथ पनिहारी पानी भरने सरोवर को चली। तालाब लबालब जल से भरा है। घड़ा और उसके ऊपर का छोटा पात्र

डुबोया नहीं डूबता और ईडुरी पानी पर तैर-तैर कर निकल जाती है।

सातों सहेलियाँ पानी भर कर चल दीं। केवल पनिहारी तालाब पर रह गई। एक ऊँट का सवार (ओठी) राह राह जा रहा था। पनिहारी ने उसे आवाज़ दी और घड़ा उठाने को कहा। [पनिहारी को क्या पता था कि यही उसका चिर-प्रतीक्षित प्राणेश्वर होगा।]

ओठी ने पूछा—ए पनिहारी, औरों ने कज्जल-बेंदी लगा रक्खे हैं। तेरे नेत्र फीके-से क्यों हैं? औरों के चुनरियाँ ओढ़ने को हैं। तेरे मैले वस्त्र कैसे?

पनिहारी ने उत्तर दिया—औरों के प्रियतम घर पर हैं। यह ओठी, मेरा पति विदेश गया है।

इस पर ओठी ने ठीक ही तो कहा। परन्तु पनिहारी इसका रहस्य समझती कैसे?

ओठी ने कहा—घड़े को ताल में पटक दे और मेरे पीछे हो जा। पनिहारी को ये वाग्बाण विषैले लगे और वह खिसिया कर बोली—जला दूँ तेरी जीभ को, ओठी, तुझे काला नाग डसे।

इस प्रकार प्रश्नोत्तर करके पनिहारी वापस आई। घर के द्वार पर पहुँचकर सास को पुकारकर घबराये स्वर में कहा—पटक दूँ इस घड़े को चौक में। सास जी, इसे जल्दी उतारो।

सास बोली—बहू मेरी, तुझे किसने ताना दिया है, किसने तुझे गाली दी है?

उत्तर—मुझे आज एक ओठी मिला, जिसने मेरे मन की बात पूछी। देवर के समान वह लम्बे-पतले शरीरवाला था और ननदबाई की आकृति से उसकी आकृति मिलती थी।

सास समझ गई। हँस कर बोली—

बहू, तू बहुत भोली है। वह तो तेरा ही पति है।

कलात्मक सौन्दर्य और मनोविज्ञान के अच्छे दृश्य इस चित्र में सम्मिलित हैं। और पनिहारिनें संयोग-सुख के उल्लास में घड़े भर कर लौटने की तैयारी में हैं। उनकी आत्मायें संगीतमय हो रही हैं। परन्तु वियोगिन पनिहारी अन्यमनस्क होकर घड़ा भर रही है, चित्त उसका और किसी ओर लगा है। उमड़ी हुई काली घटा 'झूलरे' का यह सुख-संगीत उसके हृदय में प्रियस्मृतिजन्य आत्म-विस्मृति पैदा कर देता है। इसी लिए उसका घड़ा डुबाये नहीं डूबता—उसकी ईडुरी तैर-तैर कर जल में निकली जाती है। वह स्वयं प्रियचिंतन में डूबी है। घड़ा कैसे डूबे?

विरह की दीवानी को छोड़कर और पनिहारिनें चल दीं। वह अकेली रह गई। घड़ा कौन उठावे? कैसी विषम परिस्थिति है?

ऊँट का सवार घड़ा उठाकर अपनी राह लेता तो चित्र में यह रस-रंग पैदा न होता। ओठी के हृदयस्पर्शी प्रश्न पनिहारी के कलेजे में उथल-पुथल मचा देते हैं। उसका कलेजा मुँह को आता है। जिस समय उत्तर में यह कहने को बाध्य होती है कि औरों के पति घर पर हैं, मेरा विदेश में है, उस समय की उसकी मानसिक दशा कल्पना का विषय है—लज्जा, शील, संकोच, समवेदना आदि भावों की ख़ासी गुत्थी है। ओठी के प्रस्ताव में—"घड़ो पटक दे ताल में" में एक असहनीय स्पष्टता है, जो पनिहारी को बहुत अखरती है, और वह उससे अपना अपमान समझती है। परन्तु इसका दोष ओठी को नहीं, परिस्थिति के आकस्मिक संयोग को दिया जा सकता है।

घर लौटने पर पनिहारिन की परिस्थितिजन्य घबराहट और साथ ही उसके 'मनड़े री बात' में भावों के मार्मिक सम्मिश्रण का कैसा मनोज्ञ चित्र उपस्थित किया गया है।

इसमें सन्देह नहीं, इस गीत में मानव-हृदय के अत्यन्त सूक्ष्मभाव कलात्मक रीति से केन्द्रीभूत हुए हैं। तभी तो यह राजस्थान के स्त्री-पुरुषों के हृदय का इतनी बहुलता के साथ आकर्षण कर सका है।
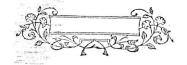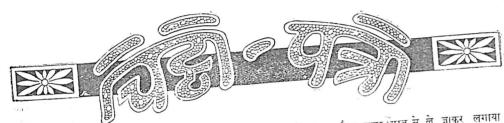
श्री भारतमाता-मंदिर

१९ मार्गशीर्ष १९९३

प्रिय महाशय—सादर नमस्कार

मैंने अभी आई हुई 'सरस्वती' के मार्गशीर्ष के अंक में भारतमाता-उद्घाटन-सम्बन्धी टिप्पणी पढ़ी। जिन शब्दों में आपने उसे लिखा है, पढ़ कर बड़ा अनुग्रहीत हुआ। अनेक धन्यवाद। पर मैं एक छोटी-सी भूल की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ। आपने लिखा है कि 'वन्दे मातरम्' का गान वहाँ न होना आपको खटका था। सो ऐसा नहीं है। जब महात्मा जी भीतर कपाट खोलकर पधारे और धार्मिक ग्रन्थों का पाठ हो चुका तब पहले 'अई भुवनमोहनी' से ध्यान, फिर 'वन्दे मातरम्' से वन्दना हुई थी। लाउड स्पीकर का प्रबन्ध कुछ गड़बड़ा जाने से व अत्यन्त शोर के कारण बाहर सुनाई नहीं पड़ा। वह वन्दना व ध्यान माता की मूर्ति के सामने ही होना उचित जानकर उसका प्रबन्ध भीतर मूर्ति के पास हुआ था। कृपा कर अगले अंक में इस भूल को सुधारने की कृपा कीजिएगा। अनुग्रहीत हूँगा।

साथ में पुस्तक व छपा हुआ गान का परचा जा रहा है जो उस समय बँटा था।

भवदीय

शिवप्रसाद गुप्त

सम्मेलन का सभापति कौन हो?

यह प्रसन्नता की बात है कि इस वर्ष हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन मदरास में होने जा रहा है। गत वर्ष के सम्मेलन के सभापतित्व के लिए 'सरस्वती' में किसी ने बाबू शिवप्रसाद गुप्त का नाम लिया था। मेरा ख़याल है कि इस वर्ष सम्मेलन को बाबू शिवप्रसाद गुप्त से बढ़कर योग्य सभापति नहीं मिल सकता। हिन्दी का इतना ज़बरदस्त हामी शायद ही कोई दूसरा हो। एक ऐसे स्थान में जहाँ हिन्दी का पौधा उत्तर-भारत से ले जाकर लगाया गया हो, बाबू शिवप्रसाद गुप्त को वहाँ के अधिवेशन का सभापति बनाना हिन्दी के गौरव को बढ़ाना होगा। मुझे दुःख है कि मैं मत-दाताओं में नहीं हूँ, पर जो हैं उनसे मेरा निवेदन है कि वे अपना मत बाबू शिवप्रसाद गुप्त के पक्ष में अवश्य दें। मैंने सुना है, गुप्त जी का स्वास्थ्य वैसा अच्छा नहीं है। यदि वे इस कारण इस पद को स्वीकार न करें तो मैं यह प्रस्ताव करूँगा कि नीचे लिखे तीन नामों में कोई एक नाम चुना जाय।

(१) श्री राहुल सांकृत्यायन
(२) श्री पुरुषोत्तमदास टंडन
(३) श्री जमनालाल बजाज़

—एक हिन्दी-प्रेमी

हिन्दी में अँगरेज़ी महीने किस प्रकार लिखे जायँ?

हिन्दी-भाषा में अँगरेज़ी महीनों के नाम किस प्रकार लिखे जायँ, इस पर शायद समुचित विचार नहीं हुआ है। यही कारण है कि एक ही अँगरेज़ी महीने का नाम लोग हिन्दी में कई तरह लिखते हैं। उदाहरणार्थ ता० २७ सितम्बर की 'बिजली' के सम्पादकीय विचार में 'अक्तूबर' लिखा है और उसी अंक के समाचार-संग्रह कालम में 'अक्टूबर'। 'सरस्वती' उसे आक्टोबर लिखती है। कोई सितम्बर लिखता है तो कोई 'सेप्टेम्बर'। इसी प्रकार 'फ़रवरी' 'फर्वरी' और 'फ़ेब्रुअरी' तथा 'एप्रिल' और 'अप्रैल' भी लिखे जाते हैं। मेरे विचार में अँगरेज़ी महीने हिन्दी भाषा में इस प्रकार लिखे जाने चाहिए—जनवरी, फ़रवरी, मार्च, अप्रैल, मई, जून, जुलाई, अगस्त, सितम्बर, अक्तूबर, नवम्बर, दिसम्बर। आशा है, हिन्दी के अधिकारी विद्वान् इस पर अपनी सम्मति प्रकट करेंगे।

योगेन्द्र मिश्र, मुज़फ़्फ़रपुर।

जाग्रत नारियाँ

गांधीयुग की स्त्री

लेखक, श्रीमती राजकुमारी मिश्रा

हिन्दू-संस्कृति ने आरम्भ से ही जीवन के लिए एक आदर्श रक्खा है। इतना होते हुए भी वह सिर्फ़ आदर्श के स्वीकार में ही गौरव नहीं मानती है, और उसके बिन्दु की तरफ़ जीवन स्वाभाविक रीति से चलता जाय, इसलिए विवेक-बुद्धि और व्यावहारिक बुद्धि का उपयोग करके नियम बनाकर उन्हें समाज में प्रचलित कर दिया है। चाहे जैसी उच्च भावना हो उसके विशाल जन-समुदाय में जाने पर और वहाँ अधिक काल तक ऊपर रहने पर भी उसमें विकृति का आ जाना अनिवार्य है। आर्य-संस्कृति की महद् भावनायें इसी से विकृत हुई हैं।

बहुत अर्से के बाद यहाँ भी पाश्चात्य संस्कृति की 'व्यक्ति-स्वतन्त्रता' की घोषणा सुनाई दी। इस शब्द के आस-पास कैसी भावनाओं के शोभन भाव चित्रित हुए होंगे? किसे पता है? किन्तु यहाँ तो 'व्यक्ति-स्वातन्त्र्य' का 'सामाजिक उत्तरदायित्व का नाश' ऐसा ही अर्थ किया जाता है। वर्षों से अन्धकार में पड़ा हुआ और मृत्यु की निर्बलता से विरूप बना हुआ समाज 'व्यक्ति-स्वातन्त्र्य' की घोषणा को अपनाने के लिए उठा या यों कहिए कि समाज का एक अङ्ग जागा।

[श्रीमती इरावती मेहता—ये इलाहाबाद के कमिश्नर श्री वी० एन० मेहता, जो बीकानेर के दीवान होकर गये हैं, की पत्नी हैं और आज-कल बच्चों की मृत्यु की समस्या की छान-बीन में लगी हैं।]

इस 'व्यक्ति-स्वातन्त्र्य' की आकांक्षा ने अनेक जीवन-स्पर्शी विषयों को देखने की प्रेरणा की है। इतना ही नहीं, गहरे असन्तोष की चिनगारी प्रकट करके—स्त्री-पुरुष को

रहे, सम्राट्! अमर— ... दिया उससे पहले ही
मानव के वर! ... अपना उर,
इसलिए खिंचे फिर नहीं —
... विशाल

[लाहौर की संगीत-प्रवीण छात्रायें। बैठी हुई बाईं ओर से कुमारी कौमुदी, कुमारी प्रीतम धवन और कुमारी एस० सी० चटर्जी। खड़ी हुई कुमारी लीला भण्डारी, कुमारी यमुना, कुमारी लज्जावती धवन और कुमारी कमला मोहन।]

इसने अपने व्यक्तित्व को नये दृष्टि-बिन्दु से देखने की प्रेरणा की है। दोनों को सामाजिक बन्धन कठिन लगते हैं, दोनों को अपना साम्प्रत जीवन परिवर्तन माँगता हुआ नज़र आता है। फलस्वरूप समाज के दो अङ्ग—स्त्री-पुरुष अन्तर्विग्रह की तैयारी कर रहे हों, ऐसा मालूम होता है। स्त्री को पुरुष सत्ताशील, स्वतन्त्र, सुखी मालूम होता है, और वह अपनी जाति को दलित कहती है। पुरुष की वेदना और ही है। दिन व दिन जीवन-कलह भयङ्कर रूप धारण करता जाता है। इससे वह स्त्री के मार्दव की अधिक अपेक्षा रखता है। किन्तु नई स्त्री इस मार्दव में ग़ुलामी देखत... ...हुई है। इससे वे

स्थिति इससे भिन्न है। फिर भी आन्दोलन के आरम्भ होने के बाद से लेकर आज तक दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ दिखाई दी हैं। यह चिह्न जागृति के लिए आवश्यक है। अब देखना इतना है कि इस जागृति के बाद भी फिर... सोती हैं या नहीं? जागृति के चमत्कार के बाद यह जुगनू पुनः पंख बन्द कर देनेवाले हैं या नहीं? मदभरी आँखों की निद्रा भङ्ग हो, और फिर घोर निद्रा आ जाय, ऐसा तो नहीं होगा न?

स्त्रियाँ किधर जा रही हैं?

इस प्रश्न के उत्तर के लिए स्त्रियों की दोनों प्रकार की प्रवृत्तियों पर दृष्टि डालनी पड़ेगी। इसके बाद ही उत्तर मिलेगा। 'व्यक्ति-स्वातन्त्र्य' के पाये पर इमारत बाँधने... वर्ग कहेगा कि अभी स्त्री-समाज

... नहीं हुई। पक्षपाती शास्त्रकारों ने इनके ... समाज ने स्त्रियों को सदा दबाये रखने और ... जो नाग-पाश डाली है वह अभी ...

... कि स्त्री जागी है।

... पर सवार होकर कालेज जाती ... मोटर चलाती है। कोई युवती ... केशों का परित्याग करके बोब्डहेर ... हाथ में कागज़ों का बंडल लेकर ... कोई रैकेट लेकर टेनिस ग्राउंड की ... रक्षा के लिए पुरुषों को गालियाँ देती ... से भरे हुए नये नये लेख लिखती ... प्रति होनेवाले अन्याय के विरुद्ध ... खड़ी होकर रोष की वर्षा करती है। पहले ... नीचे ये दृश्य तैर रहे हैं। इसलिए ... होते हैं। किन्तु इस आनन्द के पीछे ... है। वेदना इसलिए है कि ऐसी स्त्री ने ... की संख्या में यह दृश्य देखने की ... बल्कि हज़ारों या लाखों की संख्या में। ... चन्दा वसूल करती हुई, शराब या ... पिकेटिंग करती हुई, सरकस में जाती ... चले ऐसी आशा होने पर भी पड़ती ... लेना, अगुआ बनना, ऐसी ऐसी ... पर दृष्टि स्थिर कर दूसरा वर्ग इसका ...

... आलेखित चित्रों से ये दूसरे चित्र अवश्य भक्ति-... है। फिर भी इस पर से बड़ी लम्बी आकृति ... स्त्री-समाज जागा है, यह नहीं कहा जा सकता। ... ये चित्र स्त्री-विकास की ख़ासी मधुर रेखा तो ... है। किन्तु जो विकासोन्नति के भव्य दर्शन के ... रहे हैं उन्हें कुछ अधिक देखना है— ... मनःचक्षुओं को शारीरिक और आध्यात्मिक ... हिताहित की दृष्टि से माप निकालते हैं वे भी ... की इच्छा रखते हैं।

... स्त्रियाँ जाग्रत हुई हैं, किन्तु जागृति की चेतना ... स्त्री-समाज में नहीं फैली है।

स्त्री-समाज का बड़ा—बहुत बड़ा वर्ग ऐसा है जहाँ

[कुमारी शान्ता अमलादी (बम्बई)। ये संगीत-कला में बड़ी निपुण हैं और इनका कंठ बहुत ही मधुर है।]

जागृति का असर भी नहीं दीखता। अभी वही अज्ञानता, वही निर्बलता और वही की वही मनोदशा है। इसका नाश अवश्य होगा। अभी तो नहीं हुआ है। सुधारक इस विषय के लिए बहुत कम विचार करते हैं। यदि इस विषय को महत्त्व न दें तो भी उपेक्षा भी तो नहीं की जा सकती। पुरुषों के सामने थोड़े ही अन्तर के बाद तिरस्कार में परिवर्तन प्राप्त हुआ है। पुरुष को हृदयहीन, ज़ालिम के तौर पर देखने की प्रवृत्ति, द्रव्योपार्जन की व्यवस्था, इन सबको लक्ष्य के तौर पर गिननेवाली स्त्री रसोई का जीवन जीवन को घबरानेवाला माने, सेवा में ग़ुलामी माने, शर्म में निर्बलता का अनुभव करे, शिशुपालन में अत्याचार समझे, यह सब क्या उन्नतिकारक है? इससे क्या आर्यावर्त्त का उत्कर्ष होगा?

ऐसे सुधार की लहर के बाद के सुधार में (गांधी-युग के सुधार में) कुछ सङ्गीनता और गम्भीरता आई। स्वार्थी और पक्षपाती विचार-प्रवाह में गम्भीरता ने मानव-कर्तव्य की ओर हिताहित की विचारणा के तत्त्वों को बढ़ाया। इसने शब्द-बल को कार्य-बल में परिणत किया।

फलस्वरूप नई शक्ति का आगमन हुआ। नाज़ुक सेवा के
शौक़ दबे, और जो तत्त्वज्ञान की बातें नहीं कर सकतीं,
राजनीति या कारबार की ग्रन्थि नहीं सुलझा सकतीं, भाषण
करने का जिसमें साहस नहीं, ऐसी शक्ति घूँघट दूर करके
आई और जो काम मिला सो कर स्त्रीत्व को प्रकाशित कर
गई—आगे के सुधारों की उत्पन्न की हुई घोर निराशा के
अन्धकार में बिजली चमका गई।

आज ये दोनों वायु के प्रवाह से बह रहे हैं। पहला
पुराना होने से सतत बहता रहा, और उसमें नया वायु-
प्रवाह मिला। दोनों ने अपनी अपनी विशिष्टता सुरक्षित
रखते हुए भी एक रूप लिया, किन्तु अब यह प्रवाह
पीछे का असहकार का बल जाते ही क्या होगा, यह देखने
को है। दूसरा वायु वज़नदार होने से शायद ज़मीन पर बैठ
जाय और पहला हलका होने से उड़ता रहे। ऐसा होना
सम्भव है।

मालूम होता है कि भारत के स्त्री-समाज में से स्त्रीत्व
की अग्नि कभी नहीं बुझी। हाँ, वर्षों से अज्ञानता की राख
पड़ी रहने के कारण इस अग्नि की गर्मी कम हो गई
है। आरम्भिक सुधारणाकी भावना ने पाश्चात्य पवन की
फूँक से इसे उड़ाने का प्रयत्न किया। यह पवन एक टुकड़ी
के मुख के निकला। इस टुकड़ी में स्त्री-पुरुष दोनों थे।
स्त्रियाँ अच्छी तरह आगे की लाइन में खड़ी हुईं। इन
स्त्रियों में कुमारियाँ और बड़े आदमियों की पत्नियाँ थीं।
जिन्होंने समाज की दूसरी तरफ़ दृष्टि नहीं डाली थी उन्हें यह
ज्ञान होगा, किन्तु मानसशास्त्र की उन्होंने उपेक्षा ही की।

प्रवृत्ति ने पृथ्वी पर के आकाश को उज्ज्वल बना
दिया। कितने ही पुरुषों ने भी सहकार किया। परिणाम
यह हुआ कि स्त्री स्त्री होने के कारण उच्च है, ऐसी दलीलें
आँधी पर चढ़ीं। ऐसे समय में इस वातावरण के विरुद्ध
का सत्य या असत्य बोलने में असुरक्षिता दिखने लगी।
फलस्वरूप न प्रतिकार हुआ, न तत्त्वज्ञान की वृद्धि। इससे
यह प्रवृत्ति बढ़ नहीं सकी। दूसरी तरफ़ इस प्रवृत्ति के
स्वीकार करनेवालों में शब्दचातुर्य-शब्दच्छल का विकाश
हुआ और आदर्श की आकांक्षा बढ़ी।

सत्याग्रह के संग्राम ने इसमें की कुछ शक्तियों को
प्रोत्साहन देकर नया जीवन दिया। इस संग्राम में जितनी
शामिल हुई थीं उन सबों ने कुछ ऐसा जीवन स्वीकार
नहीं किया। इससे लड़ाई को नुक़सान हुआ हो, ऐसा निश्चय
करते नहीं बनता। बलिदान माँगनेवाले कार्य किये जाते
थे, फिर भी नासमझ और अनुदार व्यक्तियों की तरफ़ से
इस विषय में टीका की जाती है वह इस स्त्री-मानस को
ही आभारी है।

इस विलासी वातावरण से आवृत्त हुई नारी कार्य की
गम्भीरता के अनुरूप सादगी और गम्भीरता न सज सकी।
उसने असहकार की प्रवृत्तियों को अनुकूल बनाकर सेवा
में सत्ता के शौक़ की तृप्ति देखी।

गांधीयुग ने स्त्री को जाग्रत और बलवान बनाने का
प्रयत्न किया, साथ ही उसके स्त्रीत्व-रक्षा का भी ख़याल
रक्खा। शब्दबल से कार्यबल अधिक आवश्यक है, यह
उसे समझाया, और बरसों के विलायत के असरवाले
सुधारकों के भाषण पुरुष-हृदय में स्त्री-सम्मान का जो प्रदीप
न प्रकटा सके सो इस युग की हलचल ने थोड़े में ही दिखा
दिया। स्त्रियों के लिए पुरुष की मान्यताओं में जो उदार
परिवर्तन हुआ वह सब कहीं नहीं दीखता। फिर भी जो
कुछ हुआ वही बहुत है।

गांधीयुग घर के आवश्यक और अनावश्यक युद्धों का
भेद भी करके बताता है।

स्त्री-सम्बन्धी आदर्श और आर्य सन्नारी की भावना
का प्रभाव पड़े ऐसा प्रचार संयोगों की विचित्रता और वही
कार्य करनेवाली टुकड़ी के अभाव से नहीं हुआ है।
किन्तु गांधीयुग ने अपने विशिष्ट विचारों को पेश करके
उन्हें गति में रख दिया है। अच्छी वस्तु को बिगाड़ने में देर
नहीं लगती। किन्तु फिर बनाने में समय और प्रयत्न दोनों
की आवश्यकता रहती है। इससे गांधीयुग ने पहले के
'बल' दबाये अवश्य, फिर भी पुनः सिर ऊँचा करने जैसी
स्थिति में ही वह रहा है। दिन पर दिन नये बनाव बनते जाते
हैं, एक बल दबकर दूसरा बल ऊपर आता है। गांधी जी
की हलचल होगी, ऐसा उस समय कौन जानता था? फिर
ऐसा बल पैदा होगा और स्त्री-विकास की हलचल को वह
योग्य रास्ते पर लगा देगा, ऐसी आशा क्यों न की जाय?

भारतवर्ष का मुख उज्ज्वल रक्खें और अपने गृह-संसार
को मधुरतम और सुखमय बनायें, ऐसी आर्य महिलायें
शीघ्र बाहर आयें, यही हमारी आकांक्षा है।

सम्राट् अष्टम एडवर्ड का सिंहासन-त्याग

सम्राट् अष्टम एडवर्ड और मिसेज़ सिम्पसन की
प्रेम-कहानी मानव-जाति के इतिहास में अमर रहेगी।
मिसेज़ सिम्पसन एक वयस्क अमरीकन महिला हैं
और वे दो पतियों को तलाक़ दे चुकी हैं। ऐसी
महिला को अँगरेज़-जाति ने अपनी रानी बनाना
स्वीकार नहीं किया और सम्राट् एडवर्ड से उनके
मंत्रियों ने कहा कि ऐसा विवाह वे राजसिंहासन का
परित्याग करके ही कर सकते हैं। इसलिए एक साधा-
रण स्त्री के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करने के
लिए सम्राट् अष्टम एडवर्ड ने सिंहासन का परित्याग
करना ही उचित समझा। वे सम्राट् भले ही न रहें,
इस महान् कार्य से उन्होंने अपने महान् त्याग का
परिचय दिया है और उनकी लोकप्रियता और भी
बढ़ गई है। राजत्याग करते समय उन्होंने जो मर्म-
स्पर्शी घोषणा की है उसे हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

"ख़ूब गहरे और लम्बे सोच-विचार के बाद मैंने उस
राजगद्दी को छोड़ने का निश्चय किया है जिसका मैं अपने
पिता की मृत्यु के पश्चात् उत्तराधिकारी बना था। और
अब मैं अपने इस अन्तिम व अटल निर्णय की सूचना देता
हूँ। मुझे इस क़दम की गम्भीरता का अनुभव हो रहा है,
परन्तु मैं केवल यह आशा कर सकता हूँ कि जो मैंने किया

[सम्राट् एडवर्ड श्रीमती सिम्पसन के साथ थियेटर देख रहे हैं।]

है और जिन कारणों से मुझे यह निर्णय करना पड़ा है, मेरी प्रजा मेरा समर्थन करेगी। मैं अपने व्यक्तिगत मनोभावों के सम्बन्ध में यहाँ कुछ नहीं कहूँगा, परन्तु मैं प्रार्थना करूँगा कि यह याद रखना चाहिए कि सम्राट् के कन्धों पर लगातार जो बोझ रहता है वह इतना भारी है कि वह केवल उन्हीं परिस्थितियों में उठाया जा सकता है जब कि वे उन परिस्थितियों से भिन्न हों जिनमें कि इस समय मैं अपने को पाता हूँ।

[मिसेज़ सिम्पसन का हाल का एक चित्र।]

मेरा विचार है कि उस समय मैं अपने उस कर्तव्य से विमुख नहीं हो रहा हूँ जो सार्वजनिक हितों को सबसे आगे रखने का मुझ पर है, जब कि मैं यह घोषित करूँ कि मैं यह महसूस करता हूँ कि मैं इस भारी काम को अब योग्यता अथवा अपने सन्तोष के लायक़ पूरा नहीं कर सकता।

अतः आज सुबह मैंने निम्नलिखित शर्तों के अनुसार राज-[illegible] छोड़ने के घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर

"मैं, एडवर्ड अष्टम, ब्रिटेन, आयर्लेंड तथा समुद्र-पार के ब्रिटिश उपनिवेशों का राजा और भारतवर्ष का राजराजेश्वर अपने और अपने वंशजों के लिए तख़्त छोड़ने के लिए अटल संकल्प की घोषणा करता हूँ। साथ ही मैं यह भी घोषित करता हूँ कि मेरी इच्छा है कि राज्य-त्याग के इस घोषणापत्र के अनुसार तत्काल कार्यवाही की जाय। इसके लिए मैं आज १० दिसम्बर १९३६ को निम्नलिखित गवाहों के सम्मुख हस्ताक्षर करता हूँ।"

हस्ताक्षर—सम्राट् एडवर्ड। फ़ोर्ट बलवेडियर में अलबर्ट हेनरी जार्ज के सम्मुख हस्ताक्षर हुए।

"मेरे इस घोषणा-पत्र पर मेरे तीन भाइयों ने गवाहियाँ दी हैं।

"विभिन्न निर्णय करने के सम्बन्ध में मुझसे जो अपीलें की गई हैं, उनमें व्यक्त भावनाओं की मैं सराहना करता हूँ और अंतिम निर्णय पर पहुँचने के पहले मैंने उन पर पूर्ण विचार कर लिया है। मगर मेरा निश्चय अटल है। इसके अलावा अब विलम्ब करना उस जन-साधारण के लिए हानिकारक होगा, जिनकी सेवा युवराज और सम्राट् के रूप में करने की चेष्टा मैंने की है और जिनकी भावी उन्नति और सुख सदा हमारे हृदय में रहेंगे।

"मुझे पूरा यक़ीन और उम्मीद है कि मैंने जिस मार्ग का अनुसरण किया है वह राज-सिंहासन और साम्राज्य के स्थायित्व और प्रजाजन के सुख के लिए सर्वोत्तम है। मेरे सिंहासनारूढ़ होने के बाद मेरे प्रति जो सद्भावनाएँ दिखाई गई हैं और जो मेरे उत्तराधिकारी के प्रति भी दिखाई जायँगी उनके लिए मैं कृतज्ञ रहूँगा।

"मैं इसके लिए उत्सुक हूँ कि इस घोषणा को कार्य रूप देने में विलम्ब नहीं होना चाहिए और मेरे वैध उत्तराधिकारी मेरे भाई हिज़ रायल हाइनेस ड्यूक आफ़ यार्क को शीघ्र ही सिंहासनारूढ़ करने की कार्रवाई करनी चाहिए।"

प्रधान मंत्री मिस्टर बाल्डविन का वक्तव्य

सम्राट् के राजसिंहासन-त्याग के बाद प्रधान मंत्री [illegible] बाल्डविन जिन्होंने इस सम्बन्ध में

प्रमुख रूप से भाग लिया था, पार्लियामेंट में इस पर प्रकाश डालते हुए निम्नलिखित भाषण दिया था—

इस सम्बन्ध में मुझे प्रशंसात्मक व निन्दात्मक आलोचना व टीका-टिप्पणी नहीं करनी है। मेरे ख़याल से मेरे लिए साफ़ मार्ग यह है कि सम्राट् और मेरे बीच जो बातचीत हुई और वर्तमान स्थिति कैसे उत्पन्न हुई, उसको साफ़ साफ़ आपके सामने रख दूँ। मैं आरम्भ में ही कह देना चाहता हूँ कि सम्राट् ने जब वे प्रिंस आफ़ वेल्स थे, अपनी मैत्री से मुझे सम्मानित किया है और उसको मैं बहुत क़ीमती समझता हूँ। मैं जानता हूँ कि सम्राट् इस बात से सहमत होंगे कि यह मैत्री न केवल मनुष्य और मनुष्य के बीच थी, बल्कि मैत्री की सम्पूर्णता थी, और मैं आपको बताना चाहता हूँ कि मंगलवार की रात को फ़ोर्ट बेल्वेडर से जब मैं विदा हुआ तब हम दोनों ने अनुभव किया और परस्पर प्रकट किया कि विगत सप्ताह सम्राट् के साथ की गई बहस ने हमारी मैत्री को क्षति नहीं पहुँचाई है, बल्कि हम दोनों को और दृढ़ मैत्री के बन्धन में बाँध दिया है और यह जीवन-पर्यन्त क़ायम रहेगी।

सभा जानना चाहती होगी कि सम्राट् से मेरी पहली मुलाक़ात कब हुई। सम्राट् ने उदारतापूर्वक मुझे हम दोनों के बीच हुई बातचीत को आपसे कहने के लिए इज़ाजत दे दी है। जैसा आपको मालूम है, अगस्त और सितम्बर में मुझे पूर्ण विश्राम लेने की सलाह दी गई थी, जिसका मैंने अपने साथियों की मेहरबानी से पूर्ण उपभोग किया। अक्तूबर का मास आरम्भ होने पर यद्यपि मुझे विश्राम लेने के लिए कहा गया था, मगर मैंने अपने कार्य के महत्त्व को देखते हुए और अवकाश लेना उचित नहीं समझा। अक्तूबर आधा गुज़रने के बाद मैं आया। इस समय मेरे सामने दो काम थे, जिनसे मेरा मन अशान्त था। उस समय मेरे दफ़्तर में बहुत चिट्ठियाँ, मुख्यरूप से ब्रिटिश प्रजा और संयुक्तराष्ट्र अमरीका के ब्रिटिश वंशज अमरीकन नागरिकों की ओर से आ रही थीं।

मैंने देखा कि डोमीनियनों, इस देश और अमरीकन समाचार-पत्रों में प्रकाशित समाचारों से देश में बेचैनी फैल रही है। मैंने अनुभव किया कि तलाक़ देने से परिस्थिति और विकट हो जायगी। मैंने अनुभव किया कि सम्राट् से मिलने और उनको सावधान करने का समय आ गया है। क्योंकि पत्रों में प्रकाशित समाचारों, आलोचनाओं और टीका-टिप्पणी के बाद स्थिति के और विकट हो जाने की सम्भावना थी। मैंने अनुभव किया कि इस समय एक आदमी का काम है और वह प्रधान मन्त्री ही है जो इस कार्य को कर सकता है। मैंने अनुभव किया कि देश के प्रति जो मेरा कर्तव्य है वह मुझे बाधित करता है कि मैं सम्राट् को चेतावनी दूँ। मैंने यह भी विचार किया कि मैं सम्राट् का केवल एक सलाहकार ही नहीं हूँ, बल्कि मित्र भी हूँ और उस नाते भी मुझे अपना कर्तव्य पालन करना

[मिस्टर बाल्डविन।]

चाहिए। मेरे इस कार्य को मेरे साथियों ने जल्दबाज़ी बताया और मुझे इस जल्दबाज़ी के लिए माफ़ भी कर दिया। मैं फ़ोर्ट बेल्वेडर के समीप ही रहा था। मुझे जब मालूम हुआ कि सम्राट् १८ अक्तूबर शनिवार को एक शिकार पार्टी का आतिथ्य करने के लिए बरमिंहम जा रहे हैं और रविवार को यहाँ वापस आ जायँगे तब मैंने उनसे मिलने का निश्चय किया।

२० अक्तूबर को इस सम्बन्ध में पहली बार मैं सम्राट् से मिला और अमरीकन पत्रों में प्रकाशित समाचारों की ओर सम्राट् का ध्यान खींचते हुए चिन्ता प्रकट की। उस

समय सम्राट् को मैंने चेतावनी भी दी कि ब्रिटिश साम्राज्य के इतिहास में 'ताज' का आज जितना महत्त्व है, उतना पहले कभी नहीं था। मैंने सम्राट् को सावधान करते हुए कहा कि 'राजमुकुट' आज साम्राज्य की एकता और अनु-रणता की ही गारण्टी नहीं करता, बल्कि देश की एकता और अनुरणता की भी गारण्टी करता है और देश को उन बहुत-सी बुराइयों से बचाता है जिनका अन्य यूरो-पियन देश शिकार हो रहे हैं। सम्राट् की पत्रों में इस प्रकार आलोचना प्रकाशित होने से 'ताज' की यह शक्ति क्षीण होती है और साम्राज्य को इससे धक्का लगता है।

इसके बाद मैं सम्राट् से इस सम्बन्ध में १६ नवम्बर को मिला। इसी रोज़ मिसेज़ सिम्पसन की डिक्री घोषित की गई। सम्राट् ने इस अवसर पर मिसेज़ सिम्पसन से विवाह करने की इच्छा प्रदर्शित की और कहा कि इस विषय में बहुत पहले से वे मुझसे बातचीत करनेवाले थे।

२५ नवम्बर को जब मैं सम्राट् से मिला तब उन्होंने पूछा कि क्या पार्लियामेंट ऐसा क़ानून बना सकेगी जिससे मिसेज़ सिम्पसन मेरी पत्नी तो हो सकें, मगर रानी न बन सकें।

२ दिसम्बर को मैंने सम्राट को सूचित किया कि यह अव्यावहारिक है। राजा ने कहा कि वे इस जवाब से चकित नहीं हुए हैं।

सम्राट् निम्न तीन बातें चाहते थे—

वे प्रतिष्ठा के साथ गद्दी से अलग हों। ऐसी स्थिति में राज्यत्याग करें, जिससे कम से कम मन्त्रि-मण्डल और जनता अशान्ति और गड़बड़ का अनुभव न करे। यथा-सम्भव वे ऐसी स्थिति में विदा हों, जिससे उनके भाई को सिंहासनासीन होने में कम से कम कठिनाई हो।

मैं सभा को बताना चाहता हूँ कि सम्राट् के लिए 'राजा की पार्टी' यह विचार तक एक घृणोत्पादक था।

सम्राट् का अन्तिम उत्तर ९ को प्राप्त हुआ। सम्राट् से पुनः विचार करने के लिए प्रार्थना की गई। मगर उन्होंने सखेद सूचित किया, उनका निर्णय अपरिवर्तनीय है।

सम्राट् एडवर्ड का संक्षिप्त परिचय

[illegible] अवसर पर पाठक सम्राट् एडवर्ड का परि-[illegible]

उनका संक्षिप्त परिचय यहाँ हम 'हिन्दुस्तान' से देते हैं—

सम्राट् एडवर्ड (अष्टम) की वैवाहिक घटना ब्रिटिश इतिहास में सदा अमर रहेगी।

आप कोई बहुत बड़े राजनीतिज्ञ नहीं थे। आप एक सच्चे और साफ़दिल राजा थे। आपने हमेशा अपनी प्रजा के जीवन की तह में जाने की कोशिश की और उसकी वास्तविक हालत को जाना। अपने इसी गुण के कारण आप इतने थोड़े समय में ही प्रजा के प्यारे बन गये और आपने दुनिया के सामने बादशाहत का नया आदर्श उपस्थित किया।

आपका पूरा नाम एडवर्ड अल्बर्ट क्रिश्चियन जार्ज एण्ड्रू पेट्रिक डेविड है। आप आज से १० माह पूर्व गत जनवरी में स्वर्गीय जार्ज (पंचम) के देहावसान पर इँग्लैंड के राजा तथा भारत एवं अधीनस्थ उपनिवेशों के सम्राट् घोषित किये गये थे। आपका जन्म २३ जून १८९४ में हुआ था। इस समय आपकी उम्र ४३ साल की है।

ओस्बोर्न और डार्टमाउथ के शाही नाविक कालेजों में नियमित शिक्षा प्राप्त करने के बाद १९१३ में आप ओक्सफ़ोर्ड के मैगडेलन कालेज में प्रविष्ट हुए। १९१४ से १९१८ तक आपने महायुद्ध में भिन्न-भिन्न फ़ौजों के कार्यों में भाग लिया।

महायुद्ध के बाद आपने कैनेडा, भारत, जापान, आस्ट्रेलिया और अफ़्रीका का भ्रमण किया। १९३० में आप दक्षिणी अमेरिका गये। वहाँ आपने ब्योनेसएयर्स की प्रदर्शनी का उद्घाटन किया।

१९१० में आप कारनारवोन में प्रिंस आफ़ वेल्स बनाये गये। एक वर्ष बाद आप गार्टर की उपाधि से विभूषित किये गये तथा दूसरे वर्ष पश्चात् आप ड्यूक आफ़ कार्नवाल के रूप में हाउस आफ़ लार्ड्स में बैठे। प्रिंस आफ़ वेल्स तथा राजा के रूप में आपने हर एक तरह की राष्ट्रीय प्रगति में बहुत दिलचस्पी दिखलाई। कृषि का आपको विशेष शौक़ था। इसी लिए आपने सौथम्पटन में एक खेत तथा कैनेडा में एक चरागाह भी रख छोड़ा है।

राजा के रूप में आपने देश के भिन्न-भिन्न स्थानों का दौरा किया और वहाँ के कार्यों में वैयक्तिक दिलचस्पी दिखलाई। जनता को प्रोत्साहित किया। ग़रीबों का आपको विशेष ख़याल रहता था। उनके लिए आपने अनेक बार बहुत कुछ किया और भविष्य में और अधिक करने की दृढ़ इच्छा प्रकट की।

इँग्लिश जनता ने जिन आकर्षक युवराज एवं ग़रीबों के प्यारे राजा के रूप में अपने हृदयों में जगह दी वे स्वभाव से लोकतन्त्र के हामी थे तथा उसी के उसूलों को मानते थे। दस महीने के छोटे से राज्यकाल में राजा एडवर्ड ने इँग्लैंड के राजतन्त्र को लोकतन्त्रात्मक बनाने का पूरा प्रयत्न किया और प्रजा के साथ इतना घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित कर लिया जिसकी मिसाल ब्रिटिश सल्तनत के इतिहास में ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलती।

[सम्राट् एडवर्ड का साल्ज़बर्ग की यात्रा के समय का एक चित्र। वे साधारण यात्री की भाँति कन्धे से केमरा लटकाये मित्रों से बातें कर रहे हैं। कहते हैं, इस यात्रा में मिसेज़ सिम्पसन उनके साथ थीं।]

मिसेज़ सिम्पसन कौन है?

मिसेज़ सिम्पसन के सम्बन्ध में इधर समाचार-पत्रों में तरह तरह की बातें प्रकाशित हो रही हैं। उनके पहले पति श्रीयुत स्पेन्सर ने एक पत्र-प्रतिनिधि से बातें करते हुए कहा है कि वे एक अद्भुत महिला हैं और पति को प्रसन्न करना और उसकी भक्ति करना जानती हैं। उनके सम्बन्ध में विलायत से जो सबसे पहले समाचार आये थे उनमें एक इस प्रकार था—

सम्राट् की प्रेयसी श्रीमती अर्नेस्ट सिम्पसन का २१ जुलाई १९२८ को मिस्टर अर्नेस्ट सिम्पसन के साथ जो कि स्टाक ब्रोकर (दलाल) हैं, शादी हुई थी। गत २७ अक्तू-बर को आपने तलाक़ ले लिया है। इससे पूर्व भी आपने

१९१६ में २० वर्ष की आयु में अर्ल विंगफ़ील्ड स्पेन्सर से विवाह किया था और १९२५ में तलाक़ दे दिया था।

[मिसेज़ सिम्पसन अपने लन्दन के घर में।]

श्रीमती सिम्पसन अमेरिका की रहनेवाली हैं। आज से ३८ वर्ष पहले उनका जन्म बल्टीमूर में एक भले दक्षिणी घराने में हुआ था। उनका विवाह १९१६ में अर्ल विनिफ़्रेड पेंसर के साथ हुआ। श्रीमती सिम्पसन ६ वर्षों तक उनके साथ रहीं। पश्चात् उन्होंने उसे तलाक़ दे दिया, और कैप्टन अर्नेस्ट सिम्पसन के साथ पुनः विवाह किया।

श्रीमती सिम्पसन का सौन्दर्य निःसन्देह आकर्षक है। लेकिन उस समय का सौन्दर्य तो और भी आकर्षक था। सौन्दर्य में जितना आकर्षण नहीं है, उतना उनकी चंचलता में है। उनकी पोशाक तथा रहन-सहन का ढंग अपना है, जिस... हो जाना स्वाभाविक है।

मिस्टर अर्नेस्ट सिम्पसन से विवाह करने के बाद उनके साथ ही श्रीमती सिम्पसन लंदन में आईं। यहीं इँग्लिश कोर्ट में महाराज से उनकी पहली भेंट हुई। उस समय महाराज प्रिंस-आफ़-वेल्स थे। धीरे धीरे दोनों एक-दूसरे के सम्पर्क में आने लगे। यहाँ तक कि कुछ दिनों के बाद दोनों में गाढ़ी मित्रता हो गई। उनके इस प्रेम का समाचार लंदन में ही नहीं, अमेरिका तथा अन्य स्थानों में भी फैल गया। इस समाचार की

[मिसेज़ सिम्पसन—सन् १९१६ में—प्रथम विवाह के समय का चित्र।]

पुष्टि उस समय और भी होने लगी जब महाराज एड्रियाटिक सागर की सैर के लिए रवाना हुए; और उनके साथ श्रीमती सिम्पसन भी गईं। ऐसी ख़बर पढ़ने को मिली थी कि वे महाराज के बग़ल में बैठती थीं और प्रत्येक शाही उत्सव तथा बालकन की राजधानियों और तुर्की में महाराज के किये गये सम्मानों में वे उनके साथ रहीं।

सहसा यह भी समाचार प्राप्त हुआ कि श्रीमती सिम्पसन ने अपने पति कैप्टन अर्नेस्ट सिम्पसन को तलाक़ देने की दरख़ास्त कोर्ट में दे दी है। इस बीच में अदालत में उसकी सुनवाई हुई। वहाँ से उन्हें मिस्टर सिम्पसन के ऊपर 'नीसी' की डिग्री मिली। ६ महीने के बाद २७ अप्रैल १९३७ को उसका वक़्त पूरा हो जायगा और श्रीमती सिम्पसन पुनः विवाह करने के लिए क़ानूनन स्वतन्त्र हो जायँगी।

[श्री अर्नेस्ट सिम्पसन, जिनकी पत्नी ने उन्हें हाल में तलाक़ दिया है।]

लोगों के लिए यह प्रश्न भी कम महत्त्व का नहीं है कि एक साधारण स्त्री के लिए महाराज ने अपनी राजगद्दी क्यों छोड़ दी? लेकिन इधर के समाचारों से विदित होता है कि महाराज केवल श्रीमती सिम्पसन के सौन्दर्य पर ही आकर्षित नहीं हुए हैं, बल्कि श्रीमती सिम्पसन के कितने ऐसे स्वार्थपूर्ण और प्रभावशाली कार्य हुए हैं, जिनका महाराज के ऊपर एकान्त रूप से प्रभाव पड़ा है।

कहा जाता है कि मिसेज़ सिम्पसन बड़ी सुन्दर, लावण्यमयी, आकर्षक तथा तीक्ष्ण विनोद-बुद्धिवाली हैं। और सबसे बड़ा गुण आपमें यह है कि आप वाक्चातुर्य में बड़ी प्रवीण हैं।

सम्राट् के प्रति हमारी सहानुभूति

सम्राट् के सिंहासन के त्याग पर उनके महान् व्यक्तित्व की कुछ विलायती पत्रों को छोड़कर शेष समस्त संसार के पत्रों ने प्रशंसा की है। हमारे देश के पत्रों ने तो उनके प्रति और भी अधिक श्रद्धा और सहानुभूति का परिचय दिया है, क्योंकि वे एक ऐसे सम्राट् थे जो ग़रीबों और दलितों के प्रति अपना सक्रिय अनुराग व्यक्त करने में कभी नहीं चूकते थे और कुछ पत्रों की तो यहाँ तक सम्मति है कि उनके राज्य-त्याग का उनका यह स्वभाव भी एक कारण है। यहाँ हम 'आज' के अग्रलेख का कुछ अंश उद्धृत करते हैं। इस घटना से हम भारतीयों के हृदय सम्राट् की ओर अनायास किस प्रकार खिंच गये हैं, यह इस भले प्रकार स्पष्ट हो जायगा।

साम्राज्य के लिए अपने प्रियतम की हत्या करनेवाले बहुत हो गये और होंगे, पर ऐसे पुरुष विरले ही होते हैं जो प्रिय के लिए पृथ्वी के सबसे बड़े साम्राज्य के सम्राट् होने का मोह त्याग दें। अष्टम एडवर्ड ने यही किया है और यह कहकर हृदयवान् पुरुषों के हृदय में अपने लिए सदा के लिए स्थान कर लिया है। जिस महिला से आपका प्रेम हुआ वह आपके योग्य है अथवा नहीं, यह प्रश्न ही बिलकुल दूसरा है। हमारे सामने तो यह सत्य है कि एक महिला से आपका प्रेम हो, पर साम्राज्य के शासकों ने आपको सिंहासन पर रहते हुए उससे विवाह नहीं करने दिया और आपने साम्राज्य के लिए उसका त्याग न करके उसके लिए साम्राज्य का त्याग कर दिया। यह महत्ता—हृदय की यह दृढ़ता—और बुद्धि की विशालता मानव-समाज को भूषित करनेवाली है। ब्रिटिश सिंहासन का त्याग करते समय आज हम उस महान् पुरुष को अपनी श्रद्धांजलि अर्पण करते हैं। एक प्रकृत पुरुष के प्रति मानव-समाज की यह श्रद्धा है—इसमें राज्य का कुछ भी सम्बन्ध नहीं!

अष्टम एडवर्ड का राजनैतिक जीवन आज समाप्त हो गया। इस अवसर पर यह कहना हम अपना कर्तव्य समझते हैं कि ब्रिटिश राजवंश में इधर ऐसा श्रीमान् और लोकहितैषी पुरुष दूसरा नहीं हुआ था। उस राजवंश के पुरुषों

की—विशेष कर सिंहासन के उत्तराधिकारी और सिंहासनाधिष्ठ पुरुषों की स्वतंत्रता बहुत ही मर्यादित है। उस मर्यादा के भीतर रहकर भी आपने जनता की अभूतपूर्व सेवा की और ऐसे लोकप्रिय हुए जैसा पहले कोई नहीं हुआ था।

हम मानते हैं कि जिस महिला से आपका प्रेम हो गया है वह राजराजेश्वरी होने योग्य नहीं है। इसका कारण हमारी दृष्टि में इसके सिवा और कुछ नहीं है कि उस महिला के दो विवाह पहले हो चुके थे और

[प्रेम सिंहासन से भारी सिद्ध हुआ।]

दोनों परित्यक्त पति अभी तक जीवित हैं। यदि किसी साधारण कुल की सुशीला कुमारी से विवाह करना चाहते तो सम्भवतः मंत्रिमंडल उसका विरोध करने का साहस न करता। पर इस विवाह के मार्ग में पहले के दो विवाह बाधक अवश्य थे। ब्रिटेन के साधारण क़ानून के अनुसार ऐसे विवाह वैध हैं, पर सिंहासनों के उत्तराधिकारियों की जननी ऐसी नारी नहीं हो सकती, यह बात स्वयम् सम्राट् एडवर्ड भी जानते और मानते थे। इसी से आपने प्रधान मन्त्री से कहा कि क्या आप ऐसा क़ानून नहीं बना दे सकते कि वह मेरी पत्नी हो, पर सम्राज्ञी न हो? श्री बाल्डविन ने इनकार कर दिया। इस अस्वीकृति का मर्म ही हमारी समझ में नहीं आया। अष्टम एडवर्ड के अविवाहित रहते सिंहासन के उत्तराधिकारी आपके छोटे भाई ड्यूक आफ़ यार्क थे, और अब तो आप सिंहासन पर भी बैठेंगे। आप विवाह कर लेते और पत्नी 'रानी' न होती तो भी यही परम्परा जारी रहती। फिर आपको आपने हृदय की इच्छा पूर्ण करने का अवसर क्यों नहीं दिया गया, क्यों ब्रिटिश साम्राज्य को ऐसे योग्य और लोकप्रिय राजा से वंचित किया गया? इसका सन्तोषजनक उत्तर हमें नहीं मिल रहा है। शायद इतिहास देगा। परमात्मा श्री विण्डसर को अपने प्रेम में सुखी करे!

—

शेरो की भविष्य वाणी

सुप्रसिद्ध भविष्यवक्ता शेरो ने सन् १९१५ में सम्राट् अष्टम एडवर्ड के सम्बन्ध में एक भविष्यवाणी की थी। उसका कुछ अंश इस प्रकार है—

"युवराज (अब सम्राट्) का जन्म एक ऐसी घड़ी में हुआ है कि उनके जीवन के सम्बन्ध में कुछ समझ सकना ही मुश्किल है। उनके नक्षत्रों से मालूम होता है कि उनका जीवन बहुत ही बेचैनी से गुज़रेगा। उनमें एकाग्र विचारधारा का अभाव रहेगा। ध्यान को केन्द्रित करने में उन्हें मुश्किल होगी। यात्रा और विविध दृश्यों के निरीक्षण के लिए उनमें अपार प्रेम होगा। उनमें 'ख़तरे की भावना' न रहेगी। व्यग्र शारीरिक चेष्टाओं-द्वारा वे बेचैनी और घबराहट का प्रदर्शन करेंगे। वे एक ऐसे व्यक्ति होंगे जो सदैव 'प्रेम की भावना' का अनुभव करते रहेंगे...उनके नक्षत्रों से ऐसा प्रतीत होता है कि वे सर्वनाशक प्रेम के शिकार होंगे। अगर उन्होंने प्रेम किया तो मैं भविष्यवाणी करता हूँ कि वे अपने प्रेम-पात्र को प्राप्त करने के लिए सम्राट् का पद भी छोड़ देंगे, क्योंकि विवाह-क़ानून उनकी इच्छा को बहुत ज़्यादा सीमित कर देगा।

[प्रतिमास प्राप्त होनेवाली नई पुस्तकों की सूची। परिचय यथा समय प्रकाशित होगा।]

१—**मेरी कहानी**—लेखक, श्रीयुत पंडित जवाहरलाल नेहरू, अनुवादक, श्रीयुत हरिभाऊ उपाध्याय, प्रकाशक, सस्ता साहित्य-मंडल, दिल्ली और मूल्य ४) है।

२—**नेल** (उपन्यास)—अनुवादक, श्रीयुत छविनाथ पाण्डेय, प्रकाशक, हिन्दी-साहित्य कार्यालय, सर्चलाइट, बिल्डिंग्स, पटना और मूल्य १॥) है।

३—**जापान**—लेखक, श्रीयुत राहुल सांकृत्यायन, प्रकाशक, साहित्य-सेवा-संघ, छपरा और मूल्य ३।) है।

४—**उत्तराखंड के पथ पर**—लेखक, प्रोफ़ेसर मनोरञ्जन, एम० ए०, प्रकाशक, पुस्तक-भंडार, लहेरिया सराय, पटना और मूल्य २) है।

५—**अवध की नवाबी**—अनुवादक, श्रीयुत गणेश पाण्डेय, प्रकाशक, छात्रहितकारी पुस्तकमाला, दारागंज, प्रयाग और मूल्य २) है।

६—**योगासन और अक्षय युवावस्था**—लेखक, स्वामी शिवानन्द सरस्वती, प्रकाशक, भारतवासी-प्रेस, दारागंज, प्रयाग और मूल्य १) है।

७—**राष्ट्रसंघ और विश्व-शान्ति**—लेखक, श्रीयुत रामनारायण यादुवेन्दु, बी० ए०, एल-एल० बी०, प्रकाशक, मानसरोवर-साहित्य-निकेतन, मुरादाबाद और मूल्य ३॥) है।

८—**समाजवाद**—लेखक, श्रीयुत सम्पूर्णानन्द जी, प्रकाशक, काशी-विद्यापीठ, बनारस (छावनी) और मूल्य १॥) है।

९—**बुन्देल-केशरी** (नाटक)—लेखक, श्रीयुत श्यामाकान्त पाठक, बी०, लिट०, प्रकाशक, कर्मवीर-प्रेस, जबलपुर और मूल्य ॥।) है।

१०—**हार** (कविता)—लेखक, श्रीयुत पद्मकान्त मालवीय, प्रकाशक, दि नेशनलिस्ट न्यूज़पेपर्स कम्पनी लिमिटेड, प्रयाग और मूल्य ॥।) है।

११-१६—**गीता-प्रेस, गोरखपुर-द्वारा प्रकाशित ६ पुस्तकें**—

(१) **पूजा के फूल**—लेखक, श्रीयुत भूपेन्द्रनाथ देव शर्मा, और मूल्य ॥।-) है।

(२) **आनन्द मार्ग**—लेखक, श्रीयुत चौधरी रघुनन्दनप्रसादसिंह और मूल्य ॥-) है।

(३) **धूपदीप**—लेखक, श्रीयुत माधव और मूल्य ।=) है।

(४) **सूक्ति सुधाकर**—सानुवाद मूल्य ॥=) है।

(५) **कल्याण-कुंज शिव**—मूल्य ।) है।

(६) **तत्त्व-विचार**—लेखक, श्रीयुत ज्वालाप्रसाद कानोड़िया और मूल्य ।=) है।

१७—**कृषि-उद्यान-विद्यासागर**—लेखक, श्रीयुत अं०, गो० करन्दीकर, मिलने का पता—करन्दीकर ब्रदर्स, जुगल-निवास, टीकमगढ़ और मूल्य २॥) है।

१८—**लिपिकला**—प्रणेता, पंडित गौरीशंकर भट्ट, प्रकाशक, अक्षर-विज्ञान-कार्यालय, मसवानपुर, कानपुर और मूल्य ।) है।

१९—**शिक्षा कैसी हो?**—अनुवादक, श्रीयुत धन्यकुमार जैन, प्रकाशक, विशालभारत-कार्यालय, १२० २, अपर सरकूलर रोड, कलकत्ता और मूल्य ।-) है।

२०—**जीवन्त-प्रकाश** (गुजराती)—लेखक, श्रीयुत गोविन्द द० पटेल, प्रकाशक, गोरधनलाल, किशोरभाई, पटेल, एडवोकेट, नंदानंद, अलकापुरी सयाल नगर, बड़ोदा और मूल्य १) है।

२१—**स्तोत्र-सरिता** (गुजराती-अनुवाद-सहित)—अनुवादक, श्रीयुत हि०, म०, शास्त्री, प्रकाशक, श्रीबालाभारती-कार्यालय, मुक़ाम, धड़कण, पो० आ० प्रान्तिज, ज़िला अहमदाबाद और मूल्य ॥।) है।

१—ऋग्वेद-संहिता—वनैलीराज्य के अधिपति श्रीमान् कुमार कृष्णानन्दजी ने एक लाख रुपया लगाकर 'गंगा' नाम की एक उच्च कोटि की मासिक पत्रिका और 'वैदिक-पुस्तक-माला' को जन्म दिया था। 'गङ्गा' तो चार वर्ष चलकर बन्द हो गई पर 'वैदिक-पुस्तक-माला' का काम जारी है और हाल में उसके प्रथम पुष्प ऋग्वेद-संहिता का अन्तिम खण्ड भी छपकर प्रकाशित हो गया। इस प्रकार कोई तीन वर्ष के भीतर ऋग्वेद-संहिता कई खंडों में छपकर प्रकाशित हो गई। इसके हिन्दी-भाष्यकार पंडित रामगोविन्द त्रिवेदी और पंडित गौरीनाथ झा हैं। इस संस्करण के ऋग्वेद का मूल्य १६) है। हिन्दी-भाष्य-सहित ऋग्वेद का पहला संस्करण जो इतने कम मूल्य में प्रकाशित किया गया है। यह संस्करण साधारण लोगों के लिए इतना अधिक सस्ता ही नहीं है, किन्तु इसका भाष्य भी सायण के भाष्य का मथितार्थ है। ऐसी दशा में वेद के प्रेमियों को इस संस्करण का अवश्य संग्रह करना चाहिए। वेद हिन्दुओं की परम निधि है। संस्कृत में होने के कारण वे जनता से दूर हो गये हैं। इसलिए इस बात की बहुत बड़ी ज़रूरत है कि कम से कम ऋग्वेद का एक हिन्दी-संस्करण सस्ते से सस्ता निकाला जाय। अच्छा होता 'वैदिक-पुस्तक-माला' केवल अपने हिन्दी-अनुवाद को 'हिन्दी-ऋग्वेद' के रूप में प्रकाशित करती। ऋग्वेद-संहिता के इस संस्करण के निकालने के लिए इसके प्रकाशक वास्तव में बधाई के पात्र हैं।

२-४—श्री भारत-धर्म महामण्डल की तीन पुस्तकें—

(१) मार्कण्डेयपुराण—भारत-धर्म-मण्डल का प्रकाशन-विभाग १८ महापुराणों को हिन्दी में प्रकाशित करना चहता है। इस सिलसिले में उसने सबसे पहले मार्कण्डेयपुराण को प्रकाशित किया है। व्यास-प्रणीत १८ पुराणों में मार्कण्डेयपुराण एक विशिष्ट पुराण है। आकार में यह छोटा है और इसकी श्लोक-संख्या कुल नौ हज़ार है। आस्तिक हिन्दुओं का परममान्य 'सप्तशतीस्तोत्र' इसी पुराण से निकला है। इसी का यह हिन्दीभाषान्तर है। भाषान्तर की भाषा संस्कृत-गर्भित है, तथापि आशय समझने में विशेष कठिनाई नहीं होती। अच्छा होता यदि अनुवाद की भाषा सरल ही नहीं अति सरल होती। स्थल-स्थल पर

जो पाण्डित्य-पूर्ण टिप्पणियाँ दी गई हैं उनसे पुराण के रहस्यों पर सनातन-धर्म के दृष्टि-कोण से अच्छा प्रकाश डाला गया है। ये टिप्पणियाँ भारत-धर्ममहामण्डल के पूज्यपाद श्री स्वामी ज्ञानानन्द जी महाराज ने लिखवाई हैं। इन टिप्पणियों के कारण यह हिन्दीमार्कण्डेयपुराण अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया है। पुराणप्रेमियों को इस संस्करण का संग्रह करना चाहिए। यह तीन खण्डों में प्रकाशित हुआ है। इसकी पृष्ठ-संख्या ४७४ और तीनों खण्डों का मूल्य ३) है।

(२) भारतवर्ष का इतिवृत्त—यह एक अनोखी पुस्तक है। इसमें भारतवर्ष अर्थात् भू-मण्डल तथा भारत-द्वीप अर्थात् हिन्दुस्तान का भेद स्पष्ट करते हुए देश और काल के पौराणिक दृष्टिकोण से जो विवेचना की गई है वह निस्सन्देह पाण्डित्य-पूर्ण है और इन विषयों के विशेषज्ञों के विचार के लिए एक नई विचार-सरणि उपस्थित करती है। यह ग्रन्थ १२ अध्यायों में विभक्त है। पहले अध्याय में ब्रह्माण्ड और भारतवर्ष का सम्बन्ध बतलाया गया है, दूसरे अध्याय में ब्रह्माण्ड के मानचित्र का विवरण दिया गया है, तीसरे अध्याय में भारत-द्वीप को जगद्गुरु सिद्ध किया गया। चौथे अध्याय में आर्यों की काल-गणना का परिचय दिया गया है, पाँचवें में मनुष्य-सृष्टि और वर्णाश्रमबन्ध का विवेचन किया गया है। छठे में भारत-द्वीप का सामाजिक संगठन, सातवें में वेद और शास्त्रों की महिमा का वर्णन, आठवें में भारत-द्वीप के धर्म, नवें में राज्यशासन-व्यवस्था, दसवें में शिक्षा-प्रणाली, ग्यारहवें में रामायणकालीन संस्कृति और बारहवें में महाभारतकालीन संस्कृति का दिग्दर्शन कराया गया है। यह इसका अभी पहला ही खण्ड है। इसकी पृष्ठ-संख्या ३८० और मूल्य २) है।

(३) सप्तशती—यह सप्तशती का संस्करण अधिक उपयोगी है। यह संस्कृतटीका और हिन्दी-अनुवाद के सहित है। इसके सिवा कवच आदि स्तोत्र एवं सूक्त और आवश्यक न्यास आदि भी दे दिये गये हैं। अतएव इससे नित्य के पाठ आदि का भी काम निकल सकता और इस महत्त्वपूर्ण स्तोत्र के अध्ययन और परिशीलन का भी। इस लिए यह संस्करण अनूठा ही है। हिन्दीवालों के लिए सप्तशती का यह संस्करण अत्युपयोगी है। सप्तशती-प्रेमियों

को इसका अवश्य संग्रह करना चाहिए। मूल्य ।।।) है।

उक्त पुस्तकें शास्त्र-प्रकाशन-विभाग, महामण्डल-भवन, जगतगंज, बनारस के पते पर मिलती हैं।

५—मन्दिर-दीप—लेखक, श्रीयुत ऋषभचरण जैन, प्रकाशक, साहित्य-मण्डल, बाज़ार सीताराम, दिल्ली, है। पृष्ठ संख्या ३८० और मूल्य ३) है।

लेखक ने अपने इस उपन्यास में भारतीय शिक्षित युवक-युवतियों के आधुनिक जीवन पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। इसका कथानक रोचक और मनोरंजक है।

जनककुमार, दयाधाम और नागरदास एक ही कालेज के विद्यार्थी हैं। उसी कालेज में मिस रानी और मिस रोज़ भी पढ़ती हैं। मिस रोज़ एक पादरी की लड़की है। मिस रानी एक प्रतिष्ठित घराने की हैं और उनका आचरण भी श्रेष्ठ है। दयाधाम और रानी के विवाह की चर्चा है और मिस रानी अपने को जनककुमार की सह-धर्मिणी समझती है। दयाधाम के दिल पर रानी के इस मनोभाव का बुरा असर पड़ता है और वह जनककुमार से शत्रुता रखने लगता है। एक दिन सुनसान जंगल में वह जनककुमार पर पिस्तौल से वार भी करता है, पर जनककुमार मृत्यु से बच जाता है, और उसके हाथ में घाव हो जाता है, जिसे वह किसी पर भी नहीं प्रकट करना चाहता। नागरदास रईस का लड़का है। इसका पढ़ने में दिल नहीं लगता। यह केवल नवयुवतियों के आमोद-प्रमोद के लिए कालेज में पढ़ने जाता है। रोज़ से इसकी घनिष्ठता है। मिस रानी के आचरण का अनुकरण करके रोज़ भी अपना सुधार करना चाहती है। उसकी जनककुमार से भी दोस्ती है। जनककुमार से रोज़ के विवाह की अफ़वाह नागरदास आदि फैला देते हैं, पर वह झूठी सिद्ध होती है और उनकी काफ़ी बेइज़्ज़ती की जाती है। उसी रात को जनककुमार रोज़ के यहाँ जाकर अपने बाहर जाने का प्रस्ताव करता है। मिस रोज़ भी उसके साथ जाने का हठ करती है और इस शर्त्त पर दोनों निकल भागते हैं कि एक सच्चे लोकसेवक के रूप में अपना जीवन व्यतीत करेंगे। वे जाकर एक गाँव में छोटी कुटी बनाकर रहने लगते हैं।

मिस रानी को इस समाचार से विशेष ग्लानि होती है और वह बड़े सोच में पड़ जाती है। रानी का पिता दयाधाम से उसकी शादी करना चाहता है। यद्यपि उसे यह स्वीकार नहीं था, पर इस समस्या के आ जाने से उसने पिता की बात स्वीकार कर ली और पिता-पुत्री साथ साथ सिनेमा हाल में दयाधाम को यह सूचना देने जाते हैं। वहाँ दयाधाम से तो नहीं, नागरदास और रानी से भेंट होती है। नागरदास की बातों से आकृष्ट होकर रानी उसके साथ उसके इच्छित स्थान पर जाती है। मार्ग में गाड़ी में नागरदास मिस रानी से अनुचित प्रस्ताव करता है जिससे विवश होकर रानी ख़तरे की जंज़ीर खींचती है। अन्त में नागरदास रानी को लेकर अपने घर जाता है और वहाँ भी वह उससे वैसी ही अनुचित छेड़-छाड़ करता है, पर वह अपने प्रयत्न में सफल नहीं होता। अन्त में रानी को अपने घर में क़ैदी की हालत में रखता है। मिस रोज़ के पिता को रोज़ और जनककुमार का पता लग जाता है और वहाँ जाकर जनककुमार को पकड़वा कर जेल भेजवा देता है। पर जब उसे रोज़ से जनककुमार के असाधारण व्यक्तित्व का पता लगता है तब वह अपना मुक़द्दमा उठा लेता है। जनककुमार, दयाधाम और रानी के पिता के साथ रानी का पता लगाने जाता है और सब लोग रानी के कारागार का भीषण दृश्य और रानी की दृढ़ता देखते हैं। अन्त में नागरदास को पुलिस गिरफ़्तार करना चाहती है, किन्तु वह स्वयं अपनी हत्या कर लेता है। रानी बन्धन-मुक्त होती है और सब लोग प्रसन्न होते हैं।

कथानक का वर्णन बहुत बढ़ाकर किया गया है, जिससे पुस्तक का आकार काफ़ी बढ़ गया है। कथा रोचक और मनोरंजक है। पढ़ते समय आगे की घटना जानने की उत्सुकता होती जाती है। किन्तु इसमें कुछ ऐसे भद्दे चित्र भी अंकित किये गये हैं, जो कथानक को समयानुकूल बनाने की अपेक्षा उसे पीछे की ओर ले जाते हैं। जैसे—मिस रानी नागर के कुत्सित व्यवहार से रुष्ट होकर जंज़ीर खींचने में तो साहस का काम करती है, पर गार्ड के आने पर वह नागरदास के इस कथन का कुछ भी विरोध नहीं करती कि "यह मेरी स्त्री है, इसका दिमाग़ ठीक नहीं है, इसने भूल से यह काम किया, आप ५० रु० लीजिए और जाइए।" कदाचित् ही आज कोई ऐसी शिक्षित महिला होगी जो अनिच्छा और क्रोध की दशा में अपनी बात

के कहने में संकोच का अनुभव करे ? दूसरे स्थल पर रोज़ और जनककुमार की कुटी में कामुक थानेदार-द्वारा जनककुमार को जो शिक्षा दिलवाई गई है वह ठीक नहीं कही जा सकती। पर इसमें मिस रानी और जनककुमार के चरित्र बहुत शुद्ध चित्रित किये गये हैं। उनके आचरण से भारतीय युवक-युवतियाँ अपने आचरण को सुदृढ़ बना सकती हैं। इस उपन्यास की भाषा भी सरल है, इससे कथानक आसानी से समझ में आ जाता है। उपन्यास-प्रेमियों को इस उपन्यास को पढ़ना चाहिए।

—गंगासिंह

६—मोतियों के वन्दनवार—पुस्तक मिलने का पता—प्रकाशक, ११ एलगिन रोड, प्रयाग है। मूल्य सवा रुपया १।) है।

इस पुस्तक की सहायता से मोतियों के तोरण, वन्दनवार तथा लेम्पशेड बनाये जा सकते हैं। रंग-बिरंगे मोतियों से सिंह, तोता, मोर, राजहंस, भारतमाता, कदम्ब के नीचे श्रीकृष्ण, स्वागतम् इत्यादि अनेक नमूने बनाये जा सकते हैं। बनानेवालों की सुविधा के लिए 'तोरण बनानेवालों के लिए कुछ ज्ञातव्य बातें', 'तोरण के मोती', 'बनाने की विधि' इन विषयों का अच्छी तरह समझाते हुए वर्णन किया गया है।

गुजरात तथा बम्बई प्रान्तों में मोतियों के तोरण-द्वारा खिड़कियाँ तथा दरवाज़ों के सजाने का बड़ा प्रचार है। आशा है कि इस प्रान्त की कलारसिक स्त्रियाँ भी इस प्रकार के सस्ते आकर्षक तथा सुन्दर नमूने डाल कर अपने घर सजायेंगी। इस विषय की हिन्दी-भाषा में यह पहली पुस्तक है। पुस्तक इस ढंग से लिखी गई है कि छोटी छोटी बालिकाओं से लेकर साधारण पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ तक बिना किसी कठिनाई के, थोड़े से मूल्य में, तोरण या वन्दनवार बनाने का तरीक़ा समझ जायँगी। यह पुस्तक विशेषतया बालिकाओं तथा स्त्रियों के लिए विशेष उपयोगी है।

७—प्रेमपिचकारी—लेखिका व प्रकाशिका, श्रीमती राधारानी श्रीवास्तव, श्री माधवआश्रम, २९ न्यू कटरा, इलाहाबाद हैं। पृष्ठ-संख्या ४४२, छपाई व सफ़ाई सुन्दर, सुन्दरी [illegible] पुस्तक का मूल्य ३) है।

[illegible] की बालिकायें जब पढ़-लिख कर गृहस्थ-जीवन में प्रवेश करती हैं तब उनके सामने एक विकट समस्या उठ खड़ी होती है। अपने नये जीवन को किस ढंग से ले चलें, उन्हें यह नहीं सूझता है। हमारे देश की शिक्षा भी केवल किताबी शिक्षा होती जा रही है, उसमें व्यावहारिक जीवन के सम्बन्ध में विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है। इस कारण शिक्षित नवयुवतियाँ भी गृहस्थ-जीवन में प्रवेश करने पर एक अबूझ पहेली के हल करने की उलझन में पड़ जाती हैं।

यह पुस्तक स्त्री-पुरुषों के जीवन की ऐसी ही जटिलता पर प्रकाश डालती है। यह उपन्यास के तर्ज़ पर लिखी गई है और इसमें यह बताया गया है कि दाम्पत्तिक जीवन किस [illegible] सुख-पूर्वक बिताया जा सकता है। इसके लिए बीच बीच में तरह तरह के उपयोगी नुसख़े तथा उपचार भी बताये गये हैं। वस्तुतः यह गार्हस्थ्य शास्त्र एवं कामशास्त्र-सम्बन्धी पुस्तक है। इस पुस्तक में ३३ परिच्छेद हैं। इसके ३२वें परिच्छेद में ऐसी २७ बातें लिखी गई हैं जिनका जानना प्रत्येक नये दम्पती के लिए आवश्यक है। इसमें केवल व्यक्तिगत जीवन पर ही प्रकाश नहीं डाला है, बल्कि गृहगत, समाजगत, लोकगत व्यावहारिक जीवन की भी इसमें विस्तार से चर्चा की गई है। विषय के वर्णन का ढंग रोचक और हृदयग्राही है।

मुकुटबिहारी द्विवेदी 'प्रभाकर'

८—सन्त—सम्पादक, श्रीमहर्षि शिवव्रतलाल हैं। वार्षिक मूल्य ४॥) है। पता—मैनेजर 'सन्त'-कार्यालय, प्रयाग।

महर्षि शिवव्रतलाल राधास्वामी-सम्प्रदाय की एक शाखा के 'सद्गुरु' हैं। यह 'सन्त' उन्हीं का मासिक पत्र है, जो गत दस वर्षों से हिन्दी में प्रकाशित हो रहा है। 'सन्त' का यह दिसम्बर १९३५ का अङ्क है और 'शिव-संहिता' के नाम से प्रकाशित किया गया है। पौराणिक कथाओं एवं रूपकों में 'शिव' तथा उनके परिवार का जो वर्णन किया गया है उन सबके रहस्यों को इस 'अंक' में सरल भाषा तथा रोचक शैली में समझाने का प्रयत्न किया गया है। शिव कौन हैं, उनका वर्ण श्वेत क्यों है, उनके गले की मुण्डमाला का क्या अर्थ है, कपाल-पात्र में शिव के भंग पीने का क्या रहस्य है, इत्यादि प्रश्नों की युक्तिसंगत विवेचना की गई है। पुराणों के इन आलंकारिक रहस्यों को खोल कर योग-दृष्टि से उनकी जो व्याख्या इसमें की गई

है उससे सर्व-साधारण को पर्याप्त सन्तोष होगा। इस प्रकार के अर्थों से मत-भेद हो सकता है, किन्तु इस प्रकार के प्रयत्न के बिना पुराणों में वर्णित आलंकारिक देव-गाथा तथा उनके परिवार एवं वाहनों की कल्पनायें जनता के विशेष उपयोग की वस्तु नहीं बन सकती हैं। इस प्रकार के प्रयत्न पुराणों के उच्च विज्ञान के रहस्यों को बहुत कुछ सरल करने में समर्थ हुए हैं। डाक्टर भगवानदास जी ने भी अपने 'समन्वय' नामक ग्रन्थ में इस दिशा में अच्छा प्रयत्न किया है। पुराणों के अलंकारों के रहस्यों को खोलकर लेखक ने हिन्दू-धर्म की प्रशंसनीय सेवा की है। प्रत्येक हिन्दू-धर्मावलम्बी को जो शिव-विषयक पौराणिक अलंकार को समझना चाहे, इसका अध्ययन करना चाहिए। 'सन्त' की छपाई साधारण है तथा प्रूफ़ की अनेक अशुद्धियाँ इसमें छूट गई हैं, जिनकी ओर सम्पादक महोदय का ध्यान जाना चाहिए।

—कैलाशचन्द्र शास्त्री, एम० ए०

९—'हिन्दुस्तान'—इस नाम का हिन्दी का एक नया दैनिक गत छः महीने से दिल्ली से सफलता के साथ निकल रहा है। यह दैनिक साफ़-सुथरा छपता है। इसका सम्पादन बहुत अच्छे ढँग से होता है। यह कांग्रेस का समर्थक है। अभी हाल में महात्मा गांधी की वर्षगाँठ के उपलक्ष्य में 'गांधी-जयन्ती-अंक' के नाम से इसका एक विशेष अंक निकला है। इस अंक में महात्मा जी के सम्बन्ध में जो लेख छापे गये हैं, रोचक तथा महत्त्व के हैं। उनमें एक लेख मौलाना शौक़तअली का भी है, जिसके अन्त में उनका हिन्दी में हस्ताक्षर भी छापा गया है, जो अति मनोरञ्जक है।

१०—'महारथी' का 'दीपावली-अंक'—सम्पादक, श्रीयुत रामचन्द्र शर्मा, प्रकाशक महारथी-प्रेस, दिल्ली शाहदरा हैं।

'महारथी' का प्रकाशन इसके प्रवर्तक और सम्पादक श्रीयुत रामचन्द्र शर्मा ने बड़े उत्साह के साथ किया था और जितने दिनों तक वह निकला, अच्छे रूप में निकला। परन्तु बीच में यह कुछ दिनों तक बन्द रहा। प्रसन्नता की बात है, यह फिर नई सजधज के साथ निकला है। भगवान् करे, यह चिरायु हो।

दीपावली-अंक इसका विशेषांक है। इसमें लेखों, कविताओं और कहानियों का जो संकलन किया गया है वह विशेष रूप से सुन्दर है। इसको पढ़कर भारत की दिवाली के मुख्य उद्देश का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। कमला और भक्तिमार्ग नाम के दो रंगीन चित्रों के सिवा कई सादे चित्रों का भी इस अंक में समावेश किया गया है। दिवाली के सम्बन्ध की विशेष जानकारी रखनेवाले पाठकों को इस अंक का अवश्य संग्रह करना चाहिए।

११—'सैनिक का' 'चुनाव-अंक'—सम्पादक, श्रीयुत श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, प्रकाशक, सैनिक प्रेस, कसेरट बाज़ार, आगरा और मूल्य =) है।

आगरे का 'सैनिक' एक प्रसिद्ध राष्ट्रीय पत्र है। इसने अपने प्रचार-क्षेत्र में राष्ट्रीयता के विचारों का प्रचार करने में बड़ा काम किया है। चुनाव-अंक के रूप में इसका जो विशेषाङ्क निकला है उसमें आगामी कौंसिल और असेम्बली के चुनाव पर कांग्रेस के बड़े बड़े नेताओं के उत्तम लेखों का सुन्दर संग्रह किया गया है। इस अंक में श्री भूलाभाई देसाई, श्री सत्यमूर्ति, श्री कावास जी जहाँगीर, श्री मोहनलाल सक्सेना आदि के लेखों-द्वारा चुनाव के विषय पर काफ़ी प्रकाश डाला गया है। लेखों का चयन बहुत उत्तम है। आज-कल चुनाव की चर्चा ज़ोर पकड़ रही है इसलिए सभी वोटरों के लिए इस अंक का पढ़ना आवश्यक है।

१२—'योगी' का 'दीपावली-अंक'—संपादक, श्रीयुत आर० एल० शर्मा, प्रकाशक, योगी-प्रेस, पटना हैं और मूल्य -) है।

'योगी' बिहार का एक प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र है। अपने अल्पकाल के जीवन में ही यह वहाँ का एक लोकप्रिय पत्र हो गया है। इसका दीपावली-अंक भिन्न भिन्न विषयों की अनेक कविताओं, कहानियों और लेखों से सज्जित है। इस अंक में पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, श्री ब्रजमोहनदास बर्मा, श्रीयुत सुदर्शन, श्री केशरीकिशोरशरण एम० ए० आदि के लेख उल्लेखनीय हैं। मुखपृष्ठ पर पंडित जवाहरलाल नेहरू और स्वर्गीया श्रीमती कमला नेहरू के चित्र हैं। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक स्त्री-पुरुषों के चित्र इसमें प्रकाशित किये गये हैं।

१३—'लोकमान्य' का 'दीपावली विशेषांक'—संपादक व प्रकाशक, श्रीयुत मन्मथनाथ चौधरी, १६०, हरीसन रोड, कलकत्ता हैं और मूल्य =) है।

सदा की भाँति इस बार भी 'लोकमान्य' का दीपावली-अंक अच्छा निकला है। इस अंक में भिन्न-भिन्न विषयों के सुन्दर लेखों का अच्छा संकलन किया गया है। इसके सभी लेख अपनी विशेषता रखते हैं। बाबू जुगलकिशोर बिड़ला, डाक्टर किशोरीलाल शर्मा, श्री ए० बी० पंडित, श्रीयुत श्रीचन्द्र अग्निहोत्री आदि के लेख बड़े महत्त्व के हैं। श्री महालक्ष्म्यै नमः का सुन्दर रंगीन चित्र है तथा अनेक और भी सादे चित्र हैं। भारतीय संस्कृति के विषय पर भी इस अंक में ख़ासा प्रकाश डाला गया है।

१४—प्रभाकर (साताहिक पत्र)—संपादक श्रीयुत हरिशंकर शर्मा, प्रकाशक, प्रभाकर-प्रेस, ५३ ए० सिविल लाइन, आगरा, हैं और वार्षिक मूल्य ३) है।

श्रीयुत हरिशंकर शर्मा अनुभवी सम्पादक हैं। आगरे के 'आर्यमित्र' का आपने बहुत दिनों तक योग्यता के साथ सम्पादन किया है। अब आपने 'प्रभाकर' नाम का अपना एक नया पत्र निकाला है। इसकी पहली किरण हमारे सामने है। इसके मुखपृष्ठ पर आचार्य पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी का चित्र और एक सुन्दर श्लोक है। इसके अतिरिक्त देश-विदेश की अनेक ख़बरें और कई महत्त्वपूर्ण लेख हैं। हमें आशा है कि श्री शर्मा जी के सम्पादन में 'प्रभाकर' अपने ढंग का एक विशिष्ट पत्र होगा। समाचारपत्र के पाठकों को इस सुन्दर पत्र से अवश्य लाभ उठाना चाहिए।

१५—प्रताप का 'विजयाङ्क'—सम्पादक, श्रीयुत हरिशंकर विद्यार्थी, प्रकाशक, प्रताप-प्रेस, कानपुर हैं। पृष्ठ-संख्या २२ और मूल्य)॥ है।

प्रताप का 'विजयांक' सदा की भाँति सुन्दर निकला है। इस अंक में अनेक सचित्र लेखों का संकलन किया गया है। पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की 'दाशरथी राम' शीर्षक कविता सुन्दर है। इसके अतिरिक्त राम के सम्बन्ध में और भी कई लेख हैं। इस अंक के लेखकों में श्री जैनेन्द्रकुमार, श्री विश्वम्भरनाथ 'कौशिक', प्रो० सद्गुरुशरण अवस्थी आदि के लेख उल्लेखनीय हैं।

१६—'मिलाप' का 'दुर्गा-पूजा-अंक'—सम्पादक, श्रीयुत लाला ख़ुशहालचन्द, खुर्सन्द, प्रकाशक, हिन्द-मिलाप कार्यालय, लाहौर हैं और इस अंक का मूल्य =) है।

लाहौर का 'हिन्दी-मिलाप' एक लोकप्रिय पत्र है। इसका विजयांक ख़ासा सुन्दर निकला है। यह अनेक वीरों के चित्रों से भली भाँति सजाया गया है। रंगीन मुख-पृष्ठ के अतिरिक्त झाँसी की वीर रानी का सुन्दर चित्र अति आकर्षक है। इसमें अनेक सादे चित्र भी दिये गये हैं। इसके सभी लेख सुपाठ्य हैं।

१७—'अर्जुन' का 'रियासत-अंक'—सम्पादक, श्रीयुत कृष्णचन्द्र, प्रकाशक, अर्जुन-प्रेस, श्रद्धानन्द-बाज़ार, देहली हैं और मूल्य केवल ।) है।

यह अंक अपने ढंग का अन[illegible] है। भारतीय रियासतों के सम्बन्ध के अनेक सुन्दर ले[illegible] का इसमें संग्रह किया गया है। श्री पट्टाभि सीतारमैया, श्री देवव्रत वेदालंकार, कवीश्वर स० शार्दूलसिंह, सेठ गोविन्ददास, आदि अनेक विद्वानों के अनूठे लेखों का इसमें संकलन किया गया है। चित्रों का संकलन भी सतर्कता से किया गया है। मुख-पृष्ठ पर महाराणा प्रताप का चित्र है। पाठकों को यह अंक अवश्य पढ़ना चाहिए।

१८—स्वतंत्र भारत—सम्पादक, पंडित शारदाप्रसाद अवस्थी, प्रकाशक स्वतंत्र-भारत-कार्यालय, १०२ मुक्ताराम स्ट्रीट, कलकत्ता हैं। पृष्ठ-संख्या ४५ और मूल्य -) है।

'दीपावली' के उपलक्ष में प्रकाशित होने के कारण इसके सभी लेख दीपावली से सम्बन्ध रखते हैं। चित्रों का संग्रह भी किया गया है। पाठकों को इससे ज़रूर लाभ उठाना चाहिए।

१९—भूगोल का 'स्पेन-अंक'—सम्पादक, श्रीयुत आनन्दस्वरूप [illegible] प्रकाशक, भूगोल-कार्यालय, इलाहाबाद हैं। पृष्ठ-संख्या १३६ और मूल्य ॥-) है।

प्रयाग का 'भूगोल' हिन्दी में अपने ढंग का एक ही पत्र है। यह उसका स्पेन-अंक है। इस अंक में स्पेन की भौगोलिक स्थिति पर काफ़ी प्रकाश तो डाला ही गया है, उसकी सामाजिक और राजनैतिक स्थितियों का भी सम्यक् परिचय दिया गया है। आज-कल स्पेन में घरेलू लड़ाई हो रही है, इसलिए पाठकों को उसके सम्बन्ध में विशेष जानकारी की उत्सुकता है। इस अंक से स्पेन की ऐसी सभी बातें पाठकों की समझ में आसानी से ज्ञात हो सकती हैं। इस दृष्टि से भी यह अंक इस समय विशेष उपयोगी है। इसमें अनेक चित्र भी दिये गये हैं।

अनुवादक, पण्डित ठाकुरदत्त, मिश्र

सुप्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता स्वर्गीय श्री राखालदास बनर्जी की सहधर्मिणी तथा बँगला की सुप्रसिद्ध उपन्यास-लेखिका श्रीमती काञ्चनमाला देवी ने बँगला में 'शनिदशा' नाम का एक उपन्यास लिखा है। बँगला साहित्य में इस उपन्यास का बड़ा मान है। यह उपन्यास है भी ऐसा ही। इसी से हमने इस वर्ष इसका हिन्दी-[illegible] 'सरस्वती' छापने का निश्चय किया है। आशा है, सरस्वती के पाठकों को अधिक रुचिकर प्रतीत होगा।

पहला परिच्छेद

वासन्ती

रे वासन्ती, यह शीशे की कटोरी किसने तोड़ डाली ?" घर के भीतर से एक ग्यारह वर्ष की बालिका ने बहुत ही मृदु स्वर से कहा—मैं तो नहीं जानती मामी।

बालिका की यह बात सुनते ही प्रश्न करनेवाली भूखी बाघिन की तरह तड़प उठी। कड़क कर उसने कहा—तू नहीं जानती तो और कौन जानता है रे चण्डालिन। जो लोग पल्ले सिरे के बदमाश होते हैं वे ऐसे ही भोले बने बैठे रहते हैं, मानो कुछ जानते ही नहीं। बर्तन मल कर ले आई तू और तोड़ने गई मैं ?

"सच कहती हूँ मामी, मैं नहीं जानती। नन्हे बच्ची को दूध देने के लिए कटोरी लेने गया था। शायद उसी के हाथ से छूट पड़ी है।"

बालिका के मुँह की बात समाप्त भी न हो पाई थी कि मेघ की तरह गरजती हुई मामी कहने लगी—जितना बड़ा तो मुँह नहीं है, उतनी बड़ी तेरी बात है। दया करके घर में जगह दे दी है, इसको तो समझती नहीं, ऊपर से मेरे बच्चे को अपराध लगाती है। [illegible] मर भी न गई कि सन्तोष हो जाता। आज तुझे घर से निकाल कर ही जल ग्रहण करूँगी। इतना तेरा मिजाज़ बढ़ गया है।

अकारण ही डाट सहकर वासन्ती चुपचाप खड़ी रह गई। अपराधी जब बात का उत्तर नहीं देता तब किसी का पारा और अधिक चढ़ जाता है। वासन्ती को उत्तर न देती देखकर यही दशा उनकी हुई। मामी की भी आँखें लाल करके कमर की [illegible] सकेलती हुई वह वासन्ती की ओर बढ़ी और कहने लगी—अब भी मैं सीधे से पूछ रही हूँ। सचसच बता दे। नहीं तो देखती हूँ कि आज तुझे घर में कौन रहने देता है !

मामी की भयङ्कर मूर्ति देखकर वासन्ती ने रुँधे हुए कण्ठ से कहा—मैं तो कहती हूँ कि मैं नहीं जानती। परन्तु आप जब विश्वास ही नहीं करती हैं तब भला मैं क्या करूँ ? कटोरी जब मैंने तोड़ी नहीं तब भला कैसे कह दूँ कि मैंने तोड़ी है ?

अब तो जलती हुई अग्नि में घृत की आहुति पड़ गई। तेज़ी से पैर बढ़ाकर मामी ने उसके मुँह पर एक थप्पड़ मारा। अकस्मात् चोट खाकर वासन्ती पृथ्वी पर गिर पड़ी। उसका मस्तक चौखट से टकरा गया। इससे

ज़रा-सा कट गया और ख़ून बहने लगा। असह्य यन्त्रणा के मारे उसके मुँह से निकल गया—हाय बाप रे!

वासन्ती की यह बात सुनकर क्रोध के मारे काँपते हुए स्वर में मामी ने कहा—बाप को क्या पुकारती है रे अभागिन? बाप को तो तूने धरती पर गिरते ही खा लिया। थोड़े ही दिनों के बाद मा को भी खा लिया। इतने से भी पेट नहीं भरा तब अब हम लोगों को खाने आई है। इतनी बड़ी लड़की के ऐसे ऐसे गुण! इसके लक्षण देख-कर शरीर जल जाता है। निकल जा मेरे घर से। अब यदि कभी घर के भीतर पैर रक्खा तो पीटते पीटते खाल उधेड़ लूँगी। देखो न इस हरामज़ादी को! कटोरी तोड़ी है इसने, अपराध लगाती है दूसरे को। हट जा मेरे सामने से। अभी तक तू उठी नहीं? इस तरह की करतूत पर तेरी जो दुर्दशा न हो वही थोड़ी है।

मामी ने वासन्ती का हाथ पकड़कर ज़ोर से खींचा, गला पकड़कर दरवाज़े के बाहर सड़क पर कर दिया, और स्वयं द्वार बन्द कर भीतर चली गई।

सावन का महीना था। आकाश मेघ से आच्छादित था। पानी की बूँदें टप टप करके गिर रही थीं। अँधेरा क्रमशः घना होकर चारों दिशाओं को ढँक रहा था। धूसरवर्ण की यवनिका संसार को अपने आवरण से छिपा रही थी। उसी अन्धकार से प्रायः समाच्छादित सड़क पर अकेली ही बैठी वासन्ती रो रही थी। उसके ललाट से उस समय भी रक्त की ज़रा ज़रा-सी बूँदें चू रही थीं। बीच बीच में वह अञ्चल के वस्त्र से चूता हुआ रक्त पोंछ लिया करती थी। गाँव से दूर शृगालों का झुंड अपनी हुआ हुआ की ध्वनि से बस्ती की निस्तब्धता को भंग कर रहा था। भय से व्याकुल होकर बेचारी वासन्ती सोच रही थी कि ऐसे अँधेरे में मैं कहाँ जाऊँ। मामा तीन-चार दिन के लिए बाहर गये हैं। उन्हें छोड़कर और कौन ऐसा है जो आकर मुझे घर ले जाय। मामी तो शायद भीतर पैर भी न रखने देगी। इसी तरह की कितनी चिन्तायें उसके छोटे-से हृदय में चक्कर काट रही थीं।

बहुत थोड़ी ही अवस्था में माता-पिता के स्नेह से वञ्चित होकर वासन्ती को मामा के घर में आश्रय ग्रहण करना पड़ा था। जब वह दस दिन की थी तभी उसके पिता संसार से विदा हो गये थे। अपनी एक-मात्र कन्या तथा विधवा पत्नी के लिए न तो वे किसी प्रकार की सम्पत्ति छोड़ गये थे और न किसी का सहारा ही कर गये थे। अतएव भाई के घर में आश्रय ग्रहण करने के अति-रिक्त वासन्ती की मा के लिए कोई दूसरा मार्ग ही नहीं था। परन्तु भौजाई का निष्ठुर तथा हृदयहीन व्यवहार अधिक समय तक सहन करना उसके भाग्य में नहीं बदा था। इसलिए उसकी अशान्त आत्मा शीघ्र ही शान्तिमय के चरणों के समीप चली गई।

माता की मृत्यु के समय वासन्ती केवल चार वर्ष की थी। माता-पिता की गोद से बिछुड़ी हुई इस बालिका का मामा ने बड़े ही यत्न से पालन-पोषण किया। उसके मामा हरिनाथ बाबू उसे बहुत ही प्यार करते थे, परन्तु मामी को वह फूटी आँख भी नहीं सुहाती थी। जन्मकाल से ही दुर्भाग्य की गोद में पालन-पोषण प्राप्त करनेवाली वह बालिका असाध्य साधना करके भी मामी का स्नेह आकर्षित करने में समर्थ नहीं हो सकी। बालिका होकर भी वह बहुत ही बुद्धिमती थी। उसने अपने दुर्भाग्य का अनुभव कर लिया था। यही कारण था कि वह सदा ही बहुत सावधान होकर रहा करती थी और लाख कष्ट होने पर भी कभी मुँह नहीं खोलती थी। परन्तु जितना ही वह सावधान होकर रहती थी, उतनी ही उसकी विपत्तियाँ बढ़ती जाती थीं। ग्यारह वर्ष की ही अवस्था में घर का सारा काम उसने अपने हाथ में ले लिया था। क्या छोटे, क्या बड़े गृहस्थी के किसी भी काम में दूसरे को हाथ लगाने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। परन्तु इतने पर भी उसे सदा मामी की झिड़कियाँ ही सहनी पड़ती थीं। कभी भूल कर भी मामी शान्ति के साथ उससे बात नहीं करती थी।

दरिद्र के घर में जन्म ग्रहण करने पर भी वासन्ती का रूप असाधारण था। उसके मस्तक के काले काले बाल घुटने के नीचे तक लटक पड़ते थे। उसके शरीर का रंग चम्पे के फूल का-सा था। मुँह की सुन्दरता के सम्बन्ध में फिर कहना ही क्या था? उसे एकाएक देखकर देवकन्या का-सा भ्रम हो जाता था और अपने आप ही उसके प्रति स्नेह का भाव उदित हो आता था। परन्तु इस प्रकार की अतुलित रूपराशि लेकर जन्म ग्रहण करने पर भी दुर्भाग्य के हाथ से वह छुटकारा नहीं पा सकी।

भैया? लड़का लोटे में जल रख तो गया है। यहीं हाथ धो न लो!

तब सन्तोष बाबू ने कहा—हमारी छुटपन से ही इस तरह की आदत हो गई है न! इससे जब कभी हाथ धोना होता है तब मैं अकस्मात् बाहर निकल पड़ता हूँ।

एक दिन कालेज से लौटते समय अनिल सन्तोष को फिर पकड़ ले आया। जलपान आदि से निवृत्त होने पर अनिल ने कहा—चलो, ज़रा बिलियार्ड खेला जाय।

सन्तोष ने कहा—आज मुझे एक जगह जाना है भाई। आज मुझे खेलने का समय कहाँ है?

उसके मुँह की ओर ताक कर अनिल ने कहा—कितने बजे?

"छः बजे जाना होगा।"

"तब आओ, ज़रा-सा खेल लें। अभी तो बहुत समय है।"

अनिल सन्तोष को बिलियार्ड रूम में खींच ले गया। वे दोनों ही खेलने के लिए बैठ गये। बड़ी देर की हार-जीत के बाद वे दोनों बड़े ध्यान से खेल रहे थे। इतने में सुषमा ने आकर कहा—भैया, तुम्हें बाबू जी बुला रहे हैं।

मुँह ऊपर किये बिना ही अनिल ने कहा—क्या काम है सुषमा?

सुषमा ने कहा—यह तो मुझे नहीं मालूम है।

तब और कोई उपाय न देखकर अनिल उठने के लिए बाध्य हुआ। सुषमा की ओर देखकर उसने कहा—तो मेरी जगह पर तू ज़रा देर तक खेल। मैं सुन आऊँ। सुषमा इस पर सहमत हो गई। बड़ी देर के बाद अनिल जब लौट कर आया तब उसने देखा कि खेल प्रायः समाप्त हो आया है। इससे वह चुपचाप खड़े खड़े देखने लगा। क्रमशः खेल समाप्त हो गया। इस बार सुषमा हार गई।

सुषमा को चिढ़ाने के लिए अनिल ने कहा—छिः! छिः! सुषमा, तू हार गई?

अभिमान-मिश्रित स्वर में सुषमा ने कहा—तुम्हारे ही कारण तो मुझे इस तरह का अपमान सहन करना पड़ा है। यदि आरम्भ से ही मैं खेलती होती तो मैं कभी न हारती। खेल तो तुमने पहले से ही बिगाड़ रक्खा था। अच्छा, तुम ज़रा-सा ठहर जाओ, इस बार देखना मेरा खेल।

अनिल इस पर सहमत हो गया। फिर से सन्तोष और सुषमा दोनों ने खेलना आरम्भ किया। वे दोनों ही घूम घूम कर खेल रहे थे। इस खेल का यह नियम ही है। इस बार सन्तोष अच्छी तरह खेल न सका। उससे बराबर भूलें होने लगीं, ऐसा होना स्वाभाविक था। बात यह थी कि सन्तोष की दृष्टि लगी थी एकाग्र भाव से सुषमा के मुखमण्डल पर। फिर भला खेल में उससे भूलें क्यों न होतीं? अन्त में वह हार गया। तब अनिल ने कहा—तू ठीक कहती थी सुषमा! मेरे ही कारण से तू उस बार हार गई थी।

सुषमा ने मुस्करा कर धीमे स्वर से कहा—देख तो लिया भैया तुमने। मैं क्या मिथ्या कह रही थी? यह कह कर वह हँसती हुई चली गई। सुषमा के दृष्टि-पथ से परे हो जाने पर उसकी ओर से मुँह फेर कर अनिल ने देखा तो सन्तोष का ध्यान उसी ओर जमा था। अनिल के इस ओर दृष्टि फेरते ही सन्तोष लज्जित हो उठे और नीचे की ओर देखने लगे।

ज़रा देर तक चुप रहकर अनिल ने कहा—आओ भाई सन्तोष, एक बार फिर खेला जाय।

सन्तोष ने कहा—नहीं भैया, मुझे क्षमा करो। आज अब खेलने को जी नहीं चाहता। बड़ी थकावट मालूम पड़ रही है।

अनिल ने मुस्कराकर कहा—अच्छा, तो चलो बाहर चलें। यहाँ बड़ी गर्मी मालूम पड़ रही है।

सन्तोष और अनिल दोनों ही कमरे से निकल कर बरामदे में आये। अनादि बाबू अपनी स्त्री तथा सुषमा के साथ वहीं बैठे थे। इन लोगों को देखते ही उन्होंने कहा—आओ भैया, यहीं बैठो।

दोनों ही मित्र बैठ गये। कुछ देर तक तरह-तरह की बात-चीत होती रही। अन्त में अनादि बाबू ने सन्तोष से पूछा—भैया, तुम्हारा तो अब एक ही साल का कोर्स बाक़ी है। कहाँ प्रैक्टिस करोगे, कुछ सोचा है?

सन्तोष ने मुँह नीचा किये हुए उत्तर दिया—अभी तक तो कुछ निश्चय नहीं किया। देखें पिता जी क्या कहते हैं।

अनादि बाबू ने कहा—यही ठीक है। उनकी जैसी आज्ञा हो, वही करना तुम्हारा धर्म है। परन्तु मैं तो समझता हूँ कि गाँव पर ही प्रैक्टिस करना तुम्हारे लिए

अच्छा होगा। बात यह है कि शहर में अब डाक्टरों का कोई अभाव नहीं है। परन्तु हमारे देहातों की अवस्था आज भी बहुत ही शोचनीय है। वहाँ तो कितने ही ग़रीब-दुखिया चिकित्सा न हो सकने के ही कारण मर जाया करते हैं। अतएव हम लोगों का यह पहला कर्तव्य है कि उनका यह अभाव दूर करें। परन्तु आज-कल लड़कों का ध्यान इस ओर नहीं जाता। बहुधा तो वे पिता, पितामह का घर छोड़कर शहर में भाग आना ही पसन्द करते हैं। ठीक कहता हूँ न?

सन्तोष ने मृदु स्वर से कहा—जी हाँ, आपका कहना बिलकुल ठीक है। आज-कल सचमुच हम लोग शहर में ही रहना अधिक पसन्द करते हैं। परन्तु मेरे पिता जी को शहर बिलकुल ही पसन्द नहीं है। मैं जहाँ तक समझता हूँ, वे मुझसे सिराजगंज में ही प्रैक्टिस करने को कहेंगे।

एकाएक हाथ की घड़ी की ओर सन्तोष की दृष्टि गई। वे तुरन्त ही उठ कर खड़े हो गये। उन्होंने कहा—आज मुझे छः बजे एक जगह जाना था। परन्तु छः यहीं बज रहे हैं। इससे मैं इस समय आपसे आज्ञा लेना चाहता हूँ।

अनिल फाटक तक सन्तोष को पहुँचा आया। सुषमा की मास्टरानी आई थी, इसलिए इससे पहले ही वह पढ़ने चली गई थी। सन्तोष के चले जाने पर अनादि बाबू ने कहा—देखो, यदि दामाद बनाना हो तो सन्तोष ही जैसा लड़का खोजना चाहिए। यह लड़का जैसा नम्र है, वैसा ही चरित्रवान् भी है, मानो हीरे का टुकड़ा है।

गृहिणी ने एक हल्की-सी आह भरकर कहा—क्या हमारे ऐसे भी भाग्य हो सकते हैं? अनिल से सुना था कि उसके पिता कट्टर सनातनी हैं। यह बात यदि सच है तो भला वे हमारे घर की लड़की कैसे ग्रहण करेंगे? यह तो हमारी नितान्त ही दुराशा है। परन्तु इस लड़के को जब से देखा है तब से मुझे ऐसी कुछ ममता हो गई है कि तुमसे क्या कहूँ। आह! बेचारे की मा नहीं है।

कवि क्या सचमुच गा न सकोगे?

लेखक, श्रीयुत ब्रजेश्वर, बी० ए०

कवि, क्या सचमुच गा न सकोगे?
कातर-क्रन्दन में क्या अपना
कोमल-कंठ मिला न सकोगे?

यहाँ मलय की वायु न बहती,
किसको विरह-वेदना दहती।
नक्षत्रों में पद-ध्वनि 'उनकी',
कोई 'मूक संदेश' न कहती।
उतर अवनि पर शून्य-लोक से,
पल भर उसे भुला न सकोगे?

यहाँ भूक की जलती ज्वाला,
यह कोमल कान्ता 'मधुबाला'।
लुटा लुटा कितने भी मधुघट,
मेट न सकती कष्ट-कसाला।
छोड़ नशे की बान, मानवों
का दुख-भार बँटा न सकोगे?

कंकाल शेष नर-नारी,
[illegible]

काल-कूट-सा स्वयं ग्रहणकर,
पाल रहे हैं देह हमारी।
बन उनके, उनकी सी कहकर,
पल भर उन्हें हँसा न सकोगे?

भूल गये हम भाई-चारा,
प्रेमी बन बैठा हत्यारा।
धनिकों के इस यन्त्र-जाल में,
भटक रहा मानव बेचारा।
छिन्न-भिन्न मानवता के क्या,
फिर संबंध जुड़ा न सकोगे?

था न प्रथम कवि स्वयं वियोगी,
मानव का पथ-दर्शक योगी।
सह न सका जग का उत्पीड़न,
इसी लिए रो पड़ा अभोगी।
औरों की सुख-दुख-गाथा की
कोई बात सुना न सकोगे?
कवि क्या सचमुच गा न सकोगे?

वह रो रहा था

लेखिका, कुमारी सुशीला आगा, बी० ए०

कृपया अपनी कविता की पुस्तक थोड़ी देर के लिए मुझे दे दो—कहते हुए नरेन्द्र ने कमरे के भीतर प्रवेश किया।

मैं बैठा दाढ़ी बना रहा था। सवेरे सवेरे उसकी इस बात को सुनकर मैं ज़रा झुँझलाकर बोला—तुम तो मालूम होता है, रात में ही यह निश्चय करके सो जाते हो कि प्रातःकाल उठकर कौन-सी पुस्तक माँगेंगे। जान पड़ता है, नाम लिखाने भर की फ़ीस दी है। यह नहीं सोचा था कि पुस्तकें भी ख़रीदनी होंगी।

मेरी बात का उत्तर दिये बिना ही नरेन्द्र मेरी ओर निहारने लगा। मैंने आईने पर से अपनी दृष्टि हटाकर उसकी ओर देखा। उसके नेत्र याचना कर रहे थे। संकेत से उसे पुस्तक ले जाने को कहकर मैं फिर अपने कार्य में लग गया।

अनायास ही ऐसे वचन मुख से निकल जाने के लिए मुझे थोड़ा-सा पश्चात्ताप हुआ। वह मेरा मित्र है, सहपाठी है, क्या मुझ पर उसका इतना भी अधिकार नहीं है। ख़ैर, मैंने हजामत समाप्त करके 'स्टेट्समैन' हाथ में उठाया और आरामकुर्सी पर फैल गया, परन्तु पढ़ने में मन नहीं लगा। दो-चार पन्ने उलटकर मैंने 'स्टेट्समैन' मेज़ पर पटक दिया और सोचने लगा कालेज तथा छात्रावास की बातें। मुझे छात्रावास में रहते अभी केवल तीन ही महीने बीते थे। शुरू-शुरू में जब मैं छात्रावास में आया था, नरेन्द्र ने ही साहस करके मुझसे परिचय किया था। उसने कमरा ठीक करने में मेरी सहायता की और मेरा परिचय भी दो-चार लड़कों से करा दिया। मेरी पुस्तकें भी उसी ने ख़रिदवाई थीं।

कुछ दिन छात्रावास में बीत जाने पर मुझे पता लगा कि नरेन्द्र छात्रावास के उन लड़कों में से है जिन्हें लड़के अधिक मुँह नहीं लगाते। मैंने कारण जानने का प्रयत्न किया, परन्तु इसके अतिरिक्त कि वह मामूली हैसियत का युवक है, सीधे-सादे ढंग से रहता है, और कुछ न जान सका। मुझे स्वयं एक-दो विचित्रतायें उसमें दिखीं। उसके वस्त्र बड़े ऊटपटाँग रहते। कभी वह पायजामा, कमीज़ पहनता, कभी धोती-कुर्ता और कभी पैंट शर्ट। वह प्रायः अजायबघर का छुटा हुआ जानवर-सा लगता था, क्योंकि जो कपड़े पहनता था उनमें से एक भी उसे फ़िट नहीं होता था। कोई बड़ा होता तो कोई छोटा और कोई ढीला तो कोई कसा। हमारे छात्रावास के साथी जो फ़ैशन की सीमाओं को पार कर चुके थे, नरेन्द्र को इस दशा में कैसे पसन्द करते? जो भी हो, नरेन्द्र के प्रति मेरे हृदय में थोड़ा प्रेम और विश्वास था। छात्रावास भर में मैं ही अकेला उसका मित्र था। मेरे और सहपाठी मुझसे कहते—"बड़े विचित्र हो। अजब घोंचू मित्र चुना है। तुम्हें क्या काल पड़ा था? सिनेमा जाते हो, फ़ैशनेबल हो, रुपयेवाले हो, तुम्हें एक से एक अच्छे पचासों मित्र मिल जायँगे। प्रयत्न करके देखो।"

मैं सबकी सुनता और करता अपने मन की। उन लोगों के इस विरोध ने हमारा सम्बन्ध और भी घनिष्ठ कर दिया। मैं सोचता, नरेन्द्र मनुष्य है, उसके हृदय है। इन्हीं बातों की तो संसार में आवश्यकता है। कोई वेश-भूषा का शहद लगाकर चाटा थोड़े ही करता है। छात्रावास के लड़के मेरी मुख-मुद्रा देखकर मानो मेरे विचारों को पढ़ लेते थे। यही कारण था कि उनमें से बहुत-से नकचिढ़े तो मुझे सनकी तक कहने में आर न करते।

× ×

हवा के झोंके की नाईं और भी कुछ दिन अपनी छाप जगत् पर छोड़ते हुए निकल गये। जाड़ा आरम्भ हो गया था। छमाही परीक्षा समीप होने के कारण लड़कों ने पढ़ाई आरम्भ कर दी थी। परन्तु नरेन्द्र बहुधा छात्रावास से ग़ायब रहता। मैं उसे पढ़ते कभी नहीं देखता था। मेरे उन कुछ शब्दों ने उस दिन से उसे इतना प्रभावित

कर दिया था कि वह उसके बाद से कभी मेरे पास पुस्तकें माँगने न आया। यह साधारण-सी बात थी। मुझे एक-दो बार इसका ध्यान अवश्य आया, परन्तु फिर यह समझ कर कि अब तक उसने अपनी पुस्तकें मोल ले ली होंगी, चुप रह गया।

रात को दस बजे होंगे, मैं अपना कमरा अन्दर से बन्द किये पढ़ रहा था। इतने में द्वार पर शब्द हुआ। मैंने उठकर द्वार खोलकर देखा। नरेन्द्र खड़ा था। उसकी वेश-भूषा विचित्र हो रही थी। ऊँचे से पतलून के ऊपर बारीक मलमल का लम्बा कुर्ता था और उसके ऊपर गरम जरसी। मुझे उसकी यह वेश-भूषा देखकर हँसी आगई और वह भी कोई साधारण-सी नहीं जो होठों-द्वारा चबाई जा सके। मैं ठहाका मारकर हँस पड़ा। नरेन्द्र एक-

दम ताड़ गया। यह कोई नई बात नहीं थी। छात्रावास में प्रायः रोज़ ही वह अपने ऊपर टीका-टिप्पणियाँ सुना करता था। परन्तु अपने मित्र से उसे ऐसी आशा नहीं थी। मानो उसने बड़ी भारी वेदना को पी लिया हो, उसका मुख पीला पड़ गया। मैं बात टालने के ढंग से अपनी हरकत पर आप पश्चात्ताप करता हुआ बोला—

"रात को जब सब सो जाते हैं तब वह...।"

"आप भी खूब हैं जनाब। रात को दस बजे तशरीफ़ लाये हैं। मैं तो सोने जा रहा था।"

"तब मैं जाता हूँ।" यह कहकर वह मुड़ा। मैंने लपककर उसका हाथ पकड़ लिया और कहा—"नहीं, थोड़ी देर बैठो। अब तो तुम बहुत ही कम आते हो।" वह चुप-चाप मेरी बात मानकर बैठ गया। इधर-उधर की बातें कर चुकने पर मैंने उससे पूछा—"कहो, पढ़ाई का क्या हाल है।" उसने हँसकर टाल दिया। मैंने फिर कहा—"आज-कल कितने ही दिनों से तुम्हारी सूरत तक नहीं दिखाई पड़ती। कहाँ ग़ायब रहते हो?" उसने धीरे से कहा—"मैं तो यहीं रहता हूँ।"

उसकी मुख-मुद्रा को पढ़ने का प्रयत्न करते हुए मैं बोला—"तुम ग़लत कहते हो। यह बात ठीक नहीं नरेन्द्र! अब परीक्षा बहुत समीप है। पढ़ोगे नहीं तो कैसे काम चलेगा?"

"इन बातों की चिन्ता तुम व्यर्थ करते हो।" वह गंभीरता से बोला।

मैंने कहा—"और अब तो तुम कभी किताबें भी माँगने नहीं आते।"

"आवश्यकता नहीं है।" उसने सिर हिलाते हुए कहा।

इधर-उधर की और एक-दो बातें करके वह उठ खड़ा हुआ। शुष्क गले से उसने कहा—"अब सो जाओ गुड नाइट।" मैंने भी गुड नाइट किया। वह चला गया।

तीन-चार दिन तक मुझे फिर नरेन्द्र की सूरत देखने को नहीं मिली। मालूम नहीं, वह कहाँ रहता था, कब आता, नहाता, खाता और सो जाता था।

एक दिन छात्रावास के पाँच-छः लड़के मेरे पास आये। वैसे तो मेरे पास लड़के प्रायः आया करते थे, परन्तु उस समय उनके चेहरे बहुत गम्भीर बने हुए थे। मैंने हँसकर प्रश्न किया—"क्या वार्डन साहब से झगड़ा करके आये हो?" उनमें से एक चट बोल पड़ा—"नहीं जनाब, झगड़ा अभी किसी से भी नहीं हुआ है। पर होते क्या देर लगती है? तुम यदि नरेन्द्र को नहीं रोकोगे तो देखना उसकी कैसी मरम्मत हम लोग करते हैं।" मैंने आश्चर्य से उन लोगों की ओर देखते हुए कहा—"अरे! भाई, बात क्या है? कुछ बताओ भी तो।"

"इधर कई दिनों से एक एक करके वह हमारी पुस्तकें हमारे कमरों से उठा ले जाता है और दस-पन्द्रह दिन के बाद फिर रख जाता है। हम खोजते खोजते तंग आकर तब तक दूसरी ख़रीद लाते हैं। तुम्हीं बताओ उसे ऐसा करने का कौन अधिकार है। क्या हमें पढ़ना नहीं है?"

मैंने कहा—तुमसे किसने ऐसा कह दिया? नरेन्द्र कभी ऐसा नहीं कर सकता।

वह बोला—मैंने स्वयं दो-तीन रातें जागकर देखा है। रात को जब क़रीब क़रीब सब लड़के सो जाते हैं तब वह यहाँ आकर बत्ती जलाकर लिखता-पढ़ता रहता है।

मेरे नेत्रों के आगे अन्धकार छा गया, विश्वास नहीं हुआ।

उन लोगों ने कहा—विश्वास न हो तो आज रात को जाग कर स्वयं देख लो। परन्तु तुम उसको समझा दो। इस तरह पुस्तकें उड़ायेगा तो हम लोग उसे ख़ूब छकायेंगे।

मैंने लड़कों को समझा-बुझाकर विदा किया। उस समय केवल रात के नौ बजे थे। मेरा मन पढ़ने में बिलकुल नहीं लगा। मैंने अपने मन में कहा, क्या वह इतना निर्धन है। बस, यही प्रश्न रह रह कर मेरे मस्तिष्क में उलझन पैदा करने लगा। उसने मुझसे अपनी निर्धनता के विषय में कभी संकेत नहीं किया था। छात्रावास में बलिया के बहुत-से लड़के रहते हैं। एक से एक धन्नासेठ हैं। परन्तु वेशभूषा ऐसी कि देखते ही हँसी छुट पड़े। मुझे अब ज्ञात हुआ कि नरेन्द्र के कपड़ों का भी किताबों से ही मिलता-जुलता कुछ रहस्य है।

मेरे कमरे से कुछ दूर नरेन्द्र का कमरा था। कहीं नरेन्द्र को मेरे जागते रहने की आहट न मिल जाय, इस विचार से मैं कमरे की बत्ती बुझाकर चारपाई पर पड़ गया।

टन-टन करके ग्यारह बजे। इस समय तक सब जगह की रोशनी बुझ चुकी थी, और नरेन्द्र के कमरे में प्रकाश हो रहा था। कुछ देर और प्रतीक्षा कर लेने के बाद मैं नंगे पैर नरेन्द्र के कमरे के समीप पहुँचा। द्वार भीतर से बन्द था, परन्तु खिड़की भिड़ी थी। खिड़की के समीप ही उसकी मेज़ थी। वह बैठा हुआ एक पुस्तक से कुछ नक़ल कर रहा था। उसका सिर झुका था और बीच बीच में

लिखना बन्द कर कुछ क्षणों तक वह निश्चल बैठा रहता। मैं कुछ देर यहीं तमाशा देखता रहा। फिर साहस करके द्वार खटखटाया। उसने कुछ क्षणों के बाद द्वार खोला, परन्तु न वहाँ पुस्तक थी और न वह कापी थी, जिसमें नक़ल कर रहा था। उसने आश्चर्य से मेरी ओर देखते हुए प्रश्न किया—"इतनी रात को क्या काम आ पड़ा ?"

मैंने कहा—कुछ नहीं। नींद नहीं आ रही थी। तुम्हारे कमरे में प्रकाश देखा तो चला आया। "अच्छा किया।" कहकर उसने कुर्सी बढ़ा दी। मैं रहस्य समझ गया था, इस कारण पढ़ाई की चर्चा करना उचित न समझा, सिनेमा इत्यादि की बातें करता रहा। वह सिर नीचा किये सुन रहा था, और मेरे नेत्र उसके मुख पर जमे थे। नरेन्द्र के हाथ में एक काग़ज़ का पुर्ज़ा था, जिसे उसने मेरी दृष्टि बचाकर फेंक दिया। परन्तु उसके अनजाने में वह पुर्ज़ा मेरे पैरों के समीप ही आ गिरा। थोड़े ही प्रयत्न से वह पुर्ज़ा मेरे हाथों में आ गया। उसके पढ़ने की उत्सुकता ने अधिक देर वहाँ न बैठने दिया, नींद का बहाना करके खिसक आया। कमरे में आकर मैंने उस पुर्ज़े को पढ़ा। बड़े बड़े अक्षरों में लिखा था—"संसार में जो किसी की सहानुभूति और प्रेम का पात्र न बन सका—जिसके जीवन का कोई मूल्य नहीं—भगवन्, तुम्हीं बताओ वह निर्धन जीवित रहकर क्या करे ?" मेरा गला भर आया। अपना प्रेम और सहानुभूति उस पर निछावर करने के लिए, तथा उसे सान्त्वना देने के लिए, मैं उसके कमरे की ओर गया।

उसी प्रकार खिड़की भिड़ी थी, द्वार बन्द था, और किताब खुली हुई थी, मैंने निर्भीकता से खिड़की खोलकर पुकारा—"नरेन्द्र !" उसके नेत्र स्वभावतः मेरे नेत्रों से मिल गये ! मैंने देखा, वह रो रहा है।

मैं क्षण भर सूने में रो लूँ

लेखक, श्रीयुत रामानुजलाल श्रीवास्तव

मैं क्षण भर सूने में रो लूँ—दे दो इतना अधिकार मुझे।
फिर यह न कहूँगा कटु लगता है, कोई भी व्यवहार मुझे ॥
तुमने मुझको बाँधा हँसकर, ... तुमको बाँधा रोकर,—
अब कहते हैं उपचार तुम्हें—सब कह कहकर बीमार मुझे ॥
लेते सब, देते कुछ भी नहीं—ऐसा कहना नादानी है;
तुमने त्रिभुवनपति बना दिया, दे स्वप्नों के संसार मुझे ॥
दोनों आँखें मैंने मूँदीं—अब चार आँखें हो जाने दो—
सुनने दो किंकिणि की रुनझुन औ' पायल की झंकार मुझे ॥
पण्डित जी पोथी उलट-पुलट परलोक की बातें किया करें,
जो करता हूँ इस पार सदा वह करना है उस पार मुझे ॥
होनी-अनहोनी सब देखी, बस यही देखना बाक़ी है—
अब अन्त समय आकर कोई, क्या कर जायेगा प्यार मुझे ?
यह कैसी छेड़ निकाली है; सुधि में आ आकर मत छेड़ो।
तक़दीर बुलाने आई है, अब जाने दो सरकार मुझे ॥
सच कहता हूँ मैं यह समझूँ—जीवन का सौदा ख़ूब हुआ;
मर जाने पर यदि मिल जाये—दो फूलों का उपहार मुझे ॥

वर्ग नं० ५ का नतीजा

इस बार प्रतियोगियों ने आश्चर्य्यजनक सफलता प्राप्त की है। शुद्ध पूर्ति सात व्यक्तियों ने भेजी और २५ व्यक्तियों ने सिर्फ़ एक अशुद्धि की है। पारितोषिक नीचे लिखे अनुसार बाँटा गया।

प्रथम पुरस्कार (शुद्ध पूर्ति पर)

३००) नक़द और ५०) की पुस्तकें

यह पुरस्कार निम्नलिखित ७ व्यक्तियों में बराबर बराबर बाँटा गया। प्रत्येक को ४२॥।-) नक़द और ७=) की पुस्तकें मिलीं।

(१) सुन्दरी देवी c/o पंडित रामचन्द्र साहित्याचार्य्य, मीठापुर, पटना।
(२) तुलसीप्रसाद हेडमास्टर, मिडिल स्कूल, इचाक, हज़ारीबाग़।
(३) रामेश्वरनाथ सेठ c/o नानकचन्द सेठ, अस्पताल रोड, आगरा।
(४) श्रीमती सावित्री देवी वर्मा एम० ए०, गोकुलदास गर्ल्स इंटरकालिज, मुरादाबाद।
(५) रामगोपाल खन्ना c/o आत्माराम हरिशङ्कर, कुंजगली, बनारस।
(६) रोशनलाल जैन 'लेखक', जैन-सिद्धान्त-भवन, आरा।
(७) सावित्री देवी तिवारी, १५ बड़ी बस्ती, दारागंज, प्रयाग।

द्वितीय पुरस्कार (१ अशुद्धि पर)

१६३) नक़द और ५०) की पुस्तकें।

यह पुरस्कार निम्नलिखित २५ व्यक्तियों में बराबर बराबर बाँटा गया। प्रत्येक को ६॥) नक़द और २) की पुस्तकें मिलीं।

(१) शिवप्रकाश भल्ला, भारतीभवन स्ट्रीट, इलाहाबाद।
(२) बिहारीलाल खन्ना, सारस्वत क्षत्रिय-विद्यालय बर्मन स्ट्रीट, कलकत्ता।
(३) बुच्चन बीबी, ४७५ कटरा, इलाहाबाद।
(४) श्री कमलादेवी c/o प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त एम० ए०, मद्दिया कटरा, आगरा।
(५) प्रतापमनोहरसिंह सांडल कक्षा ६, एम० ए० बी०
(६) सरोजनीदेवी पंत, ३८ तुकोगंज साउथ, इन्दौर।
(७) राजेश्वरप्रसाद c/o महावीरप्रसाद टीचर, मेस्टन हाई स्कूल, रामनगर, बनारस।
(८) रवीन्द्रनारायण दीक्षित बी० ए० फ़ाइनल, डी० ए० वी० कालिज, कानपुर।
(९) हरिकृष्ण कपूर कक्षा १०, ए० के० जी० के० हाई स्कूल, हरदोई।
(१०) कुमारी सरस्वती देवी c/o बाबू हनुमानप्रसाद [illegible]

(६२) कन्हैयालाल सक्सेना, डिपार्टमेन्ट आफ़ इन्डस्ट्रीज़ एन्ड लेबर, नई देहली।

(६३) पटेल रावजी भाई रणछोड़ भाई c/o स्वसंवेद कार्यालय, सियाबाग़, बड़ौदा।

(६४) जगन्नाथप्रसाद, ११३ हाशिमपुर रोड, इलाहाबाद।

(६५) सूरजकली देवी जायसवाल c/o बाबूलाल सौदागर, ३८२ कटरा, इलाहाबाद।

(६६) डी० एस० गुप्ता, ७६ पानदरीबा, इलाहाबाद।

(६७) जी० एल० पाण्डेय, ७६ पानदरीबा, इलाहाबाद।

(६८) पं० लक्ष्मीनारायण तिवारी, ए० वी० इन्टर-कालेज, प्रयाग।

(६९) प्रयागनारायण c/o रतनलाल जोशी, ८६९ (बी०) बलुवाघाट रोड, इलाहाबाद।

(७०) मणीदेवी, कास्थवेट रोड, इलाहाबाद।

(७१) तेजबहादुर सक्सेना, १०९ रानीमण्डी, प्रयाग।

(७२) कैलाशचन्द्र जैन, राजकिशोर जैन, बिजनौर।

(७३) एस० पी० निगम, पुवार खेड़ा, होशंगाबाद।

(७४) श्यामा अग्रवाल, ८६ गाड़ीवान टोला, इलाहाबाद।

उपर्युक्त सब पुरस्कार २६ जनवरी को भेज दिये जायँगे।

नोट—(१) जाँच का फ़ार्म ठीक समय पर आने से यदि किसी को और भी पुरस्कार पाने का अधिकार सिद्ध हुआ तो उपर्युक्त पुरस्कारों में से जो उसकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बाँटा जायगा।

(२) केवल वे ही लोग जाँच का फ़ार्म भेजें जिनका नाम यहाँ नहीं छपा है, पर जिनको यह सन्देह हो कि वे पुरस्कार पाने के अधिकारी हैं।

(३) जिनको ॥) का रियायती पुरस्कार मिला है उन्हें ॥) का प्रवेश-शुल्क-पत्र भेज दिया जायगा। जो नियम ४ के अनुसार तीन महीने के भीतर इसके साथ साथ पूर्तियाँ मुफ़्त भेज सकेंगे।

नियम:—(१) वर्ग नं० ६ में निम्नलिखित पारितोषिक दिये जायँगे। प्रथम पारितोषिक—सम्पूर्णतया शुद्ध पूर्ति पर ६००) नक़द। द्वितीय पारितोषिक—न्यूनतम अशुद्धियों पर ४००) नक़द। वर्गनिर्माता की पूर्ति से, जो मुहर बन्द करके रख दी गई है, जो पूर्ति मिलेगी वही सही मानी जायगी।

(२) वर्ग के रिक्त कोष्ठों में ऐसे अक्षर लिखने चाहिए जिससे निर्दिष्ट शब्द बन जाय। उस निर्दिष्ट शब्द का संकेत अङ्क-परिचय में दिया गया है। प्रत्येक शब्द उस घर से आरम्भ होता है जिस पर कोई न कोई अङ्क लगा हुआ है और इस चिह्न (■) के पहले समाप्त होता है। अङ्क-परिचय में ऊपर से नीचे और बायें से दाहनी ओर पढ़े जानेवाले शब्दों के अङ्क अलग-अलग कर दिये गये हैं, जिनसे यह पता चलेगा कि कौन शब्द किस ओर को पढ़ा जायगा।

(३) प्रत्येक वर्ग की पूर्ति स्याही से की जाय। पेंसिल से की गई पूर्तियाँ स्वीकार न की जायँगी। अक्षर सुन्दर, सुडौल और छापे के सदृश स्पष्ट लिखने चाहिए। जो अक्षर पढ़ा न जा सकेगा अथवा बिगाड़ कर या काटकर दूसरी बार लिखा गया होगा वह अशुद्ध माना जायगा।

(४) प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए जो फ़ीस वर्ग के ऊपर छपी है दाख़िल करनी होगी। फ़ीस मनीआर्डर-द्वारा या सरस्वती-प्रतियोगिता के प्रवेश-शुल्क-पत्र (Credit voucher) द्वारा दाख़िल की जा सकती है। इन प्रवेश-शुल्क-पत्रों की किताबें हमारे कार्यालय से ३) या ६) में ख़रीदी जा सकती हैं। ३) की किताब में आठ आने मूल्य के और ६) की किताब में १) मूल्य के ६ पत्र बँधे हैं। एक ही कुटुम्ब के अनेक व्यक्ति, जिनका पता-ठिकाना भी एक ही हो, एक ही मनीआर्डर-द्वारा अपनी अपनी फ़ीस भेज सकते हैं और उनकी वर्ग-पूर्तियाँ भी एक ही लिफ़ाफ़े या पैकेट में भेजी जा सकती हैं। मनीआर्डर व वर्ग-पूर्तियाँ 'प्रबन्धक, वर्ग-नम्बर ६, इंडियन प्रेस, लि०, इलाहाबाद' के पते से आनी चाहिए।

(५) लिफ़ाफ़े में वर्ग-पूर्ति के साथ मनीआर्डर की रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र नत्थी होकर आना अनिवार्य है। रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र न होने पर वर्ग-पूर्ति की जाँच न की जायगी। लिफ़ाफ़े की दूसरी ओर अर्थात् पीठ पर मनीआर्डर भेजनेवाले का नाम और पूर्ति-संख्या लिखनी आवश्यक है।

(६) किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह जितनी पूर्ति-संख्यायें भेजनी चाहे, भेजे। किन्तु प्रत्येक वर्गपूर्ति सरस्वती पत्रिका के ही छपे हुए फ़ार्म पर होनी चाहिए। इस प्रतियोगिता में एक व्यक्ति को केवल एक ही इनाम मिल सकता है। वर्गपूर्ति की फ़ीस किसी भी दशा में नहीं लौटाई जायगी। इंडियन प्रेस के कर्मचारी इसमें भाग नहीं ले सकेंगे।

(७) जो वर्ग-पूर्ति २५ जनवरी तक नहीं पहुँचेगी, जाँच में नहीं शामिल की जायगी। स्थानीय पूर्तियाँ २५ ता० को पाँच बजे तक बक्स में पड़ जानी चाहिए और दूर के स्थानों (अर्थात् जहाँ से इलाहाबाद डाकगाड़ी से चिट्ठी पहुँचने में २४ घंटे या अधिक लगता है) से भेजनेवालों की पूर्तियाँ २ दिन बाद तक ली जायँगी। वर्ग-निर्माता का निर्णय सब प्रकार से और प्रत्येक दशा में मान्य होगा। शुद्ध वर्ग-पूर्ति की प्रतिलिपि सरस्वती पत्रिका के अगले अङ्क में प्रकाशित होगी, जिससे पूर्ति करनेवाले सज्जन अपनी अपनी वर्ग-पूर्ति की शुद्धता अशुद्धता की जाँच कर सकें।

(८) इस वर्ग के बनाने में 'संक्षिप्त हिन्दी-शब्दसागर' और 'बाल-शब्दसागर' से सहायता ली गई है।

अङ्क-परिचय

बायें से दाहिने

१—संसार का मायाजाल तोड़नेवाला।
५—किसी नवयुवक का...स्वाभाविक बात है।
७—बारात।
८—शिक्षित स्त्रियाँ अब इसे छोड़ने लगी हैं।
९—भारतवर्ष जैसे देश के लिए इसका होना आवश्यक था।
११—किसी किसी समय इस पर भी बैठकर भोजन करते हैं।
१३—कठोरता इसका प्रधान लक्षण है।
१४—लजाना।
१६—ब्रजभाषा में इसका स्थान ऊँचा है।
२१—छोटी पुस्तक।
२३—कितने हैं जो यह बोलते हैं?
२४—मोटा गद्दा।
२५—बबूल।
२६—इस देश में ऐसे मनुष्य संख्या में कम हैं जो इससे आनन्द उठाते हैं।
२८—कोई-कोई इसके सामने समय का मूल्य नहीं समझते।
३१—इसकी वाणी अनेकों की व्याकुलता का कारण है।
३२—इसका पद किसी की दृष्टि में बहुत बड़ा होता है।
३३—यह 'बरतन' बिगड़ गया है।

ऊपर से नीचे

१—लोगों का कथन है कि इसके बिना सुख नहीं मिलता।
२—संसार के झगड़े-बखेड़े।
३—वृद्धावस्था।
४—नवीनता।
६—यदि यह साफ़ न हो तो सुनने और समझने में प्रायः अन्तर पड़ता है।
१०—ऐसा चाबुक उत्पाती घोड़े को वश में नहीं कर सकता।
१२—प्रायः लड़ाई का कारण होती है।
१५—एक पक्षी।
१७—यह त्योहारविशेष पर बनती है।
१८—ग्रीष्म ऋतु में सभी ग़रीब और अमीर इसके ऋणी हैं।
१९—पृथ्वी।
२०—तुरन्त ध्यान आकर्षण कर लेना इसकी विशेषता है।
२१—ऋतु विशेष पर एक दिन इसकी बहार होती है।
२२—चतुर माता अपने बच्चे को इससे खेलने का अवसर ही नहीं देती।
२४—बहुत बड़ा या विशाल। २७—नाई।
२९—अवस्था का परिचायक।
३०—कुछ जगहें इसके लिए प्रसिद्ध हैं।

नोट—रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रा-रहित और पूर्ण हैं।

अपनी यादद्दाश्त के लिए वर्ग ६ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ कर लीजिए। और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

वर्ग नं० ६

फ़ीस ॥)

भ	व	भं	ज	न	■		ट	क	ना
	■			या	त्रा	■	न		■
न		र	■			री	■	नं	
■	ल	जा		न	■		खी	■	■
■	का			■		■		■	
	■	■	■	गु		का	■		च
ट	■		दे	ला	■		■	■	ला
की		र	■		■	र		ना	■
ला	■	ग		■	रा	■	■	पि	
■	सा		न	■			न		■

(वर्ग नं० ६ — रिक्त जाल ऊपर की भाँति, दूसरी प्रति)

वर्ग नं० ५ की शुद्ध पूर्ति

वर्ग नम्बर ५ की शुद्ध पूर्ति जो बंद लिफ़ाफ़े पर मुहर लगाकर रख दी गई थी यहाँ दी जा रही है। पारितोषिक जीतनेवालों का नाम हम अन्यत्र प्रकाशित कर रहे हैं।

प	र	मे	म्व	र	■	फ़	म	फ़	म
र	स	न	■	म	द	क	■	प	■
ख	■	का	छ	नी	■	■	स	क	ह
■	प	■	■	क	द	र	ज	■	■
चा	रि	त्र	■	■	ल	■	ग	■	द
त	ज	न	■	क	न	की	■	भा	तु
क	न	■	घ	र	■	र	■	न	ज
■	■	मु	न	ता	ल	■	■	वी	■
गी	र	■	घो	र	■	म	■	■	ना
ध	त	का	र	■	छ	त	गी	■	म

वर्ग नं० ६ फ़ीस ॥)

(रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रारहित और पूर्ण हैं)
मैनेजर का निर्णय मुझे हर प्रकार स्वीकृत होगा।

पूरा नाम..........
पता..........
.... पूर्ति नं०..........

बिन्दीदार लकीर पर से काटिए

(वर्ग नं० ६ — रिक्त जाल ऊपर की भाँति)

वर्ग नं० ६ फ़ीस ॥)

(रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रारहित और पूर्ण हैं)
मैनेजर का निर्णय मुझे हर प्रकार स्वीकृत होगा।

पूरा नाम..........
पता..........
.... पूर्ति नं०..........

बिन्दीदार लकीर पर से काटिए

जाँच का फ़ार्म

वर्ग नं० ५ की शुद्ध पूर्ति और पारितोषिक पानेवालों के नाम अन्यत्र प्रकाशित किये गये हैं। यदि आपको यह संदेह हो कि आप भी इनाम पानेवालों में हैं, पर आपका नाम नहीं छपा है तो १) फ़ीस के साथ निम्न फ़ार्म की ख़ानापुरी करके २० जनवरी तक भेजें। आपकी पूर्ति की हम फिर से जाँच करेंगे। यदि आपकी पूर्ति आपकी सूचना के अनुसार ठीक निकली तो पुरस्कारों में से जो आपकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बाँटा जायगा और आपकी फ़ीस लौटा दी जायगी। पर यदि ठीक न निकली तो फ़ीस नहीं लौटाई जायगी। जिनका नाम छप चुका है उन्हें इस फ़ार्म के भेजने की ज़रूरत नहीं है।

वर्ग नं० ५ (जाँच का फ़ार्म)

मैंने सरस्वती में छपे वर्ग नं० ५ के आपके उत्तर से अपना उत्तर मिलाया। मेरी पूर्ति

नं०.........में { कोई अशुद्धि नहीं है। / एक अशुद्धि है। / दो अशुद्धियाँ हैं। }

मेरी पूर्ति पर जो पारितोषिक मिला हो उसे तुरन्त भेजिए। मैं १) जाँच की फ़ीस भेज रहा हूँ।

हस्ताक्षर..........
पता..........

बिन्दीदार लाइन पर काटिए

इसे काट कर लिफ़ाफ़े पर चिपका दीजिए

मैनेजर वर्ग नं० ६
इंडियन प्रेस, लि०,
इलाहाबाद

वर्ग-प्रतियोगियों की कुछ और चिट्ठियाँ

सुन्दर बाग़, लखनऊ
९ दिसम्बर १९३६

(१)

प्रिय महोदय,

आपकी वर्ग-पूर्तियों में यह मेरा पहला प्रयत्न था। व्यत्यस्त-रेखा-पहेली में, जैसी कि सरस्वती में निकल रही है, पुरस्कार पाना भाग्य पर नहीं, बुद्धि पर निर्भर है।

वर्ग नम्बर ४ में संकेत था—'कोई कोई ऐसी तंग होती है कि हवा का गुज़र भी कठिनता से हो'। इसके उत्तर दो शब्द थे—गली, नली। लेकिन 'हो' शब्द से मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि ठीक उत्तर 'नली' है।' कई गलियों में, सकरेपन के कारण, हवा कम तथा अशुद्ध होती है, पर वहाँ हवा अवश्य होती है। नली में हवा का न होना कोई आश्चर्यजनक नहीं है। वह अगर बहुत तंग है तो और वस्तु क्या हवा भी मुश्किल से पहुँच सकती है। अगर अन्त में "होता है" शब्द होते तो गली इसका ठीक उत्तर होती।

इसी तरह 'वर्षा भी प्रायः इसका कारण होती है' का ठीक उत्तर 'अकाज' था न कि 'अकाल', क्योंकि अकाल सदा वर्षा के कारण होता है।

मैं आशा करता हूँ कि मैं एक न एक बार आपके वर्ग की अवश्य शुद्ध पूर्ति भेजूँगा और ३००) का अकेला ही पुरस्कार-विजेता होऊँगा।

भवदीय
प्रेमप्रकाश अग्रवाल

---

(२)

माधुरी आफ़िस, लखनऊ
१०-१२-१९३६

प्रिय महोदय,

आपका पुरस्कार-प्राप्ति की सूचना का कृपापत्र तथा पुरस्कार से रुपये दोनों यथासमय मिल गये। तदर्थ धन्यवाद। आपकी 'पहेली' वास्तव में पहेली के उद्देश्य को सार्थक करती है। मनोविनोद का यह सर्वोत्तम साधन है, क्योंकि इससे केवल विनोद ही नहीं होता, साथ-साथ बुद्धि क[illegible] लिए और सफल होने पर आर्थिक लाभ भी हो [illegible] पर वि[illegible]

इससे 'सरस्वती' के अनेक आकर्षणों में एक की और वृद्धि हो गई, इसमें सन्देह नहीं। बधाई!

भवदीय,
तारादत्त उप्रेती

---

(३)

ता० ७-१२-३६
कटरा, इलाहाबाद

जनाबमन।

आदाब अर्ज़। दिसम्बर सन् ३६ की 'सरस्वती' देखकर मालूम हुआ कि वर्ग नं० ४ में पहिला इनाम पानेवालों में मेरा भी नाम है। मुझे यह देखकर निहायत खुशी हुई कि मैं पहली कोशिश में नहीं तो दूसरी में ही सही आख़िर कामयाब तो हुआ। मेरे ख़याल से आप कम से पढ़े-लिखे हों, पर यदि इशारों पर ख़्याल दौड़ायें तो यह काम कोई मुश्किल नहीं है। मुझे तो अब इतना शौक़ हो गया है कि मैं अगर किसी दिन इस पर नहीं सोचता तो जी भरता ही नहीं।

मि० गामा

---

(४)

प्रिय महोदय,

अक्टूबर की 'सरस्वती' में प्रकाशित व्यत्यस्त-रेखा-शब्द-पहेली का पुरस्कार ठीक समय पर हम सब लोगों को मिल गया, इसके लिए आपको धन्यवाद।

अवश्य ही हिन्दी में इस प्रकार की पहेलियों का अभाव ही-सा था और इसकी आवश्यकता भी थी, क्योंकि अँगरेज़ी पत्रों में इनकी प्रचुरता रहती ही है। आपने हिन्दी में इस कमी की पूर्ति करके हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं को निदर्शन कराया है।

आपकी
कृष्णाकुमारी
रामचन्द्र त्रिपाठी मिश्र-भवन,
पी० रोड गान्धीनगर, कानपुर

१०००) में दो पारितोषिक

इनमें से एक आप कैसे प्राप्त कर सकते हैं यह जानने के लिए पृष्ठ ८१ पर दिये गये नियमों को ध्यान से पढ़ लीजिए। आप के लिए दो और कूपन यहाँ दिये जा रहे हैं।

बिन्दीदार लकीर पर से काटिए

वर्ग नं० ६ — फ़ीस ॥)

1 भ	व	2 भं	3 ज	4 न	■	5	ट	6 क	ना
	■	7		या	आ	■	8 न		■
9 न	10	र	■	11		12 गी	■	13 न	
■	14 ल	जा	15	न	■	16	17 खी	■	■
■	का			■	18	■		■	19
20	■	■	■	21 गु		22 का	■	23	च
ट	■	24	दे	ला	■		■	■	ला
25 की		र	■		■	26 र		27 ना	■
ला	■	28 ग	29	■	30 रा	■	■	31 पि	
■	32 सा		न	■	33		न		■

(रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रारहित और पूर्ण हैं)
मैनेजर का निर्णय मुझे हर प्रकार स्वीकृत होगा।

पूरा नाम ....
पता ....
.... पूर्ति नं० ....

बिन्दीदार लकीर पर से काटिए

बिन्दीदार लकीर पर से काटिए

वर्ग नं० ६ — फ़ीस ॥)

1 भ	व	2 भं	3 ज	4 न	■	5	ट	6 क	ना
	■	7		या	आ	■	8 न		■
9 न	10	र	■	11		12 गी	■	13 न	
■	14 ल	जा	15	न	■	16	17 खी	■	■
■	का			■	18	■		■	19
20	■	■	■	21 गु		22 का	■	23	च
ट	■	24	दे	ला	■		■	■	ला
25 की		र	■		■	26 र		27 ना	■
ला	■	28 ग	29	■	30 रा	■	■	31 पि	
■	32 सा		न	■	33		न		■

(रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रारहित और पूर्ण हैं)
मैनेजर का निर्णय मुझे हर प्रकार स्वीकृत होगा।

पूरा नाम ....
पता ....
.... पूर्ति नं० ....

बिन्दीदार लकीर पर से काटिए

1 भ	व	2 भं	3 ज	4 न	■	5	ट	6 क	ना
	■	7		या	आ	■	8 न		■
9 न	10	र	■	11		12 गी	■	13 न	
■	14 ल	जा	15	न	■	16	17 खी	■	■
■	का			■	18	■		■	19
20	■	■	■	21 गु		22 का	■	23	च
ट	■	24	दे	ला	■		■	■	ला
25 की		र	■		■	26 र		27 ना	■
ला	■	28 ग	29	■	30 रा	■	■	31 पि	
■	32 सा		न	■	33		न		■

1 भ	व	2 भं	3 ज	4 न	■	5	ट	6 क	ना
	■	7		या	आ	■	8 न		■
9 न	10	र	■	11		12 गी	■	13 न	
■	14 ल	जा	15	न	■	16	17 खी	■	■
■	का			■	18	■		■	19
20	■	■	■	21 गु		22 का	■	23	च
ट	■	24	दे	ला	■		■	■	ला
25 की		र	■		■	26 र		27 ना	■
ला	■	28 ग	29	■	30 रा	■	■	31 पि	
■	32 सा		न	■	33		न		■

अपनी याददाश्त के लिए वर्ग ६ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ कर लीजिए, और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

आवश्यक सूचनायें

(१) स्थानीय प्रतियोगियों की सुविधा के लिए हमने प्रवेश-शुल्क-पत्र छाप दिये हैं जो हमारे कार्य्यालय से नक़द दाम देकर ख़रीदा जा सकता है। उस पत्र पर अपना नाम स्वयं लिख कर पूर्ति के साथ नत्थी करना चाहिए।

(२) स्थानीय पूर्तियाँ सरस्वती-प्रतियोगिता-बक्स में जो कार्यालय के सामने रक्खा गया है, १० और पाँच के बीच में डाली जा सकती हैं।

(३) वर्ग नम्बर ६ का नतीजा जो बन्द लिफ़ाफ़े में मुहर लगा कर रख दिया गया है ता० २८ जनवरी सन् १९३७ को सरस्वती-सम्पादकीय विभाग में ११ बजे सर्वसाधारण के सामने खोला जायगा। उस समय जो सज्जन चाहें स्वयं उपस्थित होकर उसे देख सकते हैं।

(४) इस प्रतियोगिता में भाग लेनेवाले बहुत-सी ऐसी भूलें कर देते हैं जिन्हें वे नियमों को ध्यान से देखें तो नहीं कर सकते। बैरँग चिट्ठियाँ नहीं ली जायँगी और ।।) के मनिआर्डर या प्रवेश-शुल्क-पत्र के बजाय जो इसी मूल्य के डाकघर के टिकट भेजेंगे उनके उत्तर पर भी विचार न होगा। एक वर्ग-पूर्ति भेज चुकने पर उसका संशोधन दूसरे लिफ़ाफ़े में भेजना टिकट का अपव्यय करना होगा क्योंकि उन पर भी विचार न होगा। छोटे कूपन, या कूपन की नक़ल पर भेजी गई वर्ग-पूर्तियों पर भी विचार न होगा। इस सम्बन्ध में हमें जो कुछ कहना होगा हम इन्हीं पृष्ठों में लिखेंगे। पत्रों का हम पृथक् से कोई उत्तर न देंगे।

के लिए
पर वि

जर्मनी और रूस की तनातनी—आरम्भ कौन करेगा?

स्टेलिन— } (एक साथ) "मुझे पकड़ो! मैं स्वयं अपनी ताक़त से भयभीत हूँ।"
गोरिङ्ग— }

—'पायनियर' में

स्पेन की आग और उसके तापनेवाले।

(...रीका के 'सेंट लुईस पोस्ट डिस्पैच' से)

स्वीज़रलंड का शस्त्रधारण

"क्या अच्छा हो कि उस तूफ़ान के आने से पहले मैं नया छाता लेकर तैयार हो जाऊँ।"

('...' से)

एक ज़माना वह भी था।

और एक ज़माना यह भी है।

चुनाव की चखचख ज़ोर पकड़ रही है। विविध दल एक दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयत्न कर रहे हैं। 'भारत' ने जो नर्मदलवालों का पत्र है, कांग्रेसवालों का मज़ाक उड़ाने के लिए ये व्यङ्ग्य चित्र प्रकाशित किये हैं।

फाँसी पर कौन लटकेगा ?

...लए पर वि... इस बार नर्मदलवालों को चुनाव अखर रहा है। ऊपर के व्यङ्ग्य चित्र में 'हिन्दुस्तान' ने जो कांग्रेसी पत्र है,

अश्क जी कहानी लिखने में बड़े कुशल हैं। इस कहानी में उनकी कला अपनी उत्कृष्टता का परिचय देती है। एक ग्रामीण युवक की सुकुमार भावना को जिस खूबी के साथ चित्रित किया है वह प्रशंसनीय है।

"वह मेरी मँगेतर"

लेखक, श्रीयुत उपेन्द्रनाथ अश्क, बी० ए०, एल-एल० बी०

पहाड़ी रियासत की हवालात। ब्लेकहोल से भी अधिक तंग। गहरे खड्ड में एक छोटी सी मड़ैया। इसमें एक छोटा-सा तहख़ाना, अँधेरा, नम और सर्द। ठंडक इतनी कि शरीर सुन्न होकर रह जाय। फ़र्श दलदल-...ना। तहख़ाने के ऊपर सिपाहियों के सोने के लिए लकड़ी के तख़्तों की छत। उसमें नीचे तहख़ाने में उतरने के लिए पेंचों से जड़ा हुआ डेढ़-दो वर्ग गज़ का दरवाज़ा। मड़ैया के दरवाज़े पर एक चौकीदार बैठा था और बाहर एक भंगी कहीं से काम करता करता थककर आग तापने को आ बैठा था। दोनों में बातें हो रही थीं। विषय था मेरी मूर्खता। मैं सी० पी० (सीपुर) का मेला देखने गया था। वहाँ सिपाही से झगड़ा हो जाने के कारण हवालात में ठूँस दिया गया। ग़लती मेरी न थी। सिपाही ने मुझे गाली दी थी और मैंने क्रोध में आकर उसके एक-दो थप्पड़ जड़ दिये थे। परन्तु पुलिस चाहे वह अँगरेज़ी इलाक़े की हो अथवा देशी रियासत की, अपने दोषों को दूसरे पर थोप देना ख़ूब जानती है। चौकीदार को युद्ध से सहानुभूति थी। उसकी बातों से मुझे ऐसा ही प्रतीत हुआ। उसे कदाचित् अपने जीवन की कोई पुरानी घटना स्मरण हो आई। भंगी का नाम गोविन्द था। लम्बी साँस लेकर उससे बोला—

भई, इसमें न सिपाही का दोष है, न इस बन्दी का। सब दोष है बुरे दिनों का। इसका सितारा चक्कर में है। दुर्भाग्य के आगे किसी की पेश नहीं जाती। सच जानो, हम पर भी एक बार विपत्ति आई थी और इससे हमें जो कष्ट भोगने पड़े उनकी स्मृति-मात्र से ही आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

गोविन्द ने, मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे पाँव भी आग के सामने पसार लिये और तन्मय होकर चौकीदार की कहानी सुनने लगा।

चौकीदार दीर्घ निःश्वास छोड़कर बोला—

हाँ तो गोविन्द, मेरे साथ भी ऐसी ही दुर्घटना घटी थी, और वह भी इसी मेले में। उस समय टिक्का साहब बहुत छोटे थे। अब तो उनकी आयु भी चालीस साल की होगी और मैं तो साठ-सत्तर का हो चला हूँ। मेला तब भी बड़े समारोह से होता था। तब तो यहाँ आनेवाली युवतियों की संख्या भी अधिक होती और नाच-रंग भी बहुत होता था।

मैंने मेला कभी नहीं देखा था। था तो इधर का ही रहनेवाला, पर बचपन से ही अपने दादा के पास लाहौर चला गया था। वहाँ पन्द्रह साल नौकर रहा। फिर उन्होंने मुझे जवाब दे दिया। बात कुछ भी न थी, मुझसे कोई अपराध भी नहीं हुआ था, पर मेरा आयु में बड़ा हो जाना ही मेरे हक़ में विष साबित हुआ। वहाँ भले आदमी बड़ी आयु के नौकरों को घर में नहीं रखते। मैंने और एक-दो जगह नौकरी करने का प्रयास किया और एक जगह मैं सफल भी हो गया, परन्तु मेरा मन नहीं लगा। मैं अपने गाँव को लौट आया। चित्त उदास था और मन चंचल। इतने दिनों तक शहर के पिंजरे में बन्द रहने के पश्चात् गाँव की स्वतन्त्रता मिली थी, परन्तु मुझे वह भी बुरी लगती थी। लेकिन स्वतन्त्रता पाकर उसके गुण शीघ्र ही ज्ञात हो जाते हैं। मैं भी गाँव में आकर खिल उठा। निराशा की सब उदासी और बेचैनी दूर हो गई। यहाँ ठंडे वृक्षों के नीचे ठंडी ठंडी वायु में बाँसुरी बजाने में वह आनन्द आता था जो लाहौर की गरमी में स्वप्न में भी नहीं आ सकता था। बाँसुरी मुझे दादा ने सिखाई थी। लाहौर में इसे बजाने का अवसर ही नहीं मिलता था और यहाँ गाने-बजाने के सिवा कुछ काम ही न था। मैं बाँसुरी में फूँक देता तो मीठी मदभरी तान दूर घाटियों में गूँज जाती।

गाँव में आने पर मुझे एक और बात का भी आभास हुआ। वह यह कि मैं अब किसी का नौकर नहीं, बल्कि

"हम वृक्षों की ओट में चले गये।"

स्वतन्त्र व्यक्ति हूँ। हमारी थोड़ी-सी भूमि थी, उसको जोतना-बोना मैंने शीघ्र ही सीख लिया। लाहौर में मैं तुच्छ समझा जाता था, यहाँ मैं मरुस्थल का एरण्ड था। जिधर से गुज़र जाता, सबकी नज़रें मुझ पर उठ जातीं। सब मुझे श्रद्धा की निगाह से देखते। जब मैं गाँव में आया तब घर घर मेरी चर्चा हुई। कई युवतियों की नज़रें भी मुझसे चार हुईं। मुझे इन निगाहों में प्रेम के सन्देश भी मिले। पर मेरा मन कहीं नहीं अटका। मैं अपनी खेती-बारी में मग्न और बाँसुरी के गानों में मस्त रहा।

ठंडा शीत बीता और प्राणों को गरमी पहुँचानेवाली बहार आ गई। मई का महीना था। इन दिनों शिमले में वर्षा नहीं होती। मई और सितम्बर दो ही महीने हैं, जिनमें इधर की पहाड़ियों का आनन्द लिया जा सकता है। सूरज में तनिक गरमी आ जाती है और उसकी सुनहरी धूप से पतझड़ की सिकुड़ी हुई पहाड़ियाँ खिल उठती हैं। इन दिनों मैं काम नहीं किया करता था। खेती-बारी का काम अपने बड़े भाई पर छोड़कर स्वयं ढोर-डाँगरों को लेकर निकल जाता, सारा सारा दिन गायें चराता। सन्ध्या को दूध दुहता और सँजौली जाकर उसे बेच आता। मुझे केवल प्रातः और सन्ध्या दूध दुहने और बेचने का ही काम करना पड़ता था। अन्यथा मैं सर्वथा स्वतन्त्र अपने ढोरों को चराता फिरता। थक जाता तो वृक्ष के नीचे बैठकर बाँसुरी की तान छेड़ देता।

इन्हीं दिनों मूर्तू से मेरी भेंट हुई। सन्ध्या का समय था। मुझे कुछ देर हो गई थी। इसलिए शीघ्र शीघ्र क़दम बढ़ाता हुआ सँजौली को जा रहा था कि मुझे किसी ने आवाज़ दी—"भैया, तनिक ठहरना।"

मैंने पीछे मुड़कर देखा। पास के गाँव से आनेवाली पगडंडी से एक युवती, कन्धे पर दूध का डिब्बा लटकाये, शपाशप बढ़ी चली आ रही थी। गले में धारीदार गबरून

की कमीज़, उस पर जाकेट, कमर में काली सुथनी, पाँव में ख़ाकी रंग का फलीट। उसकी नाक में छोटी-सी लौंग थी। उस शाम के धुँधलके में मुझे उसकी सूरत बहुत भली लगी। जब तक वह मेरे बराबर न आ गई, मैं उसे देखता ही रहा।

समीप आने पर ज्ञात हुआ, उसे भी दूध देने सँजौली जाना है और अँधेरा हो जाने से वह तनिक डर-सी रही है। मैंने उसे आश्वासन दिया और हम दोनों सँजौली की ओर चल पड़े। कुछ देर चुप चलते रहे। परन्तु सन्ध्या का सुहावना समय, ठंडी ठंडी वायु, सुन्दर पहाड़ी दृश्य, मार्ग की तनहाई, कोई अकेला हो तो चुपचाप लम्बे लम्बे डग भरता चला जाय। हम दोनों में भी धीरे धीरे बातें चल पड़ीं। आरम्भ किसने किया, स्मरण नहीं, परन्तु सँजौली पहुँचते पहुँचते हम घुल-मिल गये। आते समय भी हम इकट्ठे ही आये। उसने कहा था, मैं दूध देकर नल के पास तुम्हारे आने की प्रतीक्षा करूँगी। और जब मैं वापस फिरा तब वह मेरा इन्तज़ार कर रही थी। अँधेरा बढ़ चला था, हम निधड़क चलते गये। बातों में मार्ग की दूरी कुछ भी नहीं जान पड़ी, और जब हम वहाँ पहुँच गये, जहाँ से हमें जुदा होना था तब मेरा हृदय सहसा धड़क उठा। मैंने कहा—"अँधेरा अधिक हो गया है। मैं तुम्हें तुम्हारे घर तक छोड़ आता हूँ। फिर अपने गाँव के चला आऊँगा।" वह मान गई। मैं उसे उसके घर तक छोड़ने गया। उसके घर के समीप हम जुदा हुए। उसकी आँखों में कृतज्ञता थी। जुदा होते समय उसने धीरे से पूछा—"तुम रोज़ उधर जाते हो क्या?"

"हाँ।"

"और तुम?"

"मैं भी।"

बस इसके बाद हम जुदा हो गये। मैं ज़रा तेज़ी से वापस फिरा, पर शीघ्र ही मेरी चाल धीमी हो गई और मैं अपने ध्यान में मग्न चलने लगा। जब चौंका तब देखा, सँजौली के समीप पहुँच गया हूँ। फिर वापस मुड़ा। घर पहुँचा तो देर हो गई थी। भाई को चिन्ता हो रही थी। मैंने कहा—"मेरा लाहौर का एक मित्र मिल गया था।" वह चुप ... लिए उसका घर देखने चला गया था।"

गोविन्द, उस रात मुझे नींद नहीं आई। सारी रात उसकी आँखें, उसकी सुन्दर सलोनी सूरत, उसका मधुर वार्तालाप, उसका यह पूछना, "तुम रोज़ उधर जाते हो क्या", उसकी हर अदा मेरी आँखों में नाचती रही, उसकी हर बात मेरे कानों में गूँजती रही। एक-दो बार मैंने अपनी परिचित बालाओं से उसकी तुलना की। कोई असाधारण बात न थी। कदाचित् उससे भी अधिक सुन्दर रमणियाँ हमारे गाँव में थीं। पर न जाने, उसमें क्या था, उसकी आँखों में क्या था, उसकी चाल में क्या था, उसकी बातों में क्या था। मैं दीवाना-सा हो गया। वह दिन मेरे समस्त जीवन की निधि है, जिसकी स्मृति आज भी मूक और नीरव एकान्त में मेरी संगिनी होती है।

दूसरे दिन हम फिर उसी जगह मिले। मैंने उससे मिलने के लिए कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया। अपने निश्चित समय पर चल पड़ा, तो भी हम उसी स्थान पर मिल गये। कदाचित् वह भी कुछ देर पहले चल पड़ी थी। पहले दिन की भाँति फिर हम इकट्ठे सँजौली गये, फिर मैं उसे घर तक छोड़ने गया, फिर उसी प्रकार उल्लास से वापस आया। हाँ, आज एक और बात का पता ले आया। वह भी दिन को अपनी गायें चराया करती थी, पर दूसरी घाटी में। दूसरे दिन मेरी गायें भी उसी घाटी की ओर जा निकलीं, जैसे अचानक। पहले वह तनिक झिझकी, परन्तु जब मैंने अपनी गायों को वापस मोड़ना चाहा तब उसने कहा—"इस घाटी में घास अधिक अच्छी है।" मैं न जा सका। इसके बाद हम प्रायः रोज़ साथ ही गायें चराते, साथ ही दूध लेकर सँजौली जाते और साथ ही वापस आते। मेरी बाँसुरी का शौक़ भी इन दिनों कुछ बढ़ गया। रात को प्रायः मैं अपने इधर की पहाड़ी पर अपने घर के बाहर ऊँची-सी जगह बैठकर बाँसुरी बजाया करता। एक शब्द में कह दूँ, गोविन्द, मुझे उससे प्रेम हो गया था। जिस दिन मैं गायें लेकर पहले पहुँच जाता और वह देर से आती, उस दिन मेरे हृदय में सहस्रों आशंकायें उठने लगतीं। यही हाल उसका था। धीरे धीरे हमारे प्रेम की बात गाँव में फैल गई। मेरे भाई और उसके माता-पिता को पता चल गया। उन्होंने हमारी सगाई कर दी। मेरी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। परन्तु मेरे इस सुख में एक दुख का काँटा था। यह जानकर कि उसे मेरी पत्नी बनना है, मूर्त ने मुझसे मिलना छोड़ दिया था। मैं व्यर्थ ही अब अपने ढोर लेकर उस घाटी में जाता, जहाँ वह अपनी गायें चराया करती थी। व्यर्थ ही उस चट्टान पर घंटों बैठा रहता, जहाँ हम दोनों बैठे गीत गाया करते थे, व्यर्थ ही रात को बाँसुरी बजाया करता। उसकी सूरत बिलकुल न दिखाई देती। दूध देने भी अब उसका छोटा भाई जाता। मैं उससे मूर्त की बातें पूछा करता। कभी वह सरल अबोध बालक मुझे उत्तर दे देता और कभी मेरी बातें उसकी समझ में न आतीं।

(२)

इसी प्रतीक्षा में शीत बीत गया। दिन खिल उठे। हमारे विवाह की तिथि भी नियत हो गई। परन्तु मेरे हृदय की बेचैनी नहीं घटी। मैं मूर्त की सूरत तक को तरस गया। उसे देखने के लिए मेरे सब प्रयास असफल हुए।

चौकीदार ने एक लम्बी साँस लेकर कहा—तुम पूछोगे, गोविन्द, जब उसे मेरे घर आना ही था तब फिर उसे देखने की बेचैनी क्यों? मैं स्वयं ठीक तौर पर इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकता। वास्तव में जिस दिन हमारी मँगनी हुई थी, उस रोज़ से उसने अपनी सूरत भी नहीं दिखाई थी। और मैं इस ज्ञान के पश्चात् उससे कई तरह की बातें करना चाहता था। यह बात जानने के बाद वह किस तरह की बातें करती है, किस प्रकार उसका मुख लज्जा से सुर्ख़ हो जाता है, इन सब बातों का आनन्द मैं लेना चाहता था और भावी जीवन के सम्बन्ध में पहले से ही कुछ बातचीत कर रखना चाहता था। पर उसने जैसे अपने घर से बाहर निकलने की सौगन्ध खा ली थी। मैं लाख इधर-उधर चक्कर लगाता, लाख बाँसुरी में आने का चिरपरिचित संदेश देता, पर वह नहीं आती।

इन्हीं दिनों में सी० पी० का मेला आ गया। मेरी प्रसन्नता की सीमा न रही। मेले में वह अवश्य जायगी, इस बात का मुझे पूरा निश्चय था और फिर कहीं रास्ते में उसे देख पाना और अवसर पाकर उससे दो बातें कर लेना असम्भव नहीं था। मैं कई दिन पहले से ही मेले की तैयारियों में निमग्न हो गया। दूध बेचने पर जो कुछ बचता उसमें से भैया कुछ मुझे भी दे देते थे। शनैः शनैः यह रक़म जमा होती गई, और मेरे पास पचास रुपये हो गये। मैंने इनसे एक ख़ाकी कोट और बिरजस बनवाई, अच्छे से बूट ख़रीदे, अच्छी-सी धारीदार गबरून की दो कमीज़ें सिलवाईं, दो रुमाल लिये, बारीक मलमल का बिजली रंग का साफ़ा रँगवाया। और जब मेले के दिन इन सब कपड़ों से सजकर मैंने कुल्ले पर नोकदार साफ़ा बाँधा और उसके तुर्रे का फूल-सा बनाकर शीशे में देखा तब गर्व से मेरा सिर तन गया और चेहरा लाल हो गया।

रेशमी रुमाल को कोट की ऊपर की जेब में रखकर, कमीज़ के कालरों को कोट पर चढ़ाकर, हाथ में छोटी-सी छड़ी लेकर जब मैं मेले को रवाना हुआ तब गाँव के सब स्त्री-पुरुष मुझे निर्निमेष निगाहों से ताककर रह गये। मुझे देखकर कौन कह सकता था कि यह रोज़ सुबह-शाम दूध लेकर सँजौली जानेवाला ग्वाला है और इसका काम गायें चराना और उनकी सेवा करना है।

मार्ग में एक पानी की सबील थी। यों ही कच्ची मिट्टी और पत्थरों से तीन दीवारें खड़ी करके उन पर टीन का छप्पर डाल दिया गया था। छप्पर पर बड़े बड़े पत्थर रक्खे थे, ताकि तीक्ष्ण वायु से वह कहीं उड़ न जाय। इस प्रकार बनी हुई वह कोठरी एक तरफ़ सर्वथा खुली हुई थी। कोई किवाड़ इत्यादि भी नहीं थे। इसी में एक बड़ा-सा पत्थर रक्खा था, जहाँ एक अधेड़ आयु की स्त्री पानी पिला रही थी। यह मूर्त के गाँव की बुढ़िया तुलसी थी। मैं इस सबील पर आकर रुका, प्रकट में कुछ सुसताने के लिए, परन्तु मेरी हार्दिक इच्छा यहाँ रहकर मूर्त की बाट जोहनी थी।

यह सबील सड़क के दाईं ओर टेसू के वृक्षों के झुंड में बनी हुई थी। मार्ग के इस ओर कुछ निचाई थी। पहाड़ पर नीचे को सीढ़ियाँ-सी बनी हुई थीं और गायों के इधर-उधर चलने से छोटी छोटी-सी पगडंडियाँ प्रतीत होती थीं। मैं सबील के एक ओर मार्ग की तरफ़ पीठ करके, नीचे को टाँगें लटकाकर बैठ गया। साफ़ा उतार-कर मैंने पास ही पड़े हुए पत्थरों पर रख दिया। परन्तु मुझसे बहुत देर तक इस प्रकार बैठा नहीं गया। मैं तुलसी से कुछ बातें करना चाहता था। पानी पीने के बहाने उठा और वहाँ पहुँचा। पानी पीने ही लगा था कि उसने व्यङ्ग्य का तीर छोड़ा।

"पानी से प्यास क्या मिटेगी, चाहे मनों पी जाओ। जिसे देखने की प्यास है वह अभी इधर से नहीं गुज़री।"

अब छुपाना व्यर्थ था। मैंने रहस्ययुक्त अन्दाज़ से धीरे से पूछा--आज मेला देखने तो जायगी।

"शायद।"

"सहेलियाँ साथ होंगी?"

"हाँ।"

"फिर मैं कैसे उससे बात कर सकूँगा?"

"केवल देखने से प्यास नहीं बुझ सकती?"

"नहीं।"

बुढ़िया चुप रही।

मैंने पूछा—"तुम प्रबन्ध नहीं कर दोगी?"

बुढ़िया का हँसता हुआ पोपला मुँह मेरी ओर उठा। उसकी आँखें चमकने लगीं। वह बोली—"कैसे?"

"मैं वहाँ वृक्षों के झुंड में हूँ। तुम कह देना, तुम्हारी एक सहेली वहाँ तुम्हारी बाट जोह रही है। उससे मिल आओ"।

"नहीं, मैं यह नहीं कर सकती।"

मैंने कुछ कहने के बदले जेब से एक रुपया निकालकर बुढ़िया के सामने रख दिया। उसने कदाचित् अपनी सारी आयु में रुपया नहीं देखा था। उसकी बाछें खिल गईं। कहने लगी--"यह कष्ट क्यों करते हो? भेज दूँगी उसे। आख़िर वह तुम्हारे ही घर तो जायगी।"

मेरा हृदय प्रसन्नता से खिल उठा। इतनी जल्दी यह काम हो जायगा, इसकी मुझे आशा नहीं थी। पानी पीकर मैं अपनी जगह आ बैठा और उसके आने की घड़ियाँ गिनने लगा। पाँव की तनिक-सी चाप भी मूतू के आने का सन्देह जाग्रत कर देती और मेरी आँखें सबील की ओर उठ जातीं। परन्तु हर बार निराश होकर लौट आतीं। प्रतीक्षा के ये क्षण युगों की नाईं प्रतीत हुए। बार बार देखता, बार बार ताकता। कहीं रँगे हुए दुपट्टे की तनिक-सी झलक भी दिखाई देती तो हृदय धड़कने लग जाता। इतना ही अच्छा था कि जहाँ मैं बैठा था, वहाँ से मैं तो सबको देख सकता था, पर मुझे कोई नहीं देख पाता था।

अन्त में मुझे उसकी आवाज़ सुनाई दी। तुलसी उसे मेरी ओर आने के लिए कह रही थी और वह

साथ लेकर ही न आ जाय और इस 'प्रतीक्षा करनेवाली सहेली' का भेद खुल जाय। पर नहीं, वह अकेली आई। वायु में उसके सिर का दुपट्टा उड़ रहा था, चमकी का चमचमाता हुआ कुर्ता उड़ रहा था, वह स्वयं उड़-सी रही थी। मेरे समीप आकर वह भौचक्की-सी खड़ी हो गई और एक क्षण बाद स्वर्ण-स्मित उसके अधरों पर चमक उठी और वह वापस मुड़ने लगी। मैंने उसे पकड़ लिया और क्षणिक आवेश से उसे अपने प्यासे आलिङ्गन में लेकर उसके अधरों को चूम लिया। उसके मुख अरुण होकर रह गये और वह अपने आपको स्वतन्त्र करने की चेष्टा करने लगी। मैंने अपना रेशमी रूमाल उसकी जेब में ठूँस दिया। वह भाग गई। न मैं कुछ कह सका, न वह। कितनी बातें सोची थीं, कितने मनसूबे बाँधे थे, परन्तु अवसर मिलने पर एक भी पूरा न हुआ।

वह अपनी सहेलियों के साथ चली गई। अपने मुख की लाली, अपना अस्त-व्यस्त दुपट्टा, अपनी घबराहट का कारण उसने सहेलियों से क्या बताया, यह मुझे ज्ञात नहीं। परन्तु उसके चले जाने के बाद मैंने साफ़ा सिर पर रक्खा और वृक्षों के झुंड से बाहर निकल आया। मेरे ओंठ अभी तक जल रहे थे और हृदय धड़क रहा था।

(३)

चौकीदार ने साँस लेकर कहा—हमारा गाँव सँजौली और मशोबरे के रास्ते में है। सँजौली वहाँ से कोई दो मील होगा। सबील तनिक आगे थी। मैं तुलसी से बिना मिले ऊपर को चल पड़ा। सड़क पर पहुँचकर मैंने मशोबरे की ओर देखा। मूतू अपनी सहेलियों के साथ दूर निकल गई थी। मैं सिर झुकाये चल पड़ा। तबीयत में कुछ उदासी-सी छा गई। उस समय मैं इसका कारण न समझ सका, पर बाद की घटनाओं ने बता दिया कि वह उदासी अकारण न थी। मूतू से मिलने के पश्चात् मेरे मन में प्रसन्नता का जो तूफ़ान आया था वह उड़-सा गया। होना इसके विपरीत चाहिए था। लेकिन हुआ ऐसा ही। प्रसन्नता से तेज़ चलने के बदले मैं धीरे धीरे चलने लगा। ख़याल आया, कदाचित् मूतू नाराज़ न हो गई हो, कदाचित् वह मेरे इस दुस्साहस से रुष्ट न हो गई हो। अब मेले में उससे आँखें कैसे मिला सकूँगा? दिल में चोर बस

गाँव को मुड़ जाऊँ। लेकिन नहीं, मुझे तो जाना था, मेरे दिल में तो उसे एक नज़र देखने का लोभ बना हुआ था और इस लोभ को मैं किसी तरह संवरण न कर सका। चलता गया।

मेले में पहुँचते पहुँचते मेरे सब सन्देह दूर हो गये। मूतू मुझे मेले से ज़रा इधर ही मिली। वे सब विश्राम ले रही थीं। प्रकट में ऐसा ही प्रतीत होता था, परन्तु मुझे ऐसा जान पड़ा, जैसे वह मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। मुझे देखते ही मुसकरा दी। उसकी आँखें नाच उठीं। मेरा हृदय उल्लास से विभोर हो उठा। उसी समय मेरे गाँव का एक साथी मेरे पास से गुज़रा। मैंने उसे आवाज़ दी। वह वहीं खड़ा हो गया।

"किधर जा रहे हो?" मैंने पूछा।

"मेले को।" उसने उत्तर दिया।

"किधर रहोगे?"

"घूम-फिर कर देखेंगे।"

"हम तो भई वहीं वृक्षों के झुंड के पीछे डेरा लगायेंगे। उधर आ सको तो आना।" मैंने मूतू की ओर देखकर कहा। बातें मैं साथी से कर रहा था, पर संकेत मूतू को था। साथी चला गया, वह मुसकरा दी। उस समय वह चलने के लिए उठी। मैं शीघ्र शीघ्र क़दम बढ़ाता सीपुर (सी० पी०) पहुँच गया।

वहाँ पहुँचा तो मेला ख़ूब भर रहा था। मैं थका हुआ था। तनिक विश्राम करने का ठिकाना देखने लगा। आकाश पर बादल छाये हुए थे और मनोमुग्धकारी ठंडी हवा चल रही थी। मैं उस जगह के पीछे, जहाँ आज चाय का ख़ेमा लगा है, जाकर बैठ गया। न जाने कितनी देर तक वहाँ बैठा कल्पनाओं के गढ़ निर्माण करता रहा। लाट अथवा किसी दूसरे पदाधिकारी के आने पर जब बाजों की ध्वनि वायुमण्डल में गूँज उठी तब मेरी विचार-धारा टूटी। मैं अपनी जान में मूतू की प्रतीक्षा कर रहा था। पर यह न सोचा कि जब उसे इस स्थान का पता ही नहीं तब वह यहाँ आयेगी कैसे? यह ध्यान आते ही उठा। इधर-उधर घूमता वहाँ पहुँचा, जहाँ स्त्रियाँ बैठी हुई थीं। मूतू एक सिरे पर बैठी थी। मैं उसके सामने से गुज़रा, पर उसकी आँखें किसी और तरफ़ थीं। मैं एक ओर हटकर खड़ा हो गया और इस बात की प्रतीक्षा करने लगा कि वह मेरी ओर देखे। उस समय मैंने देखा कि एक और पुरुष भी मूतू की ओर प्रेम-भरी दृष्टि से देख रहा है और इस प्रेम में वासना की पुट अधिक है। वह था कोठी का दारोग़ा। क्रोध और ईर्ष्या के कारण मेरी आँखें लाल हो गईं। परन्तु अपने आपको सँभालकर मैं वहीं खड़ा रहा। उधर उस नरपिशाच की निगाह बराबर मूतू के सुन्दर मुख पर जमी रही।

अन्त को मूतू की मुझसे चार आँखें हुईं। मैंने उसे हाथ से आने का संकेत किया। उसने इशारे से मुझे स्वीकृति दी। कदाचित् दारोग़ा ने भी हमारी इशारेबाज़ी को देख लिया। दूसरे क्षण मैंने उसकी ओर देखा और उसने मेरी ओर। उसकी आँखों में ईर्ष्या थी, कदाचित् द्वेष भी। मैंने इसकी परवा नहीं की और एक बार फिर मूतू की ओर देखकर उसके सामने ही वृक्षों की ओट में हो गया। कुछ ही देर के बाद वह आ गई। चंचलता, उल्लास, प्रसन्नता का जीवित चित्र! मैंने कहा मूतू, तुम तो दिखाई ही नहीं देतीं, ईद का चाँद हो गईं।"

"और तुम्हारा कौन पता चलता है? मैं इस झुंड के पीछे देखकर हार गई।"

"पर मैं तो उधर था।"

"मैं कैसे जान सकती थी?"

मैंने उसका हाथ पकड़ लिया। मैंने कहा—चलो छोड़ो इस झगड़े को। इन चार घड़ियों को बहस में क्यों खोयें? हम वृक्षों की ओट में चले गये। समीप ही मेले में आये हुए व्यक्तियों का शोर कुछ स्वप्न के संगीत की भाँति प्रतीत होने लगा। हम अपनी बातों में मग्न मेले और उसमें होनेवाले राग-रंग को भूल गये। उन कतिपय क्षणों में न जाने हमने भविष्य के [illegible] ने प्रासाद बनाये। वृक्षों की उस ठंडी छाया में, उस मदमत्त समीर में, उस लालसा-उत्पादक एकान्त में मूतू मुझे मूर्तिमान् सुन्दरता दिखाई दी और मैंने एक स्वर्गीय आनन्द से विभोर होकर उसे अपनी ओर खींचा। इस समय हमारे सामने किसी की गहरी छाया पड़ी। मैंने चौंककर पीछे की ओर देखा। वही दारोग़ा क्रोधभरी ईर्ष्यामयी आँखों से मुझे घूर रहा था। मैं तनकर उसके सामने खड़ा हो गया। मूतू भी बैठी न रह सकी।

"इस औरत को किधर भगाने की कोशिश कर रहे

हो ?" उसने मूर्तू का बाज़ू पकड़कर अपनी ओर खींचते हुए कहा।

मेरी आँखों में ख़ून उतर आया। मैंने कड़ककर कहा—"इसे हाथ मत लगाओ।"

"क्यों तुम्हारे बाप की क्या लगती है ?"

"मेरी मँगेतर है।"

"चल मँगेतर के साले। ज़रा राणा के पास चल। सब पता लग जायगा कि यह तेरी मँगेतर है या आशना। यहाँ मेला देखने आते हो या बदमाशी करने।" यह कहते कहते उसने वासनायुक्त दृष्टि मूर्तू पर डाली। वह खड़ी थरथर काँप रही थी। क्रोध के मारे मेरी भुजायें फड़कने लगीं। मैंने एक हाथ से मूर्तू को उसके पंजे से छुड़ाया और दूसरे से एक ज़ोर का थप्पड़ उसके मुँह पर रसीद किया। उसने मुझे गाली दी और हंटर से प्रहार किया और सीटी बजाई। मुझे क्रोध तो आया हुआ था ही। मैंने हंटर उसके हाथ से छीनकर दूर खड्ड में फेंक दिया और कमर से पकड़कर उसे धरती पर दे मारा।

एक चीख़ और बीसियों लोग उधर दौड़े हुए आये। आगे आगे कई सिपाही थे। आते ही उन्होंने मुझ पर हंटरों की वर्षा कर दी। मेरा युवा हृदय भी विह्वल हो उठा, उत्तेजित हो उठा। यों चुपके से पराजय स्वीकार कर लेना उसे मंज़ूर न था। मैंने हमला करनेवालों में से एक को पकड़ लिया और प्रहारों की परवा न करते हुए उसे खड्ड में ढकेल दिया। फिर एक दूसरे की बारी आई। उसे भी खड्ड में गिरा दिया। सिपाहियों ने सहायता के लिए सीटियाँ बजा दीं। और लोग आ गये। मुझ पर चारों ओर से प्रहार होने लगे। मेरे शरीर से रक्त बह निकला। फिर भी मैं उस समय तक लड़ता गया, जब तक बेहोश नहीं हो गया।

(४)

जब होश आया तब अपने आपको नीचे की हवालात में पड़े पाया। इस अँधेरे और एकान्त में मेरा दम घुटने लगा। मूर्तू के साथ क्या बीती, इस विचार ने मेरे मन को अधीर कर दिया। भूत में क्या हुआ और भविष्य में क्या होगा, इन विचारों ने मेरे मस्तिष्क को घेर लिया। मेरा अंग अंग दुख रहा था, परन्तु मुझे अपने दुख की चिन्ता न थी। दुख था तो मूर्तू की जुदाई का।

दूसरे दिन सिपाही मुझे राणा साहब के आगे पेश करने को लेने आये, पर मुझसे तो उठा तक न जाता था। तीन दिन तक इसी नरक में पड़ा रहा। फिर क्यार कोटी ले गये। वहाँ तनिक आराम आने पर मेरा मामला पेश हुआ। मुझ पर मेले से एक स्त्री को भगाने का प्रयास करने और बावर्दी सिपाहियों को उनके कर्तव्य से रोकने तथा पीटने का अभियोग लगाया गया। शिकायत करने-वाला ही निर्णायक था। मुझे डेढ़ साल की क़ैद की सज़ा मिली। मेरे भाई के सब उद्योग—सब मिन्नतें वृथा गईं। वे मुझसे मिलने तक न पाये।

चौकीदार ने दीर्घ निःश्वास छोड़कर कहा—इस डेढ़ वर्ष में मैंने जो कष्ट उठाये वे अनिर्वचनीय हैं। यह समझ लो कि जब मैं डेढ़ साल के बाद अपने गाँव पहुँचा तब मेरा सगा भाई भी मुझे नहीं पहचान सका। मैं कदाचित् डेढ़ साल बाद भी वहाँ से छुटकारा न पाता, यदि वह दारोग़ा वहाँ से रियासत के किसी दूसरे भाग में न बदल जाता। गाँव में आने पर मुझे ज्ञात हुआ कि मूर्तू भी उस मेले से नहीं लौटी। वह अवश्य ही उस दारोग़ा वा दूसरे कर्मचारियों की पापवासनाओं का शिकार बनी होगी। इस बात का मुझे पूरा निश्चय था और मेरा यह सन्देह सत्य भी साबित हुआ, जब एक साल पश्चात्, स्वस्थ होने के बाद, लाहौर जाने पर मैंने धोबी-मंडी में मूर्तू के दर्शन किये। वह एक बहुत छोटे-से घिनौने मकान में रहती थी। मैं उसके पास कई घंटे तक बैठा रहा। उसने मुझे अपनी मर्मस्पर्शी कहानी सुनाई। किस भाँति उसकी सुन्दरता पर मुग्ध होकर दारोग़ा अथवा दूसरे कर्मचारियों ने उस पर अनर्थ तोड़े और किस प्रकार अपने अत्याचारों का भण्डाफोड़ होने के भय से उन्होंने उसे छोड़ दिया। अपने सतीत्व को लुटाकर वह किस प्रकार अपने गाँव में जाने का साहस न कर सकी और किस प्रकार पेट की ज्वाला ने उसे धोबी-मंडी में आ बसने को बाध्य किया।

चौकीदार की आवाज़ भर्रा गई। वह कहने लगा—यह कहते कहते गोविन्द, वह रो पड़ी। मैं भी रोने लगा। मैंने उसे अपने साथ चलने को कहा, पर वह राज़ी नहीं हुई। आते समय उसने मेरे सामने एक रेशमी रूमाल रख दिया और रोती हुई बोली—

"आज तीन साल से मैंने इसे सँभाल कर रक्खा है।

परन्तु यह पवित्र रूमाल अब मुझ-सी अपवित्र नारी के पास नहीं रहना चाहिए। इसे अपनी नव वधू को भेंट कर देना।

उसके स्वर में कुछ ऐसी दृढ़ता थी कि मैं उत्तर न दे सका और मैं वहाँ से चला आया। दूसरे दिन वहाँ गया तब मूर्तू वहाँ से जा चुकी थी।

ऊपर कमरे में निस्तब्धता छा गई। कदाचित् कंठावरोध के कारण चौकीदार चुप हो गया था।

कुछ क्षणों के बाद गोविन्द ने पूछा—तो आप इस नौकरी पर कैसे आये ?

"यह बात पूछने से क्या लाभ ? भाग्य के चक्कर से इधर आ गया हूँ।"

"फिर भी।"

चौकीदार ने धीरे से कहा—अब तो बताने में कोई हानि नहीं। वास्तव में मैं उस नरपिशाच दारोग़ा से बदला लेने की प्रबल आकांक्षा से शिमले आया था। मेरे लिए मूर्तू ही सब कुछ थी। मैंने अपने जीवन में केवल उसी से प्रेम किया। इसके बाद मैंने विवाह भी नहीं किया। जिस दारोग़ा ने इस प्रकार हम दोनों को जुदा कर दिया, मैं उसे सस्ते दामों छोड़ना नहीं चाहता था। परन्तु परमात्मा ने मुझे उस नीच के लहू से अपने हाथ रँगने से बचा लिया। मेरे आने के दो दिन बाद ही वह सड़क पर चला जा रहा था कि वर्षा के कारण पहाड़ का एक बड़ा-सा भाग टूटकर उस पर गिरा और वह अपनी पाप-वासनाओं को अपने साथ लिये सदा के लिए संसार से चला गया। इसके बाद दिल में कुछ और आरज़ू ही न रही, इसलिए यहीं बना रहा।"

गोविन्द ने एक लम्बी साँस ली। उसने कहा—"भाग्य के खेल हैं चौकीदार जी। जिस प्रकार विधाता रक्खे, उसी पर सन्तुष्ट रहना चाहिए।

बाहर सिपाहियों के मज़बूत जूतों की खड़खड़ाहट का शब्द सुनाई दिया और कई सिपाही कमरे में दाख़िल होकर सोने का प्रबन्ध करने लगे। कदाचित् गोविन्द उसी समय वहाँ से खिसक गया था।*

---

*लेखक की अप्रकाशित 'एक रात का नरक' नामक पुस्तक से।

अनुरोध

लेखक, श्रीयुत राजनाथ पांडेय, एम० ए०

भर दे निज कोमल गायन में, कवि रे ! ऐसे आशीस वचन,
जिससे जग में श्री बरस पड़े रह जाय न कोई जन निरधन।
रह जाय न कोई जन निरधन, कह रे कवि ! वे आशीस वचन,
रवि-शशि-तारों की किरणों से ले ले मानव अगणित जीवन !
प्रत्येक हृदय में हो मुखरित—वन-पल्लव का लघुतर मर्मर,
लघु-लघु जीवों की मूक कथा, जगती के हिय का स्पन्दन-स्वर।
आधार प्रणय का हो करुणा, जग के सब टूट पड़ें बन्धन,
बँध जाय प्रेम के धागे में इस अखिल विश्व का प्रिय जीवन।
हम तेरे गायन को सुनकर उठकर खोलें चिर-अन्ध-नयन,
भर दे निज कोमल गायन में कवि रे ! ऐसे आशीस वचन !
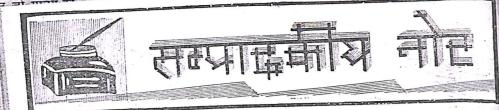
सम्राट् एडवर्ड का राजसिंहासन-त्याग

कहाँ सम्राट् एडवर्ड के राज्याभिषेक की तैयारी धूमधाम के साथ हो रही थी और साम्राज्य के सारे प्रजाजन उस महोत्सव के दिन की बड़ी उत्सुकता के साथ राह देख रहे थे, कहाँ उस दिन एकाएक अख़बारों में यह दुःखद संवाद पढ़ने को मिला कि सम्राट् एडवर्ड राजसिंहासन परित्याग करने को लाचार हुए हैं। यही नहीं, राजसिंहासन त्याग कर वे स्वदेश छोड़कर भी चले गये, यह वास्तव में ब्रिटिश साम्राज्य की इस काल की एक असाधारण घटना हुई है। जिस प्रधान बात के कारण सम्राट् एडवर्ड को सिंहासन त्याग करना पड़ा है वह है उनका एक अमरीकन महिला के साथ विवाह करने का निश्चय। सम्राट् का यह विवाह ब्रिटेन के प्रधानमंत्री मिस्टर बाल्डविन को ठीक नहीं जँचा और उन्होंने सम्राट् से अपना [illegible] प्रकट किया। पर सम्राट् अपने निश्चय पर अटल रह और जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि प्रधान मंत्री मिस्टर बाल्डविन के पक्ष में संगठित लोकमत है तब उन्होंने अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए सम्राट् जैसे ऊँचे पद का त्याग कर देना ही उचित समझा। यही नहीं, उन्होंने तत्काल ही राजसिंहासन का परित्याग कर भी दिया और वे इँग्लैंड छोड़कर एक साधारण नागरिक के रूप में अपना शेष जीवन व्यतीत करने को आस्ट्रिया जैसे सुदूर देश को चले गये। सम्राट् एडवर्ड अभी अभी अपने पिता की मृत्यु के बाद ब्रिटेन के सिंहासन पर गत जनवरी में बैठे थे और उन्होंने जिस उत्साह और तत्परता से अपने गौरवपूर्ण पद का भार ग्रहण किया था उससे इस सिंहासन-त्याग की बात की कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था। परन्तु दैव की कुटिल गति से वही अघट घटना घटित हो गई। इससे प्रकट होता है कि ब्रिटिश साम्राज्य का शासन-सूत्र जिन लोगों के हाथ में रहता है वे सम्राट् के गौरवपूर्ण पद को किस आदर्श में निहत रखना चाहते हैं। चाहे जो हो, ऐसा त्याग कोई सामान्य त्याग नहीं। [illegible] लिए वह संसार के सबसे बड़े साम्राज्य के स्वामित्व का त्याग है। परन्तु सम्राट् एडवर्ड ने अपनी पद-मर्यादा की रक्षा के विचार से अपनी प्रेमिका का त्याग करना उचित नहीं समझा। उनकी इस बात से उनके गौरव की और भी वृद्धि हुई है और अपने इस साहस के कार्य से उन्होंने अपना नाम इतिहास में अमर कर लिया है। वे चाहते तो सम्राट्-पद का भी न त्याग करते और उनकी प्रेमिका भी उन्हें प्राप्त रहती। परन्तु उन्होंने अपनी उद्देश-सिद्धि के लिए वैसे मार्ग का ग्रहण करना उचित नहीं समझा। और अपनी सचाई के कारण उन्हें राजसिंहासन से हाथ धोना पड़ा। सम्राट् के इस कार्य से उनके साम्राज्य के प्रजाजनों को भारी दुःख हुआ है और उसका उन पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है, क्योंकि सम्राट् एडवर्ड गत २५ वर्ष से सारे साम्राज्य में अपनी उदारता और व्यवहार-कुशलता के लिए बहुत ही अधिक लोकप्रिय रहे हैं।

सम्राट् जार्ज और सम्राज्ञी एलिज़ाबेथ

बादशाह एडवर्ड के राजसिंहासन त्याग करने पर गत १२ दिसम्बर को उनके सहोदर भाई यार्क के ड्यूक बादशाह जार्ज (छठे) के नाम से सम्राट् और उनकी पत्नी यार्क की डचेज़ एलिज़ाबेथ सम्राज्ञी घोषित किये गये। आप स्वर्गीय बादशाह जार्ज पंचम के दूसरे पुत्र हैं। आपका जन्म सन् १८९५ के १४ दिसम्बर को हुआ था। ओस्बोर्न और डार्टमूर में आपको नौ-विद्या की शिक्षा दी गई। सन् १९११ के सितम्बर में आप कोलिंगउड में नियुक्त किये गये। १९१३ में आप वेस्ट इंडीज़ गये। युद्ध-काल में आपने अपेन्डिसाइटिस की पीड़ा के कारण अपने जहाज़ को छोड़ दिया था।

१९१६ में आपके २१वें जन्मोत्सव के अवसर पर आपको के० जी० की पदवी दी गई। १९१८ में हवाई जहाज़ की कला जानने के लिए आपने उस विभाग में प्रवेश किया और आप राजकीय हवाई सेना में कैप्टन बनाये गये। इसी समय आप औद्योगिक वेल्फ़ेयर सोसाइटी के

सभापति बनाये गये। सन् १९२१ में आपको जी० सी० वी० ओ० की पदवी दी गई। इसी साल की जनवरी में
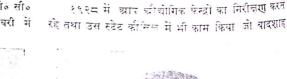
[सम्राट् जार्ज (छठे)]

आप राजकीय नौ-सेना के सेनापति के पद पर प्रतिष्ठित किये गये। १९२२ में आप ई० यार्क्स रेज़ीमेंट के कर्नल हुए।

सन् १९२३ की जनवरी में आपकी स्ट्राथमोर के अर्ल की पुत्री लेडी एलिज़ाबेथ बोवेस-लाइयन से सगाई हुई और उसी साल वेस्ट-मिनिस्टर एबे में आपका २६ अप्रेल को विवाह हो गया। १९२५ में आप अफ़्रीका भ्रमणार्थ गये। १९२५ की प्रसिद्ध वेम्बले-प्रदर्शनी के आप सभापति हुए। १९२६ की २१ अप्रेल को आपके एक पुत्री हुई। राजकुमारी का नाम एलिज़ाबेथ अलेक्ज़ेंड्रा मेरी रक्खा गया। १९२६ के दिसम्बर में आप जी० सी० एम० जी० बनाये गये। १९२७ की जनवरी में आप सपत्नीक आस्ट्रेलिया की नई राजधानी कनबेर्रा देखने को आस्ट्रेलिया गये और ९ मई को वहाँ के पार्लियामेंट-भवन का उद्घाटन किया। इसी वर्ष जुलाई में आपकी पत्नी को जी० बी० ई० की पदवी दी गई।

१९२८ में आप औद्योगिक केन्द्रों का निरीक्षण करते रहे तथा उस स्टेट कौंसिल में भी काम किया जो बादशाह

[सम्राज्ञी एलिज़ाबेथ]

की बीमारी के कारण १९२८ में नियुक्त हुई थी। आप १९२९ के मार्च में स्काटलैंड के चर्च के हाई कमिश्नर नियुक्त किये गये। १९३० में आपकी दूसरी पुत्री का जन्म हुआ। १९३१ की जुलाई में पेरिस-औपनिवेशिक-प्रदर्शनी देखने गये। १९३२ की ३ जून को आप [illegible] एडमिरल बनाये गये। १९३२ के दिसम्बर में आप मेजर-जनरल और एयर वाइस मार्शल स्काट्स गार्ड्स के कर्नल बनाये गये। १९३४ में आपने सार्वजनिक कार्यों में बड़ी दिलचस्पी दिखाई।

अब आप अपने जेठे भाई के राज्यत्याग करने पर ब्रिटिश साम्राज्य के सम्राट् घोषित किये गये हैं। इस समय आप ४१ वर्ष के हैं। हम यहाँ आपके दीर्घजीवी होने की कामना प्रकट करते हैं और चाहते हैं कि आपका भी शासन-काल आपके स्वर्गीय पिता जैसा ही गौरवशाली हो।
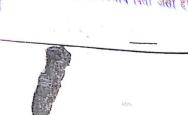
क्या महायुद्ध छिड़ेगा

इसमें सन्देह नहीं है कि जर्मनी अब योरप का प्रबल राज्य हो गया है। वह निर्दयता के साथ वर्सेलीज़-सन्धि के विरुद्ध आचरण कर रहा है, यही नहीं, वह अपने छीने हुए उपनिवेश भी वापस माँग रहा है। इसके लिए उसने यथासम्भव अपनी सैनिक तैयारी भी कर ली है। उसकी शक्ति-वृद्धि को देखकर फ़्रांस बुरी तरह डर गया है और योरप के जो राज्य उससे मेल-जोल रखते थे वे भी लड़ाई छिड़ जाने की आशंका से फ़्रांस के गुट से अलग हो जाने का प्रयत्न कर रहे हैं। बेल्जियम तक ने अगले युद्ध में निरपेक्ष रहने की घोषणा कर दी है। उधर बालकन-प्रायद्वीप के रूमानिया और जुगोस्लेविया भी फ़्रांस से किनारा करते हुए दिखाई दे रहे हैं। इसका मूल कारण है राष्ट्र-संघ की नपुंसक नीति।

यह सच है कि फ़्रांस ने रूस से मैत्री कर ली है और एक बहुत बड़ी रक़म देकर पोलेंड को भी अपने पक्ष में कर लिया है। परन्तु यदि जर्मनी से उसका युद्ध छिड़ गया तो उस दशा में फ़्रांस का साथ कौन कौन देश देगा, इस सम्बन्ध में कोई बात निश्चय-पूर्वक कहना बहुत कठिन है।

देखिए न कि ज़ेचोस्लोवेकिया, जुगोस्लेविया और रूमानिया में इस बात के कारण मित्रता थी तथा आज भी है कि उनके राज्य का क्षेत्रफल जैसे का तैसा बना रहे, इसके सिवा उनके राज्यों की वर्तमान सीमा की रक्षा का आश्वासन उन्हें फ़्रांस ने भी बराबर दिया है। परन्तु अब फ़्रांस जर्मनी और इटली के आगे पीछे पड़ गया है, अतएव इन राज्यों को आपत्ति के समय फ़्रांस की सहायता का भरोसा नहीं रहा। वर्तमान राजनैतिक परिस्थिति के कारण ज़ेचोस्लोवेकिया तो बिलकुल रूस और जर्मन के संघर्ष के बीच में पड़ गया है। ऐसी दशा में वह अपनी रक्षा के विचार से धीरे धीरे इटली की ओर झुक रहा है। इस दशा में उसकी आस्ट्रिया और हंगेरी से अधिक घनिष्ठता हो जायगी। और ऐसा होने पर जर्मनी का विरोध-भाव कम पड़ जायगा। परन्तु ऐसा कहाँ तक सम्भव होगा, यह समझना कठिन है, क्योंकि ज़ेचोस्लोवेकिया की रचना हंगेरी, आस्ट्रिया और जर्मनी के प्रदेशों को मिलाकर ही हुई है और ये तीनों देश अवसर पाते ही अपने अपने भूभाग अपने अपने राज्य में मिला लेने से कभी नहीं हिचकेंगे। इस कारण योरप का यह नया देश बड़े चक्कर में पड़ा हुआ है और वह अपनी रक्षा के लिए फ़्रांस और रूस का मुँह ताकते रहने को बाध्य रहा है। परन्तु आज पासा उलट गया है। बर्लिन और रोम की गति-विधियों ने उसे अस्थिर कर दिया है।

इसकी अस्थिर नीति के कारण जुगोस्लेविया और रूमानिया ज़ेचोस्लोवेकिया को सन्देह की दृष्टि से देख रहे हैं। वे उसे रूस का सहायक समझ रहे हैं। इधर रूमानिया रूस का विरोधी है। और जुगोस्लेविया ने तो आज तक सोवियट रूस को नहीं स्वीकार किया है, यद्यपि वह स्लावों का राज्य है। परन्तु स्लावों को अपने सजातीय और पहले के मित्र रूसियों का वर्गवाद एक क्षण के लिए भी स्वीकार नहीं है। उसकी यह वर्गवाद-विरोधी नीति जर्मनी और इटली के अनुकूल है। फिर जर्मनी का व्यापार जुगोस्लेविया में बहुत बढ़ गया है, जिससे उसका वहाँ काफ़ी प्रभाव हो गया है।

इधर आस्ट्रिया में जर्मनी का जो विरोध था वह भी क्षीण हो गया है। तथापि यह जानते हुए भी कि जर्मनी को उसका राजतंत्रवाद रुचिकर नहीं है, आस्ट्रिया के भाग्य-विधाता डाक्टर शुश्निग ने स्पष्टरूप से कह दिया है कि आस्ट्रिया में राजतंत्र का आन्दोलन क़ानून-विरुद्ध नहीं है। यह सच है कि लघु मित्रदल ने यह घोषित किया है कि यदि जर्मनी आस्ट्रिया को हड़पने का प्रयत्न करेगा और ब्रिटेन, फ़्रांस और इटली उसका विरोध करेंगे तो वह भी उनका साथ देगा। परन्तु यदि आस्ट्रिया या हंगेरी अपने यहाँ राजतंत्र की स्थापना करेगा तो वह स्वयं उसका सशस्त्र विरोध करेगा।

इस परिस्थिति में कोई कैसे कह सकता है कि युद्ध छिड़ जाने पर कौन किसका साथ देगा।

इधर तो राजनैतिक परिस्थिति ऐसी अस्तव्यस्त है उधर योरप के राष्ट्रों का सामरिक बल दिन दिन बढ़ता जा रहा है। राष्ट्रसंघ ने एक विवरण छपाया है, जिससे प्रकट होता है कि संसार के ६० देशों में से ५० के पास स्थायी सेना हो गई है।

संसार की सारी स्थायी सेनाओं में (अर्द्ध-सैनिक दल और पुलिस को शामिल न कर) लड़ाकों की संख्या सन् १९३५-३६ में ८२,००,००० थी, जिनमें से ५,४५,००० जल-सैनिक थे। निरस्त्रीकरण-सम्मेलन के काल में (सन् १९३१-३२) यही संख्या ६५,००,००० थी। इस प्रकार गत ५ या ६ वर्षों में १७,००,००० सैनिकों की वृद्धि हुई है। केवल योरपीय देशों को लें तो उनके सैनिकों की वर्तमान संख्या (स्थल, जल और वायु सेनाओं में) ४८,००,००० है जो सन् १९३१-३२ में कुल ३६,००,००० थे। अर्थात् केवल योरप में १२,००,००० सैनिकों की वृद्धि हुई है।

महायुद्ध के पूर्व और पश्चात् की स्थितियों का मुक़ाबिला करना रोचक है। राष्ट्र-संघ की शस्त्र-पुस्तक में तो युद्ध के पूर्व के सैनिकों की संख्या नहीं दी गई, परन्तु अन्य स्थानों पर जो अनुमान दिये गये हैं उनके अनुसार समस्त सैनिकों की संख्या (जल-सेना के अतिरिक्त) ५९,००,००० थी। सन् १९३१-३२ में यही संख्या ६०,००,००० थी, और आज-कल ७६,००,००० है। अर्थात् १९१२-१३ से अब तक १७,००,००० की वृद्धि हुई है। केवल योरप में युद्ध के पूर्व की संख्या ४६,००,०००: सन् १९३१-३२ में ३२,००,००० और आज-कल ४५,००,००० है।

सारांश यह है कि योरप में निरस्त्रीकरण-सम्मेलन के समय सन् १९१२-१३ की अपेक्षा १४,००,००० सेना कम थी, पर इस समय वह १९१२-१३ के बराबर है।

योरप की यह परिस्थिति क्या योरपीय महायुद्ध के छिड़ने की सम्भावना का द्योतक नहीं है, अब तो स्पेन के गृहयुद्ध ने लड़नेवालों को मौक़ा भी दे दिया है और उन्होंने एक तरह लड़ाई छेड़ ही दी है। जर्मनी और इटली विद्रोहियों के पक्ष में हैं और रूस स्पेन-सरकार के पक्ष में है। ब्रिटेन और फ़्रांस निरपेक्ष हैं। कौन कह सकता है कि स्पेन का यह युद्ध महायुद्ध का रूप नहीं ग्रहण कर लेगा?

साम्राज्य सरकार और उपनिवेश

ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत आत्मशासन-प्राप्त कई देश हैं। कनाडा, दक्षिण-अफ़्रीका, आस्ट्रेलिया, फ़्री-स्टेट आदि ऐसे ही देश हैं। इन देशों को आत्म-शासन के कहाँ तक बढ़े-चढ़े अधिकार प्राप्त हैं, इसका पता समय-समय पर मिलता रहता है। इस सिलसिले में हाल में और दो ताज़े उदाहरण लोगों के सामने आये हैं। एक दक्षिण-अफ़्रीका का है। यहाँ के गवर्नर जनरल लार्ड क्लेरेंडन का कार्य-काल १९३७ के मार्च से समाप्त हो जायगा। अभी तक यहाँ के गवर्नर-जनरल की नियुक्ति ब्रिटेन के प्रधान मंत्री के परामर्श के अनुसार हुआ करती थी। परन्तु १९२६ की इम्पीरियल-कान्फ़रेंस और वेस्ट-मिनिस्टर-स्टेट्यूट के फलस्वरूप अब वहाँ के गवर्नर-जनरल की नियुक्ति देश के प्रधान मंत्री के परामर्श के अनुसार हुआ करेगी। फलतः दक्षिण-अफ़्रीका के प्रधान मंत्री जनरल हर्टज़ोग ने यह सिफ़ारिश की है कि मिस्टर पेट्रिक डनकन गवर्नर-जनरल बनाये जायँ। तदनुसार बादशाह ने उनकी नियुक्ति की स्वीकृति दे दी। इससे यह प्रकट हो जाता है कि उन देशों को स्वराज्य के कैसे अधिकार प्राप्त हैं। दूसरा उदाहरण आयर्लेंड का है और वह इससे भी बढ़ा-चढ़ा है। आयर्लेंड ने अपने यहाँ की पार्लियामेंट में क़ानून पास करके गवर्नर-जनरल का पद ही उठा दिया है और उसके सारे अधिकार अपनी पार्लियामेंट के स्पीकर को प्रदान कर दिये हैं। यही नहीं, वहाँ की सरकार ने बादशाह का नाम केवल बाहरी मसलों में ही उपयोग करने का निश्चय किया है। देश के भीतरी मामलों में अब बादशाह का नाम नहीं प्रयुक्त होगा। ये सब वास्तव में बड़े भारी परिवर्तन हैं और इनसे प्रकट होता है कि ब्रिटिश साम्राज्य के भिन्न भिन्न देश किस तरह अपने अस्तित्व का महत्त्व प्रकट करने में यत्नवान् हो रहे हैं तथा उनकी क्षमता कहाँ तक बढ़ गई है। निस्सन्देह साम्राज्य के इन कई प्रधान देशों से केन्द्रीय साम्राज्य सरकार की सत्ता पूर्णतया उठ गई है और यदि कहीं कुछ है भी तो वह नाममात्र को ही है। इस परिस्थिति से साम्राज्य को कहाँ तक दृढ़ता प्राप्त हुई है, इसका पता भविष्य में ही लगेगा, आज इस सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कोई कुछ नहीं कह सकता है।

मदरास के कारपोरेशन का महत्त्वपूर्ण कार्य

मदरास के कारपोरेशन के हाल के चुनाव में कांग्रेसदल की असाधारण जीत हुई है और उसका उसमें बहुमत हो गया है। फलतः कारपोरेशन में महत्त्व का एक यह प्रस्ताव पास किया गया है कि अब कारपोरेशन में हेल्थ आफ़िसर, रेवेन्यू आफ़िसर, इलेक्ट्रिकल इंजीनियर जैसे उच्च अधिकारी

५००) से अधिक मासिक वेतन नहीं पावेंगे। बहुत दिन हुए कांग्रेस ने यह प्रस्ताव पास किया था कि देश का शासन-प्रबन्ध जब उसके हाथों में आ जायगा तब वह सभी ऊँचे अफ़सरों का वेतन घटाकर ५००) मासिक कर देगी। प्रसन्नता की बात है कि मदरास के कारपोरेशन ने अपने यहाँ उपर्युक्त आशय का प्रस्ताव पास कर देश के अन्य सभी म्युनिसिपल बोर्डों के लिए राह खोल दी है। आशा है, मदरास का कारपोरेशन इसी तरह नागरिक जीवन के संगठन का भी कोई उपयुक्त आदर्श देश के सामने उपस्थित कर अपने अस्तित्व की सार्थकता प्रमाणित करेगा। देश के अनेक नगरों के म्यूनिसिपल बोर्डों में इधर कांग्रेसमैनों का बाहुल्य हो गया है। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसे उपयोगी प्रस्ताव म्युनिसिपल बोर्डों के कांग्रेस सदस्य बहुमत न रखते हुए भी दूसरे सदस्यों की सहायता से पास कर सकते हैं और उन्हें कार्य में परिणत भी कर सकते हैं। परन्तु अभी तक उन्होंने ऐसा कोई महत्त्व का कार्य नहीं किया है जिससे यह व्यक्त होता हो कि उनके [illegible] से म्युनिसिपल बोर्डों में पहले की अपेक्षा विशेषता हो गई है। आशा है, अब म्युनिसिपल बोर्डों के लोकसेवक सदस्यों में कर्तव्य-बुद्धि जाग्रत होगी और उनके द्वारा समाज का वास्तविक हित हो सकेगा।

एक अनोखी योजना

जर्मनी के एक कारीगर ने एक योजना तैयार की है। इस योजना के कार्य में परिणत किये जाने पर आधे भूमण्डल का नक़्शा बदल जा सकता है। इन कारीगर का नाम हर हरमैन सोइर्जेल है और ये म्यूनिच के निवासी हैं।

इनकी उक्त योजना का आधार विज्ञान है। इस बात का पता लग चुका है कि भूमध्यसागर का जितना पानी प्रतिदिन सूर्य सोख लेता है, उतना पानी उसमें गिरनेवाली नदियाँ नहीं पहुँचा पातीं। यदि जिब्राल्टर, स्वेज़ और डार्डेनेलीज़ के मुहाने बाँध दिये जायँ तो भूमध्यसागर की सतह दिन-प्रतिदिन गिरने लग जायगी और प्रतिवर्ष उसकी मीलों भूमि जल के घट जाने से बाहर निकलने लग जायगी। और इस प्रकार जब उसकी सतह काफ़ी नीची हो जायगी तब जल की कमी की पूर्ति के लिए उसमें बाहर का फ़लिएना पड़ेगा। इस जल-राशि का प्रपात ६५० फ़ुट ऊँचा होगा। यदि इस प्रपात से बिजली पैदा की जायगी तो १६ करोड़ घोड़े की शक्ति की बिजली प्राप्त हो सकेगी।

इसके सिवा भूमध्य-सागर से नहर काटकर उत्तरी अफ़्रीका की कायापलट की जा सकेगी। क्योंकि सहारा-मरुभूमि का अधिकांश समुद्र की सतह से नीचे है। अतएव उक्त नहर-द्वारा सहारा की मरुभूमि में एक बहुत बड़ा कृत्रिम समुद्र बनाया जा सकेगा।

उधर डार्डेनेलीज़ का मुहाना बाँध देने से काले समुद्र की सतह ऊँची हो जायगी। अतएव उसका अधिक पानी कास्पियन समुद्र को पहुँचाया जा सकेगा, और कास्पियन से वह पूर्ववर्ती मरुभूमियों में। रूस-सरकार इन दोनों समुद्रों को नहर काटकर जोड़ देने का विचार कर भी रही है, क्योंकि कास्पियन सागर दिन-प्रतिदिन सूखता जा रहा है।

यदि उक्त जर्मन कारीगर की योजना कार्य में परिणत हो जाय तो संसार के सारे बेकारों को जीविका का एक स्थायी द्वार खुल जाय और इस बला से वह एक लम्बे समय तक के लिए मुक्त हो जाय। योजना के अनुसार बड़े बड़े बाँध बाँधने पड़ेंगे, नई सड़कें, और रेलवे लाइनें बनानी पड़ेंगी, नगर बसाने की ज़रूरत होगी; क्योंकि समुद्र के भीतर से निकली हुई ज़मीन को आबाद करना होगा और उसमें खेतीबारी करने की व्यवस्था करनी पड़ेगी। और इस सारी कार्यवाही में संसार के सारे के सारे बेकार आसानी से जीविका से लग जायँगे।

इस योजना में तो कोई त्रुटि नहीं है। आवश्यकता है इसे कार्य में परिणत करने की। और यह तभी हो सकेगा जब ब्रिटेन, फ़्रांस, इटली, रूस, स्पेन और तुर्की इसके लिए राज़ी होंगे।

दक्षिण-भारत में हिन्दी

दक्षिण-भारत में हिन्दी दिन-प्रति-दिन लोकप्रिय होती जा रही है। वहाँ के निवासी हिन्दी को प्रेम-पूर्वक सीख ही नहीं रहे हैं, किन्तु वे उसका वहाँ बड़ी तत्परता के साथ प्रचार भी कर रहे हैं। अभी हाल में मैसूर-यूनीवर्सिटी के सीनेट में यह प्रश्न उठाया गया था कि उक्त यूनीवर्सिटी में इच्छित विषयों में अन्य भाषाओं के साथ हिन्दी को स्थान दिया जाय या नहीं। इस पर उक्त सभा में जो वाद-

विवाद हुआ उससे प्रकट होता है कि दक्षिण-भारत में हिन्दी ने अपना उचित स्थान प्राप्त कर लिया है। उक्त अवसर पर सीनेट के कई प्रमुख सदस्यों ने हिन्दी का विरोध करते हुए अपने भाषणों में साफ़ साफ़ कह दिया कि हिन्दी को इच्छित विषयों में स्थान देने से कनाड़ी की हित-हानि होगी, इसके सिवा यह प्रस्ताव अन्यायमूलक भी है। परन्तु विरोधियों की एक बात भी नहीं सुनी गई और प्रोफ़ेसर ए० आर० वाडिया का मूल-प्रस्ताव बहुमत से पास हो गया। ये बातें आशाजनक हैं और इनसे यही प्रकट होता है कि हिन्दी का दक्षिण-भारत में अच्छा प्रचार हो गया है। वहाँ की इस अवस्था से हिन्दी के केन्द्र स्थान संयुक्त प्रान्त को शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए और अपनी अकर्मण्यता के लिए पश्चात्ताप। क्या संयुक्त-प्रान्त में हिन्दी का उतना भी प्रचार नहीं है कि वह प्रान्तीय सरकार के कचहरी-दरबार में अपना समुचित स्वत्व प्राप्त कर सके? इस सम्बन्ध में दक्षिण-भारत बहुत आगे बढ़ गया है और इसके लिए वहाँ के हिन्दी-प्रेमी जो महत्त्व का कार्य कर रहे हैं वह अन्य प्रान्तों के निवासियों के लिए सर्वथा अनुकरणीय है।

राष्ट्रीय महासभा का अधिवेशन

राष्ट्रीय महासभा का ५० वाँ अधिवेशन पहले की भाँति दिसम्बर के पिछले सप्ताह में बम्बई प्रान्त की देहात के फ़ैज़पुर नामक एक गाँव में हुआ है। इस अधिवेशन में दो-तीन मार्के की विशेषतायें हुई हैं। पहली विशेषता यह है कि यह अधिवेशन नगर छोड़कर देहात के एक गाँव में किया गया है। इससे प्रकट होता है कि राष्ट्रीय महासभा का ध्यान अब देहात की ओर विशेष रूप से रहेगा। अच्छा हो, यदि प्रान्तीय एवं ज़िला सभाओं के भी अधिवेशन देहातों में ही हुआ करें। इससे राष्ट्रीय भावना का व्यापक प्रचार हो नहीं होगा, किन्तु राष्ट्रीय महासभा की शक्ति में भी असीम वृद्धि होगी। दूसरी विशेषता यह हुई है कि पंडित जवाहरलाल नेहरू ही इस बार फिर राष्ट्रपति मनोनीत हुए हैं। इसी वर्ष अप्रेल में राष्ट्रीय महासभा का लखनऊ में जो अधिवेशन हुआ था उसके भी सभापति पण्डित जवाहरलाल नेहरू ही बनाये गये थे। इस बार उनका फिर राष्ट्रपति मनोनीत होना निस्सन्देह विशेष महत्त्व का सूचक है। वह यह कि उन्होंने अपनी सेवा-परायणता, स्वार्थ-त्याग और अदम्य साहस से अपने

[राष्ट्रपति पंडित जवाहरलाल नेहरू ।]

आपको यहाँ तक लोकप्रिय बना लिया है कि आज वे भारतीय राष्ट्रीय भावना के प्रतीक हो गये हैं। तीसरी विशेषता यह है कि इस बार बम्बई के उस स्थान से जहाँ राष्ट्रीय महासभा का सर्वप्रथम अधिवेशन हुआ था, राष्ट्रीय महासभा के स्वयंसेवकों ने पैदल चलकर फ़ैज़पुर में अधिवेशन के दिन प्रज्वलित अग्नि पहुँचाई है। इस कार्य की व्यवस्था जिस ढंग से की गई है वह केवल सुन्दर और उत्साहवर्द्धक ही नहीं सिद्ध हुई है, किन्तु उसका जनता पर काफ़ी प्रभाव भी पड़ा है। इसी प्रकार राष्ट्रपति की भी ये विशेषतायें हैं— (१) ये तीन बार राष्ट्रीय महासभा के सभापति बनाये गये हैं। (२) ये एक के बाद दूसरे अधिवेशन के राष्ट्रपति वरण किये गये हैं। (३) अपने पिता के बाद ये कांग्रेस के सभापति मनोनीत किये किये हैं। (४) इनके घराने

के दो व्यक्ति कांग्रेस के सभापति बनाये गये हैं। (५) अपने ही प्रान्त में कांग्रेस के सभापति बनकर इन्होंने पुरानी परम्परा तोड़ी है। (६) १२ बैलों के रथ में इनका सवादा स्टेशन से जलूस निकाला गया है। इस तरह फ़ैज़पुर का राष्ट्रीय महासभा का यह अधिवेशन अनेक विशेषताओं से पूर्ण हुआ है। परन्तु इन विशेषताओं से भी बड़ी विशेषता यह हुई है कि राष्ट्रपति ने अपना भाषण काफ़ी छोटा दिया है जो मर्मस्पर्शी और उत्साहवर्द्धक है। उसके दो महत्त्व के अंश ये हैं—

अखिल भारतीय कांग्रेस-कमेटी के चुनाव-सम्बन्धी घोषणापत्र में यह बात अच्छी तरह बता दी गई है कि हम इस चुनाव की लड़ाई में क्यों आ पड़े, और किस तरह हम इस कार्यक्रम को पूरा करना चाहते हैं। मैं इस घोषणापत्र को आपकी मंज़ूरी के लिए पेश करता हूँ। हम कौंसिलों और असेम्बलियों में जो ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साधन हैं, सहयोग करने के लिए नहीं जा रहे हैं। हम उसका विरोध करने और उसका अन्त करने के ... ही वहाँ जा रहे हैं। जो भी हम करेंगे वह इसी नीति के दायरे में महदूद होगा। धारा-सभाओं में हम विधेयात्मक मार्ग या शुष्क सुधारवाद के मार्ग का अनुसरण करने नहीं जा रहे हैं।

× × × ×

इन चुनावों में कुछ ऐसी प्रवृत्तियाँ भी जहाँ तहाँ देखी गई हैं जिनके अनुसार किसी न किसी प्रकार बहुमत प्राप्त करने के लिए समझौते किये गये हैं। यह रुख बहुत ही ख़तरनाक है। इसे तुरन्त रोकना चाहिए। चुनाव का उपयोग तो ख़ास तौर पर इसी लिए होना चाहिए कि जनता कांग्रेस के झण्डे के नीचे आवे। करोड़ों वोटरों और असंख्य ग़ैर-वोटरों के पास समानरूप से कांग्रेस का सन्देश पहुँचे, और जनता का आन्दोलन दूनी तेज़ी से आगे बढ़े।

हमारे सामने बहुत महत्त्वपूर्ण काम है। भारतीय और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में बड़ी-बड़ी समस्याओं को हल करना है। सिवाय हमारी महान् संस्था कांग्रेस के इनको कौन सुलझा सकता है? क्योंकि इसी संस्था ने अपने पचास साल की लगातार कोशिश और त्याग से भारत के करोड़ों मनुष्यों की ओर से बोलने का अद्वितीय अधिकार प्राप्त कर लिया है।

× × ×

दो साल हुए गांधी जी की ही सलाह से कांग्रेस-विधान में फिर परिवर्तन किये गये। उसमें एक बात यह हुई कि अब कांग्रेस-सदस्यों की संख्या के आधार पर प्रतिनिधियों की संख्या नियत की जाती है। इस तब्दीली ने हमारे कांग्रेस-चुनाव में एक वास्तविकता पैदा कर दी है और हमारे संगठन को भी मज़बूत बना दिया है। लेकिन अब भी कांग्रेस की देश में जितनी प्रतिष्ठा और सम्मान है उसके अनुसार हमारा संगठन अभी बहुत पीछे है और हमारी कमिटियों में साधारण काम करनेवालों तथा जनता से बिलकुल कटे हुए रहकर अर्थात् हवा में काम करने की प्रवृत्ति आ गई है।

इसी कमी को दूर करने के लिए लखनऊ-कांग्रेस में जन-साधारण का सम्पर्क (मास कान्टैक्ट) सम्बन्धी प्रस्ताव स्वीकृत हुआ था। लेकिन जो कमिटी इसके लिए नियत की गई थी उसने अपनी रिपोर्ट अभी तक नहीं पेश की है। उस प्रस्ताव में जितनी बातें सम्मिलित थीं उनसे यह कहीं ज़्यादा बड़ा सवाल है। इसके द्वारा कांग्रेस के वर्तमान संगठन को ही बदलने का विचार है ताकि कांग्रेस एक अधिक मज़बूत, संगठित और पुरअसर काम करनेवाली संस्था बन सके।

इसमें सन्देह नहीं कि श्रीमान् नेहरू जी के इस वर्ष राष्ट्रपति बने रहने से देश में नव जागरण की शक्ति और दृढ़ता दोनों प्राप्त होंगी।

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल श्रीनाथसिंह

फ़रवरी १९३७ } भाग ३८, खंड १ संख्या २, पूर्ण संख्या ४४६ { माघ १९९३

क्या जगत् में भ्रान्ति ही है?

लेखक, श्रीयुत नरेन्द्र, एम० ए०

एक दिन पूछा विचरती वायु से मैंने, "कहो क्या—
शान्ति भी है?—
क्या जगत में भ्रान्ति ही है?"

"हैं तुम्हारे विशद पथ में
नगर, ग्राम; उजाड़ उपवन;
मार्ग में घर और मरघट,
महल औ' पावन तपोवन;

"तुम अचल आकाश के—
उर में रमा करतीं निरन्तर,
कभी क्रीड़ास्थल बनातीं
चिर-विकल विक्षिप्त सागर;

"वायु बोली, क्या कहीं कुछ शान्ति भी है?
क्या जगत में भ्रान्ति ही है?"

गीत मेरा सुन, स्वयम् संगीतमय हो वायु कहती—
"है न जाने कौन-सा कोना जहाँ, कवि, शान्ति रहती?
"किन्तु जाऊँ, खोज आऊँ—
क्या कहीं कुछ शान्ति भी है?"

क्या जगत में भ्रान्ति ही है?

साहब जी महाराज और उनका दयालबाग़

लेखक,
श्रीयुत जानकीशरण वर्मा

[साहब जी महाराज सर आनन्दस्वरूप]

[टेक्निकल कालेज के शिक्षक और विद्यार्थी]

'दयालबाग़' देखने की बहुत दिनों से मेरी इच्छा थी। १९३३ की जुलाई में मैं स्काउटिंग के प्रचार के लिए वहाँ जानेवाला था, लेकिन बीमार हो गया। कुछ ही महीनों के बाद मुझे दूसरा अवसर मिला। १९३३ की चौथी दिसम्बर को जब मैं आगरे के छिली ईंट मुहल्ले से मोटर में बैठकर दयालबाग़ के लिए रवाना हुआ तब मेरी ख़ुशी का ठिकाना न रहा। कुछ मिनटों के बाद मैंने सड़क के किनारे एक साइनबोर्ड देखा, जिस पर ...के लिए] में लिखा था—'दयालबाग़ को'। उससे ...पर वि

थोड़ी दूर आगे जाने पर मेरे एक साथी ने कहा कि अब दयालबाग़ पहुँच गये। मुझे आश्चर्य हुआ।

यह दयालबाग़ मेरे पूर्व-कल्पित दयालबाग़ से बिलकुल दूसरा ही निकला। मेरा दयालबाग़ बुरा नहीं था, लेकिन वह इतना शानदार और २० वीं सदी के सामानों से सजा हुआ भी नहीं था। मैंने मोटर-ड्राइवर से कहा, 'धीरे धीरे' और अपने एक मित्र से तरह तरह के सवाल करना शुरू किया। शरणाश्रम, प्रेमनगर, कार्यवीरनगर और स्वामीनगर मुहल्ले के मकानों को सरसरी तौर पर देखता हुआ मैं 'गेस्ट-हाउस' के सामने आया। वहीं मुझे ठहरना था। मोटर से उतरने से पहले मैंने अपने मित्र से पूछा—"यहाँ और कौन कौन मुहल्ले हैं?" उन्होंने कहा—"दयालबाग़, श्वेतनगर इत्यादि।"
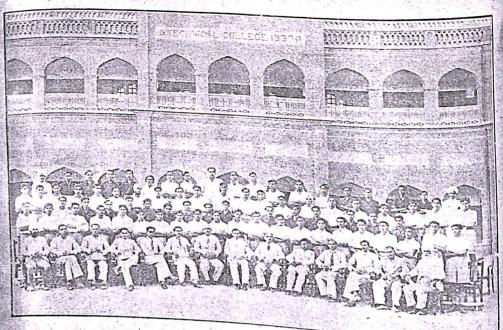
मैं इस बार किसी ख़ास काम से दयालबाग़ नहीं गया था। मेरे श्रद्धेय सहकारी पंडित श्रीराम बाजपेयी दयालबाग़ के स्काउटों को देखने गये थे। उसी सिलसिले में मैं भी उनके साथ चला गया था।

गेस्ट-हाउस में थोड़ी देर ठहरने के बाद हम लोगों को साहब जी महाराज के पास जाना पड़ा। साहब जी महाराज उस दिन पास के एक बाग़ में खुली जगह पर एक गद्दी पर विराजमान थे और उनके सामने बैठे हुए सैकड़ों सत्संगी भाई प्रेम और भक्ति-भरी नज़रों से उनकी ओर देख रहे थे। दूर से मैंने जब उस मंडली को देखा तब साहब जी महाराज को मुस्कराते हुए पाया था। वे कुछ कह रहे थे, पर अपने भावों को शब्दों की अपेक्षा मुस्कराहट में ही ज़्यादा प्रकट कर रहे थे। हम लोगों के पास जाने पर उन्होंने हम लोगों से प्रेम-पूर्वक बात-चीत की, बाजपेयी जी का उचित सम्मान किया और एक स्थानीय कर्मचारी से पूछ-ताछकर बाजपेयी जी के ठहरने के दिनों का प्रोग्राम ठीक कर दिया।

साहब जी के पास से आने पर मैंने सोचा कि मुझे कोई ख़ास काम तो करना नहीं है, चलो यहाँ के गली-कूचों की सैर करूँ और देखूँ कि यहाँ कितनी अच्छाई है। घूमता-घूमता मैं एक ऐसे विभाग में पहुँचा, जहाँ एक-एक तरह के बहुत-से मकानों की सीधी सीधी लम्बी लाइनें थीं। अगर एक लाइन में एक तरह के ऊँचे ऊँचे बहुत-से मकान थोड़ी दूर तक थे तो उसके आगे दूसरी तरह के बहुत-से मकान बहुत दूर तक थे। फिर ऐसा भी देखा कि एक लाइन में एक तरह के मकान हैं और दूसरी लाइन में दूसरी तरह के। पूछने पर मालूम हुआ कि यह 'प्रेमनगर' है। इसी प्रेमनगर के बाहरी हिस्से को मोटर से देखता हुआ मैं गुज़रा था। फिर क़रीब क़रीब वैसा ही सिलसिला और वही सजावट मैंने 'स्वामीनगर' में भी
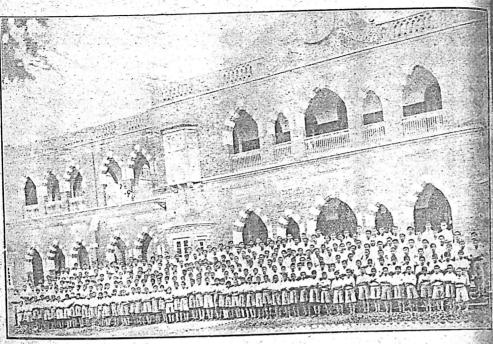
[आर० ई० आई० कालेज के विद्यार्थी ।]

पाई। उस दिन घूम घूमकर मैंने क़रीब क़रीब सारी बस्ती देख डाली। आर० ई० आई० कालेज, टेक्निकल कालेज, मिडिल स्कूल, माडेल इंडस्ट्रीज़, बोर्डिङ्ग-हाउस, अस्पताल, बैंक, दूकानें, डाकघर, दयालभंडार (जहाँ पका-पकाया भोजन मिलता है), सत्संग का विशाल खुला हुआ हाल इत्यादि सभी मैंने देखे। दो-तीन घंटों में इतनी इमारतों और कारख़ानों को मैं अच्छी तरह नहीं देख सकता था, पर सभी की थोड़ी-बहुत जानकारी ज़रूर हासिल कर ली। सोचा कि स्काउटिंग के नाते यहाँ का आना-जाना बराबर बना रहेगा, मौक़ा पाकर सभी चीज़ों को अच्छी तरह देख लूँगा। लेकिन उस दिन की उस सैर से ही मुझे मालूम हो गया कि दयालबाग़ सभी तरह भरपूर है और वहाँ के रहनेवालों को बाहरवालों का मुँह ताकने की ज़रूरत नहीं।

मैंने दयालबाग़ के संबन्ध में कई महानुभावों की रिपोर्टें पढ़ी थीं। इनमें से कइयों ने कहा है कि अगर हिन्दुस्तान में कई दयालबाग़ हो जायँ तो इस देश की समस्या जल्द हल हो जाय। दयालबाग़ को देखने के बाद ही मैं इस उक्ति का आशय अच्छी तरह समझ सका।

दयालबाग़ की सब बातों में मुझे एक ख़ास तौर के प्रबन्ध की झलक दिखाई दी। एक जगह पर मुझे दो-तीन ऐसे आदमी मिले, जो पुलिस की तरह पोशाक पहने थे। पूछने पर मालूम हुआ कि दयालबाग़ की अपनी पुलिस है। इतना ही नहीं, मुझे यह भी मालूम हुआ कि दयालबाग़ की सभी बातों के प्रबन्ध के लिए एक बोर्ड है। उसके सदस्यों का चुनाव समय-समय पर होता है और वे वहाँ के विविध विभागों की देख-रेख करते हैं। मैं समझ गया कि वहाँ न केवल अच्छा प्रबन्ध ही है, बल्कि अपना काम आप ही चला लेने के लिए लोगों को अच्छी से अच्छी शिक्षा भी दी जा रही है। दयालबाग़ जाने से पहले मैं समझता था कि वहाँ लोग सिर्फ़ भजन-ध्यान में ही लगे रहते होंगे, पर मैंने पहले ही दिन, और कुछ ही घंटों के अन्दर, जो कुछ देखा उससे पता चला कि वहाँ के रहनेवाले सांसारिक वस्तुओं को आध्यात्मिक बातों से अलग नहीं बल्कि उनका एक अंग, स्थूल अंग, मानते हैं और जो कुछ भी वे करते हैं उसे सुन्दर और हर पहलू से दुरुस्त बनाने की कोशिश करते हैं।

मैंने दयालबाग़ में जगह-जगह छोटे-छोटे बोर्ड लगे देखे, जिन पर लिखा था—'कड़ुआ मत बोलो'। मैंने आज़माना चाहा कि लोग इस आदेश का पालन भी करते हैं या यह वैसे ही लिखा हुआ है। मैंने जिस किसी से इधर-उधर की पूछ-ताछ करनी शुरू कर दी। किसी से वहाँ के कारख़ानों के बारे में पूछा, किसी से साहब जी महाराज की दैनिक चर्या का हाल जानना चाहा और किसी से राधास्वामी-मत के सिद्धान्तों पर प्रश्न किया। मुझे यह देखकर ख़ुशी हुई कि सबों ने शान्ति और प्रसन्नता के साथ मेरे प्रश्नों का उत्तर दिया। वहाँ की यह ट्रेनिंग सचमुच ग़ज़ब की है। संसार में अक्सर इतनी शुष्कता, उदासीनता और कटुता देखने में आती है कि इन लोगों का ऐसा व्यवहार मुझे बहुत ही भला मालूम हुआ। कुछ महीनों के बाद जब मैं दूसरी बार दयालबाग़ गया तब मैंने देखा कि 'कड़ुआ मत बोलो' के बदले 'मीठा बोलना हमारा धर्म है' लिखा हुआ है। इस परिवर्तन से मैं अच्छी तरह जान गया कि एक बड़े शिक्षक की शिक्षा-प्रणाली में रहकर वहाँ के लोग मामूली मामूली बातों में भी पूर्णता लाना सीख रहे हैं। इसी शिक्षा के कारण सफ़ाई, सिलसिले का ख़याल और सुव्यवस्था वहाँ की सभी बातों में पाई जाती है। दो-चार आदमी अगर एक साथ चलते हैं तो उनके क़दम मिलते हैं, चाय-पार्टी होती है तो बैठने, खाने का प्रबन्ध त्रुटि-हीन रहता है, किसी सभा का आयोजन होता है तो कार्यवाही को अच्छी तरह चलाने की सभी सुविधायें सोच ली जाती हैं और कोई जलसा होता है तो उसको दिलचस्प बनाने में कोई कोर-कसर बाक़ी नहीं रक्खी जाती। स्कूल-कालेज में, फ़ैक्टरी-डेयरी में, जलसे-दावतों में, सत्संग और भजन में, सभी में विचारशीलता और व्यवस्था पाई जाती है। दयालबाग़ की यही विशेषता है, और मेरी राय में, जैसा कि मैंने पहले कहा है, इसका असल कारण है—भौतिक जीवन को आध्यात्मिक जीवन से बिलकुल अलग न समझना।

सुना था कि दयालबाग़ के कारख़ाने बहुत अच्छे हैं, ख़ासकर वहाँ की डेयरी (दूध का कारख़ाना) बहुत मशहूर है। जिन दिनों दूसरी बार जाकर मैं वहाँ ठहरा हुआ था, एक दिन साहब जी महाराज को चिट्ठी-पत्री लिखाने की बैठक में गया। यह बैठक वहाँ 'कॉरेसपॉन्डेन्स' के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें हर रोज़ बहुत-से सत्संगी भाई जाकर बैठते हैं, और वे लोग भी जाते हैं जिन्हें साहब जी महाराज से कुछ काम-काज रहता है। मैं साहब जी महाराज से यह कहने गया था कि आप कृपाकर एक स्काउट-रैली का सभापतित्व स्वीकार करें। उन्होंने मेरी प्रार्थना मान ली, पर साथ ही साथ स्काउटिंग पर बातें करते-करते और विषयों पर बात-चीत करने लगे। मैंने उत्साह के साथ दयालबाग़ के अच्छे प्रबन्ध की प्रशंसा की, जिस पर साहब जी महाराज ने पूछा—"आपने यहाँ की डेयरी देखी है?" मैंने कहा—"जी नहीं।" साहब जी महाराज ने पूछा—"क्यों, क्या आपको डेयरी से दिलचस्पी नहीं है?" मैंने उत्तर दिया—"है, लेकिन डेयरी से ज़्यादा डेयरी की बनी चीज़ों से—दूध, मलाई, घी—से दिलचस्पी है। मैं जब से यहाँ आया हूँ दिन में दो बार सिर्फ़ एक-एक बोतल दूध पीता हूँ और शाम को अपना स्काउटिंग का काम ख़त्म कर पूरा खाना खाता हूँ।" साहब जी महाराज इसे सुनकर मुस्कराये और फिर दूसरी बातें करने लगे। ज्यों सभा ख़त्म हुई और मैं वहाँ से उठा तब एक उत्साही सत्संगी मेरे पास आ धमके और बोले—"क्यों साहब, आप यहाँ दो बार आ चुके और अभी तक डेयरी नहीं देखी? डेयरी तो यहाँ की बहुत मशहूर है।" मैंने हँसते हँसते कहा—"यहाँ के आदमियों को देखने से अगर फ़ुर्सत मिले तो डेयरी देखने जाऊँ।" मेरे सत्संगी मित्र मेरा आशय नहीं समझे और ज़ोर देकर कहने लगे कि मुझे जल्दी से जल्दी डेयरी देख लेनी चाहिए। खेद [illegible] डेयरी देखने की फ़ुर्सत मुझे आज तक न [illegible] पुस्तकें लिखना दयालबाग़ की असल बस्ती से कुछ हर रोज़ के काम हैं [illegible] के और कारख़ानों को, जो [illegible] लिए या दूसरे शहरों [illegible] देखा है और वहाँ के कल्जाया करते हैं। तब दयाल [illegible] सराहा है। जूतों के कारख़ा

के लिए

पर वि
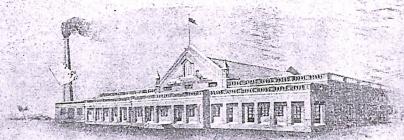
[डियरी दयालबाग़]

मैंने देखा है, क्योंकि स्काउट-कैंप के लिए एक उपयुक्त जगह ढूँढ़ता-ढूँढ़ता मैं एक दिन वहाँ पहुँच गया था। यहाँ भी बहुत प्रशंसनीय काम होता है।

इन सब कारख़ानों में अच्छे से अच्छे कल-पुर्ज़े लगे हैं और सबों में अच्छी-अच्छी चीज़ें तैयार की जा रही हैं, लेकिन ये कारख़ाने और चीज़ें दोनों ही बे-जान हैं। मेरी राय में सारा दयालबाग़ एक कारख़ाना है, जिसमें दुनिया के काम के लिए, उसके झंझटों और बखेड़ों से अच्छी तरह टकराने के लिए, दूसरों को और अपने-आपको सुखी बनाते हुए संसार में अच्छी तरह रह सकने के लिए 'जानदार इन्सान' तैयार किये जा रहे हैं। इस कारख़ाने के चलानेवाले सिद्ध-हस्त शिल्पकार, कुशल कारीगर, साहब जी महाराज हैं। यहाँ आत्मा की शक्ति विचार और भावों पर अपना असर डाल रही है, और इस तरह यहाँ 'मनुष्य' तैयार करने की कोशिश जारी है।

इस कोशिश की झलक यहाँ के कालेज और स्कूल के लड़कों पर भी है। मैंने देश के अनेक विद्यालय देखे हैं। मैं तुलना करना नहीं चाहता, क्योंकि दयालबाग़ के विद्यार्थियों पर अगर साहब जी महाराज का प्रभाव पड़ा है तो और-

देख लूँगा। र्थियों पर कवीन्द्र रवीन्द्र, महात्मा हंसराज और हो गया कि दयालबाग़ महानुभावों के उच्च जीवन की छाप रहनेवालों को बाहरवालों का बेकार है, लेकिन दयालबाग़ के मैंने दयालबाग़ के संबन्ध में ज़रूर हैं, जो और साधारण पढ़ी थीं। में से कइयों ने कब नहीं है। देखा गया के लिए

पर वि

है कि लड़के अगर चंचल होते हैं तो अक्सर वे बदमाश भी होते हैं। अगर वे सीधे होते हैं तो उनमें से बहुत-से बोदे होते हैं। पढ़नेवालों में अच्छे खिलाड़ी और खिलाड़ियों में अच्छे पढ़नेवाले कम मिलते हैं। लेकिन दयालबाग़ में अधिकांश विद्यार्थी ऐसे हैं जो चंचल फिर भी सीधे, तगड़े फिर भी नम्र, बहुत बोलनेवाले फिर भी सुशील हैं। खिलाड़ियों में भी अच्छी ख़ासी संख्या ऐसों की है जो पढ़ने-लिखने में भी जी लगाते हैं। एक ख़ास तरह के शासन में वे इस तरह मँजे हुए हैं कि एक अपरिचित आदमी भी तीन-सौ लड़कों से ड्रिल की हरकतें बात की बात में एक साथ करा सकता है और गाने के स्वर में सभी को एक साथ सम्मिलित कर सुरीला गाना गा सकता है। स्काउटिंग के काम में मुझे अक्सर बड़ी-बड़ी जमायतों को एक साथ ड्रिल कराने और कोरस गाने का मौक़ा होता है। कहीं-कहीं तो तीन-चार दिनों में और कहीं इससे भी ज़्यादा समय में ड्रिल में एक साथ हरकत करा पाता हूँ, पर दयालबाग़ में अगर पहले दिन की पहली कोशिश में नहीं तो दूसरी में तो मैं सफल हो ही गया था।

जिस जगह को इन दिनों दयालबाग़ कहते हैं वह बीस-बाइस साल पहले एक जंगली बयाबान था। आज वह शानदार इमारतों से सुशोभित, स्कूल-कालेज और फ़ैक्टरियों से सुसज्जित, तार, बिजली, वायरलेस इत्यादि सभ्यता की विभूतियों से सुसंपन्न, जीता-जागता दयालबाग़ है; और यह साहब जी महाराज की कल्पना, संगठन-योग्यता और अथक परिश्रम का फल है।
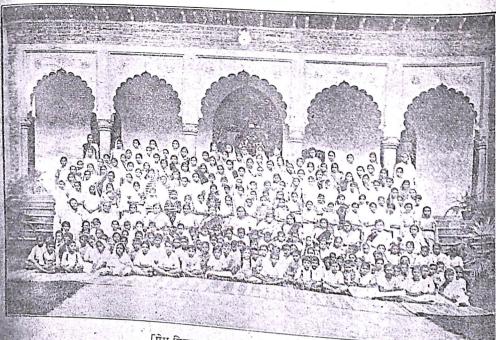
[प्रेम-विद्यालय की छात्रायें और अध्यापिकायें]

साहब जी महाराज सूर्योदय से बहुत पहले सत्संग के चबूतरे पर आ जाते हैं। उस समय वहाँ 'संतों' के शब्द' गाये जाते हैं। फिर ८ और ९ बजे के बीच वे सत्संग-हाल के एक हिस्से में चिट्ठी-पत्री और दूसरे कामों को निपटाने के लिए दो-ढाई घंटे बैठते हैं। दोपहर के भोजन और कुछ आराम करने के बाद वे मॉडल इंडस्ट्रीज़ और कारख़ानों का काम देखते हैं और फिर शाम को सत्संग के चबूतरे पर आकर सत्संगियों को अपने सत्संग का अवसर देते हैं। इस समय जैसा कि सुबह के सत्संग और कॉरेसपॉन्डेन्स में होता है, दूसरे दूसरे लोग भी आया करते हैं और अक्सर धार्मिक या अन्य विषयों पर साहब जी महाराज से तर्क-वितर्क करते हैं। सत्संग का चबूतरा बहुत ही बड़ा है। उस पर पाँच हज़ार से ज़्यादा आदमी एक साथ बैठ सकते हैं। आवाज़ को बुलंद करनेवाले लाउड-स्पीकर-यंत्र के भोंपू कई जगहों पर लगे हैं, जिससे साहब जी महाराज के वचन सभी के कानों तक पहुँच जाते हैं। सत्संग के अवसर पर अक्सर जो बहसें छिड़ जाती हैं वे सुनने के लायक़ होती हैं। साहब जी महाराज कठिन से कठिन बात को भी सीधे-सादे शब्दों में इस तरह समझाते हैं कि वह आसान मालूम होती है। यह तो हुई साहब जी महाराज की मामूली दिन-चर्य्या। इसके अलावा आगन्तुकों से मिलना, दयालबाग़ और आगरे में होनेवाली सभा-सुसाइटियों में अक्सर शरीक होना, व्याख्यान देना, सभापति बनना, पुस्तकें पढ़ना, पुस्तकें लिखना इत्यादि भी साहब जी महाराज के हर रोज़ के काम हैं। बीच-बीच में वे देश-भ्रमण के लिए या दूसरे शहरों में सार्वजनिक कामों के लिए जाया करते हैं। तब दयालबाग़ सूना हो जाता है।
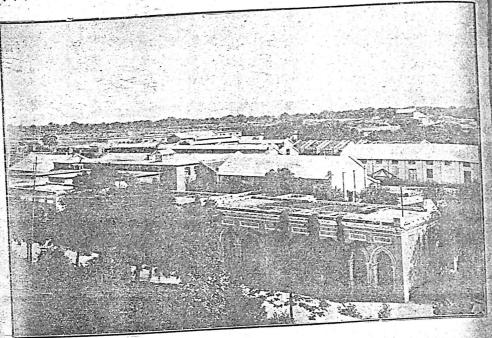
[दयालबाग़ की इमारतों का एक विहङ्गम दृश्य]

साहब जी महाराज के साथ मुझे तीन-चार बार देर देर तक बातें करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। अगर कोई ख़ास काम न हुआ तो ज़रा चिन्ता-सी हो जाती है कि किस विषय पर बात-चीत की जाय। लेकिन साहब जी महाराज स्वयं ऐसे आदमी के पेट से धीरे-धीरे बहुत-सी बातें निकलवा लेते हैं। उनके साथ साधारण विषयों पर बातें करते समय यह समझना कठिन होता है कि वे एक धर्म-गुरु भी हैं, क्योंकि सत्संग के चबूतरे पर विराजमान होकर परमात्मा और जीवात्मा के प्रश्नों पर प्रकाश [illegible]नेवाले, जटिल से जटिल आध्यात्मिक पचड़ों को [illegible]वाले, राधास्वामी-मत के वर्तमान नायक साहब [illegible] दूसरे अवसरों पर कल-पुर्ज़े, खेती-सिंचाई, [illegible] इत्यादि से सम्बन्ध रखनेवाले विषयों पर [illegible] संसारी की तरह बातें करते हुए अपनी [illegible]य दे सकते हैं। वे एकांगी नहीं हैं, और इसी से उनके रचे दयालबाग़ में सर्वांग-सुंदरता दिखाई देती है।

पहली जनवरी १९३६ का प्रभात था। मैं पिछले दिन आधी रात के समय पुराने साल को ताजमहल के चबूतरे पर विदा बोलकर, कुछ मित्रों के साथ मोटर में बैठ भगवान् कृष्ण के जन्म-स्थल मथुरा में नये साल का स्वागत करने गया था। सुबह होते होते मैं दयालबाग़ लौट आया। मुँह-हाथ धोकर मैं अपने मित्रों से मिलने गया और उनसे सुना कि साहब जी महाराज को 'सर' की उपाधि मिली है। ख़ुशी हुई, आश्चर्य हुआ। सोचा कि क्या अब साहब जी महाराज, साहब जी महाराज 'सर' आनंदस्वरूप के नाम से प्रसिद्ध होंगे, एक धर्म-गुरु सांसारिक प्रभुता के आभरण से आभूषित होंगे! फिर सोचा कि इसमें आश्चर्य ही क्या है, साहब जी महाराज की यही तो विशेषता है। विलायत के महाकवि शेली

हे ... रहे ... पढ़ी थं ... क लिए ... पर वि
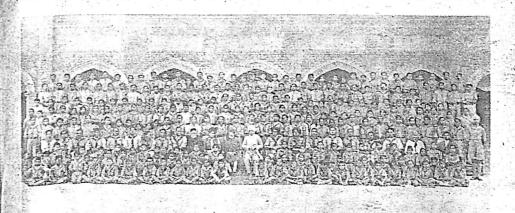
[दयालबाग़ के स्काउट। श्री साहब जी महाराज बीच में पंडित श्रीराम बाजपेयी और इस लेख के लेखक महोदय के साथ बैठे हैं।]

ने आकाश में ऊँचे उड़नेवाली फिर भी लौटकर पृथ्वी पर ही आ टिकनेवाली लावा चिड़िया के बारे में कहा है—लावा चिड़िया आपस में बहुत कुछ मिलते-जुलते हुए 'स्वर्ग' और 'भवन', दोनों स्थानों से सम्बन्ध रखती है। कविकुल-सम्राट् कालिदास के 'अभिज्ञान-शाकुन्तल' नामक अमर काव्य की आलोचना करते हुए अन्तर्जातीय ख्याति-प्राप्त कविवर रवीन्द्र ने कहा है कि इस नाटक में मालूम नहीं होता कि भूलोक कहाँ और कैसे परिवर्तित होकर स्वर्लोक बन गया। इन महाकवियों के उपर्युक्त कथन साहब जी महाराज के सम्बन्ध में भी लागू हैं, क्योंकि वे भी अपने जीवन में सूक्ष्म अध्यात्म को स्थूल संसार के साथ मिलाते हैं और धर्मोपदेश के साथ साथ संसार में अच्छी तरह [illegible] और चलना सिखाते हैं।
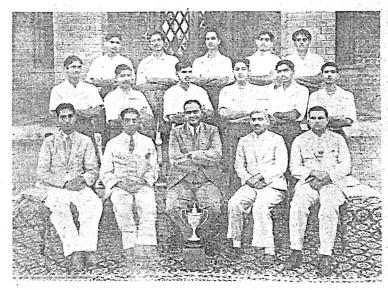
[राधास्वामी हाई स्कूल की फ़ुटबाल टीम के खिलाड़ी जिन्होंने सन् १९३४-३५ में फ़ुटबाल लीग कप को जीता।]

क ऊप——

रस-समीक्षा : कुछ विचार

मूलगुजराती लेखक, श्री काका साहब कालेलकर

अनुवादक—श्री हृषीकेश शर्मा

श्रीयुत काका साहब साहित्य के अच्छे मर्मज्ञ हैं ! इस लेख में उन्होंने यह बताया है कि यह ज़रूरी नहीं है कि पूर्वाचार्यों ने जिन नव रसों का विवेचन किया है, हम उनके वही नाम और उतनी ही संख्या मानें।

रसों का संस्कार

अगर सोचें तो सहज में ही यह पता लग जायगा कि साहित्य, संगीत और कला, इन तीनों के ही भावना-क्षेत्र होने से इनके भीतर एक ही वस्तु समाई हुई है। इस वस्तु को हम 'रस' कहते हैं। प्राचीन साहित्याचार्यों ने रस का विवेचन कई रीतियों से किया है। संगीत में राग और ताल के अनुसार रस बदलते हुए देखे गये हैं। चित्रकला में नव रसों के भिन्न-भिन्न प्रसंग तूलिका के सहारे चित्रित किये जाते हैं। रेखाओं-द्वारा तथा विविध रंगों के साहचर्य से रस व्यक्त किये जाते हैं। परन्तु साहित्य, संगीत और चित्रकला की सामूहिक दृष्टि से या जीवन-कला की समस्त सार्वभौमिक दृष्टि से रस का अब तक किसी ने विवेचन नहीं किया है। साहित्याचार्यों ने जो कुछ विवेचन किया है उसे ध्यान में रखकर और उसका संस्कार कर उसको और भी अधिक व्यापक बनाने की आवश्यकता है।

यह ज़रूरी नहीं है कि पूर्वाचार्यों ने जिन नव रसों का विवेचन किया है, हम उनके वही नाम और उतनी ही संख्या मान लें। हमारे संस्कारी जीवन में कलात्मक रस कौन-कौन-से हैं, अब इसकी स्वतंत्रतापूर्वक छानबीन होनी चाहिए।

शृंगार और प्रेम

हमारे यहाँ शृंगार-रस 'रसराज' की उपाधि से अलंकृत किया गया है। वह सब रसों का सरताज माना गया है। पर वास्तव में ऐसी नहीं है ... से सर्वश्रेष्ठ रस नहीं

प्राणि-मा... स्त्री-पुरुष का एक-दूसरे की तरफ़ आकर्षण होता है। सृष्टि ने इस खिंचाव को इतना अधिक उन्मादकारी बनाया है कि इसके आगे मनुष्य की तमाम होशियारी, सारा सयानपन और संयम ग़ायब हो जाता है। ऐसे आकर्षण को उत्तेजन देना आवश्यक है या नहीं, इस प्रश्न को हम यहाँ छेड़ना नहीं चाहते। पर इस आकर्षण और प्रेम के बीच में जो सम्बन्ध है उसे हमें अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। स्त्री और पुरुष के आपस के आकर्षण में यथार्थ में एक-दूसरे के प्रति प्रेम होता है या यों ही वे अहं-प्रेम की तृप्ति के साधनरूप एक दूसरे को देखते हैं, पहले इसका निश्चय करना चाहिए। सृष्टि की रचना ही कुछ ऐसी है कि काम-वृत्ति का आरम्भ अहं-प्रेम अर्थात् वासना से होता है; लेकिन काम अगर धर्म के पथ से चले तो वह विशुद्ध प्रेम में परिणत हो जाता है। विशुद्ध प्रेम में आत्म-विलोपन, सेवा और आत्म-बलिदान की ही प्रधानता रहती है। काम विकार है। प्रेम को कोई विकार नहीं कहता; क्योंकि उसके पीछे हृदय-धर्म की उदात्तता रहती है। यहाँ धर्म से रूढ़ि या शास्त्र-धर्म से हमारा तात्पर्य नहीं है, किन्तु आत्मा के स्वभावानुसार प्रकट हुए हृदय-धर्म से है।

शृंगार आरम्भ में भोग-प्रधान होता है। पर हृदय-धर्म की रासायनिक क्रिया से वह भावना-प्रधान बन जाता है। यह रसायन और परिणति ही काव्य और कला का विषय हो सकती है। प्राचीन नाट्यकारों ने जिस प्रकार नाटक में रंग-मंच पर भोजन करने का दृश्य दिखलाने का निषेध किया है, उसी प्रकार उन्होंने भोग-प्रधान शृंगार-

चेष्टाओं को भी खुल्लमखुल्ला बतलाने की रोक-थाम कर दी है। यह तो कोई नहीं कहता कि नाट्य-शास्त्रकारों को खाने-पीने आदि से घृणा थी। देह-धर्म के अनुसार इन वस्तुओं के प्रति स्वाभाविक आकर्षण तो रहेगा ही, पर ये प्रसंग और ये आकर्षण कला के विषय नहीं हो सकते। कलाकृति में इन वस्तुओं के लिए कोई स्थान नहीं है, यह सिद्ध करने के लिए किसी तरह की वैराग्यवृत्ति की ज़रूरत नहीं। हममें सिर्फ़ यथेष्ट संस्कारिता होनी चाहिए। मध्य-योरप के एक मित्र ने विगत महायुद्ध के बाद की गिरी हुई दशा का वर्णन करते हुए लिखा था कि अब वहाँ भोजन के आनन्द पर भी कवितायें बनने लगी हैं ... ने नाट्यशास्त्र में शृंगार-चेष्टाओं के प्रति संयम रखने का ... इशारा है उसकी अब योरप के अच्छे से अच्छे कला-रसिक प्रशंसा करने लगे हैं।

हम प्रेम-रस का शुद्ध वर्णन भवभूति के 'उत्तर-रामचरित' में पाते हैं। 'शाकुंतल' में प्रेम के प्राथमिक शृंगार का स्वरूप भी है और अन्त का परिणत शुद्ध रूप भी है। सच पूछो तो प्रेम को ही 'रसराज' की पदवी से विभूषित करना चाहिए। शृंगार को तो केवल उसका आलम्बन-विभाव कह सकते हैं। शृंगार के वर्णन से मनुष्य की चित्तवृत्ति सहज में ही उद्दीपित की जा सकती है। इस सहूलियत के कारण सभी देशों और सभी काल में कलामात्र में शृंगार-रस की प्रधानता पाई जाती है। ...ओं में वसंत, उसी तरह रसों में शृंगार उन्माद-... है। जिस तरह लोगों की या व्यक्ति की खुशामद ... बातचीत का रस बड़ी आसानी से निभाया जा ... है, उसी तरह शृंगार-रस को जाग्रत करके बहुत ओछी पूँजी के ऊपर आकर्षण करनेवाली कृति का निर्माण किया जा सकता है।

सच्चे प्रेम-रस में अपना व्यक्तित्व खोकर दूसरे के साथ तादात्म्य भाव (सम्पूर्ण अभेद-भाव) का अनुभव करना होता है। इसी लिए उसमें आत्म-विलोपन और सेवा की प्रधानता होती है। प्रेम तो आत्मा का गुण है। अतः देह के ऊपर उसकी हमेशा विजय होती है। प्रेम ही आत्मा है। अमर प्रेम से आत्मा कभी भिन्न नहीं है। इस बात की सभी प्रेमियों, भक्तों और वेदान्ती दर्शनकारों ने स्पष्ट घोषणा की है।

वीर-रस

वीर-रस भी अपने शुद्ध रूप में आत्म-विकास को सूचित करता है। सामान्य स्वस्थ स्थिति में रहनेवाला मनुष्य अपने आत्म-तत्त्व को प्रकट नहीं कर सकता, क्योंकि यह शरीर के साथ एकरूप होकर रहता है। जब किसी असाधारण प्रसंग के कारण खरी कसौटी का समय आता है तब मनुष्य अपने शरीर के बन्धन से ऊँचा उठता है। इसी में वीर-रस की उत्पत्ति है।

वीर-रस में प्रतिपक्षी के प्रति द्वेष, क्रूरता, उसके सामने अहंकार का प्रदर्शन आदि आवश्यक नहीं हैं। लोक-व्यवहार में बहुत बार ये हीन भावनायें मौजूद रहती हैं। कभी कभी शायद ये ज़रूरी भी हो पड़ती हैं; लेकिन यह ज़रूरी नहीं है कि साहित्य में इनको स्थान हो ही। साहित्य कुछ वास्तविक जीवन का सम्पूर्ण फ़ोटोग्राफ़ नहीं होता। जितनी वस्तुओं की तरफ़ ध्यान खींचना आवश्यक होता है, साहित्य में उन्हीं की चर्चा की जाती है। इष्ट वस्तु को आगे रखना और अनिष्ट वस्तु को दबाना साहित्य तथा कला का ध्येय है। इस पुरस्कार और तिरस्कार के बग़ैर कला का ठीक ठीक विकास नहीं होने पाता। साहित्य में वीर-रस को जिन चीज़ों से हानि पहुँचती हो उन्हें साहित्य में से निकाल डालना चाहिए। तभी वह कलापूर्ण साहित्य होगा।

शौर्य और वीर्य

लोक-व्यवहार में भी वीर-रस एक सीमा तक आर्यत्व की अपेक्षा तो रखता ही है। पशुओं में जोश होता है, पर वीर्य नहीं होता। जब जोश में आकर आपे से बाहर होते हैं, वे आपस में अंधाधुंध लड़ पड़ते हैं। यही उनकी पशुता है। पर कहीं ज़रा-सा भी भय का संचार उनमें हुआ कि अपनी दुम दबाकर भागने में उन्हें देर नहीं लगती, और भय की लज्जा का भाव तो वे जानते ही नहीं। भय की लज्जा तो आत्मा का गुण है। जानवरों में इसका विकास नहीं होता। आवेश हो या न हो; लेकिन तीव्र कर्तव्य-बुद्धि के कारण अथवा आर्यत्व के विकसित होने से मनुष्य भय पर विजय पा लेता है। आलस्य, सुखोपभोग, भय, स्वार्थ— इन सबका त्याग कर, देह ... चिन्ता से निर्मुक्त हो, जब मनुष्य अपना बलिदान ... तभी वह जड़ के ऊपर अपनी ... तत्त्व प्राचीन कथाओं में है ... उन्होंने अवश्य ही प्राप्त किये

गुणों का उत्कर्ष स्थापित करता है। ऐसा वीर-कर्म, ऐसी वीर-वृत्ति देखनेवाले या सुननेवाले के हृदय में वीरभाव को जाग्रत करती है, और इसी में वीर-रस का आकर्षण और उसकी सफलता है।

हमारे पास कोई रक्षक वीर पुरुष खड़ा है, इसलिए हम बेफ़िक्र हैं, सही-सलामत हैं, भय का कोई कारण नहीं; इस तरह की तसल्ली दुर्बलों और अबलाओं को होती है। इसे कुछ वीर-रस का सर्वोच्च परिणाम नहीं कह सकते।

जिस ज़माने में मनुष्य अपनी देह का मोह करनेवाला, फूँक-फूँक कर क़दम रखनेवाला और बरबुसा बन जाता है, उस ज़माने में वह वीरों का बखान कर और उन्हें बहादुरी की सबसे ऊँची चोटी 'एवरेस्ट' पर चढ़ाकर उन्हीं के हाथों अपना त्राण मानता है। ऐसों के समाज में वीर-रस की और वीर-काव्य की जो चाहना होती है, जो प्रतिष्ठा होती है इस पर से यह नहीं समझ लिया जाना चाहिए कि उस समाज में आर्यत्व का उत्कर्ष होने लगा है। जब बम्बई में लोकमान्य तिलक पर मुक़द्दमा चल रहा था तब वहाँ के सारे मिल-मजूर दंगा करने पर उतारू हो गये थे। उनकी हलचल से घबराकर मध्यम वर्ग और व्यापारी वर्ग के कई लोग घरों के अंदर जा घुसे। जब उस हलचल का दमन करने के लिए सरकारी फ़ौज आई तब उसे देख वही लोग मारे ख़ुशी के हुर्रे-हुर्रे की जयध्वनि करने लगें और अपने हाथों के रूमाल उछालने लगे। उन्होंने उन सैनिकों का सहर्ष स्वागत किया और उस वक्त उनके मुख से जो 'वीर-गान' निकला उससे उस समाज में कुछ वीरत्व का भाव जाग्रत नहीं हुआ। यह हमारी आँखों देखी घटना है, और इसी लिए उसका असर हमारे दिल पर गहरी छाप डाल चुका है।

वीर-रस की क़द्र वीर करें, यह एक बात है और शरणागत जन करें, यह दूसरी बात है। जो वीर है वह वीर-रस को हमेशा विशुद्ध और आर्योचित रखने की चेष्टा करता है। आश्रय-परायण व्यक्ति के अपनी प्राण-रक्षा के लिए आतुर होने के कारण उसमें आर्य-अनार्य-वृत्ति का विवेक नहीं रहता। अपने रक्षक के प्रति 'नाथनिष्ठा' रर पर बात वास्तव में ऐसों को समान भाव से उज्ज्वल ही कह सकते।

वीर-वृत्ति और वैर-वृत्ति

दुःख की बात है कि वीर-वृत्ति में से कभी कभी वैर-वृत्ति भी जाग्रत होती है। इसका कोई इलाज न देखकर आर्य-धर्मकारों ने इसकी मर्यादा बाँध दी है—"मरणान्तानि वैराणि"। दुश्मन के मरने के बाद उसकी लाश को पैर से ठुकराना, उसके जिस्म के टुकड़े टुकड़े करवा डालना, उसके सगे-सम्बन्धियों या आश्रितों को दर-दर का भिखारी बनाना, उनकी दुर्दशा करना और उनकी अनाथ स्त्रियों की बेइज़्ज़ती करना, यह सब एक आर्य वीर के लिए शोभावह नहीं है। इससे कुछ मृत शत्रु का अपमान नहीं होता; उलटे अपने वीरत्व को ही बट्टा लगता है। सच्चे वीर पुरुष यह बात भली भाँति जानते हैं। आर्य-साहित्याचार्यों, कवियों और कलाकारों ने पुकार-पुकार कर यही कह . . . के शत्रुता ही करो तो वह भी अपनी बराबरी के किसी शत्रु को खोज कर करो, और उसे हराने के बाद उसकी इज़्ज़त करके उसकी प्रतिष्ठा बनाये रक्खो, और इस तरह अपना गौरव बढ़ाओ।

वीर-वृत्ति का परिचय मनुष्य के ही विरोध में नहीं दिया जाता, बल्कि सृष्टि के कुपित होने पर भी मनुष्य अपनी उस वृत्ति को विकसित कर सकता है। जब शत्रु सामने नंगी तलवार लिये खड़ा हुआ है तब अपने बचाव के लिए मुझे अपनी सारी ताक़त बटोर कर उसका मुक़ाबिला करना ही होगा। इस मौक़े पर, अगर मैं लड़ाकू वृत्ति न रक्खूँ तो जाऊँ कहाँ? सिंहगढ़ की दीवार पर चढ़कर उदयभानु के साथ संग्राम करनेवाले तानाजी की सेना जब हिम्मत हारने लगी तब तानाजी के मामा सूर्याजी ने दीवार से नीचे उतरने की रस्सी तुरंत काट डाली थी। अमेरिका पहुँचने के बाद स्पेनिश वीर अर्नेंडो कोर्टेज़ ने अपने जहाज़ जला दिये थे। इस प्रकार जब पीठ फेरना असंभव हो जाता है तब आत्मरक्षा की वृत्ति वीर-वृत्ति की सहायक बन जाती है। जिसे अपनी जान ज़्यादा प्यारी होती है वही इस मौक़े पर अधिक शूर बन जाता है। परन्तु जब कोई मनुष्य पानी में डूब रहा हो अथवा जलते हुए घर के अन्दर से किसी असहाय बालक के चीख़ने की आवाज़ सुनाई पड़ रही हो, उस समय अपने बचाव की, जीवन के जोखिम की, ज़रा भी परवा न करते हुए जो तेजस्वी पुरुष अपने हृदय-धर्म का वफ़ादार बनकर पानी में या धधकती हुई आग में कूद पड़ता है तब वह अपनी वीर-वृत्ति का परम उत्कर्ष प्रकट करता है। माफ़ी माँग कर जीने की अपेक्षा फाँसी पर चढ़ जाना मनुष्य ज़्यादा पसंद करता है। करोड़ों रुपये की लालच के वश में न होकर केवल न्यायबुद्धि को जो मनुष्य पहचानता है वह भी अपने अलौकिक वीरत्व का परिचय देता है। इस दुनिया का चाहे जो हो, पर अन्तरात्मा की आवाज़ को बे-वफ़ा नहीं होने दूँगा, ऐसी वीर-धीर-वृत्ति जिस मनुष्य में स्वाभाविक होती है वह वीरेश्वर है।

किसी की बहू-बेटी या स्त्री का अपहरण करते समय भी कई एक बदमाश-गुण्डे विकार के वश होकर अपनी असाधारण बहादुरी व्यक्त करते हैं। बड़े बड़े डाकू भी अपनी जान हथेली पर रखकर घरों में सेंध लगाते हैं अथवा लूट-मार मचाते हैं, और जब पकड़े जाते हैं, पुलिस भले ही उन्हें प्राणान्त कष्ट पहुँचावे, वे अपने षड्यंत्र का भेद नहीं बतलाते। उनकी यह शक्ति हमें आश्चर्य-चकित ज़रूर कर सकती है, पर शरीफ़ लोगों का धन-हरण या पर-स्त्री का अपहरण करने की नीचातिनीच वृत्ति से प्रेरित बहादुरी की कोई आर्य-पुरुष क़द्र नहीं करता। डाकू लोग भारी से भारी डाके डालकर मिले हुए धन का एक भाग अपने आस-पास के प्रदेश के ग़रीब लोगों में बाँट देते हैं और इस प्रकार लोकप्रिय बनकर अपने पकड़नेवालों को हरा देते हैं। कभी कभी ऐसे डाकू और लुटेरे कुछ ख़ास ख़ास समाज-कंटक लोगों को नष्ट कर और उनका सर्वस्व लूटकर ग़रीबों को भयमुक्त भी कर देते हैं। इससे भी कृपण जनता ऐसे लोगों की दुष्टता को भूल कर उनके गुणों का बखान करने लगती है। यह काम चाहे जितना स्वाभाविक क्यों न हो, फिर भी इससे समाज की उन्नति होती है, ऐसा हम कभी नहीं कह सकते। मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्र जी की "पाल्या हि कृपणा जनाः" यह उक्ति प्रजा के गौरव को नहीं बढ़ाती। जिससे लोक-हृदय उन्नत नहीं हो सकता, ऐसी कृति में से शुद्ध वीर-रस का उद्गम होता हो, सो भी नहीं कहा जा सकता। अकेली हिम्मत और सरफ़रोशी वीर-रस नहीं है और शत्रु को ज़ख़्मों से अंग-भंग करने में, उसके आश्रित जनों की फ़ज़ीहत करने में वैर-वृत्ति की तृप्ति भले ही हो जाय; इसमें न तो शूरता न वीरता है; न धीरता है और आर्यता तो होगी ही कहाँ से।

वीभत्स

योद्धा में लहू, मांस और शरीर के छिन्न-भिन्न अवयवों को देखने की टेव होनी ही चाहिए। दुःख और वेदना अपने हों या पराये, उन्हें सहन करने की शक्ति भी उसमें होनी चाहिए। शस्त्र-क्रिया करनेवाले डाक्टरों में भी इस शक्ति का रहना आवश्यक है। लोहू की धार को देखकर कुछ लोगों को चक्कर क्यों आ जाता है, इसे मैं अब तक समझ नहीं सका हूँ। मुझे स्वयं मांस काटते या शस्त्र-क्रिया करते देखकर किसी क़िस्म की बेचैनी नहीं मालूम होती। फिर भी वीर-रस के वर्णन के सिलसिले में जब रणनदी के वर्णन बाँचता हूँ तब उसमें से जुगुप्सा को छोड़कर दूसरा भाव पैदा ही नहीं होता। ख़ून के कीचड़ और उसमें उतराते हुए नर-रुण्डों के वर्णन से वीर-रस को किसी तरह पोषण मिलता है, यह अब तक मेरी समझ में नहीं आया है। युद्ध में जो प्रसंग अनिवार्य हैं उनमें से मनुष्य भले ही गुज़रे; किन्तु जुगुप्सित घटनाओं का रसपूर्ण वर्णन करके उसी में आनन्द मनानेवाले लोगों की वृत्ति को तो विकृत ही कहना चाहिए। मनुष्य को खंभे से बाँधकर, उसके ऊपर अलकतरा का अभिषेक कराके, उसको जला देनेवाले और उसकी प्राणान्त चीख़ सुनकर ख़ुश होनेवाले बादशाह नीरो की बिरादरी में हम अपना शुमार क्यों करायें?

वीर कथायें कैसे पढ़ें?

वीर-रस मनुष्य-द्वेषी नहीं है। वह परम कल्याणकारी, समाज-हितकारी और धर्मपरायण आर्यवृत्ति का द्योतक है। उसका रूप यही होना चाहिए। वीर-रस के पोषण और संरक्षण का भार वीरों के ही हाथ में होना चाहिए। वीर-वृत्ति को पहचाननेवाले कवि, चारण और शायर जुदे हैं, और अपनी रक्षा की तलाश में रहनेवाले कायर और आश्रित जुदे हैं।

पुराने ज़माने की भली बुरी सब वीर-कथाओं को हम पढ़ें ज़रूर, उन्हें आदर के साथ बाँचें, किन्तु इनमें से हम पुरानी प्रेरणा नहीं ले सकते। उन लोगों का वह प्राचीन संतोष हमें अपने लिए त्याज्य ही समझना चाहिए। जीवन में वीरता के नये आदर्शों को स्वतंत्र रूप से विकसित करके, और उनके लिए आवश्यक पोषक तत्त्व प्राचीन कथाओं में से जितनी मात्रा में मिल सकें उतने अवश्य ही प्राप्त किये

जाने चाहिए; परन्तु वीर-रस के क्रूर या जीवनद्रोही आदर्शों में हम फिसल न जायँ। अगर जीवन में से वीरता चली गई तो वह उसी क्षण से सड़ने लगता है और अन्त में उसमें एक भी सद्गुण नहीं टिकता, यह हमें नहीं भूलना चाहिए।

आधुनिक युग के कलाकारों के अग्रणी श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर को एक बार जापान में एक ऐसा स्थान दिखाया गया था, जहाँ जापानी वीर कट मरे थे। उस स्थान और उस घटना पर अपनी प्रतिभा का प्रयोग करके कोई भाव-पूर्ण कविता रचने के लिए कविवर से आग्रह किया गया था। विश्वकवि ने वहीं जो दो पंक्तियाँ लिखकर दे दी थीं, जो भारतवर्ष के मिशन और मानव-जाति के भविष्य की शोभा बढ़ानेवाली थीं, उनका भाव यह है कि "दो भाई गुस्से में आकर अपनी मनुष्यता को भूल गये और उन्होंने भू-माता के वक्षःस्थल पर एक-दूसरे का ख़ून बहाया। प्रकृति ने यह देखकर ओस के रूप में अपने आँसू बहाये और मनुष्य-जाति की इस रक्तरंजित हया को हरी हरी दूब से ढाँक दिया।" शान्तिप्रिय, अहिंसापरायण, सर्वोदयकारी, समन्वयप्रेमी संस्कृति का वीररस तो त्याग के रूप में ही प्रकट होगा। आत्मविलोपन, आत्मदान ही जीवन की सच्ची वीरता है। इसके असंख्य भव्य प्रसंग कला के वर्ण्य विषय हो सकते हैं। ये प्रसंग कला को उन्नत करते हैं और प्रजा को जीवन-दीक्षा देते हैं। आज-कल के कलाकार जीवन के इस पहलू को विशेष रूप से विकसित करते हैं या नहीं, इसकी जाँच मैं अब तक नहीं कर सका हूँ, फिर भी मैं इतना तो जानता हूँ कि यदि भविष्य की कला इस दिशा की तरफ़ अग्रसर हुई तो निकट भविष्य में वह बहुत भारी तरक्क़ी—असाधारण उन्नति—कर सकेगी, और समाज-सेवा भी इसके हाथों अपने आप होगी।

एको रसः करुण एव

जब भवभूति ने 'रस एक ही है और वह करुणा है और अनेक रूप धारण करता है' यह सिद्धान्त स्थिर किया तब उसने करुण शब्द को उतना ही व्यापक बनाया जितना कि कला शब्द है। जहाँ हृदय कोमल हो, उन्नत हो, सूक्ष्मज्ञ हो या उदात्त हो, वहाँ कारुण्य की छटा आयेगी ही। कारुण्य की समभावना या समवेदना सार्वभौम होती ... सकते हैं।

करुण-रस ही रस-सम्राट् है, और यह आवश्यक नहीं है कि इस रस में शोक का भाव होना ही चाहिए। वात्सल्य-रस, शांत-रस और उदात्त-रस, ये करुण के ही जुदे जुदे पहलू हैं। बाक़ी अन्य सब रस, अन्त में-जैसे सागर में नदियाँ समा जाती हैं वैसे ही, इस रस में लीन हो जाते हैं। एक मित्र ने इन सब रसों के लिए "समाहित रस" का नाम सूचित किया, जो मुझे बहुत ठीक जँचा। पर इसमें शक है कि भाषा में यह सिक्का चल सकेगा या नहीं। सच पूछा जाय तो सब रसों की परिणति योग में ही है। योग अर्थात् सम... —समाधान—सर्वात्म एकता का भाव। अन्त में कला में से यही वस्तु निकलेगी। यह योग ही कला का साध्य और साधन है। दुर्भाग्य की बात है कि योग का यह व्यापक अर्थ आज-कल की भाषा में स्वीकार नहीं किया जाता। नाक पकड़कर, पलथी मारकर और देर तक नींद लेकर बैठे रहना और भूखों मरना ही लोगों की दृष्टि में 'योग' रह गया है।

हमारे साहित्यकारों ने करुण-रस का बहुत सुन्दर विकास किया है। कालिदास का 'अज-विलाप' अथवा भवभूति का उत्तररामचरित करुण-रस के उत्तम से उत्तम नमूने माने जाते हैं। भवभूति जिस समय करुण-रस का राग छेड़ता है, उस समय पत्थर भी रोने लगता है और वज्र का हिया भी पिघलकर चूर चूर हो जाता है। करुण-रस ही मनुष्य की मनुष्यता है। फिर भी यह ज़रूरी नहीं है कि करुण-रस का उपयोग सिर्फ़ स्त्री-पुरुष के पारस्परिक विरह-वर्णन में ही हो। माता का अपने बालक के लिए या किसी का अपने मित्र के लिए विलाप करने मात्र से भी करुण-रस का क्षेत्र संपूर्ण नहीं होता। अनादि काल से, हर एक युग में और हर एक देश में, प्रत्येक समाज में किसी न किसी कारण से, महान् सामाजिक अन्याय होते आ रहे हैं। हज़ारों और लाखों लोग अन्याय के बलि हो रहे हैं। अज्ञान, दारिद्र्य, उच्चनीच भाव, असमानता, मात्सर्य और द्वेष इत्यादि अनेक कारणों से और बिना कारण भी मनुष्य मनुष्य पर अत्याचार कर रहा है। उसे ग़ुलाम बना रहा है, चूस रहा है, और अपमानित कर रहा है। ये सभी प्रसंग करुण-रस के स्वाभाविक क्षेत्र हैं।

नल राजा के हंस को पकड़ने या एकआध ...

नन्दिनी गौ के धर दबोचने के दुःख का वर्णन हमारे कवियों ने किया है। एक निषाद ने क्रौंच पक्षी के जोड़े में से एक को बाण से भेद डाला तो वाल्मीकि की शाप-वाणी ने सारी दुनिया के हृदय को भेदकर इस अन्याय की तरफ़ उसका ध्यान खींचा। इतना होते हुए भी पशु-पक्षियों का या गाय-भैंस का सामुदायिक दुःख अभी तक किसी ने गाया है, ऐसा मन में विचार उठता भी नहीं है। मध्यम वर्ग के लोग विधवाओं के दुःखों का कुछ वर्णन करने लगे हैं; पर इसमें भवभूति का ओजगुण या वाल्मीकि का पुण्य-प्रकोप व्यक्त नहीं हुआ। करुण-रस का असर जितना होना चाहिए उतना नहीं हुआ। अतएव हृदय की शिक्षा और हृदय-धर्म की पहचान अपूर्ण ही रही है। और इसी से गांधी जी जैसा व्यक्ति अस्पृश्यता के कारण अपने हृदय का क्षोभ प्रकट करता है, फिर भी समाज के हृदय पर उसका काफ़ी असर नहीं पड़ता; अधिकांश में वह अछूत ही रहता है। करुण-रस में केवल हृदय का पिघलना ही पर्याप्त नहीं है; हृदय में आग लगनी चाहिए और उससे जीवन में आमूल क्रान्ति हो जानी चाहिए। जीवन के हर एक व्यवहार के लिए हृदय-धर्म में से मनुष्य को एक नई कसौटी तैयार करनी चाहिए।

हास्य-रस

अगर यह कहें कि प्राचीन लोगों को हास्य-रस की वास्तविक कल्पना तक नहीं थी तो इसमें कोई ज़्यादा अतिशयोक्ति नहीं है। ऊँचे दर्जे का हास्य-रस संस्कृत-साहित्य में बहुत ही कम पाया जाता है। उसमें जहाँ-तहाँ नरम वचन और सुन्दर चाटूक्तियाँ तो बिखरी पड़ी हैं; और यह अपनी संस्कृति की विशेषता है। हालाँकि अब हमारे साहित्य में भी हास्य-रस के अनेक सफल प्रयोग होने लगे हैं, फिर भी यही कहना पड़ता है कि नाटकों में पाया जानेवाला हास्य-रस अभी बहुत सस्ता और साधारण कोटि का है। हमारे व्यंग्य-चित्रों में और प्रहसनों में पाया जानेवाला हास्य-रस आज भी अधिकांश में निम्न-श्रेणी का है। आज-कल प्रीति-सम्मेलनों में हास्य और वीर-रस के ही प्रयोग अधिक किये जाते हैं; क्योंकि उनमें सफलता बग़ैर विशेष मेहनत के मिल जाती है, और अनायास ही उनकी तैयारी की जाती है। उन पर तालियाँ भी ख़ूब पिट जाती हैं। इससे कला की प्रगति नहीं होती और प्रजा संस्कार-समर्थ भी नहीं बनती।

अद्भुत का आविष्कार

हमारे कलाकारों ने अद्भुत-रस का विकास किस रीति से किया है, यह मुझे मालूम नहीं है। पर मेरे मत में अद्भुत-रस की उत्पत्ति भव्यता में से होनी चाहिए। अन्यथा मनुष्य जितना अधिक अज्ञान में रहेगा हर एक चीज़ उतनी ही उसे अद्भुत मालूम होगी। अद्भुत का रूप ही ऐसा होता है कि उसके आगे कला का साधारण व्याकरण स्तम्भित हो जाता है। विजयनगर की आस-पास की पहाड़ियों में बड़ी-बड़ी शिलाओं के जो ढेर पड़े हुए हैं उनमें किसी तरह की व्यवस्था या समरूपता नहीं है, और वहाँ इसकी आवश्यकता भी नहीं दीखती। सरोवर का आकार, मेघों का विस्तार, नदी का प्रवाह—इनमें कौन किसी तरह की व्यवस्था की अपेक्षा रख सकता है? भव्य वस्तु अपनी भव्यता-द्वारा ही सर्वाङ्गपूर्ण होती है। नहर का व्याकरण नदी के लिए लागू नहीं होता। उपवन का रचना-शास्त्र महान् सघन वन के लिए उपयोगी नहीं होता। जो कुछ भी भव्य, विशाल, विस्तीर्ण, उदात्त, उन्नत और गूढ़ है वह अनन्त का प्रतिरूप है, और इसी लिए यह अपनी सत्ता से अत्यन्त रमणीय है। महाकवि तुलसीदास ने कहा है कि 'समरथ को नहिं दोष गुसाईं' वह यहाँ नये अर्थ में कला के सूत्र-रूप में ही अधिक सुसंगत मालूम होता है।

अद्भुत, रौद्र और भयानक

अद्भुत, रौद्र और भयानक इन तीनों रसों का उद्गम एक ही जगह से है। हृदय की भिन्न-भिन्न प्रतिभूतियों के कारण ही उसके जुदे-जुदे नाम पड़े। जब शक्ति के आविर्भाव से हृदय दब जाता है, अपनी लज्जा खो बैठता है, तब भयानक रस का निर्माण होता है। सिर पर लटकती हुई एक ऊँची चट्टान के नीचे हम खड़े हों तो उस समय हमारे मन में यह विश्वास तो रहता है कि यह शिलाराशि हमारे सिर पर गिरनेवाली नहीं है; उलटे, आँधी-तूफ़ान से ही हमारी रक्षा करेगी। इतना विश्वास होते हुए भी यदि वह कहीं गिर पड़े तो!—इतना ख़याल मन में आते ही हम दब जाते हैं। यह एक शक्ति का ही आविर्भाव है। पहाड़ जैसी ऊँची-ऊँची लहरों पर तैरकर

सफ़र करनेवाले जहाज़ में बैठे-बैठे हम इस भाव का एक
भिन्न रीति से अनुभव करते हैं।

मनुष्य भव्य वस्तु के साथ हमेशा अपना मुक़ाबिला
करता ही रहता है। ऐसा करते-करते जब वह थक जाता
है तब इससे रौद्र-रस प्रकट होता है। और जहाँ भव्यता
की नवीनता और उसका चमत्कार भुलाया नहीं जाता,
वहाँ अद्भुत-रस का परिचय मिलता है। ये तीनों रस
मनुष्य की संवेदन-शक्ति के ऊपर निर्भर हैं। आकाश के
अनन्त नक्षत्रों को देखकर जानवरों को कैसा लगता है, यह
हम नहीं जानते। जब बच्चों को वह एक पालने के चँदोवे
की तरह मालूम होता है तब वही एक प्रौढ़ खगोल-शास्त्री
को नित्य नूतन और बढ़ते हुए अद्भुत-रस का विश्वरूप-
दर्शन जैसा लगता है। अद्भुत-रस की विशेषता यह है
कि जिस तरह मेघ का गर्जन सुनकर सिंह को गर्जन करने
की सूझती है, उसी तरह आर्य-हृदय को भव्यता का दर्शन
होने के साथ ही अपनी विभूति भी उतनी ही विराट् भव्य
करने की इच्छा होती है। अद्भुत-रस में मनुष्य की
आत्मा अपने को अद्भुतता से भिन्न नहीं मानती, पर एक
अमुक रीति से इसमें वह अपना ही प्रादुर्भाव देखती है, रौद्र
या भयानक में वह अपने को भिन्न मानती है। इन दोनों
मनोवृत्तियों का जिसने अनुभव किया है, ऐसे कलाकार ने
एकाएक घोषित किया है कि शिव और रुद्र एक ही हैं,
शान्ता और दुर्गा एक ही हैं। जो महाकाली है वही
मह[illegible] और महासरस्वती है। श्री रामचन्द्र जी का
दर्शन होते ही हनुमान् के भक्त हृदय ने स्वीकार कर
लिया—

'देहबुद्धया तु दासोऽहम्
जीवबुद्धया त्वदंशकः।
आत्मबुद्धया त्वमेवाऽहम्,
यथेच्छसि तथा कुरु॥'

इस अन्तिम चरण में जो संतोष और आत्मसमर्पण
है वही कला के क्षेत्र में शान्त-रस है। रौद्र, भयानक
और अद्भुत ये तीनों रस अन्त में जब तक शान्त-रस में
न मिल जायँ, जब तक हमारा समाधान न करें, तब तक
कोई इन्हें रस कहेगा ही नहीं।*

---

* यह लेख हमें भारतीय साहित्य-परिषद्, वर्धा, से मिला है। सम्पादक

अब भी

लेखक, श्रीयुत कुँवर सोमेश्वरसिंह, बी० ए०, एल-एल० बी०

है उन स्वप्नों की छाया,
अब भी उर में छा जाती।
सुधि एक कसक सी उठकर
है कभी कभी आ जाती॥

है बीते विकल क्षणों की,
स्मृति जीवन विकल बनाती।
है कभी कभी उर-तन्त्री,
अब भी वह राग बजाती॥

मादकता चली गई है,
अब भी खुमार है बाक़ी।
नयनों के सम्मुख सहसा,
आ जाती है वह झाँकी॥

हैं छोड़ गई मुझको सब,
वे मतवाली आशायें।
पर उकसा जाती हैं उर,
अब भी मृदु अभिलाषायें॥

जर्जर जीवन में उठता,
है तड़प कभी नव जीवन।
चेतना-हीन कर देता,
है कभी कभी पागलपन॥

बुझ गई ज्योति जीवन की,
है अन्धकार-सा छाया।
पर कुछ प्रकाश-सा अब भी,
दिखला जाती है माया॥

रंगून से आस्ट्रेलिया

लेखक, श्रीयुत भगवानदीन दुबे

श्री दुबे जी की रंगून से आस्ट्रेलिया की हवाई यात्रा का सुन्दर वर्णन सरस्वती के गत अङ्क में प्रकाशित हो चुका है। यह लेख उसी का शेषांश है। इसमें इन्होंने मार्ग-गत नगरों का रोचक वर्णन किया है।

आस्ट्रेलिया के शासन की बागडोर आज-कल मज़दूर दल के हाथ में है। मज़दूरों के लाभ के लिए इतने उदार क़ानून बनाये गये हैं कि किसी को नौकर रखना अपने यहाँ की तरह हाथी बाँधना है। सब तरह के काम करनेवालों के अलग अलग संघ हैं और इन संघों ने मज़दूरी की दर क़ायम कर रक्खी है। काम करने के घंटे भी नियत हैं। आज-कल कम से कम मज़दूरी की दर ३॥ पौंड याने क़रीब चालीस रुपये प्रतिसप्ताह के हिसाब से है। इसी तरह प्रतिदिन अथवा प्रतिघंटे की भी मज़दूरी का निर्ख़ बँधा हुआ है। कोई उससे कम नहीं दे सकता। किस पेशेवाला कितने बजे से कितने बजे तक काम करेगा और बीच में कितने बजे कितनी देर की छुट्टी उसे मिलनी चाहिए, यह भी नियत है। तनख़्वाह के अलावा बेकारी टैक्स लगता है। काम करते समय चोट लग जाय तो हर्जाना देने के लिए इन्श्योरेंस भी उतारना पड़ता है। एक घंटे के लिए भी अगर आपने कोई आदमी रक्खा और उसे कुछ चोट आगई कि आप हर्जाने के ज़िम्मेदार हुए। इन सब बलाओं के मारे सब वहाँ सब अपना अपना काम कर लेते हैं और मज़दूर से काम कराने के नज़दीक नहीं जाते।

दूकानें नौ बजे खुलती हैं और साढ़े पाँच बजे बन्द हो जाती हैं। खाने-पीने की दूकानें देर तक खुली रहती हैं। होटलों में भोजनालय डेढ़ बजे दिन में बन्द होकर ४ बजे खुलता है और ८ बजे रात में बन्द हो जाता है। आम मज़दूर ८ बजे से १२ बजे तक और डेढ़ से साढ़े पाँच बजे तक काम करते हैं। घर के नौकर नौकरानियों की भी छुट्टी का समय नियत है। छुट्टी के समय अगर किसी से कोई काम कराता है तो क़ानून-भंग के अपराध में सज़ा का भागीदार होता है।

मिस्टर नाइट के टूवूम्बा आने में जो दो रोज़ का विलम्ब था वह मुझे विश्राम के लिए बड़ा लाभप्रद हुआ। उनके आने पर टूवूम्बा में दो रोज़ और घूमना-फिरना हुआ। वहाँ से मुझे ब्रिसबेन जाना था। मिस्टर नाइट अपने मोटर में मुझे ब्रिसबेन लाये और दो रोज़ वहाँ भी मेरे साथ रहे। मैंने तीन रोज़ ब्रिसबेन में बिताये। ब्रिसबेन की क़रीब चार लाख मनुष्यों की आबादी है। सुन्दर विशाल दूकानें, टाउन हाल इत्यादि दर्शनीय जगहें हैं। सड़कें बड़ी और चौड़ी हैं। शहर नदी के दोनों तटों पर बसा हुआ है। ऊँची-नीची जगह होने की वजह से कई-एक स्थानों से सारा शहर नज़र आता है। रहने के मकान बहुत दूर दूर तक बने हुए हैं। हर मकान में बाग़ीचा है, जिसको एक-दूसरे से बढ़कर सजाने की यहाँ ख़ासी प्रतिस्पर्द्धा रहती है। समशीतोष्ण स्थान होने की वजह से अगणित प्रकार के पुष्प-पौधे विविध रंग व आकार के फूलों से लदे नज़र आये। उनके सजाने में भी किसी किसी कोठी में अच्छी कारीगरी दिखलाई गई थी। मैंने बहुत-से शहर देखे हैं, पर सारा का सारा यहाँ की
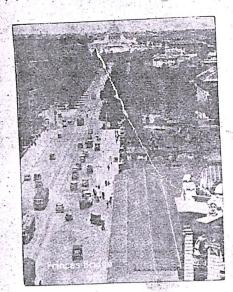
[यह मेलबोर्न का दृश्य है। सफ़ेद और बड़ी इमारत जो ऊपर दिख रही है वह वार मेमोरियल है।]

तरह फूलों से भरा कहीं नहीं पाया। मौसम वसंत का होने पर भी मुझे तो गृहस्थों की सुरुचि को श्रेय देना उचित जान पड़ता है। इस प्रदेश में आम भी होता है और किसी किसी कोठी में आम के पेड़ [illegible] हुए देखकर मुझे बड़ा आनंद मिला।

आस्ट्रेलिया में कुल ७० लाख मनुष्य हैं, जिनमें से २५ लाख सिडने और मेलबोर्न में तथा बीस लाख समुद्र-तट के और दूसरे शहरों में रहते हैं। या यों कहिए कि इन ४५ लाख शहरी आदमियों की गुज़र ज़मीन पर काम करनेवाले २५ लाख व्यक्तियों पर निर्भर है। सरकारी आमदनी इतनी नहीं है कि ख़र्च चल सके। उधार लेकर ही काम किये जाते हैं। आस्ट्रेलियन सरकार का राष्ट्रीय ऋण इतना बढ़ गया है कि उसका सूद अदा करने के लिए प्रजा पर अनेक कर लगाये गये हैं। तो भी ऋण लेना जारी है। यही हवा सारे ज़मींदारों को लगी हुई है। जितनी ज़मीन है, सब बैंकों के पास गिरवी है। मवेशी वग़ैरह भी इसी तरह उधार लेकर लिये गये हैं। जिसके पास १,०००) यहाँ हो वह ५०,०००) की ज़मीन ख़रीद सकता है और उसमें २०,०००) के मवेशी भी भर सकता है। कपड़ा-लत्ता सब क़िश्त पर मिल सकता है। नतीजा यह है कि ज़मींदार महज़ बैंकों या महाजनों के गुलाम हैं। बारिश अच्छी हुई तो लाभ हो जाने की उम्मेद रहती है, नहीं तो सूद व कमीशन देकर मुश्किल से पेट भरता है। उपज का पैसा ज़मींदार के हाथ नहीं आता। ख़रीददार अपने बचाव के लिए ज़मींदार के बैंक को ही दाम देता है।

किसानों के लाभार्थ सहयोग-स[illegible]एँ स्थापित हैं तथा बोर्ड क़ायम हैं। मक्खन की पैदावार इस देश में बहुत है। किसान दूध से मलाई अलग कर मक्खन के कार[illegible] वही कला के [illegible] यहाँ समुचित स्थानों में बने और अद्भुत [illegible] बेचने की दर भी यहाँ नियत है, जैसे [illegible] आने सेर। जितना मक्खन आस्ट्रेलिया की खपत के अलावा होता है, बाहर के मुल्कों में जो दाम मिले उस पर बेंच दिया जाता है जो ६ आने सेर पड़ता है। इन दोनों भावों का औसत निकाल कर बोर्ड जो भाव [illegible] है, मानो ९ आना सेर, उस हिसाब से किसान [illegible] में मक्खन के कारख़ानेवाला हर महीने चेक देता है।

सिडने, मेलबोर्न, एडेलेड, पर्थ आदि घूमकर ब्रिसबेन से हवाई जहाज़ पकड़ने के लिए आने में [illegible] की कोई बचत नहीं होती थी और ख़र्च भी बहुत था। इसलिए ब्रिसबेन में आने के तीसरे दिन बाद पी० एन्ड ओ० कम्पनी का मंगोलिया जहाज़ खुलने [illegible] था उससे लौटने को तय किया। यह जहाज़ ७ [illegible] सिडने, २ दिन मेलबोर्न और १ दिन एडेलेड, [illegible] फ्रीमेंटल में रुकता जाता था, जिससे जहाज़ पर [illegible] खाते सारे शहरों का दिग्दर्शन होता था और फ्रीमें[illegible] चलने पर नवें रोज़ कोलम्बो पहुँच जाता था। वहाँ [illegible] रोज़ में मैं मदरास होते हुए रंगून पहुँच सकता था।

२४ सितंबर को यह जहाज़ ब्रिसबेन से खुला। [illegible] २० मुसाफ़िर थे। आठ व्यक्ति तो ऐसे थे जो कोलम्बो [illegible] बम्बई से इसी जहाज़ से कम दर के वापसी टिकट पर [illegible] थे और लौटे जा रहे थे। २६ तारीख़ को जहाज़ सिडने पहुँचनेवाला था। एक सज्जन ने मुझसे कहा कि [illegible] सुबह डेक पर से सिडने बन्दरगाह में जहाज़ का घुसना ज़रूर देखें।

सुबह बड़े कड़ाके की ठंड थी और हवा ज़ोर से बह रही थी, तो भी मैंने डेक पर खड़े रहकर इस दृश्य को देखना ही उचित समझा। दो चट्टानों के बीच से सिडने बन्दरगाह में जाने का रास्ता है। इस मुहाने को पार करते ही एक बड़ी सी झील में आ गये, ऐसा प्रतीत होता है।

[हे स्ट्रीट (पर्थ) वेस्ट आस्ट्रेलिया।]

इस स्वाभाविक कृति से सिडने का बन्दरगाह दुनिया के प्रमुख सुरक्षित बन्दरगाहों में गिना जाता है। खाड़ी के सभी ओर उच्च स्थलों पर सुंदर गृह-समूह नज़र आते हैं। [illegible]ान के कई रमणीय स्थान हैं। सिडने के पुल का ढाँचा समुद्र से ही दिखता था, पर खाड़ी में से [illegible] विशालकाय अर्धगोलाकार स्वरूप का पूर्णतया [illegible]न हो सका। यह पुल दुनिया के एक स्पैन के [illegible] सबसे बड़ा है। इसके मध्य के स्पैन की मेहराब की [illegible] १,६५० फ़ुट है व उँचाई ४४० फ़ुट। पानी की [illegible] से पुल १९० फ़ुट ऊँचा है, जिससे उसके नीचे से [illegible] जहाज़ निकल जाते हैं। पुल की चौड़ाई १६० [illegible], जिस पर ४ बिजली की रेल की पटरियाँ, आठ [illegible] के एक साथ निकलने की सड़क (५७ फ़ुट), दो [illegible] रास्ते दस दस फ़ुट के बने हुए हैं। इसके बनाने में [illegible]० टन लोहा लगा है और कुल ख़र्च १० करोड़ [illegible]ड़ा है। हमारा जहाज़ जब इस पुल के नज़दीक [illegible] तब ऐसा भ्रम हुआ कि जहाज़ का मस्तूल [illegible] बहुत ऊँचा है और ज्यों-ज्यों जहाज़ बढ़ता गया, [illegible] भान होने लगा कि मस्तूल ज़रूर टकरा जायगा। पर [illegible] पुल कुछ फ़ुट रह गया तब इस क़दर ऊँचा होने [illegible] कि जहाज़ का मस्तूल उसके नीचे चला गया। इस [illegible] का स्वयं अनुभव करके ही उसका सच्चा स्वरूप [illegible] जा सकता है। सिडने शहर खाड़ी के दोनों तरफ़ बसा हुआ है। पहले नावों से आना-जाना होता था। अब इस पुल से दोनों किनारे जोड़ दिये गये हैं।

पुल-निर्माण करनेवालों ने मसविदा बनाया था कि पुल के लिए जो ऋण लिया जायगा (इस देश में सब ऋण लेकर ही काम किया जाता है) उसका सूद इस पुल पर से आने-जानेवालों के ऊपर कर लगाकर अदा होता रहेगा। कर बहुत कड़ा है, फिर भी यह हाल है कि जो आमदनी इस ज़रिये से होती है वह उसकी मरम्मत के लिए भी पर्याप्त नहीं है। प्रजा-कर से इस सफ़ेद हाथी के लिए सूद व मरम्मत का ख़र्च निकालना पड़ता है। जब तक एक तरफ़ से रँग कर दूसरे तरफ़ पहुँचा जाता है तब तक पहले का हिस्सा फिर रँगने के क़ाबिल हो जाता है। इस लिए इसको रँगने के लिए एक स्थायी विभाग ही स्थापित है और हमेशा काम जारी रहता है।

हमारा जहाज़ पिरमांट वार्फ़ पर जाकर लगा। सिडने में जहाज़ आठ रोज़ ठहरता था, इसलिए अच्छी तरह घूम-फिरकर देखने का समय था। घाट से शहर जाने के लिए बस और फेरी आध-आध घंटे पर छूटते थे। सिडने में आठ रोज़ अच्छी तरह बिताने के लिए सैलानियों के मनोरञ्जन के काफ़ी स्थान हैं। टूरिस्ट कम्पनियाँ शहर में अथवा बाहर दूर स्थानों पर मोटर ले जाती हैं। हर एक यात्री के लिए भाड़ा नियत है। फ़ेरी और ट्राम से भी समुद्र-तट के स्थानों पर जाया जा सकता है। शहर में

[सिडनी बंदरगाह पर एक पुल जिसके नीचे से बड़े बड़े जंगी जहाज़ गुज़र जाते हैं।]

सिनेमा, थियेटर इत्यादि बहुत-से हैं। नाच-घर या अन्य विलास-वैभव में किसी योरपीय शहर से सिडने कम नहीं है। समाज के रहन-सहन पर अमेरिकन प्रभाव का बड़ा हिस्सा जान पड़ता है। स्त्रियों का शृंगार उसी ढंग का है। स्त्रियों के सुन्दर पहनावे से उनकी सुरुचि की श्रेष्ठता प्रकट होती है। निस्संदेह समृद्धता इसका मूल कारण है। यहाँ मज़दूरी का औसत कम से कम ४०) हफ़्ता है। काम के समय नियत हैं, इसलिए स्त्री-पुरुषों को खेलों के लिए पर्याप्त समय मिलता है। पुरुषों की तरह स्त्रियाँ भी खेल की शौक़ीन हैं, जिसका उनकी तन्दुरुस्ती व शारीरिक गठन पर अच्छा प्रभाव देखने में आता है। अक्तूबर से अप्रेल तक सिडने के समुद्रस्नान-तट जन-समुदाय से भरे रहते हैं।

आस्ट्रेलिया भर में जुए का बड़ा शौक़ है। हर एक शहर में घुड़दौड़ होती है। सिडने, मेलबोर्न जैसे शहरों में तो घुड़दौड़ के कई मैदान हैं। लोगों की जुआड़ी-प्रवृत्ति से लाभ उठाने के लिए सरकारी लाटरी हमेशा हुआ करती है। टिकट की दर दो शिलिंग और पाँच शिलिंग होती है। रैफ़िल भी हुआ करते हैं। लाटरी के टिकट सिगरेट-तम्बाकू की सब दूकानों पर बिकते हैं। लोगों की प्रायः

शहर में बैंक, बीमा-कम्पनी, रेलवे-दफ़्र, होटल, थियेटर वग़ैरह की इमारतें देखने क़ाबिल हैं। मज़बूती व बेश-क़ीमती में एक एक से होड़ करती हैं। नतीजा यह है भव्य व विशाल इमारतों से सिडने का व्यापारिक हिस्सा भरा हुआ है। बड़ी-बड़ी दूकानों में शाक-भाजी से लेकर बर्तन, कपड़े, कुर्सी, पलँग आदि जो कुछ गृहस्थी के काम की चीज़ें हैं, सब मिलती हैं। सैकड़ों फ़ुट के घेरे में दस-दस तल्ले सामान से खचाखच भरी दूकानें देखने में आती हैं और ख़रीददारों का ताँता लगा रहता है। यहाँ आदमी सोना-चाँदी नहीं ख़रीदते, बल्कि अपनी आमदनी वस्त्र व ऐशो-आराम की सामग्रियों में ख़र्च करते हैं। प्राप्त आमदनी तो एक तरफ़ रही, भावी आमदनी के भरोसे पर क़िश्त पर भी बहुत बड़ा व्यापार होता है। जिसकी नौकरी लगी हुई है उसको दूकानवाले साल-साल भर की क़िश्त पर चीज़ें बेचते हैं।

यों तो आस्ट्रेलिया के सभी शहरों में 'मिल्कबार' हैं, पर सिडने में इनकी विशेष छटा है। नाम के ख़याल से तो यहाँ दूध ही मिलना चाहिए, पर शर्बत वग़ैरह अन्य पेय पदार्थ तथा आइस-क्रीम और फल भी बिकते हैं। शहर के मध्य में अन्य दूकानों की तरह दफ़्रों के इर्द-गिर्द सिनेमा-थियेटरों के नज़दीक, पार्क-बाग़ीचों में, स्टेशनों में या और जहाँ कहीं आदमियों की ज़्यादा आमदरफ़्त है वहाँ स्वच्छ जगमगाती सजावट में चाँदी के बर्तन व काँच के गिलास से सुशोभित मिल्कबार क़ायम हैं। इनमें फाटक नहीं रहता, जिससे सड़क पर से सब खुला दिखता है। [...] का क़रीब दो फुट चौड़ा वा चार फुट ऊँचा

हरा बना रहता है। सामान भीतर रहता है और ऊँचे-ऊँचे स्टूल बाहर रक्खे रहते हैं। स्टूलों पर बैठकर कटहरे पर गिलास रख या योंही खड़े हुए कटहरे की टेक लिये ग्राहक यथारुचि पीते-खाते हैं। ग्राहकों की भीड़ के अनुसार परोसनेवाली स्त्रियाँ कटहरे के भीतर एक-दो या तीन-चार की संख्या में रहती हैं। ज़्यादातर १६ से २० बरस की युवतियाँ इस काम पर नियत रहती हैं, जो भड़कीली पोशाक में सफ़ेद टोपी लगाये लाल-लाल ओंठ, गुलाबी गाल व सुरेखित भौंहें किये कटहरे के भीतर ग्राहकों को परोसने में मधुर मुस्कान धारे इधर-उधर झपटती फिरती नज़र आती हैं। अवकाश पाने पर दो बातें भी कर लेती हैं, जिससे किसी रसीले ग्राहक का समाधान हो जाता है।

जहाँ-तहाँ सैलूनबार हैं। ये हमेशा दरवाज़े के भीतर होते हैं। यहाँ बियर, ह्विस्की, ब्रैंडी या अन्य मादक द्रव्य बिकते हैं। पुरुष ही इनमें ग्राहक होते हैं। यहाँ भी बहुधा बारमेड रहती हैं, जो ज़्यादा उम्रवाली नज़र आईं। ग्राहकों के हँसी-मज़ाक व सिगरेट पाइप के धुएँ से ये सैलूनबार गूँजे रहते हैं। मिल्कबार में स्त्री-पुरुष सभी जाते हैं, पर सैलूनबार में सिर्फ़ मर्द ही। सैलूनबार प्रायः होटलों में होता है और होटल में लाँज-कमरा ज़रूर रहता है। लाँज आदर की निगाह से देखा जाता है, जिसमें स्त्री-पुरुष बैठकर शराब वग़ैरह मँगाकर पीते हैं। बारों में 'टिप' नहीं दी जाती, पर लाँज में वेटर या वेटरेस को 'टिप' देने का रवाज है। लाँज प्रायः स्त्री-पुरुषों के मिलने के स्थान होते हैं।

रेलवे और ट्राम के सरकारी होने की वजह से किसी अन्य व्यक्ति को लारी या बस चलाने की इजाज़त नहीं है। जहाँ ट्राम नहीं है, वहाँ सरकारी बसें चलती हैं। ट्राम या बस का किराया दो पेंस से कम नहीं है। शहरों में टैक्सियाँ चलती हैं, जो एक शिलिंग प्रतिमील के हिसाब पर जाती हैं। खाड़ी में से एक दूसरी जगह जाने के लिए फ़ेरी चला करती हैं। टैक्सी की तरह लाँच भी किराये पर मिलती हैं। लाँच पर चढ़कर खाड़ी में सैर करने का मज़ा लेनेवालों की यहाँ कमी नहीं है। कुछ दूर समुद्र की सैर को जाने के लिए याच भी किराये पर मिल सकती हैं। मोटर-कार की तरह अपने आराम के लिए बहुत-से धनाढ्य पुरुषों के जल की सैर के लिए अपनी-अपनी लाँच या याच हैं।

एक रोज़ हमने ज़ू देखने में बिताया। यहाँ का मछली-घर देखने के लायक़ है। तरह-तरह की विविध रङ्ग और आकार की मछलियाँ अपने-अपने प्राकृत स्थानों में काँच के शीशे के अन्दर जल में तैरती फिरती हैं। सबसे ज़्यादा शोभायमान मछलियाँ होनोलूलू के तट की हैं। एक रोज़ सिडने-ब्रिज को पैदल चलकर देखने में बिताया। इस पुल की कारीगरी देखने व समझने का यही ज़रिया है। जिन चार खम्भों पर पुल का भार टिका हुआ है वे पत्थर के हैं। और २८५ फ़ुट ऊँचे हैं। उन पर जाने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं और उन पर से शहर का अच्छा दर्शन होता है।

एक दिन मैनली-बीच पर जाकर बिताया। वहाँ एक तरफ़ सुरक्षित स्नान-तट है। समुद्र की पेंदी से जल से क़रीब बीस फ़ुट ऊँची लोहिया जाली जड़ दी गई है, जिससे जाली के इस तरफ़ समुद्र-स्नान करनेवालों को शार्क मछली या अन्य जल-जन्तुओं का भय न रहे। यह सिडने-बन्दरगाह के मुहानेवाली एक चट्टान पर स्थित है। भीतर की तरफ़ सुरक्षित स्नान-तट है और बाहर की तरफ़ खुला समुद्र नहाने के लिए है। जल-जन्तुओं से बचाने का कोई इंतिज़ाम नहीं है, तो भी लहर-स्नान का लाभ लेते हुए असंख्य आदमियों को देखकर उनकी निर्भीकता की प्रशंसा करनी ही पड़ती है।

एक प्रतिष्ठित मिलनसार आदमी से भेंट करने के लिए मिस्टर नाइट के एक मित्र ने टूवूम्बा से लिख दिया था। उन्होंने मेरी ख़ातिरदारी में कुछ उठा नहीं रक्खा। अपने कई मित्रों से मेरी जान-पहचान कराई और मेरे सातों दिन सिडनी में किसी न किसी के साथ लंच या डिनर का न्योता रहा। मोटरकार में इधर-उधर की बहुत-सी सैर कराई और सिडने के रात्रि-जीवन का भी उनकी कृपा से बहुत कुछ अनुभव हुआ।

३ अक्टूबर को मेरा जहाज़ मेल्बोर्न के लिए रवाना हुआ। जहाज़ पर देखा कि एक हिन्दुस्तानी सज्जन अपनी स्त्री के साथ टहल रहे हैं। दूसरे बैंगनी मख़मली टोपी लगाये अँगरेज़ी पोशाक में एक किनारे खड़े हैं। चार आदमियों का एक झुंड सस्ती व भद्दी अँगरेज़ी पोशाक पहने एक तरफ़ बात-चीत कर रहा है। यहाँ इतने हिन्दुस्तानी आदमियों के मिलने की मुझे उम्मीद नहीं

...मलाल !

...लावती मुंशी
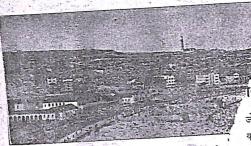
[सिडनी के समुद्र-तट पर स्नान-प्रेमियों की ...

थी। परिचय प्राप्त करने की कोशिश की। मालूम हु... के कि सपत्नीक सज्जन फ़ीजी से सिडने आकर बम्बई ज...ी थीं हैं। मख़मली टोपीवाले सज्जन थियासोफ़ी के प्र... गली मिस्टर जिनराजदास निकले, जो उस समय आस्ट्रे...कुएँ पर लेक्चर दे रहे थे। वे मेल्बोर्न तक ही इस जहा...एक स्त्री रहे थे। चार हिन्दुस्तानियों का दल न्यूज़ीलेंड ... पर कुछ था। वह भी बम्बई जा रहा था। उनसे ज्ञात हु...को देखने न्यूज़ीलेंड में फल-तरकारी बेचने का व्यवसा...एक 'परब' तथा वहाँ हिन्दुस्तानी आदमियों की संख्या...तीन कुत्ते थे, हज़ार के है। वे सब गुजरात के रहनेवाले हैं और आकर बाहरवालों का जाना बन्द है। वे लोग इस ..., जो दमामियों के पहले न्यूज़ीलेंड पहुँच गये थे। ...ा कर रहा था।

फ़ीजीवाले सज्जन वहाँ दूकान रखकर जब उसने दूर हैं। उनकी हिन्दुस्तानी अवध-प्रांत की ग्राम...तराकर दूर ही जिससे जान पड़ा कि वहाँ इस प्रांत के ब...। और अच्छे शुद्ध हिन्दी बोलनेवालों का सम्पर्क न होने...ल जहाँ का तहाँ ग्रामीण भाषा ही वे सीख सके। मुझे फ़ीजी...ने उलाहने-भरी उन्होंने बहुत प्रोत्साहित किया। ...ा की ज़रा अच्छे

पाँचवीं तारीख़ की सुबह को हमारा ...-से बसे। चार- पहुँचा। जहाज़ रुकने का स्थान शहर से ... रहा। भगवान् पड़ता था। रेल से शहर आने-जाने का ज़रिया आये। बहनो! अँगरेज़ से अच्छी मित्रता हो जाने के कारण गूँगी-सी क्यों साथ-साथ शहर जाने व देखने के लिए चले नौ बजे रेल पर बैठे। आने-जाने का डेढ़ शि...ने लगीं कि था। शहर में फ़्लिंडर्स-स्ट्रीट स्टेशन पर जाकर उत...ाय आ वहाँ से एलिज़ाबेथ-स्ट्रीट में दूकान देखते हुए ड... पुकार गये। वहाँ से लौटकर कालिन्स-स्ट्रीट होते हुए पार्लिय... लिये

जो बड़ी चाची वर की मा बनी थीं वे गा उठीं। स्त्रियों का वह दल शकुन गाता हुआ चाची के पीछे चल पड़ा। सहनाई बज उठी, ढोल ढमक उठा और सारी गली उस सुर और उस नाद से गूँज उठी।

गानेवालियों की आवाज़ दूर—और दूर होती चली गई। अड़ोसी-पड़ोसी अपने घरों में चले गये। कुत्ते दो-तीन दफ़ा गली के मोड़ तक जाकर भोंक आये और फिर जहाँ के तहाँ आकर ठहर गये। घर के ऊपरी मंज़िल के झूले पर बैठा टीकम, नई शादी के नवोल्लास में, झूले की सलाखों के संगीत के साथ झूल रहा था।

यह टीकम ही इस उत्सव का नायक था। ताज़ा लगा हुआ कुंकुम का टीका और चावल उसके माथे पर सुशोभित थे। रेशमी कमीज़ और लाल किनारे की धोती से सजी हुई उसकी देह सुहावनी मालूम होती थी। अपने दुबले-पतले हाथों में वह सोने के कड़े पहने था, और अँगुली में मानिक की एक अँगूठी थी।

उसे देखते ही उ... ...: उमर का अन्दाज़ लगाना ज़रा मुश्किल था। फिर भी ...-बत्तीस से ज़्यादा उसकी उमर नहीं थी। उसके गाल पिचके हुए थे, आँखें चंचल, कपाल असाधारण रूप से चौड़ा, और सिर पर कुछ सफ़ेद और कुछ काले बालों की खिचड़ी पकी थी। बाल ठीक से सँवारे हुए थे। बीड़ी की संगत से होंठ काले पड़ गये थे, मगर इस समय उन पर पान की सुर्ख़ी चढ़ी हुई थी। और कानों में जो तीन बालियाँ वह पहने था उनसे उसके मुँ... की शोभा बढ़ती या घटती थी, कहना कठिन है। ...ों को दौरा!

आज रात को पाँचवीं बार उसका ब्याह ... दौरा निकाले था। अभी एक महीना पहले ही ज़च्च... बिजली की उसकी चौथी पत्नी कमला का देहान्त हो गया ...लियाँ देनी इस बार ब्याह में कोई ख़ास धूम-धाम करने इरादा न था। गणेशपूजा, गौरीपूजा, हवन

और बरात का सभी काम, छोटा और बड़ा, आज एक-ही दिन में कर लेना था। सबकी सलाह से यह तय हुआ था कि आज टीकम घोड़े के बदले गाड़ी पर बैठेंगे, जामा और सरपेंच के बदले सादा रेशमी कोट पहनेंगे और सिर पर एक नये पल्ले की सादी लाल सुर्ख़ पगड़ी बाँधकर रात को नौ बजे नई दुलहिन को ब्याहने जायँगे।

लोगों के ख़याल में टीकम बेचारा एक भला आदमी था। चार दफ़ा मैट्रिक में फ़ेल हुआ; पिता का देहान्त होगया; विधवा मा और दो छोटे भाइयों का बोझ उसके माथे आ पड़ा। सर्राफ़ की दूकान पर ब्याज-बट्टे का धन्धा वह करता था। रोज़ शाम को घर भोजन करने आता, और फिर घर से निकलता तब रात कोई ग्यारह बजे वापस आने की फ़ुर्सत पाता। अपनी हैसियत के मुताबिक़ वह ठीक-ठीक कमा लेता था, पर बेचारे के ग्रह इतने कमज़ोर थे कि गृहस्थी जम ही न पाती थी। अगर यह अभाव न होता तो दस-पाँच बरस में उसकी गिनती उन लोगों में होने लगती जो ख़ुशहाल माने जाते हैं।

टीकम की मा नीचे काम कर रही थीं। फत्तू भी नीचे ओसारे में बैठा चावल बीन रहा था। दोनों भाई कहीं बाहर गये थे; और उनकी पत्नियाँ कुम्हार के घर मटके लेने गई थीं; इसलिए ऊपर, दुमंज़िले पर, टीकम को छोड़ और कोई नहीं था।

ब्याह की ख़ुशी का अवसर होते हुए भी आज उसका मन तनिक उदास-सा था। इससे पहले की चार-चार शादियों में आज के दिन उसे जो-जो अनुभव हुए थे, सो सब एक-एक करके उसे याद आ रहे थे और उसकी खिन्नता को बढ़ा रहे थे।

उसके जीवन में सुनहरे सपनों की अब कोई बड़ी गुंजाइश नहीं थी। फिर भी एकान्त के कारण कहिए या आज के असाधारण अवसर के कारण कहिए, झूले के हलके झोंकों के साथ, उसकी आँखों के सामने बीते ...ए जीवन के अनेकानेक चित्रों का एक समा-सा बँध रहा ... कारण आनेवाले सुख में पड़नेवाले विघ्न की ...उसका दिल काँप उठता था। यद्यपि उसके ...नेवाले ये चित्र नीचे लिखे चित्रों की तरह ... विस्तृत नहीं थे, फिर भी अपने भावी सुख के ...लीन उसका मन अपने भूतकाल पर उसी

की भनक ... सुनते ही स... कि कहीं बिज... बड़ा ... तैराक की त... तीन घण्टों

प्रकार नज़र दौड़ा रहा था, जिस प्रकार हवाई जहाज़ में बैठा आदमी अपने नीचे की दुनिया पर दौड़ाता है।

आज से बीस-बाईस बरस पहले आज ही जैसा एक अवसर उसके जीवन में पहले-पहल आया था; और उस समय तो वह सिर्फ़ दस बरस का बालक था—ऐसा बालक जो छगन पाँड़े की चटसाल में तीसरी किताब पढ़ता था! उन दिनों वह बहुत कमज़ोर रहा करता था। संगी-साथी थे, जो उसे हर तरह चिढ़ाया करते थे। उसे चिढ़ाने में हर किसी को मज़ा आता था, और जब-जब पाँड़े जी की नज़र उस पर पड़ती थी तब-तब वे भी अपने डण्डे से उसकी ख़ातिर किया करते थे।

लेकिन जिस दिन से उसके ब्याह की बात चली, सभी उसे प्रशंसा-भरी आँखों से देखने लगे। उसके हक़ में यह एक ही बात उसकी इज़्ज़त बढ़ाने को काफ़ी थी कि उस जैसा एक छोटा-सा बालक निकट भविष्य में पति बनने जा रहा है! उसके दर्जे के और दर्जे के बाहर के संगी-साथी ... ... नन्हीं-सी दुलहिन का नाम सुनने को अधीर हो उठते थे, लेकिन उस छोटी उमर में भी वह इतना पहुँचा हुआ था कि भूलकर भी अपने मुँह से अपनी प्रियतमा का नाम न लेता था। जब टीकम को उस समय की यह बात याद आई तब वह मन-ही-मन कुछ मुसकुरा उठा।

उसके बाद! एक रात का ज़िक्र है—आधे सोते और आधे जागते वह अपने से दो बरस बड़ी, बारह बरस की, एक दुलहिन को, अपने साथ ले आया। लड़की का कन्या-काल बीता जा रहा था; मा-बाप बबराये हुए थे। मौक़ा पाते ही उन्होंने बिजली को टीकम के साथ बाँध दिया और आप हलके हो गये। जिस लड़के से बिजली की पहली सगाई हुई थी वह बेचारा एकाएक चेचक में चल बसा था। अगर यह दुर्घटना न होती तो टीकम को इतनी बड़ी बहू ब्याहने का यह सौभाग्य, इतनी जल्दी, शायद ही प्राप्त होता! लेकिन दुनिया का तो यही तरीक़ा है—बिल्ली के भाग्य से छींका टूटा ही करता है; एक के रोने में दूसरे का हँसना छिपा रहता है!

बिजली सचमुच ही बिजली थी। वह चुपके-चुपके इशारों से टीकम को बुलाती। जब अकेली होती तब हाथ खींचकर उसे अपने पास बैठा लेती और अपने मैके से

धेले-पैसे की जो चीज़ें वह खाने को लाती उन्हें, सबों की नज़र चुराकर, बड़े प्यार से टीकम को खिलाती। और नासमझ टीकम था कि जब तक खाने-पीने का डौल होता, चुपचाप बैठा रहता, मगर जब कुछ और गड़बड़ होता तो—ओं मा! देखो, यह मुझे छेड़ती है—कह कर चिल्लाता हुआ भाग जाता। उसकी पुकार सुनकर तुरन्त ही मा आती और बहू को बुरा-भला कहने लगती। कहती—बहू! तू कितनी नादान है, और कैसी मगरमस्त! मेरे बेटे को क्यों सताती है? फिर तो साँझ पड़ते पड़ते यह क़िस्सा मुहल्ले के एक-एक घर में चर्चा का विषय बन जाता।

साल-दो साल और बीत गये! बहू जवान हो गई। छोटे टीकम की जवान बहू यार लोगों के हँसी-मज़ाक का निशाना बन गई। शुरू-शुरू में तो बेचारी इस आफ़त से बहुत घबराई; मगर ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये और यह रोज़-मर्रा की एक चीज़ बन गई, बिजली को भी बेहया बनते देर न लगी। उसका पति था, जो बात-बात पर अपनी मा के पास तकरार लेकर जाता और मा एक ही ज़ालिम थी, जिसके त्रास से बेचारी बिजली काँपा करती। इसलिए भी उसे लोगों की शरारत में एक तरह का मीठा मज़ा आने लगा था। वह थी तो सिर्फ़ चौदह बरस की, लेकिन समझदार इतनी थी, मानो चौबीस बरस की हो।

सास को बहू के रंग-ढंग अच्छे न लगे। बहू की उठती जवानी को रिझाने के लिए अब टीकम तेरह बरस का हो चुका था।

अब सास भी बहू की हर एक हरकत पर कड़ी निगाह रखने लगी। छोटे-छोटे देवर थे, जो उसकी हर बात में नमक-मिर्च लगाते और मा से कहते थे। पड़ोसियों को उसके चाल-चलन की कुत्सा करने में मज़ा आता था। महल्ले के और मदरसे के लड़के थे, जो टीकम के देखते उसकी बिजली का उपहास करते, टीकम की मर्दानगी और उसके पतित्व की हँसी उड़ाते, और टीकम को इस बात के लिए हरदम उभाड़ते रहते कि वह बिजली पर अपना [illegible]पना जताये और उसकी हरकतों के लिए उसे [illegible] कर सीधा करे। बेचारी नादान और सुकुमार बिजली [illegible]यों चौतरफ़ा चढ़ाई होने लगी, और उसकी रक्षा का भार [illegible] अपनी-अपनी हैसियत के मुताबिक़ अपने सिर ले [illegible]। मारी जाति में बिजली कुलच्छनी और कुलक[illegible] के नाम से मशहूर हो गई। हर कोई उसके बालक-पति और दुखिया सास पर तरस खाने लगा। सबकी सहानुभूति टीकम और उसकी मा के साथ थी। बेचारी बिजली पर अचानक बादल घिर आये। उसे द[illegible] और कुचलने की जितनी कोशिशें होतीं उन सबमें समाज का नैतिक बल टीकम के और उसकी मा के साथ रहता।

शुरू-शुरू में बिजली इन सब बातों से घबराई; लेकिन बाद में वह बहुत ढीठ हो गई; और ईंट का जवाब पत्थर से देने लगी। टीकम इस समय पन्द्रह-सोलह बरस का था, और उसके लिए सिर्फ़ एक यही रास्ता रह गया था कि अपने बाप-दादों की तरह वह भी बिजली को डण्डों से पीटा करे और उसकी मस्ती उतारा करे। जब ज़रूरत मालूम होती, वह आव देखता न ताव, थाली, कटोरी, पत्थर, पटिया, जो हाथ लग जाता वही हथियार बनकर टीकम के हाथों बिजली के सिर पर बरसने लगता!

एक दिन की बात है। बिजली मैके गई थी। साँझ हो गई। लौटने का वक्त बीत गया और बिजली न लौटी। टीकम घर में चक्कर काटने लगा। उसकी मा बड़बड़ाने लगी। जैसे-जैसे समय बीतता गया, उनकी चिन्ता और उनके मिजाज़ का पारा बढ़ता चला गया। दोनों चिन्ता में ही डूबे रह गये और किसी को यह ख़याल न आया कि जाकर उसे लिवा लायें—ढूँढ़ लायें। इसी बीच, सौभाग्य से कहिए या दुर्भाग्य से, रात के कोई आठ बजे बिजली दिल में धड़कन लिये, मगर ऊपर से बेहयाई का जामा पहने आई और घर में चली गई। उसे देखते ही टीकम अपनी सारी ताक़त लगाकर दहाड़ उठा और बोला—"हराम...ज़ादी, किस......के घर अब तक बैठी हुई थी? मुँह से बोल, नहीं अभी कमर तोड़ दूँगा!"

उन दोनों का विकराल रूप बिजली ने देखा तब वह सहम गई, उसकी घिग्घी बँध गई। बोली—कहीं भी तो नहीं गई थी। अम्मा को एकाएक दौरा आगया, और घर में कोई दूसरा था नहीं, इसलिए मुझे रुक जाना पड़ा।

"हूँ, अम्मा को दौरा आया था? अम्मा को दौरा! खड़ी रह। अभी, इसी दम, तेरा यह सारा दौरा निकाले देता हूँ!" डण्डा तैयार ही था। तड़ातड़ बिजली की पीठ पर पड़ने लगा, और सास ने इस तरह गालियाँ देनी शुरू कीं, मानो बेटे को बढ़ावा दे रही हो!

"अरे बाप रे! मर गई रे! हाय रे—सच कहती हूँ रे; मैं कहीं नहीं गई। सचमुच ही मा को दौरा आ गया था।" लेकिन वह जितनी ही अपनी सफ़ाई देती थी, टीकम को उतना ही जोश चढ़ता था और वह दूनी ताक़त से उस पर डण्डा बरसाता था। इसमें उसे एक तरह का मज़ा आता था—पति के कर्त्तव्य को पूरा करने का मज़ा।

अड़ोस में, पड़ोस में, चौतरे पर और चौक में पड़ोसी थे, जो दरवाज़ों और खिड़कियों में खड़े खड़े तमाशा देख रहे थे। जब मर्द औरत पर पिला हो तब पड़ोसी बेचारे क्या कर सकते हैं? फिर भी तमाशाइयों में एक-दो आदमी ऐसे थे जिनकी पूरी हमदर्दी टीकम के साथ थी, मगर बिजली पर पड़नेवाली मार का त्रास उनके लिए असह्य था। वे आगे बढ़े और बड़ी मुश्किल से टीकम का हाथ रोककर बोले—अरे भाई! क्या मार ही डालेगा? आख़िर अभी लड़की ही तो है। अगर भूल हो गई है तो दुबारा ऐसा नहीं करेगी। इतनी सज़ा कुछ कम नहीं है। बिजली वहीं बेहोश पड़ी थी। लोगों ने उसे उठाया, और घर के एक कोने में ले जाकर पटक दिया।

टीकम आख़िरी बार गरजा—क्या कहा? फिर जायगी? ताब है उसकी, जो घर से पैर निकाले! बदज़ात कहीं की—एक ही डण्डे में ढेर कर दूँगा, ढेर!

धीरे-धीरे मा का भी गुस्सा ठण्डा हुआ; बेटे ने भी शान्ति धारण की। पड़ोसी अपने घरों को चले गये। लड़-झगड़ कर दोनों ख़ूब थक गये थे, और दोनों को कड़ाके की भूख लगी थी। इतने बड़े काण्ड के बाद बिजली से कुछ खाने को कहना गुनाह बेलज़्ज़त होता; इसलिए न मा ने पूछा, न बेटे ने पूछा। दोनों खा-पीकर अपनी-अपनी जगह चले गये और सो रहे।

आधी रात को अचानक महल्ले के कुएँ में ज़ोरों का एक धड़ाका हुआ और जिज्ञासा और कुतूहल की मारी महल्ले की सारी जनता जाग उठी। रात के उस काण्ड की भनक अभी तक सबके कानों में आ रही थी। धड़ाका सुनते ही सबसे पहली बात जो लोगों ने सोची यही थी कि कहीं बिजली ही तो कुएँ में नहीं गिरी।

बड़ा शोर हुआ; एक हंगामा-सा मच गया। कोई तैराक की तलाश में गया, कोई रस्सियाँ ले आया और दो-तीन घण्टों की मेहनत के बाद लाश ऊपर निकाली गई। लाश बिजली की ही थी, इसमें किसी को शक न रह गया। सबके दिल एकबारगी काँप उठे, पर यह सोच कर सबने ख़ुशी मनाई कि एक बला उनके बीच से चली गई! जब सबेरा हुआ और लोगों ने पता लगाया तब मालूम हुआ कि वाक़ई रात को बिजली की मा बीमार थी और इसी से बिजली को देर हो गई थी। मगर होनहार थी, जो होकर रही! उसे कौन था, जो न होने देता!

बिजली को मरे अभी पाँच-दस दिन ही बीते थे कि टीकम की मा अधीर हो उठी बेटे को फिर से ब्याह देने के लिए। कुलीनों में उनकी गिनती होती थी, इसलिए मँगनी का कोई टोटा न था। एक धनवान् माता-पिता की सयानी और सुलच्छनी लड़की के साथ देखते-देखते टीकम की सगाई तय हो गई। लड़की के मा-बाप ज़रा सुधारक विचारों के थे; उनकी एक शर्त यह रही कि जब तक कान्ता तेरह बरस की न होगी, वे ब्याह न करेंगे।

लेकिन टीमक अब बालक नहीं था—नौजवान होगया था। बिजली के कारण जो संताप उसे रात-दिन घेरे रहता था उसकी चिन्ता से भी अब वह मुक्त था। ये उसके छटपटाने के दिन थे—दुनिया का आनन्द लूटने के लिए अब वह अधीर हो रहा था। और कान्ता अभी बालिका थी।

हमजोलियों ने उसे राह दिखाई, और अपने इस संकट से पार उतरने के लिए वह रास्ता छोड़कर बे रास्ते चलने लगा। 'देखा-देखी करे जोग, घटे काया बढ़े रोग!'—वाली मसल हुई। टीकम दिन-दिन दुबला होने लगा, और देह में रोगों ने घर कर लिया।

जब ब्याह के दिन नज़दीक आये तब कान्ता के माता-पिता का ध्यान इस ओर गया। बस, एक साल के लिए ब्याह और टल गया; और इस एक साल में टीमक की देह ऐसी छीज गई कि ठठरी हो [illegible] उसका बचाव करने लग[illegible] दुःख दिया है। मुझसे नतीजा है कि लड़का इ[illegible]पाई। परमात्मा से मैं यही चाहूँगी हो जाय, कल से वह प[illegible] होग[illegible] आनन्द-ध्वनि की लहर[illegible] और नई बहू की छवि का

लड़की से आ[illegible] उसका [illegible] मन तत्क्षण तल्लीन हो गया। जाति के पंजे [illegible] स्वप्न [illegible] आ गया था। पहला गीत लड़की के [illegible] उन[illegible] गीत शुरू किया था। रहना भी [illegible]

को, इसी लिए पुरखले के कर्मों के बस होकर, कान्ता का ब्याह टीकम के साथ कर देना पड़ा। और कान्ता—बारह बरस की कान्ता, टीकम की बहू बनकर उसके घर आई! जिस दिन के लिए टीकम आज चार-चार बरस हुए आतुर हो रहा था वह सुनहरा दिन आज आ गया। उस दिन ब्याह के समय वह जितना ख़ुश और उमंगों से भरा था, उतनी ख़ुशी. वैसी उमंगें, और वह आतुरता, इस जीवन में फिर उसने न पाई।

बहू को घर आई देखकर सास की ख़ुशी का ठिकाना न रहा। टीकम तो ख़ुश था ही। दोनों बहू को सिंगारने और रिझाने में ऐसे मग्न हुए कि अपने आपको भूल गये। रात जब टीकम ऊपर जाता तब बाज़ार से बहू के लिए नई-नई मिठाइयों के दोने के दोने लाता, उसे प्रेम से खिलाता और वह जो चाहती, उसके लिए हाज़िर कर देता।

दो-चार महीनों के बाद बहू दुसाध बनी। टीकम और उसकी मा के हर्ष का पार न रहा। उन्होंने सोचा, इस सुलच्छनी बहू के प्रताप से अब सचमुच ही हमारे दिन फिर जायँगे। इसी अभिलाषा को हिये में छिपाये वे बहू को बड़े जतन से रखने लगे; मगर बहू दिन-दिन कमज़ोर होती चली गई। उसके लिए क्या-क्या न किया गया? न-जाने कितने तावीज़ बाँधे गये, न-जाने कितनी मिन्नतें मानी गईं, और न-जाने कितनी झाड़-फूँक करवाई गई। मा के लिए इससे बढ़कर और क्या बात थी कि बेटे के घर बेटा आवे और पितरों को स्वर्ग में शान्ति मिले।

लेकिन कान्ता ऐसी बहू थी जो न खिली, न फूली, न फली, और असमय में ही मुरझा कर चली गई एक अन्धी लड़की को जन्म देकर और असह्य वेदना के चीत्कारों से घर को कँपाकर। उसके माता-पिता हाहाकार कर उठे— उत्त[illegible] पातत्व [illegible] हैलगे। और टीकम और उसकी मा मुँह लिए हरदम उभाड़ते रहते कि [illegible], उसी अन्धी बालिका की पना जताये और उसकी हरकतों से, कान्ता बहू की याद में सीधा करे। बेचारी नादान और [illegible] चौतरफ़ा चढ़ाई होने लगी, और उसकी और इक्कीस वर्ष का अपनी-अपनी हैसियत के मुताबिक़ अपने [illegible] पाल सकता है? मारी जाति में बिजली कुलच्छनी और कुल माथे चढ़ी हो [illegible] यास ले भी ले तो घर कौन सँभाले, अन्धी बालिका की परवरिश कौन करे, घर के काम-काज में बुढ़िया मा का हाथ कौन बँटाये, और दोनों बार, सुबह-शाम, उसे गरम-गरम खाना पकाकर कौन खिलाये? इसमें शक नहीं कि कान्ता के उठ जाने से टीकम को गहरा धक्का बैठा था, और जीवन का सारा मज़ा ही किरकिरा हो गया था, मगर उसका इलाज न था। इसी लिए आख़िर पास के एक गाँव में रहनेवाले एक हेड मास्टर की चौदह बरस की लड़की से, ऐसी लड़की से जो आते ही घर का सारा काम सँभाल ले, [illegible]न्द्रह दिन बाद, बिना किसी धूमधाम के, टीकम का ब्याह हो गया! यह उसका तीसरा अनुभव था।

उसकी ज़िन्दगी का अच्छे से अच्छा समय अगर कभी बीता तो वह इस नई हीरा बहू के राज्य में बीता। हीरा बहू एक हेड मास्टर की लड़की थी। गुजराती की पाँच किताब तक पढ़ी थी। थोड़ा कसीदा काढ़ना और गूँथना-भरना भी जानती थी। घर के काम-काज और रोटी-पानी वह सब अकेले कर लेती थी। देह उसकी सुडौल और स्वस्थ थी; चिड़िया की तरह चहकती-फुदकती वह बात की बात में घर का सारा काम सँभाल लेती थी। 'सती-मण्डल' नामक पुस्तक के दोनों भाग वह पढ़ चुकी थी, और उसकी एक यह अभिलाषा थी कि वह भी एक सती बने। माता-पिता ने ब्याह से पहले उसे समझाया था— बेटी! सास का आदर करना, उन्हें ख़ुश रखना; पति की सेवा करना और प्रसन्न रहना; देवरों की मर्ज़ी रखना और अच्छे रास्ते चलना! हीरा यही साध लेकर ससुराल आई थी कि अपने व्यवहार से वह दोनों कुलों की कीर्ति को उज्ज्वल बनायेगी।

हीरा के राज्य में टीकम का जीवन सचमुच ही बहुत सुखी रहा। हीरा की संगति से उसकी कई आदतें कुछ-कुछ सुधर चलीं। उसकी दुबली देह की सार-सँभाल हीरा के हाथों बड़े मज़े से होने लगी। पिता की मृत्यु के बाद पढ़ना-लिखना छोड़कर वह व्यवसाय में पड़ गया था। बचपन की अपनी सभी आदतें भुलाकर इस समय वह घर में बड़े-बूढ़े की तरह गम्भीर बनकर रहने लगा था। अब वह लोगों के हर्ष-शोक में, जात-बिरादरी में बराबर शामिल होने लगा। जाति की उन्नति के लिए उसने एक-दो भाषण भी किये। उसका एक ही मनोरथ था जो अब तक पूरा नहीं हुआ था, और वह था पुत्र का जन्म।

और, यह शुभ समय भी कुछ देर के लिए निकट आता-सा दिखाई पड़ा; आशालता एकबारगी लहलहा उठी। मगर दुर्भाग्य था कि बेटे की जगह बेटी आ गई! घरवालों ने यह सोचकर मन को दिलासा दी कि 'आज लड़की आई है तो कल लड़का भी आयगा।'

और हीरा बहू की क्या तारीफ़ की जाय? वह एक ही गुणवती थी। जब उस बार टीकम बहुत बीमार पड़ा तब हीरा ही थी, जो दिन-रात एक पैर पर खड़ी चाकरी करती रही। उसकी वह सेवा, वह टहल और वह साधना, जिसने देखी है वही उसकी क़दर कर सकता है। उसकी याद आते ही आज के इस मंगल-अवसर पर भी टीकम की आँखें भीगे बिना न रहीं।

कोई एक बरस बाद हीरा सौभाग्य से फिर दुसाध हुई। टीकम की बीमारी में वह काफ़ी दुबली हो गई थी, इसलिए ये नौ महीने ज़रा संकट में ही बीते। लेकिन जब नवें महीने टीकम के घर पचीस बरस में पहली बार पुत्र ने अवतार लिया तब क्या सास, क्या बहू और क्या पति, तीनों के आनन्द का पार न रहा, तीनों गद्गद हो उठे। टीकम के लिए जीवन के सुख की यह चरम सीमा थी। पितरों को स्वर्ग पहुँचाने का जो महान् उत्तरदायित्व उसके माथे था उसे आज सफल होते देख वह कृतार्थ होगया था।

लेकिन विधना से बढ़कर ईर्ष्यालु शायद ही दूसरा कोई हो! उसे किसी का सुख नहीं सुहाता। अतृप्त लालसाओं को लेकर जो बिजली चली गई थी, इस समय वही प्रेत बनकर हीरा बहू के सुख में राहु बनकर आई। जब अपने एक महीने के लाल को लेकर हीरा पहली बार पति के घर गई तब कहीं से आकर उस प्रेतिनी ने हीरा को छला। हीरा काँप उठी। मारे डर के उसी रात उसे धड़धड़ा कर ज़ोरों का बुख़ार हो आया, और कुछ ही दिनों के बाद उसे क्षय हो गया!

खटिया पर पड़े-पड़े भी हीरा, बीमारी की हालत में, अपने पति और पुत्र का काम करती रहती थी। बीमारी का क्या, कल मिट सकती है; घर का काम कौन करे? बूढ़ी सास थी; वह अगर देव-दर्शन को न जाती तो उसका बुढ़ापा बिगड़ता! और हीरा पतिव्रता ठहरी। वह भला क्यों यह अन्याय अपनी आँखों देखती?

लेकिन आख़िर वह लाचार हो गई। अब तक मनोबल से जिस देह को वह घिस रही थी, मनोबल के रहते भी अब उसने उठने से इनकार कर दिया। हीरा ने बिछौना पकड़ लिया।

टीकम ने और उसकी मा ने पहले तो बड़े चाव से हीरा की चाकरी शुरू की। लेकिन जैसे-जैसे बीमारी बढ़ती गई और दिन बीतते गये, हीरा के अच्छे होने की उम्मीद कम होती गई। टीकम की हालत बड़ी दयनीय हो गई थी। मर्द आदमी था। काम-धन्धा छोड़कर बीमार औरत के पीछे कब तक बैठा रहता? और मा बेचारी क्या करे? बुढ़ापे में भगवान् का नाम लेकर आत्मा का उद्धार करे या सारी ज़िन्दगी बेटे की और उसके संसार की गुलामी में गिरफ़्तार रहे? अगर रहना भी चाहे तो बुढ़ापे की देह भला कब तक साथ दे?

हीरा को बीमार रहते दो-दो साल बीत गये। दिनों दिन उसकी देह छीजती गई। वैद्यों ने और डाक्टरों ने तो बहुत पहले से उसकी आशा छोड़ रक्खी थी, मगर जीवन की डोरी ज़रा लम्बी थी, और उसकी आश पर साँस टिकी थी। वही मसल थी कि चङ्गा खाये धान, और बीमार खाये धन। हीरा की बीमारी में काफ़ी पैसा ख़र्च हो रहा था। टीकम के लिए यह एक सवाल था कि वह कब तक मौत के किनारे बैठी हुई इस औरत के पीछे अपनी गाढ़ी कमाई ख़रचता रहे। आख़िर धीरज छूट गया, और लोग मनाने लगे कि भगवान्! जल्दी से इस पीड़ा से छुड़ाओ, और हमें भी हलका करो। लेकिन राम रक्खे तो कौन चक्खे? काँच की प्याली तो थी नहीं कि पटकी और चूर-चूर हुई!

आख़िर महीनों और बरसों की प्रतीक्षा के बाद बिदाई का वह दिन भी आ ही पहुँचा। हीरा सँभल गई। टीकम को अपने पास बुलाया और विनय-भरे स्वर में बोली—नाथ! मैं जानती हूँ, मैंने आपको बहुत दुःख दिया है। मुझसे आपकी कोई सेवा बन नहीं पाई। परमात्मा से मैं यही चाहूँगी कि जब जन्मूँ [illegible] बाद, इस आनन्द-ध्वनि की लहरों [illegible] देर चुप र[illegible]हीं विलीन होगईं और नई बहू की छवि का जो आप[illegible] करने में उसका [illegible] ने तत्क्षण तल्लीन हो गया। [illegible] का दल [illegible] आ गया था। पहला गीत कहते [illegible] होते ही उन्[illegible] गीत शुरू किया था।

सुख से मरूँगी। टीकम का कण्ठ रुँध गया, वह एक शब्द भी न बोल सका। चुपके से उसके हाथ में अपना हाथ देकर वह यों खड़ा रहा, मानो कहता हो—हारा! इस घड़ी, तुम जो कहोगी, मैं करूँगा। हीरा ने अपने दुर्बल हाथों में उसका हाथ लेकर छाती से लगाया, आँखों को छुलाया और आग्रह-भरे स्वर में बोली—प्यारे! आपका यह वचन है न कि मेरे बाद आप फिर व्याह करेंगे? बस, यही मेरी एक अभिलाषा थी। अब मैं हलकी हूँ, फूल की तरह हलकी—सुख से, शान्ति से मरूँगी! टीकम बड़ी कठिनाई से आँखों के बहते आँसुओं को रोकता हुआ वहाँ से उठ खड़ा हुआ।

दो घण्टे के बाद जीवन के सब कर्तव्यों से अवकाश पाकर हीरा की आत्मा अनन्त में विलीन हो गई। टीकम जीवन में पहली बार फूट-फूटकर रोया। बुढ़िया मा की आँखों से चौधार आँसू बहने लगे।

हीरा की बीमारी की चिन्ता और रतजगे के कारण टीकम का स्वास्थ्य बहुत ख़राब हो गया था। उसे दमे ने घेर लिया और खाँसी के मारे प्राण नहीं में आ गये। इधर हीरा के बिना घर में पग-पग पर परेशानी उठानी पड़ती थी। होते-होते हीरा को मरे एक महीना बीत गया। एक दिन मा ने हिम्मत बटोर कर कहा—बेटा! क्या इरादा है तेरा?

"मेरा इरादा? मैं तो लुट गया, मा! अब रक्खा ही क्या है इस जीवन में?" शोक में डूबे हुए टीकम ने कहा।

"सच कहते हो, भाई! हीरा तो हीरा ही थी। उस जैसी न कोई हुई, न होगी। लेकिन दुनिया भी तो देखनी पड़ती है बेटा। यों हठ धरकर बैठने से कैसे काम चलेगा? मेरा बुढ़ापा है, बच्चे छोटे-छोटे हैं। कल अगर मैं उठ कर चल दी तो कौन है, जो तुझे और तेरे बच्चों को सँभालेगा?" मा ने गिड़गिड़ाकर कहा—"बेटा, ज़रा अपनी ओर भी तो देख।"

[illegible] मेरी तक़दीर साधा करे। बेचारी नादान और [illegible] चौतरफ़ा चढ़ाई होने लगी, और उसकी और इकी भी मेरी अपनी-अपनी हैसियत के मुताबिक़ अपने [illegible] पाल सकूँगा।" मारी जाति में बिजली कुलच्छनी और कुल माथे चढ़ोरता याम दुनिया

चली है? और इस बुढ़ापे में बच्चों का यह झमेला मेरे सिर लादकर क्या तू मेरी बुढ़ौती बिगाड़ना चाहता है? मैं साफ़ कहे देती हूँ, मुझसे तेरे घर का काम नहीं देखा जायगा।

टीकम मुँह लटकाये, खिन्न भाव से, मा की बात सुनता रहा। जीवन की कोरमकोर यथार्थता के आगे करुणा में डूबी भावनाओं की क्या ताब थी कि वे टिकें? आख़िर अनिच्छापूर्वक ही क्यों न हो, उसने अपनी सम्मति दे दी। जाति में उस समय कोई बड़ी उमर की लड़की मिल नहीं रही थी। आख़िर दस बरस की एक बालिका के साथ टीकम की सगाई हो गई। मा ने कहा—आज छोटी है तो कल बड़ी भी हो जायगी। जवान आदमी क्या 'रँड़ापे' में दिन काटेगा।

सहालग में फिर व्याह निकले। लोगों ने जाना कि टीकम चौथी बार व्याहने जा रहा है। कहने लगे—अब की ज़रूर उसका घर जमेगा। कुछ थे, जो टीकम की [illegible] दशा को कोसते थे; कुछ और थे, जो मङ्गल का दोष निकालते थे। उनके ख़याल से टीकम का यह [illegible] अन्तिम व्याह था।

लड़की वैसे दस बरस की थी, मगर साल सिंहस्थ [illegible] था, इसलिए व्याह न हो सका। और वह सारा साल टीकम ने एक न एक बीमारी में बिताया।

जैसे-तैसे वह साल बीता और साल के अन्त में टीकम का व्याह हुआ। लेकिन अब की बहू इतनी अबूझ [illegible] कि वह टीकम को देखते ही डर गई। फिर तो ससुराल जाने से ही इनकार करने लगी। ज्यों ही ससुराल जाने का समय होता वह चीख़ने-चिल्लाने लगती, किसी कोठरी में अपने को छिपा लेती और खिड़की की सलाख़ों को इस मज़बूती से पकड़ लेती कि टस से मस न होती। लेकिन एक हिन्दू के घर में, एक व्याहता बेटी, जो पराई [illegible] चुकी है, अपने मा-बाप के घर कैसे रह सकती है? मैके [illegible] साँझ पड़ते ही हाथ-पैर बाँधकर उसकी गठरी बना [illegible] और उठाकर ससुराल रख आते। रात में जब वह [illegible] बालिका रोती-चिल्लाती तब पड़ोस के लोग या तो [illegible] बेवक़ूफ़ी पर हँसते या टीकम पर तरस लाकर कहते—बेचारे टीकम की तक़दीर में सुख ही नहीं है!

टीकम की यह कोई पहली शादी नहीं थी। [illegible]

जैसा अनुभव इस बार उसे हो रहा था, पहले कभी नहीं हुआ था। घर-घर और गली-गली टीकम की गृहस्थी का 'गुणगान' होता था—बात एक कान से दूसरे कान पहुँचती थी। कुछ लोगों को हिन्दू-समाज के भविष्य की चिन्ता होने लगती थी। कहते थे—कैसा अन्धेर है? इतनी बड़ी, ग्यारह बरस की, छोकरी ऐसी नासमझ कि ससुराल जाने से घबराये! हाय भगवान्, न-जाने क्या होने बैठा है! कुछ कहते—छोकरी को क्षेत्रपाल व्याह गया है। कुछ टीकम की कमज़ोरी पर हँसते।

मा को भी बहू के व्यवहार से कुछ कम गुस्सा न आता था। बुढ़ौती में आराम पहुँचाना तो दूर रहा, इस कुलच्छनी बहू के कारण सन्ताप [illegible] पर बुढ़िया सुलच्छनी हीरा की याद में घण्टों आँसू ढरकाया करती थी।

रोज़-रोज़ की इस दाँता-किचकिच से कमू को 'फिट' आने लगे। और रही-सही बेचारी दुसाध [illegible] गई। आख़िर हार कर टीकम ने मा की सलाह से कमू को उसके मैके भेज दिया।

सात महीने में कमू के एक मरा हुआ लड़का हुआ! और वह भी इस दुनिया से ऊबकर वहाँ चली गई, जहाँ न सास का आतंक था, न पति का त्रास! मरते-मरते भी उसका भयत्रस्त चेहरा और फटी हुई आँखें ऐसी थीं कि न डरनेवालों को भी डराती थीं!

यों हिंडोले पर अकेले बैठे-बैठे टीकम के मन में अपने बीते हुए जीवन की ये घटनायें एक के बाद एक ताज़ा हो रही थीं। और इनकी याद में कभी उसका चेहरा हर्ष से खिल उठता, कभी शोक से मुरझा जाता, कभी दुःख और निराशा से खिन्न हो उठता। आख़िर-आख़िर में जब कमला के अल्प जीवन की तसवीरें उसकी आँखों के सामने से गुज़रने लगीं तब किसी दुःस्वप्न की तरह उसका हृदय छटपटा उठा। और फिर सबके अन्त में उसे ऐसा मालूम हुआ, मानो बिजली, कान्ता, हीरा और कमला, सभी अधर में झूल रही हैं और मानो चारों मिलकर उससे कह रही हैं—आप फ़िक्र क्यों करते हैं? शास्त्रों में लिखा है कि मौत के बाद जब पुनर्जन्म होता है तब पति-पत्नी फिर मिलते हैं; इसलिए विश्वास रखिए कि हम और आप फिर मिलेंगे। आत्मा अमर है; देह की [illegible] क्षणभंगुर नहीं। और अपने पिछले जन्म में हमने मन, वचन, कर्म से आपको छोड़ और किसी का ख़याल तक नहीं किया है, इसलिए निश्चय ही अगले जन्म में भी आप ही हमें मिलेंगे। टीकम जी! हम आपकी बाट जोह रही हैं। कहिए, आप जल्दी से जल्दी कब तक आइएगा। इस अनोखे सत्य को सुनाकर आनन्द में विभोर वे सुन्दरियाँ अट्टहास के साथ अदृश्य हो गईं।

टीकम के पैर झूला झूलते हुए रुक गये। उसने आँखें बन्द कीं और खोलीं। क्या बात थी? भूत-लीला तो नहीं थी? क्या वह सचमुच ही सो गया था या जागते हुए कोई सपना देख रहा था? क्या वाक़ई ये सब औरतें अगले जन्म में उसे फिर मिलेंगी? नहीं, अकेली हीरा मिले तो बस हो। वह तो बेचारी सदा सेवा करती रही। हुक्म की तावेदार थी। उसकी भली-बुरी सब इच्छाओं को पूरा करती थी। उसने तो उसे इस लोक में अपना प्रभु ही माना था और परमेश्वर की ही तरह उसकी पूजा की [illegible] लेकिन ये [illegible] गोदावरी- थी। और दूसरी सब? इनका क्या होगा? जब इनमें से एक एक ने इतनी तकलीफ़ दी है तब ये सब मिलकर क्या नहीं करेंगी? इस शंका के मारे उसका मन डाँवाडोल हो उठा।

इतने में दूर पर कुम्हार के घर से लौटती हुई स्त्रियों के गाने की आवाज़ सुनाई पड़ी। आगे-आगे ढोल और ताशे, तुरही और सहनाई की जो आवाज़ आ रही थी वह मानो उसके सारे सपनों और सारी कुशंकाओं को लील रही थी। वह उठकर खड़ा हो गया और खिड़की के पास जाकर ध्यान से सुनने लगा। गीत की पदावली साफ़ सुनाई पड़ती थी।—

एक आवे, दूजी आवे, तीजी तड़ा मार
मारो वींजणो रे;
चौथी कागळ मोकले, सवारे वेहेलो आव,
मारो वींजणो रे!

'चौथी क्यों, अब तो पाँचवीं आ रही है'—टीकम मन-ही-मन मुसकुराया और बोल उठा। अपनी सब पुरानी स्त्रियों की याद, इस आनन्द-ध्वनि की लहरों में, जहाँ की तहाँ विलीन होगई और नई बहू की छवि का साक्षात्कार करने में उसका [illegible] तल्लीन हो गया।

स्त्रियों का दल [illegible] आ गया था। पहला गीत समाप्त होते ही उन्हों[illegible] गीत शुरू किया था।

टीकम के आशातुर अन्तर में इस गीत ने एक अनोखा तूफ़ान खड़ा कर दिया। उसने ज्यों ही अपनी कल्पना की आँखों से देखा कि नई दुलहिन अधीर होकर उसकी बाट जोह रही है, त्यों ही उसका मन हर्ष से पुलकित हो उठा और चेहरे पर एक अनिवार्य मुसकुराहट छा गई।

गानेवालियाँ घर के अन्दर आ गईं और उन्होंने मटकों को इस तरह सहेज कर रख दिया कि खंडित न हों। फिर तो आँगन में छुहारे और बताशे बाँटने की धूम मच गई। टीकम छज्जेवाली अपनी खिड़की से नीचे उन स्त्रियों को अतृप्त लालसा से एकटक निहारने और यह सोचने में लग गया कि आनेवाली अपनी नई दुलहिन के लिए वह उनमें से किनके जैसे ज़ेवर और किनकी-सी साड़ी ख़रीदेगा, और कैसे उसे रि[illegible]गा। और वे औरतें गा रही थीं, चिल्ला रही थीं और बताशों के लिए उतावली हो रही थीं!

अब इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं कि उस रात टीकम पाँचवीं बार घोड़े पर चढ़ा, मण्डप में गया और पाँचवीं दुलहिन के साथ घर आया। आइए, औरों की तरह हम भी उसे आशीर्वाद दें कि उसका सुहाग अखण्ड रहे और प्रभु उस बेचारे को फिर-फिर ब्याहने की पीड़ा से मुक्त करें। हालाँ कि 'सुहाग' शब्द तो स्त्रियों के लिए ही बरता जाता है, लेकिन इस ज़माने में, रिआयतन, हम पुरुषों के लिए भी उसका उपयोग कर सकते हैं!*

* भारतीय साहित्य-परिषद् के सौजन्य से।

कस्तूरी

लेखक, श्रीयुत आरसीप्रसादसिंह

(१)

अरे, कहाँ से आज सुरभि यह
इतनी उमड़ाई?
तृण-तृण में कण कण में कैसी
मादकता छाई!
मैं पागल बन भटक रहा वन-वन में;
जल में, थल में, उपवन-पवन-गगन में!
मेरे सौरभ-मत्त हृदय में, मन में
अलस-वेदना आई!
अरे, कहाँ से आज सुरभि यह
इतनी उमड़ाई?

(२)

मुझे न कोई इस रहस्य का
उद्गम बतलात[illegible]!
हाय, कहाँ से इत[illegible] सौरभ
उमड़-उमड़ आता [illegible]
[illegible] और [illegible]
कुसुमित-गिरि-कानन में द्रुम-दल हिलता;
सरि-पल्वल में अमल-कमल-दल खिलता!
किन्तु, कहाँ त्रिभुवन में फिर भी मिलता
वह मेरा मदमाता!
हाय न कोई इस रहस्य का
उद्गम बतलाता!!

(३)

अरे, न जाना जिस पर मैं था
इतना बौराया;
वह तो मेरे ही यौवन की
थी मोहन-माया!
सुरभित जिससे फूल-पत्तियाँ सारी;
हिम-मण्डित गिरि-शृङ्ग-शृङ्खला प्यारी!
होता जिस पर निखिल विश्व बलिहारी;
स्वयं न मैंने पाया!
वह तो थी मेरी ही यौवन-
माया की छाया!!

ग्रामों की समस्या

लेखक, श्रीयुत शंकरसहाय सक्सेना, एम० ए०

यह प्रसन्नता की बात है कि सरकार और कांग्रेस दोनों का ध्यान ग्रामोद्धार की ओर गया है। परन्तु इन दोनों की कार्य्य-पद्धति ऐसी है कि उससे ग्रामों की समस्या सुलझ नहीं सकती। इस लेख के विद्वान् लेखक ने ग्रामोद्धार-सम्बन्धी समस्त संस्थाओं की त्रुटियों का वर्णन करते हुए यह बताने का प्रयत्न किया है कि गाँवों की समस्या क्या है और कैसे सुलझ सकती है।

आज-कल भारतवर्ष में ग्रामोद्धार की जितनी चर्चा सुनाई दे रही है, सम्भवतः ब्रिटिश शासन के पिछले सौ वर्षों में अन्य किसी भी विषय की इतनी चर्चा नहीं हुई। आश्चर्य की बात तो यह है कि देश की एकमात्र दो परस्पर विरोधी शक्तियाँ राष्ट्रीय महासभा और भारत-सरकार दोनों ही ग्रामीणों की सेवा करने में एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा करने पर तुले हुए हैं। सरकार का ग्राम-प्रेम एकाएक इतना क्यों बढ़ गया, इसका रहस्य हम भारतवासियों से छिपा नहीं है। बम्बई-कांग्रेस में जैसे ही महात्मा गांधी ने ग्राम-उद्योग-संघ की स्थापना की घोषणा की, वैसे ही भारत-सरकार का आसन हिल उठा और उसने एक करोड़ रुपया ग्राम-सुधार-कार्य के लिए प्रान्तीय सरकारों को दे दिया। देखते देखते ग्राम-सुधार-कार्य का बवंडर देश में इस प्रबल वेग से उठा कि थोड़ी देर के लिए तो यह प्रतीत होने लगा, मानो ग्रामों का काया-पलट होने में अब देर नहीं है। सरकार का रुख देखकर चाटुकार ज़मींदार, व्यापारी तथा शिक्षितवर्ग के लोग तथा पद-लोलुप धनीवर्ग सभी 'ग्राम-सुधार', 'ग्राम-सुधार' चिल्लाने लगे। वर्तमान वायसराय महोदय के शासन-काल में तो यह चिल्लाहट और भी तीव्र हो गई है।

परन्तु इस आन्दोलन से एक यह लाभ अवश्य हुआ है कि समस्त देश का ध्यान देश के उपेक्षित ग्रामों की ओर गया है और कतिपय सार्वजनिक संस्थायें स्वतंत्र रूप से ग्रामोद्धार के कार्य में लग गई हैं। अब तो राष्ट्रीय महासभा ने भी इस ओर ध्यान दिया है। इस कारण इसका महत्त्व और भी बढ़ गया है। एक बात ध्यान में रखने की है। कांग्रेस तथा सरकार के द्वारा इस आन्दोलन के अपनाये जाने के पूर्व ही कतिपय संस्थायें छोटे छोटे क्षेत्रों में यह कार्य कर रही थीं, जिनमें श्री ब्रायन की गुरगाँववाली योजना, कविवर रवीन्द्र के श्रीनिकेतन की योजना, दक्षिण में मालाबार-प्रान्त के अन्तर्गत मार्तण्डम् तथा रथन-पुरम् के केन्द्रों में नेशनल कौंसिल आफ़० वाई० एम० सी० ए० का कार्य, बनारस में श्रीयुत मेहता की योजना, सुंदरवन में श्री हैमिल्टन का ग्रामीण उपनिवेश, गोदावरी-ज़िले में श्री सत्यनारायन जी का राममंदिर, दक्षिण में श्री देवधर-ट्रस्ट तथा जयपुर-राज्यांतर्गत वनस्थली का कार्य उल्लेखनीय हैं। ऊपर लिखी हुई संस्थाओं के अतिरिक्त और बहुत-से सार्वजनिक कार्यकर्ता तथा संस्थायें अपनी अपनी शक्ति के अनुसार इस कार्य में लगी हुई हैं, जिनका यहाँ उल्लेख नहीं किया जा सकता।

वास्तव में हमारे ग्रामों की समस्या बहुत उलझी हुई है, अतएव जब तक इसका पूर्णरूप से अध्ययन नहीं किया जाता तब तक ग्राम-सुधार-आन्दोलन को सफलता मिलना कठिन है। आज हमारे ग्रामीणों की दशा ठीक उस घोड़े की भाँति है जिसको चारे का अभाव रहता है, शक्ति से अधिक बोझ ढोना पड़ता है, कभी आराम करने को नहीं मिलता, जिससे क्रमशः वह हृष्ट-पुष्ट सुन्दर घोड़ा क्षीण-काय होकर अत्यन्त निर्बल और निर्जीव हो गया है। उस मरणासन्न घोड़े की अत्यन्त शोचनीय दशा देखकर उसका स्वामी सोचता है कि इसको किसी डाक्टर को दिखाना चाहिए और दवा देनी चाहिए, किन्तु यह बात उसके ध्यान में नहीं आती कि सबसे पहला काम उसे यह करना चाहिए कि वह उस निर्बल और भूखे घोड़े को आराम की साँस लेने दे तो वह बिना किसी डाक्टर अथवा विशेषज्ञ की सहायता के ही चंगा हो सकता है।

ठीक यही दशा आज भारतीय ग्रामीण की हो रही है। वर्तमान ख़र्चीले शासन के कारण न सहन किया जा सकनेवाला तथा बढ़ते हुए करों का भयंकर बोझ तथा ज़मींदार के अत्यधिक लगान और सरकार की मालगुज़ारी ने वास्तव में ग्रामीण की रीढ़ तोड़ दी है। ऊपर से महाजन का ऋण और नगरनिवासी व्यापारी, दलाल, वकील, शिक्षितवर्ग आदि के वैज्ञानिक शोषण ने तो भारतीय ग्रामीण के अन्तिम रक्तबिन्दु को भी चूस लिया है। अतएव ग्रामों के उद्धार के लिए यह आवश्यक है कि बिना विलम्ब किये उनका बहुमुखी शोषण रोका जाय। तभी पूर्णरूप से ग्रामोद्धार हो सकता है। और यह कार्य एकमात्र भारत-सरकार ही कर सकती है।

हमारे इस कथन का यह अर्थ कदापि नहीं है कि ग्राम-सुधार का यह जो देश-व्यापी आन्दोलन चल रहा है वह निरर्थक है। ग्राम-सुधार-आन्दोलन से एक यह लाभ तो अवश्य ही होगा कि ग्रामीण जनता में अपनी दशा के ज्ञान का उदय होगा और भविष्य में उसे स्वयं अपनी स्थिति को सुधारने की इच्छा होगी। अब हमें देखना यह है कि देश में जो कुछ भी ग्राम-सुधार-कार्य हो रहा है उसका आदर्श क्या होना चाहिए और ग्राम-सुधार का कार्य करनेवालों का लक्ष्य क्या होना चाहिए।

यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि देश में ग्राम-सुधार के प्रश्न को लेकर इतनी हलचल मची हुई है, परन्तु अभी तक यह निश्चय नहीं हो सका कि ग्राम-सुधार से क्या अभीष्ट है। कोई कार्यकर्ता आधुनिक भारतीय ग्राम को उपयोगिताहीन, निर्जीव संस्था समझता है, अतएव उसके ध्वंसावशेषों पर एक नवीन ग्राम-संस्था का भवन खड़ा करना चाहता है। उसकी दृष्टि में आधुनिक आर्थिक संगठन के योग्य एक नवीन संस्था को जन्म देना आवश्यक है। दूसरा कार्यकर्ता भारतीय ग्राम में केवल इस प्रकार के परिवर्तन करना चाहता है जिनसे वह आधुनिक आर्थिक संगठन के उपयुक्त बनाया जा सके।

एक बात ध्यान में रखने की है कि जो लोग भारतीय ग्राम को बिलकुल नष्ट कर पश्चिमी देशों में पाये जानेवाले ग्रामों को इस देश में स्थापित करना चाहते हैं वे सम्भवतः यह भूल जाते हैं कि भारतीय ग्राम में ऐसी बहुत-सी सुन्दर संस्थायें विद्यमान हैं जिनकी रक्षा अत्यन्त आवश्यक है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि इस औद्योगिक तथा राजनैतिक परिवर्तन के युग में अपने ग्रामों को आधुनिक आर्थिक तथा राजनैतिक संगठन में अपना स्थान सुरक्षित रख सकने के योग्य बना दें। इस लक्ष्य को लेकर ही देश में ग्राम-सुधार का कार्य होना चाहिए।

आज भारतीय ग्राम-संस्था निर्बल और निर्जीव-सी हो गई है। ग्राम-सुधारक का मुख्य कार्य यह है कि वह इस संस्था को सतेज और बलवान् बना दे। यदि वास्तव में हमें ग्रामोद्धार की इच्छा है तो हमें गाँवों में वह स्थिति उत्पन्न करनी होगी कि ग्रामीण जनता में अपनी स्थिति का सुधार करने की इच्छा बलवती हो उठे। ग्राम-सुधार का कार्य तभी सफल और स्थायी हो सकता है जब सुधार की भावना स्वयं ग्रामीण जनता में उत्पन्न हो जाय। गाँवों पर बाहर से सुधार लादने से सफलता कभी मिल ही नहीं सकती। खेद है कि इस महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर कार्यकर्ताओं का ध्यान बहुत कम गया है। शीघ्रता से सफलता मिलने की आशा में उत्साही कार्यकर्ता गाँव की प्रत्येक बुराई को दूर करने के लिए दौड़ पड़ते हैं, परन्तु वे सुधार ग्रामीणों को छूते तक नहीं। फल यह होता है कि जब कार्यकर्ता का उत्साह मंद पड़ जाता है अथवा वह किसी दूसरे क्षेत्र में काम करने के लिए चला जाता है तब फिर उस गाँव की दशा पहले जैसी हो जाती है। गुरगाँव के ग्राम-सुधार-कार्य ने देश को विशेष रूप से आकर्षित किया था। किन्तु जैसे ही श्रीयुत ब्रायन का वहाँ से तबादला हुआ, वैसे ही वह कार्य भी ठंडा हो गया। आज गुरगाँव के गाँवों में जाइए, ग्राम-सुधार-कार्य के पूर्व जैसी दशा थी, लगभग वैसी ही दशा अब फिर हो गई है। ब्रायन साहब ने पिट-लैट्रिन (शौच-गृह) बनवाये थे, किन्तु आज कोई उनका उपयोग नहीं करता और वे भरते जा रहे हैं। किसान फिर पोखरों के समीप तथा जङ्गल में शौच के लिए जाने लगा है। स्कूलों में अब लड़के बहुत कम जाते हैं और लड़कियाँ तो दिखलाई ही नहीं पड़तीं। ब्रायन साहब ने आटा पीसने के लिए जो सार्वजनिक बैलों से चलनेवाली चक्कियाँ खड़ी करवाई थीं उनके भग्नावशेष हमें ध्यान दिलाते हैं कि कभी यहाँ चक्की थी। किसान गड्ढों में खाद न बनाकर फिर घूरों पर खाद डालता है। उस सफ़ाई का आज चिह्न भी शेष नहीं है जो श्रीयुत ब्रायन महोदय के समय में

दृष्टिगोचर होती थी। बात यह थी कि वह सब एक तमाशे की भाँति किसान ने ग्रहण किया था, इसी से आज उस कार्य का कोई अस्तित्व भी नहीं रह गया है। आज जो ग्राम-सुधार-कार्य हो रहा है उसका अधिकांश इसी प्रकार का है। अतएव यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि ग्राम-सुधार का कार्य तभी स्थायी और सफल हो सकता है जब सुधार अन्दर से हो न कि बाहर से।

एक दूसरा प्रश्न भी इस विषय में महत्त्वपूर्ण है। ग्राम-सुधार एक एक समस्या को लेकर चलने से हो सकता है अथवा सब समस्याओं को एक साथ हाथ में लेने से। अभी तक ग्राम-सुधार-कार्य को टुकड़े टुकड़े करके करने का प्रयत्न किया गया है, किन्तु अनुभव और अध्ययन बतलाता है कि इस प्रकार सफलता मिलना बहुत कठिन है। कोई सफ़ाई और स्वास्थ्य को लेकर चल रहा है, कोई किसानों के ऋण की समस्या को हल करने में लगा हुआ है, तो कोई मुक़द्दमेबाज़ी को बन्द करना चाहता है। ये सब प्रयत्न अत्यन्त प्रशंसनीय हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। परन्तु जो लोग ग्रामों की वास्तविक दशा को जानते हैं वे भली भाँति समझते हैं कि गाँव में जितनी भी समस्यायें हैं वे एक-दूसरे से ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध रखती हैं कि पृथक् नहीं की जा सकतीं। ग्राम-सुधार का क़ार्य तभी पूर्ण सफल हो सकता है जब सब समस्याओं के विरुद्ध एक साथ युद्ध छेड़ दिया जाय। कार्य कठिन दिखलाई देता है, परन्तु बिना इसके किये निस्तार नहीं है। उदाहरण के लिए ग्रामीण ऋण की समस्या को ही ले लीजिए। यह स्थायी रूप से तभी हल की जा सकती है जब मुक़द्दमेबाज़ी, सामाजिक कुरीतियों, खेती की उन्नति, स्वास्थ्य और सफ़ाई, पशुओं की उन्नति और उनकी चिकित्सा तथा शिक्षा की समस्यायें हल की जायँ। फिर उनके पुराने ऋण का परिशोध करने के लिए कोई क़ानून बनाया जाय और भविष्य में पूँजी का प्रबन्ध करने के लिए साख-समितियाँ स्थापित की जायँ। इसी प्रकार मुक़द्दमेबाज़ी का रोग दूसरी कुरीतियों तथा मनोरञ्जन के अभाव से सम्बन्ध रखता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जो मनुष्य भारतीय ग्रामों की समस्याओं को एक एक करके देखने का अभ्यस्त है वह उनको हल नहीं कर सकता। ग्राम-सुधार-कार्य करनेवाले को तो सारी समस्याओं का एक साथ सामना करना चाहिए। तभी सफलता मिल सकती है।

भारतवर्ष में ६ लाख से कुछ ऊपर ग्राम हैं। यह संख्या ब्रिटिश भारत तथा देशी राज्यों के गाँवों की है। यदि मान लिया जाय कि ग्राम-सुधार-कार्य को सफल बनाने के लिए १० वर्ष लगातार कार्य करने की आवश्यकता है तो भी कार्य की गुरुता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। ऐसी दशा में यह निश्चय करना कि ग्राम-सुधार-कार्य की प्रणाली कैसी हो, अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। बिना यह निश्चय किये कि किस प्रकार की पद्धति देश की स्थिति को देखते हुए विशेष लाभदायक होगी, कार्य आरम्भ कर देना भयङ्कर भूल होगी। यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि सब समस्याओं को एक साथ हाथ में लेने से ही यह कार्य सफलतापूर्वक हो सकता है, अतएव यह आवश्यक है कि भिन्न भिन्न स्थानों पर ग्राम-सुधार-केन्द्र स्थापित किये जायँ और उन केन्द्रों के द्वारा समीपवर्ती ग्रामों में सुधार-कार्य किया जाय। ग्राम-सुधार-केन्द्र के कार्यकर्ताओं का उद्देश यह होना चाहिए कि वे क्रमशः अपने क्षेत्र में ऐसे स्थानीय नेता तथा कार्यकर्ता उत्पन्न कर दें जो भविष्य में उन गाँवों का कार्य स्वयं अपने हाथ में ले लें। नहीं तो इतने ग्रामों के सुधार के लिए असंख्य मनुष्यों और अपार धन की आवश्यकता होगी। कुछ वर्ष कार्य करने के बाद जब कार्यकर्ताओं को यह विश्वास हो जाय कि स्थानीय कार्यकर्ता अब इस कार्य को चला सकेंगे, साथ ही सुधार की भावना ने ग्रामीणों के हृदय में स्थान कर लिया है, तब केन्द्र वहाँ से हटाकर दूसरे स्थान पर ले जाय। यह तभी हो सकता है जब ग्रामीणों में अपनी दशा सुधारने की इच्छा बलवती हो।

आज भारतीय ग्रामीण संसार का सबसे अधिक निराशावादी, भाग्यवादी तथा मूर्खता की सीमा तक पहुँचनेवाला संतोष कर जीवित रह रहा है। सैकड़ों वर्षों से उसका जो भीषण शोषण हो रहा है उससे उसको पशु से भी गिरा हुआ जीवन व्यतीत करना पड़ रहा है। आज भारतीय किसान को यह विश्वास ही नहीं होता कि कोई ऐसा व्यक्ति भी हो सकता है जो उसका शोषण न करे और इस बात की तो वह कल्पना ही नहीं कर सकता कि उसकी दशा में कभी सुधार भी हो सकता है। अतएव ग्रामोद्धार-कार्यकर्ताओं का पहला कर्तव्य यह होना चाहिए कि वे किसानों में अपनी इस पतित अवस्था के विरुद्ध असंतोष उत्पन्न करें और उनमें विश्वास [illegible] आत्म-सम्मान उत्पन्न

करें। जब तक किसान का निराशावाद नष्ट नहीं किया जायगा तब तक स्थायी रूप से ग्रामोद्धार का कार्य सफल नहीं हो सकता। यदि कार्यकर्ता उन्हें आशावादी बना सकें तो आधा कार्य हो गया समझना चाहिए।

अभाग्यवश भारतवर्ष में ग्रामोद्धार-आन्दोलन उस समय छेड़ा गया है जब संसार भयंकर मंदी का सामना कर रहा है। खेती की पैदावार का मूल्य बहुत गिर गया है, इस कारण किसान की आर्थिक स्थिति और भी बिगड़ गई है। यही नहीं, देश के उद्योग-धंधे भी भीषण आर्थिक मंदी का सामना कर रहे हैं, भारत-सरकार तथा प्रान्तीय सरकारों की आर्थिक दशा शोचनीय हो रही है। ऐसी दशा में सरकार इस कार्य के लिए अधिक धन व्यय कर सके, यह असम्भव है। तो भी भारत-सरकार को ग्रामों के उद्धार के लिए तीन काम करने होंगे—(१) प्रान्तीय सरकारें लगान को आधा कर दें, (२) ग्रामीण ऋण की समस्या को हल करने के लिए सरकार एक क़ानून बनाकर किसान के ऋण का एक चौथाई महाजन को देकर किसान को ऋण-मुक्त कर दे, (३) ग्रामोद्धार के लिए ऋण लिया जाय और एक योजना बनाकर सारी राजकीय शक्ति उस ओर लगा दी जाय। ऐसा करने से ग्रामोद्धार हो सकता है।

लेकिन केवल सरकार के ही प्रयत्न से गाँवों की दशा सुधर नहीं सकती। और वर्तमान राजनैतिक परिस्थिति में सरकार तथा सच्चे सुधारकों में सहयोग भी सम्भव नहीं है। अतएव राष्ट्रीय दृष्टिकोण रखनेवाले ग्राम-सुधारकों को स्वतंत्र रूप से ग्रामोद्धार-कार्य करना चाहिए। जो लोग स्वतंत्र रूप से ग्राम-सेवा का कार्य करना चाहते हैं उनके लिए यह आवश्यक है कि वे पहले तो इस विषय का अध्ययन करें, तदुपरान्त किसी ग्राम को केन्द्र बनाकर उसमें कुछ वर्षों के लिए जम जायँ। हमारे देश में बहुत-से शिक्षित लोग अपना कार्य-काल समाप्त करने पर भी नगरों का मोह नहीं छोड़ते। यदि रिटायर होकर शिक्षित लोग गाँवों में बसना और उनमें रहनेवालों की सेवा करना अपना कर्तव्य समझें तो इस ओर बहुत कुछ हो सकता है। यही नहीं, आवश्यकता तो इस बात की है कि चीन की भाँति शिक्षित युवक गाँवों की ओर लौटें और आश्रम स्थापित करके ग्राम-सुधार का कार्य करें। आज देश के शिक्षित नवयुवकों को यह कहने की आवश्यकता है—"गाँवों की ओर लौटो"। ग्राम-सुधार का कार्य गुरुतर है और यह तभी सम्भव हो सकता है जब राष्ट्र की सम्मिलित शक्ति अर्थात् सरकार और जनता दोनों ही इस कार्य में लग जायँ। जब तक ऐसा न होगा तब तक इस कार्य में पूर्ण सफलता नहीं मिल सकती। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि जो लोग इस कार्य में लगे हुए हैं वे अपना समय नष्ट कर रहे हैं। ग्रामीणों की स्थिति जितनी भी सुधर सके वही राष्ट्र के लिए अत्यन्त लाभदायक है।

सम्बन्ध

लेखिका, श्रीमती दिनेशनंदिनी

प्रकृति और पुरुष में घनिष्ठ सम्बन्ध है!

जङ्गली जानवर और पालतू पशु-पक्षी ही हमारे निकट आत्मीय नहीं हैं, परन्तु हरित वृक्ष और सब्ज़ घास। प्रभात में खिल मध्याह्न में कुम्हला जानेवाले पुष्प और अनन्त काल तक खड़ी रहने वाली चट्टानें, नीलिम लहर और वायु भी—जुलाहे ने हम सबको एक ही ताने-बाने में बुना है; ग्रहों और मणियों का प्रभाव ही मनुष्य-जीवन पर नहीं, मगर ज़र्रे ज़र्रे तक का जो ब्रह्माण्ड के जीवन-जाल में एक श्मशान गया है।

कीड़े से कुञ्जर और धूल-कण से अनन्त आकाश एक ही सूत्र में बँधे हैं, और सब सत्य के प्रकाशित करने के लिए एक ही भाषा का उपयोग करते हैं—गो कि हवा मर्मर ध्वनि करती है, वायु निःश्वास छोड़ती है, मत्त बोलता है और—

रमणी का हृदय मौन रहता है!!
प्रकृति और पुरुष में घनिष्ठ सम्बन्ध है!!

बेवक़्त की शहनाई

लेखक, श्रीयुत सीतलासहाय

रेलगाड़ी की यात्रा में प्रायः विविध विचारों के लोग आपस में मिल जाते हैं और उनका विवाद बहुत मनोरञ्जक होता है। इस लेख में लेखक महोदय ने एक ऐसी ही यात्रा और विवाद का वर्णन किया है।

सेकिन्ड क्लास के डिब्बे में हिन्दुस्तानी-अँगरेज़-झगड़ा हो ही जानेवाला था। परिस्थिति ऐसी थी कि कोई भी ऐसी अवस्था में ख़ानसामे को दो तमाचा मारे बिना नहीं रह सकता था। लेकिन राजा हरपालसिंह ने आश्चर्यजनक आत्मसंयम का परिचय दिया।

थोड़ी देर का सफ़र था। सिर्फ़ लखनऊ से हरदोई तक का। मई के महीने में बरेली जानेवाली शाम की गाड़ी भरी होती है, क्योंकि पहाड़ की ओर उच्च वर्ग का निष्क्रमण आरम्भ हो जाता है। जिस गाड़ी में मैं बैठा था, इत्तिफ़ाक़ से मेरे मित्र पंडित वेदव्रत त्रिपाठी भी उसी गाड़ी में आ बैठे थे। ये चन्दनपुर के ताल्लुक़दार राजा हरपालसिंह के साथ अल्मोड़ा जा रहे थे।

पंडित वेदव्रत विचारों में आर्यसमाजी और व्यावहारिक जीवन में जेल-निवासी राष्ट्रीय कार्यकर्ता और मेरे मित्र थे। जेल से छूटे अभी इन्हें केवल तीन हफ़्ते हुए थे। राजा साहब का मेरा परिचय बिलकुल नया था। उनकी अवस्था लगभग ५० वर्ष के होगी, किन्तु हृष्ट-पुष्ट आदमी थे। लम्बी लम्बी मूँछें, चौड़ी पेशानी, बड़ी बड़ी आँखें, कामदार टोपी पहने, विशाल तोंद के साथ आकर वे बर्थ पर बैठ गये। राजा साहब के आगमन के बाद हमारी गाड़ी नाना प्रकार के असबाबों से भर गई थी, क्योंकि वे अपनी बिरादरी के रवाज के मुताबिक़ सम्पूर्ण 'परिग्रह' के साथ सफ़र कर रहे थे। इस स्थान पर 'परिग्रह' शब्द में दारा या उसका बहुवचन शामिल न समझना चाहिए, क्योंकि इस वस्तु-विशेष को राजा साहब अपने अन्य रत्नों और मणियों के समान चन्दनपुरस्थ अपने विशाल भवन 'सिंहगह्वर' में सुरक्षित रख आये थे और बाक़ी ज़रूरी और ऐश की चीज़ें सब उनके साथ थीं। हाथ धोने की मिट्टी से लेकर दातून, दाल, चावल, घी और पलँग तक साथ था, साथ ही ताश, ह्विस्की की बोतल, ग्रामोफ़ोन और तबला भी था।

वेदव्रत जी ने राजा साहब का परिचय देते हुए कहा—"चन्दनपुर-नरेश महाराज हरपालसिंह, चौहानों के सिरमौर, सच्चे क्षत्री, शिकार-कला के विशेषज्ञ। शेर को मचान पर से मारना अपने क्षत्रियत्व के ख़िलाफ़ समझते हैं। बाक़ायदा आँखें चार करके ज़मीन से गोली चलाते हैं।"

कुछ देर शिकार की बातें होती रहीं। फिर गोली के निशाने की चर्चा चली। राजा साहब उड़ती चिड़िया गोली से मार सकते हैं। फिर रेस का ज़िक्र आया। लेकिन थोड़ी ही देर के बाद हम लोगों की बातचीत निरस होने लगी, क्योंकि हमारे दोनों के दर्मियान एल० सी० एम० की संख्या बहुत छोटी थी और वह अवस्था शीघ्र ही आनेवाली थी कि हम दोनों जम्हाई लेने लगते कि गाड़ी स्टेशन पर रुकी। किसी ने गाड़ी का दरवाज़ा धड़ाक से खोला। राजा साहब की पेचदान-फ़र्शी जो सामने सुलग रही थी, तड़ से ज़मीन पर गिर पड़ी, मुँहनाल राजा साहब के होठों से निकलकर शास्त्री जी की गोद में जा पहुँची, चिलम चकनाचूर हो गई, हुक्के का पानी गाड़ी के फ़र्श में फैल गया।

दरवाज़ा खुलते ही बाक़ायदा पोशाक में एक ख़ानसामा कमरे के अन्दर दाख़िल हुआ। उसके पीछे दो कुली थे। ख़ानसामे ने यह सब देखा, पर माफ़ी का एक शब्द भी नहीं कहा।

मुझे आग-सी लग गई और तबीअत चाही कि ख़ानसामे के एक तमाचा जड़ दूँ। लेकिन भूल राजा साहब के ख़िदमतगार की थी। उसने हुक्के को बिलकुल दरवाज़े से भिड़ाकर रक्खा था; और मुझे बोलने का हक़ भी नहीं था।

राजा साहब उचककर बैठ गये, माथे पर शिकन आ गई; किन्तु एक मेम साहब और उनके पीछे योरपीय पोशाक पहने एक साहब के आगमन ने राजा साहब की मनोदशा में तबदीली पैदा कर दी।

"कुछ हर्ज नहीं, कुछ हर्ज नहीं" राजा साहब कहने लगे। उधर कुली ने फ़र्शी को उठाकर रख दिया। साहब और मेम साहब ने भी वह सब देखा था, पर एक बार भी 'आई एम सारी' (मुझे दुःख है) तक नहीं कहा, बल्कि उनकी समालोचना यह थी 'मच्छ टू क्राउडेड' (बहुत भार हुआ है)।

इस अवसर पर राजा साहब ने अद्भुत आत्मसंयम का परिचय दिया। जो आदमी शेर को ज़मीन पर खड़ा होकर मारे और अपने जीवन के और किसी अंग में संयम को फटकने तक न देता हो, इस प्रकार चुप रहे, आश्चर्य-जनक था। किन्तु उससे अधिक आश्चर्य की बात उस डिब्बे में यह हुई कि इस घटना के ५ मिनट के अन्दर ही वेदव्रत जी उक्त साहब के साथ प्रेम से हिलते-मिलते दिखाई दिये।

नव आगन्तुक साहब इत्तिफ़ाक से वेदव्रत जी के पुराने मित्र मिस्टर उलफ़तराय गौबा निकले। ये सज्जन पंजाबी थे। वेद-प्रचार के लिए अमरीका गये थे और वहाँ से अन्तर्राष्ट्रीय विवाह करके आये थे। वेदव्रत जी ने अपने मित्रदम्पति का सब लोगों से परिचय कराया। पश्चिमी देशों के वर्तमान राजनीति पर बातें होने लगीं। हिटलर, मुसोलिनी का ज़िक्र आया, ट्राटस्की और लेनिन की चर्चा होने लगी। फ़्रांस और ब्लुम के सम्बन्ध में हम सबों ने अपनी अपनी राय प्रकट की। इस वार्तालाप के समय राजा हरपालसिंह मौन बैठे रहे। थोड़ी देर के बाद इजाज़त लेकर वे अपने बर्थ पर जाकर लेट गये।

मिसेज़ गौबा को भी श्री उलफ़तराय गौबा ने 'डार्लिंग गो एंड हैव रेस्ट' (प्रिये, जाओ, आराम करो) कहकर एक बर्थ पर भेज दिया। और वेदव्रत तथा उलफ़तराय की बातचीत होती रही।

"आपके कहने का क्या यह मतलब है कि हिन्दुस्तान का राष्ट्रीय चरित्र पर्याप्त ऊँचा है"। गौबा ने कहा।

"उससे कहीं ज़्यादा। देखिए एक अँगरेज़ लिखता है।"

वेदव्रत जी अँगरेज़ी में एक लम्बा वाक्य कह गये। यह इन्हें कण्ठस्थ था। स्मरण-शक्ति के इस चमत्कार से मुझे आश्चर्य नहीं हुआ। हमारे आर्यसमाजी भाइयों की स्मरण-शक्ति, ख़ास कर उद्धरण सुनाने में, बहुत तेज़ होती है। वह लम्बा वाक्य ईसवी सन् के दो शताब्दी पहले के एक शिक्षित यूनानी का था। उसमें कहा था कि जीवन के साधारण व्यवहार में हिन्दुओं के चरित्र का मुख्य गुण ईमानदारी है। सम्भव है, यह बात कुछ अँगरेज़ों को आज विचित्र मालूम हो, लेकिन सच तो यह है कि जिस प्रकार दो हज़ार वर्ष पहले यह बात सही थी, क़रीब क़रीब आज भी उतनी ही सत्य कही जा सकती है। अँगरेज़ लोग आज भी अपने हिन्दुस्तानी मुलाज़िमों को देखते हैं कि उन लोगों को बड़ी बड़ी रक़में सिपुर्द कर दी जाती हैं और वे उनके पास बिलकुल सुरक्षित रक्खी रहती हैं हालाँकि हिन्दुस्तानी मुलाज़िम चाहें तो रक़म खा जायँ, किसी प्रकार पकड़ में भी न आयें और सारी ज़िन्दगी आनन्द में गुज़ार दें।

"उक्त उद्धरण का यह अर्थ था—अपने देशवासियों के साथ व्यवहार करने में हिन्दुओं का यह गुण विशेष रूप से प्रकट हो जाता है। ये लोग बड़ी बड़ी रक़मों का व्यापार इस प्रकार दूरंदेशी छोड़कर करते हैं कि ये मूर्खता की सीमा तक पहुँच जाते हैं। किन्तु बहुत कम धोखा होता है। रोज़ सैकड़ों रुपये केवल ज़बानी ज़मानत पर क़र्ज़ लिये-दिये जाते हैं। [illegible] कुटुम्ब ग़रीब से अमीर हो जाते हैं, अपने पूर्वजों का सैकड़ों बरस का क़र्ज़ अदा कर देते हैं, हालाँकि उस क़र्ज़ का कोई रुक्का-पुर्ज़ा नहीं होता, सिर्फ़ महाजन के खाते रक़म नाम पड़ी होती है। हिन्दुओं का सम्पूर्ण सामाजिक संगठन असाधारण ईमानदारी पर निर्मित हुआ है। राजपूत और ब्राह्मण की वीरता और आत्माभिमान, वैश्य और कुर्मियों का परिश्रम और मितव्ययिता आँख रखनेवाला साधारण आदमी भी देख सकता है। [illegible] हिन्दू-समाज से आप निर्दयता से स्वाभाविक घृणा पायेंगे। हिन्दुओं के मन में आपको प्रसन्नता और प्रफुल्लता मिलेगी और आप यह देखेंगे कि कल्पना-शक्ति, सौन्दर्य [illegible] हास्य से ये लोग बहुत शीघ्र प्रभावित होते हैं।"

उक्त लंबा उद्धरण सुनकर गौबा ने कहा—

"आपका यह उद्धरण मेरे लिए वेदवाक्य नहीं, कुरान की आयत है। मैं तो आँख खोलकर देखता [illegible] मेरी किताब तो दुनिया है और सड़क पर चलने [illegible] हिंदुस्तानियों का चेहरा इस किताब के पन्ने हैं। इस [illegible] के पन्नों में बड़े मोटे मोटे टाइप में मुझे लिखी हुई [illegible]

देती है 'निराशा'। मैं भी आपके जवाब में एक अँगरेज़ की राय हिन्दुस्तानियों के बारे में सुनाता हूँ। वह लिखता है—एक महान् जातीय दोष जो हिन्दुओं में पाया जाता है, दृढ़ता का अभाव है। कोई भी बात हो, निश्चय कर लेने के बाद अगर उसमें ज़रा भी विघ्न आ जाय (जिन्हें हम अँगरेज़ लोग मामूली विघ्न समझेंगे) हिन्दू लोग अपने निश्चय पर क़ायम रहने में बिलकुल असमर्थ हो जाते हैं। और सुनिए, तुम्हारी रीढ़ की हड्डी बड़ी मुलायम होती है, दो घंटे भी डट कर बैठना तुम्हारे लिए असम्भव होता है। तुम समझते हो कि मनुष्य की स्वाभाविक पोज़ीशन उत्तान है, लम्बरूप नहीं। तुम्हारी धारणा है कि दौड़ने से चलना बेहतर है, चलने से खड़ा रहना, खड़े रहने से बैठ जाना, बैठने से लेट जाना और लेट जाने की अपेक्षा सो जाना कहीं अधिक श्रेयस्कर है।

"लेकिन मैं इस बात को स्वीकार करता हूँ कि अगर इसी बात पर अर्थात् मनुष्य के स्वाभाविक पोज़ीशन के विषय में हिन्दुस्तानी जनता की 'राय' ली जाय और बाक़ायदा चुनाव की तरह वोट पड़ें तो वोट तुम्हीं को मिलेंगे। सतत श्रम का सिद्धान्त भारतीय सभ्यता में अगर था तो बहुत दक़ियानूसी ज़माने में। वर्तमान भारत और मध्यकालीन भारत का लोकमत और लोकाभिलाषा इसके ख़िलाफ़ थी और है। हमारी सभ्यता में श्रम को नीचा स्थान दिया गया है। परिश्रम श्रीहीनों का काम है। यह न समझिएगा कि मैं आप लोगों के प्रयत्नों का तिरस्कार करता हूँ, किन्तु अपने देश की दशा को देखते हुए अपने देश के भविष्य में निराशावादी हो गया हूँ।"

"आप पर हीनता की भावना का प्रभाव है।" वेदव्रत ने कहा।

"क्या आपने अपने देशवासियों की मनोवृत्ति का अध्ययन किया है?" उलफ़तराय ने ज़रा तेज़ी में आकर जवाब दिया।

वेदव्रत बोले—"मैं तो सिपाही हूँ। लेकिन जो लोग [illegible]ीय आन्दोलन को चलाते हैं वे ज़रूर अध्ययन कर [illegible]के हैं।"

"क्या आपने अँगरेज़ी चरित्र को समझा है?"

"यह मेरा काम नहीं है।"

"वह प्यार करने के योग्य है। मैं तो अँगरेज़ी चरित्र का बड़ा प्रशंसक हूँ।"—गौबा ने कहा।

"मैं तो यह बात आपकी पोशाक में, रहन-सहन में ही देख रहा हूँ। यही क्यों, अगर आप अँगरेज़ी चरित्र के भक्त न होते तो आपने अपने जीवन की सर्वोत्तम अमूल्य वस्तु अपना हृदय कदापि एक अँगरेज़ महिला को न सौंप दिया होता।" वेदव्रत ने हँसते हुए कहा।

मिस्टर गौबा भी हँस पड़े। उन्होंने साँस लेकर कहा—"यह बात ठीक हो सकती है। सच तो यह है कि फ़ेयरप्ले अँगरेज़ी चरित्र का मुख्य गुण है।"

मैंने कहा—"मिस्टर गौबा, अँगरेज़ी चरित्र की श्रेष्ठता को हम स्वीकार करते हैं। लेकिन एक बात बतलाइए, उसका बयान और प्रचार करने से हमारे देश का क्या फ़ायदा है? यह तो बेमौक़े की शहनाई है। हिन्दुस्तानी लोग अँगरेज़ या फ़्रेंच या रूसियों की श्रेष्ठता को सुनकर उत्साहित नहीं होंगे, बल्कि उनकी हिम्मत और पस्त हो जायगी।

"हिन्दुस्तानियों में उत्साह तो उस समय पैदा होगा जब उनके हृदय में अपने पूर्वजों का गौरव होगा, उन्हें जब अपने भविष्य के लिए आशा बँधेगी। दूसरों की तारीफ़ या पश्चिमीय राष्ट्रों की श्रेष्ठता का वर्णन सुनकर वे कदापि उन्नत नहीं होंगे। लेकिन मैं अँगरेज़ क़ौम के बारे में आपकी परख जानना चाहता हूँ। यह बताइए कि आख़िर ये लोग इतने बड़े साम्राज्यवादी कैसे हो गये?"

उलफ़तराय जी बोले—"जिन गुणों ने रोमन लोगों को महान् बनाया था वे इनमें भी हैं। कर्तव्य का पालन करने की इनमें धार्मिक निष्ठा है। जीवन को महत्त्वपूर्ण समझना, उद्देश-प्राप्ति के लिए दृढ़ संकल्प, ख़तरे में निर्भयता, विपत्ति में वीरता इत्यादि गुण इनमें ख़ूब पाये जाते हैं। इनके स्वभाव में शुद्धता और ईमानदारी है, न्याय-परायणता है और चिरस्थायी उत्साह है। रोमन लोग अपने को दुनिया भर में श्रेष्ठ समझते थे। अँगरेज़ भी अपने को ऐसा ही समझते हैं।

"फिर अँगरेज़ लोगों में व्यक्तिगत रूप से मौलिकता पाई जाती है। अपने मौलिकतायुक्त परिश्रम से और ईमानदारी से उन्होंने बड़े बड़े साम्राज्य जीते हैं, ख़याली पुलाव, स्वप्न के संसार और कल्पना को वे नफ़रत की नज़र से देखते

हैं। उनका विश्वास ठोस चीज़ में है। हवा से बातें करना उन्हें पसन्द नहीं। भविष्य की आशा में वर्तमान को क़त्ल कर डालना उनके स्वभाव में नहीं पाया जाता।

"अँगरेज़ अमली जीवन को महत्त्व देता है। कल्पना को अविश्वास और तुच्छता की दृष्टि से देखता है। इस बात पर विचार करने में उसे स्वाभाविक रूप से घृणा मालूम होती है कि भविष्य में क्या होगा। इसलिए वह पहले से कभी अपने को किसी मार्ग या नीति के लिए वचनबद्ध करना पसन्द नहीं करता। उसे इस बात का खूब ज्ञान होता है कि अगर मामले ने कोई रूप धारण किया तो जो उचित होगा, कर लेगा। भविष्य की परेशान करनेवाली घटनाओं का आज से ही मुक़ाबिले के लिए तैयार होना उसे पसन्द नहीं।

"अँगरेज़ अपनी बात का भी धनी होता है। जब वह हाँ कर देता है, उसका मतलब 'हाँ' ही होता है। उसमें इतनी निर्भीकता होती है कि 'नहीं' कह सकता है। अँगरेज़ बच्चों को बचपन से ही सिखाया जाता है कि झूठ बोलना बड़ी ज़िल्लत की बात है और किसी को झूठा कहना घोरतम अपमान है .....।"

किन्तु मिस्टर गौबा का यह भाषण एकाएक रुक गया। गाड़ी एकदम ठहर गई। ख़ानसामे ने आकर साहब का असबाब बाँधना शुरू कर दिया। मेम साहब बिस्तर से उठकर खड़ी हो गईं। तीन मिनट के अन्दर साहब और मेम साहब डिब्बे के बाहर चले गये।

राजा हरपालसिंह ने करवट बदली। उन्होंने पूछा—"साहब बहादुर गये?"

"हाँ, महाराज।" वेदव्रत जी ने कहा।

"मेम से बियाह किहिन है?"

"हाँ, महाराज।"

"बड़े बकबासी जान पड़त हैं। दिमाग़ चाट गये।"

रजनी

लेखक, नत्थाप्रसाद दीक्षित, मलिन्द

(१)

है तम-कालिमा व्याल कराल की, श्यामल पंक्ति छटा छिटकाई।
है पथ-सा सुर वारण जो बही, विष्णुपदी नदी शीश सुहाई।
है नक्षत्रावली मुण्ड की माल, विशाल विभा की विभूति रमाई।
इन्दु-सा बिन्दु ललाट लगा, शिव-सी सजनी रजनी बनि आई।

(२)

पूजने को किस देवता के पुष्पाक्षत अञ्चल में भर लाई।
माल मराल की मंजु बना, द्युति मानसरोवर की हर लाई।
नीलम थाल में आरती के लिये, सुन्दर दीप जलाकर लाई।
साज सजाये सदा रहतीं, जब से द्विजराज को हो बर लाई।

(३)

इस भाँति से यों चुपचाप भला, किस भाँति कहाँ बतलाना मिला।
किससे सुषमा-भरे श्यामल रूप से, है जगती का लुभाना मिला?
किससे यह चाँदनी चादर, कैरव-नेत्र-कटाक्ष चलाना मिला?
मणि चन्द्र की पाई कहाँ तुम्हें तारक-मोतियों का ये ख़ज़ाना मिला।

अमरनाथ-गुफा की ओर

लेखक, श्रीयुत सी० बी० कपूर एम० ए०, एल-एल० बी०

इस लेख के लेखक महोदय साहसी और नवयुवक भारतीय हैं। अपने एक जर्मन मित्र के साथ इन्होंने मोटर-साइकिल पर सारे भारत का भ्रमण किया है। इसी यात्रा के सिलसिले में ये हिमालय के दुर्गम मार्ग में स्थित अमरनाथ-गुफा की ओर भी गये थे। इस लेख में उसी का रोचक वर्णन है।

[गुफा के भीतर—लेखक और श्री अमरनाथ साधु।]

अमरनाथ हिन्दुओं का एक प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान है। यह स्थान कश्मीर-राज्य की विशाल 'लीदरघाटी' में समुद्रतल से लगभग ४,००० फ़ुट की उँचाई पर स्थित है। यहाँ एक गुफा है, जिसमें हिम का एक शिवलिंग बन जाया करता है और वही 'अमरनाथ महादेव' है। ज्यों ज्यों शुक्ल-पक्ष में चन्द्रदेव पूर्णता के पथ पर अग्रसर होते हैं, त्यों-त्यों शिवलिंग भी अपने आकार में पूर्ण होता जाता है। प्रकृति देवी की इस अनोखी कारीगरी को देखकर आश्चर्य-चकित होना पड़ता है। यह गुफा कोई ८० फ़ुट ऊँची, ५० फ़ुट चौड़ी और लगभग [illegible] फ़ुट गहरी है। कहा जाता है कि शिव जी इस गुफा में [illegible] किया करते थे। परन्तु मनुष्य-जाति के वहाँ भी जा पहुँचने पर वे वहाँ से चले गये और तिब्बत में कैलाश-पर्वत की चोटी पर जाकर अपना आसन लगाया है! यह भी कहा जाता है कि शिव और पार्वती कबूतर और कबूतरी के रूप में आज भी इस गुफा में निवास करते हैं। यह कहाँ तक ठीक है, पाठक स्वयं ही सोच सकते हैं। परन्तु [illegible] इस कबूतर के जोड़े को वहाँ रहते ज़रूर देखा है और देखकर कुछ हैरान भी हुए कि इतने ठंडे निर्जन और उजाड़ स्थान में इनका यहाँ कैसे रहना होता है।

इस स्थान के उच्च शृङ्ग पर स्थित होने के कारण यह सदा हिम से ढँका रहता है। जब शरद्-ऋतु का अन्तिम काल और वसन्त का आगमन होता है, शनैः-शनैः शीत की भीषणता क्षीण होने लगती है, बर्फ़ पिघलती है और मार्ग साफ़ हो जाता है। यहाँ की यात्रा जून से लेकर सितम्बर के महीनों तक आसानी से हो सकती है। कश्मीर के महाराज की कृपा से यात्रा-मार्ग भी सुन्दर और काफ़ी चौड़ा बन गया है। प्रति सात मील पर यात्रियों की सुविधा के लिए झोपड़ियाँ बनी हुई हैं, जिनकी मरम्मत प्रति वर्ष की जाती है। साधुओं का प्रसिद्ध जलूस जिसको 'छड़ी' कहते हैं, अगस्त में निकलता है और देखने के योग्य होता है। कश्मीर-राज्य की ओर से इन साधु यात्रियों को बहुत सहायता दी जाती है।

प्रत्येक साधु यात्री को [illegible] दिये। [illegible] रखने के लिए (और भोजन बना सकने [illegible] कि [illegible] गले में लटकाने-वाली एक-एक दहकती [illegible] में ठहरने [illegible] सकनेवाला एक जोड़ा [illegible] बर्फ़ पर काम दे खाद्य सामग्री आदि [illegible] जाकर [illegible] यात्रा-काल भर के लिए [illegible] से बिना मूल्य दी जाती

[लेखक अपने साज-सामान के साथ।]

है। यहाँ काशी, हरिद्वार, गङ्गोत्री, रामेश्वर और बड़ी दूर-दूर से आये हुए यात्रियों का समागम होता है। साधुओं में संन्यासी, नागा, वैरागी आदि प्रायः सभी अपने-अपने दल के झुंड के साथ अपनी-अपनी पताका उड़ाते हुए अमरनाथ जी जाते हैं। चलने का मार्ग बहुत दुर्गम है। चीड़ आदि के विकट जङ्गलों के बीच से होकर जाना पड़ता है। मार्ग निरा चढ़ाई का ही है। पैदल यात्रा पहलगाम से आरम्भ होती है। यहाँ से गुफा लगभग ३० मील के फ़ासले पर है। इस मार्ग को यात्री तीन दिन में तय करते

[पहलगाम में इस लेख के ... का जर्मन मित्र।]

हैं। पहलगाम से चढ़ाई आरम्भ होकर गुफा में ही जाकर समाप्त होती है। इस थोड़े-से फ़ासले में लगभग ८ हज़ार फ़ुट की चढ़ाई चढ़नी पड़ती है। इस कठिनता का अंदाज़ा पाठक स्वयं लगा सकते हैं।

मैं और मेरे एक मित्र मिस्टर डिची जो जर्मनी के रहनेवाले हैं, अपनी मोटर-साइकिल पर जिससे हम दोनों सारे भारत का भ्रमण कर रहे थे, अगस्त के महीने में पहलगाम पहुँच गये थे। वहाँ हम एक प्रोफ़ेसर मित्र के यहाँ ठहरे। ये वहाँ अपने कुटुम्ब के साथ तम्बू में रहते थे। तम्बू में रहना हमारे लिए कोई नई बात नहीं थी, परन्तु हमारा तम्बू इतना छोटा था कि हम उसमें सोते होकर भी नहीं बैठ सकते थे। पर हमारे मित्र के तम्बू बहुत बड़े और ऊँचे थे, उनमें रहना पर्याप्त सुखद था। अतएव हमारे मित्र के तम्बू से हमारे तम्बू का क्या मुक़ाबिला!
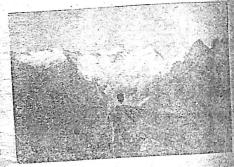
[शेषनाग से पर्वत का एक दृश्य।]

पहलगाम जम्मू-कश्मीर के राज-मार्ग में एक सुन्दर तथा विचित्र स्थान है। यहाँ के घास के ऊँचे-ऊँचे मैदानों में चीड़ के लम्बे-लम्बे वृक्षों की छाया के नीचे हर गर्मियों में सैकड़ों की संख्या में हिन्दुस्तानियों के तम्बू लग जाते हैं। इन सुन्दर मैदानों के दोनों ओर शीतल और साफ़ पानी के दो नाले बहते हैं। पीत, हरित और अरुण वर्ण के रंग-बिरंगे फूल खिलकर इस स्थान की मनोहरता को कई गुना अधिक बढ़ा देते हैं। पहलगाम तक मोटर आते-जाते हैं। अब तो यहाँ एक बड़ा बाज़ार सा बन गया है और दो-तीन अच्छे होटल भी ...

हैं। खाने-पीने की तमाम सामग्री यहाँ मिल जाती है। तम्बू और मैदान के टुकड़े यहाँ किराये पर मिलते हैं। सफ़ाई आदि का अधिक ध्यान रक्खा जाता है।

यहाँ से यात्रा के लिए कुली और टट्टू बहुत आसानी से सस्ते मिल जाते हैं। हम दोनों पहलगाम के सुन्दर जगमगाते नाले के तट पर खड़े थे। जब हमने साधुओं के जलूस को अमरनाथ की ओर जाते देखा तो देखते ही हम दोनों के दिल में भी उमङ्ग पैदा हुई। मेरे जर्मन मित्र तो मुझसे भी अधिक उत्सुक हो गये। हमने उसी समय यात्रा करने की तैयारी आरम्भ कर दी और कुछ खाने-पकाने की सामग्री भी मँगवा ली। हमने कोई कुली या टट्टू नहीं किया, क्योंकि हम नवयुवक थे और १५ सेर से अधिक तक बोझ आसानी से अपनी पीठ पर लादकर ले जा सकते थे। मेरे जर्मन मित्र मुझसे भी अधिक बोझ उठाने के आदी थे। जर्मनी में फेरी का बड़ा प्रचार है। जर्मनी के हर नवयुवक को ... का
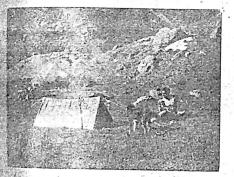
[लेखक अपने तम्बू के बाहर—शेषनाग झील के तट पर।]

... हो या मन्त्री का, ६ महीने के लिए 'लेबर-कैम्प' में रहना पड़ता है। जो ऐसा नहीं करता उसे वहाँ की सरकार दण्ड देती है। यही कारण है कि जर्मन-जाति इतनी बलवान् और संगठित है।

अगले दिन सूर्य निकलने पर हम दोनों अपने सफ़री थैलों को अपनी-अपनी पीठ पर लादकर अमरनाथ की ओर चल दिये। हमारे सफ़री थैलों में एक 'स्लीपिंग-बैग', एक हलका-सा तम्बू जिसमें हम दोनों सिर्फ़ सो सकते थे, एक बरसाती, एक कैमरा, खाने के लिए ३ ... डबल

[एक त्रिशूलधारी साधु।]

रोटियाँ, २ दर्जन अंडे, एक सेर चीनी, एक डिब्बा ओवलटीन, आध सेर मक्खन और थोड़ी-सी चाय थी। इसके सिवा हमारे शरीर पर काफ़ी गर्म वस्त्र थे। परन्तु जब हम यात्रा में चल दिये तब हमें तम्बू का ले जाना कुछ फ़िज़ूल-सा ही मालूम हुआ, क्योंकि रियासती झोपड़ियाँ थोड़ी-थोड़ी दूर पर बनी हुई मिलीं।

पहला पड़ाव 'चन्दनवारी' का पड़ता है। यह पहलगाम से कोई ४ मील के फ़ासले पर होगा। हम ११ बजे के लगभग वहाँ पहुँच गये। पाठक यह जानकर हैरान होंगे

... पश्चात् साधुओं ... दर्शन आदि करके पंचतरनी ... पहुँची और आते ही सबके सब ... गये। उसके बाद सबके सब उसी ... ओर चल दिये।

... मालूम हुआ कि ... के आगे ... रात में ठहरने ... में बाज़ार डालकर ... कुल ३ ... अनुभव, एक लगा। ... तरनी से जाकर ... दयालुता ... को ... है। ... उमंग

[शेषनाग भील ।]
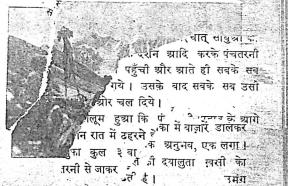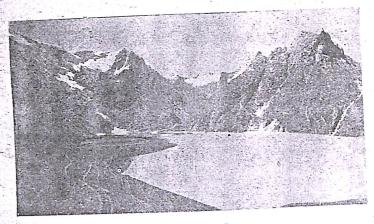
कि प्रातः-काल के चले होकर भी हम केवल ४ मील का ही सफ़र इतनी देर में कर सके! इसका कारण यहाँ की कठिन चढ़ाई है। थोड़ी चढ़ाई चढ़ने पर ५ मिनट या और कुछ देर तक दम ले-लेकर आगे चढ़ना पड़ता है। चन्दनवारी पहुँचने तक हम खूब थक गये थे। यहाँ तक का मार्ग खूब घने जङ्गल से होता हुआ पहलगाम के शीतल नाले के साथ-साथ जाता है। मार्ग में शीतल जल के चश्मे भी स्थान-स्थान पर मिलते हैं, जिससे थकावट कुछ-कुछ दूर हो जाती है। कुछ यात्री यहाँ अपना खाना-पीना कर रहे थे। झोपड़ियों में मैला होने के कारण हमने अपना तम्बू लगा लिया और रात भर उ[illegible] में खूब गहरी नींद सोये। चन्द्रमा के निर्मल प्रकाश में इ[illegible] स्थान की शोभा बहुत ही दर्शनीय हो रही थी।

[illegible] हाथ-मुँह धोने और कुछ पे[illegible]-पूजा करने [illegible] शेषनाग की ओर [illegible] सूर्य निकलने [illegible] सवेरे चलने का [illegible] कारण यह [illegible] चढ़ाई का चढ़[illegible]ना बुरा-सा [illegible] मगाती हुई [illegible] की [illegible] सकते, सी-सी [illegible] करते [illegible] चले जा रहे [illegible] भीषणता बढ़ती [illegible] रका ज में कुछ कष्ट-

इस भी[illegible]
किससे सु[illegible]
किससे यह[illegible]
[illegible] रश्मि चन्द्र की

[पहलगाम में इस लेख के

सा होने लगता है और बहुत शीघ्र शीघ्र साँस चलने लगती है।

इस बार थकावट की हद न थी और ख़ास कर मेरे लिए, क्योंकि इस बार तम्बू उठाने की बारी मेरी थी, साथ ही सुगन्धित और छायादार चीड़ और चिनार के वृक्षों का भी जो हमारी थकावट को हटाने में सहायता करते थे, अभाव था। अब तो हम सूखे और उजाड़ पर्वतों पर चढ़ रहे थे। कुछ ऊपर जाने पर हमें [illegible] भी मिले और दूर से बर्फ़ से लदे हुए सुन्दर पर्वत भी दिखाई देने लगे।

कोई एक बजे के लगभग हम शेषनाग के पड़ाव पर पहुँच गये। यह पड़ाव 'शेषनाग' नाम की एक सुन्दर भील के तट पर बना हुआ है। सूर्य की रश्मियों ने यहाँ अपूर्व ही दृश्य उपस्थित कर रक्खा था [illegible] भील के [illegible] का बहुत-सा हिस्सा बर्फ़ से ढँका हुआ [illegible] से लदे हुए सुन्दर पर्वतों ने इसकी शो[illegible] दिया था—जिधर देखते, बर्फ़ ही ब[illegible] थी।

यहाँ के मनोहर दृश्य ने हम[illegible] दी और इस भील के तट पर [illegible] के लि[illegible] चले गये। उस समय ऐ[illegible] होता था [illegible] के बाद विश्राम करने का अ[illegible] जा है [illegible]

यह भील भी हिन्दुओं [illegible] एक [illegible] है। इसका जल स्फटिक या दुग्ध [illegible] ज्वल है। जल [illegible] ही स्वादिष्ठ, शीतल और [illegible] क है। अमरनाथ जानेवाले यहाँ स्नान करते हैं [illegible] यथाशक्ति वरुण की पूजा-अर्चना कर रात्रि भर यथाशक्ति 'अमरनाथ' 'अमरनाथ' जपते-जपते काट देते हैं। हमने भी स्नान करने की कोशिश की, परन्तु जल के अधिक ठंडा होने के कारण [illegible] शीघ्र ही बाहर निकल आये।

सरकारी झोपड़ियाँ यात्रियों से भरी होने के कारण हमने अपना तम्बू एक कश्मीरी के ख़ेमे के समीप लगाया। यदि हम चाहते तो अगले पड़ाव की ओर उसी दिन चल पड़ते, परन्तु वहाँ के सुन्दर दृश्य ने हमें आगे नहीं जाने दिया।

धूप में लेटे हुए उस दृश्य का आनन्द लूट रहे थे। कश्मीरी के चूल्हे पर हमने कुछ चाय आदि तैयार की, जिसके पीने में अधिक स्वाद आया। सायंकाल को काले काले बादल आ गये और रात भर मूसलधार वर्षा होती रही, और कुछ ओले भी पड़े। शीत के मारे रात भर काँपते रहे। एक तो बर्फ़ीले पहाड़, फिर खुला मैदान और सन्नाटे की हवा, जिस पर इतने ज़ोर की वर्षा, सब मिलकर नाड़ियों के रक्त-प्रवाह को रोक देने के लिए पर्याप्त थे, अङ्ग-प्रत्यङ्ग ठिठुर रहे थे।

हमारे हाथ-पैर ख़ूब काँप रहे थे। हमें कश्मीरियों को बिना जूतों या जुर्राबों के देखकर आश्चर्य हो रहा था। छोटे छोटे बच्चों से लेकर स्त्रियाँ-पुरुष सबके सब इतनी सर्दी में सिवा एक बड़े लम्बे कुर्ते के शरीर ढँकने के लिए और कुछ भी नहीं था। हम हर प्रकार के गर्म वस्त्र पहने हुए थे, फिर भी थरथर काँप रहे थे। हमारा तम्बू 'वाटर-प्रूफ़' था, वर्ना जैसी वर्षा वहाँ रात्रि में हुई और जैसी सख़्त सर्दी पड़ी थी, हमारे मज़बूत शरीर भी शायद न बर्दाश्त कर सकते।

तीसरे दिन प्रातःकाल जब हमने अपने छोटे-से ख़ेमे से सिर बाहर निकाले तब चारों ओर पर्वतों पर रात को गिरी हुई नई बर्फ़ सूर्य की रश्मियों के नीचे ख़ूब जगमगा रही थी। हम कुछ खाने-पीने के बाद अपना बिस्तर-बोरिया अपनी पीठ पर रखकर तीसरे पड़ाव की ओर चल दिये। चढ़ाई का फिर सामना करना पड़ा, पेड़ों की छाया तो नहीं थी, परन्तु उसके बदले वहाँ की ठंडी वायु थकावट दूर करती जाती थी। पर ठंडी वायु भी थोड़ा और ऊपर चढ़ने पर इतनी तेज़ हो गई कि हमको अपने सिर और कानों को ढाँक कर चलना पड़ा। मेरे विचार में इस यात्रा की सबसे अधिक चढ़ाई इन दोनों पड़ावों अर्थात् शेषनाग और पंचतरनी के बीच में आती है। इसमें कोई शक नहीं कि इतना सामान उठाकर और फिर इतनी खड़ी चढ़ाई चढ़ने से हम बिलकुल पस्त हो गये
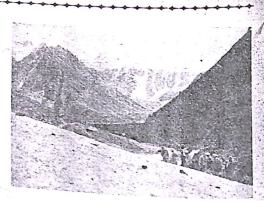
[पंचतरनी और अमरनाथ के बीच यात्री बर्फ़ पर चल रहे हैं।]

थे। परन्तु जब हम पंचतरनी के मैदान में पहुँचे तब वहाँ के सुन्दर और मनभावने दृश्य ने हमारी सब थकावट और टाँगों की पीड़ा दूर कर दी। पंचतरनी का पड़ाव एक खुले मैदान में एक छोटे-से नाले के तट पर है। यहाँ पर कुल तीन ही झोपड़ियाँ बनी हुई हैं। यहाँ से थोड़े फ़ासले पर चारों ओर बर्फ़ से लदे हुए पर्वत ही दिखाई देते हैं।

कोई ११ बजे का समय होगा जब हम पंचतरनी पहुँचे। भूख और थकावट की कोई हद न थी। भाग्य से मेरे एक पञ्जाबी मित्र जो अपनी स्त्री और बाल-बच्चों के साथ वहाँ आये हुए थे, मिल गये। वे अमरनाथ जी के दर्शन कर आये थे और अब लौटने की तैयारी में थे। उनके साथ चार-पाँच टट्टू और दो-तीन कश्मीरी नौकर भी थे। उनके पास खाने-पीने की सामग्री भी बहुत थी। मेरे जर्मन मित्र और मैंने पराठों और हलवे से अपनी अपनी भूख दूर की। उनके चले जाने के पश्चात् साधुओं की 'छड़ी' भी अमरनाथ जी के दर्शन आदि करके पंचतरनी के पड़ाव में लौटकर आ पहुँची और आते ही सबके सब खाना पकाने में लग गये। उसके बाद सबके सब उसी दिन पहलगाम की ओर चल दिये।

पूछने से मालूम हुआ कि पं[illegible] के आगे और कोई स्थान रात में ठहरने [illegible] का में बाज़ारें डालकर अमरनाथ-गुफा कुल ३ बा[illegible] के अनुभव, एक लगा। लोग पंचतरनी से जाकर [illegible] की दयालुता ख़सी को [illegible] ती है।

उमंग

[सामान पंचतरनी में रखकर हम घड़ी और केमरा लेकर गुफा के लिए रवाना हुए।]

और उसी दिन पंचतरनी के पड़ाव को लौट आते हैं। हमने भी ऐसा ही किया। केमरा और पहाड़ी लकड़ी जिसे 'बलम' कहते हैं और जिसकी निचली ओर लोहे की एक सीख लगी होती है, लेकर गुफा की ओर चल दिये। बाक़ी सामान हमने एक झोपड़ी में बिना किसी के सिपुर्द किये वा ताला लगाये रख दिया। गुफा में ४ बजे के लगभग पहुँच गये। पंचतरनी से चल कर एक पहाड़ी को काट कर एक घाटी में जिसमें गुफा है, उतरना पड़ता है, इसलिए थोड़ी-सी चढ़ाई चढ़नी पड़ी। मार्ग में कई बार बर्फ़ पर भी चलना पड़ा। कई यात्री गुफा से लौटते हुए मिले। घाटी से गुफा कोई ३०० फ़ुट की ऊँचाई पर है। जब हम इसको चढ़कर गुफा के नज़दीक पहुँचे तब भीतर से एक साधु के गीत की आवाज़ आई। मेरे मित्र ने जो हिन्दुस्तानी नहीं जानते थे, मुझे आगे कर दिया और स्वयं मेरे पीछे पीछे चलने लगे। गुफा में पहुँचकर हमने साधु जी को [illegible]णाम किया और आशीर्वाद पाया। गुफा उतनी [illegible] नहीं, जितनी ऊँची और चौड़ी है। [illegible] ट को देखकर हम दंग रह गये। [illegible] कि [illegible] त्येक बात से व्यक्त होती थी। [illegible] ग [illegible] क सर्दी थी। उसके एक

[पहलगाम में इस लेख के

कोने में बर्फ़ का एक टुकड़ा एक सुन्दर शिवलिंग की शकल में स्थित था। कई यात्री जो वहाँ पर मौजूद थे, पुष्प आदि से उसकी पूजा कर रहे थे। थोड़ी देर के बाद सबके सब गुफा से चल दिये। हमारे देखते ही देखते कबूतर का एक जोड़ा भी गुफा से बाहर को उड़ गया।

साधु जी गुफा के बीच में अकेले बैठे हुए थे। पिछले १२ वर्ष से वे इस गुफा में अकेले रह रहे हैं। परन्तु सर्दियों में वे श्रीनगर चले जाते हैं। मेरे साथ एक योरपीय को देखकर उन्होंने मुझसे उनकी जाति आदि की बाबत पूछा और ज्यों ही मैंने उनको बतलाया कि वे जर्मन हैं, उन्होंने उनके साथ सुन्दर जर्मन-भाषा में बातचीत करनी आरम्भ कर दी। मेरे मित्र और मैं दोनों यह देखकर हक्का-बक्का से रह गये कि एक साधु और संसार से इतनी दूर एक काली गुफा में और फिर अँगरेज़ी का ही नहीं, बल्कि जर्मन जैसी भाषा का ज्ञान रखता है! हम कोई एक घंटा तक जर्मन-भाषा में ही बातचीत करते रहे। साधु जी कोई ४५ वर्ष के होंगे। वे शीघ्र ही हमारे मित्र बन गये और हमारी हँसी-दिल्लगी में शामिल हो गये। उन्होंने हमें अपने स्टोव पर (बिना दूध की) चाय बनाकर पिलाई और खाने को कुछ बादाम, अखरोट और सूखे फल भी दिये। साधु महाराज नये ढङ्ग से रहते हैं और उनके विचार भी उदार हैं। उन्होंने हमें अपने जीवन की कुछ बातें भी बतलाईं। कोई १५ वर्ष तक वे 'जर्मन ईस्ट अफ़्रीका' में 'कस्टम आफ़िसर' रहे थे, इसलिए जर्मन-भाषा ख़ूब अच्छी तरह जानते हैं। इसके अलावा इँग्लिश और भारत की सब भाषायें अच्छी तरह जानते हैं। बड़ी कठिनाई से उन्होंने हमें अपना फ़ोटो लेने की इजाज़त दी। वे जानते थे कि भारत के साधुओं का नाम कितना बदनाम हो चुका है और उनके कितने फ़ोटो योरप के अख़बारों में क्यों छपते हैं। उन्होंने हमारे साथ राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, व्यापारिक तथा हर एक विषय पर बातचीत की। कोई दो घंटा के लगभग साधु जी के पास ठहरने के बाद हम पंचतरनी के पड़ाव को लौटे और सूर्य के अस्त होने से पहले वहाँ पहुँच गये। उक्त साधु जी विद्वान् और महात्मा हैं। उनकी मुलाक़ात का हम पर बड़ा प्रभाव पड़ा। मेरे जर्मन मित्र भी उस दिन से हमारे साधुओं को इज़्ज़त

से देखने लगे हैं। परन्तु पाठक अच्छी तरह जानते हैं कि भारत में ऐसे साधु कितने हैं।

रात हमने पंचतरनी में ही काटी। उस दिन सिवा हम दो के वहाँ और कोई यात्री नहीं था। अब हमारे पास खाने-पीने का बहुत थोड़ा सामान रह गया था। दियासलाई न होने के कारण हमें यात्रियों के चूल्हों की जाँच-पड़ताल करनी पड़ी। भाग्य से एक चूल्हे में एक-दो सुलगते अंगारे मिल गये, जिससे हमने अपनी झोपड़ी में आग जलाई और कुछ चाय आदि भी पकाई। जब तक जागते रहे, आग सुलगाये रहे और गर्म रहे, परन्तु जब नींद आगई तब ख़ूब सर्दी लगी और रात भर सिकुड़े हुए अपने सोनेवाले थैलों में पड़े रहे।

चौथे दिन प्रातःकाल कुछ खाने-पीने के बाद हम शेषनाग की ओर चल दिये। आकाश बादलों से साफ़ था और सूर्य की प्यारी प्यारी किरणें मन को बड़ी प्यारी लगती थीं। अब चूँकि उतराई ही उतराई थी, इसलिए चलना कुछ आसान था और कोई २ घंटे में हम शेषनाग के पड़ाव में पहुँच गये। यहाँ पहुँचने पर हमें मालूम हुआ कि एक झोपड़ी में चार अँगरेज़ स्त्रियाँ ठहरी हुई हैं और वे अमरनाथ को जा रही हैं। परन्तु जब हम इस पड़ाव में पहुँचे तब उस समय वे झील की सैर करने और फ़ोटो लेने के लिए नीचे गई थीं। इनके लिए बड़ा लम्बा-चौड़ा बन्दोबस्त था। कई ख़च्चर और कई नौकर और अनेक प्रकार की खाने की वस्तुएँ थीं। इतना सब कुछ होने पर भी मैं उनकी बड़ी हिम्मत समझता था। परन्तु मेरे जर्मन मित्र के लिए एक मामूली बात थी। बाद में उन्होंने मुझे बतलाया कि योरप और ख़ास जर्मनी में स्त्रियों का ऐसा करना एक मामूली और आम बात है। हम धूप में लेटे हुए थोड़ा आराम कर रहे थे कि कुछ देर के बाद वे बहादुर स्त्रियाँ अपनी झोपड़ी में आ गईं। हमारी उनसे

[अमरनाथ की गुफा।]

मुलाक़ात हुई और उन्होंने मुझसे अमरनाथ के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें पूछीं कि हम हिन्दुओं के लिए क्यों यह तीर्थस्थान है। हमने रात का खाना उनके यहाँ खाया और उस गर्म खाने में हमें मज़ा आया।

पाँचवें दिन हम सूर्य निकलने से पहले पहलगाम की ओर चल दिये। उतराई ही उतराई होने के कारण थकावट बहुत ही कम होती थी। हमारी खाने-पीने की सामग्री समाप्त हो गई थी, इसलिए बोझ भी कुछ हलका हो गया था। सायंकाल से पहले हम सुन्दर पहलगाम पहुँच गये।

न
मिला
के एकान्त
[illegible] करके मैं
का में बाज़ारें डालकर
एक अनुभव, एक लगा।
की दयालुता ख़सी को
ती है।   उमंग

अरे, ये दो दुर्लभ प्रिय नेत्र,
इन्हीं में छिपा हुआ संसार।
कराता हमको परिचित विश्व,
नयन की महिमा का विस्तार॥

लेरिं । निकाला
ज़रा पहन

इन्हीं में स्वप्न, इन्हीं में सत्‌ली।"
इन्हीं से होता जग-व्यवह, दौड़ गई।
यही हैं छलिया प्राणों में ही छोड़-
इन्हीं में माया का व्यापार न हुआ।
इनमें ही पिछली झाँकी है; ठूंस दिया।
इनमें ही अब का उत्साह। ी नाप लेकर
इनकी ही नौका पर चढ़कर, व से फ़िसला
तरना है संसार अथाह॥ या। प्रसन्नता
नयनों में है शरद्-प आपके पाँव के
नयनों में तम है ।"
नयनों में ही उमड़ र्य से उसकी ओर
लेता पारावार जा रहा था कि रघु
इनमें ही हैं मधुर स्मृतियाँ का ?"
इनमें अन्तर के उद्गार प क्या देंगे ?"
अरुणोदय की लाली इए ही नहीं।" अपने हाथ
अरुणा वरुणा की अनुर फेंकते हुए कहा।
यहीं बसा।"
लेकर सँग रोकते रोकते भी रघु फिर
यहीं आह
यहीं पड़ीड़ हमारे इर्द-गिर्द इकट्ठी हो
नयनों में ही दौड़ कर पकड़ते हुए उस भीड़ को
नयनों में लगता ी लगा।
काली पुतली सौदा ले। दो रुपया न सही। कुछ
विकता मन अपना हता हुआ वह मेरे पीछे हो लिया।
नयनों दिया।
नयनों
नयनों।"
भांत वलि
जो हिन्यनों में है विष
और स्वयं में अमृत या।
हमने साधु जी मरता, मृत ठ आना ही।"
गुफा उतनी ... ड़ा अनु आया कि इनकार कर दूँ।
कि नयनों ने ही कहा था। पर उस
रिणीं नों में था या लोगों के चेहरों
ने मेरी जिह्वा पर

[पहलगाम में इस लेख के

मुहर लगा दी। चुपके से आठ आना पैसा निकालकर उसके हाथ में रख दिया और जूता उससे ले लिया।

(२)

घर में घुसते ही ख़बर फैल गई। घरवाले मुझे घेरकर खड़े हो गये। प्रशंसा की वे नदियाँ बहाने लगे, मानो मैं विश्व-विजय से लौट रहा हूँ। मैंने सँभलने की तो बहुत कोशिश की, पर व्यर्थ। आख़िर हूँ तो मनुष्य ही। प्रशंसा का वह उमड़ता हुआ वेग सीधा मेरे मस्तिष्क में जा पहुँचा। मैं मद-मत्त हो उठा। बग़ल से जूता निकालकर उसे पाँव में पहन लिया और अकड़कर चलते हुए मेरे मुख से भी जूते के प्रति एक-आध प्रशंसा का वाक्य निकल ही गया। अब तो उन लोगों की प्रसन्नता का वारापार न रहा। मेरी पीठ थपथपाते हुए मेरी बड़ी भौजाई ज़रा जोश से बोलीं—"देखना, कहीं अब इसे उतार न देना।"

"यह भी कभी हो सकता है।" मैंने प्रशंसा-द्वारा प्रेरित निश्चय-भरे स्वर में कहा।

कहने को तो मैं यह कह गया, पर सारा जोश दो दिन में ही ठंडा पड़ गया। इतने समय में ही जूते ने मेरे पाँव को छलनी कर दिया था। छाले फूट फूट कर पकने और पक पककर फिर फूटने लगे। एक एक पाँव चलना भारी हो रहा था। जी में तो आता था कि उस जूते को उतारकर नाली में फेंक दूँ, पर झूठी लाज कुछ नहीं करने देती थी। घर के बड़े से लेकर छोटे तक की ओर कातर तथा दीन नेत्रों से देखता था कि शायद उनमें से कोई स्वयं ही मुझ पर तरस खाकर उस कम्बख़्त जूते को उतार देने की सलाह दे दे। पर कहाँ! उन्हें तो मेरे पाँवों के लिए मेंहदी पकाने तथा जूते को कड़वे तेल से तरबतर करने के सिवा और कुछ सूझता ही नहीं था। अब करूँ तो क्या? सहसा ईश्वर की याद आ गई। लगा प्रार्थना के द्वारा उसी की रहस्य-मय पर सर्वव्यापक अनुकम्पा को जगाने। इसी झगड़े में चार दिन और बीत गये। ईश्वर महोदय ने करवट तक न बदली। अब और किसकी शरण जाता। इस आशा में कि शायद भूलकर उस शरीर-रहित आत्मा की दिव्य दृष्टि इधर पड़ जाय, मैं ऊपर से तो प्रार्थनायें करता हुआ पर हृदय से उसे कोसता हुआ लगभग निराश होकर बैठ गया। पर निराशा से ही तो आशा की रेखा फूटती है। इससे अगले दिन ही ब्रह्माण्ड-कारी महोदय

को मेरी सुध भी आई। कह नहीं सकता, क्यों। शायद मेरी प्रार्थना की मात्रा पूरी हो गई थी अथवा मेरे कोसने ने उन्हें चुटीला कर दिया था।

ख़ैर। उस दिन मैं अर्धसुषुप्ति की अवस्था में अभी तक चारपाई पर ही पड़ा था कि किसी ने ज़रा ज़ोर से मेरा कंधा हिलाया। मैं आँखें मलता हुआ उठ बैठा। सामने ससुराल का नाई खड़ा था।

"क्यों?" मैंने पूछा।

"आपको और बीबी को बुला भेजा है। लड़कों का मुंडन-संस्कार है।" उसने जवाब दिया।

"कब जाना होगा?"

"आज ही चलें तो अच्छा है, पर परसों तक तो अवश्य ही पहुँचना होगा।"

"आज ही!" मैं आनन्द से उछल पड़ा। सोचा, इस यात्रा में इन जूतों को कहीं अवश्य इधर-उधर कर दूँगा।

(३)

गाड़ी बारह बजे छूटती थी। पर हम दस बजे ही तैयार होकर चल दिये। अब तक मेरा व्यक्तित्व इतना महत्त्व प्राप्त कर चुका था कि उस दिन घर के सभी लोग हमें गाँव के बाहर तक छोड़ने आये। पर उन सबकी दृष्टि हममें से किसी पर नहीं, बल्कि मेरे पाँवों में पड़े हुए जूते पर अटक रही थी, मानो उन चेतना-हीन चमड़े के टुकड़ों में जीवन डालकर उन्हें समझा रही हो कि देखना कहीं इस गँवार के पंजे को न छोड़ देना। और वह दुष्ट भी फड़फड़ाती हुई चिड़िया की तरह चीं चीं करता मानो मुझे चिढ़ाता हुआ उन्हें आश्वासन दे रहा था। मुझे घरवालों के अज्ञान पर हँसी आ रही थी और जूते की उद्दंडता पर रोष। आह! यदि वे मेरे हृदय में उस समय पैठ सकते तो उनकी आशा का बाँध बालू की दीवार की भाँति छिन्न-भिन्न हो जाता। उनके लाख यत्न और जूते की लाख चिल्लाहट भी मेरे निश्चय को हिला तक न सकते थे।

"अच्छा अब आप जाइए। अधिक कष्ट न कीजिए।" गाँव के बाहर पहुँचकर मैंने उनसे कहा।

"देखो जूते को तेल देते रहना।" मेरी बड़ी भौजाई ने कहा।

"और दादा, पाँव में मेंहदी लगाना न भूलना।" रघु बोला। उसकी नस-नस से शरारत टपक रही थी।

और घूँघट के बीच से मेरी छोटी भौजाई बोलीं—"और तेल में ज़रा-सा मोम अवश्य डाल लेना।"

मैं क्रोध से झल्ला उठा। जी में तो आया कि अपने मंसूबों की गठरी खोलकर उनके सम्मुख पटक दूँ। फिर देखूँ, उनकी ज़बान कैसे चलती है। पर इस डर से कि कहीं बना-बनाया खेल ही न बिगड़ जाय, मैंने संयम से काम लिया। अपनी पत्नी की बाँह कसकर पकड़ उसे खींचता हुआ बिना किसी को कुछ जवाब दिये स्टेशन की ओर चल दिया। ससुराल का नाई मुस्कराता हुआ हमारे पीछे हो लिया।

गाड़ी आई तो देर में, पर भीड़ का इतना रेला-पेला लेकर आई कि मैं खिल उठा। उस भीड़ में जूते को खपा देना कौन बड़ी बात है? मैं एक डिब्बे में घुस गया। उसके एक कोने में ज़रा-सी जगह ख़ाली थी। अपनी पत्नी को ढकेलकर मैंने वहाँ बिठा दिया।

"और तुम?" उसने पूछा।

"दरवाज़े के पास खड़ा होकर सफ़र काट दूँगा। कौन बड़ी दूर जाना है?" मैंने जवाब दिया। सोचा था, वहाँ से जूते को फेंक देना बहुत आसान होगा। पर कहाँ! कुछ अपने आपको सिकोड़कर कुछ दोनों ओर के यात्रियों को ज़रा आगे सरकजाने की प्रार्थनाकर मेरी पत्नी ने कुछ इंच स्थान आधे क्षण में ही बना लिया और मेरी बाँह खींचकर मुझे वहाँ जड़ दिया। नापित महाशय मेरे पीछे खड़े थे।

"जाओ, तुम किसी और डिब्बे में स्थान देख लो।" मैंने उससे कहा।

"अरे! कहाँ जाऊँगा? यहीं बैठ जाता हूँ।" यह कहते कहते उसने एक बार मेरी पत्नी की ओर देखा, और फिर मुस्कराता हुआ मेरे पाँवों से सटकर बैठ गया।

मैं सब समझ गया। मुझे यह स्वप्न में भी आशा न थी कि घरवाले अपने षड्यंत्र में इस नापित को भी मिला लेंगे। पर अब क्या कर सकता था? दाँत पीस ... गया। मन में कहा, यहाँ न ... एकान्त तो इन दोनों से पीछा ... मिल तथ मरीका में बाज़ारें डालकर में जा मिलेगी और यह ... गी मह्राजिक अनुभव, एक लगा। फिर देखूँगा, इस एक-दूसवाले ... आता है। ससुराल ... सभी को ... उठती है। उमंग

थे, जहाँ इन्हें फेंक दूँ तो प्रलय तक पड़े सड़ते रहें। लगा अपने मस्तिष्क में ऐसे स्थानों की सूची बनाने और उनमें से जूता छिपाने के लिए सबसे उपयुक्त स्थान छाँटने। कभी इस स्थान की ओर झुकता था, कभी उसकी ओर, पर निश्चय कुछ नहीं कर पाता था। सबमें कोई न कोई दोष दीख जाता था। यहाँ तक कि इसी उधेड़-बुन में स्टेशन आ गया। हम उतर कर गाँव को चल दिये।

(४)

जूते को छिपाने के अवसर तो मुझे बहुत मिले, पर उस भीड़-भड़ाके में मैंने कुछ भी करना उचित न समझा। मैं जानता था, मेरे नंगे पाँव देखकर कइयों के हृदय में गुदगुदी होगी और वे इस विषय में अनधिकार चेष्टा किये बिना न रह सकेंगे। मेरे लाख बहाने गढ़ने पर भी जूते की तलाश आरम्भ हो जायगी। इसलिए दो-चार दिन तक और उन दुष्टों के अप्रिय आघातों के सहने का निश्चय कर लिया।

आख़िर मुंडन-संस्कार ज्यों-त्यों समाप्त हो गया। अतिथि घरों को लौटने लगे। यहाँ तक कि पाँचवें दिन घर लगभग ख़ाली हो गया। मैंने भी अब जाने की ठानी और जूते को छिपाने की भी। इससे अगले दिन अभी पौ फटने में कई घड़ियों की देर थी। घरवाले गहरी नींद सो रहे थे। मैं चुपके से उठा और जूते को लेकर घर की उस कोठरी में पहुँचा जिसमें सदा कूड़ा-करकट भरा रहता था, जिसमें किसी का जाना शायद वर्ष में एक-दो बार से अधिक नहीं होता था। उसी के एक कोने में ज़ंग से भरे लोहे के बीसों क़िस्म के टुकड़ों का एक बड़ा-सा ढेर पड़ा था। उसी के नीचे जूतों को दबाकर मैं धड़कता हुआ उलटे पाँव लौटकर अपनी चारपाई पर आ लेटा और सूर्योदय की प्रतीक्षा करने लगा। मन्द मन्द सुखद समीर बह रही थी, इसलिए मुझे एक हलकी-सी झपकी आ गई, जिसने बची-खुची रात्रि को समेट लिया, क्योंकि जब फिर मेरी आँख खुली तब सूर्य की पहली किरणें मेरे चेहरे हमने साधु जी मरता, मृत ह्वाकर उठा और नहाने-धोने गुफा उतनी ... आ अउ अ

... किनयनों ने सजधज कर अपनी ... गिंग्नों में थंक्या बात है?" ... लिए आया हूँ।"

[पहलगाम में इस लेख के ...

"आज? इतनी जल्दी क्या पड़ी है?"

"मुझे एक बहुत ज़रूरी काम है।"

"काम?" मेरी सास ने मुस्करा कर मेरी ओर देखा—"तुम कब से काम करने लगे हो? ख़ैर, पर मैं शामो को अभी नहीं जाने दूँगी।" शामो मेरी पत्नी का नाम था।

मेरा हृदय प्रसन्नता से उछल पड़ा। यही तो मैं चाहता था। न वह साथ में रहेगी, न नंगे पाँवों की चर्चा होगी। पर उसकी माता के सामने प्रसन्नता प्रदर्शित करना एक बला मोल लेना था। इसलिए अपने स्वर में खेद भरकर मैंने अपनी अनुमति दे दी—"अच्छा ऐसे ही सही, पर एक सप्ताह तक उसे भेज अवश्य देना।"

"अच्छा। तुम शाम की गाड़ी से ही जाओगे न?"

"नहीं। अभी दस बजे की गाड़ी से।" अब भी अधिक देर नंगे पाँव वहाँ रहना ख़तरनाक था।

"परन्तु वह गाड़ी तो तुम्हारे गाँव के निकट ठहरती ही नहीं।"

मैं इस बात को भूल ही गया था। अब? मैं सोचने लगा और मस्तिष्क ने शीघ्र ही राह भी सुझा दी—"मुझे रास्ते में अमृतसर में उतरना है।"

"क्या दरबार साहब देखना चाहते हो?" मेरी सास ने व्यंग्य से कहा।

"हाँ।" मैंने गम्भीर मुद्रा धारण किये जवाब दिया। और कर ही क्या सकता था?

उसने अधिक विवाद व्यर्थ समझकर मुझे आज्ञा दे दी। इससे थोड़ी ही देर के बाद मैं अपनी पोटली उठाकर स्टेशन को चल दिया। यद्यपि स्टेशन बहुत दूर था, पर कई दिनों के बन्धन के अनन्तर नई पाई हुई स्वच्छन्दता के मद में मेरे पाँव मानो पवन पर तैरते हुए मुझे लिये उड़े जा रहे थे। अभी जब मैं स्टेशन पर पहुँचा गाड़ी आने में पूरे पन्द्रह मिनिट थे।

मैं टिकट ख़रीदकर स्टेशन के मध्य में एक वृक्ष की छाया में बैठ गया और अपने पाँवों पर हाथ फेरने लगा। कितने प्यारे मालूम देते थे वे जूतों के बिना। मेरे हृदय में आनन्द की एक बिजली दौड़ गई। अब देखूँगा, घर वाले क्या कहते हैं। एक एक को न चिढ़ाया तब बात है। मेरी कल्पना ने तेज़ी से चित्र खींचने आरम्भ कर

दिये। घरवालों की क्रोध तथा खीझ से विकृत ऐसी ऐसी सूरतें मेरे सम्मुख नाचने लगीं कि मैं विह्वल हो उठा और मेरे मुख से अपने आप हँसी की धारायें बहने लगीं। न-जाने मैं कितनी देर ऐसे ही बैठा रहा। पर मैं अभी इन्हीं विचारों में तल्लीन था कि गाड़ी की भूचाल की-सी गड़गड़ाहट ने मुझे चौंका दिया। मैं उतावली से उठ खड़ा हुआ और अपने चारों ओर देखा। पता नहीं क्यों मेरे इर्द-गिर्द कोई पाँच-सात मनुष्य खड़े थे और मेरी ओर ऐसा देख रहे थे, मानो चिड़ियाघर से कोई जीव भाग आया हो। ख़ैर, मुझे उठते देखकर वे सब नौ-दो-ग्यारह हो गये।

गाड़ी में वैसी भीड़ न थी। मेरे सामनेवाला डिब्बा लगभग ख़ाली पड़ा था। चारों ओर की बेंचों पर दो-दो चार-चार यात्री बैठे थे। मध्य की बेंच पर केवल एक बूढ़ा-सा मनुष्य मैले-कुचैले कपड़े पहने एक बड़े से लट्ठ का सहारा लिये बैठा सामनेवाले मनुष्य से बातचीत में लगा था। शायद उसके बाल-बच्चों की संख्या और पत्नी के स्वभाव-विषयक प्रश्न पूछ रहा था। मैं उसी बूढ़े के पास जा बैठा। मेरे आते ही उसने सामनेवाले यात्री को छोड़कर मेरी ओर ध्यान दिया—"तुम किधर जा रहे हो?"

"अमृतसर।"

"काम से?"

"नहीं। दरबार साहब देखने।"

"दरबार साहब"? फिर क्या था वह लगा उस स्वर्ण-मन्दिर की प्रशंसाओं के पहाड़ गढ़ने। एक आध क्षण तो मैं उसकी अति-रंजना-भरी बातों को सुनता रहा। फिर 'हुँ हुँ' करता हुआ ऊँघने लगा। मुझे ऐसी अवस्था में बैठे कठिनता से एक मिनट बीता होगा कि बन्दूक़ की गोली की भाँति मेरे कान में आवाज़ पड़ी, "दादा।" और उसके साथ ही पटाक करता हुआ मेरा जूता किसी दैवी कोप की भाँति मेरी गोदी में आ गिरा। मैं काँप उठा। अभी तो मैं इसे उस बड़े ढेर के नीचे छिपाकर चला आ रहा था। पता नहीं, कौन-सी प्रेत-प्रेरणा ने इसे इतनी शीघ्र फिर यहाँ ला फेंका। कुछ क्रोध पर अधिक विस्मय-सूचक दृष्टि से मैंने प्लेटफ़ार्म पर देखा। सामने नाई खड़ा था और हाँफता हुआ अपनी साँस सँभालने में लगा था। मेरी जिह्वा पर बीसियों शब्द आये, पर गले में अटक कर रह गये। आख़िर बड़ी कठिनता से केवल इतना कह सका, "कहाँ मिला?"

अब तक यद्यपि वह बहुत कुछ सँभल चुका था फिर भी उखड़ते हुए स्वर में कहने लगा—"अँधेरे कमरे में लोहे की चीज़ों के ढेर के नीचे। आपके आने से थोड़ी ही देर बाद बीबी जी नये बछड़े के लिए एक खूँटी ढूँढ़ने गईं तो इत्तिफ़ाक़ से उनका हाथ इन पर जा पड़ा। और उसी समय उन्होंने मुझे स्टेशन की ओर भगा दिया।"

"पर वहाँ रक्खा किसने?" मैंने भोले-भाले स्वर में पूछा। अब तक मैं अपने आप पर पूरा प्रभुत्व पा चुका था।

"किसी लड़की की शरारत होगी। बीबी जी उन पर बहुत ख़फ़ा हो रही थीं।" उसने जवाब दिया, पर इसके साथ ही उसके चेहरे पर एक अर्थभरी मुस्कान खेल उठी। मुझे चीरती हुई दृष्टि से देखते हुए वह फिर कहने लगा—"पर यदि सच पूछो तो—"

परन्तु वह अपना वाक्य समाप्त न कर सका। गाड़ी जो कुछ देर से सीटी-द्वारा अपने चलने की सूचना दे रही थी, झटका देकर सहसा चल दी। देखते ही देखते वह मेरी नज़रों से ओझल हो गया। मैंने जूते को अपने पाँवों में पहन लिया और अपने भाग्य को कोसता हुआ मस्तक पर हाथ रखकर बैठ गया। पर बूढ़े मियाँ कब चैन लेने देते। मुझे हिलाकर बोले—"जूता है ख़ूब मज़बूत।"

जी में तो आया कि उससे कह दूँ कि यदि इतना पसन्द है तो तुम्हीं ले लो, पर न-जाने वह बुरा मान ले, इसलिए 'हाँ' कहा और उससे मुँह मोड़कर उस आठ आने के जूते को नीचा दिखाने का ढंग सोचने लगा।

(५)

सिखों के स्वर्ण-मन्दिर की अद्भुत कारीगरी का निरीक्षण करने के अनन्तर मैं थोड़ा थककर मन्दिर को चारों ओर से घेरे हुए तालाब की सीढ़ियों के एक एकान्त कोने में आ बैठा। धोती को घुटनों में सदाँना करके मैं अपने पाँव तालाब के निर्मल तथमरीका में बाज़ारें डालकर वहाँ तैरती हुई रं-बिरंगी मछ्लाजिक अनुभव, एक लगा। कितनी उमंग से वे एक-दूसवाले की दयालुता ख़नी को चीर रही थीं। उमंग? ण्उठती है। उमंग

ही उमंग दीख रही थी। मेरा हृदय भी आज उमंगों से भर रहा था, क्योंकि आज मैं अपने जूते के शाप से सच-मुच मुक्ति पा चुका था। उस जूते के गाड़ी में छोड़े मुझे लगभग तीन घंटे बीत चुके थे। अब तक वह मुझसे बीसियों मील दूर जा चुका होगा और प्रतिक्षण मेरे और उसके बीच का अन्तर बढ़ रहा था। यदि किसी की दृष्टि उस पर पड़ भी गई तो विशेष यत्न करने पर भी जूते के स्वामी का पता न चल सकेगा। क्योंकि किसी आसुरी बल-द्वारा वह जूता यदि कहीं जीवन भी पा जाय तो भी उसकी ज़बान न खुल सकेगी। आख़िर है तो वह किसी मूक पशु की खाल का ही बना न। अब मुझे उस जूते से कोई भय न था। अब देखूँगा कौन-सा जूता मेरे पाँव के निकट आने का साहस करता है। मैं इसी विजयोल्लास में उठा और झूमता हुआ मन्दिर के बड़े द्वार की ओर बढ़ने लगा, क्योंकि मुझे घर ले जानेवाली गाड़ी छूटने में अब थोड़ी ही देर थी। मैं इसी अलमस्त चाल से चलता हुआ बाहर निकलकर स्टेशन की ओर चल दिया। पर मैं अभी कठिनता से दो-चार क़दम ही गया था कि किसी ने पुकारा, "सुनिए तो।"

मैंने मुड़कर देखा तो गाड़ीवालें बूढ़े मियाँ एक मैले-से कपड़े में लिपटा हुआ कुछ बग़ल में दबाये खड़े थे। मेरा माथा ठनका। इनका यहाँ क्या काम? क्या मेरा जूता ही तो बग़ल में लिये हुए नहीं हैं। मेरा हृदय पसलियों से ठोकरें खाने लगा, गला सूखने लगा। पर शायद कुछ और चीज़ हो। मैंने साहस करके पूछा—"क्यों, क्या बात है?"

"आपका जूता—" उसने बग़ल की ओर हाथ बढ़ाते हुए कहा।

"मेरा जूता?" मेरा सिर घूम उठा, टाँगें काँपने लगीं, आँखों के आगे बादल छा गये। लगभग संज्ञाहीन होकर मैं सिर थामकर पास की एक बन्द दूकान के तख़्ते पर बैठ गया।

"हाँ आप [illegible] में भूल आये थे। मैं उठा लाया। जा[illegible] मन्दिर देखने अवश्य आयँगे, इसी लिए [illegible] आपने प्रतीक्षा बहुत करवाई है। [illegible] यह कहकर बूढ़े ने वह जूता मे[illegible] [illegible]ना हाथ में आते ही

नता श्ला यहीं पहुँचा नयन दो घंटे से बैठा हूँ। रे हाथ में पकड़ा दिया।

मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानो साँप ने काट खाया हो। उछलकर उठ बैठा और लड़खड़ाती-सी ज़बान से मेरे मुँह से निकला—"इसे आप ही ले जाइए।"

"मेरे पाँव में यह छोटा है"। उसने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए कहा। जिसका मतलब यह था कि यदि यह उसे ठीक होता तो वह पागल न था जो मेरी तलाश में निकलता। मैं समझ गया कि उसने इतनी दौड़-धूप मेरे प्रति प्रेम अथवा सेवा-भाव के कारण नहीं, बल्कि कुछ ताँबे के टुकड़ों की आशा में की है। यद्यपि असल में तो वह जूता लाकर उसने मेरा हृदय टूक टूक कर दिया था, पर सांसारिक दृष्टि से तो उसने मुझ पर एक उपकार ही किया था। इसका बदला तो चुकाना ही होगा। मैंने जेब से एक चवन्नी निकाली और उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा—"आपको कष्ट तो बहुत हुआ है, पर आशा है, मेरा अनुरोध मानकर इस तुच्छ भेंट को अवश्य स्वीकार करेंगे।"

उतावली से हाथ बढ़ाकर चवन्नी पकड़ते हुए उसने कहा—"अरे! तुम तो योंही तकलीफ़ कर रहे हो।"

इससे आधे क्षण के बाद ही वह बाज़ार की भीड़ में जा मिला।

चवन्नी तो मैंने अवश्य दे दी, पर मेरे रोम रोम में उस दुष्ट जूते के प्रति अग्नि भड़क उठी। मैं जूता उठाकर तेज़ी से बस्ती से बाहर की ओर भागा। कोई एक मील की दूरी पर एक बीरान-सा पृथ्वी का टुकड़ा था, जहाँ आक और घास-फूस के सिवा कुछ न उगा था। चाकू से वहीं एक गढ़ा बनाया। ठोकर लगाकर उसी में मैंने जूते को फेंक दिया। गढ़े को मिट्टी से भरकर मैं वहाँ से स्टेशन की ओर चल दिया।

उसी शाम मैं घर पहुँच गया। घरवालों से क्या बातचीत हुई, इसका वर्णन करना तो अब व्यर्थ है, पर वह सारी रात मैंने बहुत बेचैनी से काटी। उस जूते ने स्वप्नों में ऐसे भयानक रूप धारण किये कि मैं पल-पल पर काँपता चला गया। वह रात्रि क्या मुझे तो अब तक उस जूते का धड़का लगा हुआ है। बहुत दूर आकाश में उड़ते हुए पक्षियों का जोड़ा भी देख लेता हूँ तो काँप जाता हूँ। ऐसा प्रतीत होता है, मानो मेरे पाँव के वे दोनों जूते पंख लगाकर मेरी ओर बढ़े आ रहे हैं।

अमरीका और योरप में अन्तर

श्रीयुत सन्तराम, बी० ए०

भारत से जो युवक अमरीका जाते हैं वे उस पर इतने मुग्ध हो जाते हैं कि दस-दस बरस तक घर लौटने का नाम तक नहीं लेते। जब वापस आते भी हैं तब अमरीका को याद कर कर झूमते रहते हैं। पूछने पर कि आप स्वदेश को छोड़कर अमरीका की इतनी अधिक क्यों याद किया करते हैं, वे उत्तर देते हैं—महाशय, अमरीका का क्या पूछते हो? वह देश नहीं, स्वर्ग है। उसके सामने भारत नरक जान पड़ता है। हो सकता है, हमारे युवकों को भारत के परतंत्र होने के कारण स्वतंत्र अमरीका स्वर्ग जान पड़ता हो। परन्तु मैंने तो स्वराज्यभोगी योरपवालों को भी अमरीका का गुणगान करते देखा है। इससे मालूम होता है कि अमरीका में ऐसी अनेक विशेषतायें हैं जो योरप में भी नहीं। श्रीमती क्रिस्टा विन्सलो नाम की एक आस्ट्रियन देवी अमरीका गई थीं। वे लिखती हैं—"अमरीका में क्या बात है जिससे हमारी तबीअत प्रसन्न हो जाती है? क्या कारण है कि जितना सुख मैं यहाँ अनुभव करती हूँ, उतना किसी दूसरी जगह नहीं? मेरे अपने देश में मेरा घर है, सम्पत्ति है, और पक्की आमदनी है। इस देश में मेरा कोई सम्बन्धी भी नहीं। मैं यहाँ ठहरी भी मुश्किल से आठ मास हूँ। फिर कारण क्या है?"

यही अवस्था प्रत्येक दूसरे अमरीका-प्रवासी विदेशी की है। जब उससे यही प्रश्न पूछा जाता है तब उसे अनेक छोटे छोटे कारण याद आते हैं। अमरीका में ऐसी सहस्रों छोटी छोटी सुविधायें हैं जो जीवन को सुखी बना देती हैं। छोटी छोटी चिन्ताओं के इस प्रकार दूर हो जाने से, रोज़ के झंझटों के इस प्रकार कम हो जाने से गृहस्थ को बड़ा आराम मालूम होने लगता है, क्योंकि अपने देश में वह इन्हीं चिन्ताओं और झंझटों के भार के नीचे दबा रहता था। अमरीकावाले इसका अनुभव नहीं कर सकते।

अमरीका में एक विवाहिता स्त्री गृहस्थी को चलाने के साथ साथ कोई नौकरी-धन्धा भी बड़े मज़े से कर सकती है। कारण यह है कि सारा देश इस प्रकार सुसंगठित है कि गृह-कार्यों के लिए मनुष्य को बहुत कम दौड़-धूप करनी पड़ती है। अमरीका में आप घर बैठे ही टेलीफ़ोन से घर का सारा सौदा ख़रीद सकते हैं। आपकी मँगाई हुई वस्तु साफ़ और सुन्दर पैकट में बन्द आपके पास पहुँच जायगी। आपको पूर्ण निश्चय रहेगा कि चीज़ अौवल दर्जे की होगी, दूकानदार घटिया नहीं भेजेगा। अमरीका में इस प्रकार मनुष्य को बहुत-सा अवकाश मिल जाता है।

योरप में अच्छी गृहस्थ स्त्री को अवकाश न मिलने की सदा शिकायत रहती है। उसे रोज़ कई घंटे घर की आवश्यक वस्तुओं के ख़रीदने में ख़र्च करने पड़ते हैं। उसे अच्छी तरकारी तभी मिल सकती है जब वह ख़ुद कुँजड़े की दूकान पर जाकर ख़रीदे, नहीं तो सड़ीगली के अतिरिक्त उसे पूरी भी नहीं मिलेगी। उसे कुँजड़े से भी बढ़कर चालाक होना पड़ता है, और इस बात का उसे अभिमान भी रहता है।

नानबाई की दूकान दूर, दूसरे बाज़ार में, है। योरप में आपको ताज़ी रोटी तभी मिलेगी जब आप उसकी दूकान पर जाकर अपने हाथ से चुनकर रोटियाँ लेंगे। तरकारी और मांस आपको एक ही दूकान से नहीं मिलेगा। फल और तरकारी के लिए भी दो भिन्न भिन्न दूकानों पर जाना पड़ेगा। दूध, अंडे और मक्खन एक जगह नहीं मिल सकते। सोम, बुध और शनिवार के सिवा, प्रत्येक वस्तु बासी मिलती है। बाज़ार के दिनों में मनुष्य को सवेरे उठना पड़ता है, क्योंकि जो किसान मण्डी में चीज़ें बेचने आते हैं वे दोपहर को बेचना बन्द करके भोजन करने चले जाते हैं।

दूसरे देशों में क्रय-विक्रय का काम बड़ा थका देने-वाला होता है। दूकानदार और ग्राहक एक दूसरे को पसन्द नहीं करते। वे एक-दूसरे को चोर समझते हैं। योरप में इसे प्रकृति का नियम समझते हैं। जर्मनी में दूकानदार समझता है कि मेरा माल ग्राहक के रुपये से अधिक मूल्य-वान् है। इसलिए उसके एक प्रकार का अभिमान-सा टपकने लगता है। वहाँ की दूकानों में सदा ग्राहक ही पहले 'धन्यवाद' कहता है। परन्तु अमरीका में बाज़ार करना—क्रय-विक्रय करना—एक सामाजिक अनुभव, एक प्रसन्नता की बात है। वहाँ बेचनेवाले की दयालुता ख़रीदनेवाले के द्वारा प्रतिध्वनित हो उठती है।

भिन्न भिन्न श्रेणियों के लोगों में पारस्परिक सम्मान-मूलक यह अद्वितीय स्वतन्त्रता अमरीका की सच्ची लोकसत्ता का एक अतीव सुखद लक्षण है। स्वामी और सेवक की पुरानी भावना वहाँ नहीं है।

योरप में मुसाफ़िरों को सराय में, होटल में, जहाँ भी जायँ, नौकरों को 'टिप' या बख़शीश देनी पड़ती है। बख़शीश के बिना वहाँ के नौकर काम ही नहीं करते। बम्बई के सबसे बड़े ताजमहल होटल में भी जब तक आप बहरे को, ख़ानसामे को, लिफ़्टवाले को, चौकीदार को 'टिप' न दें, वे आपका कुछ भी काम नहीं करेंगे। आप खाने के कमरे में बैठ जाइए, कोई आपसे पूछेगा तक नहीं कि आपको क्या चाहिए। इसलिए मुसाफ़िरों को तंग आकर अपनी ग़ौं के लिए होटल के नौकरों को घूँस देनी पड़ती है। योरप में आपको स्त्रियाँ मोटर चलाती हुई बहुत कम मिलेंगी। स्त्री का मोटर चलाना वहाँ एक विलासिता समझा जाता है। वहाँ स्त्री एक ऐसा तुच्छ प्राणी समझी जाती है जिसके पास कोई काम नहीं। अच्छी गृहस्थ देवियों के पास मोटर चलाने के लिए न तो समय ही है और न रुपया ही। योरप के मस्तिष्क में यह बात बैठी हुई है कि मोटर में बैठनेवाले व्यक्ति ज़रूर धनाढ्य ही होने चाहिए। वहाँ इससे अमीर और ग़रीब की पहचान होती है।

अमरीका में लम्बी, सीधी, सफ़ेद सीमेंट की सड़कें हैं। इन पर छाया नाम को भी नहीं। जगह जगह विज्ञापन चिपकाकर इनकी सूरत बिगाड़ दी गई है। परन्तु मोटर-वालों को इन पर चलने में भी एक आनन्द प्राप्त होता है। एक समय था, जब इन सड़कों पर मुसाफ़िरों की भीड़ रहती थी। सरायें थीं जहाँ बटोही विश्राम कर सकते थे। यात्रा का अपना निराला ही लुत्फ़ था।

आज अमरीका में सड़कों का पुनर्जन्म हुआ है। योरप में मोटर का शब्द सुनकर आज भी बत्तख़ें कायँ-कायँ करती हैं, कुत्ते भोंकते हैं, और घोड़े कान खड़े करते हैं। मोटर को बार बार रोकना पड़ता है। अभी तक टङ्की में पेट्रोल के चुक जाने का डर लगा रहता है, क्योंकि पेट्रोल मिलने के स्थान एक-दूसरे से बहुत दूर दूर हैं। मोटर ख़राब हो जाने की दशा में तो और भी दिक़्क़तें होती हैं। मीलों चले जाने पर, गाँव के गाँव निकल जाने पर, भी कोई गराज—मोटर को खड़ा करने का स्थान—नहीं मिलता।

परन्तु अमरीका की बड़ी सड़कों पर एक नये संसार की सृष्टि हो गई है। पुराने समय के टाँगों और इक्कों की सी बात हो रही है। जगह जगह मोटर के लिए खाना पीना, मकान और सेवक तैयार मिलता है। मोटर चलानेवाला भी थोड़े से पैसों से पेट भरकर खा सकता है। अमरीका के राजमार्गों पर सबके साथ समता का व्यवहार होता है। यहाँ सेवा करनेवाले और सेवा करानेवाले के बीच सद्भाव है। वह अमरीकन स्वतन्त्रता और लोकसत्ता का फल है।

अमरीका में जब आप होटल के नौकर से प्रार्थना करेंगे कि मेरा कमरा जल्दी साफ़ हो जाय तो वह उत्तर में आपसे कहेगा—"बहुत अच्छा, प्यारे!" परन्तु योरप में इसका उत्तर मिलेगा—"महाराज, सेवा के लिए हाज़िर हूँ" या "कृपानाथ, बहुत अच्छा।" योरपीय होटल के सेवक के शब्दों से दासता का भाव टपकेगा, और वह सदा बख़शीश की आशा करेगा। "बहुत अच्छा, प्यारे!" में ऐसा कोई भी भाव नहीं है। अमरीका में यात्री ऐसा अनुभव करता है, मानो प्रत्येक व्यक्ति उसे सहायता देना चाहता है। वहाँ बर्फ़वाला कहेगा—"आपको बर्फ़ की सन्दूक़्ची का ध्यान रखने की आवश्यकता नहीं। जब ज़रूरत होगी, मैं आप ही उसे भर दूँगा।" आपके कपड़े धोनेवाली धोबिन आपसे कहेगी—"मैं आप ही कपड़े इकट्ठे करके आपके सामने गिने लेती हूँ।"

अमरीका के होटल एक विशेष चीज़ हैं। संसार के और किस देश में आपको स्नानागार में साबुन पड़ा मिलेगा? और किस जगह आप होटल के बिल का चेक काटते समय उसमें नौकर की बख़शीश भी मिला सकते हैं, और ख़ुद नौकर आपको इसकी सूचना देता है? दूसरा कौन-सा देश है, जहाँ आपको इतनी जल्दी, और एक ही काग़ज़ पर सब ख़र्चों का बिल दे दिया जाता है? जब आप योरप के होटल से बाहर निकलेंगे तब कमरेवाला नौकर आपको अपना छोटा-सा बिल देगा, भोजनालय का बिल अलग मिलेगा, कुली अपना तीसरा बिल देगा। जब आप समझेंगे कि यह बखेड़ा ख़त्म हो गया तब प्रायः एक और मनुष्य आपके पीछे भागता हुआ आयेगा।

अभी आपको टेलीफ़ोन पर बात करने (कॉल) का और एस्पिरीन की एक डिबिया का बिल देना बाक़ी है। इसके साथ ही २० प्रति सैकड़ा कृपया बख़शीश भी दिये जाइए!

फिर अमरीका की रेल-गाड़ियाँ! आपके लिए वहाँ सुख और विश्राम के ऐसे साधन जुटाये गये हैं, मानो आप बीमारी की दशा में सफ़र कर रहे हैं। रेल के कुली आपसे ऐसे सुन्दर ढंग से व्यवहार करेंगे, मानो आपको आराम पहुँचाने पर ही उनका सारा भाग्य निर्भर करता है। इसका आशय यह नहीं कि वे लोग सब देवता हैं और निःस्वार्थ-भाव से सब कहीं प्रसन्नता और माधुर्य बिखेर रहे हैं। संभवतः यह सब पैसे के लिए है। परन्तु इससे यात्रियों की कितनी भलाई होती है?

अमरीका विशेष रूप से ईमानदार देश है। घर से आध मील दूर आप चीज़ें ख़रीदते हैं और टाँगेवाले के सिपुर्द कर देते हैं। इनमें आपकी पुस्तकें होती हैं, किराना होता है, चिट्ठियाँ और चेक होते हैं। आप उनको ताले में बंद नहीं करते और न उनकी रखवाली के लिए कोई अपना आदमी बैठाते हैं। वे घंटों वहाँ खुली पड़ी रहती हैं। पर क्या मजाल जो उनमें से एक भी वस्तु चुरा ली जाय? टाँगेवाला अपने आप उन्हें आपके मकान पर पहुँचा देगा। यह बात योरप में कहाँ?

योरप में पुष्प-वाटिकाओं के इर्द-गिर्द तार के जँगले लगे रहते हैं। परन्तु अमरीका में बाग़ों में कोई बाड़ नहीं रहती। अड़ोस-पड़ोस के बच्चे और राह चलते बटोही खुल्लम-खुल्ला वहाँ जा सकते हैं—इस पर भी कोई फूल नहीं तोड़ता। हमारे पहाड़ी प्रान्तों के सदृश अमरीका में भी कहीं कहीं लोग अभी तक घर को खुला छोड़ जाते हैं, ताला नहीं लगाते। ताला लगाकर चाबी को चटाई के नीचे रख जाने का रवाज तो वहाँ आम है। योरप में ऐसी बात नहीं।

अमरीकन लोग प्रायः उदार होते हैं। आप उनसे मकान किराये पर लेते हैं। उसमें क़ालीन, [illegible] रकाबियाँ, और दूसरी सैकड़ों छोटी छोटी वस्तुएँ मौजूद होती हैं। वे आपसे उन सब वस्तुओं की न रसीद लेंगे और न आपके घर के कूड़े में टूटी हुई रकाबियों के टुकड़े देखते रहेंगे। वे आपको एक सज्जन मानकर आप पर विश्वास करेंगे।

आप कोई वस्तु ख़रीदते समय भूल से दूकानदार को ज़्यादा पैसे दे बैठते हैं। पता लगते ही वह झट आपको फ़ालतू पैसे लौटा देगा। ऐसा प्रतीत होता है कि अमरीका में प्रत्येक वस्तु की इतनी प्रचुरता है कि वहाँ किसी को किसी तरह का हलकापन करने की ज़रूरत ही नहीं। परन्तु योरप में आप चाहे बरसों से चाय, काफ़ी, कपड़ा, कोयला, चम्मच या घी ख़रीदते रहे हों, फिर भी आपको सदा संदेह बना रहेगा कि दूकानदार ने कहीं तौल माप या गिनती में कम न दे दिया हो। योरपीय लोगों में धन इकट्ठा करने की प्रवृत्ति बनी रहती है। यही उनकी आत्मिक अशान्ति का कारण है। इस डर या अरक्षा का स्वास्थ्य पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। हलवाई की दूकान में नाना प्रकार की मिठाइयाँ सजी देखकर एक निर्धन भूखे गँवार के मन की जो अवस्था होती है वह किसी से छिपी नहीं। योरपीय देशों के लोगों की वैसी ही दशा है। उनकी तबीअतें अमरीकनों की तरह तृप्त नहीं।

अमरीका में लोग नाना प्रकार की सामाजिक समस्याओं पर विचार करते हैं और नई नई कल्पनायें तैयार करते हैं। परन्तु योरप में सारे सामाजिक कार्यक्रम का प्रश्न केवल इतना ही है कि क्या हमें खान-पान और भोग-विलास की सामग्री सदा मिलती रहेगी, हमसे कभी वह छिन तो नहीं जायगी? योरपवालों के लिए यह निश्चय बड़ा महत्त्व रखता है। इससे उनको शान्ति होती है और वे आराम से साँस लेने लगते हैं। जो मनुष्य कभी अमरीका नहीं गया वह समझता है कि वहाँ लोगों के चेहरों से उतावली और अशान्ति टपकती होगी। परन्तु अवस्था इसके बिलकुल विपरीत है। अमरीका के लोग योरप के लोगों की अपेक्षा अधिक शान्त देख पड़ते हैं।

भारतीय नृत्य-कला

लेखक, श्रीयुत रामनाथ दर

श्रीयुत रामनाथ दर उन इने-गिने शिक्षित भारतीयों में हैं जिन्हें नृत्य-कला ने विशेष रूप से आकृष्ट किया है, और जिन्हों ने इसके अभ्यासियों के प्रति जन-साधारण की तिरस्कारपूर्ण भावना की परवा न कर इसका अभ्यास आरम्भ किया है। यह लेख आपके ऐसे ही वातावरण में अध्ययन और अभ्यास का फल है। आपकी बातें विचारणीय हैं। मूल लेख आपने अँगरेज़ी में लिखा था उसका यह हिन्दी अनुवाद श्री महेन्द्रनाथ पांडेय ने किया है।

यह वर्तमान समय का शुभ चिह्न है कि हम लोगों में से शिक्षित व्यक्तियों की नृत्य-कला की ओर अभिरुचि प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इस प्राचीन कला की टैगोर और उदयशंकर ने अपने अद्भुत अन्वेषण से सत्यानाश और बदनाम होने से रक्षा की है। हमारे देश के कुछ धनी-मानी व्यक्ति भी घुँघुरू के हुनर की रक्षा अपनी क़दरदानी से करने के कारण धन्यवाद के पात्र हैं। भाव-प्रदर्शन-कला जो प्रभावशाली नृत्य का एक मुख्य अंग है, कथाकली के प्रदर्शक और बिन्दा-कालका के विद्यार्थियों के कारण ही अभी तक जीवित है। नृत्यकला से ही जीविका चलानेवाली स्त्रियाँ जिनको समाज ने सदा नीची निगाह से देखा है, साधारण नृत्य के द्वारा इस कला की ओर जनता की रुचि बनाये रखने में बड़ी सहायक हुई हैं। नृत्य-कला की ओर जनता की रुचि आकर्षित करने और उसके गुण-प्रदर्शन के लिए आज-कल म्युज़िकल कान्फ़रेंसें की जा रही हैं। इन कान्फ़रेंसों में जो नाच दिखाये जाते हैं वे दर्शकों को बहुत पसन्द आते हैं, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है, क्योंकि नैतिकता के ढोंग के कारण मनुष्य की आन्तरिक तृष्णा की इनसे तृप्ति होती है। इसके अतिरिक्त वहाँ हमें एक और बात देखने को मिलती है, जो मेरे विचार से बहुत ही महत्त्व-पूर्ण है, साथ ही अर्थपूर्ण भी। यह उनके लिए और भी महत्त्वपूर्ण है जो इस बात का दावा कर रहे हैं या चाहते हैं कि भारतीय प्राचीन नृत्य-कला पुनर्वार अपने असली रूप में जीवित हो जाय जिसमें वह हमारे हृद्गत उच्च भावों को जाग्रत और प्रकाशित कर सके।

ऐसा देखने में आता है कि एक युवती का नृत्य अधिकांश दर्शकों को एक युवक के नृत्य की अपेक्षा अधिक भाता है। इसका कारण केवल नर्तकी का स्त्री होना ही नहीं है, क्योंकि हम देखते हैं कि जब दो महिलायें नृत्य करती हैं तब उसका नृत्य अधिक अच्छा समझा जाता है, जो अधिक सुन्दरता के साथ अंगों का सञ्चालन करती और अधिक संस्कृत रूप में भाव-प्रदर्शन करती है बनिस्बत उस महिला के जिसमें इन दो गुणों की कमी होती है, चाहे वह नृत्य-कला के नियमों की विशेषज्ञ ही क्यों न हो। ऐसा मालूम होता है कि नृत्य करनेवालों का एक सम्प्रदाय ऐसा है—चाहे वह अपनी कला का नाम कुछ भी रक्खें—जो नृत्यकला के व्याकरण पर ही—ख़ासकर ताल और उसकी पेचीदगियों और बारीकियों पर ही—सबसे अधिक ध्यान देता है। और दूसरे छोर पर एक दूसरी मंडली है, जो केवल बदन के लोच पर ही मुग्ध हो जाती है।

जहाँ तक स्त्री-सम्बन्धी आकर्षण का सम्बन्ध है, बहुत कुछ नर्तक और दर्शक की मानसिक और हृद्गत दशा पर अवलम्बित है। अपने विचार को अधिक स्पष्ट करने के लिए मेरी उन लोगों से जो मेरे इस विचार से सहमत न हों, यह प्रार्थना है कि वे उदयशंकर के प्रेम-सम्बन्धी नृत्य को देखने के बाद जो असर पड़ा हो उसकी तुलना उस असर से करें जो उनके हृदय पर किसी अधम युवक—या युवती के—चाहे वह अपने हुनर में कितनी ही प्रवीण हो—ऐसे ही नृत्य से पड़ा हो, और तब स्वयं दोनों के अन्तर को समझ लें।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्राचीन नृत्य-कला जिस प्रकार आज-कल दिखाई जाती है, उस तरह एक साधारण व्यक्ति को उसमें आनन्द नहीं आ सकता, किन्तु निःसन्देह वह इस रूप में प्रदर्शित की जा सकती है और

होनी भी चाहिए, जिसमें वह जन-साधारण की रुचि को सुधार सके और अपना प्रभाव डाल सके। यदि प्राचीन नृत्य-कला ऐसी वस्तु है जिसको एक साधारण मनुष्य जिसमें सामान्य बुद्धि और पवित्र रुचि हो, न समझ सके और न गुणों की परख ही कर सके तो शहर के बीच में टिकट लगाकर जनता को निमन्त्रित करके उसे प्रदर्शित करना निरी मूर्खता है। यह समझ की बात है और विवेकपूर्ण भी है कि नृत्य-कला में विभिन्नता होनी चाहिए। नृत्य में किसी ख़ास अंग के सञ्चालन में प्रवीणता प्राप्त करके जैसे घुँघुरु की कला में—यह दावा करना कि यही प्राचीन नृत्य का व्याकरण है और यही होना चाहिए, मेरी राय में ग़लत है और साथ ही हानिकारक भी। इसी प्रकार व्याकरण के ग़ुलाम किसी अन्य मंडली के सम्बन्ध में भी यही आक्षेप लागू होना चाहिए। यह लाजवाब घुँघुरु की कला स्वयं बुरी नहीं, किन्तु इसके सबसे अच्छे प्रदर्शन को भी हम लयपूर्ण व्यायाम ही कह सकते हैं। यह बिलकुल यान्त्रिक है, यद्यपि इससे टाँग और पैर की रगों और पट्ठों पर आश्चर्यजनक अधिकार ज्ञात होता है। किन्तु फिर भी हम इसे शुद्ध नृत्य-कला नहीं कह सकते। यह बात अवश्य है कि यह नृत्य-कला की सर्वश्रेष्ठ नींव है।

वास्तव में नृत्य का आरम्भ वहाँ होता है, जहाँ उसके व्याकरण का अन्त है। मैं इसे स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मैं प्राचीन हिन्दू-नृत्यकला के पुनरुज्जीवित करने के विरुद्ध नहीं हूँ और न तो मैं इस कला के सच्चे प्रदर्शकों की नीयत के विरुद्ध किसी प्रकार का आक्षेप करना चाहता हूँ। मैं केवल इस बात पर ज़ोर देना चाहता हूँ कि जब तक व्याकरण को उपयुक्त स्थान नहीं दिया जायगा और उसे लक्ष्य तक पहुँचने के लिए केवल साधन-मात्र नहीं माना जायगा और जब तक इस कला के शिक्षार्थी अपनी मानसिक और हार्दिक उन्नति न कर लें तब तक वे इस कला में निपुण नहीं हो सकते। यह अक्षरशः सत्य है कि मीराबाई के भजन नाचने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि वह यदि मीराबाई की आत्मिक उन्नति तक न पहुँच सके तो कम-से-कम उसके तत्त्व तक तो अवश्य ही पहुँच जाना चाहिए। मेरी राय में नृत्यकला का उसके व्याकरण की अपेक्षा स्वाभाविकता अधिक आवश्यक है। क्योंकि आख़िर नृत्य का उद्देश क्या है और क्या होना चाहिए?

नृत्य व्यक्ति के लय और ताल-सुर-युक्त अंग-संचालन-द्वारा भावों का प्राकृतिक और शक्तिशाली प्रदर्शन करना है। शारीरिक उन्नति और मनोरंजन का भी इससे अत्यन्त समीप का सम्बन्ध है। नृत्य में अनेक प्रकार के भाव उमड़ सकते हैं। इसमें मारने और जिलाने की गुप्त शक्ति भी छिपी हुई है। इसलिए यह और भी आवश्यक हो गया है कि हम जिन भावों का प्रदर्शन करना चाहते हैं उनका विवेक के साथ चुनाव करें। और यह बहुत ही सौभाग्य की बात है कि हमारी दृष्टि अपनी प्राचीन नृत्य-कला की ओर गई है। क्योंकि उस कला की सृष्टि ही नर्तक और दर्शक के भावों को पवित्र और उन्नत करने के लिए हुई है। मैं तो इस कला को सर्वव्यापक रहस्य या परमात्मा की एक प्रकार की उपासना समझता हूँ। वास्तव में इसको व्यक्तिगत भक्ति का कर्म समझना चाहिए। यदि एकान्त में आन्तरिक भाव-प्रदर्शन के लिए नृत्य किया जाय तो वह अत्यन्त आनन्ददायक और सफल होता है। मैं तो मस्तानेनाथ को मानता हूँ। धन कमाने के लिए या अपने मालिक को प्रसन्न करने के लिए या प्रशंसा प्राप्त करने के लिए जो नृत्य किये जाते हैं वे मेरी तुच्छ राय में उस प्राचीन भारतीय नृत्य-कला के उत्तम आदर्श तक हमें नहीं पहुँचा सकते जो हमें अत्यन्त प्रिय मालूम होती है। भय, लालच, अहंकार, ढोंग की लज्जा इस उच्च कला के घातक शत्रु हैं। यद्यपि इस कला का पहला आदर्श हृदय को आकर्षित करना है, तथापि इसका अभिप्राय यह नहीं है कि हम नेत्रों और मन की सौन्दर्य-प्रियता को भूल जायँ। सभी साधनों को ठीक ढंग से और अन्दाज़ से काम में लाना चाहिए, जो विषय तक ले जाने में समर्थ हों।

हमारे पास भावों की भाषा, सुन्दर आसन और मुद्राओं की अद्भुत अक्षय पैत्रिक सम्पत्ति है। ये चीज़ें नृत्य के प्रभाव को बहुत हद तक बढ़ाने में मदद करती हैं। परन्तु यहाँ भी सच्चे कलाविद् को इस बात की पूरी स्वतन्त्रता प्राप्त होनी चाहिए कि वह जब चाहे नई मुद्राओं और नये आसनों की सृष्टि कर सके। बदन का लोच नृत्य को नेत्रों के लिए प्रदर्शनीय बना देता है। किन्तु

यह नृत्य के विषय का एक साधन-मात्र है। इसको मनमानी और बेमानी तरीक़े से केवल शरीर का तोड़ना-मरोड़ना नहीं समझना चाहिए।

लोच के साथ अंग-संचालन जब क़ायदे से किये जाते हैं तब वे नृत्य के लिए उतने ही ज़रूरी और क़ीमती होते हैं जितना कि स्वर की शुद्धता संगीत के लिए और रंग मिलाना चित्र-कला के लिए। अंग-संचालन में धारा-प्रवाह के लिए एक बहुत ऊँची श्रेणी के कलाविद् की आवश्यकता होती है। एक सच्चे प्राचीन कला के नर्तक की यह पहचान है कि उसके नृत्य में प्रयत्न या तनाव नहीं होना चाहिए या यों कहिए कि उसे अपने को नृत्य में मग्न कर देना चाहिए। यह मानसिक शान्ति या समाधि ज़ोरों से नृत्य करते समय नर्तक के चेहरे और अंग-संचालन से प्रकट होती है। वेगपूर्ण अंग-संचालन भी काम में लाया जाता है। सच तो यह है कि इस प्रकार का अंग-संचालन एक पूर्ण नर्तक स्वाभाविक रूप से करने लगता है जब उसको बहादुरी के भाव-प्रदर्शन करने होते हैं। इससे यह प्रकट होगा कि यदि हमको वास्तव में प्राचीन नृत्यकला को पुनरुज्जीवित करना है तो हमारे नर्तक को ध्यानपूर्वक भक्ति-पूर्ण दृष्टिकोण बनाना पड़ेगा। यही दृष्टिकोण नाच की बुनियाद होनी चाहिए। नृत्य-कला में पैर का काम, लोच या लय और अभिनय का पूर्ण समन्वय होना चाहिए। इसी ढंग पर जनता के नेत्र, मन और हृदय को भी शिक्षित करना चाहिए जिससे सच्ची प्राचीन नृत्य-कला के पल्लवित और ग्रथित होने के लिए अनुकूल वायु-मंडल तैयार हो जाय।

हिन्दी

लेखक, श्रीयुत ज्वालाप्रसाद मिश्र, बी० एस-सी०, एल-एल० बी०

कौन तुझे दीना कहता है ?

मा ! आसेतु हिमाचल तेरा यशःसलिल निर्मल बहता है ॥

हम लोगों के भव्य भाल की हिन्दी तू बिन्दी-सी है।

उत्तर से दक्षिण तक तेरी पावन ज्योति जगी-सी है।

तुझे समुद अपनाकर भारत कितना गुरु गौरव ...

नित्य नई है नित्य निराली नव-रस-मयी सृष्टिवृष्टि तेरी।

... भन किसका नहीं नृत्य करता है ॥

शीतल करती है हृत्तल को सुन्दर भ ... हीम रसखान सभी।

मतवाला मयूर-सा हो ... न कोई हुआ कभी।

तुलसी सूर कबीर जायसी या र ... उनको भी तुझसे अमरों की समता है ॥

तेरे भव्य भवन में आये भेद ... भी रवि शशि तारों-से।

मिली तुझे उनसे ... उज्ज्वल मणिमय हारों से।

तेरे शत शत लाल चमककर अ ... न-सा जिसमें भावोच्छ्वास निहित रहता है ॥

सजा रहे हैं तेरा अंबर ... तू तीनों की पूज्य बनी।

मलयानिल सौरभ ... सब श्रद्धाञ्जलियाँ अपनी।

हिन्दू मुसलमान ईसाई ... पनाने की तुझमें भरी हुई ममता है ॥

चढ़ा रहे तेरे चरणों पर ... शब्दों की संहति तेरी।

अपरों तक को अन्य- ... ति और प्रकृति तेरी।

वह विशुद्ध लेखन-पद्धति वह ... र की तुझमें ही सच्ची क्षमता है ॥ कौन०

कितनी स्पष्ट सुबोध सरल है आकृ ...

देवि ! राष्ट्रभाषा बनने नि ...

कटे खेत

लेखक, श्रीयुत केसरी

उजड़ा दयार या चमन कहूँ।

ओ वसुंधरे ! इस परिवर्तन को निधन कहूँ या सृजन कहूँ। उजड़ा दयार—

कल लोट-पोट थी हरियाली तेरे आँगन में लहराती

गेहूँ के गोरे गालों पर रूपसी तितलियाँ बलखातीं।

छवि का नीलम संसार सघन सौरभ का वह बाज़ार नया

रे कहाँ शून्य इन खेतों से मधुवन का वह गुलज़ार गया।

बढ़ भौंर-भौंर मधु बौर-भरी सरसों मदमाती झूम रही

अब कहाँ बैंगनी पीली कुसुम-कली को कोयल चूम रही।

अब कहाँ बेल-बूटों-सी खेतों की कोरों पर इठलाती

साँवली सलोनी पुतली-सी अलसी विलसी पाँती-पाँती।

लुट गया आह ! वैभव-सुहाग लुट गई आज वह फुलवारी

ओ भूमि ! कहाँ खोई तूने निज चिर-संचित निधियाँ सारी !

"सुंदर थी मैं ओ पथिक ! आज मेरी सुंदरता बिखर गई

जग में सुंदरता भर कर तो मेरी सुंदरता निखर गई।

मैं बनी अकिंचन आप और मुझसे गृह-गृह परिपूर हुआ

हूँ धन्य आज मम अंचल-धन जग की आँखों का नूर हुआ।

कल थी सुहागिनी आज विश्व-हित हूँ तपस्विनी त्यागमयी,

मेरी सरसों वह आज देव-मंदिर का अमल चिराग़ हुई।

बलि बलि जाती तुझ पर मेरे ओ ! कुसुमों की चंदनवाड़ी

जो रँग दी तूने कृषक-किशोरी की वह वासंती साड़ी।

मेरे आँगन की हरियाली बन अमरलता फैली जग में

परित्राण बनी दे नेह संबल थकितों को कटु जीवन मग में।

प्राणों के रस से सींच-सींच जो अंकुर मैंने पनपाये

श्रम सफल जगत का आँगन यदि उनकी छाया से सरसाये।

चल जीवन का बस ध्येय यही शाश्वत जग का उपकार करूँ

प्रतिवर्ष दीन-मानव-मंदिर में नवल नवल उपहार धरूँ।

अर्चित तप के फल दे जग को मैं सिद्ध योगिनी-सी मन में—

संतुष्ट, ग्रीष्मपंचाग्नि बीच तपती रहती नित कण-कण में।

फिर प्रेमवशी घनश्याम उमड़ जब सावन-भादों बरसाते

जग का कल्याण लिये मेरे उर नये-नये अंकुर आते।

[महासभा का शिवाजी द्वार।]

फ़ैज़पुर का 'महाकुम्भ'
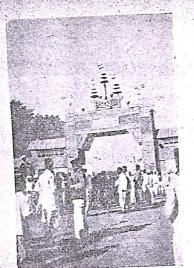
लेखक, श्रीयुत श्रीमन्नारायण अग्रवाल, एम० ए०

इस लेख के साथ जो चित्र प्रकाशित हो रहे हैं वे हमें श्रीयुत काशीनाथ त्रिवेदी और प्रो० मेनन से प्राप्त हुए हैं।

याग और हरिद्वार के कुम्भ या अर्ध-कुम्भ तो कितने ही बार हो चुके हैं। हज़ारों-लाखों की भीड़ होती है, सब लोग गंगा-स्नान करते हैं, और अपने लिए स्वर्ग में एक स्थान पाने की कोशिश करते हैं। इन कुम्भों से किसी का सचमुच कुछ लाभ होता है या नहीं, यह तो ईश्वर जाने, पर इतना प्रकट है कि धर्म के नाम पर इस देश में जितनी भीड़ इकट्ठी हो जाती है, उतनी संसार के शायद ही किसी और देश में होती हो। और ऐसी भीड़ों से क्या लाभ होता है, इसका अनुमान देश की दयनीय दशा से अच्छी तरह किया जा सकता है।

× × × ×

पर गत दिसम्बर के अन्त में नये ढंग का एक महाकुम्भ हो गया, और वह भी खानदेश के एक छोटे-से गाँव में। प्रयाग और हरिद्वार के सामने अभी तक फ़ैज़पुर की क्या गिनती थी? लेकिन उस महाकुम्भ ने इस छोटे गाँव को गौरवान्वित कर दिया। उक्त स्थानों के कुम्भों के द्वारा अन्धविश्वास और अकर्मण्यता का देश में भले ही प्रसार हुआ हो, किन्तु इस फ़ैज़पुर के कुम्भ से देश में एक नवीन जाग्रति और उत्साह का संचार हुआ है। फिर साधारण कुम्भ में तो केवल हिन्दू-जाति के लोग ही एकत्र होते हैं। किन्तु फ़ैज़पुर में तो हिन्दू, पारसी, मुसलमान, ईसाई इत्यादि सभी जातियों के लोग जमा हुए थे। साधारण कुम्भों में हरिजनों पर जो बीतती है, वह कौन नहीं जानता। किन्तु यहाँ तो सैकड़ों पढ़े-लिखे भाइयों ने उनका हाथ सहर्ष बँटाया था। हरिद्वार और प्रयाग के कुम्भों में साधु लोग केवल धर्म-ग्रन्थों का पाठ करते हैं, और लोगों को परलोक की बात बताते हैं। फ़ैज़पुर में महात्मा गांधी और पंडित जवाहरलाल जैसे नेता एकत्र थे, जिन्होंने अपने त्याग और चरित्र के बल से देश में नवजीवन का संचार किया है, मरी हुई जाति में नवीन आशा का भाव जाग्रत किया है और इस लोक की राह बताई है, जिससे परलोक अपने आप बन जाता है। तब हम इस बड़े समारोह को 'महाकुम्भ' क्यों न कहें?

× × ×

वैसे तो इस प्रकार के राष्ट्रीय कुम्भ बहुत हो चुके हैं, किन्तु इस कुम्भ में एक विशेषता थी, जिसके कारण हम उसको महाकुम्भ कहते हैं। अभी तक सब राष्ट्रीय महासभाएँ शहरों में ही हुआ करती थीं। गाँवों में जो यथार्थ भारत के केन्द्र हैं, इस महासभा का प्रकाश कभी न फैलाया गया। हमारे देश के अधिकांश लोग किसान हैं। यह महासभा इन्हीं किसानों के लिए आज़ादी की लड़ाई लड़ने का दावा करती रही है। फिर शहरों में ही इसके अधिवेशन क्यों होते रहे? यह बात जब हम अब सोचते हैं तब आश्चर्य होता है। किन्तु इस प्रणाली की अस्वाभाविकता का पहले-पहल महात्मा गांधी को ही अनुभव हुआ और गाँव में राष्ट्रीय महासभा के करने का विचार प्रकट किया। लोगों को आशा नहीं थी कि यह ग्रामीण अधिवेशन सफल हो सकेगा। कुछ लोगों ने मज़ाक भी उड़ाया। लेकिन फ़ैज़पुर का अधिवेशन सफलता से हो गया। लोग समझते थे कि बहुत कम भीड़ होगी। लेकिन इतनी भीड़ हुई कि व्यवस्था करना भी मुश्किल हो गया। सभी लोगों का अनुमान है कि इतनी भीड़ अभी तक किसी कांग्रेस के किसी अधिवेशन में नहीं हुई है। भीड़ के कारण तीन दिन के बजाय दो ही दिन में महासभा का कार्य्य समाप्त कर देना पड़ा।

इस भीड़ के उमड़ पड़ने का क्या कारण था? गाँव में महासभा करना ही इसका कारण है। मानव-रूपी सागर एकदम उमड़ पड़ा था। असल में कांग्रेस का स्थान गाँवों में ही है। किसी भी संस्था का स्थान, भारतवर्ष के हित के लिए, गाँव में ही होना आवश्यक है। गाँवों से दूर भागकर हम असली भारत को भूलने की कोशिश करते हैं।
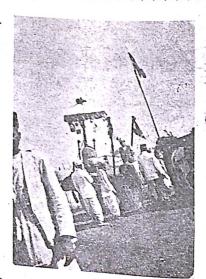
[ष्ट्रपति के साथ श्री रंजीत, जिसने अपनी जान हथेली पर रखकर राष्ट्रीय झंडे की इज्ज़त रखी।]

[वह रथ, जिसमें राष्ट्रपति का जलूस निकला था।]

× × ×

जहाँ अधिवेशन हुआ था, उस स्थान का नाम 'तिलकनगर' रक्खा गया था। संपूर्ण नगर ६० एकड़ के घेरे में था। नगर के मध्य में "शिवाजी-फाटक" मुख्य द्वार था। इसके आस-पास थोड़े फ़ासले पर 'अंसारी-फाटक' और 'शोलापुर-शहीद-फाटक' थे। शिवाजी-फाटक के बाद दूसरा फाटक 'सुभाष-फाटक' था। इन दोनों फाटकों के बीच की चौकोर जगह में बाज़ार था। फाटकों के बाहरी हिस्सों में भी दूकानें थीं। उसकी बाईं ओर 'सार्वजनिक काका-द्वार' से होकर दर्शक प्रदर्शनी पंडाल में पहुँचते थे। इस प्रदर्शनी में ग्रामोद्योग, खादी, स्वदेशी-उद्योग-धन्धे, चित्रकला, मधु-मक्खियाँ पालने और शहद निकालने आदि की कलायें एवं क्रियाओं के दिखाने का आयोजन था। प्रदर्शनीहाल से बाहर निकलकर दर्शक सुभाष-फाटक-द्वारा नगर के ख़ास हिस्से में प्रवेश करते थे। शिवाजी-फाटक की बाईं ओर प्रदर्शनी और दाईं ओर

[राष्ट्रपति खुले अधिवेशन में वोट-भाषण दे रहे हैं।]

एक बड़ा पंडाल था, जो 'सेनापति बापट-दरवाज़ा' से प्रारम्भ होता था। इसी पंडाल में कांग्रेस का खुला अधिवेशन हुआ। इस पंडाल में महिलाओं के प्रवेश के लिए 'झाँसी की रानी-फाटक' बना था। तिलकनगर के बाहर नदी की ओर 'शोलापुर-शहीद-फाटक' था। खुले अधिवेशनवाले पंडाल के बिलकुल भीतर 'तिलक-फाटक' बना था। सुभाष-फाटक से भीतर आते ही बाईं ओर पोस्ट-आफ़िस, तार-आफ़िस, टेलीफ़ोन-आफ़िस, पत्र-संवाददाताओं की झोपड़ी थी। इससे ज़रा आगे हटकर कांग्रेस का विषय-निर्धारिणी समिति-मण्डप और उससे सटे हुए नेताओं के निवास-गृह थे। नेताओं के निवास-गृह के पीछे स्त्री-स्वयं-सेविकाओं का शिविर था। विषय-निर्धारिणी समिति-मंडप के आगे की ओर परिवार-सहित आनेवाले दर्शकों के ठहरने का स्थान था। सुभाष-फाटक से गुज़रते ही दाहिनी ओर विभिन्न बातों की जानकारी का दफ़्तर था।

× × ×

तिलकनगर की मुख्य सड़क के आस-पास श्री नन्दलाल बोस के नियंत्रण में अत्यन्त सुन्दर क़तारें बनाई गई थीं। इन समानान्तर क़तारों के दोनों बाज़ू चने के पौधों और बीच में गोलाकार हरी मेथी से सज्जित थीं। हर गोलाकार स्थल के बीचों-बीच केले या हज़ारा के पौधे लगाये गये थे। अरहर के हरे पौधों को छाँट-छाँटकर जगह-जगह 'वन्दे मातरम्' पृथ्वी पर उगाया गया था। किसान-परिषद् में आनेवाले किसानों के ठहरने के लिए तिलक-नगर से बाहर ३,००० आदमियों के लिए व्यवस्था की गई थी। ठहरने का किराया फ़ी आदमी केवल चार आना था और दोनों समय खाने के लिए =) देने पड़ते थे।

× × ×

इस अधिवेशन को सफल बनाने के लिए कार्यकर्त्ताओं ने अपना तन, मन, धन लगा दिया था। स्वयम् हाथ-पैर से दिन-रात काम किया, किसी काम को ऊँचा नीचा नहीं समझा, और कम ख़र्च में एक सुन्दर बाँस का नगर बनाकर खड़ा कर दिया। 'तिलकनगर' अत्यन्त सुन्दर और कलापूर्ण था; उसमें किसी प्रकार की बनावट नहीं थी। सादगी में भी कितनी सुन्दरता हो सकती है, यह तो जिन्होंने तिलकनगर अपनी आँखों से देखा है, अच्छी तरह समझ सकते हैं। इस सरल सौन्दर्य के निर्माण का श्रेय शान्ति-निकेतन के सुप्रसिद्ध कलाकार श्री नन्दलाल बोस को है। उन्होंने ही उस छोटे सुन्दर रथ को बनाया था, जिसमें राष्ट्रपति का जलूस निकला था। उन्होंने मुझे बतलाया कि एक पुराने रथ में केवल सात रुपये ख़र्च करके वह कलापूर्ण वाहन बनाया गया था। नगर के दरवाज़े और महासभा का 'भाषणमंच' भी कम ख़र्च में बहुत ही ख़ूबसूरत बनाया गया था।

× × ×

[प्रदर्शनी के सामने जन-समूह।]

इस बार अखिल भारतीय ग्राम-उद्योग-संघ की प्रदर्शनी भी सचमुच ग्रामीण ही थी। देहातों का-सा वातावरण था, पूर्ण सादगी, किन्तु कला और सौन्दर्य से पूर्ण। यह भी पूर्ण सफल रही। २५ दिसम्बर शुक्रवार के प्रातःकाल महात्मा जी ने इसका उद्घाटन किया था। प्रदर्शनी के मैदान में जोश का तूफ़ान उमड़ पड़ा था। इसके अंदर के बाँस, चटाई, कच्ची लकड़ी आदि से निर्मित स्टाल, दफ़्तर, मंडप आदि, ग्रामीण जीवन का दृश्य उपस्थित करते थे। खादी-विभाग सात हिस्सों में विभाजित था—(१) रुई और दूसरे कच्चे पदार्थों का चौक, (२) औज़ारों का चौक, (३) प्रयोगशाला, (४) ख़ास चीज़ों का चौक, (५) वस्त्र स्वावलंबन-विभाग, (६) अंक-विभाग, और (७) खादी-बाज़ार।

गत कई वर्षों से कांग्रेस के साथ प्रदर्शनी हो रही है। उनसे तुलना करने से इस वर्ष की प्रदर्शिनी अपने ढंग की अनूठी हुई है। खादी-मन्दिर ग्रामीण जनता को कई प्रकार की उपयोगी शिक्षा प्रदान करता था, जैसे खादी-उद्योग, मधुमक्खी-पालन, चर्मालय, रस्सी बुनाई आदि आदि। खादी-मन्दिर में केवल खादी ही नहीं बल्कि रेशमी, ऊनी आदि कई क़िस्म के कपड़े मोल भी मिल सकते थे।

× × ×

तिलकनगर की सफ़ाई का भी बहुत अच्छा इन्तज़ाम था। सैकड़ों पढ़े-लिखे, उच्च जाति के "आदर्श भंगी"

[झंडा-अभिवादन।]
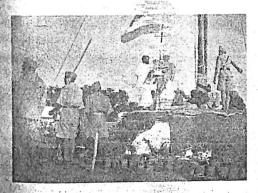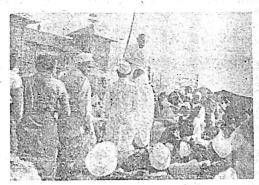
[महात्मा गांधी का प्रदर्शनी में भाषण।]

काम में लगे रहते थे। यह बात सचमुच बड़ी महत्त्व की थी।

× × ×

भोजन की भी अच्छी व्यवस्था थी। एक बड़े हाल में कई हज़ार लोग एक साथ बैठकर भोजन करते थे। अधिकतर बहनें ही खाना परोसती थीं, और सब लोग बड़ी शान्ति से भोजन करते थे। एक दिन तो हम लोगों को क़रीब एक घंटा बैठकर भोजन का इन्तज़ार करना पड़ा। किन्तु सैकड़ों लोग बड़ी सावधानी से चुपचाप बैठे रहे। लोगों के संतोष और धैर्य को देखकर मैं तो दंग रह गया।

तो भी भोजन-व्यवस्था बहुत अच्छी थी। ५०-५० हज़ार व्यक्तियों के लिए भोजन की व्यवस्था करना असाधारण कार्य था। आठ आने में दोनों समय कोई भी व्यक्ति तिलक-नगर के भोजनालय में भोजन कर सकता था। एक साथ लगभग २५० पुरुष और १५० स्त्रियाँ खाना प्रारम्भ कर सकते थे। पन्द्रह-बीस औरतें परोसती थीं। सफ़ाई, सुन्दरता और सजावट का पूरा ध्यान रक्खा जाता था। खाने में आटा व चावल हाथ का पिसा-कुटा होता था। भोजन अधिकांश महाराष्ट्र-ढंग पर तैयार होता था। खाने-खिलाने में भेद-भाव किसी बात का नहीं था।

× × ×

स्वागत-समिति की स्वयंसेविकाओं ने अपनी सेवाओं से लोगों को सबसे ज़्यादा प्रभावित किया। शायद ही

[खुले अधिवेशन का एक दृश्य।]

कोई व्यक्ति ऐसा होगा, जिसे इनके प्रति शिकायत का कोई मौक़ा मिला हो। फ़ैज़पुर में एक और ख़ास बात देखने में आई। अधिकतर हिन्दी और मराठी भाषाओं का ही प्रयोग होता था।

× × ×

इस 'महाकुम्भ' का सबसे महत्त्व का दिन २७ दिसम्बर था। सुबह आठ बजे झण्डा-अभिवादन हुआ। एक नवयुवक राष्ट्रीय झण्डे की इज़्ज़त रखने के लिए कई सौ फ़ुट ऊँचे बाँस पर किस साहस से चढ़ा और अपनी जान की बिलकुल परवा न की, यह तो अख़बारों में निकल ही चुका है। किन्तु इस बात का ज़िक्र मैं ख़ास तौर से करना चाहता हूँ। मेरे विचार में तो यह घटना इस महासभा की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना थी। अब भी हमारे देश में ऐसे नवयुवक हैं जो देश के लिए अपना जीवन ख़तरे में डालने को तैयार रहते हैं।

झण्डा-अभिवादन के बाद प्रदर्शनी में महात्मा गांधी का व्याख्यान हुआ। मालूम नहीं, कितने उपस्थित लोगों ने उसका महत्त्व समझा। कांग्रेस से अलग होने के बाद महात्मा जी ने अपने भावों और विचारों को यहाँ पहली बार व्यक्त किया। उन्होंने कहा कि कौंसिलों में जाने से स्वराज्य नज़दीक कभी नहीं आ सकता। स्वराज्य तो सूत के धागे पर ही निर्भर है। हम चर्खे को भूल गये हैं, इसी लिए परतन्त्रता के फन्दे से नहीं छूट सके। यदि आप सब खादी का व्यवहार करने लगें तो मैं विश्वास दिला सकता हूँ कि लार्ड लिनलिथगो ही स्वयम् कांग्रेस के पास आयँगे। हम अँगरेज़ों से घृणा नहीं करते। अगर वे हमारे देश में रहना चाहें तो दूध में शक्कर की तरह रह सकते हैं। महात्मा जी ने यह भी स्पष्ट किया कि केवल खादी पहनना काफ़ी नहीं है। खादी के साथ सत्य, अहिंसा और धर्म भी आवश्यक है।

उसी दिन महासभा के खुले अधिवेशन में भी महात्मा जी ने यही बात कही। जब तक हम चर्खा और ग्राम-उद्योगों को महत्त्व नहीं देंगे, हिन्दू-मुस्लिम-एकता, अछूतोद्धार इत्यादि पर फिर पूरा ध्यान नहीं देंगे, तब तक, केवल व्यवस्थापिका सभाओं से कुछ लाभ नहीं होनेवाला है। "अगर हम इन बातों की ओर ध्यान नहीं देंगे तो इस बूढ़े की यह भविष्यवाणी है कि हमें स्वराज्य कभी नहीं मिलेगा।"

महात्मा जी के इन शब्दों को हमें याद रखने की ज़रूरत है और उनको अमल में लाना आवश्यक है।

× × × ×

दूसरा भाषण २९ दिसम्बर को पूज्य मालवीय जी का हुआ था, जो अपने ढंग का एक महत्त्वपूर्ण भाषण था।

सुविख्यात समाजवादी श्री एम० एन० राय भी इस बार इस अधिवेशन में सम्मिलित हुए थे। उन्होंने अब निश्चय कर लिया है कि वे कांग्रेस के साथ मिलकर देश की उन्नति के लिए और स्वराज्य के लिए कार्य करेंगे।

× × × ×

राष्ट्रपति का भाषण इस वर्ष छोटा था। लखनऊ की कांग्रेस के बाद कोई विशेष बात भी नहीं हुई थी। इस भाषण में लखनऊ के भाषण का स्पष्टीकरण था। भाषण पंडित जवाहरलाल जी नेहरू ने हिन्दी में किया था।

× × × ×

महासभा के साथ-साथ राष्ट्रभाषा-सम्मेलन, अ० भा० किसान-सभा, प्रगतिशील लेखक-सभा इत्यादि के भी अधिवेशन हुए।

किसान-सम्मेलन में दो सौ मील पैदल चल कर एक जत्था आया था। इसका ख़ूब स्वागत किया गया। इस जत्थे के किसानों ने केवल किसानों को ही नहीं, नेताओं को भी प्रभावित किया।

इस अधिवेशन में वास्तव में अभूतपूर्व जोश दिखाई पड़ा।

जाग्रत नारियाँ

स्त्रियों के सम्बन्ध में भ्रमात्मक सिद्धान्त

लेखिका, श्री कुमारी विश्वमोहिनी व्यास

सितम्बर की 'सरस्वती' में हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक श्री संतराम बी० ए० ने एक लेख लिखा है। शीर्षक है उसका 'हिन्दू-स्त्रियों के अपहरण के मूल कारण'। आज-कल कोई भी दिन ऐसा नहीं जाता जब समाचार-पत्रों में स्त्रियों के अपहरण की दो-चार घटनायें छपी न दीख पड़ती हों। इस परिस्थिति में श्री संतराम जी जैसे समाज-सुधारकों का अबलाओं की इस दर्दनाक दशा पर ध्यान जाना आशा का ही चिह्न है। इसके लिए संतराम जी महिला-समाज की ओर से धन्यवाद के पात्र हैं। परन्तु आपने अपने लेख में कुछ ऐसी बातें लिख दी हैं जिनसे भारत की स्त्री-जाति का अपमान होता है। स्त्री-समाज का एक अंग होने के नाते मैं उस सम्बन्ध में यहाँ कुछ निवेदन करना आवश्यक समझती हूँ। पहली बात है अपहरण के सम्बन्ध में। आज-कल अपहरण की जो घटनायें हो रही हैं और जो बंगाल की शस्यश्यामला भूमि में तथा पंजाब के उत्तरी भागों में हो चुकी हैं वे सब दो भागों में बाँटी जा सकती हैं। पहले भाग में वे घटनायें आती हैं जिनमें अभागी अबलायें गुण्डों और बदमाशों-द्वारा बलपूर्वक उड़ाई गई हैं और जिनकी रक्षा निरीह और निर्बल हिन्दू नहीं कर सके। दूसरे भाग में वे घटनायें हैं जिनमें गुण्डों ने अबलाओं को बहकाकर और फुसलाकर अपना मतलब निकाला है। संतराम जी ने पहले भाग को सर्वथा छोड़ दिया है या यह कहिए कि उसके अस्तित्व की कल्पना करने तक का कष्ट नहीं उठाया, यद्यपि वही हमारे सामने सबसे बड़ी समस्या है। आपने अपना सारा ज़ोर केवल दूसरे भाग पर ही लगाया है। दूसरे शब्दों में यह कि स्त्रियों को बहकाकर भगा ले जानेवाली घटनाओं को ही आपने अपहरण माना है और उसका उत्तरदायित्व रक्खा है स्त्रियों पर—स्त्रियों की वासना-वृत्ति पर। आदरणीय संतराम जी ने यह एक भारी और भद्दी भूल की है। वे स्त्री-समाज का उपकार करने की अपेक्षा उसका अपकार कर बैठे हैं। यदि इस बात का ख़याल न भी किया जाय तो भी लेख एकांगी है, अधूरा है और अधूरे विवेचन-द्वारा किसी निष्कर्ष पर पहुँचना भ्रांति का प्रचार करना है।

दूसरी बात मैं यह कहना चाहती हूँ कि श्री संतराम जी ने अपनी बातों को सर्वमान्य सिद्धान्त के रूप में उपस्थित करने की हीन चेष्टा की है। उनका आशय यह है कि स्त्रियाँ वासना की दासी हैं, वे कुरूप सुरूप नहीं देखतीं, इसलिए अपहरण की घटनायें होती हैं, अतएव पुरुषों को उनकी बड़ी सावधानी के साथ रक्षा करनी चाहिए। मैं निहायत अदब के साथ श्री संतराम जी के इस स्वयं निर्मित सिद्धान्त का विरोध करती हूँ। आपने इस सिद्धान्त के समर्थन में दो प्रकार के प्रमाण दिये हैं—भगवान मनु

[स्पेन के गृह-युद्ध में सरकार की ओर से लड़नेवाली प्रसिद्ध महिला "ला पैसियो नारिया"।]

का एक श्लोक और कुछ घटनायें। मनु का श्लोक यह है—

नैता रूपं परीक्षन्ते नासां वयसि संस्थितिः
सुरूपं वा कुरूपं वा पुमानित्येव भुञ्जते।
पौंश्चल्याश्चलचित्ताश्च नैस्नेहाच्च स्वभावतः
रक्षिता यत्नतोऽपीह भर्तृष्वेता विकुर्वते ॥

संतराम जी इसका अनुवाद करते हैं—"स्त्रियाँ न पुरुष की सुन्दरता देखती हैं, न उसकी आयु देखती हैं, चाहे सुरूप हो या कुरूप, वे पुरुष में लिप्त हो जाती हैं।" 'पौंश्चल्याः' का अनुवाद श्री संतराम जी 'स्त्रियाँ' करते हैं। मैं यह कल्पना नहीं कर सकती कि श्री संतराम जी संस्कृत से सर्वथा शून्य हैं। यही कह सकती हूँ कि अपनी बात के सिद्धान्त का रूप देने की उत्फुल्ल लालसा में आकर यह सर्वथा अनर्थकारी अनुवाद कर आपने महाराज मनु की हत्या तो की ही है, समस्त स्त्री-जाति को भी व्यभिचारिणी बना डाला है।

अब संतराम जी के लेख की जान यानी घटनाओं पर एक निगाह डालिए। घटनाओं की सत्यता पर स्वयं संतराम जी जितना विश्वास कर सकते हैं, उतना कोई दूसरा नहीं कर सकता। उनमें एक घटना तो मैं नितान्त निरर्थक समझती हूँ। आपने एक तिवारी और उनकी अँगरेज़-पत्नी का उल्लेख किया है। विषय के अनुसार आपने इस जोड़े के मिलन में वासना का प्राधान्य माना है। मैं इन तिवारी जी को और इनकी पत्नी आयरिश महिला—अँगरेज़ नहीं—को संतराम जी शायद ठीक न जानते हों, अच्छी तरह जानती हूँ। मैं ही नहीं श्रद्धेय स्वर्गीय गणेशशंकर जी भी इन्हें अच्छी तरह जानते थे और इनका आदर करते थे। विश्ववन्द्य महात्मा गांधी इनको जानते हैं और श्रीमती मीरा बहन (पुरातन मिस स्लेड) से इनका गहरा परिचय है। मैं कह सकती हूँ और ये सब लोग भी कह सकते हैं कि इस सम्मिलन के मूल में वासना नहीं है। फिर तिवारी जी भी बेकार आदमी नहीं हैं, कमाते हैं। श्रीमती जी बरतन नहीं माजतीं, उनके घर में नौकर हैं। इस सम्मिलन के मूल में क्या है? क्या चीज़ है जिसने इन दोनों को मिला दिया है? मैं समझती हूँ कि संतराम जी का अनुमान यहाँ पर भी नहीं मार सकता। उसका उल्लेख भी नहीं हो सकता। स्वतन्त्र भारत का इतिहास ही उसके लिए उपयुक्त स्थान होगा। मैं समझती हूँ, श्री संतराम जी ने हिन्दू-संस्कृति से प्रेम करनेवाली इस पाश्चात्य देवी को इस कीचड़ में घसीट कर एक अक्षम्य अपराध किया है, जिसके लिए उन्हें क्षमा माँगनी चाहिए।

संतराम जी ने जालन्धर के एक कुँजड़े का ज़िक्र किया है जो किसी गोरे सार्जेन्ट की बीबी को भगा लाया है। आपको विश्वस्त सूत्र से मालूम हुआ है कि वह घूँघट निकालती है, रोटी बनाती है और मार भी खाती है (बर्तन माँजती ?)। मैं संतराम जी के इस सनसनी-पूर्ण समाचार को सर्वथा सत्य स्वीकार किये लेती हूँ, साथ ही यह भी

[हर हिटलर की स्त्री-मित्र लेनी रीफेन्स्टाल। यह जर्मनी की एक प्रसिद्ध अभिनेत्री भी है।]

कहती हूँ कि जो स्त्री केवल वासना-पूर्ति के लिए कुँजड़े के साथ भाग गई थी वह मार भी कैसे खाती है? क्या उसकी वासना-पूर्ति का कोई और साधन नहीं? क्या उस कुँजड़े के पास-पड़ोस में सब देवता ही बसते हैं? मनोविज्ञान के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जो स्त्री केवल वासना की पूर्ति के लिए एक बार नीचे उतर आती है वह फिर नहीं टिकती। जब तक उसे आराम मिलता है तब तक एक व्यक्ति के पास रहती है, नहीं तो पृथक् हो जाती है। अब यदि कुँजड़ेवाली स्त्री इतने पर भी उसे छोड़कर भागी नहीं जाती है, अपनी वासना-पूर्ति का कोई और साधन नहीं ढूँढ़ती है, तो मानना पड़ेगा कि उसमें वासना का राज्य नहीं, प्रत्युत कुछ और कोमल भावनायें हैं जो उसे असहनीय अत्याचारों के बाद भी कुँजड़े के पास रहने के लिए बाध्य करती हैं और उन्हीं भावनाओं ने उसे कुँजड़े के पास पहुँचाया है, संतराम जी की वासना ने नहीं।

[कुमारी बी० ठाकुरदास, एम० ए०। ये गणित में उच्च शिक्षा प्राप्त करने कैम्ब्रिज गई हैं।]

देग के दो चावल ही देखे जाते हैं और इन दो चावलों से संतराम जी का देग कच्चा साबित हो गया है। फिर यदि थोड़ी देर के लिए स्वीकार भी कर लिया जाय कि श्री संतराम जी की घोर परिश्रम से संगृहीत समस्त

[डाक्टर अन्ना चक्को—ट्रावनकोर की सरकार की ओर से इँगलेंड गई हैं।]

घटनायें सवा सोलह आने सत्य हैं तो संसार में इसके प्रतिकूल घटनायें भी मिलती हैं। मैं संतराम जी की तरह

ऐसी घटनाओं के पहाड़ तो नहीं दिखा सकती, क्योंकि मेरा ध्यान ऐसी बातों की ओर नहीं रहता है, फिर भी एक उदाहरण दे देती हूँ। एक महानुभाव हैं जिनकी पत्नी परिश्रम करके उन्हें खिलाती हैं, उनके आराम का पूरा ख़याल रखती हैं और वे महानुभाव उसकी अच्छी तरह पूजा करते हैं यानी ख़ूब मारते हैं। उस महिला से जब कोई कुछ पूछता है तब वह सब सुन लेती है और सिर झुकाकर चुप रह जाती है और शायद संतराम जी हैरानी के साथ सुनें, इन दोनों में किसी तरह का वासना-पूर्ण सम्पर्क नहीं है।

मेरे कहने का मतलब केवल यह है कि स्त्री वासना की दासी नहीं है। बहुत सम्भव है कि संतराम जी को जात-पाँत-तोड़क मंडल के मुख्य कार्यकर्त्ता होने के कारण और अन्य विभिन्न मार्गों से भी केवल उन्हीं स्त्रियों के दर्शन हुए हों जो वासना की मूर्ति होती हैं। परन्तु संसार में ऐसी भी स्त्रियाँ हैं और बहुत हैं जो वासना की दासी नहीं, स्वामिनी हैं। स्त्री यदि वासना की दासी होती तो शायद मानव-जाति का इतिहास पशुओं से अलग उज्ज्वल और ऊँचा न होता।

तीसरी और अन्तिम बात मैं लेख की भाषा के सम्बन्ध में कहना चाहती हूँ। संतराम जी ने जिस 'लिपटी-चिपटी' और 'सट गई, गठ गई' भाषा का प्रयोग किया है वह संतराम जी जैसे 'घिसे साहित्यिक' की लेखनी को शोभा नहीं देती। वयस और विद्या में श्री संतराम जी मेरे गुरुजनों के समान हैं। इन पंक्तियों-द्वारा मैं उनसे विवाद नहीं करना चाहती। परन्तु आपने लेख-द्वारा स्त्री-जाति का जो अपमान किया है, पीसे हुए वर्ग को और भी पीसने की—उसके बन्धनों को और जकड़ने की जो चेष्टा की है, उसने मुझे विवश कर दिया है कि मैं भी अपने विचार रख दूँ। मेरा विश्वास है कि श्री संतराम जी इन पर विचार कर अपनी ग़लती महसूस करेंगे और भविष्य में अमृत के नाम विष देकर बदनाम न होंगे।

भारत

लेखिका, श्रीमती सावित्री श्रीवास्तव

भावबल्लभ, भव्य भारत!
भूलकर निज ज्ञान-गौरव क्यों बने हो आज आरत?
वेद, दर्शन, उपनिषद्, गीता तुम्हारी संपदा है,
है सभी कुछ प्राप्त तुमको, भाग्य में पर क्या बदा है?
क्यों विपुल वैभव गँवाकर हो गये हो आज गारत?
कृष्ण को रटते सभी हैं पर न उनकी क्रान्तियों को,
थी मिली जिनसे विजय संसार में निष्कामियों को।
क्या नहीं है याद तुमको विश्व का वह महाभारत?
कहाँ तक गिरते रहोगे भ्रान्तियों में ही भटककर
चढ़ चलो उन्नति-शिखर पर, हो तनिक तमहर प्रभा-रत—
हो परस्पर प्रेम जिससे जातियों को एक कर दो
व्यर्थ बंधन तोड़ दें नर-नारियों में शक्ति भर दो
कर्म से ही विजय होती, कर्मवादी बनो भारत!

शनि की दशा

अनुवादक, पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र

वासन्ती माता-पिता से हीन एक परम सुन्दरी कन्या थी। निर्धन मामा की स्नेहमयी छाया में उसका पालन-पोषण हुआ था। किन्तु हृदयहीना मामी के अत्याचारों का शिकार उसे प्रायः होना पड़ता था, विशेषतः मामा की अनुपस्थिति में। एक दिन उसके मामा हारनाथ बाबू जब कहीं बाहर गये थे, मामी से तिरस्कृत होकर अपने पड़ोस के दत्त-परिवार में आश्रय लेने के लिए बाध्य हुई। घटना-चक्र से राधामाधव बाबू नामक एक धनिक सज्जन उसी दिन दत्त परिवार के अतिथि हुए और वासन्ती की अवस्था पर दयार्द्र होकर उन्होंने उसे अपनी पुत्र-वधू बनाने का विचार किया।

तीसरा परिच्छेद
मित्र से मुलाक़ात

र्षा-ऋतु का समय था। यमुना या ब्रह्मपुत्र लबालब भर उठा था। साँझ हो गई थी। दक्षिण-दिशा की ठंडी हवा चल रही थी और यमुना की तरङ्गों के स्पर्श से और अधिक ठंडी होकर जगत् को स्निग्ध कर रही थी। देखते-देखते कालिमा का आवरण चारों ओर फैल गया, समस्त दिङ्मण्डल अन्धकार से आच्छादित हो उठा। [illegible] से बोझी हुई नौकायें नदी के प्रशान्त वक्ष पर अब [illegible] विचरण कर रही थीं, किन्तु अन्धकार अधिक बढ़ जाने पर अभीष्ट मार्ग का निर्णय करने में असमर्थ होने के कारण वे धीरे-धीरे तट की ओर बढ़ने लगीं। समीप ही बीस-बीस नौकायें बँधी हुई थीं। वे सभी सन से बोझी हुई थीं। चारों दिशायें निस्तब्ध थीं, कहीं से किसी प्रकार का भी शब्द नहीं आ रहा था। कहीं कहीं दो-एक किसान खेत का काम समाप्त करके अन्धकार को विदीर्ण करते हुए घर लौट रहे थे।

नदी के तट से कुछ दूरी पर ज़मींदार राधामाधव बसु की ऊँची कोठी उस अञ्चल की शोभा बढ़ा रही थी। कोठी की तेज़ रोशनी से सड़क जगमगा उठी थी। राधा-माधव बाबू उस समय सन्ध्याकाल के शीतल पवन का सेवन करने के लिए गये थे। दरवान लोग भला इस अवसर से लाभ क्यों न उठाते? उन सबने फाटक के पास आकर जमघट लगा दिया। किसी की भाँग घुट रही थी तो कोई तुलसीदास के दोहों की आवृत्ति कर रहा था। ठीक उसी समय अन्धकार को चीरती हुई एक मनुष्य-मूर्ति फाटक की ओर बढ़ रही थी।

एकाएक माधवसिंह सरदार की दृष्टि आगन्तुक पर पड़ी। उन्होंने पञ्चम स्वर से पुकार कर पूछा—कौन है?

ज़रा-सा आगे बढ़कर आगन्तुक ने बँगला में पूछा—क्या कर्त्ता बाबू घर में हैं?

दरवान सब हिन्दुस्तानी थे, वे लोग बँगला नहीं समझ पाते थे, इससे आगन्तुक के प्रश्न का आशय वे नहीं समझ सके। अतएव उत्तर से वञ्चित रहना उसके लिए स्वाभाविक था। परन्तु उस बेचारे की कठिनाई का अन्त इतने में ही तो [illegible]। लोगों ने उसे चारों ओर से

घेर कर लगातार इतने प्रश्न किये कि वह व्याकुल हो उठा। दरवानों के इस दुर्दान्त दल से मुक्ति प्राप्त करने की कामना से शायद वह मन ही मन दुर्गा जी का स्मरण कर रहा था, इसलिए विपद्विनाशिनी ने शीघ्र ही विपत्ति से उसका उद्धार कर दिया। बहुत ही हृष्ट-पुष्ट, सुन्दर और तेजस्वी घोड़ों की जोड़ी से जुती हुई एक बड़ी-सी गाड़ी आकर फाटक के पास खड़ी हुई। वसु महोदय ने दूर से ही यह भीड़ देख ली थी। इससे कोचमैन को कह दिया था कि गाड़ी भीतर न ले चलकर फाटक पर ही रोक देना।

गाड़ी देखते ही गन्ना छोड़कर दरवान लोग क़ायदे के साथ एक ओर खड़े हो गये। राधामाधव बाबू गाड़ी पर से उतर पड़े। आगन्तुक की ओर ज़रा-सा बढ़कर जैसे ही उन्होंने उसके मुखमण्डल पर दृष्टि डाली, प्रसन्नता के मारे उनका हृदय प्रफुल्लित हो उठा। उन्होंने कहा—ओ हो, विपिन बाबू हैं? कहो भाई, कब आये? आओ, आओ, भीतर चलो। घर में अच्छा है न?

दरवानों के हाथ से इस प्रकार अनायास ही छुटकारा प्राप्त कर सकने के कारण विपिन बाबू ने बहुत कुछ शान्ति का अनुभव किया। उन्होंने हँसते हुए कहा—हाँ भाई, सब अच्छा है। परन्तु यदि तुम ज़रा देर तक और न आते तो तुम्हारी यह बन्दरों की सेना नोच-खसोट कर शायद मुझे एकदम खा ही जाती। मुझे तो ऐसा जान पड़ा कि शायद यहीं जीवन से हाथ धोने पड़ेंगे। ये न तो समझते थे मेरी बात और न समझते थे मेरे इशारे। सबके सब पूरे परमहंस हैं!

वसु महोदय ने मुस्कराकर कहा—प्रायः ये सभी नये आदमी हैं न। अभी ये हमारी बँगला-भाषा ठीक ठीक नहीं समझ पाते। यह कहकर विपिन बाबू का हाथ पकड़े हुए राधामाधव बाबू बैठक में गये। दरवानों के इस दल ने शिकार को हाथ से निकला हुआ देखकर उदास मन से फिर अपना कार्य पूर्ववत् आरम्भ कर दिया।

विपिन बाबू सन के दलाल थे। कलकत्ते में वे रहा करते थे। उस दिन वे यहाँ सन ख़रीदने के लिए आये थे। वसु महोदय विपिन बाबू के छुटपन के साथी थे, इसलिए जब कभी कलकत्ते [illegible] ने की आवश्यकता पड़ती तब वे प्रायः विपिन बाबू [illegible] यहाँ ठहरा करते थे।

यथासमय भोजन आदि से निवृत्त होकर राधामाधव बाबू तथा विपिन बाबू बैठक के सामनेवाले बरामदे में आरामकुर्सियों पर बैठकर बातचीत करने लगे। रात्रि के समय का शीतल समीरण आ आकर उनकी उष्णता का निवारण कर रहा था। बग़लवाले कमरे में दो पलँगों पर दोनों ही आदमियों के लिए बिस्तरे लगाये गये थे। पत्नी-वियोग के बाद से ही वसु महोदय ने भीतर का सोना बन्द कर दिया था। अन्तःपुर में वे केवल दो बार भोजन के लिए जाया करते थे या और कोई विशेष काम काज पड़ने पर जाया करते थे, अन्यथा वे बाहर ही बाहर अपना समय व्यतीत कर दिया करते थे।

बातचीत के सिलसिले में विपिन बाबू ने कहा—तुमने तो भैया एक तरह से हम लोगों की ममता ही छोड़ दी। पहले कभी कभी कलकत्ते में चरणों की धूलि पड़ भी जाती थी, किन्तु इधर चार वर्ष से उस ओर कभी कृपा ही नहीं की।

राधामाधव बाबू ने कहा—क्या करूँ भाई? अकेला आदमी हूँ, यहाँ से एक मिनट के लिए भी हटने का अवसर नहीं मिलता। लड़का भी यहाँ नहीं रहता कि उसी के भरोसे पर कारबार छोड़कर दो-एक दिन के लिए कहीं आ-जा सकूँ।

विपिन बाबू ने कहा—हाँ, अच्छी याद आ गई। मेरा लड़का सतीश एक दिन सन्तोष की चर्चा कर रहा था। शायद उसे कहीं से पता चला है कि सन्तोष विलायत से लौटे हुए एक बैरिस्टर की कन्या के साथ विवाह करना चाहता है। शायद उस बैरिस्टर के यहाँ वह आना जाया भी करता है। उसके घरवालों के साथ कभी कभी सिनेमा आदि भी देखने जाता है। क्या तुम—

विपिन बाबू की बात काट कर वसु महोदय ने कहा—ऐसी बात है? क्या यह सब सच है?

विपिन बाबू ने कहा—सच-झूठ का हाल परमात्मा जाने, परन्तु चर्चा मैंने इस तरह की सुनी है।

वसु महोदय ने मुँह से तो कोई बात नहीं कही, मन ही मन वे सोचने लगे कि वैष्णव-वंश में जन्म ग्रहण करके क्या वह इस तरह के अधःपतन के मार्ग की ओर अग्रसर हो चला है? क्या वह पूर्वजों का धर्म और नाम डुबा देना चाहता है? क्या मेरे धर्म और मेरे [illegible]

से मेरा एकमात्र पुत्र इतनी दूर चला गया है? असम्भव! यह कभी नहीं हो सकता। मेरा वह सन्तोष जिसने कभी मेरी ओर आँख उठाकर देखने तक का साहस नहीं किया, जिसने कभी बुलाये बिना मेरे पास तक आने का साहस नहीं किया, क्या वही आज उच्च शिक्षा प्राप्त करके मनुष्यता से इतना परे हो जायगा? क्या वह वृद्ध पिता के मुँह में अन्तिम काल में एक बिन्दु जल छोड़ने के अधिकार से भी वञ्चित होना चाहता है?

राधामाधव बाबू मन ही मन बहुत दुःखी हुए। वे सोचने लगे कि मैंने बड़े अभिमान से, बड़ा भरोसा करके, लड़के को कलकत्ते भेजा था। मुझे विश्वास था कि मेरा लड़का अपने कुल की मर्यादा से ज़रा भी विचलित न होगा। क्या मुझे यह आशा थी कि मेरा सन्तोष मेरी सारी मानमर्यादा मिट्टी में मिला देगा? वह कभी ऐसे भी मार्ग का अनुसरण करेगा कि समाज उसे देखकर घृणा से मुँह फेर ले? भाई-बिरादरी के लोग उसे देखकर मखौल उड़ावें? क्या यही सब अपमान और लाञ्छन सहन करने के लिए उसने मेरे यहाँ जन्म ग्रहण किया है? नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। चाहे जैसे भी हो, उसे लौटालकर मैं ठीक रास्ते पर लाऊँगा ही।

राधामाधव बाबू का हृदय उस समय इतना दुखी हो गया था कि वे अपने आपको एकदम से भूल ही गये थे। बड़ी देर तक व्याकुल भाव से पुत्र के भावी जीवन के सम्बन्ध में तरह तरह की बातें सोचने के बाद उन्होंने कहा—भैया, बैठे ही बैठे बड़ी रात बीत गई। थके-थकाये आये हो, चल कर विश्राम करो। कल सवेरे जैसा होगा, वैसा परामर्श किया जायगा। ठीक है न?

विपिन बाबू ने कहा—इस सम्बन्ध में एक बात मुझे और कहनी है। लड़के पर शासन करने या भयप्रदर्शन करने से कोई लाभ न होगा। जहाँ तक हो सके, उसे समझा-बुझाकर ही रास्ते पर ले आने की कोशिश करनी चाहिए।

अन्त में वे दोनों ही मित्र कमरे में जाकर सो गये। उस रात्रि में वसु महोदय को निद्रा नहीं आ सकी। तरह तरह की दुश्चिन्ताओं से उनका चित्त व्यथित हो उठा। अपने हृदय-पटल पर भविष्य का जो मधुमय चित्र उन्होंने अङ्कित कर रक्खा था उसे न-जाने किसने पोंछ कर साफ़ कर डाला। अतीत की सुखस्मृति उसे देखकर व्यङ्ग्य कर रही थी। ऐसी दशा में भला निद्रा कैसे आती?

प्रातःकाल शय्या त्यागकर वसु महोदय ने नियमित रूप से शौच-स्नान तथा सन्ध्या-वन्दन आदि किया। बाद को वे अपने कचहरी के कमरे में आये। छोटे छोटे काम करने के लिए उनके यहाँ एक लड़का नौकर था। उस दिन की डाक लाकर उसने उनके सामने रख दी और स्वयं दूर जाकर खड़ा हो गया। पास ही विपिन बाबू भी नर्चे में मुँह लगाये हुए बैठे थे। दीवान सदाशिव उस समय तक भी आवश्यक काग़ज़-पत्र लेकर उपस्थित नहीं हो सके थे। वसु महोदय एक एक पत्र खोलकर पढ़ने लगे। कई पत्र पढ़ चुकने के बाद उन्होंने जब एक पत्र खोला तब उस पर दृष्टि जाते ही उनका चेहरा लाल हो गया। वह पत्र उनके एक स्वामिभक्त असामी का लिखा हुआ था। वह पत्र इस प्रकार था—

"महामान्य श्रीयुत राधामाधव वसु

ज़मींदार बहादुर,

महामहिमार्णवेषु—

श्रीमान् की सेवा में दीन-हीन का निवेदन यह है कि सेवक का श्रीमान् के अन्न से पालन-पोषण हुआ है और श्रीमान् इस दास के अन्नदाता भयत्राता और प्रभु हैं। इसलिए यह सेवक अपना धर्म समझता है कि श्रीमान् के सांसारिक व्यापार से सम्बन्ध रखनेवाली हर एक बात दरबार में पेश करता रहे। समाचार यह है कि श्रीमान् के युवराज बहादुर खोका बाबू कई मास से एक ब्राह्म के यहाँ बहुत आते-जाते हैं और उसी ब्राह्म की एक कन्या के प्रति जो वेश्या का-सा शृङ्गार किये रहती है, खोका बाबू का ज़्यादा झुकाव मालूम पड़ता है। श्रीमान् को अन्नदाता समझकर यह दासानुदास सावधान किये दे रहा है कि उक्त वेश्या का-सा रूप धारण करनेवाली कन्या के प्रति खोका बाबू के हृदय में विशेष प्रेम उत्पन्न हो गया है और वे उसके भुलावे में पड़कर ब्राह्म-मत के अनुसार विवाह तक करने को तैयार हैं [illegible] पास आकर बैठ। पर श्रीमान् की मानहानि होने [illegible] इस बात से मामी बहुत रुष्ट दासानुदास श्रीमान् को [illegible] के सामने मुँह से वे कुछ निकाल चरण-कमलों में शतशः [illegible]

श्रीगदाधर पाल।" पूछा—कौन-सी बात है चाची?

यह पत्र पढ़ कर वसु बाबू ने विपिन बाबू को दे दिया। उन्होंने भी इसे बड़े ध्यान से पढ़ा। बाद को दोनों ही व्यक्तियों ने कुछ देर तक परामर्श किया। अन्त में उन्होंने बिछौना और बक्स ठीक करने का नौकर को आदेश किया। अन्तःपुर में उन्होंने भौजाई को कहला भेजा कि आज ही रात को मैं कलकत्ते जाऊँगा।

चौथा परिच्छेद

विधाता का विधान

सवेरा होते ही हरिनाथ बाबू लौटकर घर आगये। परन्तु वहाँ वे एक मिनट भी नहीं रुके। उलटे पाँव दत्त बाबू के द्वार पर पहुँच कर वे "विशू" "विशू" कह कर पुकारने लगे।

विशू उस समय बाहर के एक कमरे में बैठा राधामाधव बाबू से बात-चीत कर रहा था। इतने में एक परिचित कण्ठ से अपने नाम का उच्चारण सुनकर वह बोला—कौन है? हरी दादा! आओ, मैं यहाँ हूँ। यह कहता हुआ वह निकला और हरिनाथ बाबू को साथ में लिये हुए राधामाधव बाबू के पास ले जाकर कहने लगा—वसु महाशय, ये ही वासन्ती के मामा हरिनाथ मित्र हैं।

राधामाधव बाबू अभी तक लेटे थे, किन्तु हरिनाथ बाबू को देखते ही उठकर बैठ गये और उन्हें बैठने को कहा।

ज़रा देर तक चुप रहने के बाद विशू ने कहा—इतने सवेरे कैसे आये दादा?

हरिनाथ बाबू ने उत्तर दिया कि कुछ काम से कल सवेरे घोषपुर चला गया था। सोचा था कि वहाँ तीन-चार दिन लगेंगे। परन्तु काम जल्दी ही हो गया। इसके सिवा वहीं के एक सज्जन कल वासन्ती को देखने के लिए आनेवाले हैं। इसलिए लौटने में मुझे और उतावली करनी पड़ी। घर आने पर सुना कि वासन्ती चाची (विशू ... ए) के पास है, इससे उसे बुलाने के लिए मैं तुरन्त ... वहाँ ज़रा-सा बैठा तक नहीं।

विपिन बाबू ... हा—क्या महाशय जी के करते थे। उस दिन वे ... आये थे। वसु महोदय विपि... ड़ीं; कन्या नहीं एक भाँजी थे, इसलिए जब कभी कल... ड़ा हूँ। पड़ती तब वे प्रायः विपिन बाब...

"क्या वर ठीक कर लिया है?"

"अभी तक तो कुछ स्थिर नहीं हो सका है। चार-छः जगह बातें हो रही हैं। देखें, ईश्वर क्या करता है।"

"आपके बहनोई जी क्या करते हैं?"

यह बात सुनते ही हरिनाथ बाबू की आँखें डबडबा आईं। वे करुण-स्वर से कहने लगे—आज यदि वासन्ती के माता-पिता जीवित होते तो वह बेचारी मेरे घर में आती ही क्यों और मुझे इस झञ्झट में ही क्यों पड़ना पड़ता? परन्तु वह जब केवल छः मास की थी तभी मेरे बहनोई जी का स्वर्गवास होगया। जो कुछ थोड़ी-बहुत सम्पत्ति थी उसे बहन जी को चकमा देकर भाई-पट्टीदारों ने बाँट लिया। अन्त में उन्हें मेरे इस दुःखमय परिवार में आकर शरण लेनी पड़ी। किन्तु बेचारी वासन्ती के भाग्य में माता का भी स्नेह नहीं बदा था। उसके चार वर्ष की पूरी होते ही वे उसे त्याग कर चली गईं। तभी से रात-दिन छाती से लगाकर मैंने उसे इतनी बड़ी किया है, अब—

हरिनाथ और कुछ न कह सके। पुरानी बातें स्मरण आ जाने के कारण आँसुओं के भार से उनका कण्ठ-स्वर रुँध गया।

राधामाधव बाबू ने फिर कहा—अच्छा हरिनाथ बाबू, क्या आप वह लड़की एक बार दिखला सकते हैं?

हरिनाथ बाबू के उत्तर देने से पहले ही विश्वनाथ ने कहा—वसु महाशय, वासन्ती को तो आप कल रात्रि में देख चुके हैं।

यह सुनकर राधामाधव बाबू ने कहा—क्या वही हरिनाथ बाबू की भाँजी थी? है तो अच्छी लड़की। क्या उसकी जन्म-पत्री है?

हरिनाथ बाबू ने कहा—जी नहीं, मैं तो जहाँ तक समझता हूँ, जन्म-पत्री नहीं है। परन्तु प्रयत्न करने पर यह मालूम कर सकता हूँ कि किस मास में और किस तिथि को उसका जन्म हुआ था। ठीक-ठीक समय का पता लगाना अवश्य कठिन है।

राधामाधव बाबू ने कहा—आपके बहनोई जी की उपाधि क्या थी?

"वे दत्त थे।"

ज़रा देर तक चुप रहने के बाद हरिनाथ बाबू ने

पूछा—महाशय जी का स्थान कहाँ है? क्या आप यहाँ घूमने आये हैं?

"जी नहीं, कुछ कार्य था। कल रात को तूफ़ान आगया। पानी भी बरसने लगा। इससे जाने का साहस नहीं हुआ। सोचा कि रात्रि में कहीं कोई चोर-बदमाश न मिल जायँ। इससे यहीं पर रुक गया।"

"आज यदि मेरे ही यहाँ भोजन करने की कृपा करते!"

वसु महोदय ने ज़रा-सा हँसकर कहा—आज अभी ही मैं चला जाऊँगा, अन्यथा आपके यहाँ भोजन करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु इसके लिए आपके मन को ज़रा भी कष्ट न होना चाहिए। मैं प्रायः इस ओर से होकर आता-जाता रहता हूँ। इस बार आने पर मैं अवश्य आपके यहाँ ठहरूँगा।

यह बात सुनकर विश्वनाथ ने कहा—माता जी सवेरे से ही उठकर आपके भोजन का प्रबन्ध कर रही हैं। रसोई तैयार होगई है। आप शीघ्र ही स्नान कर लीजिए। यदि आप कुछ खाये बिना ही चले जायँगे तो वे बहुत दुःखी होंगी।

विश्वनाथ की इस बात के उत्तर में वसु महोदय ने कहा—भैया, माता जी क्यों इतने सवेरे से ही मेरे लिए कष्ट करने लगीं? मैं प्रायः दो-तीन बजे तक भोजन किया करता हूँ। सन्ध्या-पूजा आदि से निवृत्त हुए बिना मैं भोजन नहीं करता, और वह सब करने में बड़ा झगड़ा है।

विश्वनाथ ने कहा—इसमें क्या झगड़ा है? मैं अभी सब प्रबन्ध किये देता हूँ। आपको यहाँ किसी प्रकार का सङ्कोच करने की आवश्यकता नहीं है।

यह कहकर विश्वनाथ के चुप हो जाने पर राधामाधव बाबू की ओर देखकर हरिनाथ बाबू ने कहा—महाशय जी, अब आज्ञा दीजिए। बाद को विश्वनाथ की ओर देखते हुए उन्होंने कहा—विशू, वासन्ती को यहाँ बुला लाओ, वसु महाशय उसे देख लें।

विश्वनाथ भीतर गया और ज़रा ही देर में वासन्ती को साथ में लेकर वह फिर लौट आया। वसु महोदय ने वासन्ती का हाथ पकड़कर उसे अपने पास बैठाल लिया और सूर्य के उज्ज्वल प्रकाश में वे उसके मुरझाये हुए चेहरे की ओर देखने लगे। तब हरिनाथ बाबू उठकर खड़े हो गये और कहने लगे कि वासन्ती, इन्हें प्रणाम करो।

वासन्ती ने मस्तक झुकाकर वसु महोदय को प्रणाम किया। उन्होंने भी उसके मस्तक पर हाथ रख कर आशीर्वाद दिया। अन्त में भाँजी को साथ में लेकर हरिनाथ बाबू दत्त बाबू के घर से चल पड़े।

दोपहर को दत्त-बहू हरिनाथ बाबू के द्वार पर जाकर खड़ी हुईं। उस समय उन्हें कोई दिखाई नहीं पड़ा। इससे वे पुकारने लगीं—क्यों रे वासन्ती, कहाँ चले गये तुम लोग? हरिनाथ कहाँ है?

वासन्ती उस समय चौके से बहुत-से जूठे बर्तन लिये हुए आ रही थी। दत्त-बहू को देखकर उसने कहा—नानी जी, मामा सो रहे हैं। बैठो, मैं उन्हें जगाये देती हूँ।

मस्तक पर से बर्तनों का बोझ उतारकर वासन्ती ने रख दिया और लोटे के जल से हाथ धोकर तेल से भीगी हुई एक फटी-सी चटाई उसने बिछा दी। उसी पर दत्त-बहू को बैठने को कहकर भीतर चली गई। क्षण ही भर के बाद वासन्ती की मामी का स्वर सुनाई पड़ा। वे प्रचण्ड स्वर से कह रही थीं—कहाँ की बला है? यह तो खोपड़ी खा गई ऐसी दोपहरी में मामा, मामा करके। क्या करेगी मामा का? इससे किसी तरह पिंड भी नहीं छूटता कि शान्ति से रह सकती।

बाहर से दत्त-बहू ने कहा—पिंड छुड़ाने का ही प्रबन्ध करने आई हूँ बहू। हरिनाथ को ज़रा-सा बुला दो।

दत्त-बहू का कण्ठस्वर सुनकर हरिनाथ बाबू बड़ी उतावली के साथ बाहर निकल आये। वे कहने लगे—कहो चाची, इस दोपहरी में कैसे निकल पड़ी हो? क्या कोई ख़ास बात है?

"बात अच्छी ही है। तुमसे एक बात कहने आई हूँ।"

वासन्ती उस समय बर्तन निकालने के लिए धीरे धीरे चौके में जा रही थी। दत्त-बहू ने कहा—वासन्ती, यह सब तू इस समय रहने दे। मैं अपनी नौकरानी को कहती हूँ। वह आकर साफ़ कर देगी। तू मेरे पास आकर बैठ।

इसमें सन्देह नहीं कि इस बात से मामी बहुत रुष्ट हो गई थीं, परन्तु दत्त-बहू के सामने मुँह से वे कुछ निकाल नहीं सकती थीं।

हरिनाथ बाबू ने पूछा—कौन-सी बात है चाची?

दत्त-बहू कहने लगीं—बात क्या है। सवेरे तुम्हारी जिन वसु-महोदय से मुलाक़ात हुई थी वे एक बार फिर वासन्ती को देखना चाहते हैं। उस समय वे गये नहीं। इससे विशू ने मुझे तुम्हारे पास इसलिए भेजा है कि वासन्ती को ज़रा-सा सजा रखने की ज़रूरत है। परन्तु बहू इस बात का अनुभव नहीं करती। अभी थोड़ी ही देर में वे इसे देखने आवेंगे।

हरिनाथ बाबू ने कहा—तो चाची जी, उनके जल-पान आदि का भी कुछ प्रबन्ध करना होगा, नहीं तो अच्छा न मालूम पड़ेगा।

चाची जी ने कहा—कुछ तो करना ही पड़ेगा। और यह तो बहू भी कर सकती है। तुम बाज़ार से कुछ फल और थोड़ी-सी मिठाई ला दो। बाक़ी चीज़ें घर में ही तैयार हो जायँगी।

हरिनाथ बाबू की स्त्री का चाची जी के साथ एक गुरुजन का-सा सम्पर्क था। इस कारण उनके सामने वह बोलती नहीं थी। परन्तु क्रोध के वश में आ जाने के कारण वह इस बात को भूल गई। एक तो वह पहले से ही झुँझलाई हुई थी, बाद को यह बात सुनकर उसका पारा और चढ़ आया। बहुत ही कर्कश स्वर से उसने कहा—इन सब दुनिया भर के लोगों के लिए, हाड़ तोड़ने को मैं नहीं तैयार हूँ। सवेरे से ही मेरे मस्तक में पीड़ा हो रही है। मुझे बूँद भर पानी देनेवाला भी कोई नहीं है। तिस पर ऐसी दोपहरी में चूल्हे के सामने बैठकर ऐसे ग़ैर आदमियों के लिए भोजन बनाने बैठूँ? मुझे इतनी गरज़ नहीं है। जिसकी गरज़ हो वह करे।

यह सुनकर हरिनाथ बाबू ने रूखे स्वर में कहा—गरज़ चाची जी को ही है। ये ही सब करेंगी। तुम्हें—

उनकी बात समाप्त भी न होने पाई कि गृहिणी बोल उठी—मैं तो सदा से ही बुरी हूँ। जो लोग अच्छे हों वही करें, मैं यदि न कर सकूँ। और मुझे घर में रखना यदि तुम्हें भार मालूम पड़ता हो तो मुझे मेरे पिता के यहाँ भेज दो।

हरिनाथ बाबू कुछ कहने जा रहे थे कि दत्त-बहू ने उनके मुँह पर हाथ रखकर कहा—बहू और हरिनाथ, तुम लोग ज़रा-सा चुप रहो। वे भी एक भले आदमी हैं। कहीं आगये और तुम लोगों की इस तरह की बातें सुन लीं तो भला अपने मन में क्या कहेंगे? मैं अकेली ही सब कुछ कर लूँगी। अब भी इस बुढ़ापे में भी मैं सात सात भोज पार कर सकती हूँ। हरिनाथ, तुमको मैं जो कहती हूँ वही करो। बाज़ार जाते समय विशू को कहते जाना कि बहू मज़दूरिन को लेकर तुरन्त ही यहाँ आ जाय, देरी न होने पावे।

ज़रा ही देर के बाद एक नवयौवना स्त्री मज़दूरिन को साथ लिये हरिनाथ बाबू के घर में पहुँच गई। दत्त-बहू के पास जाकर उसने कहा—मा, क्या तुमने मुझे बुलाया है?

पुत्रवधू को देखकर उन्होंने कहा—बहू, तुम आगई हो। अच्छा, तुम झटपट वासन्ती के बाल सँभालकर बाँध दो। बाद को मज़दूरिन से बर्तन साफ़ करने को कहकर वे स्वयं चूल्हा जलाने लगीं। परन्तु उन्हें ऐसा करते देखकर वासन्ती की मामी चुपचाप न रह सकी। दत्त-बहू को बैठने को कहकर वह स्वयं सारा काम-काज करने लगी।

यथासमय राधामाधव बाबू वासन्ती को देख गये। उसे तो वे पहले से ही पसन्द कर चुके थे, किन्तु जाते समय कह गये कि घर जाकर अपने निश्चय की सूचना दूँगा। विपिन बाबू के साथ कलकत्ता जाने से पहले उन्होंने हरिनाथ बाबू को पत्र लिखा कि मैं दो-एक दिन में वासन्ती को आशीर्वाद देने आऊँगा।

चित्र-संग्रह
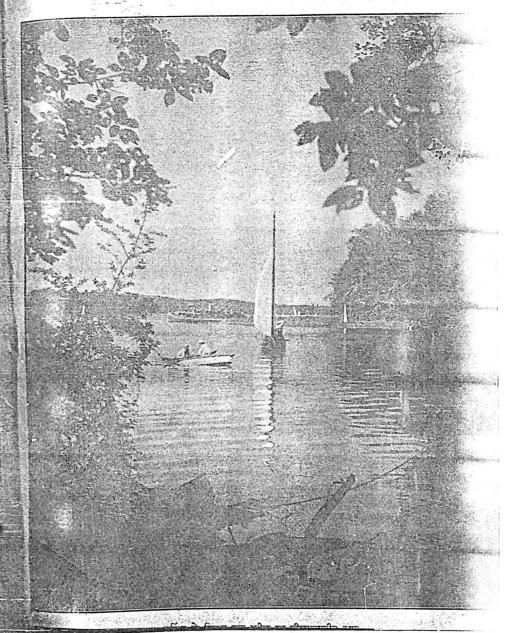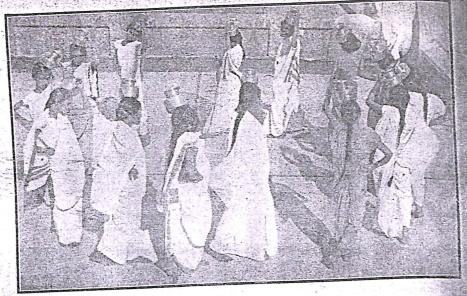
बम्बई की लोकमान्य-कन्याशाला की लड़कियों का गर्बा-नृत्य
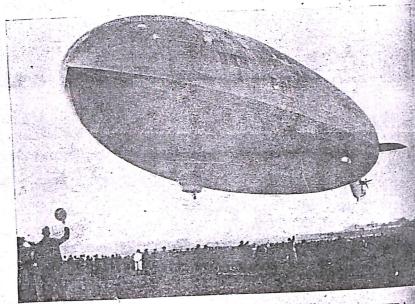
हिंडनबर्ग—जर्मनी का विशालकाय वायुयान। प्रथम उड़ान के बाद उतरते समय का एक दृश्य।

हाल में इटली में १८ से २१ वर्ष की आयु के फ़ैसिस्ट युवकों का सम्मेलन हुआ था। यह जत्था आस्ट्रिया के उन युवकों का है जो मुसोलिनी के मेहमान हुए थे।

डा० परमात्मासरन, एम० ए०। ये हिन्दू-विश्व-विद्यालय में इतिहास के अध्यापक हैं। हाल में विलायत से पी० एच० डी० की डिग्री लेकर लौटे हैं।

श्री जयचन्द खन्ना और चन्द्रा खन्ना जिनका हाल में विवाह हुआ है। वर दिल्ली के लाला मोतीराम खन्ना के पुत्र और वधू इंडियन प्रेस के प्रकाशन-विभाग के प्रधान श्री फ़क़ीरचन्द मेहरा की पुत्री हैं।

नई पुस्तकें

[प्रतिमास प्राप्त होनेवाली नई पुस्तकों की सूची । परिचय यथासमय प्रकाशित होगा]

१—**हिन्दू मोरिशस**—लेखक, श्रीयुत पंडित आत्माराम जी, प्रेषक, हिन्दी-प्रचारिणी सभा मोंतांई लोंग, मोरिशस है। मूल्य ३) है।

२—**श्रीरामचन्द्रोदय काव्य**—रचयिता, श्रीयुत रामनाथ 'जोतिसी,' प्रकाशक, हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग हैं। मूल्य २) है।

३—**बिहारी-दर्शन**—(आलोचना) प्रणेता, पंडित लोकनाथ द्विवेदी, सिलाकारी, प्रकाशक, गंगा-ग्रन्थागार, ३० अमीनाबाद पार्क, लखनऊ हैं। मूल्य २) है।

४—**फूलों की सेज**—लेखक, श्रीयुत विजयबहादुर-सिंह, बी० ए०, प्रकाशक, गंगा-ग्रन्थागार, ३० अमीनाबाद पार्क, लखनऊ हैं। मूल्य २) है।

५—**काल-ज्ञान** (प्रथम भाग)—लेखक व प्रकाशक, पंडित बालाजी गोविन्द हर्डीकर ज्योतिषी, काल-ज्ञान कार्यालय, कानपुर हैं। मूल्य १॥) है।

६—**यात्री-मित्र**—लेखक, स्वामी सत्यदेव परिव्राजक, प्रकाशक, सत्य-ज्ञान-निकेतन, ज्वालापुर (यू० पी०) हैं। मूल्य ॥) है।

७—**सरल रोग-विज्ञान**—लेखक, राजवैद्य पंडित रवीन्द्र शास्त्री, 'कविभूषण', प्रकाशक, अनुभूत-योगमाला, बरालोक (इटावा) हैं। मूल्य ३) है।

८-९—**श्रीयुत रामेश्वर 'करुण' द्वारा लिखित, साहित्य-सदन अबोहर से प्रकाशित दो पुस्तकें**—

(१) ईसप-नीतिनिकुंज—मूल्य ॥) है।

(२) बालगोपाल—मूल्य =॥) है।

१०—**हिन्दूधर्म की विशेषतायें**—लेखक, स्वामी सत्यदेव परिव्राजक, प्रकाशक, सत्य-ज्ञान-निकेतन, ज्वालापुर (यू० पी०) हैं। मूल्य ।-) है।

११—**अतीत के चित्र** (कहानियों का संग्रह)—लेखिका, श्री कुमारी सुशीला आगा, बी० ए०, प्रकाशक, गंगा-ग्रन्थागार, ३० अमीनाबाद पा[र्क], लखनऊ हैं। मूल्य ॥=) है।

१२—**बीमा-सन्देश**—लेखक, श्रीयुत मणिभा[ई] देसाई, पता—दि एशियन, एंश्युरन्स कम्पनी लि०, एशियन बिल्डिंग, कोट बम्बई है।

१३—**साहित्य की झाँकी**—लेखक, श्रीयुत गौरीशंकर सत्येन्द्र, एम० ए०, 'विशारद', प्रकाशक, भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावन हैं। मूल्य ।॥) है।

१४—**परमभक्त प्रह्लाद**—लेखक, श्रीयुत रामचन्द्र शर्मा चतुर्वेदी, प्रकाशक, वाणी-मन्दिर, खरगोन हैं। मूल्य ॥) हैं।

१५-१६—**श्रीयशवन्त शंकर समाज, दतिया द्वारा प्रेषित दो पुस्तकें**—

(१) उपहार—लेखक श्रीयुत बलवीरसिंह।

(२) अनन्यार्धशतक।

१७—**भारतीय साहित्य परिषद और भाषा का प्रश्न**—प्रकाशक, सस्ता-साहित्य-मण्डल, देहली हैं। मूल्य ।=) है।

१८—**चेतावनी**—लेखक, श्री दीन-दीक्षित शेरसिंह, प्रकाशक, श्रीहरिसिद्ध प्रिंटिंग प्रेस, पंडिताश्रम सभा, उज्जयिनी हैं।

१९—**योरोप में सात मास**—लेखक, श्रीयुत घ[नश्याम]चन्द सरावगी, प्रकाशक, हिन्दी-पुस्तक-एजन्सी, २०३ हरीसन रोड, कलकत्ता हैं। मूल्य २॥) है।

२०—**सत्यव्रती हरिश्चन्द्र**—लेखक, श्रीयुत [illegible] दयाल गर्ग, मुद्रक, श्री प्रभाकर प्रिंटिंग प्रेस, जोधपुर हैं। मूल्य ॥) है।

२१—**श्रीचैतन्य महाप्रभु**—(खंड ४-५) प्रकाशक, सस्तुं-साहित्य-वर्धक, कार्यालय, अहमदाबाद हैं। मूल्य ३) है।

२२—**विजयवर्गीय के चित्रों का अलबम**—प्रकाशक, श्रीयुत ठाकुर अयोध्यासिंह, विशाल भारत बुक-डिपो, १९५।१ हरीसन रोड, कलकत्ता हैं। मूल्य २) है।

१-३—**निराला जी की तीन पुस्तकें**

(१) सखी—(कहानियों का संग्रह) प्रकाशक—सरस्वती-पुस्तक-भंडार, आर्यनगर, लखनऊ। पृष्ठ-संख्या १३०, और मूल्य ।॥) है।

(२) निरुपमा—(उपन्यास) प्रकाशक—लीडर प्रेस, प्रयाग। पृष्ठ-संख्या २०० और मूल्य १।)

(३) गीतिका—(गीतों का संग्रह)—प्रकाशक—भारतीभंडार, काशी। पृष्ठ-संख्या २०० और मूल्य १॥) है।

पंडित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' हिन्दी के श्रेष्ठ कवि और सुलेखक हैं। अब तक आप छायावादी कविता के ही विशेषज्ञ थे, किन्तु इधर कुछ वर्षों से आप कहानियाँ और उपन्यास लिखने की ओर भी प्रवृत्त हुए हैं। कविता के समान ही आपके गद्य में भी भावुकता, अलंकारिता, दार्शनिकता और दुरूहता भी पाई जाती है।

'सखी' में आपकी आठ मौलिक कहानियाँ संग्रहीत हैं। 'सखी', 'न्याय' और 'सफलता' कथा-साहित्य के अनुरूप हैं। 'देवी', 'चतुरी चमार', 'स्वामी सहजानन्दजी महाराज और मैं' लेखक की जीवन-घटनाओं से सम्बन्ध रखती हैं। कहानी लिखने का लेखक का कोई उद्देश होता है, चाहे उसका रूप सार्वजनिक हित हो, चाहे सुधारात्मक या शिक्षाप्रद। इन कहानियों में उत्तम कहानी का प्रधान गुण आकर्षण, मनोरंजन एवं एक विशेष विचार की पुष्टि और हृदय की तल्लीनता भी है। अतएव इनमें पाठकों के लिए कहानी का वैसा मज़ा नहीं है। कहानियों की कथायें आलोचनाओं—कहीं कहीं व्यक्तिगत भी—और विषय के विवेचन से युक्त हैं, जिससे कथा-भाग प्रायः काव्यात्मक-सा हो गया है। 'राजा साहब को ठेंगा दिखाया' कहानी विचित्र मनोभावों से पूर्ण है। निराला जी एक उच्च कोटि के कलाकार हैं। कलाकार का कार्य कला की रक्षा करना है। व्यक्तिगत विवाद और तर्क को साथ लेने से कला का सौन्दर्य बिगड़ जाता है। जैसे 'चतुरी चमार' कहानी में चतुरी से अर्जुनवा को पढ़ाने के एवज़ में प्रतिदिन बाज़ार से मांस मँगवाना, पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी की चतुरी से तुलना करना आदि व्यक्तिगत बातें हैं। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से 'सखी' और 'न्याय' अच्छी कहानियाँ हैं। 'भक्त और भगवान्' भावुकता और दार्शनिकता से पूर्ण है। 'सखी' में कहानीपन कम और काव्य अधिक है। तो भी इसको पढ़ने पर निराला जी को 'आत्मकथा की कहानी उन्हीं की ज़बानी' अधिक प्रभाव डालती है। हिन्दी-प्रेमियों के लिए निराला जी की यह नवीन कृति पढ़ने की चीज़ है।

'निरुपमा' निराला जी का मौलिक उपन्यास है। आपने २-३ और भी उपन्यास लिखे हैं। यह उनकी चौथी कृति है। इस पुस्तक की कथा इस प्रकार है—

कृष्णकुमार उन्नाव का रहनेवाला है। वह पढ़ने के लिए लन्दन जाता है। वहाँ से डाक्टरी की उपाधि लेकर घर लौटता है. किन्तु नौकरी न मिलने से जूता [गाँठ]ने का काम करने लगता है। कृष्णकुमार का घर एक बंगाली ज़मींदार की ज़मींदारी में है। ज़मींदार की लड़की का नाम निरुपमा है। ज़मींदार का कुटुम्ब लखनऊ में रहता है। एक दिन कृष्णकुमार को जूता गाँठते हुए निरुपमा ने देख लिया, और वह उसकी ओर आकृष्ट हो गई। किन्तु निरुपमा के चचा उसका विवाह दूसरे से करना चाहते हैं। अन्त में निरुपमा की सहायक कमला नामक एक लड़की हुई, जिसने बड़ी चालाकी से निरुपमा (बंगाली लड़की) का विवाह कृष्णकुमार (कान्यकुब्ज ब्राह्मण) से करा दिया। बस यही इस उपन्यास की कथा है। इस कथा के साथ और भी दो एक छोटी कथायें भी सम्मिलित हैं।

इस उपन्यास का नायक कृष्णकुमार है और नायिका निरुपमा है। इसके लिखने का उद्देश जात पाँत तोड़कर विवाह का समर्थन जान पड़ता है। इसके पात्र लखनऊ और उन्नाव के हैं। इसके अन्य पात्र योगेश, यामिनी, सुरेश, नीला, कमला तथा कुछ ग्रामनिवासी ब्राह्मण किसान हैं। कृष्णकुमार का चित्रण साधारणतया ठीक है, क्योंकि आजकल बेकारी का युग है, पढ़े-लिखों को नौकरी मिलना कठिन हो गया है। किन्तु जूता गाँठने का ही आदर्श उसने जनता के सामने क्यों रक्खा, इसका महत्त्व समझ में नहीं आता है। निरुपमा का चरित्र-चित्रण अस्वाभाविक है। निरुपमा का कृष्णकुमार से एकाएक प्रेम करने लगना, उसका अपने भाई और बहन के साथ अपनी ज़मींदारी उन्नाव में जाना, वहाँ उसका खेतों में पैदल घूमना, गाँव की स्त्रियों को अपने घर में आमंत्रित करना, पानी पिलाना,

पान खिलाना और उनके साथ बातें करना, यामिनी बाबू से बाह्य प्रेम करना, स्थान स्थान पर साधारण बात में व्यंग्य बोलना और उपनिषदों के श्लोक कहना, अपने चाचा, भाई को, यामिनी बाबू के साथ ब्याह करने के बारे में धोखे में डाले रहना, अन्त में एक दिन कमला की सहायता से विवाह कर लेना, ये सब विचित्र बातें हैं। नीला का चरित्र उतना अच्छा नहीं अंकित किया गया है। हाँ, कृष्णकुमार की माता का चरित्र-चित्रण अच्छा हुआ है। माता का हृदय कितना कोमल और सुन्दर होता है, इसका चित्रण लेखक ने स्वाभाविक किया है। योगेश बाबू की चालाकी का चित्रण भी स्वाभाविक हो सकता है। कमला का स्वार्थत्याग भी सुन्दर है। कृष्णकुमार कमला का ट्यूटर है, किन्तु जब उसे सब बातें मालूम होती हैं तब वह छल करके यामिनी बाबू का विवाह दूसरी स्त्री से करा देती है। यामिनी बाबू जब भीतर जाते हैं तब उन्हें पता चलता है कि उनकी विवाहित स्त्री निरुपमा नहीं है। तात्पर्य यह है कि उपन्यास विचारों की दृष्टि से विचित्र और अनूठा है। भाषा और भाव की दृष्टि से भी रचना सुन्दर है। काव्य की कलित कल्पनायें भी यत्र-तत्र प्राप्त होती हैं। हमारा अनुरोध है कि उपन्यास-प्रेमी निराला जी के इस उपन्यास को अवश्य पढ़ें। विचार-विनिमय के साथ साथ उन्हें समाजवाद की चोटी के सुधारों का दिग्दर्शन होगा और भावुक विचारों का हृदय पर प्रभाव पड़ेगा।

'गीतिका' निराला जी का एक सुन्दर काव्य है। अब तक निराला जी के जितने ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं उनमें यह ग्रन्थ सबसे सुन्दर और आकर्षक है। निराला जी एक उच्च कोटि के कवि और साथ ही संगीतज्ञ भी हैं। इस गीतिका में आपके १०१ गीतों का संग्रह है। गेय काव्य हिन्दी-साहित्य में—प्राचीन काव्य को छोड़कर—नहीं के बराबर हैं। जो हैं भी उनका प्रयोग गायन में नहीं होता है। हिन्दी के इस अंग की 'गीतिका'-द्वारा अच्छी पूर्ति हुई है। प्रारंभ में लेखक ने गीतों की उपयोगिता पर अच्छा प्रकाश डाला है तथा कुछ संगीत-सम्बन्धी विचार भी व्यक्त किये हैं। बाबू जयशंकर 'प्रसाद' जी के कथनानुसार 'गीतिका' भाव, भाषा और कल्पना की दृष्टि से उच्च कोटि की है। पंडित नन्ददुलारे वाजपेयी ने 'समीक्षा' में गीत-काव्य तथा निराला जी के गीतों की सुन्दर विवेचना की है। गीतिका के गीतों में कल्पना की उड़ान उतनी ऊँची नहीं है, जितनी उनकी अन्य कविताओं में। इससे गीत बहुत आकर्षक और बोधगम्य बन गये हैं। भाषा भी 'गीतिका' की समझ के परे नहीं है। गीतों में मधुरता, कोमलता और प्रवाह का सुन्दर मिश्रण है। पुस्तक के अन्त में कठिन शब्दों और भावों का परिचय दिया गया है। इससे सिद्ध होता है कि जब 'गीतिका' में शब्दकोश देने की आवश्यकता है तब उनकी अपर कवितायें यदि किसी की समझ के परे हों तो क्या आश्चर्य। तथापि 'गीतिका' एक उच्च कोटि का गीति काव्य है। गायन की दृष्टि से भी इसका आदर अवश्य होगा। इसमें काव्य की अद्भुत छटा तो है ही।

—ज्योतिःप्रसाद 'निर्मल'

४—**मधुबाला**—रचयिता श्रीयुत बच्चन, प्रकाशक सुषमा-निकुञ्ज, इलाहाबाद हैं। पुस्तक पाकेट साइज़ सजिल्द है। मूल्य १) है। पृष्ठ-संख्या १२१ है।

इस पुस्तक में बच्चन जी की 'मधुबाला' नामक कविता तथा १४ गीतों का संग्रह है।

'मधुशाला' तथा 'ख़ैयाम की मधुशाला' को लिख कर बच्चन जी ने हिंदी के क्षेत्र में ख़ासी ख्याति प्राप्त की है।

इस पुस्तक में कुछ गीत जैसे—'मधुबाला', 'मधुपायी', 'जीवन-तरुवर', 'प्यास' तथा 'बुलबुल' प्रथम श्रेणी के हैं, बाक़ी चार-पाँच मध्यम श्रेणी के हैं, और शेष गीत यदि इस पुस्तक में न होते तो कितना अच्छा होता। बात यह है कि बच्चन जी की यह पहली कृति नहीं है, उनकी चौथी पुस्तक है।

'सुराही' नामक गीत में बच्चन जी लिखते हैं—

मदिरालय हैं मन्दिर मेरे,
मदिरा पीनेवाले, चेरे,
पंडे-से मधु-विक्रेता को,
जो निश दिन रहते हैं घेरे;

इसमें मदिरा पीनेवालों की उपमा पंडों से की गई है, जो फ़िट नहीं है।

एक बात और हमें इन गीतों में अखरती है, वह इनका इतने बड़े-बड़े होना है। गीत तो छोटे ही सुन्दर होते हैं। हमको 'बड़ों' से भी कोई ऐतराज़ न होता यदि उनकी सुन्दरता केवल उनके बड़े होने से ही न मारी जाती। जितना हम बच्चन जी के 'प्रलाप' में उत्साह और उमंग तथा चुलबुलाहट पाते हैं, उतनी उनके गीतों के पहले हिस्से में नहीं है।

इतना सब होने पर भी बच्चन जी के प्रथम श्रेणी के गीत बड़े रसीले और प्रभाव-पूर्ण हैं। 'मधुबाला' तथा 'प्यास' उनमें सर्वप्रथम हैं। कुछ सुन्दर पदों को हम यहाँ उद्धृत करते हैं।

मैं मधु-विक्रेता की प्यारी,
मधु के घट मुझ पर बलिहारी,
प्यालों की मैं सुषमा सारी,
मेरा रुख देखा करती है—
मधु-प्यासे नयनों की माला!
मैं मधुशाला की मधुबाला!

(मधुबाला)

क्रोधी मोमिन हमसे झगड़ा,
पंडित ने मन्त्रों से जकड़ा;
पर हम थे कब रुकनेवाले,
जो पथ पकड़ा वह-पथ पकड़ा।

(मधुपायी)

क्या कहती? 'दुनिया को देखो',
दुनिया रोती है, रोने दो,
मैं भी रोया, रोना अच्छा,
आँसू से आँखें धोने दो,
रोनेवाला ही समझेगा
कुछ मर्म हमारी मस्ती का।

(प्यास)

इन पदों में बच्चन जी ने अपने भाव बड़ी सरलता तथा सुन्दरता के साथ व्यक्त किये हैं। साधारण बात है, सरल भाषा है, फिर भी ढंग कितना सुन्दर है! इसी का एक सुन्दर उदाहरण और लीजिए—

जब मानव का अपनी तृष्णा
से है इतना चिर दृढ़ नाता,
तब मैं मदिरा का अभिलाषी
क्यों जग में दोषी कहलाता।

(प्यास)

निम्न पदों में बच्चन जी के भाव प्रशंसनीय हैं।

लिये मादकता का संदेश
फिरा मैं कब से जग के बीच,

कहीं पर कहलाया विक्षिप्त,
कहीं पर कहलाया मैं नीच!
सुरीरे कंठों का अपमान
जगत में कर सकता है कौन?
स्वयं, लो, प्रकृति उठी है बोल
विदा कर अपना चिर व्रत मौन!

अरे मिट्टी के पुतलो! आज,
सुनो अपने कानों को खोल,
सुरा पी, मद पी, कर मधुपान,
रही बुलबुल डालों पर बोल।

(बुलबुल)

—केदारनाथ मिश्र 'केदार'

५—**रोगों की अचूक चिकित्सा**—लेखक, श्रीयुत जानकीशरण वर्मा, प्रकाशक, लीडर प्रेस, इलाहाबाद; मूल्य १॥)

इस पुस्तक में रोगों की उत्पत्ति और उनकी सरल चिकित्सा-विधि ऐसे सरल शब्दों में और चित्रों-द्वारा समझाई गई है कि उसे साधारण ज्ञानवाली स्त्रियाँ भी अच्छी तरह समझ सकती हैं। लेखक ने भोजन के नियम, व्यायाम, हवा, धूप, आग और पानी का प्रयोग इत्यादि विषयों पर पूरा पूरा प्रकाश डाला है और चिकित्सा के सम्बन्ध में अपने अनुभवों को देकर पुस्तक को विशेष उपयोगी बनाया है। इस विषय के प्रेमियों को इसका संग्रह करना चाहिए।

६-१०—**वेद-विषयक पाँच पुस्तकें**—गुरुदत्त-भवन, लाहौर-द्वारा प्रकाशित।

(१) शतपथ में एक पथ—पृष्ठ-संख्या ८८ मूल्य ।) है।

यह पुस्तक पण्डित जी के, गुरुकुल-विश्वविद्यालय, काँगड़ी, में दिये गये चार व्याख्यानों का संग्रह है। प्राचीन वैदिक सम्प्रदाय वेद को संहिता ... भागों में बाँटता है और दोनों को अनादि ... स्वीकार करता है। किन्तु आर्य-समाज ... दयानन्द सरस्वती ने केवल संहिता ... किया है और ब्राह्मणग्रन्थों ... वेद-व्याख्यानमात्र माना है ... इसमें किया ... मनोरंजक भी ... ही हैं। पुस्तक ... उपयोगी है। पुस्तक की ... कहीं त्रुटियाँ रह गई हैं, जिनका ... में हो जाना चाहिए। पुस्तक भी इसी बात को सिद्ध ...

शतपथ के उपज्ञाता याज्ञवल्क्य तथा उसके उपनिबन्धक उनके किसी अज्ञातनामा शिष्य को माना है। लेखक के मत से शतपथ ब्राह्मण का प्रतिपाद्य विषय 'यज्ञ' है। ये यज्ञ केवल मुख्यार्थ को सूचित करनेवाले 'रूपक' तथा नाटक-मात्र हैं; सब 'प्रतीक' हैं। सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, वृष, आप तथा वरुण पद क्रमशः वीर्य, सन्तान, माता, भोग, स्त्री तथा राष्ट्रनियन्ता के अर्थों में इसमें स्वीकार किये गये हैं। अपने विचारों की पुष्टि में लेखक ने ग्रन्थ के उद्धरण देकर विषय को स्पष्ट किया है। ग्रन्थ की भाषा ज़ोरदार और विषय-प्रतिपादन की शैली प्रभावोत्पादक है। लेखक के विचारों में पर्याप्त मौलिकता तथा विचारणीय बातें हैं। कात्यायन तथा पतञ्जलि ने एवं सभी वैदिक सम्प्रदायों ने शतपथ आदि ब्राह्मण-ग्रन्थों को वेद माना है और लेखक के शब्दों में ऐसा करना 'दुःसाहस की जो चरम सीमा है उसका परिचय दिया है। ऐसा क्यों किया गया है या ऐसा करने में उनका क्या उद्देश था, इस पर लेखक ने कुछ भी प्रकाश नहीं डाला। सम्पूर्ण यज्ञों को केवल 'नाटक' या रूपक कहकर लेखक ने जैमिनि आदि कर्मकाण्डभक्तों के, यज्ञों से 'अपूर्वोत्पत्ति'-द्वारा काम्य स्वर्ग आदि फलप्राप्ति के सिद्ध करने के सम्पूर्ण परिश्रम, सिद्धान्तों और दार्शनिक गवेषणाओं की उपेक्षा कर दी है। इन सब विषयों पर विचार न होने से ग्रन्थ का महत्त्व कम हो जाता है। आशा है, लेखक अपने प्रकाशित होने-वाले 'शतपथ-भाष्य' में इनका भी विवेचन करेंगे।

(२) स्वर्ग—पृष्ठ-संख्या ८५। मूल्य ।=) है।

इस पुस्तक में स्वः और स्वर्ग इन दोनों पदों में व्युत्पत्ति-निमित्तक भेद मानकर 'स्वर्ग' का अर्थ सुख की ओर जानेवाला किया गया है। स्वः की ओर जानेवाले ये तीन मार्ग ब्रह्मचर्य, गृहस्थाश्रम और वानप्रस्थ बतलाकर लेखक ने स्वः से संन्यासाश्रम का ग्रहण किया है। पुनः वैदिक अग का रण देकर विस्तार से इन आश्रमों का वर्णन लेखक ने गी प्रकार के व्याख्यान-कौशल से जो अर्थ किये है तथा कुछ श्चयात्मक परिणाम पर नहीं पहुँचाते। बाबू जयशंकर 'प्रसा राणिक स्वर्ग में भी घट सकते भाषा और कल्पना की दृष्टि विभिन्न देवताओं के लोकों नन्ददुलारे वाजपेयी ने 'सभी हो सकता है। इस प्रकार निराला जी के गीतों की सुन्दर क कल्पना नहीं है, किन्तु

उनका वर्णन पुराणों के अतिरिक्त साधना से योगज प्रत्यक्ष-द्वारा वस्तु-तत्त्वों को प्रत्यक्ष दिखला देनेवाले योगशास्त्र में भी मिलता है। लेखक यदि चाहें तो पातञ्जल योगदर्शन के तृतीय पाद के २६वें सूत्र के व्यास-भाष्य को जिसे स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी प्रामाणिक माना है, देख सकते हैं। इतना होते हुए भी लेखक ने अपने दृष्टि-कोण को जिस कौशल से उपस्थित करने का प्रयत्न किया है, वस्तुतः दर्शनीय है। पुस्तक आर्यसमाजियों के लिए विशेष उप-योगी है तथा सर्वसाधारण भी आश्रमों के महत्त्व की अनेक सुन्दर बातें इससे जान सकते हैं।

(३) सोम—इस पुस्तक में 'सोम' शब्द पर विचार किया गया है। सोम पद का प्रसिद्ध अर्थ सोम न करके 'विद्या समाप्त करनेवाला ब्रह्मचारी' किया है। इसकी सिद्धि में लेखक ने जड़ सोम में न घट सकनेवाले ऐसे विशेषणों की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है जो उनके मन्तव्य को पूर्णरूप से परिपुष्ट करते हैं। स्थान स्थान पर आये हुए 'द्रोण', कलश, धारा, बभ्रु आदि पदों का अर्थ व्युत्पत्ति और कोशों की सहायता से क्रमशः रथ, व्याख्यानमण्डप, ऋत (ज्ञान) की धारा आदि किया है। व्याख्या से एक नूतन दृष्टिकोण का पता चलता है, और इस दृष्टि से पुस्तक उपयोगी है।

(४) अथ मरुत्सूक्तम्—मूल्य ।)

इस पुस्तक में ऋग्वेद में आये हुए 'मरुत्' पद की मीमांसा की गई है। 'मरुत्' का अर्थ 'सैनिक' किया गया है, 'वायु देवता' नहीं। व्याख्यान-शैली वही है जो उपर्युक्त पुस्तकों की है। इस पुस्तक के अनुसार वैदिक सभ्यता में सेनाओं का दृढ़ संगठन तथा जन-संहारक बड़े से भयंकर वैद्युतिक यंत्रों तथा शस्त्रास्त्रों का पता चलता है। पुस्तक खोज से लिखी गई है और लेखक ने अपने प्रतिपाद्य विषय को खूब स्पष्ट तथा मनोरञ्जक ढंग से उपस्थित किया है।

(५) अथ ब्रह्मयज्ञः—मूल्य ।=) है।

पञ्चमहायज्ञों में से ब्रह्मयज्ञ भी एक है। सन्ध्योपासन द्विजातियों का दैनिक कर्त्तव्य कहा गया है। इस पुस्तक में आर्यसमाज में प्रचलित सन्ध्या-मंत्रों की सुन्दर व्याख्या की गई है। मंत्रों में प्रत्येक पद कितना सारगर्भित है और उनके क्रम में कितना रहस्य भरा हुआ है, यह इस ग्रन्थ से

समझ में आ सकता है। पुस्तक में अनेक स्थलों पर व्यङ्ग्य-पूर्ण आक्षेप भी विपक्षियों पर किये गये हैं, जिससे लेखक की उपदेशक-मनोवृत्ति का परिचय मिलता है। अच्छा होता यदि सन्ध्या के 'शंप्रधान' इस विवेचन में दोषदर्शन की प्रवृत्ति को स्थान न दिया जाता। पुस्तक परिश्रम से लिखी गई है। प्रत्येक आर्य को इससे लाभ उठाना चाहिए। पुस्तक से लेखक के गम्भीर मनन, दृढ़ श्रद्धा और मौलिक विवेचन-प्रवृत्ति का परिचय मिलता है।

उपर्युक्त पाँचों पुस्तकें पण्डित बुद्धदेव विद्यालङ्कार जी की लिखी हुई हैं। इनमें जिस व्याख्यान-कौशल से काम लिया गया है उससे केवल यही सिद्ध होता है कि वेदरूपी कल्पवृक्ष के पास जो जिस भावना से जाता है उसे वही अर्थ दीख पड़ते हैं। जैसे पाश्चात्य पण्डितों ने वेदों से अपनी ऐतिहासिक गवेषणाओं को प्रमाणित किया है, उसी प्रकार भारत में भी वेदों से पौराणिक (ऐतिहासिक) याज्ञिक, नैरुक्तिक, आध्यात्मिक आदि अर्थों की प्रणालियों का प्रचलन हुआ है। इन विभिन्न मतों के मनीषियों के विभिन्न अर्थों से जहाँ वेदों की सर्वतो-भद्र वेदवाणी के महत्त्व का पता चलता है, वहाँ साथ ही साधारण जनता के लिए इस पहेली की रहस्यमय उलझन और भी बढ़ती जाती है। निःसन्देह वेद-वाणी इन सभी अर्थों की ओर संकेत करती हुई भी ऐसे तत्त्वों का मुख्य-रूप से प्रतिपादन करती है जो वेद के अतिरिक्त अन्य किसी लौकिक प्रमाण से नहीं जाने जा सकते। पण्डित जी के अर्थ बुद्धि-संगत होते हुए भी अन्य प्रमाणों से लोक में ज्ञात और प्रसिद्ध हैं। अनेक स्थलों में तो पण्डित जी ने वर्तमान लोक-प्रसिद्ध पदार्थों का वेद में वर्णन दिखला भर दिया है: इससे वेदों का अनधिगतगन्तृत्व सिद्ध न होने से प्रामाणिकता में बाधा पड़ती है।

११—धर्म-मीमांसा—लेखक, पण्डित दरबारीलाल न्यायतीर्थ। पता—हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, हीरा-बाग़, गिरगाँव, बम्बई।

'सत्य-समाज' की स्थापना सर्व-धर्म-समन्वय की भावना से प्रेरित होकर हुई है। देश, काल और पात्र के अनुसार धर्म की बाह्य-रूप-रेखा में भेद मानते हुए भी सब धर्मों की सूत्रात्मारूप 'एकता' पर इस समाज की नींव रक्खी गई है। धर्म का स्वरूप, धर्म की मीमांसा, धर्म का उद्देश तथा सत्य-समाज-विषयक शंका-समाधान इसमें दिये गये हैं। सभी धर्म और सम्प्रदायों के व्यक्ति इसके विचारों से लाभ उठा सकते हैं। लेखक का उद्देश ऊँचा है और दृष्टि विशाल है। पुस्तक सबके लिए पठनीय है।

१२—माफ़ीदारान निबन्ध-माला—ठाकुर सूर्यकुमार वर्मा।

माफ़ीदारों की उन्नति व भलाई के लिए इस पुस्तक में शिक्षा, ज्ञानोदय और उपासना इन तीन विषयों पर तीन छोटे-छोटे, किन्तु उपयोगी निबन्ध विभिन्न लेखकों-द्वारा लिखे गये हैं। इस पुस्तक में विद्यार्थियों की शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति के लिए व्यावहारिक सलाह दी गई है। माफ़ीदारों के अतिरिक्त इस पुस्तक से और भी विद्यार्थी लाभ उठा सकते हैं। सभी निबन्ध विचार-पूर्ण, सुन्दर और उपयोगी हैं। पुस्तक, माफ़ी-आफ़िसर ठाकुर सूर्यकुमार वर्मा, ग्वालियर गवर्नमेंट के पते से मिल सकती है।

१३—शंका-समाधान-मयंक—टीकाकार पण्डित रामखिलावन गोस्वामी। मूल्य १) है। पता—कबीर-धर्म-वर्धक कार्यालय, सीयाबाग़, बड़ौदा।

गोस्वामी तुलसीदास जी के 'श्रीरामचरितमानस' के भक्तों और अनुरागियों की परम्परा में 'मानस' के विभिन्न अंशों तथा प्रसंगों पर जो शंकायें उठती तथा उठाई जाती हैं, उनके निराकरण के लिए 'मयंक' नामक एक विशाल ग्रन्थ की रचना हुई है। इस विशाल ग्रन्थ का यह संक्षिप्त संस्करण है और 'मयंक' के दोहों पर टीकाकार ने विस्तृत व्याख्या लिखी है, जिससे 'मयंक' के दोहों का अर्थ स्पष्ट रूप से समझ में आ जाता है। राम के लिए कैकेयी ने चौदह ही वर्षों का वनवास क्यों माँगा, 'जनकसुता, जगजननि, जानकी' इस चौपाई में कवि ने सीता के तीन नाम क्यों लिये, भगवान् पद का अर्थ क्या है, जैसी शंकाओं के समाधान का प्रयत्न इसमें किया है। ये शंकायें कहीं-कहीं बड़ी विचित्र तथा मनोरंजक भी हैं, फलतः उनके समाधान भी वैसे ही हैं। पुस्तक रामायण-भक्तों के लिए विशेष उपयोगी है। पुस्तक की भाषा तथा छपाई में कहीं-कहीं त्रुटियाँ रह गई हैं, जिनका संशोधन दूसरी आवृत्ति में हो जाना चाहिए। पुस्तक संग्रहणीय है।

१४—विश्वधाय—लेखक, श्रीयुत भगवानदास वर्मा, प्रकाशक, साहित्य-सदन, अबोहर (पंजाब)। मूल्य ।) है।

हिन्दी में गोपालन-विषयक पुस्तकों का बड़ा अभाव है। विश्वधाय गौमाता के प्रति उदासीनता से देश-वासियों और विशेषतया देश की भावी आशाओं के स्वास्थ्य का क्रमशः जो ह्रास हो रहा है उसके प्रति देशवासियों का ध्यान इधर कुछ वर्षों से आकर्षित हुआ है। हाल में बालकों को विशुद्ध और पौष्टिक दूध कैसे मिले; इस विषय पर व्याख्यान देकर हमारे वर्तमान वायसराय महोदय ने भी इस आवश्यक प्रश्न की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया है। हमारी इस उदासीनता के मूल में गोपालन-विज्ञान का अज्ञान तथा बालकों की शारीरिक वृद्धि तथा पुष्टि में दूध के महत्त्व का न समझना ही प्रधान कारण रहे हैं। लेखक ने अपने तीस-बत्तीस वर्ष के क्रियात्मक अनुभव के आधार पर गोपालन का तथा दूध, दही, लस्सी, गौ के घृत आदि के गुणों का वर्णन इस पुस्तक में किया है। पुस्तक ग्रामीण भाइयों को लक्ष्य में रखकर लिखी गई है और वस्तुतः यह उनके लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

१५—नव-शक्ति-सुधा—सम्पादक श्री देवव्रत, प्रकाशक, 'नवशक्ति' कार्यालय, पटना हैं। मूल्य ।) है।

'नवशक्ति' पत्रिका के प्रथम वर्ष में प्रकाशित होनेवाले चुने हुए उपयोगी लेखों, कविताओं तथा कहानियों का यह एक छोटा-सा संग्रह है। सम्पादक महोदय ने इस संग्रह में जो कृतियाँ संगृहीत की हैं वे उनकी चयन-शक्ति और सूझ का परिचायक हैं। संगृहीत सभी अंश उपयोगी और प्रायः उच्च कोटि के हैं। क्या ही उत्तम हो यदि अन्य पत्र-सम्पादक भी अपने पत्रों में प्रकाशित होनेवाले स्थायी-साहित्य का इसी प्रकार पुस्तक के आकार में प्रकाशन करके उन उपयोगी और उपादेय लेखों की विस्मृति-सागर में डूबने से रक्षा करें। पुस्तक में संगृहीत कृतियों के लेखक तथा कवि, अधिकांश में, हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ व्यक्ति हैं। पुस्तक सर्वथा उपादेय है और संग्रहणीय है।

१६—अन्तर्नाद—रचयिता श्रीजगदीशनारायण तिवारी, प्रकाशक, राधिका-पुस्तकालय, हिमन्तपुर, सुरेमनपुर, बलिया हैं। मूल्य ॥) है।

इस पुस्तक में लेखक की ४२ कविताओं का संग्रह है। लेखक के शब्दों में "अन्तर्नाद, विशुद्ध (परमात्मा) के प्रति हृत्ताल में उठती हुई शुद्ध, अर्धशुद्ध या अशुद्ध तरंगों का शुद्ध चेष्टा-पूत निदर्शन है।" इसमें संकलित कविताओं में प्रायः गीति-काव्य की शैली का अनुसरण किया गया है। वैराग्य, प्रबोधन तथा विश्व की असारता प्रदर्शन के द्वारा भगवद्भक्ति की ओर मन को प्रेरित किया गया है। भावों तथा शैली में विशेष मौलिकता नहीं है। हाँ, कवि-हृदय के स्पन्दन और भावों के आवेग का परिचय ज़रूर मिलता है। कहीं कहीं कुछ पंक्तियाँ कविता की सच्ची सीमा तक पहुँचती हैं, पर अधिकांश के भाव साधारण हैं और वे गद्य-सा लगती हैं। खड़ी बोली तथा व्रज दोनों भाषाओं का मिश्रण है। सरलता और प्रवाह कविताओं में काफ़ी हैं।

१७—राजर्षि-ज्योति—(काव्य)—लेखक ठाकुर रामदेवसिंह गहरवार 'देवेन्द्र' हैं। मूल्य ॥=) है। पता—राजर्षि ग्रन्थमाला, कार्यालय, मधवापुर, प्रयाग।

काशी के उदयप्रताप-कालेज के जन्मदाता भिनगानरेश महाराज श्री उदयप्रतापसिंह जू देव का चरित इस पुस्तक में कविता में लिखा गया है। भिनगानरेश ने लगभग २० लाख रुपयों का दान देकर क्षत्रिय-कुमारों की शिक्षा के लिए उक्त कालेज की स्थापना की थी। इस ग्रन्थ के वही नायक हैं। परन्तु प्रसंगवश कवि ने उनके पूर्व-पुरुषों का वर्णन करके उनकी वंश-परम्परा का परिचय भी पाठकों को कराया है। कविता ओजपूर्ण तथा फड़कती हुई है। स्थान स्थान पर उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं का भी काफ़ी समावेश है। पुस्तक में हिमालय-वर्णन तथा काशी-वर्णन विशेषरूप से सुन्दर हुए हैं। वर्णन की दृष्टि से इस खण्डकाव्य में कवि को अच्छी सफलता मिली है। किन्तु भाषा में कहीं कहीं भर्त्ती के शब्द भी आ गये हैं। भूमिका और वकतव्य? (वक्तव्य) के गद्य-भाग में अशुद्ध पद प्रयोगों तथा क्रमहीन एवं शिथिल वाक्यों का होना खटकता है।

—कैलासचन्द्रशास्त्री एम० ए०

१८—हिन्दी-वाक्य-विग्रह—लेखक पण्डित रामसुन्दर त्रिपाठी, विशारद, प्रकाशक पण्डित माताशरण शुक्ल, सोराम (इलाहाबाद) हैं। पृष्ठ-संख्या ६४ और मूल्य ।)॥ है।

यह पुस्तक हिन्दी के व्याकरण के सम्बन्ध में है। यह हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की प्रथमा तथा मध्यमा परीक्षाओं के विद्यार्थियों तथा हिन्दी की फ़ाइनल परीक्षा तथा हाई-स्कूल की परीक्षा में सम्मिलित होनेवाले विद्यार्थियों के उपयोग के लिए लिखी गई है। हिन्दी का विग्रह-वाक्य इस पुस्तक में बहुत ही उत्तम ढंग से और अधिकार-पूर्वक समझाया गया है। पुस्तक उत्तम है।

—ठाकुरदत्त मिश्र

१९—बालगुरुप्रकाश—लेखक, स्वर्गीय पंडित गुरां लक्ष्मीनारायण जी शर्मा, प्रकाशक, अध्यापक, राजस्थानी-हिन्दी-विद्यालय, कसार हट्ठा चौक, हैदराबाद दक्षिण हैं। पृष्ठ-संख्या ४६ और मूल्य ।-) है।

यह पुस्तक छोटे बच्चों के लिए बहुत ही लाभदायक है। इसको पढ़कर वे सब प्रकार के लेखा-हिसाब से परिचित हो सकते हैं। लिखने का ढंग बहुत ही सुन्दर और मनोरंजक होने से बालकों की रुचि भी इसके पढ़ने के लिए विशेष रूप से हो सकती है। व्यापारिक हिसाब, रुपये पैसे का सूद, नाप-तोल आदि विषयों के उत्तम गुर बताये गये हैं। पुस्तक की भाषा बहुत ही सरल और आम बोल-चाल की है। भारतीय बच्चों के लिए ऐसी पुस्तकें अभी कम प्रकाशित हुई हैं। इसलिए इस अनूठी पुस्तक से भारतीय बाल-समाज को अवश्य लाभ उठाना चाहिए।

२०—अभिमन्यु की वीरता (कविता)—रचयिता और प्रकाशक, पण्डित रामचन्द्र शर्मा, मंडावर, बिजनौर हैं। पृष्ठ-संख्या ३८ और मूल्य ।) है।

इस पुस्तक की कथा का आधार महाभारत का अभिमन्यु है। पुस्तक का पहला संस्करण समाप्त हो जाने के कारण लेखक ने यह दूसरा संस्करण विशेष संशोधन के साथ प्रकाशित किया है। इसकी कविता रोचक और वीर-रसपूर्ण है। इसलिए पाठकों की रुचि इसके पढ़ने की ओर स्वभावतः आकृष्ट होती है। भाषा सरल और सुपाठ्य है। बालकों के लिए यह पुस्तक उपयोगी है।

२१—सदुपदेश-संग्रह—संकलयिता, श्रीयुत रामनारायण मिश्र, प्रकाशक, साहित्य-सागर-कार्यालय, सुइथाँकलाँ, जौनपुर हैं। पृष्ठ-संख्या ९० और मूल्य ।=) है।

संकलयिता ने इस पुस्तक में देशी और विदेशी महापुरुषों के सदुपदेशों का संकलन किया है। संसार के महापुरुषों के उत्तम विचारों की जानकारी के इच्छुक पाठकों को यह पुस्तक विशेष उपयोगी होगी। भाषा सरल और सुपाठ्य है। संकलन बहुत सुन्दर है।

—गंगासिंह

२२—सुभाषित और विनोद—लेखक, श्रीयुत गुरुनारायण सुकुल, प्रकाशक, लक्ष्मी-आर्ट-प्रेस, दारागंज, प्रयाग हैं। मूल्य १॥) है।

यह एक विनोद-पूर्ण पुस्तक है, आठ भागों में विभाजित है। पहले भाग में शुद्ध साहित्यिक भाव तथा कला प्रदर्शित करनेवाली सूक्तियाँ हैं, यथा—श्री गोस्वामी जी ने एक बार सीता जी का वर्णन साधारण युवती की भाँति कर दिया कि—

"सोह नवल तन सुन्दर सारी", पर बाद में हनुमान जी की सहायता से उसे मातृवत् श्रद्धापूर्ण कर दिया।

"सोह नवल तन सुन्दर सारी'।
जगत जननि अतुलित छवि भारी" ॥

दूसरे भाग में चमत्कारपूर्ण आलंकारिक युक्तियाँ हैं, यथा—

'लक्ष्मी पति के कर बसै, पाँच अच्छर गिनि लेहु।
पहिलो अच्छर छाड़ि कै, बचे सो माँगे देहु ॥'

मतलब यह कि विष्णु भगवान् के हाथ में जो रहता है 'सुदर्शन' उसका प्रथम अक्षर छोड़कर 'दर्शन' दो। तीसरे भाग में भारतीय नरेशों का काव्य-प्रेम दिखाया गया है। यथा—रहीम एक बार अपनी दानशीलता के फलस्वरूप बहुत दीन हो गये थे और अपने भोजन के लिए भाड़ झोंक रहे थे। उस समय रीवाँ के महाराज ने कहा—"जाके सिर अस भार, सो कस झोंकत भार अस। रहीम ने उत्तर दिया—"रहिमन उतरे पार, भार झोंकि सब भार में।" चौथे भाग में महाकवि कालिदास और तुलसीदास के सम्बन्ध की आख्यायिकायें हैं। इसी प्रकार पाँचवें, छठे, सातवें और आठवें भाग में क्रम से कवियों का काव्य-प्रेम, देहावसान, काल की युक्तियाँ, कल्पित किन्तु रोचक कहानियाँ तथा बिखरे वन-पुष्प समान काव्योचित हास्य का संग्रह है। लेखक ने संस्कृत, हिन्दी एवं उर्दू तथा अँगरेज़ी तक की हास्य-प्रधान बातों का इसमें समावेश किया है। यह पुस्तक संयत और सुन्दर है। हिन्दी-प्रेमियों के लिए संग्रहणीय है।

—गंगाप्रसाद पाण्डेय

श्री निराला जी की कविता

(१)
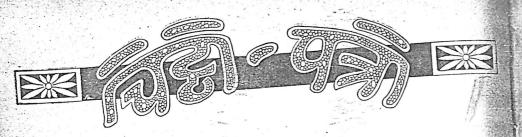
जनवरी की 'सरस्वती' के मुख-पृष्ठ पर छपी 'निराला' जी की 'सम्राट् अष्टम एडवर्ड के प्रति' कविता का अनेकशः निरीक्षण किया। सार्थक तथा सत्यसफल कल्पनाओं, सम्राट् के महात्याग में अपने व्यक्तित्व की प्रतिफलित उदात्त अभिव्यक्ति तथा काव्य-कला के विभिन्न अवयवों का एकत्र सामञ्जस्य देखकर चकित हो गया। बहुत कम इतनी प्रौढ़-सुगठित कविता हिन्दी में देखने में आती है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र, नागरी-प्र०-सभा, काशी

(२.)

जनवरी मास की 'सरस्वती' में प्रथम ही जो "सम्राट् के प्रति" कविता छपी है उसके सम्बन्ध में निम्नाङ्कित प्रार्थना पर ध्यान देकर क्या आप इस लघु साहित्य-सेवक विद्यार्थी की शंका-समाधान करने की कृपा करेंगे?

(१) इसमें कौन सा छन्द है?

(२) इससे क्या सर्वसाधारण का ज्ञान-वर्धन होगा?

(३) इसको समझने के लिए कोष की आवश्यकता है।

(४) काव्य-दृष्टि से प्रासाद तथा माधुर्य का इसमें कहाँ तक स्थान है?

सामयिक साहित्य साक्षर जनता को सहज-सुलभ-ज्ञान-प्रदायक भी होना चाहिए तभी साहित्य-सेवा हो सकेगी। इस प्रकार की यह कविता इस सिद्धान्त को पूर्ण नहीं करती है।

"साहित्यरत्न" शिवनारायण भारद्वाज "नरेन्द्र"

आगामी सम्मेलन के लिए विषय-सूची

अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का छब्बीसवाँ अधिवेशन ईस्टर की छुट्टियों में करने का निश्चय हुआ है। पूर्व-निश्चित परिपाटी के अनुसार हिन्दी के विद्वानों तथा लेखकों से निवेदन है कि सम्मेलन में पढ़े जाने के लिए निम्नलिखित विषयों पर लेख लिखकर, मंत्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन स्वागत-समिति, त्यागरायनगर, मदरास के पते पर ता० १५ मार्च सन् १९३७ तक भेजने की कृपा करें।

विषय —

(१) भारतीय भाषाओं की उत्पत्ति, (२) दक्षिणी भाषाओं पर हिन्दी का प्रभाव, (३) द्राविड-साहित्य, (४) अहिन्दी प्रान्तों में हिन्दी का स्थान, (५) राष्ट्रीय शिक्षा-पद्धति, (६) हरिजनसमस्या, (७) ग्राम-पुनः संगठन, (८) समाजवाद बनाम राष्ट्र-वाद, (९) विजयनगरसाम्राज्य, (१०) तामिल-साहित्य, (११) कर्नाटक-संगीत, (१२) द्राविड सभ्यता, (१३) भारतीय विनिमय, (१४) भारतीय सिनेमा, (१५) केरल की कथकली (नृत्य) कला, (१६) हिन्दी के वर्तमान कवि और उनकी कविता, (१७) हिन्दी का वर्तमान नाट्य-साहित्य और उसकी उन्नति के उपाय!

महिला ने फिर लगभग दो हज़ार प्रतिद्वन्द्वियों को हराया

वर्ग नं० ६ का नतीजा

यह बड़ी प्रशंसा की बात है कि वर्ग-पूर्ति का सर्वप्रथम पुरस्कार फिर एक महिला ने प्राप्त किया है। पूर्ति भेजनेवालों की संख्या भी लगभग दो हज़ार तक जा पहुँची जो उत्साहवर्द्धक तो है ही, यह भी प्रकट करती है कि हमारा यह नया प्रयत्न हमारे पाठकों को पसन्द आया है।

प्रथम पुरस्कार ६००) (शुद्ध पूर्ति पर)

श्रीमती कलावतीदेवी सेठ c/o एन० सी० सेठ हासपिटल रोड, आगरा।

द्वितीय पुरस्कार १३३) (१ अशुद्धि पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ५ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को २६॥-) मिला।

१—मोतीचन्द केसरवानी c/o हीरालाल जवाहरलाल, जवाहर स्कायर, इलाहाबाद।
२—विश्वनाथप्रसाद c/o शिवप्रसाद, महाजनी टोला, इलाहाबाद।
३—श्रीमती सावित्रीदेवी सेठ c/o श्रीयुत बी० सी० सेठ, ट्रेज़री आफ़िसर, आगरा।
४—मिसेज़ एस० डी० शर्मा c/o ओ३मप्रकाश शर्मा, १०९६ बाग़ मुज़फ़्फ़रखाँ, आगरा।
५—बिजनबिहारीलाल, ९ केशवबहादुरी रोड, लखनऊ, बेगनी खंदक।

तृतीय पुरस्कार १३२) (दो अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ४४ व्यक्तियों में बराबर बराबर बाँटा गया। प्रत्येक को ३) मिला।

(१) रामनारायण त्रिवेदी c/o रुद्रप्रसाद त्रिवेदीपुर, इलाहाबाद। (२) सत्यकुमार मुकर्जी, २३४ अतरसुइया, इलाहाबाद। (३) पुष्पादेवी c/o डाक्टर दीनदयाल दुबे, ८१ रानीमंडी, इलाहाबाद। (४) मदनगोपाल शुक्ल, ३०/१६२ प्रेममंदिर, दानाखोरी मोहाल, कानपुर। (५) गिरीशचन्द्र उप्रेती c/o तारादत्त उप्रेती, माधुरी आफ़िस, लखनऊ। (६) कुमारी श्यामा अग्रवाल, ८६ गाड़ीवान टोला, इलाहाबाद। (७) गोपीलाल पालीवाल c/o चिरंजीवलाल पालीवाल, भैरोबाज़ार, आगरा। (८) जगदीशदास साह c/o साह गोपालदास लेन, काशी। (९) राजकुमार साह c/o जगदीशदास साह, साह गोपालदास लेन, काशी। (१०) बी० के० अन्तानी c/o प्रोफ़ेसर

(११) शिवलाल c/o हरकिशनलाल हेडमास्टर, पंचमढ़ी (सी० पी०)। (१२) जानकीबाई c/o हरकिशनलाल हेडमास्टर, पंचमढ़ी (सी० पी०)। (१३) तारासुन्दरीदेवी पाठक c/o डाक्टर के० डी० पाठक, पारसी मोहल्ला, इन्दौर। (१४) प्रोफ़ेसर सुशीला गुप्ता, गोकुलदास कालेज, मुरादाबाद। (१५) बिहारीलाल गुप्त, मैनेजर कान्यकुब्ज होटल, मूलगंज, कानपुर। (१६) सुशीला पाठक c/o अयोध्यानाथ पाठक, सीतलागली, आगरा। (१७) सुशीला-देवी सकसेना c/o कन्हैयालाल सकसेना, डिपार्टमेंट आफ़ इन्डस्ट्रीज़ एन्ड लेबर, नई दिल्ली। (१८) श्याम-सुन्दर सेठ c/o एन० सी० सेठ, हास्पिटल रोड, आगरा। (१९) कमलादेवी सेठ, c/o एन० सी० सेठ, हास्पिटल

सिद्धान्त भवन, आरा। (२१) बनवारी सेठ, c/o एन० सी० सेठ, हास्पिटल रोड, आगरा। (२२) रामलखन-सिंह, ४६ सर सुन्दरलाल होस्टल, इलाहाबाद। (२३) मथुराप्रसाद शुक्ल c/o निहालसिंह शुक्ल क्लर्क, गवर्नमेंट हाई स्कूल, मथुरा। (२४) शिवमहेश c/o मैनेजर, कान्यकुब्ज होटल, मूलगंज, कानपुर। (२५) गंगाराम c/o हरकिशनलाल हेडमास्टर, पँचमढ़ी (सी० पी०)। (२६) लक्ष्मीदेवी c/o हरकिशनलाल हेडमास्टर, पँचमढ़ी (सी० पी०)। (२७) रघुनाथसिंह ओवरसियर, नामनेर, आगरा। (२८) इक़बालशंकरसिंह, ग्राम कुसम्भा, पो० नवाबगंज, उन्नाव। (२९) उन्नतिसुन्दरी मुशरान c/o कुलदीपनरायन, ४४४ कटरा, इलाहाबाद। (३०) राधासरन सेठ, ५३५६ पन्नीगली, आगरा। (३१) पद्मादेवी, साहित्यसदन, अलीगढ़। (३२) हरीमोहनदास टंडन c/o लालमन मोहनदास, ५१ रानी मंडी, इलाहाबाद। (३३) कृष्णवल्लभ पाण्डेय, ग्राम व पो० मसवासी, उन्नाव। (३४) उर्मिलादेवी दुबे c/o साइन्समास्टर, श्रीगंगानगर, बीकानेर। (३५) हरकृष्णदास, ७ स्टेनली रोड, इलाहाबाद। (३६) धर्मवीर मिश्र, १६७ कटरा, इलाहाबाद। (३७) जगन्नाथप्रसाद यादव, ११३ हाशिमपुर रोड, इलाहाबाद। (३८) शकुन्तलादेवी c/o रामनारायण मास्टर, मिडिल स्कूल, जलालाबाद, फ़र्रुख़ाबाद। (३९) विश्वम्भरनाथ मेहरोत्रा, २० रानीमंडी, इलाहाबाद। (४०) श्यामकिशोर, कक्षा ८, खत्री पाठशाला, इलाहाबाद। (४१) रानीकुँवर c/o माधवप्रसाद शर्मा, ९१ पी० बी० कीटगंज, इलाहाबाद। (४२) सरलादेवी c/o डाक्टर दीनदयाल दुबे, ८१ रानीमंडी, इलाहाबाद। (४३) प्रमोदकुमारी चौबे, चौबे प्रेस, रायपुर (सी० पी०)। (४४) ओंकारनाथ केसरवानी c/o हीरालाल जवाहरलाल, जवाहर स्क्वायर, इलाहाबाद।

चौथा रियायती पुरस्कार १३५) (तीन अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित १३४ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को १) मिला।

(१) मदनगोपाल शर्मा, मन्दिर राजा तेजसिंह कचौड़ी गली, काशी। (२) कमल श्री c/o रोशनलाल जैन, जैन-सिद्धान्त भवन, आरा। (३) कस्तूरीदेवी c/o रोशन-लाल जैन, जैनसिद्धान्त भवन, आरा। (४) यशवन्तसिंह नाहर, २१५ मल्हेरगंज, इन्दौर सिटी। (५) गोपाल-नन्दन पाठक c/o हिन्दी-साहित्य-समिति, कश्मीर गेट, भरतपुर। (६) प्रेमदेवी सेठ c/o एन० सी० सेठ, हास्पिटल रोड, आगरा। (७) श्रीमती ए० सी० सेठ, हास्पिटल रोड, आगरा। (८) पुष्पादेवी सेठ, c/o एन० सी० सेठ, हास्पिटल रोड, आगरा। (९) हीरालाल सेठ c/o एन० सी० सेठ, हास्पिटल रोड, आगरा। (१०) त्रिभुवन सेठ c/o एन० सी० सेठ, हास्पिटल रोड, आगरा। (११) रामकरणलाल अग्रवाल, c/o रामेश्वरप्रसाद 'श्रीवास्तव' बी० ए०, पुरानी बस्ती, रायपुर। (१२) दुर्गा-देवी ६९/२०४ प्रेममन्दिर दानीपुरी मुहाल, कानपुर। (१३) चन्द्रिकादेवी c/o तारादत्त उप्रेती, माधुरी कार्य्यालय, लखनऊ। (१४) अपूर्व कुमारी चौबे, चौबे प्रेस, रायपुर। (१५) राजेन्द्रकुमार चौबे, चौबे प्रेस, रायपुर। (१६) सत्यंवदा देवी, c/o पण्डित रघुनाथ मिश्र, इंडिया हाई स्कूल, चक्रधरपुर। (१७) कुमारी सुशीलादेवी c/o ठाकुर प्राश तिधरा पो० पीधीगंज, गोरखपुर। (१९) कुमारी कमला देवी c/o ठाकुर रघुनाथसिंह नयापुरा, कोटा। (२०) कम्पौंडर रहमतख़ाँ c/o छोगालाल जी विशारद पो० सीसवाली, कोटा स्टेट। (२१) जकाती मथुरालाल जी c/o चन्द्रदत्त जी मिश्र पो० आ० सीसवाली, कोटा स्टेट। (२२) श्री रामचन्द्र तिवारी हाई स्कूल, हाजीपुर। (२३) सरलादेवी त्रिवेदी c/o पण्डित कालिकाप्रसाद जी त्रिवेदी, बटगंज, सीतापुर। (२४) कुसुमकुमारी c/o डा० ब्रज-बिहारीलाल दारागंज, इलाहाबाद। (२५) लक्ष्मीदत्त मालवीय c/o पण्डित गोपालदत्त मालवीय शास्त्री, अहियापुर, प्रयाग। (२६) अन्नपूर्णादेवी तिवारी १५ बड़ी बस्ती दारागंज, प्रयाग। (२७) चतुर्भुज माहेश्वरी c/o सेठ जीतमल गौरीदत्त, इलाहाबाद। (२८) शम्भुनाथ मिश्र १६७ कटरा, प्रयाग। (२९) राजकुमार शर्मा हिन्दी-प्रेस, इलाहाबाद। (३०) रमेशचन्द्र दुबे, हिन्दी प्रेस इलाहाबाद। (३१) गिरिधर गोपाल वर्मा श्रीमाधवाश्रम न्यू कटरा, प्रयाग। (३२) शान्तादेवी c/o मूलचन्द गुप्त हेडमास्टर, पंचमढ़ी। (३३) सुशीलाबाई हरकिशनलाल हेडमास्टर, पंचमढ़ी। (३४) हरकिशनलाल हेडमास्टर, पंचमढ़ी। (३५) बिजलीबाई c/o हरकिशनलाल हेडमास्टर,

मैनपुरी। (३७) माधवप्रसाद शर्मा, खत्री पाठशाला, प्रयाग। (३८) आर० एस० दीक्षित c/o पण्डित श्यामसुन्दर-लाल दीक्षित, रावतपाड़ा, आगरा। (३९) लालजी यादव, ११३ हाशिमपुर रोड, इलाहाबाद। (४०) राममोहन-दास टंडन c/o लाला मनमोहनदास ५१, रानीमंडी। (४१) बीरबालादेवी, ६९/२०४ प्रेममन्दिर, दानाखोरी मोहाल, कानपुर। (४२) श्रीयुत राजकृष्ण तिवारी, गाँव एन्ड पो० मालीनगर (पूसा) ज़िला दरभंगा। (४३) कृष्णकुमारी चौबे, चौबे प्रेस, नया पारा, रायपुर, सी० पी०। (४४) सन्तकुमार, नयापूरा व रविशनगंज, इलाहाबाद। (४५) भोलानाथ c/o श्यामकिशोर कक्षा ८वीं, खत्री पाठशाला, प्रयाग। (४६) मदनमोहन माथुर c/o शंकरमोहन माथुर, अर्दली बाज़ार, बनारस कैंट। (४७) सरोजनीदेवी पंत, ३८ तुकोगंज, साउथ, इन्दौर। (४८) जगन्नाथप्रसाद पुरवार, शिक्षक, म्यु० ए० हा० स्कूल, अमरावती। (४९) हरिनन्दनप्रसाद सेठ, c/o सीतलागली, आगरा। (५०) कुमारी क्रान्ति-देवी सेठ c/o हरिनन्दनप्रसाद सेठ, सीतलागली, आगरा। (५१) रमेन्द्रसुन्दर नायक, हिन्दू होस्टल, अमरावती रोड, नागपुर। (५२) सत्यदेव पालीवाल, c/o चिरंजीवलाल पालीवाल, भैरोबाज़ार, आगरा। (५३) बुद्धिनाथ शास्त्री, संजोंस स्कूल, आगरा। (५४) बुचन-बीबी, ४७५ कटरा, प्रयाग। (५५) रमावतीदेवी गुप्त, ४७५ कटरा, प्रयाग। (५६) एस० बी० सिंह c/o भार-तीय पुस्तक भण्डार, कालबादेवी रोड, बम्बई। (५७) मोहन-चन्द्र c/o तारादत्त उप्रेती, माधुरी आफ़िस, लखनऊ। (५८) प्रकाशशरण अवस्थी, ६९/२०४ प्रेममन्दिर, दानाखोरी मुहाल, कानपुर। (५९) हरिश्चन्द्र सेठ, बाग़ मुज़फ़्फ़रख़ां, आगरा। (६०) सत्यवतीदेवी c/o बा० रामनारायण 'यादवेन्दु' बी० ए०, एल-एल० बी० राजा मण्डी, आगरा यू० पी०। (६१) त्रिवेनीदेवी c/o बा० रामनारायण 'यादवेन्दु' बी० ए० एल-एल० बी०, राजा मण्डी, आगरा यू० पी०। (६२) गौरीदत्त शर्मा c/o पं० प्रियदेव शर्मा, एजुकेशनल सुपरिंटेंडेंट, म्युनिस्पिल बोर्ड, नैनीताल यू० पी। (६३) पं० रतनकुमार मिश्र, संगीताचार्य, नं० ५ गणेश-गंज, लखनऊ। (६४) विद्येदेवी c/o डा० पृथ्वीनाथ चतुर्वेदी, मदनमोहन फार्मेसी, धनकुट्टी, कानपुर। (६५) सत्यप्रकाश शर्मा, १०९६, बाग़ मुज़फ़्फ़रख़ाँ, आगरा। कानपुर। (६७) फूलवतीदेवी c/o ठा० रघुनाथसिंह, नयापुरा स्कूल, कोटा, राजपूताना। (६८) पन्नालाल अग्रवाल, ५ पानदरीबा, इलाहाबाद। (६९) श्यामसुन्दर शर्मा, ६० पी० बी, कीटगंज, प्रयाग। (७०) पं० गिरवरनारायण शर्मा वैद्य, गोकुलपुरा, आगरा। (७१) जगदीशचन्द्र खंडेलवाल c/o सुखदेवप्रसाद खंडेलवाल, सिविल लाइन्स, आगरा। (७२) श्रीनारायण त्रिपाठी, नं० ७ एडमान्सटन रोड, इलाहाबाद। (७३) पुन्नादेवी गुप्त, ४७५, कटरा, प्रयाग। (७४) जगतधारी पांडे, मज़डा मैन्सन, इलाहाबाद। (७५) बृजनारायण जौहरी क्लर्क, आफ़िस आफ़ चीफ़ इन्स्पेक्ट्रेस आफ़ गर्ल्स स्कूल्स, यू० पी०। (७६) प्रेमसुन्दरप्रसाद c/o गौरीशंकर सेठ, सी० २४/१५ कबीरचौरा, काशी। (७७) मिस कृष्णा वाजपेयी, c/o गंगाप्रसाद वाजपेयी, एडवोकेट, गोलागंज, लखनऊ। (७८) मिस शकुन्तला वाजपेयी c/o गंगाप्रसाद वाजपेयी, एडवोकेट, गोलागंज, लखनऊ। (७९) लक्ष्मीनारायण वाजपेयी c/o गंगाप्रसाद वाजपेयी, एडवोकेट, गोलागंज, लखनऊ। (८०) ऐश्वर्यवती, गुरुकुल, वृन्दावन। (८१) मोहनलाल मेहता 'चतुर' बड़लू, मारवाड़। (८२) चन्द्रिकाप्रसाद c/o मैनेजर कान्यकुब्ज होटल, मूलगंज, कानपुर। (८३) अयोध्याप्रसाद गुप्त c/o मैनेजर, कान्यकुब्ज होटल, मूलगंज, कानपुर। (८४) विद्या-भूषण शुक्ल, एस० एम० बी० हाई स्कूल, कानपुर। (८५) रमेश c/o हरकिशनलाल, हेडमास्टर, पंचमढ़ी सी० पी०। (८६) कैलाश c/o हरकिशनलाल हेडमास्टर, पंचमढ़ी सी० पी०। (८७) सुशीलाबाई चौहान c/o सब रजिस्ट्रार, छिबरामऊ, फ़र्रुख़ाबाद। (८८) कान्तीदेवी c/o राम बहालसिंह, हरि-मन्दिर, धनबाद। (८९) रमाकान्त शुक्ल क्लर्क, गवर्नमेंट हाईस्कूल, मथुरा। (९०) गुरप्रताप c/o सुरेन्द्रगोपाल भटनागर, १६ नारियल गली, लखनऊ। (९१) शिव-प्रकाश भल्ला, भारतीभवन स्ट्रीट, इलाहाबाद। (९२) एल० पी० अग्रवाल, ५३ टी० जी० मेडिकल कालेज, लखनऊ। (९३) मोहनसिंह भदौनिया पो० सहार, इटावा। (९४) डी० के० वसु मुकामाघाट ई० आई० आर०। (९५) कुँवर माधो-सिंह ग्राम समन्दसर श्री विजयभवन बीकानेर, राजपूताना। (९६) ज्योतिस्वरूप मुशरान ४४४ कटरा, इलाहाबाद। (९७) गंगारानी क्रास्थवेट गर्ल्स कालिज, इलाहाबाद। (९८) मोती मुशरान ४४४ कटरा, इलाहाबाद। (९९) लक्ष्मी मुशरान ४४४ कटरा, इलाहाबाद। (१००) इकबल-किशोरी c/o रामेश्वरनाथ चौधरी एस० पी० खेतड़ी

क्लास नार्मल स्कूल, सिवनी सी० पी०। (१०२) श्यामा सक्सेना १ लोथियन रोड, देहली। (१०३) व्रजवल्लभ पाण्डेय, मसवासी उन्नाव। (१०४) एम० एल० मट्टू स्कायर ई० ए० सी० फारेस्टस लायलपुर, पंजाब। (१०५) राजकुमार मट्टू c/o स्कायर ई० ए० सी० फारेस्टस लायलपुर, पंजाब। (१०६) कृष्णप्रसाद c/o शिवप्रसाद महाजनी टोला, इलाहाबाद। (१०७) मुंशी सरयूप्रसाद श्रीवास्तव बहादुर पुरी c/o हेडमास्टर साहब गवर्नमेंट सेंट्रल ट्रेनिंग स्कूल, बाराबङ्की। (१०८) महादेवी शुक्ल, बादशाह पसन्द कार्यालय, मोढ़ा टोली, कानपुर। (१०९) जानकीदेवी c/o डाक्टर सुखदीनदयाल दुबे, ८१ रानीमंडी, इलाहाबाद। (११०) सुखदेवसिंह, १९३ कूचा डालचन्द, बिहारीपुर, बरेली (यू० पी०)। (१११) गिरधर शर्मा c/o श्यामसुन्दरलाल तिवारी, कसेरठ बाज़ार, आगरा। (११२) स्वामीसरन सेठ, ५३५६ पन्नी गली, आगरा। (११३) मिसेज़ स्वामीसरन सेठ c/o स्वामीसरन सेठ, ५३५६ पन्नी गली, आगरा। (११४) रघुनाथसिंह ओवरसियर, नासनेर, आगरा। (११५) शान्तिदेवी c/o मिस्टर सेठ, ट्रेज़री आफ़िसर, आगरा। (११६) विद्यादेवी, साहित्य-सदन, अलीगढ़। (११७) छोटेलाल शर्मा, राजा का कूचा, राजा स्टेट, सिकन्दराबाद, बुलन्दशहर। (११८) सूरजदेवी माथुर c/o रघुनन्दनसरन माथुर, मिलेटरी सेक्रेटरी, ब्रांच, एम० एन० क्यू०, नई दिल्ली। (११९) शैलकुमारी c/o शिवप्रसाद, महाजनी टोला, इलाहाबाद। (१२०) कलावती c/o रामनारायण 'यादवेन्दु' बी० ए०, एल-एल० बी, राजामंडी, आगरा। (१२१) रामनारायण 'यादवेन्दु' बी० ए०, एल-एल० बी०, राजामंडी, आगरा। (१२२) गोपालशरण शर्मा c/o प्रियदेव शर्मा, एजुकेशनल सुपरिंटेंडेंट म्युनिसिपल बोर्ड, नैनीताल। (१२३) भारतेन्दु वाजपेयी, वाजपेयी निवास, गणेशगञ्ज, लखनऊ। (१२४) डी० पी० दत्त, १३ न्यू ब्लाक, डी० ए० वी० कालेज, जलन्धर सिटी। (१२५) रामानुज पाण्डेय, मिडिल स्कूल, इन्द्रपुर, पो० कम्पियरगंज, गोरखपुर। (१२६) तारकेश्वर, हिमालयन रिसर्च फ़ारमेसी, देहरादून। (१२७) युधिष्ठिरप्रसाद चतुर्वेदी c/o गोपालनन्दन पाठक, कुम्हेरगेट, भरतपुर। (१२८) सत्यनारायणप्रसाद, महादेव मिल, पो० डुमराव, आरा। (१२९) के० जी० नाट्टू c/o सेठ मुंशी दूलहराय सदर क़ानूनगो, भूर (पाटीगली), बरेली। (१३०) शिवप्रसाद वाजपेयी, पो० अजगैन, उन्नाव। (१३१) सोमदत्त c/o आदित्यनाथ, ७८६ कटरा परेट, इलाहाबाद। (१३२) आदित्यनाथ, ७८६ कटरा परेट, इलाहाबाद। (१३३) एस० एम० इलायस, नं० २ ज़ीरो रोड, इलाहाबाद। (१३४) रघुनाथसिंह चौहान, मालरोड, मुरार, ग्वालियर। (१३५) शिवपालसिंह c/o मोहनसिंह भदौरिया, पो० सहार, इटावा।

उपर्युक्त सब पुरस्कार २२ फ़रवरी को भेज दिये जायँगे।

नोट—(१) जाँच का फ़ार्म ठीक समय पर आने से यदि किसी को और भी पुरस्कार पाने का अधिकार सिद्ध हुआ तो उपर्युक्त पुरस्कारों में से जो उसकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बाँटा जायगा।

(२) केवल वे ही लोग जाँच का फ़ार्म भेजें जिनका नाम यहाँ नहीं छपा है, पर जिनको यह सन्देह हो कि पुरस्कार पाने के अधिकारी हैं।

(३) जिनको १) का रियायती पुरस्कार मिला है उन्हें १) का प्रवेश-शुल्क-पत्र भेज दिया जायगा। जो नियम ४ के अनुसार तीन महीने के भीतर इसके साथ साथ पूर्तियाँ मुफ़्त भेज सकेंगे।

नियम :—(१) वर्ग नं० ७ में निम्नलिखित पारितोषिक दिये जायँगे। प्रथम पारितोषिक—सम्पूर्णतया शुद्ध पूर्ति पर ३००) नक़द। द्वितीय पारितोषिक—न्यूनतम अशुद्धियों पर २००) नक़द। वर्गनिर्माता की पूर्ति से, जो मुहर बन्द करके रख दी गई है, जो पूर्ति मिलेगी वही सही मानी जायगी।

(२) वर्ग के रिक्त कोष्ठों में ऐसे अक्षर लिखने चाहिए जिससे निर्दिष्ट शब्द बन जाय। उस निर्दिष्ट शब्द का संकेत अङ्क-परिचय में दिया गया है। प्रत्येक शब्द उस घर से आरम्भ होता है जिस पर कोई न कोई अङ्क लगा हुआ है और इस चिह्न (■) के पहले समाप्त होता है। अङ्क-परिचय में ऊपर से नीचे और बायें से दाहनी ओर पढ़े जानेवाले शब्दों के अङ्क अलग अलग कर दिये गये हैं, जिनसे यह पता चलेगा कि कौन शब्द किस ओर को पढ़ा जायगा।

(३) प्रत्येक वर्ग की पूर्ति स्याही से की जाय। पेंसिल से की गई पूर्तियाँ स्वीकार न की जायँगी। अक्षर सुन्दर, सुडौल और छापे के सदृश स्पष्ट लिखने चाहिए। जो अक्षर पढ़ा न जा सकेगा अथवा बिगाड़ कर या काटकर दुबारा लिखा गया होगा वह अशुद्ध माना जायगा।

(४) प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए जो फ़ीस वर्ग के ऊपर छपी है दाख़िल करनी होगी। फ़ीस मनीआर्डर-द्वारा या सरस्वती-प्रतियोगिता के प्रवेश-शुल्क-पत्र (Credit voucher) द्वारा दाख़िल की जा सकती है। ये प्रवेश-शुल्क-पत्रों की किताबें हमारे कार्यालय से ३) या ६) में ख़रीदी जा सकती हैं। ३) की किताब में आठ आने मूल्य के और ६) की किताब में १) मूल्य के ६ पत्र बँधे हैं। एक ही कुटुम्ब के अनेक व्यक्ति, जिनका पता-ठिकाना भी एक ही हो, एक ही मनीआर्डर-द्वारा अपनी अपनी फ़ीस भेज सकते हैं और उनकी वर्ग-पूर्तियाँ भी एक ही लिफ़ाफ़े या पैकेट में भेजी जा सकती हैं। मनीआर्डर व वर्ग-पूर्तियाँ 'प्रबन्धक, वर्ग-नम्बर ७, इंडियन प्रेस, लि०, इलाहाबाद' के पते से आनी चाहिए।

(५) लिफ़ाफ़े में वर्ग-पूर्ति के साथ मनीआर्डर की रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र नत्थी होकर आना अनिवार्य है। रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र न होने पर वर्ग-पूर्ति की जाँच न की जायगी। लिफ़ाफ़े की दूसरी ओर अर्थात् पीठ पर मनीआर्डर भेजनेवाले का नाम और पूर्ति-संख्या लिखनी आवश्यक है।

(६) किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह जितनी पूर्ति-संख्यायें भेजनी चाहे, भेजे। किन्तु प्रत्येक वर्गपूर्ति सरस्वती पत्रिका के ही छपे हुए फ़ार्म पर होनी चाहिए। इस प्रतियोगिता में एक व्यक्ति को केवल एक ही इनाम मिल सकता है। वर्गपूर्ति की फ़ीस किसी भी दशा में नहीं लौटाई जायगी। इंडियन प्रेस के कर्मचारी इसमें भाग नहीं ले सकेंगे।

(७) जो वर्ग-पूर्ति २२ फ़रवरी तक नहीं पहुँचेगी, जाँच में नहीं शामिल की जायगी। स्थानीय पूर्तियाँ २२ ता० को पाँच बजे तक बक्स में पड़ जानी चाहिए और दूर के स्थानों (अर्थात् जहाँ से इलाहाबाद डाकगाड़ी से चिट्ठी पहुँचने में २४ घंटे या अधिक लगता है) से भेजनेवालों की पूर्तियाँ २ दिन बाद तक ली जायँगी। वर्ग ... निर्णय सब प्रकार से और प्रत्येक दशा में मा... की प्रतिलिपि सरस्वती पत्रिका के ... होगी, जिससे पूर्ति करनेवाले ... की शुद्धता अशुद्धता की ज...

(८) इस वर्ग के बनाने ... और 'बाल-शब्दसागर' से ...

नं० ७

...डियन प्रेस, लि०,

इलाहाबाद

अङ्क-परिचय

बायें से दाहिने

१—संसार को सँभालनेवाला।
४—लड़ना भी कभी किसी का......होता है।
७—जहाज़ का रास्ता......ही होता है।
८—यहाँ उलट जाने से काज बनता है।
९—यह नवीन की गड़बड़ है।
११—ब्रज का एक वन।
१३—विष।
१७—इसमें रस होने पर भी छलकता नहीं।
१९—कुछ लोग इसी से अपना पेट पालते हैं।
२०—समूह।
२१—ब्रह्मा के पुत्र।
२२—...की पूजन-विधि निराली है।
२४—व्यापार करनेवाला।
२५—इसका उद्देश्य ही नीच है।
२६—यह ओषधि के काम में आती है।
२७—इससे सफ़ाई की जाती है।
२८—बढ़िया गानेवाले की कला इससे अधिक रोचक मालूम पड़ती है।
३०—कभी-कभी शिकार में काम आती है।

ऊपर से नीचे

१—संसार की बढ़ती के लिए यह आवश्यक है।
२—दानियों में श्रेष्ठ।
३—रसीला।
४—मर्म।
५—वह बड़ा नल जिससे अनेक छोटे नल निकलते हों।
६—यदि यह न हो तो विश्राम का सुख नहीं।
१०—बड़े से बड़ा भी एक ही के सिपुर्द रहता है।
१२—एक विशेष रीति से साफ़ करना।
१४—इसके लगने से भी रक्त बहने की नौबत आ जाती है।
१५—इसका आक्रमण चुपचाप होते हुए भी बड़ा व्यापक है।
१६—इसकी हार नहीं होती।
१८—नई रोशनीवाले इसे अलग कर देने में नहीं हिचकते।
१९—बहुत कमज़ोर या पतला।
२१—अमूल्य रत्न।
२३—माल-मसाला जितना लगेगा उतना ही यह अधिक बढ़िया होगा।
२४—इस खाद्य पदार्थ को प्राकृत दशा में विरले ही पत्री खाते हैं।
२७—नदी या समुद्र के किनारे थोड़ा या बहुत मिलता है।
२९—झोंके से उलटना इसके लिए साधारण बात है।
३१—कुछ नवयुवक ऐसा काम गुप्त रीति से करते हैं।

नोट—रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रा-रहित और पूर्ण हैं।

लिए वर्ग ७ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ पर कर लीजिए। यह प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

ज	ग	दा	धा	र	■		नो	र	
	■		■	सा		र	■		का
न		वी	■		■	म	धु		न
■	ग		ल	■		■		हा	■
अ		■	गा		र	■	ना	■	
	■	धा		■	द		■		नु
य			■		■	■		रि	ज
■	■	पा		र	■		ड़	■	■
झा	ड़		■	ता		■	ह		नी
	■	■	■	■	ट	■		■	

पढ़कर रुचि के अनुसा...
अक्षय युवावस्था का भोग...
सिद्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं...

वर्ग नं० ६ की शुद्ध पूर्ति

वर्ग नम्बर ६ की शुद्ध पूर्ति जो बंद लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दी गई थी यहाँ दी जा रही है। पारितोषिक जीतनेवालों का नाम हम अन्यत्र प्रकाशित कर रहे हैं।

भ	व	भं	ज	न	■	अ	ट	क	ना
व	■	ब	र	या	आ	■	न	थ	■
न	ह	र	■	प	त	गी	■	न	ग
■	ल	जा	व	न	■	स	खी	■	■
■	का	ल	क	■	म	■	ल	■	अ
च	■	■	■	गु	ट	का	■	स	च
ट	■	ग	दे	ला	■	ज	■	■	ला
की	क	र	■	ल	■	र	च	ना	■
ला	■	ग	प	■	रा	■	■	पि	क
■	सा	ज	न	■	ब	र	न	त	■

बिन्दीदार लकीर पर से काटिए

वर्ग नं० ७ फ़ीस ।)

ज	ग	दा	धा	र	■		नो	र	
	■		■	सा		र	■		का
न		वी	■		■	म	धु		न
■	ग		ल	■		■		हा	■
अ		■	गा		र	■	ना	■	
	■	धा		■	द		■		नु
य			■		■	■		रि	ज
■	■	पा		र	■		ड़	■	■
झा	ड़		■	ता		■	ह		नी
	■	■	■	■	ट	■		■	

(रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रा-रहित और पूर्ण हैं)
मैनेजर का निर्णय मुझे हर प्रकार स्वीकृत होगा।

पूरा नाम ....
पता ....
.... पूर्ति नं० ....

बिन्दीदार लकीर पर से काटिए

वर्ग नं० ७ फ़ीस ।)

ज	ग	दा	धा	र	■		नो	र	
	■		■	सा		र	■		का
न		वी	■		■	म	धु		न
■	ग		ल	■		■		हा	■
अ		■	गा		र	■	ना	■	
	■	धा		■	द		■		नु
य			■		■	■		रि	ज
■	■	पा		र	■		ड़	■	■
झा	ड़		■	ता		■	ह		नी
	■	■	■	■	ट	■		■	

(रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रा-रहित और पूर्ण हैं)
मैनेजर का निर्णय मुझे हर प्रकार स्वीकृत होगा।

पूरा नाम ....
पता ....
.... पूर्ति नं० ....

जाँच का फ़ार्म

वर्ग नं० ६ की शुद्ध पूर्ति और पारितोषिक पानेवालों के नाम अन्यत्र प्रकाशित किये गये हैं। यदि आपको यह संदेह हो कि आप भी इनाम पानेवालों में हैं, पर आपका नाम नहीं छपा है तो १) फ़ीस के साथ निम्न फ़ार्म की ख़ानापुरी करके १५ फ़रवरी तक भेजें। आपकी पूर्ति की हम फिर से जाँच करेंगे। यदि आपकी पूर्ति आपकी सूचना के अनुसार ठीक निकली तो पुरस्कारों में से जो आपकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बाँटा जायगा और आपकी फ़ीस लौटा दी जायगी। पर यदि ठीक न निकली तो फ़ीस नहीं लौटाई जायगी। जिनका नाम छप चुका है उन्हें इस फ़ार्म के भेजने की ज़रूरत नहीं है।

वर्ग नं० ६ (जाँच का फ़ार्म)

मैंने सरस्वती में छपे वर्ग नं० ६ के आपके उत्तर से अपना उत्तर मिलाया। मेरी पूर्ति

नं०.........में { कोई अशुद्धि नहीं है। / एक अशुद्धि है। / दो अशुद्धियाँ हैं। / तीन अशुद्धियाँ हैं। }

मेरी पूर्ति पर जो पारितोषिक मिला हो उसे तुरन्त भेजिए। मैं १) जाँच की फ़ीस भेज रहा हूँ।

हस्ताक्षर ....
पता ....
....

बिन्दीदार लाइन पर काटिए

इसे काट कर लिफ़ाफ़े पर चिपका दीजिए

मैनेजर वर्ग नं० ७

ईंडियन प्रेस, लि०,
इलाहाबाद

पुरस्कार विजेताओं की कुछ चिट्ठियाँ

गोकुलदास हिन्दू गर्ल्स कालेज,
मुरादाबाद ।

महाशय जी वन्दे ।

मैं दो सप्ताह के लिए बाहर गई हुई थी । लौटने पर आपका पत्र तथा 'सरस्वती' मिली । अपना नाम शुद्ध-पूर्ति-पुरस्कार-विजेताओं की सूची में देखकर अत्यन्त हर्ष हुआ ।

वास्तव में व्यत्यस्त-रेखा-शब्द-पहेली निकाल कर आपने हिन्दी पत्रिकाओं में एक रोचकता, नवीनता तथा पूर्णता ला दी है । इससे 'सरस्वती' में और भी दिलचस्पी बढ़ गई है । पाठक-पाठिकायें उत्सुकता से आगामी अंक के लिए प्रतीक्षा करती हैं । मनोरंजन के अतिरिक्त इससे शब्द-ज्ञान भी बढ़ता है । आपके शब्द-संकेत भी बहुत उपयुक्त होते हैं, जो केवल बुद्धि के सहारे ही सुलझ सकते हैं । —सावित्री देवी वर्मा, एम० ए०

५८, झा-होस्टल,
इलाहाबाद

प्रिय महोदय,

आपका कार्ड ता० ६ दिसम्बर को मिला । अनेक धन्यवाद । आपको यह जानकर अवश्य प्रसन्नता होगी कि मैंने केवल एक ही वर्ग-पूर्ति भेजी थी और ऐसी प्रतियोगिता में भाग लेने का यह मेरा पहला अवसर था । इस पर भी मैंने १०) का पुरस्कार जीता ।

अङ्क-परिचय में शब्दों का संकेत अत्यन्त सावधानी से दिया गया है । उदाहरणार्थ—'यह कभी कभी चमक उठता है' इसके लिए 'नग', 'नख', 'नभ' इन तीन शब्दों में कौन सही होगा, यह प्रश्न हमारे सामने आता है । 'नग' सही नहीं हो सकता, क्योंकि 'कभी कभी' इसमें लागू नहीं होता । 'नख' के लिए 'चमकता है', कहना उचित नहीं; फिर 'चमक उठने' का भाव तो इसमें आता ही नहीं । 'नभ' के लिए यह कहना कि यह कभी कभी चमक उठता है, बिलकुल सही है ।

इसी प्रकार सम्पूर्ण वर्ग-निर्माण जिस बुद्धिमानी से किया गया है वह प्रशंसनीय है । पुरस्कार-विजेताओं की सूची में मेरा नाम देखकर मेरे एक दर्जन मित्रों ने वर्ग में पुरस्कार पाने की ठानी है ।

५८ झा-होस्टल
ता० १५ दिसम्बर

आपका
रमेशचन्द्र तिवारी

अमरोहा
२४-१२-३६

प्रिय महाशय जी,

आपका भेजा हुआ प्रवेश-शुल्क-पत्र प्राप्त हुआ । धन्यवाद । यद्यपि पुरस्कार अधिक नहीं है, फिर भी मुझे यह जानकर सन्तोष है कि मेरा प्रथम प्रयत्न कुछ सफल हुआ । प्रथम प्रयास में इससे अधिक आशा नहीं की जा सकती, क्योंकि अनुभव धीरे धीरे ही होता है । वर्ग ४ की शुद्ध पूर्ति देखकर यह ज्ञात हुआ कि उसका निर्माण बुद्धिमानी से हुआ है, और संकेत बिलकुल शुद्ध हैं । आशा है कि भविष्य में भी इनको शुद्ध रखने का विचार सर्वोपरि रहेगा, क्योंकि संकेत शुद्ध होने से ही वर्ग-पूर्ति करने में उत्साह बढ़ता है, जो व्यत्यस्त-रेखा-पहेली की एक अनोखी विभूति है ।

सुशीला देवी

गवर्नमेंट हाई स्कूल, मथुरा
३१-१२-१९३६

श्रीमान् प्रबन्धक महोदय, जय श्रीकृष्ण,

मैंने वर्ग नं० २ व ४ में पूर्तियाँ भेजी और दोनों बार सफलता मिली । वर्ग नं० ३ में अवकाश न मिलने के कारण कोई पूर्ति नहीं भेजी थी । वर्ग नं० २ में चार पूर्तियों में से सिर्फ़ एक में सफलता मिली थी, परन्तु वर्ग नं० ४ में चार में से तीन पूर्तियों में सफलता मिली और छः रुपये के तीन पुरस्कार (४)+१)+१)) जीते । चार रुपये मनीआर्डर से व एक एक रुपया के दो प्रवेश-शुल्क-पत्र प्राप्त हो गये हैं । प्रतियोगिता में सफलता प्राप्त करना अति कठिन नहीं है । यह सिर्फ़ कुछ अभ्यास पर निर्भर है । वर्ग नं० ५ के लिए भी तीन पूर्तियाँ भेजी हैं और आशा है, सफलता मिलेगी । चूँकि प्रतियोगिताओं में भाग लेनेवालों का अभ्यास और अनुभव बढ़ता जा रहा है, इसलिए आप भी धीरे धीरे वर्गों की कठिनता को बढ़ाते जा रहे हैं ।

—निहालसिंह शुक्ल,

५००) में दो पारितोषिक

इनमें से एक आप कैसे प्राप्त कर सकते हैं यह जानने के लिए पृष्ठ १९३ पर दिये गये नियमों को ध्यान से पढ़ लीजिए । आप के लिए दो और कूपन यहाँ दिये जा रहे हैं ।

वर्ग नं० ७ फ़ीस ।)

ज	ग	दा	था	र	■		नो	र	
	■		■	सा		र	■		का
न		वी	■			म	धु		न
■	ग		ल	■				हा	■
अ		गा		र		ना	■		
	■	था			द				तु
य				■	■		रि	ज	
■	पा		र	■		ड़	■		
झा	ड़	■	ता		■	ह		नी	
	■	■	■	ट			■		

(रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रा-रहित और पूर्ण हैं)

मैनेजर का निर्णय मुझे हर प्रकार स्वीकृत होगा ।

पूरा नाम ....

पता ....

पूर्ति नं० ....

वर्ग नं० ७ फ़ीस ।)

(रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रा-रहित और पूर्ण हैं)

मैनेजर का निर्णय मुझे हर प्रकार स्वीकृत होगा ।

पूरा नाम ....

पता ....

पूर्ति नं० ....

अपनी याददाश्त के लिए वर्ग ७ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ कर लीजिए, और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए ।

आवश्यक सूचनायें

(१) स्थानीय प्रतियोगियों की सुविधा के लिए हमने प्रवेश-शुल्क-पत्र छाप दिये हैं जो हमारे कार्य्यालय से नक़द दाम देकर ख़रीदा जा सकता है। उस पत्र पर अपना नाम स्वयं लिख कर पूर्ति के साथ नत्थी करना चाहिए।

(२) स्थानीय पूर्तियाँ सरस्वती-प्रतियोगिता-बक्स में जो कार्यालय के सामने रक्खा गया है, १० और पाँच के बीच में डाली जा सकती हैं।

(३) वर्ग नम्बर ७ का नतीजा जो बन्द लिफ़ाफ़े में मुहर लगा कर रख दिया गया है ता० २५ फ़रवरी सन् १९३७ को सरस्वती-सम्पादकीय विभाग में ११ बजे सर्वसाधारण के सामने खोला जायगा। उस समय जो सज्जन चाहें स्वयं उपस्थित होकर उसे देख सकते हैं।

(४) इस प्रतियोगिता में भाग लेनेवाले बहुत-सी ऐसी भूलें कर देते हैं जिन्हें वे नियमों को ध्यान से देखें तो नहीं कर सकते। बैरँग चिट्ठियाँ नहीं ली जायँगी और ।) के मनिआर्डर या प्रवेश-शुल्क-पत्र के बजाय जो इसी मूल्य के डाकघर के टिकट भेजेंगे उनके उत्तर पर भी विचार न होगा। एक वर्ग-पूर्ति भेज चुकने पर उसका संशोधन दूसरे लिफ़ाफ़े में भेजना टिकट का अपव्यय करना होगा क्योंकि उन पर भी विचार न होगा। छोटे कूपन, या कूपन की नक़ल पर भेजी गई वर्ग-पूर्तियों पर भी विचार न होगा। इस सम्बन्ध में हमें जो कुछ कहना होगा हम इन्हीं पृष्ठों में लिखेंगे। पत्रों का हम पृथक् से कोई उत्तर न देंगे।

प्रसिद्ध चित्रकार श्री केदार शर्मा ने बिहारी के दोहों पर कुछ और व्यङ्गय चित्र बनाये हैं। उनमें से दो हम यहाँ प्रकाशित कर रहे हैं।

बर जीते सर मैन के, ऐसे देखे मैन।
हरिनी के नैनान तें, हरि नीके ये नैन॥

सहज सचिक्कन स्याम रुचि, सुचि सुगन्ध सुकुमार।
गनत न मन पथ अपथ लखि, बिथुरे सुथरे बार॥

एक मासिक पत्रिका में उसके सम्पादक महोदय लिखते हैं—

"हम लोग अपनी लेखनी पर किसी प्रकार का भी नियंत्रण नहीं चाहते। यह बात हमारे मित्रों तथा शत्रुओं को कान खोलकर सुन लेनी चाहिए।"

एक दूसरी मासिक पत्रिका के सम्पादक महोदय लिखते हैं—

"हिन्दी का समालोचना-साहित्य इस समय जिस मार्ग पर अग्रसर हो रहा है वह मार्ग किसी प्रकार भी घृणा के योग्य नहीं है।"

सम्भवतः ये दोनों सम्पादक अपनी अपनी पत्रिकाओं का होलिकाङ्क निकालने की तैयारी कर चुके हैं।

× × ×

त्रावणकोर-नरेश ने अपने राज्य के मंदिरों को हरिजनों के लिए खोले जाने की घोषणा कर दी है। इस घोषणा के प्रकाश में अन्य नरेश और कट्टरपंथी अब कैसे भटक सकते हैं ? —(हिन्दुस्तान से)
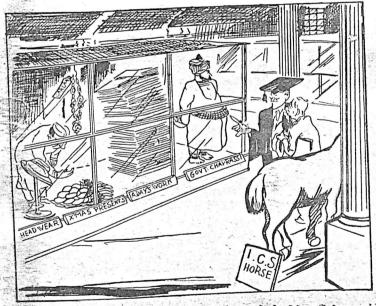
लन्दन का एक समाचार है कि आई० सी० एस० की नौकरी में जो लोग लिये जायँगे वे भारतवर्ष के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए केनसिंगटन का संग्रहालय देखने भेजे जायँगे। —(पायनियर से)

सम्पादकीय नोट

संसार की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति

योरप की राजनैतिक अवस्था दिन-प्रतिदिन बिगड़ती जा रही है। आपसी फूट के कारण वहाँ के राष्ट्र निर्बल पड़ गये हैं, और किसी समय सारे संसार पर योरप की जो धाक थी और कहीं कोई चूँ तक नहीं कर सकता वह आज नाम को भी नहीं रह गई है। यह इसी का परिणाम है कि एशिया के पूर्वी अंचल में जापान मनमानी कर रहा है और धीरे धीरे चीन के राज्य को हड़पता जा रहा है। मंचूरिया को चीन से उसने अलग ही कर लिया है और अब इस प्रयत्न में है कि उत्तरी चीन के पाँच प्रान्त भी चीन की राष्ट्रीय सरकार के क़ब्ज़े से मुक्त होकर उसके चंगुल में आ जायँ ताकि वह मंगोलिया में बेखटके होकर प्रवेश कर सके। यदि योरप के शक्तिशाली राष्ट्रों में एकता होती तो जापान को ऐसा करने का साहस न होता और न यही प्रयत्न होता कि एशिया के पाँच मुसलमानी राष्ट्र आत्मरक्षा के नाम पर अपना एक पृथक् गुट बनाते। इस समय तुर्की, ईरान, ईराक और अफ़ग़ानिस्तान में बड़ा मेल है और वे इस बात के प्रयत्न में हैं कि भविष्य के किसी अवसर के लिए वे चारों मिल कर २० लाख सेना एकत्र कर सकें।

उधर योरप में इटली, जर्मनी, रूस और फ़्रांस अपना सैन्यबल पहले से ही बढ़ाये हुए हैं, और अब उनकी देखा-देखी ब्रिटेन भी अपना सामरिक बल बढ़ाने में लग गया है। जापान पूर्वी एशिया में और अमरीका में संयुक्त-राज्य सैनिक तैयारी में पहले से ही तैयार बैठे हैं। तब यदि पश्चिमी एशिया के उपर्युक्त मुसलमान राष्ट्र भी अपना गुट बनाकर अपनी आत्मरक्षा के लिए तैयार हो रहे हैं तो यह एक स्वाभाविक ही बात है। वे जानते हैं कि पिछले महायुद्ध में उनका तुर्क-साम्राज्य भंग हो चुका है और ईरान को व्यर्थ की कठिनाइयाँ झेलनी पड़ी हैं। अतएव वे वैसे ही भीषण प्रसंग के लिए पहले से ही तैयार रहना चाहते हैं। तुर्की के भाग्यविधाता कमाल अता तुर्क और ईरान के रज़ाशाह पहलवी ने अपनी कार्यवाहियों से अपने को असाधारण व्यक्ति प्रमाणित किया है। यदि इनके समय में मुसलमानों में एकता का भाव ज़ोर पकड़ जाय तो कोई आश्चर्य नहीं। तुर्की में कमाल ने और ईरान में रज़ाशाह ने राष्ट्र-निर्माण का जो महत् कार्य किया है उसका सभी मुसलमान देशों पर काफ़ी प्रभाव पड़ा है। ऐसी दशा में ये चार ही क्यों, अन्य स्वतन्त्र मुसलमान राज्य भी अवसर पाते ही उनके दल में मिल जाना ही अपने लिए श्रेयस्कर समझेंगे। तथापि इन मुसलमान देशों की यह सैनिक तैयारी जहाँ योरप के लिए आज चिन्ता का कारण है, वहाँ वह एशिया के लिए कम भयावह नहीं है। और इस परिस्थति का मूल कारण योरप के प्रमुख राष्ट्रों का निर्बल पड़ जाना है। चाहे जो हो, इस समय संसार में न्याय का नहीं, किन्तु लाठी का ही बोल वाला है।

इधर स्पेन का गृह-युद्ध धीरे-धीरे अपना भयानक रूप प्रकट करने लगा है। यह अब एक प्रकट सत्य है कि विद्रोही पक्ष का साथ इटली और जर्मनी दे रहा है तथा स्पेन की सरकार की सहायता रूस और फ़्रांस कर रहे हैं। ब्रिटेन यद्यपि इस झमेले से दूर है, तो भी आयलैंड और स्काटलैंड के नागरिक यथारुचि दोनों पक्षों में शामिल होकर युद्ध में भाग ले रहे हैं। इस प्रकार स्पेन का यह गृह-युद्ध एक प्रकार से योरपीय युद्ध का रूप धारण कर गया है। और अभी हाल में जर्मनी के जंगी बेड़े ने तो ... किन्तु ... घटना को लेकर स्पेन-सरकार के जहाज़ों की धर-पकड़ भी शुरू कर दी है। जर्मनी का यह हस्तक्षेप जोखिम से भरा हुआ है, और यदि यह मामला जल्दी न तय हो जायगा तो आश्चर्य नहीं कि योरप के अन्य राष्ट्र खुल्लमखुल्ला आपस में ही न लड़ने लग जायँ।

भूमध्य-सागर के सम्बन्ध में इटली और ब्रिटेन की जो सन्धि हाल में हुई है वह अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। इसके फलस्वरूप तो इटली अब ... और भी आबधरूप से स्पेन के मामले में हस्तक्षेप कर सकेगा। ... और इटली तथा जर्मनी

की सहायता से स्पेन में भी फ़ैसिस्ट सरकार की यदि स्थापना हो जायगी तो उस स्थिति में फ़्रांस बड़ी जोखिम में पड़ जायगा, क्योंकि वह तीन ओर से फ़ैसिस्ट राज्यों से घिर जायगा। इसके सिवा भूमध्य-सागर का उसका अफ़्रीका का मार्ग भी संकट में पड़ जायगा। उस दशा में आश्चर्य नहीं कि फ़्रांस में भी फ़ैसिस्ट सरकार की स्थापना का प्रयत्न हो।

वास्तव में इस समय ब्रिटेन और फ़्रांस की जो मैत्री है वह महायुद्ध के काल जैसी नहीं है। जर्मनी के विरुद्ध शस्त्र ग्रहण करने को ब्रिटेन तैयार नहीं है और न फ़्रांस इटली के विरुद्ध शस्त्र ग्रहण करने को तैयार है। हाँ, यदि ब्रिटेन या फ़्रांस पर इनमें से कोई आक्रमण करे तो बेशक ये दोनों राष्ट्र आत्मरक्षा की भावना से मिलकर आक्रमणकारियों से युद्ध करेंगे। इस बात को इटली और जर्मनी दोनों अच्छी तरह जानते हैं। इसी से वे दोनों स्पेन में अपना उल्लू सीधा करने में लगे हुए हैं और ब्रिटेन तथा इटली के हाल के समझौते ने उन्हें और भी उत्तम अवसर प्रदान कर दिया है। यद्यपि यह एक प्रकार से स्पष्ट है कि फ़्रांस की और उसके साथ ब्रिटेन की भी सहानुभूति स्पेन की सरकार के प्रति है, परन्तु ये दोनों उसके पक्ष में हस्तक्षेप करके इटली और जर्मनी से बैठे-बिठाये लड़ाई मोल नहीं लेना चाहते। फिर ब्रिटेन का स्पेन के मामलों से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। और जिस बात से उसका सम्बन्ध है उसे इस सन्धि से उसने स्पष्ट कर लिया है। इटली ने वचन दे दिया है कि वह भूमध्य-सागर की वर्तमान स्थिति को स्वीकार करता है और स्पेन के किसी टापू को अपने अधिकार में करके वहाँ फ़ौजी क़िलेबन्दी नहीं करेगा।

इसमें सन्देह नहीं कि इस समय संसार की अन्तर्राष्ट्रीय दशा वास्तव में जोखिम से भरी हुई है और अधिकारी व्यक्ति उसे क़ाबू में रखने के अपने प्रयत्न में बराबर असफल हो रहे हैं।

चीन की एक महत्त्वपूर्ण घटना

चीन संसार का सबसे बड़ा राष्ट्र है—क्या आबादी की दृष्टि से, क्या क्षेत्रफल की दृष्टि से और क्या प्राचीनता की दृष्टि से। परन्तु दुर्भाग्य से वह एक लम्बे ज़माने से दुर्दशाग्रस्त है। उसके प्रसिद्ध देशभक्त डाक्टर सनयात सेन ने सन् १९११ में इस उद्देश से क्रान्ति करके चीन में प्रजातन्त्र की स्थापना की थी कि चीन शक्तिमान् होकर संसार के राष्ट्रों में अपना उचित स्थान प्राप्त करे। परन्तु वह नहीं हुआ, साथ ही रही-सही अपनी प्रतिष्ठा भी गँवा बैठा। हाँ, इधर जब से चियांग-कै-शेक ने चीन में नानकिंग की राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की है और चीन के हितों की रक्षा करने में अपने चातुर्य का परिचय दिया है तब से निःसन्देह उसकी स्थिति में बहुत कुछ स्थिरता आ गई है। यह सही है कि इन्हीं के समय में जापान ने मंचूरिया को छीनकर अपने अधिकार में कर लिया है और इससे चीन की मर्यादा को भारी धक्का पहुँचा है और इन्होंने आज तक उसका प्रतीकार नहीं किया। परन्तु अबीसीनिया की गति देखते हुए च्यांग-कै-शेक की बुद्धिमानी की प्रशंसा ही की जायगी कि उन्होंने हेल सेलासी बनने से बार-बार इनकार किया। उन्होंने जापान से लड़ना उचित नहीं समझा और वे अपने राष्ट्र को ऐक्य के सूत्र में आबद्ध करने के काम में ही लगे रहे। फलतः वे कैंटन की सरकार के तोड़ने में सफल हुए और इस प्रकार मध्य-चीन और दक्षिण-चीन को एकता के सूत्र में बाँध दिया। इधर हाल में वे पश्चिमी प्रान्तों के बोल्शेविक विद्रोहियों के दमन में इसलिए लगे थे कि चीन के उस भाग पर भी राष्ट्रीय सरकार की प्रधानता क़ायम हो जाय। इसी सिलसिले में वे वहाँ हाल में गये थे, परन्तु वहाँ एकाएक एक विलक्षण घटना घटित हो गई। शेंसी-प्रदेश की सेनाओं के सेनापति चंग स्यूह-लियांग ने विद्रोहियों के षड्यंत्र में शामिल होकर च्यांग-कै-शेक को गिरफ़्तार कर लिया और राष्ट्रीय सरकार से यह माँग की कि जापान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा तथा रूस से मि[illegible] स्थापित की जाय। उनके इस विद्रोह से सारे चीन में सनसनी फैल गई। परन्तु राष्ट्रीय सरकार के अन्य मंत्रियों ने समय के उपयुक्त दृढ़ नीति से काम लिया। इस अवसर पर जहाँ उन लोगों ने विद्रोहियों का दमन करने के लिए युद्ध की तैयारी की, वहाँ आपसी समझौते की भी बातचीत शुरू की। इस बातचीत में आस्ट्रेलिया के मिस्टर डब्ल्यू० एच० डोनाल्ड ने प्रमुख भाग लिया। बातचीत के फल-स्वरूप च्यांग-कै-शेक १५ दिन की क़ैद के बाद छोड़ दिये गये और चंग स्यूह-लिंग ने भी आत्मसमर्पण कर दिया।

नानकिंग आकर च्यांग कै-शेक ने अपने पद से त्याग-पत्र दे दिया, परन्तु वह स्वीकार नहीं किया गया। इससे प्रकट होता है कि उनकी चीन में कितनी भारी प्रतिपत्ति है। इधर चंग-स्यूह-लिंग ने सरकार को लिखकर अपना अपराध स्वीकार किया और उचित दण्ड दिये जाने की माँग की। इस सम्बन्ध में इन दोनों व्यक्तियों के जो बयान पत्रों में प्रकाशित हुए हैं उनसे प्रकट होता है कि चीन में राष्ट्रीय भावना का कितना प्राबल्य है। इस घटना के कारण जहाँ चीन सर्वनाश के लिए कमर कस चुका था, वहाँ एकाएक उसका इस तरह शान्तिपूर्वक निपटारा हो जाना क्या यह नहीं प्रकट करता है कि चीन बहुत अधिक जाग गया है और अब वह ऐसा कोई कार्य नहीं करेगा जिससे उनकी राष्ट्रीय शक्ति निर्बल पड़े। वास्तव में इस घटना के इस तरह शान्तिपूर्वक समाप्त हो जाने से चीन के गौरव और उसकी शक्ति में अपार वृद्धि हुई है। और आश्चर्य नहीं है कि इसका प्रभाव जापान पर भी पड़े और वह भी इससे कुछ शिक्षा ले। जापान की जो लोभ-दृष्टि चीन पर है उससे सारा चीन जापान से कहाँ तक असन्तुष्ट है, इसका घटना से अच्छा परिचय मिल जाता है।

चाहे जो हो, चंग स्युह लियांग के इस विद्रोह से चीन में राष्ट्रीय सरकार एवं उसके प्रधान सूत्रधार च्यांग कै-शेक की प्रतिष्ठा की बहुत अधिक वृद्धि हुई है और अब यही आशा है कि जिस नीति से राष्ट्रीय सरकार शासन-चक्र का परिचालन कर रही है उसका जनता में और भी अधिक स्वागत होगा, जिससे सरकार को अपने राष्ट्र-सुधार के कार्य में और भी अधिक सफलता मिलेगी। इससे चीन का अभ्युदय ही होगा।

नया निर्वाचन

प्रान्तीय असेम्बलियों का निर्वाचन-संग्राम शुरू हो गया है। इसमें कांग्रेस और मुसलिम लीग—यही दो संस्थायें हैं, जो सारे देश में निर्वाचन आन्दोलन व्यवस्था के साथ कर रही हैं। कांग्रेस का विरोध पंजाब में हिन्दू-सभा के नाम से हो रहा है। हिन्दू-सभा के नेता श्रीयुत भाई परमानन्द ने इस बात का प्रयत्न किया था कि संयुक्तप्रान्त, बिहार, बंगाल आदि में भी हिन्दू-सभा कांग्रेस का विरोध करे, परन्तु वे अपने प्रयत्न में नहीं सफल हुए। पंजाब के सिवा महाराष्ट्र में डेमाक्रेटिक स्वराज्य पार्टी और मदरास में जस्टिस पार्टी ने भी कांग्रेस के विरोध में अपने उम्मेदवार खड़े किये हैं और हाल में मध्य-प्रान्त में डाक्टर मुंजे भी कांग्रेस का विरोध करने को मैदान में कूद पड़े हैं। इधर संयुक्तप्रान्त में एग्रीकल्चरिस्ट पार्टी के नाम से वहाँ के भूस्वामी कांग्रेस और लीग दोनों का व्यवस्थित रूप से विरोध कर रहे हैं। इनके सिवा प्रायः सभी प्रान्तों में अनेक स्थानों से स्वतन्त्र उम्मेदवार केवल अपने बल पर कांग्रेस का विरोध करने को खड़े हुए हैं। इसी प्रकार मुस्लिम लीग का पंजाब में यूनीयनिस्ट दल से, सीमाप्रान्त में कांग्रेस से, संयुक्तप्रान्त में एग्रीकल्चरिस्ट पार्टी से, बंगाल में प्रजा-पार्टी से, मध्यप्रान्त में एक नये मुस्लिम राष्ट्रीय दल से भिड़ाभिड़ी है। कांग्रेस का सब कहीं अधिक प्रभाव ही नहीं, व्यापक प्रचार भी है। अतएव कांग्रेस का विरोध करने में न तो हिन्दू सभा सफल होगी, न एग्रीकल्चरिस्ट पार्टी और न स्वतन्त्र उम्मेदवार ही। इसका कारण यह है कि इनमें कोई भी संस्था न तो उतना संगठित है, न लोकमत का ही वैसा बल प्राप्त है। ऐसी दशा में कांग्रेस की जीत निश्चित है और सभी प्रान्तों की असेम्बलियों में उसका बहुमत रहेगा।

परन्तु कांग्रेस की तरह मुस्लिम लीग को कदाचित् सफलता नहीं प्राप्त होगी। सीमाप्रान्त में और पंजाब में उसके उम्मेदवार नहीं जीत सकेंगे और शायद यही हाल बंगाल और मध्यप्रान्त में भी होगा। इसका कारण यह है कि मुस्लिम-लीग हिन्दू-सभा जैसी ही एक निर्बल संस्था है। उसके पीछे लोकमत का प्रभाव नहीं, किन्तु व्यक्तियों का बल है। नये शासन-सुधारों के अनुसार जो यह नया निर्वाचन हो रहा है उसमें कांग्रेस के भाग लेने से सारे देश में बड़ी चहल-पहल मची हुई है और कांग्रेस के नेताओं का इस सम्बन्ध में जो स्वागत-सत्कार हो रहा है उससे प्रकट होता है कि देश की जनता सदा की भाँति कांग्रेस के ही साथ है।

स्वर्गीय अवधवासी लाला सीताराम

दुःख की बात है कि प्रयाग के रायबहादुर लाला सीताराम का पहली जनवरी की रात को स्वर्गवास हो गया। आप वयोवृद्ध थे, पर आपका स्वास्थ्य सदा अच्छा रहा। साल भर हुआ, आपके जेठे पुत्र की मृत्यु हो गई

[स्वर्गीय अवधवासी लाला सीताराम]

थी। इस शोक का आप पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा और आप विरक्त-सा हो गये थे।

श्रीमान् लाला जी हिन्दी के पुराने लेखकों में थे। प्रारम्भ में आपने उर्दू में लिखना शुरू किया था। परन्तु शीघ्र ही हिन्दी की ओर झुक गये और हिन्दी में भी लिखने लगे। इनका मेघदूत सन् १८८३ में छपा था। तब से आप हिन्दी में बराबर लिखते रहे। पहले कालिदास के ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद किया, फिर शेक्सपियर के नाटकों का। अयोध्या का इतिहास और अयोध्या की झाँकी लिखकर आपने अपनी जन्मभूमि के प्रति अपने प्रेम का परिचय दिया है। आप अपने नाम के पहले 'अवधवासी' ज़रूर लिखते थे। कलकत्ता-विश्वविद्यालय के लिए आपने हिन्दी सेलेक्संस नाम से रसों के अनुसार कविताओं का एक महत्त्वपूर्ण संग्रह तैयार किया है। आप गद्य-पद्य दोनों के लिखने में कुशल थे।

आपका जन्म सन् १८५८ को २० जनवरी को अयोध्या में हुआ था। १८८९ में आपने बी० ए० पास किया। इसके बाद आप बनारस में क्वींस कालेज के स्कूल में अध्यापक हो गये। १८९० में वकालत पास की। १८९५ में आप डिप्टी कलेक्टर नियुक्त किये गये। १९११ में आपने पेंशन ले ली और प्रयाग में रहने लगे। यहाँ साहित्य-सेवा और भगवद्भजन में अपना समय व्यतीत किया।

आप बड़े साहित्यानुरागी तथा विद्वान् थे। राम और रामायण के अनन्य भक्त थे। रामायण के शुद्ध पाठ के उद्धार के सम्बन्ध में आपने सबसे पहले प्रयास किया। आपने रामायण के संस्करणों का अच्छा संग्रह किया था। भिन्न भिन्न समय समय पर आप खोजपूर्ण लेख लिखा

करते थे। आपकी मृत्यु से हिन्दी के एक महारथी का अभाव हुआ है। आपके तीन पुत्र हैं, जिनमें रायसाहब श्री कौशलकिशोर जी शिक्षा-विभाग में हैं। आपको भी हिन्दी से बड़ा अनुराग है। इस दुःखद अवसर पर हम आपके परिवार के प्रति अपनी समवेदना प्रकट करते हैं।

——

पण्डित अमृतलाल चक्रवर्ती का स्वर्गवास

दुःख की बात है कि ५ जनवरी को पण्डित अमृतलाल चक्रवर्ती का देहावसान हो गया। आप बंगाली होकर

[स्वर्गीय पण्डित अमृतलाल चक्रवर्ती]

भी हिन्दी की मृत्युपर्यन्त सेवा करते रहे हैं। आपने हिन्दी-बंगवासी, भारतमित्र, श्री वेंकटेश्वर कलकत्ता-समाचार आदि का बड़ी योग्यता से सम्पादन किया। आप बड़े अनुभवी पत्रकार थे। हिन्दीवालों ने आपको साहित्य-सम्मेलन के वृन्दावन के अधिवेशन का सभापति बनाकर आपका उचित सम्मान किया था। आप बड़े स्पष्ट वक्ता, निर्भीक तथा स्वतन्त्र प्रकृति के सम्पादक थे। आपको ऐसे ही उदात्त स्वभाव के कारण इस वृद्धावस्था में कठिन आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा। इन दिनों में 'विश्वमित्र' में आपकी पाण्डित्यपूर्ण 'आत्मकथा' छप रही थी। खेद है, वह पूरी न हो सकी। आपकी मृत्यु से हिन्दी के क्षेत्र से उसके एक अनन्य प्रेमी का अभाव हो गया है। आपके दुखी परिवार के प्रति हम यहाँ अपनी समवेदना प्रकट करते हैं।

——

भारत और जहाज़ी कम्पनियाँ

संसार के सभी शक्तिशाली राष्ट्रों की अपनी अपनी जहाज़ी कम्पनियाँ हैं, जो देश का व्यापार आदि सफलतापूर्वक चलाती हैं। इनमें जापान की कंपनियों की प्रतिद्वंद्विता से तो ब्रिटेन जैसी महान् समुद्री शक्ति भी विचलित हो गई है। उस दिन लंदन में इस सम्बन्ध में पी० एंड ओ० कम्पनी के मिस्टर अलेक्ज़ेंडर शा ने जो भाषण किया है उससे प्रकट होता है कि जापान इस क्षेत्र में सारे संसार से बाज़ी मार ले गया है। और कदाचित् इसी परिस्थिति के कारण इटली के सर्वेसर्वा मुसोलिनी अपने यहाँ की जहाज़ी कम्पनियों का ऐसा संगठन करना चाहते हैं कि इस क्षेत्र में उनका भी देश जापान की ही तरह गरिमा-मण्डित हो जाय। इस तरह सभी छोटे-बड़े राष्ट्र इस विषय में सजग हैं और अपने अपने देश की जहाज़ी कम्पनियों को बढ़ाने में संलग्न हैं। परन्तु इस सम्बन्ध में भारत की बड़ी दयनीय दशा है। निस्सन्देह उत्साही व्यवसायियों ने यहाँ भी जहाज़ी कम्पनियाँ क़ायम करके चलाई हैं, परन्तु वे विदेशी जहाज़ी कम्पनियों के आगे नहीं ठहर सकीं और उनके दिवाले तक निकल गये। आज भी दो-एक कम्पनियाँ लस्टम-पस्टम चल रही हैं। यह तो काम देश की सरकार का है कि वह भारतीय कम्पनियों की रक्षा करे। परन्तु उसने इस ओर जैसा चाहिए, ध्यान ही नहीं दिया है। भारत जैसे बड़े भारी देश के अनुरूप जिसका समुद्री तट भी बहुत बड़ा है, अपनी जहाज़ी कम्पनियाँ कहाँ हैं? आज यदि भारत की अपनी जहाज़ी कम्पनियाँ होतीं और अपने देश का तटवर्ती तथा देशान्तर का भी सारा व्यापार उसके हाथ में होता

तो भारत की वर्तमान दरिद्रता आज इतने भीषण रूप में न अस्तित्व में आई होती।

जंगली जानवरों से खेती की हानि

संयुक्त-प्रान्त के कई ज़िलों में जंगली जानवरों के ऐसे बड़े बड़े दल आज भी पाये जाते हैं जिनके कारण वहाँ के किसानों को बड़ी हानि उठानी पड़ती है। प्रसन्नता की बात है कि इस ओर फ़तेहपुर के कलेक्टर श्रीयुत दर का ध्यान आकृष्ट हुआ है और वे उनका उन्मूलन करने के लिए एक योजना को कार्य का रूप देना चाहते हैं। उनके ज़िले में तथा कानपुर, उन्नाव और रायबरेली ज़िले के गंगा के कछार में हज़ारों की संख्या में जंगली गायें, नीलगायें, सूअर तथा हिरन आदि फैले हुए हैं। अन्दाज़ किया गया है कि अकेले फ़तेहपुर के ज़िले में ऐसे जानवर संख्या में सात हज़ार से ज़्यादा होंगे। श्रीयुत दर ने पहले तो इन्हें शिकारियों को भेजकर गोली से मरवा डालने का प्रयत्न किया। परन्तु अब वे ऐसा प्रयत्न कर रहे हैं कि गायें तो पकड़ कर गोशालाओं को या उन लोगों को जो उन्हें पालना चाहें, दे दी जायँ। शेष जंगली पशु एक-दम मार डाले जायँ या पकड़कर जैसे बैल, घोड़े आदि नीलाम कर दिये जायँ। उन्होंने इस बात की लोगों को सूचना भी दे दी है कि जो लोग पुरानी पद्धति के अनुसार अपने जानवर खुला छोड़ दिया करेंगे उन पर मुक़द्दमे चलाये जायँगे और वे दण्डित किये जायँगे, क्योंकि उनके वैसा करने से जंगली जानवरों की संख्या में वृद्धि होती है। संयुक्त-प्रान्त के कई ज़िलों में होली के बाद सारे पशु खुले छोड़ दिये जाते हैं और वर्षा होने पर जब फिर जुताई-बुवाई शुरू होती है तब कहीं जाकर वे बाँधे जाते हैं। इस पद्धति के कारण गरमी के दिनों की खेती को तो हानि होती ही है, साथ ही जो किसान चैती की फ़सल काटने में पिछड़ जाते हैं और जो खरीफ़ की फ़सल ठीक समय में जल्दी बो लेते हैं वे सभी पशुओं के खुला रहने के कारण बड़ी हानि उठाते हैं। अतएव इनकी रोक-थाम करना कहीं अधिक ज़रूरी है, और दर साहब ने इस बात की ओर भी ख़ास तौर पर ध्यान दिया है। क्या ही अच्छा हो, यदि अन्य ज़िलों के अधिकारी इस समस्या की ओर ध्यान देकर बेचारे दीन किसानों की रक्षा करें। आशा है, फ़तेहपुर के इस आदर्श प्रयत्न का अन्य ज़िलों के अधिकारियों पर अवश्य प्रभाव पड़ेगा और वे भी इस ओर जल्दी ही यत्नवान् होंगे।

लखनऊ की औद्योगिक और कृषि-प्रदर्शनी

गत ५वीं दिसम्बर से इस प्रान्त की सरकार की ओर से लखनऊ में एक औद्योगिक और कृषि-प्रदर्शनी हो रही है। यह प्रदर्शनी अभी ४ फ़रवरी तक चलेगी। इन दो महीनों में लाखों नर-नारी इस प्रदर्शनी की सैर करके अपने देश के औद्योगिक विकास और कृषि-सम्बन्धी उन्नति के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें जान सकेंगे। दुःख की बात है कि इस प्रदर्शनी के प्रकाशन-विभाग ने हिन्दी-पत्रों की बहुत कुछ उपेक्षा की। जनता के कृषि और औद्योगिक ज्ञान-वृद्धि का ध्यान रखते हुए इसके प्रकाशन-विभाग को इस प्रान्त की भाषाओं में निकलनेवाले पत्रों में अपनी सूचनायें और विवरण भेजने चाहिए थे। आरम्भ में दर्शकों की संख्या में कमी और प्रदर्शनी के सम्बन्ध में ग़लत अफ़वाहें फैलने का यह भी एक कारण है। लगभग एक महीने बाद प्रकाशन-विभाग ने किसी अंश तक यह भूल सुधारी और दर्शकों की संख्या में वृद्धि हुई। पर मासिक पत्रिकायें इसके विवरणों से वञ्चित ही रहीं, यद्यपि उन सबमें सचित्र विवरण भेजे जा सकते थे और इस प्रकार दर्शकों की संख्या में वृद्धि करके प्रदर्शनी और भी सफल बनाई जा सकती थी। हमें तो एक भी चित्र या विज्ञप्ति नहीं प्राप्त हुई। ख़ैर।

यह प्रदर्शनी एक बड़े पैमाने पर हो रही है और बहुत दूर तक फैली हुई है। सजावट अत्यन्त सुरुचिपूर्ण है और रात में एकड़ों के विस्तार में जो रोशनी होती है वह देखने लायक होती है। दर्शकों के आराम देने के उद्देश से प्रदर्शनी के भीतर एक छोटी-सी रेलगाड़ी के दौड़ाने की व्यवस्था की गई थी, पर उसका इंजन बेकार सिद्ध हुआ और इंजन का काम एक मोटर के पहियों में कुछ परिवर्तन करके लिया गया। लोग इस गाड़ी पर भी बैठे नज़र आते थे, पर रेल का इंजन जो दृश्य उपस्थित करता वह इससे बहुत कुछ फीका रहा। प्रदर्शनी के मध्य में एक झील बनाई गई है, जिसमें छोटी छोटी मोटर बोटों का चलना बहुत ही भला मालूम होता है। इस प्रदर्शनी में भारत की कई रियासतों का भी सहयोग प्राप्त किया है और

हैदराबाद, मैसूर, ग्वालियर, इन्दौर आदि की कृषि और उद्योग से सम्बन्ध रखनेवाली वस्तुएँ भी बड़े सुन्दर ढङ्ग से प्रदर्शित की गई हैं। कृषि-सम्बन्धी उपजें और विविध फलों और मेवों का प्रदर्शन भी द्रष्टव्य है। शिक्षा-विभाग में ऐतिहासिक और भौगोलिक आदि प्रदर्शन की वस्तुओं के अतिरिक्त बड़े बड़े चार्टों और चित्रों-द्वारा यह भी दिखाया गया है कि शिक्षा की कैसी प्रगति हुई है। गाँव-वाले थोड़े व्यय में रहने लायक अच्छे हवादार घर कैसे बना सकते हैं, इसके अनेक नमूने भी देखने को मिलते हैं। उनके अनुसार यदि किसानों को घर बनवाने का उत्तेजन दिया जाय तो उनके स्वास्थ्य और सुख में निःसन्देह सुधार हो सकता है।

प्रदर्शन की विविध वस्तुओं और सैकड़ों दूकानों के अतिरिक्त इस प्रदर्शनी में दर्शकों के मनोरंजन की जो व्यवस्था की गई है वह अभूतपूर्व कही जा सकती है। बहुत-से लोगों ने रेस के मैदान में कुत्तों की दौड़ और परिस्तान में अनेक फ़िल्मस्टारों को साक्षात् एक साथ पहली ही बार देखा होगा। शिक्षा-विभाग की ओर से प्रान्त भर के ज़िला-स्कूलों के लड़कों ने जो कसरतें दिखाईं वे भी दर्शनीय थीं। बालकों के ऐसे टूर्नामेंट प्रतिवर्ष हों तो उन्हें व्यायाम का शौक़ पैदा हो सकता है और वे स्वस्थ रह सकते हैं।

ऐसी सुव्यवस्थित, सुरुचिपूर्ण और उपयोगी प्रदर्शनी का आयोजन करने के लिए इस प्रान्त की सरकार की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है।

हिन्दुस्तानी अकेडेमी

हिन्दुस्तानी अकेडेमी का वार्षिक अधिवेशन इस बार लखनऊ की उपर्युक्त प्रदर्शनी के भीतर एक सुन्दर और बड़े पंडाल में राय राजेश्वरबली (भूतपूर्व शिक्षा-मंत्री) के सभापतित्व में सफलता-पूर्वक हो गया। अधिवेशन का उद्घाटन राइट आनरेबुल सर तेजबहादुर सप्रू ने किया था। इस अवसर पर आपने जो भाषण किया, संक्षिप्त होते हुए भी सार-गर्भित था। आपने इस बात पर ज़ोर दिया कि किसी भी देश की शिक्षा विदेशी भाषा में नहीं होनी चाहिए। आज-कल की हिन्दी-उर्दू में संस्कृत और अरबी-फ़ारसी के अधिकाधिक शब्दों के प्रयोग की कुप्रवृत्ति पर आपने खेद प्रकट किया और कहा कि यदि यह क्रम जारी रहने दिया गया तो २५ वर्ष बाद हिन्दू-मुसलमान बिना दुभाषिये के आपस में बात भी न कर सकेंगे। राय राजेश्वरबली ने अपने भाषण में सर तेजबहादुर सप्रू के विचारों का समर्थन किया और हिन्दी-उर्दू का सम्मिलित शब्द-कोश तैयार करने का विचार उठाया।

इस अधिवेशन में हिन्दी-उर्दू में साथ साथ और अलग-अलग बहुत-से निबन्ध पढ़े गये। अधिकांश निबन्ध दोनों भाषाओं को मिलाकर एक कर देने के विषय में थे। एक निबन्ध इस आशय का भी पढ़ा गया कि भाषाओं के साथ लिपि भी एक कर दी जाय और जो नई लिपि हम ग्रहण करें वह रोमन हो। इस पर अच्छा विवाद रहा। कुछ लोगों ने इस प्रश्न को मज़ाक कहकर टाल देना चाहा, पर प्रिंसिपल हीरालाल खन्ना ने अपने भाषण से इसे गम्भीर बना दिया और कहा कि अब समय आ गया है जब हमें लिपि के प्रश्न पर भी विचार करना होगा। राय बहादुर पंडित शुकदेव बिहारी मिश्र ने भी इस प्रश्न पर एक भाषण किया और कहा कि यदि परिस्थिति का यही तकाज़ा हो तो रोकर ही सही, हमें रोमन लिपि अपना लेनी चाहिए। अन्य निबन्धों में उर्दू-हिन्दी का भाई-चारा बहुत पसन्द किया गया।

अकेडेमी के सुयोग्य मंत्री डाक्टर ताराचन्द ने इस वर्ष भी अपना भाषण हिन्दुस्तानी में ही किया, जो मनोरञ्जक होने के अतिरिक्त इस बात का एक अच्छा उदाहरण था कि दोनों भाषायें मिलाकर एक की जा सकती हैं। डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा ने हिन्दुओं के नामों पर एक रोचक निबन्ध पढ़ा था, जिसमें आपने यह दिखाया कि इन नामों के पीछे क्या प्रवृत्ति काम करती है और अपने तर्कों को नामों की लम्बी सूचियों से पुष्ट किया।

एक आशु कवि

हिन्दुस्तानी अकेडमी के जलसे के अवसर पर ही प्रदर्शनी में एक सर्व भारतीय वृहत् कवि-सम्मेलन भी हुआ था। इस सम्मेलन के प्रबन्धकों की एक लम्बी सूची प्रकाशित हुई थी, पर हमें कहीं कोई दिखाई नहीं पड़ा और सारा भार श्री ज्योतिलाल भार्गव के सिर पर आ पड़ा था। जिस परिश्रम से इस कवि-सम्मेलन को उन्होंने मशायरे से भी अधिक सफल बनाया उसके लिए

उनकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। अधिकांश कवितायें साधारण थीं और साधारण ढङ्ग से पढ़ी गईं। श्रोताओं को सबसे अधिक श्री जगमोहननाथ अवस्थी ने आकृष्ट किया। उन्होंने आशु कवि होने की घोषणा की और दावा किया कि वे तत्काल किसी भी विषय या समस्या पर पद्य-रचना कर सकते हैं। किसी ने उन्हें 'लाउड स्पीकर' पर पद्य-रचना करने की बात कही। उन्होंने तत्काल उस पर कई सुन्दर पद्य-छन्द पढ़े और 'त्रिशूल-सनेही' और 'शाह की शादी' की समस्याओं की पूर्ति करके तो उन्होंने श्रोताओं को आश्चर्य-चकित ही कर दिया। कवि-सम्मेलनों में लोग गम्भीर विचार नहीं, ऐसे ही चमत्कार और श्रुति-मधुर तथा सरलग्राह्य विनोद चाहते हैं। इस दृष्टि से अवस्थी जी बहुत सफल कवि कहे जा सकते हैं और हम उन्हें बधाई देते हैं।

सम्मेलन का सभापति कौन हो

सम्मेलन के सभापतित्व पर इधर कुछ समय से राजनैतिक नेताओं का एकाधिकार-सा हो गया है। यद्यपि हम उसकी उपयोगिता के क़ायल हैं तथापि यह वाञ्छनीय नहीं है कि हिन्दी के वयोवृद्ध साहित्यिक इस सम्मान से वञ्चित रहें। हमारे देखते देखते अवधवासी लाला सीताराम और मुंशी प्रेमचन्द स्वर्गवासी हो गये और वे सम्मेलन के सभापति न बनाये जा सके। हमारा यहाँ हिन्दी-प्रेमियों से अनुरोध है कि इस बार किसी योग्य साहित्यिक ही को इस आसन पर बैठायें। इस सम्बन्ध में अपनी ओर से हम श्रीयुत मैथिलीशरण गुप्त का नाम उपस्थित करते हैं। गुप्त जी इस पद के सर्वथा उपयुक्त भी हैं, क्योंकि हाल में ही उनकी सारे देश में जयन्ती भी मनाई गई है तथा महात्मा गांधी-द्वारा उनका सम्मान भी हो चुका है।

जंज़ीबार की समस्या

जंज़ीबार के भारतीयों की समस्या अभी सुलझती नज़र नहीं आती। भारत-सरकार ने बीच में पड़कर इस मामले की जाँच करने के लिए औपनिवेशिक विभाग से कहा था, जिसके लिए मिस्टर बेक नियुक्त किये गये। परन्तु उन्होंने जो रिपोर्ट दी है, उससे भी प्रवासी भारतीयों की असुविधायें दूर होती नहीं दिखाई देती हैं। इस सम्बन्ध में जंज़ीबार के प्रवासी भारतीयों के नेता श्री तैयबअली ने जो वक्तव्य दिया है उसका मुख्यांश यह है—

रिपोर्ट की पहली सिफ़ारिश यह है कि लौंग बोनेवालों की लौंग के ख़रीदने का एकमात्र अधिकार लौंग-उत्पादक-संघ को होना चाहिए।

इस समय लौंग बोनेवालों को स्वतन्त्रता है कि वे किसी के भी हाथ अपना माल बेच सकते हैं। परन्तु रिपोर्ट की सिफ़ारिश है कि 'सिवाय लौंग-उत्पादक-सङ्घ के और किसी को लौंग ख़रीदने का अधिकार न होना चाहिए।' अगर कहीं यह सिफ़ारिश क़ानून के रूप में बदल गई तो हिन्दुस्तानी आढ़तिये सिर पर हाथ रखकर रोयेंगे और उनका व्यापार एकदम चौपट हो जायगा।

दूसरी सिफ़ारिश यह है कि अगर हिंदुस्तानी चाहें तो वे द्वीप की लौंग ख़रीदने के लिए संघ के आढ़तिये बन सकते हैं। पर संघ ने ऐसा कोई विश्वास नहीं दिलाया है कि वे हिन्दुस्तानियों को अपने आढ़तिये बना ही लेंगे, अथवा एक बार आढ़तिये बन जाने पर फिर उन्हें हटायँगे नहीं।

तीसरी सिफ़ारिश यह है कि निर्यात-व्यापार का लाइसेंस सङ्घ न दे, बल्कि जंज़ीबार की सरकार दिया करे तथा लाइसेंस का शुल्क कम कर दिया जाय।

इसका भी कोई अर्थ नहीं है, क्योंकि यदि सरकार निर्यात-लाइसेंस देने में निष्पक्षता भी अख़्त्यार कर ले तथा उसका शुल्क भी घटा दे तो भी भारतवासियों को कोई लाभ नहीं। उन्हें लाइसेंस लेने की ज़रूरत ही नहीं पड़ेगी, क्योंकि विदेशी ख़रीदार ज्यों ही यह सुनेंगे कि रक्षित उपनिवेश में लौंग भेजनेवाला अब केवल लौंग-उत्पादक-सङ्घ रह गया है, वे भारतीय व्यापारियों से या मध्यस्थ आढ़तियों से माल नहीं ख़रीदेंगे और इनका व्यापार नष्ट हो जायगा।

चौथी सिफ़ारिश सङ्घ की सलाह-कारिणी समिति में एक भारतीय प्रतिनिधि रखने के विषय में है। सो यह भारतीय हितों का चाहे कितना ही पोषक हो उसकी आवाज़ वहाँ अरण्यरोदनमात्र होगी।

Printed and published by K. Mittra, at The Indian Press, Ltd., Allahabad.

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल श्रीनाथसिंह

मार्च १९३७ } भाग ३८, खंड १ संख्या ३, पूर्ण संख्या ४४७ { फाल्गुन १९९३

कवि का स्वप्न

लेखक, श्रीयुत भगवतीचरण वर्मा

१

कवि लिखने बैठा—मधुऋतु है, मद से मतवाला है मधुवन,
भौंरों की है गुंजार मधुर, पिक के पंचम में है कम्पन,
मलयानिल के उन झोंकों में सौरभ के सुषमा की सिहरन,
अधखुली कली की आँखों में सुख-स्वप्नों की कोमल पुलकन।

२

कवि लिखने बैठा—मधुवन में फूलों का सुन्दर एक सदन
शत-शत रंगों की धाराएँ, रच रहीं जहाँ शाश्वत यौवन,
उल्लास उमंगें भरता है विश्वास भरा अक्षय जीवन,
है जहाँ कल्पना का सुन्दर अभिमन्त्रित कोमल आलिंगन!

३

कवि लिखने बैठा—एक युवक जिस पर न्योछावर सहस मदन;
श्वासों में है उच्छ्वास भरा उन्माद भरी जिसकी चितवन,
वह निज वैभव में मुग्ध विसुध निज अभिलाषा में लीन मगन,
अपने मानस के पट पर वह करता सुख का संसार सृजन।

४

कवि लिखने बैठा—नवबाला, जिसकी आँखों में भोलापन,
जिसके उभरे वक्षस्थल में अज्ञात प्रेम का नव-स्पन्दन,
नूपुर-ध्वनि में संगीत स्वयं करता उन चरणों का वन्दन,
निज बाहों की जयमाला का ले कर आई है दृढ़ बन्धन।

५

कवि सहसा सिहरा, काँप उठा सुन भूखे बच्चों का रोदन,
पत्नी की पथराई आँखों में केन्द्रित था जग का क्रन्दन,
गन्दे से टूटे कमरे में होता अभाव का था नर्तन,
कवि खड़ा हो गया पागल-सा उसके उर में थी कौन जलन?

बर्मा पर अँगरेज़ों का आधिपत्य

लेखक, श्रीयुत सत्यरञ्जन सेन

नये शासन-सुधारों के अनुसार बर्मा भारत से अलग कर दिया गया है और उसके लिए पृथक् शासन-विधान की रचना की गई है। ऐसी दशा में यह जान लेना सामयिक होगा कि बर्मा का भारत से कब और कैसे सम्बन्ध स्थापित हुआ था। इस लेख में लेखक महोदय ने इसी का संक्षेप में विवरण दिया है।

र्मा का आधुनिक इतिहास जब से उसका सम्बन्ध १७ वीं व १८ वीं सदी के योरपीय व्यापारियों से हुआ है, बहुत कुछ निश्चित किया जा चुका है। ईसवी सन् के प्रारम्भ होने से कई सौ वर्ष पूर्व के तथा पीछे के उसके इतिहास की कोई शृङ्खला आज तक उपलब्ध नहीं हो सकी। बर्मी तथा पाली कथानकों में कहा जाता है कि ईसवी सन् के प्रारम्भ से लगभग ९०० वर्ष पूर्व कपिलवस्तु के अभिराजा नामक एक राजा यहाँ आये। ये अपनी सेना-समेत स्थल-मार्ग से आये तथा लाल की खानों के प्रदेश के पश्चिमोत्तर-भूभाग को बसा कर टगाँव (आधुनिक मोगोक शहर से उत्तर) नामक नगरी का निर्माण किया और उसे अपनी राजधानी बनाकर राज्य करने लगे। यही अभिराजा आधुनिक बर्मा को बसानेवालों में अग्रणी थे। उनके पीछे उनके वंश का इतिहास भी कुछ मिलता है। परन्तु बाद में कई सौ सालों का इतिहास अज्ञात है। यदि इस काल के इतिहास का अनुसन्धान किया जाय तो भारत तथा बर्मा के धार्मिक, सांस्कृतिक, राजकीय तथा व्यापारिक सम्बन्धों पर प्रकाश पड़ने की बड़ी सम्भावना है। अस्तु।

प्रस्तुत लेख में हम तीसरे बर्मी युद्ध के कारणों तथा बर्मा पर अँगरेज़ों का आधिपत्य स्थापित होने का साधारण विवरण देंगे।

सन् १७८२ ईसवी में बर्मा के राजा बोडापाया ने अराकान देश जीत लिया, इससे बर्मा तथा ब्रिटिश भारत की सरहद एक दूसरे से मिल गई। इसके बाद बर्मा के राजा का अँगरेज़ों से सम्पर्क हुआ और अन्त में सन् १८२४ में इनसे उसका युद्ध हो गया और अँगरेज़ों ने अराकान तथा तनासिरम के प्रदेश अपने क़ब्ज़े में कर लिये।

सन् १७८२ से १८२३ तक के सालों में स्याम, अराकान, आसाम, मनीपुर तथा कचार आदि प्रदेशों में बर्मी राजाओं का ही प्राधान्य था। राजा बोडापाया के राज्यकाल में रामरी-द्वीप-समूह के सामन्त ने बोडापाया की तरफ़ से ढाका, चटगाँव तथा मुर्शिदाबाद के ज़िले को बर्मा-राज्य के अन्तर्गत कर देने की माँग पेश की। सन् १८०६ से १८१६ तक हिन्दुस्तान में बर्मा-मिशन बुद्धगया आदि बौद्ध तीर्थों के दर्शन तथा प्राचीन अनुपलब्ध संस्कृत-पुस्तकों की खोज के लिए कई बार आये-गये। परन्तु अँगरेज़ों को इन पर यह सन्देह था कि ये मिशन मराठों से मेल-जोल करने को आते हैं। इसी कारण सन् १८१७ में जब बर्मी राजदूतों का एक मिशन अराकानी विद्रोहियों को भारत-सरकार से वापस लौटाने की माँग पेश करने तथा धार्मिक पुस्तकों की खोज में लाहौर तक जाने की आज्ञा प्राप्त करने को आया तब वह कलकत्ते में ही रोक दिया गया।

बोडापाया के बाद उसके उत्तराधिकारी बाजी डा भी अपने पितामह के पद-चिह्नों पर चलकर आसाम, मनीपुर तथा अराकान के राज-घराने के गृह-कलहों में योग देकर इन प्रदेशों पर अपनी सत्ता बनाये रहे। बर्मा के प्रसिद्ध वीर सेनापति महाबन्डुला ने उपर्युक्त प्रदेशों को जीता था। पर सन् १८२४ में जब अँगरेज़ों ने रंगून शहर पर छापा मारकर ११ मई सन् १८२४ को उसे हस्तगत कर लिया और सोरियम, तवाई, पेगु मर्गुई तथा मर्तबान का इलाक़ा भी अपने क़ब्ज़े में कर लिया तब सेनापति बन्डुला इस पराजय पर कैसे चुप बैठे रह सकते थे। उन्होंने ६०,००० सैनिकों को लेकर अँगरेज़ी सेना पर धावा बोल दिया। परन्तु उनके वे सैनिक अपनी ढाल तलवार व देशी बन्दूक़ों से युद्ध में ठहर न सके। १३०० अँगरेज़ों तथा ३००० हिन्दुस्तानियों ने २० छोटी तोपों द्वारा ही बन्डुला की सेना को मार भगाया। इस युद्ध

परिणाम-स्वरूप उत्तर-पश्चिमी सीमाओं में गोहाटी, मनीपुर, कचार तथा अराकान तक बढ़ी हुई बर्मी सेनाओं को अपना क़दम पीछे लौटाना पड़ा।

जब अँगरेज़ी फ़ौजें रंगून से उत्तर की ओर बढ़ रही थीं तब दानुब्यू की लड़ाई में प्रसिद्ध सेनापति बन्डुला काम आये। दानुब्यू तथा प्रोम के ज़िले भी ब्रिटिश शासन के अधीन हुए। ब्रिटिश सेनाओं के प्रोम से उत्तर मालुन तथा पगान की तरफ़ बढ़ आने पर तथा बर्मी सेनाओं की हार होने के क़ारण यंदाबू की सन्धि लिखी गई। अँगरेज़ी फ़ौजों ने पगान से आगे बढ़कर राजधानी आवा से ४० मील दूर यंदाबू नामक जगह में आकर खेमे गाड़ दिये। इस सन्धि-द्वारा आसाम, अराकान, तनासिरम तथा मर्तबान पर अँगरेज़ों का प्रभुत्व हुआ; ब्रिटिश सरकार को हर्जाने के तौर पर १ करोड़ रुपया युद्ध-ख़र्च देना स्वीकार किया गया; कचार, जयन्तिया तथा मनीपुर के इलाक़ों में किसी तरह का हस्तक्षेप न करना तय हुआ; स्याम ब्रिटिश राज्य का मित्रराज्य माना गया। इस सन्धि के अनुसार २४ फ़रवरी १८२६ को ब्रिटिश फ़ौजें रंगून लौट आईं तथा तनासिरम प्रदेश का मोलमीन शहर जिसका पुराना नाम रामपुरम् था, ब्रिटिश बर्मा की राजधानी बनाया गया। अँगरेज़ों से बर्मा का यह पहला संघर्ष था।

सन् १८३० में क्रौफ़ोर्ड-सन्धि के अनुसार राजधानी आवा में ब्रिटिश रेज़ीडेंट के रखने की स्वीकृति दी गई। परन्तु बर्मा के राजा का रेज़ीडेंटों से मेल नहीं बैठा।

बर्मा के राजा सन्धियों के विपरीत ब्रिटिश व्यापारी जहाज़ों से अधिक चुंगी वसूल करने लगे और ब्रिटिश बेड़ों के कप्तानों पर झूठे इलज़ाम लगाकर उनसे मनमाना आर्थिक दण्ड लेने लगे। इससे नाराज़ होकर गवर्नर जनरल लार्ड डलहौज़ी ने ६ जंगी जहाज़ बर्मा को भेज दिये और बर्मा-सरकार से पत्रों-द्वारा जवाब माँगा। परन्तु उस समय के राजा पगानमिन ने पत्रों का कोई उत्तर नहीं दिया, अतएव अप्रेल सन् १८५२ में युद्ध आरम्भ कर दिया गया।

इस युद्ध में जनरल गाडविन ने मर्तबान, रंगून तथा बेसीन, अर्थात् बर्मा के तीनों बन्दरगाहों पर क़ब्ज़ा कर लिया। सन् १८५२ के अगस्त मास में लार्ड डलहौज़ी स्वयं रंगून आये और निश्चय किया कि सरकारी फ़ौजों को बर्मा
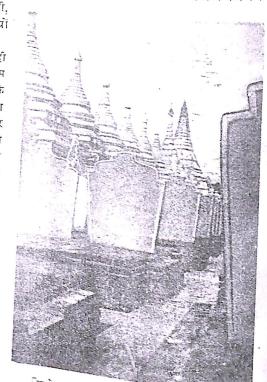
[कुतोडा पगोडा ग्रूप (कुशलक्षेमाद मन्दिरमाला)]

के भीतर बढ़ने का आदेश दिया जाय। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डायरेक्टरों ने भी पेगु-प्रदेश का हमेशा के लिए ब्रिटिश भारत में मिला लेने की सलाह को स्वीकार कर लिया।

इन्हीं दिनों दिसम्बर १८५२ में बर्मा के राजा पगानमिन तथा उनके सौतेले भाई मिन्डोमिन के बीच गृह-युद्ध हो रहा था। मिन्डोमिन की फ़ौजों ने उत्तर में श्वेबो की तरफ़ से धावा बोलकर राजधानी अमरापुर पर अधिकार कर लिया। राजा पगानमिन को राजधानी में नज़रबन्द कर दिया और उनके लिए सब सुख के सामान उपस्थित कर दिये गये। इधर २० दिसम्बर सन् १८५२ में कप्तान आर्थर फ़ेयर ने गवर्नर-जनरल की यह घोषणा कि पेगु अँगरेज़-सरकार के मातहत माना जाय उद्घोषित की तथा
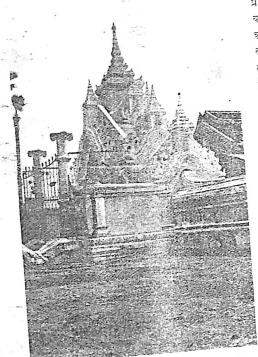
[कुशलक्षेमाय मन्दिरमाला में प्रवेश करने का पश्चिमीय द्वार।]

बर्मा के नवीन राजा को चेतावनी दी कि यदि वह इसे एक मास के भीतर स्वीकार न करेगा तो उसकी सम्पूर्ण शक्ति नष्ट कर दी जायगी।

राजा पगानमिन के गद्दी से उतार दिये जाने के बाद इन शेमिन मिन्डोंमिन के हाथों में उक्त पत्र दिया गया। उसने पत्र की भाषा और भाव पर दुःख प्रकट किया और सन्धि-पत्र की पूर्ति करने से इनकार कर दिया, पर साथ ही मित्रता का सम्बन्ध स्थापित करना स्वीकार किया।

सन् १८५४ में मिन्डोंमिन ने एक मिशन के द्वारा पेगु पर अपना प्रभुत्व सिद्ध करने का प्रयत्न किया, परन्तु सफलता न हुई। सुतरां मिन्डोंमिन ने बर्मा का जो हिस्सा शेष रह गया था उसी का सम्प्रबन्ध करने पर सन्तोष किया।

राजा मिन्डोंमिन की उदारता तथा शान्तिप्रियता का प्रजा पर अच्छा प्रभाव पड़ा। उसने न केवल स्वदेश-वासियों के अपितु बर्मा में प्रवासी अँगरेज़ों और फ़्रांसीसियों आदि के साथ भी मित्रता का सम्बन्ध स्थापित किया, यहाँ तक कि उसने ईसाई चर्च तथा स्कूलों के लिए भी धन तथा भूमि का दान किया और अपने पुत्रों को भी इन शिक्षणालयों में प्रविष्ट कराया। पर वह स्वयं एक कट्टर बौद्ध था और अपने राज्यकाल में उसने कुतोडा नामक एक सुविशाल पगोडा निर्मित कराया, जिसमें संपूर्ण 'त्रिपिटक' श्वेत-प्रस्तर के शिलालेखों में लिख कर रक्खा गया। राजा मिन्डोंमिन ने पंचम बौद्ध महासभा की भी संयोजना की।

सन् १८५५ में मेजर फ़ेयर पुनः एक व्यापारिक संधि-पत्र की पूर्ति के लिए अमरापुरा-दरबार में पहुँचे। परन्तु मिन्डोंमिन ने संधि से बर्मा को कुछ विशेष लाभ न होता देखकर संधिपत्र पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया। साथ ही राजा ने सरहदी मामलों में सहयोग तथा मित्रता का बर्ताव रखने की अभिलाषा प्रकट की। सन् १८५७ में राजा ने ज्योतिषियों-द्वारा कुछ शकुन देखे जाने पर अमरापुरा के स्थान में माण्डले को अपनी राजधानी बनाया। इसके बाद सन् १८५८ में संयुक्त-राज्य (अमरीका) से एक मिशन वहाँ के प्रेसीडेंट का पत्र लेकर दोनों देशों में मैत्री स्थापित करने के उद्देश से माण्डले पहुँचा। इसी वर्ष राजघराने से सम्बन्धित कुछ मानी पुरुषों-द्वारा बसीन में अँगरेज़ों के विरुद्ध विप्लव हुआ, जो तुरन्त शान्त कर दिया गया। इसी समय शान-देश के स्वोबा (सामन्त राजा) ने भी विप्लव किया जो असफल रहा।

सन् १८६२ में अराकान, पेगु तथा तनासिरम के एक कमिश्नरी बनने पर चीफ़ कमिश्नर मेजर फ़ेयर ने पुनः व्यापारिक सन्धि के लिए प्रस्ताव पेश किया। उसमें सरहदी चुंगी के घटाने, ब्रिटिश लोगों को देश में व्यापार की स्वतन्त्रता देने तथा माण्डले में एक ब्रिटिश प्रतिनिधि रखने की शर्तें थीं। परन्तु सन्धि की शर्तों का पूरा होना नामुमकिन था, क्योंकि मिट्टी का तेल, सागौन की लकड़ी तथा क़ीमती पत्थरों का व्यापार राजा के लिए राज के कारकुनों-द्वारा ही होता था, इसलिए स्वतन्त्र व्यापारी भी सब माल राजा से ही ख़रीदने के लिए बाध्य थे।

चार साल बाद मेजर फ़ेयर पुनः माण्डले पधारे।

उन्होंने संधि के अनुसार सरहदी चुंगी के कम किये जाने तथा व्यापार पर राजकीय एकाधिपत्य के बजाय व्यापार को उन्मुक्त तथा स्वतन्त्र किये जाने की माँग पेश की। परन्तु वे अपने प्रयत्न में सफल न हुए।

इसी साल सन् १८६६ में माण्डले के राजकुल में विप्लव हो गया। राजपुत्रों ने अपने चचा (इन-शे-मिन = राजा के छोटे भाई) जो राज्य के उत्तराधिकारी थे, मरवा डाला। इसके जवाब में चचा के पुत्र ने अपने चचेरे भाइयों के ख़िलाफ़ विद्रोह का झण्डा खड़ा किया, परन्तु वह बन्दी कर लिया गया और अन्त में मरवा डाला गया।

१८६७ में चीफ़ कमिश्नर फ़िशे साहब एक नई सन्धि करने के लिए माण्डले आये। सरहदी चुंगी की दर ५ प्रतिसैकड़ा स्थिर हुई, ब्रिटिश रेज़ीडेंट के माण्डले में रहना और उसका ख़र्च देना भी स्वीकार किया गया। सोना-चाँदी की रफ़्तनी में व्यापारिक स्वतन्त्रता का नियम लागू किया गया। राजकीय एकाधिपत्य केवल मिट्टी के तेल, सागौन तथा क़ीमती पत्थरों तक सीमित किया गया। बर्मा-सरकार चीफ़ कमिश्नर की अनुमति से युद्ध का सामान ब्रिटिश सरकार के राज्य की हद से ख़रीदा करे, इस पर बल दिया गया। चीन के साथ व्यापार जारी करने के लिए चीनी-बर्मी मार्ग के तैयार किये जाने के साथ ही भिन्न भिन्न राजनैतिक क़ैदियों को मुक्त करना भी इस सन्धि के द्वारा तय हुआ।

इसके उपरान्त सन् १८७१ में चीफ़ कमिश्नर सर ऐश्ले इडन ने राजकीय एकाधिपत्य को पूर्ण रूप से उठा लेने की माँग पेश की। उनके कथनानुसार इसी अड़चन से सन् १८६२ तथा सन् १८६७ की व्यापारिक सन्धियाँ व्यर्थ सिद्ध होती रहीं। इधर राजा भी बेहद सामान इकट्ठा हो जाने से भारी घाटा सह रहा था। उसने व्यापारीय एकाधिपत्य को उठा लेना स्वीकार कर लिया। परन्तु कहा जाता है कि बाद में मौक़े बे-मौक़े इसका दुरुपयोग भी होता रहा। ६ साल बाद यह प्रश्न ब्रिटिश कर्मचारियों-द्वारा फिर उठाया गया और पुनः सन्धिपत्र में परिवर्तन करने पर ज़ोर डाला गया।

सन् १८७२ में इँग्लैंड की महारानी विक्टोरिया, वहाँ के प्रधान मन्त्री तथा भारत के वायसराय के द्वारा बर्मा-दरबार को ३ पत्र प्रेषित किये गये। इधर बर्मा-मिशन भी
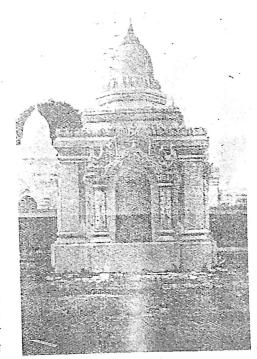
[मिन्डोंमिन-द्वारा निर्मित कुतोडा मन्दिरमाला के सैकड़ों मन्दिरों में से एक का दृश्य।]

ब्रिटेन के दरबार में उपस्थित होने को रवाना हो चुका था। यह मिशन इटली तथा फ़्रांस के दरबारों में भी पहुँचा।

सन् १८७८ में राजा मिन्डोंमिन की मृत्यु के उपरान्त उसके लगभग ६ दर्जन पुत्रों में से मंत्रियों और मँझली रानी के बीच कुछ गुप्त मंत्रणा हो जाने पर राजपुत्र थीबा-मिन गद्दी पर बिठाये गये। शेष पुत्रों में से बहुत-से उपर्युक्त षड्यन्त्र के अनुसार क़त्ल करवा दिये गये। मँझली रानी की दूसरी पुत्री से जिसका थीबामिन से प्रेम था, विवाह कर दिया गया। इन्हीं दिनों कर्नल ब्रिन्डम बैलून से माण्डले में उतरे। कहा जाता है कि उनकी आवभगत करने के स्थान में उनके साथ उपेक्षा-पूर्ण व्यवहार किया गया।
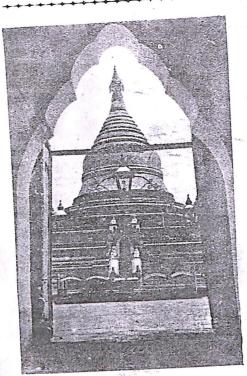
[महालोक माया ज़ें व-कुतोडा पगोडा ग्रूप का मुख्य केन्द्रीय मन्दिर।]

इसके साथ ही इरावती-फ़्लोटिला-कम्पनी के कप्तान डायल को सिर्फ़ इस जुर्म में बन्द कर रक्खा गया कि वे नदी-तीर के मनाही किये हुए एक राजकीय धार्मिक स्थान पर जूतों-समेत जा उतरे थे। राजा ने डायल को क़ैद रखनेवाले अफ़सर को नौकरी से निकाल दिया। कर्नल विन्डम के बारे में रेज़ीडेंट मिस्टर शा ने कोई विशेष माँग नहीं पेश की, परन्तु राजकुमारों के क़त्ले-आम के बारे में जवाब माँगा तथा इस घटना के विरोधस्वरूप सन् १८७९ में ब्रिटिश मिशन माण्डले से बुला लिया गया।

सन् १८८० में राजकुमार न्याँऊ ओ ने थाटम्यो-ज़िले में विद्रोह खड़ा किया, जहाँ से भागकर वह ब्रिटिश प्रदेश में आ छिपा। यहाँ वह पकड़ा गया और कलकत्ते पहुँचा दिया गया, जहाँ से वह फिर भाग निकला। चार वर्ष बाद राजकुमार म्यिंगुन जो बनारस में रक्खा गया था, भाग निकला। चन्द्रनगर होता हुआ वह कोलम्बो जा पहुँचा, जहाँ से पांडिचेरी पहुँचने पर वह बन्दी कर लिया गया। वहाँ उसने कुछ शान राजों से मिलकर फिर षड्यन्त्र प्रारम्भ किया, परन्तु फ्रेंच सरकार ने जो ब्रिटिश मिशन के माण्डले छोड़ देने के बाद बड़ी सतर्कता से राज्य की स्थिरता सम्पन्न करने तथा राजा से व्यापारिक सुभीते प्राप्त करने की इच्छुक थी, इन षड्यन्त्रों को दबा देने में ही अपना लाभ समझा। इसके साथ ही उसका यह भी विचार था कि इनके बन्द हो जाने से बर्मा में ब्रिटिश प्रभुत्व का न्यून होना अवश्यम्भावी है।

राजकुमार न्याँऊ ओ की चढ़ाई के बदले में बर्मा-सरकार ने अँगरेज़-सरकार से ५५८००) हर्जाना माँगा। इसके साथ ही राजकुमार के लौटा देने की भी माँग पेश की, जिसे ब्रिटिश सरकार ने अन्तर्राष्ट्रीय नीति के अनुसार वापस करने से इनकार कर दिया। इसी सिलसिले में पुरानी व्यापार-सन्धियाँ स्वयं भंग हो गईं और राजा ने भी पुनः स्वायत्त व्यापार-नीति का अवलंबन किया, जिससे ब्रिटिश व्यापार का चलना एकदम असम्भव हो गया। इसी समय कुछ राजव्यवस्था तथा कुछ कर्मचारियों की निर्बलता के कारण राज्य सुनियमित न रह सका, डाकुओं के गिरोह बढ़ने लगे तथा शान सामन्तों ने भी यत्र-तत्र सिर उठाना प्रारम्भ कर दिया। ब्रिटिश भारत तथा बर्मा की सरहदों में भी लूट-मार बढ़ने लगी। इसके साथ ही बर्मा-मिशन ने योरप में दो योरपीय राष्ट्रों से जो नई सन्धियाँ कीं उनसे परिस्थिति सुलझाने के बजाय अधिक बिगड़ गई। सन् १८८२ में शिमला-बर्मा के बीच नई सन्धि का प्रयत्न भी असफल ही सिद्ध हुआ, क्योंकि राजमंत्री किनवुन मिंजी के द्वारा लिखी गई सन्धि को राजा ने स्वीकार करना उचित न समझा।

सन् १८८४ में एक भयंकर घटना घटी। कुछ राज-कर्मचारियों को राजकुमार म्यिंगुन को गद्दी पर बिठाने के षड्यन्त्र के सिलसिले में क़ैद की सज़ा दी गई। दूसरे अधिकारियों ने जो षड्यन्त्र में स्वयं शामिल थे, बन्दी हुए अधिकारियों-द्वारा षड्यन्त्र के प्रकट हो जाने के डर से उन्हें वध करा देना चाहा। उन्होंने कुछ बन्दियों की

[कुतोडा पगोडा के केन्द्रीय विशाल मन्दिर के सोपान पर बने नक्त-मीनावतार की भीमकाय प्लास्तर-मूर्ति।]

रिहाई का प्रबन्ध किया, पर जब वे जेल से इस प्रकार निकल रहे थे, उन्होंने जेल में फ़साद होने का अलार्म बजा दिया और पहले उन्हीं सबों का काम तमाम करवा दिया। अन्त में फ़ौजों ने आकर तो समूचे जेल को ही आग लगा दी। इसी तरह शहर में क़रीब सभी जेलों में फ़साद हुआ, जिसमें ३०० के लगभग क़ैदी मारे गये। षड्यन्त्रकारियों की लाशें तीन दिन तक जहाँ की तहाँ पड़ी रहीं। बाद में उनके नरमुण्डों का नगर में प्रदर्शन किया गया, जिससे लोगों को षड्यन्त्र रचने का साहस न हो।

यह घटना अभी सबके दिलों में ताज़ी ही थी कि ब्रिटिश सरकार को यह समाचार प्राप्त हुआ कि माण्डले में बर्मा और फ्रेंच की सरकारों के बीच एक सन्धि हुई है जो अन्तिम स्वीकृति के लिए पेरिस भेज दी गई है। उस सन्धि में यह मंज़ूर किया गया है कि फ्रेंच सरकार के ख़र्चे से एक रेलवे लाइन माण्डले से टौं किंग तक बनाया जाय, एक फ्रेंच बैंक क़ायम किया जाय जो राजा को १२% प्रतिसैकड़ा की दर से इस काम को चलाने के लिए क़र्ज़ दे। लाल की खानों का प्रबन्ध तथा चाय के व्यापार पर फ्रेंच एकाधिपत्य का होना भी सन्धि में है; साथ ही उपर्युक्त रेलवे के क़र्ज़ के ब्याज की वसूली के लिए नदी का आयात-निर्यात का कर तथा मिट्टी के तेल का मुनाफ़ा फ्रेंच-सरकार को दिया जाना तय हुआ है।

इन्हीं दिनों ब्रिटिश सरकार ने बॉम्बे बर्मा ट्रेडिङ्ग कारपोरेशन के पुराने सवाल को फिर उठाया। उत्तर में बर्मा-सरकार ने सागौन की लकड़ी का निर्यात-कर जो २३ लाख से ऊपर था, कारपोरेशन से माँगा तथा व्यापारिक सन्धि की कुछ शर्तों को भंग करने के लिए क्षति-पूर्ति की भी माँग पेश की। चीफ़ कमिश्नर सर चार्ल्स बर्नार्ड ने बॉम्बे बर्मा ट्रेडिङ्ग कारपोरेशन के मामले को स्वतन्त्र न्यायालय के सिपुर्द करने की माँग पेश की, परन्तु कहा जाता है कि बर्मा-दरबार ने इसे स्वीकृत करना उचित न समझा। इसलिए भारत के वायसराय लार्ड डफ़रिन की आज्ञा से एक अन्तिम चेतावनी २२ आक्टोबर सन् १८८५ को स्पेशल जहाज़-द्वारा माण्डले भेजी गई, जिसमें तीन सप्ताह के भीतर उसका जवाब माँगा गया। उसकी ख़ास आज्ञायें इस प्रकार थीं—(१) गवर्नर-जनरल-द्वारा भेजा गया प्रतिनिधि माण्डले-दरबार स्वीकार करे और बॉम्बे बर्मा कम्पनी के झगड़े का उसकी सहायता से फ़ैसला करे। (२) कारपोरेशन के ख़िलाफ़ सब राजकीय कार्यवाही उसके पहुँचने तक मुलतवी की जाय। (३) वायसराय की ओर से ख़ास शर्तों पर एक राजदूत माण्डले में रक्खा जाय। (४) भविष्य में बर्मा-सरकार की वैदेशिक नीति तथा अन्य वैदेशिक सम्बन्ध भारत-सरकार के नियन्त्रण तथा निगरानी में हुआ करे। किनवुन मिंजी ने जो मुख्य अमात्यों में से एक थे, इन शर्तों को बिना ननु-नच किये स्वीकार करने की सलाह दी, परन्तु टेन्डा मिंजी आदि दूसरे मन्त्रियों ने उसे स्वीकार करने से इनकार किया। परिणाम-स्वरूप राजा ने

[राजा मिन्डोंमिन-द्वारा बनवाया गया कुतोडा पगोडा ग्रूप (कुशलक्षेमाय मन्दिर-माला)—मांडले, इसमें ७५० के लगभग श्वेत प्रस्तर की शिलाओं पर सम्पूर्ण त्रिपिटक लिखकर एक एक मन्दिर में प्रतिष्ठापित किया गया है।]

उन शर्तों के विरुद्ध अपनी घोषणा प्रकाशित कर दी, साथ ही अँगरेज़ लोगों को बर्मा से निकाल देने की धमकी भी दी।

इस अवसर को उपयुक्त जानकर ब्रिटिश सरकार ने जो अल्टीमेटम की शर्तों के राजा-द्वारा अस्वीकृत होने की प्रतीक्षा में ही बैठी थी, १४ नवम्बर सन् १८८५ को राजा का उत्तर पहुँचने के केवल पाँच दिन बाद ही इरावदी नामक गनबोट (लड़ाकू जहाज़) के द्वारा सरहद को पार करके सेनाओं को आगे बढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। १६ नवम्बर को [illegible] की दीवार पार करके १७ नवम्बर को मिन्हला के क़िले पर क़ब्ज़ा किया गया। २३ नवम्बर को बिना किसी विरोध के पगान शहर हस्तगत कर लिया गया। २५ नवम्बर को थोड़ी-बहुत गोलाबारी के बाद मिनजान क़ब्ज़े में किया गया। ब्रिटिश सेना की इस गति को देखकर एक राजदूत २६ नवम्बर को शान्ति का प्रस्ताव लेकर उपस्थित हुआ। सेना-संचालक जनरल प्रेन्डरगास्ट ने उत्तर में कहला भेजा कि यदि राजा थीबा अपनी सेना-समेत सुबह ४ बजे से पूर्व आत्म-समर्पण करने को तैयार हो तो युद्ध बन्द कर दिया जायगा। परन्तु राजा के उत्तर की प्रतीक्षा न करके सेना को आगे बढ़ाना जारी रक्खा
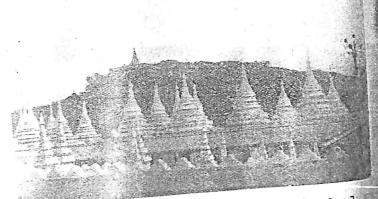
[माण्डले शैल तथा उसकी तराई में निर्मित कुतोडा माला के बौद्ध-मन्दिर।]

गया और २७ नवम्बर को सेना पुरानी राजधानी आवा में जा पहुँची। इसी दिन पुनः विश्वास के चिह्न-रूप में राजा की ओर से एक और समाचार भेजा गया, जिसमें ब्रिटिश सेनाओं से विरोध न किये जाने तथा इस शान्ति-चर्चा के सबूत में बर्मा-सेनाओं का शस्त्र-त्याग करने का वचन दिया गया था। परन्तु उपर्युक्त घटनाओं के बावजूद सेना बढ़कर २८ नवम्बर को माण्डले जा पहुँची और कहा जाता है कि अगले दिन सायंकाल के समय राजा को विरोध प्रस्तुत किये बिना आत्मसमर्पण करना पड़ा, जिसके फलस्वरूप न केवल उसे अपितु समस्त राजपरिवार तथा बर्मा-देशवासियों को देशीय शासन के महान् लाभों से वञ्चित होना पड़ा। इधर बर्मी सेनायें भी इस प्रकार राजा के अनायास ही पकड़ लिये जाने पर किंकर्तव्यविमूढ़ होकर स्वयं तितर-बितर हो गईं। इस प्रकार इस तीसरे ऐंग्लो-बर्मी युद्ध का अन्तिम भाग्य-निर्णय हुआ।

राजा थीबा ३ दिसम्बर को अपनी दो रानियों तथा राजमाता-समेत सदा के लिए माण्डले से विदा हो गये और १० दिसम्बर को एक बन्दी के रूप में रंगून से रवाना होते हुए सदा के लिए अपनी जन्मभूमि को भी छोड़ गये। पहले वे मदरास पहुँचाये गये, पीछे बम्बई के समुद्र-तटस्थ रत्नागिरि, जहाँ वे सन् १९१७ में एक निर्वासित के रूप में परलोक को प्राप्त हुए। उनके मंत्री टेन्डाव् मिंजी ब्रिटिश हितों के विरोधी कटक में निर्वासित किये गये। पहली जनवरी १८८६ को भारत-सरकार की घोषणा-द्वारा अपर बर्मा का समस्त प्रदेश ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत कर लिया गया। इस प्रकार सारा बर्मा अँगरेज़-सरकार के अधीन हो गया।

मधुमास

लेखक, श्रीयुत गंगाप्रसाद पाण्डेय

देख प्रिय मधुमास आया छा रहा उल्लास वन में।
मिलन का सन्देश मृदुतर
चल पवन जग को सुनाता
पुलक पल्लव लहलहाते
प्रीति का पल गीत गाता
आज निज अंचल प्रकृति ने
हरित पट का है बनाया
लाल केसर के मनोहर
तार से जिसको सजाया
है मचलता स्निग्ध सुन्दर हास कलिका में सुमन में।
साध जीवन की सहज ही
कोकिला कर पूर्ण पाई
भृङ्ग-दल के संग मिलकर
भाग्य को देती बधाई
सुरभि-भीनी से भरा जग
स्वर्ग-सा अब बन गया है
चेतना जड़ में छहरती
सुख-सना क्षण क्षण नया है
व्याप्त है सुषमा सुनहली सलिल में स्थल में गगन में।

प्रियतमायें स्नेह स्वागत में
सजल पलकें बिछातीं
कर रहीं अभिसार नव-नव
वेश सुन्दरियाँ बनातीं
विश्व-जीवन सरस-सर में
प्राण पंकज-सा खिला है
प्रणय का संसार को
साकार सा वर आ मिला है
छिड़ रही नव रागिनी है पर्णिका, गृह में भवन में।

मैं बना पर चिर वियोगी
प्यार का अभिशाप लेकर
मौन वाणी स्तब्ध लोचन
अश्रु-जल का अर्घ्य देकर
हूँ प्रतीक्षा में युगों से
कर रहा आह्वान तेरा
हे उषे! उठकर क्षितिज से
आज रख ले मान मेरा
तिमिर चारों ओर फैला हृदय में मन में नयन में।

कलयुग नहीं करयुग है यह !

लेखक, श्रीयुत सुदर्शन

श्री सुदर्शन जी हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कहानी-लेखक हैं। उनकी यह कहानी पञ्जाब की एक सच्ची घटना पर आश्रित है जो समाचारपत्रों के पाठकों को अभी भूली न होगी।

(१)

लाला सुरजनमल थके हुए अपने ड्राइंग-रूम में आये और सोफ़े पर बैठकर सुस्ताने लगे। हुक़्क़ा पीते जाते थे और सामने दीवार के साथ टँगी हुई अपनी बेटी उषा की तसवीर देखते जाते थे। उसे देखकर उनके मन में आनन्द की एक लहर-सी उठती हुई मालूम हुई। मगर इसके साथ ही यह भी मालूम हुआ, जैसे उस लहर के ऊपर एक काली-सी घटा भी छा रही है। ख़ुशी यह थी कि बेटी का व्याह हो रहा है, अपने घर जायगी। उन्होंने अपने कई अमीर मित्रों की पढ़ी-लिखी ख़ूबसूरत लड़कियों का व्याह साधारण लड़कों के साथ होते देखा था, और अफ़सोस की ठंडी आहें भरी थीं। उनके माता-पिता मानते थे कि वे वर उनकी पुत्रियों के योग्य नहीं, मगर कुछ कर न सकते थे। जवान लड़कियाँ घर में कब तक बिठा रक्खें? मगर लाला सुरजनमल ने गहरा हाथ मारा था। उन्होंने जो लड़का उषादेवी के लिए पसन्द किया था वह लड़का न था, हीरा था। स्वस्थ, सुन्दर, पढ़ा-लिखा, कुलीन। अभी अभी विलायत से लौटा था, और आते ही बाप की बदौलत अच्छे पद पर नियुक्त हो गया था। लाला सुरजनमल से और लड़के के बाप से पुरानी मैत्री थी, वर्ना ऐसे वर कहाँ मिलते हैं? जो सुनता था, कहता था, साहब! आपकी बेटी के सितारे बड़े ज़बर्दस्त हैं, जो ऐसा वर मिल गया। उसमें गुण सभी हैं, अवगुण एक भी नहीं। लड़की जीवन भर राज करेगी। लाला सुरजनमल को सन्तोष था कि पढ़ा-लिखाकर लड़की की मिट्टी ख़राब नहीं की। मगर दुःख इस बात का था कि जुदाई की वेला आ गई। आज तक अपनी थी, आज पराई हो जायगी। आज तक घर का सारा स्याह-सफ़ेद उसी के हाथ सौंप रक्खा था। वह जो चाहती थी, करती थी, और जो कहती थी, होता था। किसी को उसके काम में हस्तक्षेप करने की हिम्मत न थी। एक बार मा ने बेटी की कोई बात टाल दी थी, इससे उसने रो-रोकर आँखें सुजा ली थीं, और लाला सुरजनमल ने उसे बड़े यत्न से मनाया था। और आज—वह इस घर को सदा के लिए छोड़कर अपना नया घर बसाने जा रही थी! लाला सुरजनमल की आँखों में पिघला हुआ प्यार लहराने लगा। आज उनके घर से बेटी नहीं जा रही, उनके घर की शोभा और रौनक़ जा रही है, उनके आँगन की बहार और बरकत जा रही है, जिसको उन्होंने भगवान् से माँग माँग कर लिया है, जिसको उन्होंने स्नेह से सींचा है, जिस पर उन्होंने अपनी जान छिड़की है।

(२)

सहसा उनकी स्त्री जमना आकर उनके सामने खड़ी

हो गई और हाँफते हुए बोली—"दीनानाथ आपसे मिलने आया है।"

सुरजनमल ज़रा न समझे, कौन दीनानाथ। उन्होंने बेपरवाई से हुक़्क़े का धुआँ हवा में छोड़ा और पूछा—"कौन दीनानाथ?"

जमना ने पति की तरफ़ अचरज-भरी आँखों से देखा, और जवाब दिया—"अब यह भी पूछने की बात है। यह देख लीजिए।" यह कहते कहते उसने आगन्तुक के नाम का कार्ड पति के हाथ में दे दिया और स्वयं पास पड़ी हुई कुर्सी पर बैठ गई।

सुरजनमल ने कार्ड देखा, तो ज़रा चौंके, और हुक़्क़े की नली को हटाकर बोले—"इसका क्या मतलब? व्याह से पहले वह मेरे घर में कैसे आ सकता है?"

जमना ने भर्राई हुई आवाज़ में कहा—"क्या कहूँ, मुझे तो कुछ और ही सन्देह हो रहा है।"

लाला सुरजनमल उठकर खड़े हो गये और बाहर जाते जाते बोले—"तुम तो ज़रा ज़रा-सी बात में घबरा जाती हो। इतना भी नहीं समझतीं कि आज-कल के लड़के अपनी रीत-रस्में नहीं जानते। विलायत से आया है। समझता होगा, यहाँ भी वैसी ही आज़ादी है। मिलने के लिए चला आया। उसकी बला जाने कि यहाँ व्याह से पहले ससुराल में जाना बुरा माना जाता है।"

यह कहकर वे लपके हुए बाहर आये। दरवाज़े पर दीनानाथ खड़ा था। सुरजनमल को देखते ही उसने सिर से अँगरेज़ी टोपी उतारी और हाथ बाँध कर नमस्ते किया।

सुरजनमल ने नमस्ते का जवाब देकर अपना हाथ उसके कन्धे पर रक्खा और धीरे से कहा—"बेटा! क्या करूँ? समाज के नियम मुझे आज्ञा नहीं देते कि तुम्हें व्याह से पहले घर के अन्दर ले चलूँ, इसलिए मैं भी बाहर चला आया। कहो, कैसे आये। कोई विशेष बात तो नहीं?"

दीनानाथ ने जेब से रेशमी रूमाल निकालकर अपना मुँह पोंछा और जवाब दिया—"बात तो विशेष ही है, वर्ना मैं आपको कष्ट न देता। वैसे बात मामूली है। कम-से-कम मैं उसे मामूली ही समझता हूँ।"

सुरजनमल कुछ चिन्तित-से हो गये—"तो भई! जल्दी कह डालो। मुझे उलझन होती है।"

दीनानाथ कुछ देर चुपचाप खड़ा सोचता रहा कि ये तो बिलकुल सड़े हुए ख़याल के आदमी निकले। वर्ना इतना भी क्या था कि मुझे घर के अन्दर ले जाते हुए भी डरते। जैसे इस समय मैं बाबू हूँ, दो घड़ी के बाद आदमी बन जाऊँगा। दुनिया सैकड़ों और हज़ारों कोस आगे निकल गई है, ये महात्मा अभी तक वहीं पड़े करवटें बदल रहे हैं। वह समझता था, ससुर बड़ा आदमी है, हज़ार रुपया वेतन पाता है, अँगरेज़ी लिबास पहनता है, साहब लोगों से मिलता-जुलता है, ज़रूर स्वतंत्र विचारों का आदमी होगा। मगर यहाँ आया तब एक ही बात ने सारी आशा तह करके रख दी। दीनानाथ जो कहना चाहता था वह गले में अटकता हुआ, ज़बान पर रुकता हुआ, होंठों पर जमता हुआ मालूम हुआ।

सुरजनमल ने फिर कहा—"मालूम होता है, कोई ऐसी बात है जिसे कहते हुए भी हिचकिचाते हो। मगर जब यहाँ तक चले आये हो तब अब कह भी डालो। तुम संकोच करते हो, मेरे मन में हौल उठता है।

दीनानाथ ने रुक रुककर जवाब दिया—"मैं लड़की देखने आया हूँ।"

सुरजनमल के सिर पर मानो किसी ने कुल्हाड़ा मार दिया। दो मिनट तक तो उनके मुँह से बात ही न निकल सकी। वे दीवार से एक फ़ुट के फ़ासिले पर खड़े थे। यह सुनकर दीवार के साथ लग गये, मानो अब उनमें खड़े रहने का भी बल न था। मुँह पर हवाइयाँ ऐसे उड़ रही थीं, जैसे अभी भूमि पर गिर पड़ेंगे!

दीनानाथ ने घाव पर मरहम लगाते हुए कहा—"मैंने लड़की की बहुत प्रशंसा सुनी है। मेरी भाभी का कहना है कि ऐसी बहू हमारे कुल में आज तक नहीं आई। बाबू जी उसकी तारीफ़ करते नहीं थकते। मगर फिर भी आप जानते हैं, अपनी अपनी आँख है, अपनी अपनी पसन्द। कल को अगर न बने तो दोनों का जीवन नष्ट हो जाय। ऐसे दृष्टान्त हमारे शहर में सैकड़ों हैं। इधर लड़के अपने प्रारब्ध को रो रहे हैं, उधर लड़कियाँ अपने बाप के घर बैठी हैं। इसलिए मेरा तो ख़याल है कि आदमी पहले सोच ले, ताकि पीछे हाथ न मलना पड़े। और इसमें कोई हर्ज भी तो नहीं। हर्ज तब था, जब पर्दे की प्रथा थी। अब पर्दा कहाँ?"

सुरजनमल ने अपने बिखरे हुए साहस को जमा करके कहा—"तुम आज तक कहाँ सोये हुए थे ? अगर पहले कहते तो मुझे ज़रा भी आपत्ति न होती। उसी समय दिखा देता। मगर अब तो मुहूर्त भी नियत हो गया, बरात भी आ गई, सारा प्रबन्ध हो गया। इस समय तीन बजे हैं, आठ बजे ब्याह है। अब क्या हो सकता है ? मान लो, मैंने तुम्हें लड़की दिखा दी और तुमने उसे अस्वीकार कर दिया तो क्या ब्याह रुक जायगा ? तुम कहोगे, इसमें हर्ज ही क्या है। तुम्हारे लिए न होगा, हमारी तो नाक कट जायगी। इसलिए यह बचपन छोड़ो और चुपचाप जनवासे को लौट जाओ।"

मगर दीनानाथ पर इस बात का ज़रा भी प्रभाव न पड़ा, रुखाई से बोला—"मेरी राय में तो साधारण बात है।"

सुरजनमल—"तुम्हारी राय में होगी, मेरी राय में नहीं है।"

दीनानाथ—"एक बार फिर सोच लीजिए।"

सुरजनमल—"बेटा ! क्या बावलों की-सी बातें करते हो ? ज़रा अपने आपको मेरी स्थिति में रखकर देखो और फिर बताओ। अगर तुम्हारी बहन का ब्याह हो तो तुम क्या करो ?"

दीनानाथ—"मैं तो दिखा दूँ।"

सुरजनमल—"शायद इसका यह कारण हो कि मैं उस कालेज में नहीं पढ़ा, जहाँ तुम पढ़े हो। मुझे दुनिया का भी मुँह रखना पड़ता है।"

दीनानाथ—"तब बहुत अच्छा ! मैं भी आपको अंधकार में नहीं रखना चाहता। मैंने निश्चय कर लिया है कि चाहे इधर की दुनिया उधर हो जाय, मैं लड़की को देखे बिना ब्याह नहीं करूँगा।"

एकाएक ... देवी ... कुर्सी से उठकर खड़ी हो गई और बोली—"मुझे तुम पसन्द नहीं ..."

दीनानाथ ने जवाब दिया—"मुझे लड़की पसन्द है।"

सुरजनमल की आँखों के आगे अँधेरा छा गया। इस अँधेरे से बाहर निकलने का कोई रस्ता न था। सोचते थे, इस छोकरे ने बुरी जगह घेरा है। कोई दूसरा होता तो कान पकड़ कर बाहर निकाल देते, मगर आज—वे बेटी के कारण यह सुन रहे थे जो आज तक कभी नहीं सुना था। बेटे और बेटी में आज उन्हें पहली बार भेद दिखाई दिया। आज उनके आत्मसम्मान में अपने पाँव पर खड़े होने का बल न था। आज उनके सामने उनका अपमान खड़ा उन्हें ललकार रहा था।

एकाएक उन्हें एक रस्ता सूझ गया। बोले—"तो एक काम करो। तुम्हारे पिता जी मध्यस्थ रहें। वे जो कुछ कह देंगे, मुझे मंज़ूर होगा।"

मगर दीनानाथ ने भी विलायत का पानी पिया था, भाँप गया कि बुड्ढे बुड्ढे एक तरफ़ हो जायँगे, मेरा दाँव न चलेगा। उसने अपनी टोपी पर हाथ फेरते हुए कहा—

"इस मामले में मैं किसी को भी मध्यस्थ नहीं मानता।"

अब चारों ओर निराशा थी। डूबते ने तिनके का सहारा लिया था। वह तिनका भी टूट गया। अब क्या करें? इस समय अगर कोई उनका हृदय चीरकर देखता तो वहाँ उसे एक आवाज़ सुनाई देती—'भगवान् किसी को बेटी न दे।'

दम के दम में यह ख़बर घर के कोने कोने में फैल गई। ब्याह के दिन थे, दूर नज़दीक के सारे सम्बन्धी आये हुए थे। उनको एक शोशा मिल गया, चारों तरफ़ कानाफूसियाँ होने लगीं। धनियों के सगे-सम्बन्धी उनकी बदनामी से जितना ख़ुश होते हैं, उतना दुश्मन ख़ुश नहीं होते। किसी में मुँह से बोलने का साहस न था, मगर मन में सभी ख़ुश हो रहे थे कि चलो अच्छा हुआ! चार पैसे पाकर इसकी आँखों में चर्बी छा गई थी, अब होश ठिकाने आ जायँगे।

उधर उषादेवी शर्म से मरी जा रही थी, मगर कुछ कर न सकती थी। हिन्दू-घरों में क्वाँरी कन्या के लिए ऐसे मामलों में मुँह खोलना पाप से कम नहीं। देखती थी कि मेरे कारण बाप का सिर नीचे झुका जा रहा है, पर दम न मार सकती थी। दिल ही दिल में कुढ़ती थी और चुपके चुपके रोती थी। इतने में उसकी मा जमना ने आकर भरे हुए स्वर में कहा—"तुझे तेरा बाप बुला रहा है।"

उषादेवी ने मा से कोई सवाल न किया और आँसू पोंछकर बाप के ड्राइङ्गरूम की तरफ़ चली। ड्राइङ्गरूम के दरवाज़े पर उसके पाँव ज़रा रुके। मगर दूसरे क्षण में उसने अपना मन दृढ़ कर लिया और अन्दर चली गई। वहाँ उसके बाप के अतिरिक्त एक और साहब भी बैठे थे। उषादेवी ने उसकी तरफ़ आँख उठाकर भी न देखा और बाप के पास जाकर खड़ी हो गई।

सुरजनमल ने कहा—"बेटी! बैठ जाओ। अपने ही आदमी हैं।"

उषादेवी ने सिर न उठाया और एक कुर्सी पर बैठ गई; मगर इस हाल में कि उसे तन-बदन की सुध न थी। दीनानाथ ने देखा कि लड़की शक्ल-सूरत की बुरी नहीं है। और बुरी क्या, ख़ूबसूरत है। बल्कि ख़ूबसूरती के बारे में उसकी जो धारणा थी, उषादेवी उससे भी बढ़-चढ़कर थी। दीनानाथ कुछ देर उसकी तरफ़ देखता रहा; ठीक ऐसे ही, जैसे हम किसी वस्तु को ख़रीदने से पहले देखते हैं। इसके बाद धीरे से बोला—"आपने अँगरेज़ी भी पढ़ी है क्या?"

उषादेवी मूर्खा न थी, सुनते ही समझ गई कि यही मेरा भावी पति है। मगर वह क्या करे? उसकी बात का क्या जवाब दे? मुँह में जीभ थी, जीभ में बोलने की शक्ति न थी। वह जिस तरह बैठी थी, उसी तरह बैठी रही, बल्कि ज़रा और भी दबक गई।

दीनानाथ ने सुरजनमल की तरफ़ देखा। सुरजनमल बोले—"बेटी! तुमसे पूछते हैं। जवाब दो।"

उषादेवी ने बड़े संकोच से और सिकुड़कर जवाब दिया—"पढ़ी है।"

दीनानाथ ने इधर-उधर देखा और लपककर मेज़ से उस तारीख़ का अख़बार उठा लिया। इसके बाद उषादेवी के पास जाकर बोला—"ज़रा पढ़ो तो"। यह कहकर उसने अख़बार उषादेवी के हाथ में दे दिया, और एक नोट की तरफ़ इशारा करके स्वयं पतलून की जेब में हाथ डालकर कुर्सी के पीछे खड़ा हो गया।

उषादेवी ने थोड़ी देर के लिए सोचा, और इसके बाद सारा नोट फ़र फ़र पढ़कर सुना दिया।

दीनानाथ की आँखें चमकने लगीं। उसकी अपनी बहन भी अँगरेज़ी पढ़ती थी, मगर उसमें तो यह प्रवाह न था। चार शब्द पढ़ती थी और रुकती थी, फिर ज़ोर लगाती थी और फिर रुक जाती थी, जैसे बैलगाड़ी दलदल से निकलने का यत्न कर रही हो। और फिर उसका उच्चारण कितना भद्दा था! मगर उषा इस पानी की मछली थी। ऐसा मालूम होता था, जैसे यह उसकी मातृ-भाषा है। दीनानाथ सन्तुष्ट हो गया और सुरजनमल की तरफ़ देखकर बोला—"इनका उच्चारण बड़ा साफ़ है! किससे पढ़ती रही हैं?"

सुरजनमल—"एक योरपीय औरत मिल गई थी।"

दीनानाथ—"बस बस बस!! अगर किसी हिन्दुस्तानी से पढ़तीं तो यह बात कभी न पैदा होती। इनका उच्चारण बिलकुल अँगरेज़ों का-सा है। इन्हें पर्दे में बिठाकर कहिए, बोलें। बाहर कोई अँगरेज़ खड़ा हो। साफ़ धोखा खा जायगा। उसे ज़रा सन्देह न होगा कि कोई हिन्दुस्तानी लड़की बोल रही है।"

सुरजनमल पर नशा-सा छा गया। समझे, परीक्षा समाप्त हो गई। इतने में दीनानाथ ने दूसरा सवाल कर दिया—"इन्होंने कुछ गाना भी सीखा है?"

सुरजनमल—"जी हाँ।"

दीनानाथ—"तो कहिए, कुछ सुना दें।"

सुरजनमल का ख़ून खौलने लगा, मगर कुछ कर न सकते थे। क्रोध को अन्दर ही अन्दर पी गये और ठंडी आह भरकर बेटी से बोले—"कुछ सुना दो।"

और दूसरे क्षण में उषा की अँगुलियाँ बाजा बजा रही थीं, उसकी तानें कमरे में गूँज रही थीं और दीनानाथ ख़ुशी और अचरज से झूम रहा था। मगर सुरजनमल आन्तरिक वेदना से मरे जा रहे थे, बाहर उनकी मेहमान स्त्रियाँ उनकी निर्लज्जता पर ख़ुश हो होकर अफ़सोस कर रही थीं और कलजुग को गालियाँ दे रही थीं।

संगीत की समाप्ति पर दीनानाथ ने सिगरेट-केस से सिगरेट निकाला और उसे सुलगाने के लिए दियासलाई जलाते हुए बोला—"वान्डरफ़ुल (आश्चर्यजनक)!"

सुरजनमल ने उपेक्षा-भाव से कहा—"कोई और बात पूछनी हो तो वह भी पूछ लो।"

उषादेवी का मुँह लाज से लाल हो गया और कान जलने लगे।

दीनानाथ ने सिगरेट सुलगाकर दियासलाई को हाथ के झटके से बुझाते हुए जवाब दिया—"और कोई बात नहीं। मुझे लड़की पसन्द है।"

सुरजनमल की जान में जान आई।

(३)

एकाएक उषादेवी अपनी कुर्सी से उठकर खड़ी हो गई और दीनानाथ की तरफ़ देखकर धीरे से मगर निश्चयात्मक स्वर में बोली—"मगर मुझे तुम पसन्द नहीं हो।"

दीनानाथ के लिए एक-एक शब्द बन्दूक़ की एक-एक गोली से कम न था। मुँह का सिगरेट मुँह में ही रह गया। मगर पूर्व इसके कि वह कुछ बोले या सुरजनमल कुछ कहें, उषा ने फिर से कहना शुरू कर दिया—

"अगर तुम लड़कों को यह अधिकार है कि ब्याह से पहले लड़की को देखो, उसकी परीक्षा करो और इसके बाद अपना फ़ैसला सुनाओ तो हम लड़कियों को भी यह अधिकार प्राप्त होना चाहिए कि तुम्हें देखें, तुम्हें परखें, और इसके बाद तुम्हें अपना फ़ैसला सुनायें। और मेरा फ़ैसला यह है कि मैं तुम्हारे साथ कदापि ब्याह नहीं कर सकती।"

सुरजनमल दीनानाथ को नीचा दिखाना चाहते थे, मगर उनमें यह साहस न था। उषादेवी के वीर-भाव को देखकर उनका हृदय-कमल खिल उठा। ब्याह न होगा तो क्या होगा, दुनिया क्या कहेगी और वे उसका क्या जवाब देंगे? इस समय इनमें एक बात भी उनके सामने न थी। उनके सामने केवल एक बात थी। जिसने मेरा अपमान किया है, मेरी बेटी ने उसके मुँह पर तमाचा मार दिया। इसने मेरा बदला ले लिया। यह भी क्या याद करेगा?

दीनानाथ पानी पानी हुआ जा रहा था। मगर चुप रहने से शर्म घटती न थी, बढ़ती थी। वह खिसियाना होकर बोला—"आपने तो मुझे परीक्षा के बिना ही फ़ेल कर दिया।"

उषादेवी ने और भी ज़ोर से कहा—"मुझे तुम्हारी परीक्षा करने की आवश्यकता ही क्या है? मैं इतना समझ गई हूँ कि मेरे और तुम्हारे विचार इस दुनिया में कभी न मिलेंगे। मैं सोलहों आने हिन्दुस्तानी हूँ, तुम सोलहों आने विदेशी हो। मैं ब्याह को आत्मिक सम्बन्ध मानती हूँ, जो मौत के बाद भी नहीं टूटता। तुम्हारे समीप मेरा सबसे बड़ा गुण ही यह है कि मेरा रंग साफ़ है और मेरे गले में लोच है। लेकिन कल को यदि मुझे चेचक निकल आये या किसी अन्य रोग से मेरा गला ख़राब हो जाय तो तुम्हारी आँखें मुझे देखना भी स्वीकार न करेंगी। तुम कहते हो, मैंने तुम्हारी परीक्षा नहीं की, मैं कहती हूँ, मैंने तुम्हें दो बातों से तोल लिया है। जिसकी पसन्द ऐसी ओछी और कच्ची बुनियादों पर खड़ी हो उसका क्या विश्वास? तुममें किताबी योग्यता होगी, मगर तुममें मनुष्यत्व नहीं है। मेरे बाबू जी आज से तुम्हारे भी सम्बन्धी थे। तुमने इसकी ज़रा परवा नहीं की। उनके दिल पर छुरियाँ चल रही थीं और तुम अपनी जीत पर फूले न समाते थे। तुम्हें केवल अपना ख़याल है। दूसरे का अपमान होता है तो हुआ करे। ज़रा सोचो, अगर यही सुलूक मैं तुम्हारे पिता जी के साथ करती तो तुम्हारा क्या हाल होता? आँखों से आग बरसने लगती, लहू

खौलने लगता, अजब नहीं मुझे घर से निकालने पर भी उतारू हो जाते। ऐसे स्वार्थी, अन्याय-प्रिय, तंग-दिल पुरुष के साथ जो स्त्री अपना जीवन बाँध ले उससे बड़ी अंधी कौन होगी ?"

यह कहते कहते उषा बाहर निकल गई।

दीनानाथ का ज़रा-सा मुँह निकल आया। सोचता था, क्या करूँ, क्या कहूँ। उषादेवी की न्याय-संगत और युक्ति-पूर्ण बातों का उसके पास कोई जवाब न था। चुप-चाप अपने पाँव की तरफ़ देखता था और अपनी अदूर-दर्शिता पर पछताता था। मगर अब पछताने से कुछ बनता न था। उधर सुरजनमल की आँखें जीत की रोशनी से जगमगा रही थीं। वे सोचते थे, ऐसे नालायक़ के साथ जितनी भी हो, कम है। अब बच्चा जी को शिक्षा मिल जायगी। वे दुनिया और दुनिया की ज़बान से बहुत डरते थे, मगर इस समय उन्हें इसका ज़रा भी भय न था। कुछ देर पहले दीनानाथ का रोष उनके लिए दैवी प्रकोप था, इस समय उन्हें उसकी ज़रा भी परवा न थी। आज उनके सामने आत्म-सम्मान और निर्भयता का नया रस्ता खुल गया था, आज उनकी दुनिया बदल गई थी, आज पुराने जुग ने नये जुग में आँखें खोल ली थीं।

सुरजनमल उठ कर धीरे-धीरे दीनानाथ के पास गये और मुँह बनाकर बोले—"मुझे बड़ा अफ़सोस है, मगर मैं कुछ कर नहीं सकता। जब लड़की ही न माने तो कोई क्या करे ?"

दीनानाथ की रही-सही आशा भी जाती रही। समझ गया, जो होना था, हो चुका। थोड़ी देर बाद जब वह बाहर निकला तब ज़मीन-आसमान घूम रहे थे, और दुनिया में कहीं भी प्रकाश न था।

(४)

मगर मा को बेटी की इस बेहयाई पर ज़हर चढ़ गया। रोती हुई उसके कमरे में जाकर बोली—"तूने मेरी नाक काट डाली। मैं कहीं मुँह दिखाने लायक़ नहीं रही। लड़के ने दो बातें पूछ लीं तो कौन-सा अन्धेर हो गया ? जवाब देती और चली आती। अब जब बरात लौट जायगी और घर-घर में हमारी बातें होने लगेंगी तब हमारे कुल का नाम रोशन हो जायगा! जिस लड़की की बरात लौट जाय उस लड़की का मर जाना भला।"

उषा दीवार के साथ लगी खड़ी थी, मगर कुछ बोलती न थी। चुपचाप मा की तरफ़ देखती थी और सिर झुकाकर रह जाती थी।

इतने में सुरजनमल ने आकर उषा को गले से लगा लिया और जमना की तरफ़ अग्नि-पूर्ण दृष्टि से देखकर बोले—"ख़बरदार! अगर मेरी बेटी से किसी ने कुछ कहा तो। इसने वही किया है, जो नये युग की वीर कन्याओं को करना चाहिए, और जो करने का हममें सामर्थ्य नहीं। मगर हम उसकी प्रशंसा भी न कर सकें तो यह डूब मरने की बात होगी। बाक़ी रह गया सवाल इसके ब्याह का। इसकी मुझे ज़रा भी चिन्ता नहीं। मेरी बेटी के लिए वर बहुत मिल जायँगे। अच्छे से अच्छा लड़का चुनूँगा।"

यह कहते कहते उन्होंने उषा का माथा चूम लिया।

अन्तर्गीत

(महाकवि शेक्सपियर की एक कविता)

अनुवादक, श्रीयुत 'द्विरेफ'

हटा ले अब ये चिर मृदु हास,
लिये थे विरति-शपथ के श्वास।
उषालोक सम चञ्चल चितवन,
नव प्रभात की प्रवंचना बन।

पर फिर मेरे प्रिय अन्तरतम,
ले आ ले आ।
अमर प्रेम के दिव्य कुसुम—
जो वृथा छिपे हैं,
वृथा छिपे हैं!

योरप के उपनिवेश

लेखक, श्रीयुत रामस्वरूप व्यास

योरप में युद्धाग्नि भड़कानेवाले कारणों में एक उसके उपनिवेशों का प्रश्न भी है। यदि यह प्रश्न हल न हुआ तो युद्ध अवश्यम्भावी है। इस लेख में लेखक महोदय ने इस प्रश्न पर अच्छा प्रकाश डाला है।

छली शताब्दी का इतिहास योरप के साम्राज्यवाद के प्रसार का इतिहास है। यों तो अमरीका का पता लगना और भारत का जल-मार्ग ढूँढ़ने का प्रयत्न ही इसका श्रीगणेश कहा जा सकता है, पर उस समय संसार के सब देश योरपवासियों के लिए खुले थे। उपनिवेशों के हथियाने की होड़ में सर्वप्रथम फ़ांस और इँग्लेंड का संघर्ष हुआ और फलस्वरूप आज संसार के नक़्शे का सबसे अधिक भाग लाल रँगा हुआ है। भारतवर्ष तथा अमरीका में दोनों जगह अँगरेज़ों की विजय हुई और तब से सबसे अधिक उपनिवेश इनके आधिपत्य में आ गये।

फ़ांस और इँग्लेंड के पदचिह्नों पर योरप के दूसरे राष्ट्रों ने चलना प्रारम्भ किया और अफ़्रीका को योरप की श्वेत जातियों ने टुकड़े टुकड़े कर आपस में बाँट लिया। उसमें इँग्लेंड और फ़ांस के अतिरिक्त जर्मनी, हालेंड, बेलजियम, पुर्तगाल इन सबके उपनिवेश थे और अब भी जर्मनी को छोड़कर सबके हैं।

गत महायुद्ध एक प्रकार से उसी साम्राज्य-प्राप्ति की प्रतियोगिता का फल कहा जा सकता है जो उस समय योरप की भिन्न भिन्न जातियों के बीच में चल रही थी। महायुद्ध के बाद भी यह उपनिवेश-सम्बन्धी समस्या सुलझ नहीं सकी, बरन उलटा अधिक भीषण हो गई। बारसेलीज़ की सन्धि की ११९वीं धारा के अनुसार जर्मनी को अपने सब विदेशी उपनिवेश मित्रराष्ट्रों के हवाले कर देने पड़े। और ये उपनिवेश मित्र-राष्ट्रों ने राष्ट्र-संघ की देख-रेख के नाम पर आपस में बाँट लिये। जर्मनी से उसके उपनिवेश ही नहीं छिन गये, बरन उस पर यह दोष भी लगाया गया कि जर्मन लोग उपनिवेशों का प्रबन्ध करने में अयोग्य प्रमाणित हुए हैं। इधर मित्र-राष्ट्रों में जापान और इटली भी थे जिनकी इच्छा दूसरे योरपीय राष्ट्रों की तरह उपनिवेश प्राप्त करने की थी। पर इन्हें कुछ नहीं के बराबर ही मिल सका। तब से ये दोनों राष्ट्र-संघ से अप्रसन्न-से ही रहे। परन्तु प्रारम्भ में इन्हें आशा थी कि शायद बाद में इनकी यह इच्छा पूरी कर इनके साथ न्याय हो और दूसरे साम्राज्यवादी देशों की तरह ये भी उपनिवेशों के अधिपति बन सकें। पर जब महायुद्ध के बाद कई वर्षों तक इन्हें कोई उपनिवेश न मिल सका तब फिर इन्होंने अपनी-सी करने की ठानी।

आधुनिक व्यापार, पूँजीवाद तथा यंत्रवाद के लिए उपनिवेश आवश्यक हैं। पूँजीवाद के प्रसार तथा यंत्रों से बनी हुई वस्तुओं को खपाने के लिए बाज़ार की आवश्यकता पड़ती है। बिना बाज़ार के यंत्रों से बनी हुई असंख्य वस्तुएँ किस प्रकार बिक सकेंगी और उन पूँजीपतियों को किस प्रकार लाभ होगा जिनकी पूँजी कारख़ानों में लगी है? साथ ही साथ इन कारख़ानों में सामान बनाने के लिए कच्चे माल की आवश्यकता भी होती है और यदि यह अपने साम्राज्य के किसी हिस्से से ही मिल सके तो सस्ता मिल सकेगा और साथ ही इसके मिलने न मिलने के बारे में कोई सन्देह भी न रहेगा।

जापान, जर्मनी तथा इटली, ये तीनों ही पूँजीपति, साम्राज्यवादी, औद्योगिक राष्ट्र हैं। इन तीनों को भी अपनी औद्योगिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए, पक्के माल की खपत के लिए, उपनिवेश चाहिए। पर अब तो न कोई दूसरा महाद्वीप ही बाँटने को बच रहा है और न संसार का कोई दूसरा भाग जो किसी योरपीय राष्ट्र के अधिकार या संरक्षण में न हो। हाँ, अबीसीनिया स्वतंत्र रह गया था, सो इटली ने उसे हथिया लिया। जापान मंचूरिया को जीतकर मंगोलिया को भी उसमें मिलाना चाहता है। और जर्मनी भी अपने उपनिवेश फिर से वापस माँग रहा है।

कच्चा माल दे सकना तथा तैयार माल के लिए बाज़ार

बन सकना ही अर्थशास्त्र की दृष्टि से उपनिवेशों का असली महत्त्व है। पर इनके अतिरिक्त ये इसलिए भी उपयोगी हो सकते हैं कि औद्योगिक राष्ट्र अपनी बढ़ती हुई जन-संख्या तथा बेकारों को वहाँ बसा सके। आर्थिक दृष्टि से भी यह प्रश्न कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। इस समय जापान के लिए यह जीवन-मरण का प्रश्न हो रहा है।

क्या इस दृष्टि-कोण से इटली का अबीसीनिया को विजय करने का प्रयत्न करना ठीक है? सबसे पहले अभी तक अबीसीनिया के खनिज धन का कुछ ठीक पता नहीं लग सका है। सिवा खेती से पैदा होनेवाले सामान के यह नहीं कहा जा सकता है कि अबीसीनिया कितना कच्चा माल दे सकेगा। किसी भी इटेलियन साम्राज्यवादी के लिए उस वस्तु का बताना कठिन होगा जिसे इटली अबीसीनिया की अपेक्षा दूसरी जगह थोड़े मूल्य पर न ख़रीद सकता हो। मुसोलिनी ने ४,००,००,००,००० लीरा लड़ाई के लिए रक्खा था। यदि मान भी लिया जाय कि इटली ने अबीसीनिया को इतना धन व्यय कर जीत लिया है तो क्या इटली का सैनिक ख़र्च इतने से ही समाप्त हो जायगा। एक दूसरे साम्राज्यवादी राष्ट्र फ़्रांस के अनुभव पर से देखा जाय तो यह ख़र्च बढ़ता ही जायगा। मोरक्को की विजय के बाद फ़्रांस का वहाँ का सैनिक ख़र्च १३,३०,००,००० फ़्रांक से बढ़कर ८८,६०,००,००० फ़्रांक हो गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि किसी उपनिवेश को जीत लेने के बाद भी उसके ऊपर उतना या उससे भी अधिक व्यय उसे अधिकार में रखने के लिए करना पड़ता है।

इतने व्यय के बाद इटली को उससे कितना व्यापारिक लाभ सम्भव है? एरीट्रीया और सोमालीलेंड से १९३२ में ५,६७,००,००० लीरा के माल का आयात हुआ था और उसी वर्ष संसार के भिन्न भिन्न देशों से सब आयात ८,३६,८०,००,००० का था। इस तरह यह इटली के सारे आयात का १-२ प्रतिशत हुआ। लिबिया के सिवा इटली इन दोनों उपनिवेशों को क़रीब उतना ही पक्का माल भेजता है, जितना उनसे पाता है।

यदि देखा जाय तो उपनिवेशों से व्यापारिक लाभ तथा पूँजी लगाने से जो इटली को लाभ होगा वह शायद कुछ ऐसा ही है। फ़्रांस को अपने उपनिवेशों में लगाये हुए धन के बदले दूसरे देशों में लगाये हुए धन की अपेक्षा बहुत कम नफ़ा मिलता है। अधिक से अधिक इटली को उपनिवेशों से सारे व्यापार पर ५ प्रतिशत से अधिक नफ़ा नहीं होने का, जो सारा व्यापार लगभग २०,००,००,००० लीरा वार्षिक का है। और इसके लिए इटली को प्रतिवर्ष ५०,००,००,०००* लीरा वहाँ के राज्य-प्रबन्ध में व्यय करना पड़ता है। इन बातों को ध्यान में रखते हुए इटली को अबीसीनिया पर अपना आधिपत्य जमा लेने से लाभ के बदले हानि की अधिक आशंका है।

इटली की बढ़ती हुई जन-संख्या के लिए अबीसीनिया बसने का उपयुक्त स्थान हो सकेगा, इसमें भी सन्देह है। अब तक एरीट्रीया और सोमालीलेंड में मिलाकर १०,००० से अधिक इटेलियन नहीं पहुँचे हैं। लिबिया में क़रीब ३०,००० इटेलियन हैं। एरीट्रीया के समान ही जलवायु अबीसीनिया का भी है, पर जब अभी इन्हीं में अधिक इटेलियन बस सकते हैं, वे अबीसीनिया में क्योंकर बस सकेंगे। यह भी स्पष्ट है कि इटली खुले बाज़ार में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है और उसकी अधिक जन-संख्या के लिए भी जिसे उसने जान कर बढ़ाया है, दक्षिण अमरीका तथा दूसरे देशों में अधिक उपयुक्त स्थान मिल सकता है।

इसलिए आर्थिक दृष्टि से तो अबीसीनिया के जीत लेने का कोई बड़ा महत्त्व नहीं है। हाँ, राजनैतिक दृष्टि से मुसोलिनी भले ही अपने सभ्यता-प्रचार के नाम पर साम्राज्यलिप्सा को ठीक समझता हो। कुछ लोगों का मत है कि इटली की आन्तरिक आर्थिक दशा पर से देशवासियों का ध्यान हटाने के लिए तथा अपनी शक्ति को डावाँडोल होते देखकर मुसोलिनी ने इस काम को शुरू किया।

अफ़्रीका में जर्मनी के उपनिवेश सब मिलाकर २३,०७,३०० वर्ग किलोमीटर थे और उनकी जन-संख्या लगभग १,१४,५७,००० थी। उस समय तो जर्मनी को सन्धि की शर्तों को मानकर इनसे हाथ धोना पड़ा, अब फिर उसने उपनिवेश वापस माँगना शुरू किया है।

* १९३५-३६ के बजट में यह ८८,२०,००,[illegible] लीरा है।

धीरे धीरे जर्मनी ने अपनी स्थिति पक्की कर ली है और पिछले चार-पाँच वर्षों के अन्दर तो हिटलर ने सबको यह दिखा दिया है कि वह किसी बात में दूसरे योरपीय राष्ट्र से पीछे न रहेगा। वह सब बातों में समानता का अधिकार माँगता है। पहले जर्मनी ने अपनी सेना को सुसंगठित करके वार्सेलीज़ की सन्धि की उस धारा को ठुकरा दिया जिसके द्वारा उस पर अधिक सेना और वायुयान रखने पर प्रतिबन्ध लगे हुए थे।

इटलीवालों की तरह जर्मन लोगों को भी अपनी आवश्यकता की पूर्त्ति के लिए उपनिवेश चाहिए। नाज़ी-पार्टी के प्रोग्राम में इसका तीसरा नम्बर है। इसके पहले प्रेसीडेंट हिंडनबर्ग ने भी कहा था—"बिना उपनिवेशों के कच्चे माल के मिलने की कोई पक्की बात नहीं हो सकती, बिना कच्चे माल के उद्योग-धन्धे नहीं चल सकते और उद्योग-धन्धों के बिना काम नहीं मिल सकता, इसलिए जर्मनी को उपनिवेशों की आवश्यकता है।"

इसके उत्तर में कुछ राष्ट्रों की तरफ़ से यह कहा गया था कि जर्मनी तथा और दूसरे बिना उपनिवेशवाले राष्ट्र मेंडेटरी देशों का कच्चा माल ले सकते हैं, जो इस समय राष्ट्र-संघ की देख-भाल में हैं। पर जर्मनी के नेता कहते हैं कि उन्हें जर्मनी के लिए कच्चा माल उसी देश से चाहिए जहाँ उसका सिक्का चलता हो। मेंडेटरी देशों के माल के लिए तो उसे विदेशी मुद्रा में मूल्य चुकाना होगा।

जर्मन राष्ट्र के अधिक लोगों को भी बाहर बसाने के सम्बन्ध में उनका कहना है कि वे फिर जर्मन-जाति से बिलकुल अलग हो जायँगे। इसके अतिरिक्त कुछ लोगों का विचार है कि उन उपनिवेशों में अधिक लोग नहीं बस सकते। पर जर्मनी के नेता कहते हैं कि उन राष्ट्रों के लिए भले ही उन उपनिवेशों का मूल्य न हो जिनके पास काफ़ी से ज़्यादा उपनिवेश हैं, पर जर्मनी के लिए तो वे उपनिवेश आवश्यक हैं और वे वहाँ लोगों को बसाकर उन्हें ख़ूब आबाद तथा रहने योग्य बनाने का प्रयत्न करेंगे। पर इससे भी अधिक महत्त्व की बात तो यह होगी कि उपनिवेश मिल जाने पर जर्मनी दूसरे राष्ट्रों के समान हो सकेगा। योरपीय राष्ट्रों में समानता का अधिकार प्राप्त करने के लिए जर्मनी बुरी तरह तुला हुआ है और सम्भवतः वह उसे प्राप्त करके ही छोड़ेगा, चाहे उसे इसके लिए कितना ही मूल्य क्यों न चुकाना पड़े।

यह प्रश्न धीरे धीरे अब इतना गम्भीर हो चला है कि उपनिवेश रखनेवाले साम्राज्यवादी राष्ट्र और प्रधानतः इँग्लेंड को इस समस्या के सुलझाने की फ़िक्र हो गई है। सितम्बर १९३५ की राष्ट्र-संघ की एसेम्बली की बैठक में सर सेम्युअल होर ने जो उस समय पर-राष्ट्र-सचिव थे, कहा था कि उन देशों को भी कच्चा माल लेने में सुविधा दी जाय जिनके पास उपनिवेश नहीं हैं। सच तो यह है कि उपनिवेशों की समस्या बड़ी विकट होती जा रही है। या तो इटली और जर्मनी को उपनिवेश दिये जायँ या फिर वे बल द्वारा रोके जायँ। पर यह इतना आसान नहीं है। ब्रिटेन को अपने फैले हुए उपनिवेशों की रक्षा करने में कठिनता मालूम होती है। डच-सरकार ने जावा के पहाड़ों में क़िले बनाये हैं, जिसमें हमले के समय उनमें जाकर अपनी रक्षा की जा सके। आस्ट्रेलिया के लोगों को भी अपनी कम जन-संख्या के कारण अपनी रक्षा की फ़िक्र पड़ी हुई है। पुर्तगाल के अफ़्रीकन उपनिवेश इस दशा में हैं कि यदि कोई हमला कर दे तो उनकी रक्षा करनी कठिन हो जाय और पुर्तगाल को इसमें सन्देह हो रहा है कि २७५ वर्ष पुरानी सन्धि के अनुसार इँग्लेंड उनकी रक्षा में उसकी सहायता कर भी सकेगा। बेलजियम की भी क़रीब क़रीब यही अवस्था है। केवल फ़्रांस को इस विषय में कोई भारी चिन्ता नहीं है। उसने अपने उपनिवेशों में अपनी सहायता के लिए अच्छी सेना तैयार कर ली है। ऐसी अवस्था में दो-तीन सैनिक राष्ट्रों का बिना उपनिवेशों के होना बड़ा भयानक हो सकता है।

यह प्रश्न का एक ही पहलू है। वे आदि-निवासी जो शुरू से इन देशों में बसते चले आये हैं और जिन्हें सभ्य बनाने का ठेका योरप की श्वेत जातियों ने लिया है, कब तक इस दशा में रहते चले जायँगे? मिस्र और लंका को एक प्रकार से स्वतन्त्रता मिल ही गई है और शायद भारत को भी औपनिवेशिक स्वराज्य मिल जाय। चीन अपनी निद्रा से जागकर संगठित होने का प्रयत्न कर रहा है। इसी प्रकार किसी दिन अफ़्रीकावासी भी अपनी स्वतंत्रता माँगेंगे। वे हमेशा श्वेत जातियों के ग़ुलाम बने रहना पसन्द नहीं करेंगे।

× × ×

चाहे उपनिवेशों का प्रश्न किसी प्रकार हल हो, समझौते से या युद्ध-द्वारा, इसका निकट भविष्य में सुलझना आवश्यक है। इसके सुलझने से अन्तर्राष्ट्रीय समस्या भी अवश्य कुछ न कुछ सुलझ जायगी। पर हमें इससे सम्बन्धित एक प्रश्न पर विचार करना पड़ेगा।

हमने देखा है कि इटली के लिए अबीसीनिया कोई बहुत बड़े आर्थिक महत्त्व का नहीं हो सकता और यही जर्मनी को उपनिवेशों की माँग के बारे में कहा जा सकता है। आर्थिक प्रश्न बिना पशुबल के भी हल हो सकते हैं। यहाँ तो हमें प्रधानतः इटली और जर्मनी की मनोवृत्ति का अवलोकन करना है। हिटलर और मुसोलिनी महायुद्ध के बाद की भयंकर परिस्थितियों से फ़ायदा उठा कर दो विशाल राष्ट्रों के कर्ता-धर्ता बन बैठे हैं। यह प्रधानतः उन्होंने लोगों के हृदय में भय का संचार कर तथा सैनिक वृत्ति का पोषण करके किया है। इसके साथ ही यह सम्भव नहीं कि किसी देश में सैनिक वृत्ति को ख़ूब पोसा जाय और उसमें से युद्ध के कारण न पैदा हों। डिक्टेटरों को अपने स्थान को दृढ़ रखने के लिए भी यह आवश्यक है कि वे देश के नौजवानों को 'कुछ' करने का मौक़ा दें। योरप में युद्ध की चुनौती एक-दूसरे राष्ट्र को देना आसान नहीं है। सभी राष्ट्र पूरी तैयारी किये बैठे हैं; इसलिए वहाँ मौक़ा देखकर छेड़-छाड़ करते हैं जहाँ दूसरा पक्ष अधिक निर्बल होता है। इटली-अबीसीनिया का युद्ध इस बात का जीता-जागता उदाहरण है।

फिर भी शायद समझौते-द्वारा फ़ैसला हो जाने से युद्ध की आग कुछ दिन और भड़कने से रुक जाय और नाहक़ बेचारे काले लोगों का जो इसमें गेहूँ के साथ घुन की तरह पिस जायँगे, ख़ून बहने से बच जाय। सम्भवतः इँग्लेंड इस विषय में कुछ न कुछ अवश्य करेगा, क्योंकि वह इस ख़तरे को अच्छी तरह समझे हुए है और इतने विशाल साम्राज्य को लिये हुए है। बिना किसी समझौते के वह सुख की नींद न सो सकेगा।

कवि के प्रति*

श्रीयुत श्रीमन्नारायण अग्रवाल, एम० ए०

कवि ! पागल तुम मधुशाला में,
मैं पागल तव पागलपन पर।

मतवाले हो मधुशाला की,
मस्तानी मदिरा में,
ध्यान नहीं जाता किंचित् भी,
दुखियों के क्रन्दन पर।

कवियों का मानस तो कोमल,
द्रवीभूत होता है,
किन्तु तुम्हारे उर में जागृत,
दया नहीं कवि ! पल भर।

सुरापान तो तुम्हें सुहावे,
चिर जीवो मतवाले !
हम तो मस्त इसी रोटी में,
श्रम मिस रक्त बहाकर।

* "रोटी का राग" जिसमें से यह कविता ली गई है, शीघ्र ही प्रकाशित होगा।
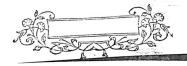
आत्म-चरित

लेखक, श्रीयुत कुँवर राजेन्द्रसिंह

कुँवर साहब की जो साहित्यिक लेख-माला 'सरस्वती' में छपती आई है उसका यह 'आत्म-चरित'-शीर्षक लेख अन्तिम लेख है। आशा है, आपका यह लेख भी पाठकों को रुचिकर प्रतीत होगा। इसमें आपने यह बताया है कि आत्म-चरित कैसे लिखना चाहिए तथा वह कितने महत्त्व की वस्तु है।

वन-चरित लिखना कोई मामूली कला नहीं है, और आत्म-चरित लिखना तो लोहे के चने चबाना है। आत्म-चरित के लिखने की प्रथा इँग्लेंड में १८ वीं शताब्दी के अन्त के कुछ पहले प्रारम्भ हुई थी। पहले दफ़े 'आटो-बायग्राफ़ी' (स्वलिखित जीवन-चरित) शब्द का प्रयोग अँगरेज़ी-भाषा में सन् १८०९ में हुआ था। इसके पहले ऐसे लेखों को 'जीवन-वृत्तान्त स्वयं लेखक-द्वारा लिखित', 'स्मरण-लेख', 'जीवन-चरित जिसे स्वयं चरित-नायक ने लिखा हो', 'स्वयं लिखित इतिहास' इत्यादि कहते थे। केवल १९वीं शताब्दी से यह माना गया कि इतिहास से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। आत्म-चरित के ढंग पर वहाँ सन् ७३१ में कुछ लिखा गया था, और फिर सन् १५७३ तक इस ओर कोई उद्योग नहीं हुआ।

आत्म-चरित के लिखने में हर क़दम पर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है और वे ऐसी कठिनाइयाँ नहीं हैं जिन पर आसानी से विजय प्राप्त हो सके। पहला प्रश्न तो लिखनेवाले के सामने यह होता है कि अपने विषय में क्या लिखे और क्या छोड़ दे। मनुष्य गुणों और अवगुणों का सम्मिश्रण है। यह असम्भव है कि किसी में कोई गुण न हो या किसी में कोई अवगुण न हो। यह बर्क का कथन है कि 'किसी की त्रुटियों के कारण उससे झगड़ा करना ईश्वर की शिल्पकला पर आक्षेप करना है।' स्टीवेंसन की भी एक कविता का ऐसा ही आशय है। उसने कहा है कि 'हम लोगों में जो बुरे से बुरे हैं उनमें भी इतनी अच्छाइयाँ हैं और जो हममें अच्छे से अच्छे हैं उनमें भी इतनी बुराइयाँ हैं कि हममें से किसी के लिए यह उचित नहीं है कि अन्य सभों के ख़िलाफ़ कहे।' यदि लिखनेवाला अपने गुणों का उल्लेख करे तो यह कहा जायगा कि आत्मप्रशंसा का गीत अलाप रहा है और यदि चुप हो जाय तो तुला एकांगी रहेगी और लेखन-कला दोष-युक्त होगी। जीवन-चरित का चाहे वह स्वलिखित हो या किसी दूसरे के द्वारा लिखा गया हो, मुख्य उद्देश यह है कि चरित-नायक अपने स्वाभाविक स्वरूप में पढ़ने-वालों के सामने आ जाय। यदि जीवन-चरित में केवल उसके गुणों का ही उल्लेख किया जायगा तो शायद ईश्वर को लोग भूल जायँगे और यदि उसी तरह गुणों को छिपा-कर केवल अवगुणों की ही सूची दे दी जायगी तो उसमें और शैतान में क्या फ़र्क़ रह जायगा।

दूसरी कठिनाई यह होती है कि आत्म-चरित में छोटी छोटी घटनाओं का उल्लेख छूट जाता है। यह नहीं है कि लेखक उन्हें नहीं लिखना चाहता है, किन्तु कारण यह होता है कि उसकी दृष्टि में उन घटनाओं का कोई महत्त्व नहीं होता। वास्तव में छोटी ही घटनाओं से चरित-नायक के असली स्वरूप के पहचानने में सहायता मिलती है, जैसे तिनका हवा के रुख़ को बतला देता है। किसी के भी जीवन में सब बड़ी ही घटनायें नहीं घटित होती हैं—छोटी और बड़ी घटनाओं के सम्मिलित समूह का ही नाम जीवन है। हाँ, इस पर अवश्य ध्यान रखना पड़ता है कि ऐसी बातें न लिखी जायँ जो मामूली से भी मामूली हों। वे बातें आत्म-चरित में स्थान पाने के योग्य नहीं हैं जिनमें स्वाभाविकता न हो। चरित-नायक की वैसी तसवीर होनी चाहिए जैसा वह है न कि जैसा आज-कल का फ़ोटो होता है कि सिर को तोड़-मरोड़ कर, ठुड्डी को आगे या पीछे दबाकर, एक अस्वाभाविक ढंग कर दिया जाता है। वह फ़ोटो किसी का असली फ़ोटो नहीं कहला सकता है। धोबिन दूती एक नायिका से कह रही है—"औचक ही हँसि आनन फेरि बड़े बड़े नयनन तानि निहार्‌यो।" इसे स्वाभाविकता कहते हैं। तभी तो निशाना पूरा बैठा। यदि जीवन-चरित लिखनेवाला स्वयं चरित-नायक है तो उसके कामों की स्वाभाविकता उसे नहीं प्रतीत होती है और यदि प्रतीत हुई तो स्वाभाविकता नहीं रह जाती। उपर्युक्त पद पर ध्यान देने से मालूम होता है कि औचक सिर घुमाकर देखने की स्वाभाविकता दूती को प्रतीत हुई और यदि नायिका ने यह सोचकर सिर घुमाया होता कि जो

इधर से जा रहा है उस पर सोचा हुआ प्रभाव पड़े तो स्वाभाविकता विदा हो गई होती। अगर उससे यह न कहा गया होता कि उसके औचक सिर घुमाकर देखने का किसी पर यह प्रभाव पड़ा तो उसे मालूम भी न होता कि क्या हुआ था।

यहीं कठिनाइयों का अन्त नहीं हो जाता है। इसका निर्णय करना क्या कोई सहज काम है कि जीवन की किन किन घटनाओं का किस तरह उल्लेख किया जाय। या तो यह हो जायगा कि "निज कवित्त केहि लाग न नीका, सरस होय अथवा अति फीका" या उन घटनाओं का ज़िक्र भी नहीं होगा जो दूसरों की दृष्टि में महत्त्वपूर्ण समझी जा सकती हैं। जीवन-चरित एक तरह का स्मरण-लेख है, परन्तु इस तरह का स्मरण-लेख नहीं है कि "मैं मेल-ट्रेन से घर वापस गया। गर्मी बहुत थी। पंखा और ख़स की टट्टी होने पर भी पसीना निकल रहा था और मैं घंटों चित पड़ा रहा।" यह क्या है? वास्तव में यह किसी भी दृष्टि से कुछ नहीं है। ऐसे स्मरण-लेखों के प्रकाशित होने से किसी का क्या लाभ हो सकता है—किसी और का लाभ तो दूर रहा अपना ही क्या लाभ हो सकता है? इस तरह के लेख का मूल्य उस काग़ज़ के मूल्य से भी कम होगा जिस पर यह लिखा गया होगा। प्रत्येक आत्म-चरित जो आत्म-चरित कहला सकता है, इतिहास का भी काम देता है। कम से कम यह तो पता चल ही जायगा कि अमुक व्यक्ति के सामने कैसे धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक प्रश्न उपस्थित थे और उन पर उसके क्या विचार थे। यदि उन विचारों पर लेखक ने कोई राय नहीं प्रकट की तो एक बहुत बड़ी कमी रह जायगी। समय बदल रहा है और स्वभावतः उसी के साथ दृष्टिकोण बदल रहा है। नहीं तो भारतवासियों को अपने सम्बन्ध में एक शब्द भी लिखना नहीं पसन्द था और उसी का कारण यह है कि हमारे साहित्य की यह शाखा अपूर्ण रह गई है जिसकी पूर्ति केवल आत्म-चरितों से ही हो सकती है।

अपने सम्बन्ध के कुछ ऐसे विषय हैं जो अपने लिखने से मनोरंजक नहीं होंगे, जैसे विवाह। यदि तुलसीदास जी की लेखनी महाराज रामचन्द्र के हाथ में होती तो शायद वे यह न लिख पाते कि "कंकण किंकिणि नूपुर धुनि सुनि, कहत लषण सों राम हृदय गुनि। मानहु मदन दुंदभी दीन्ही, मनसा विजय विश्व कह कीन्हीं।" उन देशों में जहाँ पर्दे की प्रथा नहीं है, वहाँ विवाह के पहलेवाले समय को आनन्द और विलास का समय मानते हैं। एक की मँगनी हुए बहुत दिन हो गये थे। मित्रों ने पूछा कि कहो, कब शादी होगी। उसने उत्तर दिया कि यही सोच रहा हूँ कि अभी तो यहाँ आकर दिल ख़ुश कर लेता हूँ और शादी हो जाने पर कहाँ जाया करूँगा। इन वाक्यों से वहाँ के समाज के संगठन पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। मायकेल फ़रेडी (बिजली के आविष्कारकर्ता) के एक जीवनचरित लिखनेवाले को यह बड़ा दुख रहा कि उसके हाथ वह मसाला न आया जिससे उनके वैवाहिक जीवन के पूर्ववाले समय के क़िस्से गढ़ने का मौक़ा मिलता। जिस जीवनचरित में ऐसे क़िस्सों या रोचक घटनाओं की कमी रहती है उसकी जनता में माँग नहीं होती है। शायद इसी वजह से एक अँगरेज़ लेखक ने लिखा है कि सत्यता से कहीं अधिक अर्द्धसत्यता मनोहारी होती है। अर्द्धसत्यता की चाट जिनमें होती है वही पुस्तकें आज-कल हाथोंहाथ बिकती हैं, और जिन पुस्तकों में हृदयगत भाव सच्चे और सीधी तरह से प्रकट कर दिये गये होते हैं वे पुस्तकें छापनेवालों की दृष्टि से अच्छी बिकनेवाली नहीं कहलाती हैं। कम से कम आत्मचरित लिखनेवालों को अपने पथ से नहीं हटना चाहिए, यद्यपि कुछ लोगों का यह मत है कि "वह न कहो जो तुम्हें कहना है, वरन वह कहो जो लोग सुनना पसन्द करते हों।"

इन सब कठिनाइयों के होते हुए भी मनुष्य को अपना आत्मचरित लिखना चाहिए। यदि इसके लिखने में सावधानी से काम लिया जाय तो लोगों का इससे बड़ा उपकार होता है—आँखें खुल जाती हैं। "पहले से सचेत हो जाना सशस्त्र हो जाना है," जैसा कि अँगरेज़ी में एक कहावत है। निज जीवन वृत्तान्त कहने में साहित्यिक कला की बड़ी आवश्यकता नहीं होती। यह तो बहुत अच्छा है ही कि साहित्य का भी स्वादु हो, परन्तु यदि न हो तो कुछ हर्ज भी नहीं है। किसी भी चीज़ पर वार्निश करने से उसका प्राकृतिक रंग जाता रहता है। यह प्रायः देखा गया है कि सीधे और सादे ढंग से कहा हुआ अनुभव अधिक प्रभावशाली होता है। बाज़ों का यह कहना है कि आत्मचरित मनोरंजक नहीं होते। बात यह है कि जैसा

जिसका दृष्टि-कोण होगा उसको उसी ढंग का साहित्य पसन्द होगा और उसी से उसका मनोरंजन होगा। 'मनोरंजन' उन शब्दों में से एक है जिसका अर्थ प्रत्येक मनुष्य अपने इच्छानुकूल समझता है। यदि एक चीज़ एक को मनोरंजक मालूम होती है तो उसी से दूसरे का कोई मनोरंजन नहीं होता। आत्मचरित का क्या दोष है? यह सम्भव है कि उसके लिखने में योग्यता से काम न लिया गया हो, महत्त्वपूर्ण घटनायें छूट गई हों, मामूली बातों का सविस्तर वर्णन हो गया हो, स्वाभाविकता का अभाव हो या चरितनायक उस रंग में रँगा दिखलाई दे जो उसका प्राकृतिक रंग न हो। नहीं तो आत्मचरितों से पढ़नेवालों का बड़ा मनोरंजन होता है। यह एक मसल मशहूर है कि जीवन एक नाटक है और इसकी सत्यता आत्मचरित पढ़ने से ही मालूम होती है। जीवन के नाटक में कल्पना की आवश्यकता नहीं होती—केवल आवश्यकता होती है सीधे-सादे वर्णन की, पर्दे ख़ुद उठते और गिरते जाते हैं। उन लोगों की भी संख्या कम नहीं है जिनका यह विचार है कि उन लोगों की अपेक्षा जो 'लक्ष्मी के पुत्र' कहलाते हैं, उनका जीवनचरित अधिक शिक्षाप्रद और मनोरंजक होता है जिन्हें दुनिया का मुक़ाबिला करना पड़ा है। अच्छे दिन बुराइयों को प्रकट कर देते हैं और बुरे दिन अच्छाइयों को। मनुष्य चाहे जैसा हो—चाहे लक्ष्मी का पुत्र हो या शत्रु हो, चाहे चरित्रवान् हो या महान् चरित्रभ्रष्ट हो, उसे अपना आत्मचरित अवश्य लिखना चाहिए। सम्भव है कि जिस अनादर की दृष्टि से वह आज देखा जा रहा है उस दृष्टि से वह कुछ समय के बाद न देखा जाय, यदि उसे अपने पक्ष में कुछ कहने का मौक़ा मिले। इन सब बातों के कहने का उचित स्थान आत्मचरित ही है। इसमें क्या यह सम्भव नहीं है कि यदि उनकी भी सुन ली जाती जिन पर दोषारोपण किये गये थे तो उनके विषय में हमारी राय में परिवर्तन हो जाता। निर्णय हम चाहे जो करते, पर वह निर्णय अधिक ठीक होता।

अब यह प्रश्न सामने आता है कि स्वलिखित जीवन-चरित का क्या ढंग हो। जैसे हर एक आदमी के बातें करने और अपने भावों को प्रकट करने का ढंग पृथक् होता है, वैसे ही आत्मचरित लिखने का भी होता है। उद्देश एक ही है और वह यह कि जो हम कहा चाहते हैं वह अच्छी तरह कह डालें। किसी लेखक का सर्वोत्तम गुण यह है कि वह ऐसी भाषा का प्रयोग करे कि सुनने या पढ़नेवालों के लिए यह असम्भव हो जाय कि वह सिवा उन अर्थों के कोई और अर्थ न लगा सकें जो लिखनेवाले या बोलनेवाले के हैं। मनुष्य के छोटे से छोटे काम में भी उसकी आत्मा की झलक दिखाई देती है और वही झलक आत्मचरित का आधार है और उसी से चरितनायक का भी पता चलता है। बहुत आदमियों को यदि दिल खोलने का मौक़ा दिया जाय तो मालूम होगा कि बाहरी रुखाई के पर्दे के पीछे कितना कोमल हृदय है। उन अवसरों पर जब हम सावधान हैं तब भी हममें स्वाभाविकता की कमी रहती है और उस समय के कामों से भी हमारा पूरा पता नहीं चलता है। एक फ़ारस-देशवासी अरबी-भाषा का इतना बड़ा विद्वान् था कि पहचाना नहीं जा सकता था कि वह अन्य देश का रहनेवाला है। वह अरब देश में गया और अपना ऐसा भेष बनाया कि वहाँ के निवासी उसे अपने देश का समझने लगे। बड़ी बड़ी पुस्तकें लिखीं, अपनी शादी की और वहीं बस गया। उसकी पत्नी भी विदुषी थी। उसे न मालूम किस तरह यह सन्देह हुआ कि अरब देश उसकी मातृभूमि नहीं है, परन्तु उसके सन्देह को परिपुष्टता नहीं प्राप्त होती थी। उसकी भाषा और वेष में कोई त्रुटि नहीं थी। बहुत दिनों के बाद जब एक रात को वह सो रहा था तब उसकी आँखों पर फ़तीले की रोशनी पड़ रही थी। वह सोते हुए चिल्ला उठा कि फ़तीले का दम कर डालो (यह शायद फ़ारसी मुहाविरा था—अरब देश में फ़तीला बुझा दो कहा जाता था) उसकी स्त्री समझ गई कि उसकी मातृभाषा कौन है। पूछने पर उसने बतला भी दिया। वह उसका स्वाभाविक क्षण था जब उसके मुँह से उसकी मातृभाषा का मुहाविरा निकल गया। ऐसे ही मौक़ों पर यह पता लगता है कि हम क्या हैं और ये अवसर इतने क्षणिक होते हैं कि हम उन्हें 'पकड़' नहीं पाते। इनकी आत्मचरितों में कमी होती है। जहाँ यह सत्य है कि बोज़वेल ने जान्सन के जीवनचरित में बहुत-सी अनावश्यक बातें लिखी हैं, वहाँ यह भी सत्य है कि बहुत-सी ऐसी बातें भी लिखी हैं जिनकी वजह से वास्तविक जान्सन का फोटो आँखों के सामने आ जाता है। यदि जान्सन स्वयं लिखते तो वे बातें छूट जातीं।

अपना आत्मचरित लिखने में 'मधुर एकान्त' की अत्यन्त आवश्यकता होती है। तभी उन कामों और घटनाओं का स्मरण आयेगा जिनके कहने या करने में स्वाभाविकता के कारण सफलता या असफलता प्राप्त हुई थी। एक चरित्रभ्रष्टा अपनी जवानी के दिनों का स्मरण करके गुनगुना रही है, "हज़ारों ही खाये हुए चोट थे, वह ठुमके से मिरज़ा तो बस लोट थे।" बस इन्हीं दस-पाँच शब्दों में पूर्ण आत्मचरित लिख गया—पूरी तसवीर आँखों के सामने आ गई। व्यतीत समय का सिंहावलोकन ऐसे अवसरों पर बहुत काम देता है। परन्तु इसका ध्यान रहे कि निरीक्षण और निर्णय करने में कृत्रिम रंग न आने पावे—केवल इतना प्रकट कर देना पर्याप्त होगा कि अमुक विषय पर विचार क्या थे।

आत्मचरित के लिखने के तीन तरीक़े हो सकते हैं, और अभी तक यही तीन तरीक़े काम में लाये गये हैं—(१) वही पुराना साधारण तरीक़ा, जिसका 'श्रीगणेशाय नमः' जन्म-तिथि बतलाकर होता है और 'इति श्री' दूसरे के हाथों-द्वारा अन्तिम बीमारी का वर्णन करके मृत्यु-तिथि पर होती है। इसमें भी संशोधन हो रहा है। अब केवल साल बतला दिया जाता है। अब कोई भी शायद ही जीवनचरित हो जिसमें अन्तिम बीमारी का वर्णन हो। किसी को इससे क्या मतलब कि कौन-सी अन्तिम बीमारी किसको हुई थी? इतिहास के लिए साल जानना पर्याप्त है।

दूसरा तरीक़ा स्मरण-लेख है। यह प्रथम तरीक़े से कुछ आसान है। इसमें स्वाभाविकता की अधिक सम्भावना है। इसमें दिनचर्या सीधी और सरल भाषा में लिखी होती है। पेपी की डायरी कई भागों में प्रकाशित हुई है और वह उनके पूर्ण जीवनचरित का काम देती है। उसमें बहुत-सी बातें यद्यपि असंगत-सी मालूम होती हैं, पर अधिकांश में स्वाभाविकता अवश्य है। शायद उन्होंने यह निश्चय कर लिया था कि मामूली से मामूली बात का भी वे उल्लेख करेंगे। स्मरण-लेख यदि इस दृष्टि से लिखा गया है कि वह प्रकाशित किया जाय तो उसमें भी बहुत-सी बातों पर कृत्रिम रंग होगा। स्वाभाविक ढंग तो वह है जिस ढंग से मनुष्य कुछ सोचता है। चाहे कुछ लिखने में अत्युक्ति की झलक आ भी जाय तो भी अपने अनुभवों का उल्लेख करना चाहिए। अनुभवों से बड़ी शिक्षा मिलती है—अनुभव ही सच्चे शिक्षक हैं—चाहे वे सफलता के परमोच्च शिखर के हों और चाहे अधमता की अथाह गहराई के हों। दोनों से शिक्षा ग्रहण की जा सकती है। यदि इस देश के किसी बड़े से बड़े आदमी से भी कहा जाय कि आप अपना आत्मचरित लिख दें तो शायद यही कहेगा कि किया क्या है जिसका उल्लेख करूँ। इस संकोच से कम से कम उसके देशवाले उसके अनुभवों से वञ्चित रह जाते हैं। अन्य देशों में नटियाँ और नर्तकियाँ भी अपना जीवन-चरित लिखती हैं या स्मरण-लेख रखती हैं। यद्यपि उद्देश जेब गरम करने का होता है तो भी उनको अपने विषय में जो कुछ कहना होता है वह तो कह ही लेती हैं।

तीसरा साधन आत्मचरित का पत्र है। इनके लिए 'द्वितीय पुरुष' की आवश्यकता होती है। इनमें भी तभी स्वाभाविकता आवेगी जब इनका अभिप्राय प्रकाशित करने का न हो। यद्यपि इनमें नित्यप्रति की घटनाओं का उल्लेख नहीं होता है, तो भी इनसे अच्छी तरह और किसी ढंग से लेखक का मत प्रकट नहीं हो पाता। अँगरेज़ी-भाषा में सुप्रसिद्ध पत्र-लेखक हो गये हैं और सबसे बड़ा नाम चेस्टरफ़ील्ड का है। उन्होंने अपने पुत्र के नाम पत्र लिखे थे और उनमें अच्छे उपदेश दिये हैं। ये गुण होते हुए भी वे वास्तव में पत्र नहीं हैं। वही नक़ल बहुतों ने की है। एक ने तो अपने पुत्र को पत्र लिखने में लज्जा को तिलाञ्जलि देकर यह लिखा है कि उसका जीवन उसकी स्त्री के साथ कैसा व्यतीत हुआ था। ऐसी पुस्तकें मृतजात शिशु के समान होती हैं। अस्तु, आज-कल उन्हीं जीवन-चरितों की धूम होती है जिनमें चरितनायक के स्मरण-लेखों और पत्रों से बातें जानकर लिखी जाती हैं। राजनैतिक क्षेत्र में जो कुछ भी है उस सबके पत्र प्रकाशित होते हैं। वे भी वास्तव में पत्र नहीं हैं। उनके लिखने का यह अभिप्राय होता है कि वे अपने मत का स्वतंत्रता से पक्षपात कर सकें। तब भी वे पत्र ही कहला सकते हैं, चाहे लेखक के प्रतिबिम्ब न हों। उनके आधार पर जीवनचरित लिखा जा सकता है।

एक और ढंग है, जिसके द्वारा मनुष्य असली रंग में दिखलाई दे सकता है और वह है वार्तालाप का। इससे मनुष्य के निजी और अदृष्ट जीवन पर से थोड़ा पर्दा हटाया

जा सकता है। ऐसे वार्तालाप के लिए यह आवश्यक है कि यह उन्हीं के साथ हो जिनके सामने बातें करनेवाला स्वतंत्र हो। जान्सन के आन्तरिक जीवन का संसार को पता न होता यदि बोज़वेल की लेखनी ने उनकी इतनी सहायता न की होती। जान्सन बहुत मशहूर बात-चीत करनेवाले थे और कोई शब्द शायद ही उनके मुँह से ऐसा निकला होगा जिसे बोज़वेल ने उनके जीवनचरित में न लिखा हो। न हर आदमी जान्सन हो सकता है और न उसका यह सौभाग्य हो सकता है कि उसे बोज़वेल मिल जाय। अपने वार्तालाप से अपने को अपना जीवनचरित लिखने में बहुत सहायता नहीं मिलती है। यदि जान्सन खुद अपना जीवनचरित लिखने बैठते तो अपने वार्तालाप से उतना फ़ायदा न उठा पाते जितना बोज़वेल ने उठाया है। हेज़लिट भी बड़ा क़ाबिल बात-चीत करनेवाला था। उसका यह बड़ा अभाग्य है कि उसके वार्तालाप का कोई भी अंश संसार के सामने नहीं है। उसे उसकी ज़िन्दगी में क्या, अभी तक कोई ठीक नहीं समझ पाया है। यदि उसका वार्तालाप प्रकाशित हो जाता तो उसके सम्बन्ध में संसार की दूसरी राय होती। उसने ख़ूब कहा है कि यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि संसार के मञ्च को छोड़ते ही लोग हमें भुला देते हैं, और तब भी हम किसी के ध्यान को आकर्षित नहीं करते हैं जब मञ्च पर होते हैं।

अपने जीवन के वृत्तान्त और अनुभवों को हमें सीधे-सादे और स्वाभाविक रीति से वर्णन कर देना चाहिए। आलिवर गोल्डस्मिथ ने लिखा है कि इसका ध्यान रखना चाहिए कि यथार्थतायें विद्वत्ता के बोझ से दब न जायँ। हम सबको अपने इस कठिन कार्य में सफल समझना चाहिए, यदि एक व्यक्ति का भी ग़लत रास्ते पर पैर पड़ने से बच जाय और इसी तरह कुछ न कुछ अपने साहित्य की सेवा हो जाय। एक दफ़े स्वर्गीय गोपाल कृष्ण गोखले ने एक दूसरे सम्बन्ध में कहा था कि 'वे लोग थोड़े दिनों बाद आवेंगे जो सफलता से देश की सेवा करेंगे। हम सबको तो अपनी असफलताओं से ही सेवा करना है।'

हँसी की एक रेखा

लेखक, श्रीयुत कुँवर हरिश्चन्द्रदेव वर्मा 'चातक'

(१)

गगन-अङ्क में बड़े चाव से—
चन्द्र विहँसता देख।
तेरे मधुर हास की उसमें
समझ एक लघु रेख।

(२)

उछल उछल के मोद मनाता
चाहक चित्त-चकोर।
इकटक उसे देखने प्यारे।
हो जाता है भोर।

(३)

फिर बिछोह-वेदना-पिशाची
करती है बेचैन।
थक जाते हैं रोते रोते
मुझ दुखिया के नैन।

पार्लियामेंट के इस सदस्य के इस प्रकार अंगारे उगलने का कारण भी था। उस समय जनता के प्रवेश इत्यादि में बहुत कठिनाइयाँ होती थीं। पहले यह क़ायदा था कि विद्याशील और जिज्ञासु ही म्युज़ियम के भीतर जा सकते थे। उन्हें एक प्रार्थनापत्र लिखकर द्वारपाल को देना पड़ता था। फिर संग्रहालय-रक्षक इसका निर्णय करते थे कि वह व्यक्ति म्युज़ियम के भीतर जाने लायक़ है या नहीं। पक्ष में निर्णय होने पर उसे टिकट मिल जाता था। दस आदमी से ज़्यादा एक घंटे के भीतर प्रविष्ट नहीं किये जाते थे, और पाँच आदमी से ज़्यादा का एक समूह नहीं बन सकता था। फिर वे एक विभाग में एक घंटे से ज़्यादा देर तक ठहर नहीं सकते थे। द्रव्य-विभाग में बिना संग्रहालय के रक्षक के नहीं घूम सकते थे। और द्वारपाल को यह अधिकार था कि वह किसी व्यक्ति को किसी अनुचित व्यवहार के कारण बाहर निकाल सकता था।

ऐसी बाधाओं के कारण यदि जनता उसकी ओर आकृष्ट न हो तो कोई आश्चर्य नहीं। धीरे धीरे प्रवेश-नियम सरल होते गये। सन् १८१० में यह नियम बना कि सोमवार, बुधवार और शुक्रवार को म्युज़ियम जनता के लिए चार बजे शाम तक खुला रहे और कोई भी भद्र व्यक्ति उसके भीतर जा सकता है। अब दर्शकों की संख्या दिनोंदिन बढ़ने लगी। सन् १८२८ में प्रायः अस्सी हज़ार मनुष्यों ने इसका निरीक्षण किया। सन् १८३८ में प्रायः डेढ़ लाख और सन् १८४८ में प्रायः नौ लाख मनुष्यों ने इसके निरीक्षण से लाभ उठाया।

सन् १८४८ योरप के लिए क्रांतिकाल माना जाता है। ऐसा मालूम हुआ कि इँग्लैंड के चार्टिस्ट लोग जो अपने को शारीरिक बलवाला दल कहते थे, इसका विध्वंस कर देंगे। इसके बचाने के लिए सेना इत्यादि का आयोजन हुआ। पर इस पर किसी ने आघात नहीं किया। तब से इसकी दिनोंदिन उन्नति होती रही है। अब तो दिखाने के लिए सदा प्रदर्शक रहते हैं और समय समय पर इसमें बड़े बड़े विद्वानों के व्याख्यान भी हुआ करते हैं।

इसमें चीन, जापान, हिन्दुस्तान, अरब, ईरान इत्यादि सभी देशों के पुस्तकों का संग्रह है, किन्तु इसका सबसे बड़ा पुस्तकालय 'किंग्स लाइब्रेरी' के नाम से विख्यात है। इसे तृतीय जार्ज ने एकत्र किया था। इसका स्थान पहले 'बकिंगहम पैलेस' में था और इसके रखने में प्रायः दो हज़ार पौंड का सालाना ख़र्च था। जब चतुर्थ जार्ज गद्दी पर बैठे तब उन्हें यह ख़र्च नापसन्द हुआ। यह भी पता चला कि यदि वे चाहें तो रूस के ज़ार उनके समूचे संग्रह को बड़ा मूल्य देकर ख़रीद सकते हैं। आख़िर सब बात पक्की भी हो गई। पीछे होम सेक्रेटरी को मालूम हुआ और देश भर में इस बात की बड़ी निन्दा होने लगी। पर चतुर्थ जार्ज को अपने ऐश-आराम के लिए रुपयों की बहुत ज़रूरत थी। उन्होंने कहा कि यदि देश उन्हें उतना ही रुपया दे दे जितना रूस के ज़ार उन्हें दे रहे हैं तो वे उसे परदेश न भेजकर अपने देश को ही दे देंगे। आख़िर हुआ भी ऐसा ही। सारे देश ने मिलकर आवश्यकता भर रुपया जमा कर लिया और इस अमूल्य रत्न को विदेश जाने से बचा लिया। अब तो बीसवीं शताब्दी में लोग पुरानी चीज़ों का महत्त्व इतना समझने लगे हैं कि उनके लिए कोई भी मूल्य अधिक नहीं समझा जाता। प्रायः तीन-चार वर्ष हुए कि अँगरेज़-सरकार ने रूस-सरकार से एक बाइबिल एक लाख पौंड यानी क़रीब चौदह लाख रुपये में ख़रीदी है। यह बाइबिल संसार में सबसे पुरानी बाइबिल समझी जाती है। सोवियट रूस जब ईश्वरविहीन हो गया तब उसकी नज़रों में बाइबिल का मूल्य जाता रहा! इस कारण उसने एक बाइबिल के बदले १४ लाख रुपये लेना पसन्द किया।

आज ब्रिटिश म्युज़ियम के कारण अँगरेज़ी-साहित्य पर कितना नया प्रकाश पड़ा है, इसे सभी अँगरेज़ी-साहित्य-वेत्ता जानते हैं। पर इसका सबसे हृदयग्राही और मनोरंजक विभाग 'हस्तलिखित-ग्रन्थ-भवन' है। इसमें प्रायः सभी बड़े बड़े लेखकों के हाथ के लिखे ग्रन्थ मौजूद हैं। जब हम उनकी हस्तलिपि को देखते हैं, उनके संशोधनों को देखते हैं, तब वे बड़े बड़े कवि और ग्रन्थकार हम लोगों-सा प्रतीत होने लगते हैं। इससे उनके प्रति हमारी श्रद्धा नहीं घटती, वरन हममें साहस भी उद्भव होता है, हम अपनी शक्ति का अनुभव करने लगते हैं। हमें अपनी दुर्बलता पर ग्लानि तो ज़रूर होती है, पर निराशा नहीं होती।

इसमें बड़े बड़े पुरुषों जैसे—रिचर्ड, ड्यूक आफ़ ग्लास्टर, ड्यूक आफ़ बकिंगहम, एन बोलीन, कैनमर, लैटिमर, सर टामस मूर के हस्ताक्षर देखने को मिलते हैं। क्वीन मेरी, महारानी एलिज़बेथ, सर वाल्टर रेले, सर फ़िलिप सिडनी इत्यादि की जिनके नाम इतिहास में प्रसिद्ध हैं चिट्ठियाँ इसमें मौजूद हैं। स्काट्स की रानी मेरी की भयानक कहानी जो अपने सौन्दर्य के कारण युवकों का स्वप्न हो गई थी और कोमलता के कारण लोगों की निन्दा की वस्तु थी और जो अन्त में गँड़ासे का शिकार बनाई गई थी, आज भी हृदय को व्याकुल कर देती है।

[वाचनालय (ब्रिटिश म्युज़ियम)]

शेक्सपियर का हस्ताक्षर एक दस्तावेज़ पर देखकर आत्मा यही कह उठती है, क्या यही शेक्सपियर है जिसकी सृष्टि संसार में कोई सानी नहीं रखती। क्लाइव और हेस्टिंग्स की चिट्ठियाँ अब भी वर्तमान हैं, जिन्होंने भारत में अँगरेज़ी-सरकार की नींव डाली थी। एक शीशे के बक्स से दूसरे की ओर जाइए, अतीत काल अतीत नहीं रह जाता, वर्तमान हो उठता है और यही मालूम होने लगता है मानो ये सभी व्यक्ति अपने ख़ास परिचय के हैं।

साहित्य-विभाग के अलावा इसके और भी विभाग हैं, जो उतना ही शिक्षाप्रद और मनोरञ्जक हैं। द्रव्य-विभाग में चले जाइए, द्रव्यों के स्वरूप और बनावट का इतिहास आप बहुत आसानी से जान सकेंगे। छपाई का इतिहास जानना हो तो छपाई-विभाग में चले जायँ। प्रारम्भ से लेकर अब तक हर तरह की छपाई के नमूने आप देख लेंगे। किताबों के बाँधने का तरीक़ा देखना हो अथवा पुस्तकों को सचित्र बनाने का सिलसिला देखना हो तो आप वहाँ भलीभाँति देख सकेंगे।
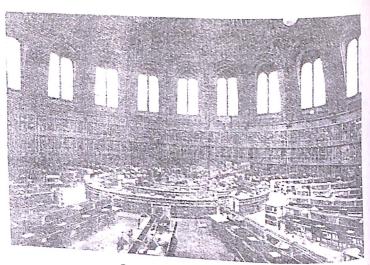
यह तो रही साहित्य-सम्बन्धी बातें। पर सभ्यता का ज्ञान केवल पुस्तकों से ही नहीं होता, वरन कला-कौशल से भी उसका ज्ञान प्राप्त होता है। ग्रीस और रोम की पत्थर की मूर्तियाँ, लोहा, सोना, चाँदी इत्यादि के बने आभूषण, उनके बर्तनों अथवा खिलौनों से भी मानव-सभ्यता पर पूरा प्रकाश पड़ता है। इन सबों का भी ब्रिटिश म्युज़ियम में बृहत् संग्रह है। यदि आपको पत्थर-युग वा ब्रौंज़-युग वा लोहा-युग का अध्ययन करना हो तो उन विभागों में भ्रमण करें। सचमुच में यह म्युज़ियम ज्ञान का समुद्र है, जिसका आप जितना ही अधिक मंथन करेंगे, उतने ही सुन्दर रत्न उससे पायेंगे।

इसका अध्ययन-स्थान भी जिसे 'रीडिङ्ग-रूम' कहते हैं, बड़े ही मार्के का है। जिस समय यह म्युज़ियम प्रारम्भ हुआ था, उस समय उसमें पढ़ने के लिए कोई ख़ास स्थान नहीं था। एक कमरे में एक टेबिल और बीस कुर्सियाँ रख दी गई थीं और उतना ही स्थान यथेष्ट समझा जाता था। बड़े-बड़े दर्शकों में कवि ग्रे भी थे, पर अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक पढ़नेवालों की संख्या प्रतिदिन आधा दर्जन से ज़्यादा न थी। और बड़े-बड़े लोगों में जो म्युज़ियम को काम में लाये थे, सर वालटर स्काट, हेनरी ब्रूम, चार्ल्स लैम्ब, हेनरी हैलम थे। स्त्रियों में केवल मिसेज़ मेकाले का ही नाम पाया जाता है। उन्नीसवीं शताब्दी से पढ़नेवालों की संख्या बहुत बढ़ने लगी और एक ख़ास

अलग हाल की आवश्यकता पड़ी। अतएव एक बड़ा हाल बनवाया गया जो अब तक काम में आ रहा है।

यह हाल गोलाकार है। चारों ओर किताबों की अलमारियाँ हैं और हर एक विभाग में ग्रन्थकारों के नाम लिखे हैं। हाल के बीच में सुपरिंटेंडेंट और उनके सहायक कर्मचारियों का स्थान है। एक टेबिल पर पुस्तकों का बृहत् सूचीपत्र है जिसमें हर महीने नई आनेवाली पुस्तकों का नाम जोड़ा जाता है। अब तो पार्लियामेंट का क़ानून हो गया है कि जो भी नई किताब छपे उसकी एक प्रति म्युज़ियम में अवश्य भेजी जाय। इसके अलावा कुछ दान-द्वारा, कुछ ख़रीद-द्वारा इसका कोष दिन-रात बढ़ता ही रहता है। इसलिए सूची-पत्र का आख़िरी फ़ारम तक सम्पूर्ण रहना प्रायः असम्भव-सा है। इसकी उपयोगिता इस समय इतनी बढ़ गई है कि जहाँ पहले आधे दर्जन लोग ही इसको काम में लाते थे, अब क़रीब पाँच सौ व्यक्तियों के लिए भी यहाँ यथेष्ट स्थान नहीं है। यहाँ देश-विदेश के विद्यार्थी अध्ययन करने आते हैं। यदि यह पाठ्य-स्थान खुले आम छोड़ दिया जाता तो विद्वानों का कार्य वहाँ उचित रीति से नहीं चल सकता था। जब कोई आदमी कोई गम्भीर विषय लेकर उसका अध्ययन करने लगता है तब वह किसी प्रकार की बाधा या अड़चन ख़ुशी से बरदाश्त नहीं करता। इसलिए हर एक को एक अलग टेबिल और एक कुर्सी मिलती है और स्थानाभाव के कारण उन्हीं लोगों को प्रवेश की आज्ञा दी जाती है जिनके अध्ययन की सामग्री किसी और जगह नहीं मिल सकती। पहले एक आवेदन-पत्र देना पड़ता है, जिसमें अपने अध्ययन के विषय और पुस्तकों का नाम देना पड़ता है। यदि वे पुस्तकें किसी और पुस्तकालय में मिल जायँ तो उन्हें ब्रिटिश म्युज़ियम के रीडिङ्ग-रूम के लिए टिकट नहीं मिलता। पर एक बार जिसे भीतर जाने का अवसर प्राप्त हो जाता है तो वह मानो ज्ञान के महासागर में उतर जाता है। उसमें किताबों की अलमारियाँ इतनी हैं कि यदि वे एक-एक कर पाँत में खड़ी की जायँ तो उनकी पंक्ति छियालिस मील लम्बी हो जायगी। पर प्रबन्ध इतना सुन्दर है और वे सब यहाँ इतनी शृंखलाबद्ध रक्खी गई हैं कि बात की बात में जो पुस्तक आप चाहें वह आपके सम्मुख लाई जा सकती है। जिन पुस्तकों की आपको दूसरे दिन ज़रूरत हो और यदि आप एक पुर्ज़ा सुपरिंटेंडेंट को दे दें तो वे पुस्तकें उचित समय पर आपके टेबिल पर मौजूद रहेंगी। इसके अलावा एक 'नार्थ लाइब्रेरी' है, जहाँ आप हस्तलिपि अथवा ऐसी पुस्तकों का अध्ययन कर सकते हैं जो अपूर्ण बँधाई या अन्यान्य कारणों से रीडिंग-रूम में लाने योग्य नहीं हैं।

ब्रिटिश म्युज़ियम सचमुच में ज्ञान का अनन्य भाण्डार है। उसमें हर एक आदमी की शिक्षा और मनोरञ्जन का सामान है, जो यह समझते हों कि रोटी-दाल के परे भी कोई अपूर्व वस्तु है। यह सम्भव नहीं कि कोई आदमी उसके भीतर जाय और बिना कुछ सीखे उसके बाहर चला आये।

किसी देश की सभ्यता केवल लोगों के आचरण और प्रासादों ही पर निर्भर नहीं रहती, बरन उसके ज्ञानप्रेम पर भी। ज्ञानप्रेम का परिचायक जैसा कि एक संग्रहालय है, वैसा और कोई वस्तु नहीं। यदि सचमुच हम लोग ज्ञान के पुजारी हैं तो एक ऐसा मन्दिर बनावें, जहाँ सभी छोटे-बड़े जाकर अपनी श्रद्धाञ्जलि चढ़ा सकें और ज्ञान का वर पा सकें।

दुख है इसको हम जान न पायें

लेखक, श्रीयुत राजाराम खरे

इसका हमको कुछ सोच न हो
यदि जीवन में हों अनेक व्यथायें।
सुख की यदि खोज करेंगे नहीं
सुख-दायक होंगी हमें विपदायें॥
यदि चाहते हैं कि मनुष्य बनें
इस मंत्र को भूल कभी न भुलायें।
"सुख ही सुख है सब जो कुछ है
दुख है इसको हम जान न पायें॥"

हिन्दू-स्त्रियों का सम्पत्त्यधिकार

लेखक, श्रीयुत कमलाकान्त वर्मा, बी० ए०, बी० एल०

डाक्टर देशमुख ने असेम्बली में हिन्दू-स्त्रियों का सम्पत्त्यधिकार सम्बन्धी बिल उपस्थित करके स्त्रियों के तत्सम्बन्धी अधिकारों पर चर्चा करने का एक अच्छा अवसर उपस्थित कर दिया है। इस लेख के लेखक महोदय ने इस विषय की बड़े अच्छे ढंग से विवेचना की है और इस जटिल विषय पर पूर्ण प्रकाश डाला है।

केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा की इस बैठक में सामाजिक और आर्थिक दृष्टि-कोण से एक बड़े महत्त्व के विषय पर गवेषणा की जायगी, और वह है डाक्टर देशमुख का हिन्दू-स्त्रियों का साम्पत्तिक अधिकार-सम्बन्धी बिल। इस बिल पर जनता का मत जानने का प्रयत्न किया गया है और अभी तक जो विचार-संग्रह हुआ है उससे इस नये विधान को बहुत कुछ प्रोत्साहन मिलता है। एक सौ उनतालीस सम्मतियाँ प्राप्त हुई हैं, जिनमें आठ विरुद्ध हैं, एक तटस्थ है और शेष एक सौ तीस पक्ष में हैं।

यह बिल देखने में जितना छोटा है, इसका परिणाम उतना ही सुदूरव्यापी होगा। इसके विषय में सर सी० पी० रामस्वामी ऐयर का मत है कि "यह विषय बहुत जटिल है। स्त्रियों के अधिकारों की रक्षा करने के लिए हमें सबसे पहले हिन्दू पारिवारिक जीवन की भावना में भारी परिवर्तन करना पड़ेगा। जब तक विशेषरूप से नियोजित विशेषज्ञों की एक समिति इस बिल को अच्छी तरह समझ-बूझ कर इसमें सुधार नहीं करेगी, मुझे इसकी सफलता में सन्देह है।"

इस बिल के पास हो जाने से वर्तमान दशा में कौन-से परिवर्तन हो जायँगे, सामाजिक और आर्थिक दृष्टि-कोण से उन परिवर्तनों का क्या महत्त्व होगा और इसके क्या गुण-दोष हैं, इस सबकी समीक्षा करने के पहले यह जानना बहुत ज़रूरी है कि हिन्दू-स्त्रियों का वर्तमान सम्पत्त्यधिकार क्या है और उस अधिकार के सीमा-बंधन के कारण क्या हैं। यहाँ हम पहले उन अधिकारों का विवेचन करेंगे।

किसी भी व्यक्ति का पूर्ण सम्पत्त्यधिकार तीन अंगों में बाँटा जा सकता है—(१) प्राप्ति, (२) उपभोग, (३) और पृथक्करण। यदि ये तीनों अधिकार किसी के पास हैं तो उसका सम्पत्ति पर पूरा अधिकार समझा जाता है। यदि किसी भी अंग की कमी हुई तो अधिकार सीमित समझा जाता है। देखना यह है कि हिन्दू-स्त्रियों को ये तीनों अधिकार पूर्णरूप से प्राप्त हैं या नहीं।

इस विषय पर विचार करने के पहले यह जान लेना आवश्यक है कि हिन्दू-व्यवस्था-शास्त्र क्या है। वास्तव में इस शास्त्र के तीन प्रधान स्रोत हैं—श्रुति, स्मृति और आचार। श्रुति चारों वेदों को कहते हैं। इनका व्यवस्था शास्त्र से बहुत कम सम्बन्ध है। स्मृति धर्म-शास्त्र को कहते हैं। तीन स्मृतियाँ प्रमुख हैं—मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति और नारदस्मृति। इन स्मृतियों पर बहुत बड़े बड़े निबन्ध लिखे गये हैं और वर्तमान सारा हिन्दू-व्यवस्था-शास्त्र इन्हीं निबन्धों पर स्थित है। निबन्धकारों में सबसे उच्च स्थान विज्ञानेश्वर और जीमूतवाहन का है। विज्ञानेश्वर के 'मिताक्षरा' और जीमूतवाहन के 'दायभाग' पर ही सारा हिन्दू-व्यवस्था-शास्त्र अवलंबित है। दायभाग बंगाल में सर्वमान्य है, और मिताक्षरा मिथिला, महाराष्ट्र, बनारस और मदरास में। इस प्रकार हिन्दू-व्यवस्था-शास्त्र के दो मत हैं—(१) दायभाग और (२) मिताक्षरा। मिताक्षरा की चार उपशाखायें हैं—(१) महाराष्ट्र-मत जो बम्बई, गुजरात आदि में प्रचलित है, (२) मैथिल-मत जो मिथिला में माना जाता है, (३) काशी-मत जो संयुक्त-प्रान्त और उसके आस-पास व्यवहृत होता है और (४) द्राविड़-मत जो मदरास में स्वीकृत है।

स्त्रियों की प्रत्येक प्रकार की सम्पत्ति को साधारण बोल-चाल की भाषा में 'स्त्री-धन' कह सकते हैं। किन्तु दुर्भाग्य-वश शास्त्रकारों ने 'स्त्री-धन' शब्द को विशिष्टार्थ में ही प्रयुक्त किया है और उसे केवल उन्हीं सम्पत्तियों तक परिमित रक्खा

है जिन पर स्त्रियों का पूर्ण अधिकार रहता है। परिमित
अधिकारवाली सम्पत्तियों को शास्त्रकारों ने स्त्री-धन नहीं कहा
है। इसलिए अपनी सुविधा के लिए हम यहाँ दो प्रकार का
स्त्री-धन मानेंगे—(१) पूर्ण स्त्री-धन और (२) परिमित स्त्री-
धन। पूर्ण स्त्री-धन वह है जिस पर स्त्री का पूरा अधिकार
हो और परिमित स्त्री-धन वह है जिस पर उसका अधिकार
किसी अंश में परिमित हो। अब यह प्रश्न हो सकता है
कि व्यावहारिक दृष्टि से 'पूर्ण' और 'परिमित' स्त्री-धन में
क्या अन्तर है। इसका उत्तर यह है कि यह अन्तर दो
प्रकार से महत्त्वपूर्ण है—

(१) प्रत्येक प्रकार का पूर्ण स्त्री-धन किसी स्त्री के
मरने के बाद उसके अपने उत्तराधिकारियों को मिलता
है। परिमित स्त्री-धन के विषय में ऐसी बात नहीं होती।

(२) अपने पूर्ण स्त्री-धन की अनन्य स्वामिनी होने
के कारण स्त्री उसका जिस तरह चाहे उपभोग कर
है और जैसे चाहे उसे हटा सकती है। यद्यपि
में उसे किसी किसी हालत में अपने पूर्ण स्त्री-
अधिकार नहीं रहता है, किन्तु विधवावस्था में उ
पूरा अधिकार मिल जाता है। परिमित स्त्री-धन के
में ऐसी बात नहीं है। उस पर उसका अधिकार परि
है और वह जैसे चाहें उसे हटा नहीं सकती।

अब प्रश्न यह है कि स्त्री-धन का 'पूर्ण' या 'परिमित'
होना किन कारणों पर निर्भर है। कोई भी सम्पत्ति 'पूर्ण'
स्त्री-धन है या नहीं, यह तीन बातों पर अवलंबित है—

१—स्त्री के पास सम्पत्ति किस प्रकार आई?

२—सम्पत्ति मिलने के समय वह किस अवस्था में
थी, अर्थात् वह कुमारी थी या सधवा या विधवा?

३—वह हिन्दू-व्यवस्था-शास्त्र के किस मत से शासित
होती है।

पहले यह देखना है कि स्त्री को कितने प्रकार से सम्पत्ति
मिल सकती है और उसका यह अधिकार कहाँ तक सीमित
है। स्त्री को सम्पत्ति नौ प्रकार से मिल सकती है—

१—अपने सम्बन्धियों से भेंट में या वसीयत में मिली
हुई सम्पत्ति।

२—असम्बन्धियों से भेंट में या वसीयत में मिली
हुई सम्पत्ति।

३—बँटवारे में मिली हुई सम्पत्ति।

४—निर्वाह करने के बदले में दी हुई सम्पत्ति।

५—मीरास की सम्पत्ति।

६—स्वोपार्जित सम्पत्ति।

७—किसी अधिकार का निपटारा कर लेने पर मिली
हुई सम्पत्ति।

८—विपरीताधिकार से मिली हुई सम्पत्ति।

९—पूर्ण स्त्री-धन के मूल्य अथवा आय से ख़रीदी
गई सम्पत्ति।

इन नौ प्रकार की सम्पत्तियों में कुछ तो पूर्ण स्त्री-धन है
और कुछ परिमित। अब हम इनका यहाँ क्रमशः विवेचन
करेंगे।

१—सम्बन्धियों से भेंट या वसीयत में मिली हुई
... दायिक' कहते हैं। यह कई प्रकार की है।
... वाहनिक, पादवंदनिक, अन्वधेयक, आधिद-
... ए स्त्री-धन हैं। पर इस नियम का एक
... यह है कि दाय-भाग के मतानुसार पति की दी
सम्पत्ति पूर्ण स्त्री-धन नहीं समझी जाती।

२—असम्बन्धियों से मिली हुई सम्पत्ति के तीन
भेद हैं—(१) कौमार्यावस्था में मिली हुई, (२) सधवावस्था
में मिली हुई और (३) विधवावस्था में मिली
हुई। (१) कौमार्यावस्था में मिली हुई सम्पत्ति पूर्ण
स्त्री-धन है और सभी मतों के अनुसार स्त्री का उस
पर पूर्णाधिकार है।

(२) सधवावस्था में अध्यग्नि (अर्थात् विवाहमंडप में
विवाहाग्नि के सामने मिली हुई) और अध्यावाहनिक
(अर्थात् वधु-प्रवेश के समय मिली हुई) सम्पत्ति
प्रत्येक मत के अनुसार पूर्ण स्त्री-धन है। सधवावस्था
में असम्बन्धियों से दूसरे अवसर पर मिली हुई सम्पत्ति
महाराष्ट्र, काशी और द्राविड़ के मतों के अनुसार पूर्ण
स्त्री-धन है। दायभाग और मिथिला के मतानुसार वह
परिमित स्त्री-धन है। दायभाग के अनुसार ऐसी सम्पत्ति
भी पति के मरने के बाद पूर्ण स्त्री-धन हो जाती है।
मिथिला का मत इस विषय पर अभी निश्चित नहीं है।

(३) विधवावस्था में मिली हुई सम्पत्ति पूर्ण स्त्री-धन है।
सभी मतों के अनुसार स्त्री उसकी पूर्णाधिकारिणी है।

३—बँटवारे में मिली हुई सम्पत्ति किसी भी मत के
अनुसार स्त्री का पूर्ण स्त्री-धन नहीं है। सभी मतों के भिन्न
भिन्न कारण हैं। फिर भी सबका निष्कर्ष एक ही है।

४—निर्वाह करने के बदले में स्त्री को दी गई सम्पत्ति
को 'वृत्ति' कहते हैं। यह सभी अवस्था में और सभी
मतों के अनुसार पूर्ण स्त्री-धन समझी जाती है।

५—मीरास की सम्पत्ति के दो भेद हैं। स्त्री दो प्रकार
की सम्पत्तियों की उत्तराधिकारिणी हो सकती है—(१) किसी
पुरुष की सम्पत्ति जैसे; पति, पिता, पुत्र इत्यादि की और
(२) किसी स्त्री की सम्पत्ति; जैसे, माता, पुत्री इत्यादि की।

बम्बई, काशी, मिथिला और मदरास के मतानुसार
मीरास की सम्पत्ति किसी भी अवस्था में पूर्ण स्त्री-धन
नहीं हो सकती। किसी भी पुरुष या स्त्री से विरासत में
मिली हुई सम्पत्ति पर स्त्री का केवल सीमित अधिकार
रहता है और वह उसकी स्वामिनी अपने जीवन भर ही
रह सकती है। उसकी मृत्यु के बाद वह सम्पत्ति अपने
पहले स्वामी या स्वामिनी के उत्तराधिकारियों के पास ही
लौट जाती है। महाराष्ट्र-मत इससे भिन्न है। वहाँ किसी
स्त्री की सम्पत्ति किसी स्त्री को मिलने पर वह उसकी पूर्णा-
धिकारिणी हो जाती है और उसकी मृत्यु के उपरान्त वह
सम्पत्ति उसकी पूर्ण स्त्री-धन-सम्पत्तियों की तरह उसके
उत्तराधिकारियों को ही मिलती है। पुरुष से मिली हुई
सम्पत्ति के दो भेद हैं—(१) उन पुरुषों से मिली हुई
सम्पत्ति जिनके गोत्र में वह अपने विवाह के बाद चली
आती है, जैसे, पति, पुत्र, प्रपौत्र इत्यादि से। (२) उन
पुरुषों से मिली हुई सम्पत्ति जिनके गोत्र में उसका जन्म
हुआ है; जैसे, पिता, भाई, नाना इत्यादि से। पहले प्रकार
की सम्पत्ति पूर्ण स्त्री-धन नहीं समझी जाती और उस पर
स्त्री का परिमिताधिकार-मात्र है। दूसरे प्रकार की सम्पत्ति
महाराष्ट्र-मत के अनुसार पूर्ण स्त्री-धन मानी जाती है और
स्त्री की मृत्यु के उपरान्त उसके उत्तराधिकारियों को वह
सम्पत्ति मिलती है।

६—स्वोपार्जित सम्पत्ति महाराष्ट्र, काशी और मदरास
के मतानुसार स्त्री का पूर्ण स्त्री-धन है, चाहे वह कौमार्या-
वस्था में प्राप्त की गई हो या सधवावस्था में या
विधवावस्था में। किन्तु मिथिला और बंगाल के मत
भिन्न हैं। वहाँ कौमार्यावस्था और विधवावस्था में प्राप्त
की गई सम्पत्ति पूर्ण स्त्री-धन है, किन्तु सधवावस्था में स्त्री
का स्वोपार्जित धन भी पति का हो जाता है। बंगाल
में यदि पति स्त्री के पहले मर जाय तो स्त्री की वह
सम्पत्ति पूर्ण स्त्री-धन हो जायगी और उसके उत्तराधिकारी
ही उसका उपभोग करेंगे। मिथिला में ऐसा है या नहीं,
यह कहना कठिन है।

शेष तीन प्रकार की सम्पत्तियाँ, अर्थात् (७)—अधिकार
का निपटारा करने से मिली हुई, (८) विपरीताधिकार से
मिली हुई और (९) स्त्री-धन के मूल्य अथवा आय से
ख़रीदी हुई सम्पत्ति सभी मतों के अनुसार और प्रत्येक
अवस्था में स्त्री का पूर्ण स्त्री-धन है और उस पर उसका
अधिकार अपरिमित है।

अब यह देखना है कि ऐसी भी कोई सम्पत्ति है जो
पुरुष को मिल सकती है, किन्तु स्त्री को नहीं।

मिताक्षरा के अनुसार किसी भी हिन्दू की सम्पत्ति दो
भागों में बाँटी जा सकती है—(१) संयुक्त पारिवारिक
संपत्ति और (२) पृथक् सम्पत्ति।

(१) संयुक्त पारिवारिक सम्पत्ति वह है जिसमें परिवार के
पुरुष या उनके पुत्र ही भाग ले सकते हैं और
जिसका उत्तराधिकारित्व किसी नियमित क्रम से नहीं,
किन्तु उत्तर-जीविता पर निर्भर है। उदाहरण के
लिए, क और ख दो भाई हैं और दोनों की स्त्रियाँ
जीवित हैं। पर जब क मर जाता है तब समस्त सम्पत्ति
ख को मिल जाती है और क की स्त्री को कुछ भी
नहीं मिलता।

(२) पृथक् सम्पत्ति वह है जिस पर किसी व्यक्ति का
विशेषाधिकार हो। उसकी मृत्यु के बाद उसकी वह
सम्पत्ति उसके उत्तराधिकारियों को विहित क्रम
से मिलेगी।

दायभाग के अनुसार भी सम्पत्ति के यही दो भेद हैं।
अन्तर इतना ही है कि उसमें संयुक्त पारिवारिक सम्पत्ति
उत्तर-जीविता के अनुसार नहीं मिलती। उदाहरण के लिए
यदि क और ख दो भाई हैं और दोनों की स्त्रियाँ जीवित
हैं तो क की मृत्यु के बाद उसकी सम्पत्ति उसकी स्त्री
को ही मिलेगी, ख को नहीं।

अब प्रश्न यह उठता है कि इन दोनों प्रकार की
सम्पत्तियों के सम्बन्ध में स्त्रियों का क्या स्थान है।

(१) संयुक्त पारिवारिक सम्पत्ति में मिताक्षरा के मतानुसार स्त्री को कुछ भी नहीं मिलता, चाहे वह माता हो, पुत्री हो या धर्मपत्नी हो। सब कुछ पुरुष को ही मिलता है। दायभाग के अनुसार भी पुरुष के रहने पर स्त्री को कुछ नहीं मिलता। पुरुष के मरने पर यदि वह उसकी उत्तराधिकारिणी हो सकेगी तो मिलेगा अन्यथा नहीं। एक उदाहरण लीजिए। क के एक पुत्र है और एक कन्या। क के मरने के बाद सारी सम्पत्ति उसके पुत्र को मिल जाती है, कन्या को कुछ भी नहीं मिलता। यदि वह पुत्र भी मर जाय और संयुक्त परिवार में दूसरा कोई पुरुष न हो तो सम्पत्ति कन्या को मिलेगी, किन्तु वह इसलिए नहीं कि वह उस परिवार की है, किन्तु इसलिए कि वह अपने भाई की उत्तराधिकारिणी है। इस प्रकार हमें ज्ञात होता है कि जहाँ तक पारिवारिक सम्पत्ति से सम्बन्ध है, स्त्रियों का स्थान अत्यन्त नगण्य है और वे पारिवारिक उत्तराधिकार की परिधि के बाहर रक्खी गई हैं।

(२) पृथक् सम्पत्ति पाने का थोड़ा बहुत अधिकार स्त्रियों को दिया गया है, किन्तु वह भी बहुत परिमित है। उत्तराधिकारियों की सूची में बहुत थोड़ी स्त्रियों के नाम हैं और जिनके नाम हैं भी, वे बहुत लोगों के पीछे हैं। फलतः उन्हें प्रायः सम्पत्ति बहुत कम मिलती है और जो मिलती भी है उस पर उनका पूरा अधिकार नहीं होता।

बंगाल-मत के अनुसार पाँच स्त्रियाँ उत्तराधिकारिणी मानी गई हैं—(१) विधवा पत्नी, (२) कन्या, (३) माता, (४) पितामही और (५) प्रपितामही। इनका स्थान क्रमशः चौथा, पाँचवाँ, आठवाँ, चौदहवाँ और बीसवाँ है।

काशी और मिथिला में उत्तराधिकारिणी स्त्रियों की संख्या आठ है—(१) विधवा पत्नी, (२) कन्या, (३) माता, (४) पितामही, (५) पुत्र की कन्या, (६) पुत्री की कन्या, (७) बहन और (८) प्रपितामही। इनका स्थान क्रमशः, चौथा, पाँचवाँ, सातवाँ, बारहवाँ, तेरहवाँ (अ), तेरहवाँ (ब), तेरहवाँ (स) और सत्रहवाँ है।

मदरास में उपर्युक्त सभी स्त्रियाँ उत्तराधिकारिणी मानी जाती हैं, और इनके सिवा भाई की पुत्री भी सूची में रक्खी गई है।

महाराष्ट्र में भी उपर्युक्त सारी स्त्रियाँ उत्तराधिकारिणी मानी जाती हैं। उनके सिवा ममेरी बहन, मौसी, फुआ, चचेरी बहन इत्यादि भी सूची में रक्खी गई हैं।

भिन्न भिन्न स्थानों की स्त्री-उत्तराधिकारिणियों की सूची देखने से अन्त में यह ज्ञात होता है कि इनकी संख्या कितनी कम है और इनके सम्पत्ति पाने की कितनी कम सम्भावना रहती है। हिन्दू-समाज की सम्पत्ति का बहुत बड़ा भाग संयुक्त पारिवारिक सम्पत्ति है और उसमें स्त्रियों को कोई भाग नहीं मिलता। दूसरा भाग उनकी पृथक् सम्पत्ति है। पर यह सम्पत्ति बहुत नहीं है, और जो कुछ है वह भी पुरुषों में ही बहुधा बँट जाती है। स्त्रियाँ पुरुषों के साथ साथ नहीं, किन्तु उनके बाद उस सम्पत्ति की अधिकारिणी होती हैं। इस प्रकार इस सम्पत्ति से भी वे प्रायः वञ्चित ही रहती हैं। फल यह होता है कि पारिवारिक सम्पत्ति का प्रायः सारा हिस्सा उन लोगों के अधिकार से सदा बाहर ही रहता है।

अब यह देखना है कि उत्तराधिकारिणी होने के बाद स्त्री का सम्पत्ति पर क्या अधिकार रहता है तथा अधिकार के परिमित होने का अर्थ क्या है।

पूर्ण स्त्री-धन के विषय में कुछ भी नहीं कहना है। उस पर स्त्री का उतना ही अधिकार है, जितना किसी पुरुष का अपनी सम्पत्ति पर।

परिमित स्त्री-धन दो प्रकार का है। एक तो वह जिस पर केवल स्त्री के पति का अधिकार होता है, और किसी का नहीं। पति के मर जाने पर वह स्त्री का ही हो जाता है। इस प्रकार के स्त्री-धन का, पति के जीवन-काल में, स्त्री उपभोग तो कर सकती है, किन्तु उसे बेच या हटा नहीं सकती। उसकी मृत्यु के बाद, यदि वह पति के मरने के पहले मरे या बाद, वह सम्पत्ति उसके उत्तराधिकारियों को ही मिलती है, पति के उत्तराधिकारियों को नहीं।

दूसरा परिमित स्त्री-धन वह है जिस पर स्त्री को केवल उपभोग का अधिकार मिलता है और किसी बात का नहीं। अपने जीवन में न तो उसे वह किसी को दे सकती है, न किसी प्रकार हटा सकती है। कुछ थोड़ी-सी शास्त्र-विहित आवश्यकताओं को छोड़कर यदि और किसी दूसरे कारण से वह उस सम्पत्ति को बेच डाले या अपने पास से हटा दे तो उसकी मृत्यु के बाद उसका वह काम नाजायज़

समझा जायगा और सम्पत्ति उसके पहले पुरुष अधिकारी के उत्तराधिकारियों के पास लौट आ सकती है। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसके अपने उत्तराधिकारी उस सम्पत्ति को नहीं पा सकते। अन्तिम पुरुष-अधिकारी के उत्तराधिकारी ही उसे पा सकते हैं।

परिमित स्त्री-धन की यही विशेषता है कि स्त्री को उसके उपभोग का पूरा अधिकार मिलता है, किन्तु हटाने या बेचने का अधिकार नहीं मिलता।

इस प्रकार स्त्री के अधिकारों पर तीन प्रकार के प्रतिबन्ध लगे हुए हैं—(१) कुछ सम्पत्तियाँ ऐसी हैं जो उन्हें मिल ही नहीं सकतीं। (२) कुछ सम्पत्तियाँ ऐसी हैं जो उन्हें मिलती तो हैं, किन्तु उन पर पति का अधिकार हो जाता है। (३) कुछ सम्पत्तियाँ ऐसी हैं जो उन्हें मिलती भी हैं और जिन पर उनके उपभोग का पूरा अधिकार भी है, किन्तु जिन्हें वे अपने इच्छानुसार बेच या हटा नहीं सकतीं और जो उनकी मृत्यु के बाद उनके उत्तराधिकारियों को न मिलकर अन्तिम पुरुष अधिकारी के वारिसों को मिल जाती है।

स्त्रियों के स्त्री-धन-सम्बन्धी अधिकारों पर प्रायः अस्सी ऋषियों ने अपने अपने मत दिये हैं। किन्तु उनमें सर्व-प्रधान हैं आपस्तंब, बौधायन, गौतम, मनु, याज्ञवल्क्य, नारद, कात्यायन, देवल, हारीत और व्यास। ऐतिहासिक क्रम से इनके मतों का निरीक्षण करने से पता चलता है कि प्रारम्भ में स्त्री-धन का अत्यन्त संकुचित और परिमित अर्थ था, किन्तु आगे चलकर उसका बहुत विकास हो गया और स्त्रियों के साथ उदारता से काम लिया जाने लगा। यह औदार्य-भाव दिन पर दिन बढ़ता गया और अन्त में यहाँ तक हुआ कि याज्ञवल्क्य ने लिख डाला कि—

'पितृमातृपतिभ्रातृदत्तमध्यग्न्युपागतम्।
आधिवेदनिकाद्यं च स्त्रीधनं परिकीर्त्तितम् ॥'

इसका अर्थ मिताक्षरा में विज्ञानेश्वर ने यह लिखा कि 'स्त्री को पिता, माता, पति या भाई से जो कुछ मिलता है, विवाहाग्नि के सम्मुख उसे जो कुछ दिया जाता है और उसके पति के दूसरे विवाह के अवसर पर आधिवेदनिका के रूप में उसे जो मिलता है और शेष सब उसका स्त्री-धन है।' 'आद्य' शब्द पर बड़ा झगड़ा चला। विज्ञानेश्वर ने आद्य का अर्थ लगाया 'शेष सब प्रकार की सम्पत्ति'। सब प्रकार की सम्पत्ति में पाँच प्रकार की सम्पत्तियाँ मानी गई हैं—(१) उत्तराधिकार में मिली हुई, (२) ख़रीदी हुई, (३) बँटवारे में मिली हुई, (४) विपरीताधिकार से मिली हुई, (५) और किसी प्रकार से पाई गई। इन पाँच तरह की सम्पत्तियों में सभी प्रकार आ गये। यदि विज्ञानेश्वर का अर्थ मान लिया जाता तो इसका परिणाम क्रान्तिकारी होता। स्त्रियों को अपनी सारी सम्पत्तियों पर पुरुषों की तरह ही अधिकार हो जाता। मनु, कात्यायन इत्यादि ने केवल छः प्रकार के स्त्री-धनों का ही उल्लेख किया था। किन्तु इसे विज्ञानेश्वर ने यह कहकर टाल दिया कि छः प्रकार का अर्थ यह है कि स्त्री-धन छः से कम नहीं हो सकता, अधिक चाहे जहाँ तक हो। उन्होंने यह भी कहा कि ऋषियों ने 'स्त्री-धन' शब्द को केवल पारिभाषिक रूप में व्यवहार किया है, वैयुत्पत्तिक रूप में नहीं। इस प्रकार उन्होंने स्त्री-धन का विस्तार अपरिमित कर दिया।

किन्तु यह मत सर्वमान्य नहीं हुआ। जीमूतवाहन ने इसे अस्वीकार कर दिया। उनके अनुसार स्त्री-धन वही छः प्रकार का रहा। केवल उन्हीं ने नहीं, अन्य विद्वान् भाष्यकारों ने भी विज्ञानेश्वर का खण्डन किया। 'माधवीय टीका' का दक्षिण में बड़ा आदर है। उसमें भी उनका विरोध किया गया। 'वीरमित्रोदय' ने मिताक्षरा का समर्थन किया, किन्तु यह प्रकट किया कि यदि स्त्री की सभी सम्पत्ति 'स्त्री-धन' कह भी दी जाय तो भी इतना मानना ही पड़ेगा कि सभी स्त्री-धन पर स्त्री का पूरा अधिकार नहीं है। वीरमित्रोदय का काशी में आदर है और काशीमत के अनुसार विज्ञानेश्वर का सिद्धान्त मान्य नहीं हुआ। महाराष्ट्र में 'व्यवहार-मयूख' प्रामाणिक माना जाता है। उसने स्त्री-धन का अर्थ मिताक्षरा के अनुसार तो लगाया, किन्तु उसने उत्तराधिकार के अध्याय में स्त्री-धन और पारिभाषिक स्त्री-धन में विभेद कर दिया। इस प्रकार वह भी पूर्णरूप से सहमत नहीं हुआ। मदरास में 'पाराशरमाधव्य' और 'स्मृतिचन्द्रिका' का विशेष स्थान है। ये दोनों मिताक्षरा के मत का खण्डन करते हैं। इनका मत है कि स्त्री-धन का अर्थ विज्ञानेश्वर के कथित अर्थ की तरह अपरिमित नहीं होना चाहिए। मिथिला का प्रामाणिक ग्रन्थ 'विवादचिन्तामणि' है। इसका भी वही मत है जो स्मृतिचन्द्रिका का

है। स्त्री-धन को अपरिमित अर्थ में मानने को यह भी तैयार नहीं है। बंगाल का मत भी इसी प्रकार का है। मिताक्षरा की उक्त परिभाषा से कोई सहमत नहीं है। इतना ही नहीं, आज-कल की विचार-धारा भी उसके पक्ष में नहीं है। स्त्री-धन के कई मुक़द्दमे हुए हैं और सभी में न्यायाधीशों का निर्णय मिताक्षरा के मत के विरुद्ध हुआ है। तथापि अनेक न्यायाधीश और क़ानून के ज्ञाता मिताक्षरा से सहमत हैं और उसे ठीक समझते हैं। पर देश-काल के आचार का इतना प्रबल प्रभाव है और परम्परा ऐसी बँध गई है कि परिवर्तन करने का किसी को साहस नहीं होता।

अब हमें यह जानना है कि स्त्री की वह सम्पत्ति जो पारिभाषिक स्त्री-धन की परिधि के भीतर नहीं आती, उसे कैसे मिली और उस पर उसके अधिकारों का विस्तार कैसे हुआ।

प्राचीन काल से हिन्दू-परिवार संयुक्त चला आता है। भोजन, पूजन और सम्पत्त्यधिकार ये सभी संयुक्त रहा करते थे और परिवार के पुरुषों को एक नियमित और निश्चित क्रम से सम्पत्ति में भाग मिला करता था। स्त्रियों को पारिवारिक सम्पत्ति में कोई हिस्सा नहीं मिलता था और उनका कुछ भी अधिकार नहीं था। धीरे धीरे संयुक्त परिवार टूटने लगे और पुरुषों में आपस में सम्पत्ति का बँटवारा होने लगा। अब एक अड़चन पड़ने लगी। बँटवारा होने से सम्पत्ति की वह मद जिससे स्त्रियों का पालन-पोषण होता था, कई टुकड़ों में बँट जाने लगी। अब एक ही उपाय था। या तो किसी एक विशेष हिस्सेदार को अधिक हिस्से दे दिये जायँ, जिससे वह स्त्रियों के भरण-पोषण का उत्तर-दायित्व उठा सके या उन्हीं को सम्पत्ति में से कुछ दिया जाय जिससे वे अपना निर्वाह कर सकें।

इस प्रकार स्त्रियों का पारिवारिक सम्पत्ति में केवल हिस्सा ही नहीं रहा, किन्तु उन्हें उत्तराधिकार भी प्राप्त हो गया। फिर भी उनका सम्पत्ति का अधिकार निर्वाह के लिए केवल उसका उपभोग-मात्र था। वे उसकी यथार्थ स्वामिनी नहीं हो पाईं।

इस प्रकार की स्त्रियों में सर्वप्रथम स्थान 'पुत्री' का है। प्रारम्भ में यह अधिकार केवल उन्हीं पुत्रियों को मिला जो अपने पिता के लिए नियोग से पुत्र उत्पन्न करती थीं। ऐसी पुत्रियों के बाद धीरे धीरे अन्य पुत्रियाँ भी सम्पत्ति की अधिकारिणी होने लगीं।

पुत्री के बाद माता उत्तराधिकारिणी मानी गई। माता का नाम आने का प्रधान कारण यह है कि वह पुत्र से श्राद्ध-तर्पण आदि पाने की अधिकारिणी है।

पुत्री और माता के बाद विधवा पत्नी का स्थान है। यद्यपि आज वह उन दोनों से गणना में ऊँची समझी जाती है, फिर भी उसे अधिकार उनके बाद मिला है।

प्राचीन काल से ही विधवा अपने पति के उत्तराधिकारियों से निर्वाह के लिए धन पाने की अधिकारिणी थी। यदि कोई पुरुष निःसन्तान मर जाता या संन्यास धारण कर लेता था तो उसके भाई उसकी सम्पत्ति आपस में बाँट लेते थे और उसकी विधवा को निर्वाह के लिए यथेष्ट धन दे देते थे।

धीरे धीरे प्रवृत्ति यह होने लगी कि यदि मृत पुरुष की सम्पत्ति थोड़ी है तो वह सारी ही विधवा को उसके जीवन भर के लिए दे दी जाय। इसी प्रथा के आधार पर श्रीकर ने लिखा है कि केवल स्वल्प सम्पत्ति पर ही विधवा उत्तराधिकार प्राप्त कर सकती है। एक बार यह प्रथा निकल पड़ने के बाद यह कहना कठिन हो गया कि कौन सम्पत्ति छोटी है, कौन बड़ी है। पति के मरने के बाद विधवा दुःख में न पड़े और पति की श्राद्ध-क्रिया आदि समुचित रूप से कर सके, इसके लिए यह नियम चल पड़ा कि जब तक वह जीवित रहे तब तक सम्पत्ति चाहे छोटी हो या बड़ी उसी के हाथ में रहे। वह उसका पूर्ण उपभोग करे, किन्तु उसे बेचने या किसी को देने का अधिकार न हो और उसकी मृत्यु के बाद उसके पति का वास्तविक उत्तराधिकारी उसे ले ले।

नियोग की प्रथा का भी इस पर बहुत कुछ प्रभाव पड़ा। गौतम के कथनानुसार जान पड़ता है, प्रारम्भ में केवल वही विधवा सम्पत्ति में उत्तराधिकार पाती थी जो नियोग-द्वारा पति के नाम पर पुत्र उत्पन्न करती थी। किन्तु काल-क्रम से यह प्रथा उठ गई। पति के पहले उत्तराधिकारी स्वभावतः यह नहीं चाहते थे कि स्त्री एक नया उत्तराधिकारी उत्पन्न करके उन्हें सम्पत्ति से वञ्चित कर दे। इसलिए पीछे यह शर्त लगा दी गई कि स्त्री को सम्पत्ति तभी मिलेगी जब वह पवित्रता से जीवन पालन करेगी।

बहन का स्थान सबसे पीछे आता है। गोत्रज सपिण्ड न होने के कारण उसका अधिकार सबसे पीछे है। किन्तु बहन के अधिकार के सम्बन्ध में बहुत-से विवाद चलते आये हैं। किन्तु अब १९२९ के हिन्दू-उत्तराधिकार के क़ानून के पास हो जाने के कारण काशी, महाराष्ट्र, मदरास और मिथिला में बहन को उत्तराधिकार में निश्चित स्थान मिल गया है, साथ साथ पुत्र की कन्या, पुत्री की कन्या और बहन के लड़के को भी स्थान मिला है। बंगाल में यह नियम लागू नहीं है और वहाँ बहन अब भी उत्तराधिकारिणी नहीं समझी जाती।

स्त्रियों के अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगने के तीन प्रकार के कारण हैं—धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक।

(१) धार्मिक कारण—जैसा कि डाक्टर राजकुमार सर्वाधिकारी ने कहा है कि हिन्दुओं की उत्तराधिकार-सम्बन्धी व्यवस्थाओं का मूल-मंत्र है पितृ-पूजा। पितृ-पूजा में तीन पीढ़ी तक पितरों की गणना की जाती है। इनकी पूजा अर्थात् श्राद्ध-प्रथा का प्रभाव व्यवस्था-शास्त्र के और अंगों से अधिक उत्तराधिकार पर पड़ा। विष्णु ने अपना मत निश्चित किया कि जो सम्पति का उत्तराधिकारी होगा उसे सम्पत्ति के भूतपूर्व स्वामी को पिण्डदान अवश्य देना पड़ेगा। धर्म, समाज और व्यवस्था-शास्त्र, तीनों ने मिलकर पिण्डदान को उत्तराधिकार के साथ चिरन्तन बन्धन में बाँध दिया।

इस प्रथा का सबसे विषमय परिणाम पड़ा स्त्रियों के अधिकारों पर। पितरों को पिण्ड-दान मिलता रहे, इसके लिए आवश्यक था कि वंश युग-युग तक क़ायम रहे। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि स्त्रियों का अस्तित्व गौण विषय हो गया। फिर दूसरी आवश्यकता यह भी थी कि जो पुरुष पिण्ड दे वह सम्पत्ति ज़रूर पावे। बंगाल तो एक क़दम और आगे बढ़ गया। जीमूतवाहन ने यह लिख दिया कि जो पिण्डदान दे सकता है वही सम्पत्ति भी पा सकता है। पुरुषों को पिण्ड देने का स्त्रियों से अधिक अधिकार था, इसी लिए सम्पत्ति भी प्रायः वही पाने लगे। मिताक्षरा ने इसे नहीं माना। फिर भी इतना हुआ कि उत्तराधिकार से पाई हुई सम्पत्ति पर स्त्री का स्वत्व बिलकुल परिमित हो गया। उसे केवल उपभोग का अधिकार मिला।

(२) सामाजिक कारण—प्रतिबन्धों के लगने में सामाजिक कारणों का प्रभाव तीन प्रकार से पड़ा। पहली बात तो यह थी कि प्रारम्भ में समाज राजनैतिक दृष्टिकोण से सुदृढ़ नहीं था। सम्पत्ति की रक्षा का भार सम्पत्ति के अधिकारियों पर ही रहता था। परिवार में पुरुषों पर ही इसका भार रहता था। इसी कारण सभी की यह चेष्टा रहती थी कि परिवार में जितने ही पुरुष हों उतना ही अच्छा। इसी से शास्त्रों ने बारह प्रकार के पुत्र और आठ प्रकार के विवाह माने। दूसरी बात रक्त की शुद्धता थी। देश समृद्धिशाली था, किन्तु सुव्यवस्थित नहीं था। बाहर से बहुत-सी जातियाँ आक्रमण किया करती थीं। आर्यों का रक्त शुद्ध रहे और बाहर से उसमें कोई सम्मिश्रण न होने पावे, इसकी चेष्टा की गई। इसका पहला परिणाम यह हुआ कि स्त्रियाँ घरों में बन्द कर दी गईं। उनकी रक्षा करने के लिए पुरुष अपनी जान देने लगे। यह प्रवृत्ति यहाँ तक बढ़ी कि धीरे धीरे असवर्ण विवाह उठने लगे, अनुलोम विवाह निषिद्ध हो गया, चरित्र की शुद्धता पर अधिक ज़ोर दिया जाने लगा और पहले जो आठ प्रकार के विवाह शास्त्रोक्त थे उनकी संख्या केवल दो रह गई। नियोग की प्रथा भी एकदम उठा दी गई। इसका परिणाम अच्छा भी हुआ और बुरा भी। सामाजिक आचरण की शुद्धता की सतह बहुत ऊपर उठ गई, विशृंखलता घट गई, परिवारों में संगठन आ गया, किन्तु स्त्रियाँ परतंत्र हो गईं और उनके आर्थिक अधिकारों के प्रति व्यवस्थापक उदासीन हो गये। आर्थिक स्वतंत्रता से व्यावहारिक स्वतंत्रता भी आ जाती है और इसे शास्त्रकार पसन्द नहीं करते थे अतएव उन्होंने स्त्रियों की आर्थिक स्वतंत्रता की जड़ ही काट दी। तीसरा कारण यह हुआ कि पारिवारिक संगठन के बाद धीरे धीरे परस्पर सहयोग की भावना प्रोत्साहित की जाने लगी। चेष्टा की गई कि परिवार के व्यक्तियों में प्रतियोगिता की भावना हटाकर सहयोग के विचार रक्खे जायँ। शास्त्रकारों ने पृथक् सम्पत्ति के विरुद्ध और संयुक्त पारिवारिक सम्पत्ति के पक्ष में व्यवस्थायें बनाईं। यह सब किसी बुरे अभिप्राय से नहीं, किन्तु सद्विचार से किया गया और इसका परिणाम भी पारिवारिक दृष्टि से अच्छा ही हुआ, किन्तु स्त्रियों को यहाँ भी घाटा ही रहा। उनके अधिकार परिवार के हित के लिए बलिदान कर दिये गये और उन्होंने सब कुछ चुपचाप सह लिया।

(३) आर्थिक कारण—संयुक्त पारिवारिक संगठन का परिणाम स्त्रियों के स्वत्वाधिकार पर आर्थिक दृष्टि-कोण से भी बहुत पड़ा। भारत कृषि-प्रधान देश रहा है और अब भी है। घर-द्वार, खेत-खलिहान, हिन्दू कृषक-परिवारों की यही प्रधान सम्पत्ति है। अब इस प्रकार की सम्पत्ति यदि परिवार के संयुक्त अधिकार में रहे तो ठीक है। किन्तु यदि उसमें रोज़ बँटवारा होने लगे तो बड़ी अड़चन पड़ेगी। उससे सम्पत्ति का मूल्य भी घट जायगा और असुविधा भी होगी। बँटवारा होना बुरी बात है, फिर भी इसके बिना काम नहीं चलता, इसलिए पुरुषों में बँटवारा हो सकता है। किन्तु यदि स्त्रियों को भी वह अधिकार दिया जाय तो विषम समस्या खड़ी हो जायगी। स्त्री विवाह होने के बाद एक परिवार से दूसरे परिवार में चली जाती है। यदि उसे सम्पत्ति मिले तो वह भी बँटकर दूसरे परिवार में चली जायगी। इसमें दोनों को ही असुविधा होगी। इसलिए शास्त्रकारों ने यह नियम बना दिया कि पुत्रों को तो पारिवारिक सम्पत्ति में भाग दो, किन्तु कन्याओं को नहीं। दूसरा कारण यह हुआ कि स्त्रियाँ व्यवहार-कुशल और बहुत पढ़ी-लिखी नहीं होती थीं और सम्पत्ति का सुप्रबन्ध नहीं कर सकती थीं। इसलिए उन्हें सम्पत्ति में अधिकार न देकर उनके उचित निर्वाह का प्रबन्ध कर दिया गया।

डाक्टर देशमुख के बिल का अभिप्राय हिन्दू-स्त्रियों के सम्पत्ति-सम्बन्धी प्राप्ति, उपभोग और पृथक्करण के अधिकारों पर लगे हुए प्रतिबन्धों को हटाना है। उसके अनुसार स्त्रियों को भी पुरुषों की तरह सम्पत्ति पर पूरा और हर तरह का अधिकार मिलना चाहिए। वह स्त्री-धन के पारिभाषिक अर्थ को उड़ा देगा और केवल उसके वैयुत्पत्तिक अर्थ को मानेगा। परिवार में स्त्री और पुरुष समान अधिकार पावेंगे और साम्यभाव से साथ रहेंगे।

बिल के गुण-दोषों के विषय में अभी कुछ भी निश्चित रूप से कहना अत्यन्त कठिन है। परिवर्तन-वादी कहते हैं कि स्त्रियों को पुरुषों की सतह पर रखना आवश्यक है। योरप और अमरीका ने जो उन्नति की है उसमें स्त्रियों का बहुत बड़ा हाथ है और स्त्रियों में जागरण तभी हुआ है जब उन्हें अपने सामाजिक और आर्थिक अधिकारों की याद आई है। भारत में भी स्त्रियों को स्वतंत्र बनाना आवश्यक है। जब तक वे स्वतंत्र नहीं होतीं तब तक राष्ट्रीय जागरण नहीं हो सकता और स्वतंत्रता नहीं मिल सकती। इसके विरुद्ध अपरिवर्तनवादी कहते हैं कि योरप और अमरीका ने जो कुछ किया है वही हमारा भी कर्त्तव्य है, ऐसी कोई बात नहीं है। पारिवारिक हित सहयोग में है, प्रतियोगिता में नहीं। प्रजातंत्र का युग जा रहा है और तानाशाही का युग आ रहा है। इसका अर्थ है कि सभी में प्रकृतिदत्त सुप्रबन्ध करने की शक्ति नहीं होती। इसलिए जिसे ईश्वर ने शक्ति दी है उसी के हाथ में सम्पत्ति छोड़ देना अच्छा है।

दोनों दलों की दलीलों में थोड़ी बहुत सचाई है। यह सच है कि स्त्रियों में जागरण आने के लिए उन्हें कुछ आर्थिक स्वतंत्रता मिलना ज़रूरी है, किन्तु यह भी सच है कि पारिवारिक हित के लिए दो में से एक को किसी अंश तक परतंत्र होकर रहना ही पड़ेगा और प्रकृति का तक़ाज़ा है कि स्त्री पुरुषों के संरक्षण में रहे। अधिकार-चर्चा के जोश में चाहे जो भी कह दिया जाय, किन्तु असलियत यही है कि स्त्री का सबसे बड़ा भरोसा पुरुष की ताक़त में है। प्रकृति के इस अटल नियम को कोई नहीं उलट सकता। पुरुषों के बलवान् होने में ही स्त्रियों का भी कल्याण है।

स्त्रियों को सम्पत्ति पर अधिकार मिलना चाहिए और ज़रूर मिलना चाहिए, पर कैसा और कितना मिलना चाहिए, यह एक बहुत बड़ा प्रश्न है। यह प्रश्न आज हमारी प्रधान व्यवस्थापिका सभा के सामने उपस्थित है। एक ओर नवयुग की क्रान्ति की लहर है और दूसरी ओर प्राचीनयुग की रूढ़ियों की दीवार। दोनों बलवान् हैं, दोनों कठोर हैं, फिर भी दोनों को ही झुकना पड़ेगा। दोनों के समझौते में ही कल्याण है।*

* डाक्टर देशमुख के बिल को असेम्बली ने अपनी ४ फ़रवरी की बैठक में पास कर दिया है। परन्तु उसमें सेलेक्ट-कमिटी ने बहुत कुछ काँट-छाँट दिया है। जिस सुधरे हुए रूप में वह पास हुआ है उसमें केवल विधवाओं को ही अधिकार दिया गया है।—सम्पादक]

बाल-विधवा

लेखक,
श्रीयुत ठाकुर गोपालशरणसिंह

माँ के समीप तू सोई थी,
सौभाग्य-सूर्य जब उदय हुआ।
तू चली आरती जब लेकर,
तेरे जीवन में प्रलय हुआ॥

पूजा की सारी सामग्री,
रह गई जहाँ की तहाँ वहीं।
पर प्रिय-पूजा का अधिकारी,
अवनी में कोई रहा नहीं॥

हम कितने दिन के लिए कहें,
दो मृदु हृदयों का मिलन हुआ।
क्या है जग में रह गया तुझे,
जीवन-धन का ही निधन हुआ॥

जब प्रेम-मिलन की चाह हुई,
तब चिर-वियोग की व्यथा हुई।
ज्यों ही उसका आरम्भ हुआ,
त्यों ही समाप्त वह कथा हुई॥

खिलते ही मुरझा गई हाय,
तू भोली भाली नई कली।
किस निठुर नियति के हाथों से,
तू इस प्रकार है गई छली॥

अनुराग नया अभिलाष नया,
व्यवहार नया शृङ्गार नया।
पल भर में सहसा लुप्त हुआ,
वह सोने का संसार नया॥

तू कभी नहीं कुछ कहती है,
चुपचाप सभी कुछ सहती है।
जग में रस-धारा बहती है,
पर तू प्यासी ही रहती है॥

तेरे मन में ही छिपी हुई,
रोती हैं सब चाहें तेरी।
उर के भीतर ही गूँज गूँज,
रह जाती हैं आहें तेरी॥

तेरे अशान्त उर-सागर में,
दुख का प्रवाह ही बहता है।
जीवन-प्रदीप तेरा बाले,
सब काल बुझा-सा रहता है॥

उर को सँभालती रहती है,
मन को मसोसती रहती है।
निज लोलुप लोल विलोचन को,
तू सदा कोसती रहती है॥

सुन्दर सरोज को घेर घेर,
मधुपावलियाँ मँडराती हैं।
वह दृश्य देखकर क्यों बाले,
तेरी आँखें भर आती हैं॥

वल्लरी लिपट कर तरुवर से,
जब फूली नहीं समाती है।
उस प्रेमालिंगन को विलोक,
क्यों तू उदास हो जाती है॥

लुट गया हाय, सब कुछ तेरा,
जग में किसकी यों लूट हुई।
सुख-सामग्री जगतीतल की,
तेरे हित विष की घूँट हुई॥

बस मूल मंत्र है त्याग तुझे,
है और वस्तु का ध्यान नहीं।
इस दुनिया में है हुआ तुझे,
अपनेपन का भी ज्ञान नहीं।

चढ़ते सूरज की आदर से,
सब दुनिया पूजा करती है।
पर अस्त हो गये दिनकर पर,
बस तू ही जग में मरती है॥

है कौन समझ सकता बाले,
तेरी दुनिया की बातों को।
तेरे सन्ताप-भरे उर की,
मृदु बातों को प्रतिघातों को॥

चुकती है नहीं निशा तेरी,
है कभी प्रभात नहीं होता।
तेरे सुहाग का सुख बाले,
आजीवन रहता है सोता॥

हैं फूल फूल जाते मधु में,
सुरभित मलयानिल बहती है।
सब लता-वल्लियाँ खिलती हैं,
बस तू मुरझाई रहती है॥

शुचि विफल प्रेम की ज्वाला में,
तू हरदम जलती रहती है।
अपने मृदु-भाव-प्रसूनों को,
तू नित्य कुचलती रहती है॥

अविरल दृग-जल का स्रोत चपल,
है तेरे जीवन का पल पल।
भीगा ही रहता है हरदम,
हा, तुझ अभागिनी का अंचल॥

सब आशायें-अभिलाषायें,
उर कारागृह में बन्द हुईं।
तेरे मन की दुख-ज्वालायें,
मेरे मन में कुछ छन्द हुईं॥

किस कवि में है यह शक्ति भला,
कह दे आन्तरिक व्यथा तेरी।
उर-तल से निकली आहों ने,
लिख दी है क्लेश-कथा तेरी॥

हमारी गली

लेखक,
प्रोफ़ेसर अहमदअली
एम० ए०

इस कहानी के लेखक महोदय उर्दू के प्रसिद्ध लेखक हैं और लखनऊ-विश्वविद्यालय में अँगरेज़ी के अध्यापक हैं। इनकी 'अङ्गारे' और 'शोले' आदि रचनाएँ बड़ी प्रसिद्धि पा चुकी हैं। आशा है हिन्दी में भी इनकी इस रचना का स्वागत होगा।

मेरा मकान चेलों की गली में था। मेरे कमरे के दरवाज़े में दो पट थे। नीचे का हिस्सा बन्द कर देने से केवल ऊपर का हिस्सा एक खिड़की की तरह खुला रह जाता था। यह खिड़की पतली सड़क पर खुलती थी। सामने दूधवाले मिर्ज़ा की दूकान थी, और मेरे मकान के दरवाज़े के बराबर सिद्दीक़ बनिये की, और उसके पास अज़ीज़ ख़ैराती की। आस-पास कहारों की दूकानें, अत्तार की दूकान, पानवाले की, और दो-चार दूकानें थीं; जैसे—क़साई, बिसाती और हलवाई की दूकानें।

हमारे मुहल्ले से होकर लोग दूसरे मुहल्लों को जा सकते थे। इसलिए सड़क बराबर चला करती और तरह-तरह के लोग रास्ता बचाने के लिए मेरी खिड़की के सामने से जाते। कभी कोई सफ़ेद कपड़ा पहने गर्मी की चिलचिलाती धूप में छाता लगाये हुए चला जाता; कभी शाम को कोई विलायती मुण्डा पहने, अँगरेज़ी टोपी लगाये छिड़काव के पानी से बचता हुआ, अपने कपड़ों को छींटों से बचाता, बच्चों और लड़कों से अलग होता हुआ या उनके घूरने पर गुर्राता और आँखें निकालता हुआ नाक की सीध चला जाता। कभी-कभी रास्ता चलनेवाला तङ्ग आकर लड़कों को मारने के लिए लकड़ी या छाता उठाता। दूर भाग कर लड़के चिल्लाते—"लूलू है बे; लूलू है।" दूधवाले मिर्ज़ा की भर्राई हुई बोली सुनाई देती—"अबे लम्डो, क्या करते हो? तुमको घरों में कुछ काम नहीं।" और अगर कोई पास बैठा होता तो मिर्ज़ा उससे कहने लगता—"इनकी माओं को तो देखो, लौंडों को छोड़ रक्खा है कि साँड-बैलों की तरह गलियों में रौला मचाया करें। हरामज़ादों को गाली-गलौज और धींगा-मुश्ती के अलावा कुछ और काम ही नहीं।"

मिर्ज़ा की छोटी-छोटी आँखें चमकने लगतीं, वह अपनी सफ़ेद तिकोनी दाढ़ी पर एक हाथ फेरता और किसी ख़रीदनेवाले की ओर देखने लग जाता। कुंडे में से दही और कड़ाई में से दूध निकालकर मलाई का टुकड़ा डालता और लेनेवाले की ओर बढ़ा देता।

लोग कहते थे कि मिर्ज़ा की धमनियों में भलमनसाहत का ख़ून दौरा करता है। लड़कपन में सबक़ याद न करने पर उसके बाप ने उसको घर से निकाल दिया और कुछ दिन मारे-मारे फिरने के बाद उसने दूकान कर ली। उसके पीछे अक्सर उसके बाप ने क्षमा माँगी और ख़ुशामद भी की, लेकिन मिर्ज़ा ने घर लौट जाने से इनकार कर दिया। फिर मिर्ज़ा ने विवाह कर लिया और उसका काम चल निकला। उसकी दूकान के छोटे-छोटे मलाई के पेड़े शहर भर में प्रसिद्ध थे। और उसका दूध बड़ा सुस्वादु होता था। रात को जब कोई दूध लेने आता तब वह उसको सकोरे और लुटिया में ख़ूब उछालता, यहाँ तक कि उसमें से झाग निकलने लगता। फिर खपचे से मलाई का टुकड़ा इस सावधानी से तोड़ता कि दूध हिलने तक न पाता। उसकी बीबी अक्सर दूकान पर बैठा करती। वह बूढ़ी हो गई थी, उसके चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ी हुई थीं, उसकी कमर झुक गई थी और मुँह में एक दाँत बाक़ी न था। उसके ऊँचे डीलडौल और गोरे रङ्ग से मालूम होता था कि वह किसी अच्छे घराने की औरत है।

लेकिन अब उसका काम-काज कम हो गया था, क्योंकि बुढ़ापे के कारण वे अब ज़्यादा मेहनत न कर सकते थे। उनका इकलौता बेटा मर चुका था और अब उनका हाथ बँटानेवाला कोई न था। असहयोग के दिनों में जब आज़ादी के विचार देश में इधर से उधर हलचल मचाये हुए थे, मिर्ज़ा का लड़का अपने साथियों के साथ जलूस में गया था। "गांधी की जय" और "वन्दे मातरम्" के नारों से वातावरण गूँज रहा था। घंटाघर पर गोलियों की बौछार में बहुत-से आदमी काम आये और मिर्ज़ा का बेटा भी मरनेवालों में था। बड़ी देर के बाद जब लाश ले जाने पर कोई रोक न रही तब लोग मिर्ज़ा के लड़के की लाश को उसके घर लाये।

सारी दूकानें बन्द थीं। मुहल्ले में सन्नाटा छाया हुआ था। जाड़ों की धूप ठंडी और बेजान-सी देख पड़ती थी। नालियों में सफ़ाई न होने के कारण उनमें सड़ान फूट रही थी। जब लाश घर आई तब मिर्ज़ा और उसकी बीबी सन्न रह गये। उनको किसी तरह विश्वास न होता था कि उनका बेटा जो अभी अभी ज़िन्दा था, हँस-बोल रहा था, जिसने सबेरे ही पेड़े बनाये थे, कड़ाई माँजी थी, जो कपड़े पहनकर अपने किसी साथी से मिलने गया था, अब ज़िन्दा नहीं, बल्कि मर चुका है। वे बार-बार ख़ून से लथपथ लाश को देखते थे। मिर्ज़ा की बीबी लाश से लिपटकर फूट-फूटकर रो रही थी। लोगों ने उसको अलग करना चाहा, लेकिन वह एक मिनट के लिए भी लाश से अलग न होती थी। वह "हाय मेरे लाल, हाय मेरे लाल" कह कहकर रोती थी, और कभी कभी उसके मुँह से ज़ोर की चीख़ निकल जाती थी। मिर्ज़ा पागलों की तरह, कभी घर के अन्दर और कभी बाहर बौखलाया फिरता था। सिद्दीक़ बनिये ने अपनी दूकान खोल ली थी। मिर्ज़ा जब बाल बिखेरे हुए उधर होकर गया तब सिद्दीक़ ने आवाज़

दी और पूछा—"भाई, बड़ा अफ़सोस हुआ। क्या वाक़या हुआ?"

मिर्ज़ा की आँखों में एक भी आँसू बाक़ी न था, लेकिन उसके सारे चहरे पर शोक अंकित था। "तक़दीर फूट गई, मेरा पला-पलाया लड़का जाता रहा।" यह कहकर मिर्ज़ा फिर घर की ओर चला गया।

ख़रीदनेवाले जो खड़े थे, पूछने लगे—"क्या हुआ?" सिद्दीक़ ने झुककर देखा। उसी समय हवा का एक तेज़ झोंका आया, गर्द और ग़ुबार उड़ने लगा। एक काग़ज़ का टुकड़ा हवा में उड़ा और कुछ दूर ऊपर जा उलटता-पुलटता नीचे की ओर गिरने लगा। मिर्ज़ा के बाल हवा में उड़ रहे थे और वह गली में छिप-सा गया।

"क्या हुआ? असहयोग करने गया था, गोली लगी और मर गया। न जाने अपने काम में जी क्यों नहीं लगाते? सरकार के ख़िलाफ़ जाने का नतीजा यही है। तगड़ा जवान था। इन दोज़ख़ के चींटों और खद्दर-पोशों का शिकार हो गया।" यह कहते कहते सिद्दीक़ ने मटके के मुँह में एक चमचा डाला। बहुत-से मटके दीवार में गड़े हुए थे और कबूतरख़ाने की तरह देख पड़ते थे। चमचे से दाल निकालकर सिद्दीक़ ने गाहक की ओर बढ़ाई। ग्राहक जो बेमना हो सिद्दीक़ की बातें सुन रहा था, दाल को अपने कपड़े में बाँधने लगा कि एकाएक उसे दाल देख पड़ी और वह बोला—"वाह मियाँ बाश्शा, यह कौन-सी दाल दे दिये हो? मैंने तो अरहर की माँगी थी, ज़री फुर्ती करो। मुझे देरी होरी है। बीबी बकेगी।"

घर में मिर्ज़ा की बीबी सिर देकर मार रही थी। बबि... कर करके रोती थी, और अँगरेज़ों और गांधी को कोसती थी। यासीन की माँ को जब इस घटना का समाचार मिला तब वह सान्त्वना देने के लिए आई। उसका जवान लड़का भी दीवार के नीचे दबकर मर गया था और वह अपने नन्हें-नन्हे बच्चों को सिलाई करके पालती थी। दोनों गले मिलकर ख़ूब रोईं। और मिर्ज़ा की बीबी को तनिक धैर्य हुआ। आख़िर लड़के को दफ़न करने ले गये। रात अँधेरी थी और बेबसी अँधेरे की तरह सारे में फैली हुई थी। हवा ठंडी थी और मुहल्ले में सील के कारण जाड़ा और भी मालूम होता था। लैम्पों की धीमी रोशनी में मुहल्ला भयानक और डरावना मालूम हो रहा

था, सड़क पर कोई सजीव वस्तु नहीं देख पड़ती थी, केवल मिर्ज़ा की दूकान में कई एक बिल्लियों के गुर्राने और गड़बड़ की आवाज़ आ रही थी।

इस घटना के कुछ दिनों के बाद तक भी अक्सर मिर्ज़ा की बीबी के दर्द से भरे गाने की आवाज़ आया करती—

"गई यक बयक जो हवा पलट
नहीं दिल को मेरे क़रार है।"

लेकिन फिर वह चुप रहने लगी और काम-काज में लग गई।

× × ×

मेरे मकान की ड्योढ़ी में खजूर का एक पुराना पेड़ था। एक ज़माने में उसमें फल लगा करते थे और शहद की मक्खियाँ खाने की खोज में नीचे उतर आती थीं। उसकी बड़ी बड़ी डालों पर प्रायः जानवर आकर बैठते थे और भूले-भटके कबूतर रात को बसेरा लिया करते। लेकिन अब उसके पत्ते झड़ गये थे। डालियाँ गिर चुकी थीं, और उसका तना काला और भयानक, रात के अँधेरे में उस बाँस की तरह खड़ा रहता जो खेतों में जानवरों को डराने के लिए गाड़ दिया जाता है। अब न उस पर जानवर मँड़राते थे, न शहद की मक्खियाँ उस ओर आती थीं। हाँ, कभी कभी कोई कौवा उसके ठूँठ पर बैठकर काँव-काँव करता और अपना गला फाड़ता या कोई चील थोड़ी देर बैठकर चिलचिलाती और फिर उड़ जाती। सवेरे के बढ़ते हुए प्रकाश में तना आकाश में चमक उठता, लेकिन सायंकाल को सूर्य के विश्राम करने के पश्चात् रात को बढ़ती हुई अँधेरी में धीरे धीरे दृष्टि से ओझल हो जाता और रात में मिल जाता। रात को प्रायः घर आते समय मेरी दृष्टि उसके मोटे और भयानक तने पर पड़ती, फिर उसके साथ साथ उड़ती हुई आकाश पर जाती। तारे चमकते हुए होते और ठीक उसके सिरे पर..............का अन्तिम तारा मुझको दिखाई देता, लेकिन वह तना मेरी दृष्टि और आसमान के बीच एक प्रकार से रुकावट डालता और मैं तारों के फैलाव को न देख सकता।

× × ×

मुहल्ले में प्रायः एक पागल औरत आया करती। किसी ने उसके बाल काट दिये थे और उसका सिर उसके मोटी और भारी देह पर एक अख़रोट की भाँति दिखाई देता। दयालु पुरुष कभी कभी उसे कपड़े पहना दिया करते, लेकिन कुछ ही घंटों के बाद वह फिर नंगी हो जाती थी। या तो कोई कपड़ों को उतार लेता या वह ख़ुद उनको फाड़कर फेंक देती। उसके मुँह से हमेशा राल बहा करती और उसके हाथ अकड़े हुए रहते। वह प्रायः मटक मटक-कर सड़क पर नाचती, थिरकती और गूँगों की तरह कुछ गुन गुन करती। जैसे ही वह मुहल्ले में आती, लड़कों का एक गोल उसके पीछे तालियाँ बजाता और पगली कह कहकर पत्थर फेंकता और मुँह चिढ़ाता। औरत "एँ एँ" करती और कोनों में छिपती फिरती। जब कभी मिर्ज़ा की दूकान के सामने ये बातें होतीं तब मिर्ज़ा लड़कों पर चीख़ता—"अबे सुसरो, तुम्हें मरना नहीं है। भागो यहाँ से, दूर हो।" लेकिन थोड़ी ही देर के बाद लड़के फिर इकट्ठे हो जाते।

बड़े आदमी भी प्रायः उससे मज़ाक करते। वह बदसूरत ज़रूर थी, लेकिन उसकी उम्र ज़्यादा न थी। उसका पेट बढ़ा हुआ था और अक्सर मुन्नू जो खाते पीते घराने का लड़का था, लेकिन अब बदमाशों से मिल गया था, कहता, "क्यों? तेरे बच्चा कब होगा?" और पगली एक दर्द-भरी, जानवरों की-सी आवाज़ निकालती और अपने हाथ आगे बढ़ा के जो ढीले और लिजलिजे रहते—किसी राहगीर या दूकानदार की ओर कर मुन्नू की ओर संकेत करती। उसकी उस भर्राई हुई आवाज़ में एक विनय होती, बेकस व बेबस व्यक्ति की वह प्रार्थना जो वह अपने स्वामी या अपने से अधिक शक्तिशाली से करता है कि 'मुझे क्षमा करो और बचा लो'। लेकिन और लोग भी मज़ाक करने में मिल जाते और ज़ोर ज़ोर से क़हक़हा लगाकर हँसते...।

हिन्दुस्तान में हज़ारों लोग ऐसे हैं जिनको सिवा खाने पीने और मर जाने के और किसी बात से मतलब नहीं। वे पैदा होते हैं, बढ़ते हैं, कमाने लगते हैं, खाते-पीते हैं और मर जाते हैं। इसके सिवा उनको दुनिया की किसी बात से कोई मतलब नहीं। आदमियत की गन्ध उनमें नहीं आती। जीवन की महत्ता का उनको कोई ज्ञान नहीं। जिस प्रकार ग़ुलाम को काम करने और मर रहने के

अतिरिक्त कोई अन्य बात नहीं, उसी प्रकार इनको जीवन का उदय और अस्त एक प्रकार है। इनके लिए दिन काम करने और रातें सो रहने के लिए बनी हैं। बस यही इनका जीवन है और यही इनके जीवन का ध्येय। और केवल मृत्यु ही इनका जीवन से छुटकारा दिला सकती है।

× × ×

एक और चीज़ हमारे मुहल्ले में बहुतायत से दीख पड़ती और वे थे कुत्ते मरे हुए और भूख से सताये। बहुतों को खुजली थी और उनकी खाल में से मांस दिखाई पड़ता था। अपने बड़े बड़े दाँतों को निकालकर वे अपने पुट्ठों को खुजाते थे या क़साई की दूकान के सामने एक हड्डी के पीछे एक-दूसरे को नोचते और लहूलुहान कर देते। वे अपनी दुमें टाँगों के बीच दबाये नालियों को सूँघते दबे दबे आते और क़साई की दूकान पर छीछड़ों पर झपटते, लेकिन जैसे ही उनको गोश्त का कोई टुकड़ा या हड्डी दिखाई देती तो चीलें ऊपर से झपट्टा मारतीं और उनके सामने से उसको उठा ले जातीं। फिर वे एक ऐसे आदमी की तरह जो कुछ लज्जित हो चुका हो, अपनी दुम दबाये हुए सड़क को सूँघा करते या अपनी झेंप आपस में लड़ाई करके और एक-दूसरे का ख़ून बहाकर निकालते।

× × ×

प्रातःकाल को बड़े सवेरे शेरा चने बेचनेवाले की आवाज़ आती। वह अपनी झोली में गरम गरम, ताज़े, भुने हुए चने, गली-गली और कूचे-कूचे बेचता फिरता था। उसकी उम्र कोई चालीस साल के थी, लेकिन वह दुर्बल और सूखा हुआ था। उसके चेहरे पर झुर्रियाँ अभी से देख पड़ती थीं। उसकी ख़शख़शी दाढ़ी में सफ़ेद बाल आ गये थे। उसकी आँखें एक बीमार की आँखों की तरह थीं, जिनके नीचे काले घेरे-से पड़े हुए थे और जिनमें भूख और दीनता, रंज और मुसीबत साफ़ झलकते थे। उनके ढेलों में बारीक लाल रगें दूर से दिखाई देती थीं, जैसे या तो नशे में या दिनों के अनशन और बुख़ार के बाद पैदा हो जाती हैं। उसके सिर पर कपड़े की एक मैली टोपी होती थी। गले में फटा हुआ कमीज़, और उसकी ऊँची धोती में से उसकी पतली पतली टाँगें दिखाई देती थीं।

बहुत दिन हुए जब वह हमारे शहर में पास के किसी ज़िले से काम की तलाश में आ गया था। वह रात को एक मस्जिद में पड़ रहता और दिन भर शहर की सड़कों पर मारा मारा फिरता। लेकिन शहर की हालत काम काज मिलने के सम्बन्ध में गाँवों और क़स्बों से किसी तरह अच्छी नहीं थी। इसलिए शेरा को कोई काम न मिल सका। मस्जिद में मीर अमानुल्ला नमाज़ पढ़ने आया करते थे। शेरा ने उनको अपनी कहानी कह सुनाई। मीर साहब को उसकी दयनीय दशा पर दया आ गई और वे उसे अपने घर ले गये। शेरा नेक और ईमानदार आदमी था। कुछ समय के बाद मीर साहब ने उसे पाँच रुपये दिये और कहा—"इससे कोई काम शुरू कर देना, इसी लिए मैं ये रुपये देता हूँ। जब तेरे पास पैसे हों तब यह रक़म वापस कर देना, नहीं तो कोई फ़िक्र की बात नहीं।"

शेरा ने दाल, सेव और काबुली चनों का ख़ोमचा लगाया। कुछ ही दिनों में शेरा को बहुत-से मुहल्लेवाले जान गये और उसका सौदा ख़ूब बिकने लगा। साल भर में ही उसने मीर साहब के रुपये लौटा दिये, अपने बीबी-बच्चों को बुला लिया और एक छोटे-से परिवार में रहने लगा। वह बहुत ख़ुश था।

इसी समय के बीच में अब्दुर्रशीद को स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या के अपराध में फाँसी का हुक्म हो गया था। शहर के मुसलमानों में एक हलचल मच गई। फाँसी के दिन जेल के बाहर हज़ारों आदमियों का झुण्ड था। वे सब दरवाज़े को तोड़कर भीतर घुस जाना चाहते थे। लेकिन जब पुलिस ने अब्दुर्रशीद की लाश को लौटाने से मना कर दिया तब लोगों के जोश और ग़ुस्से का कोई ठिकाना नहीं रहा। उनका बस नहीं चलता था कि किस तरह जेल को मिट्टी में मिला दें, और उस ग़ाज़ी की लाश को एक शहीद की तरह दफ़न करें।

उस दिन शेरा किसी काम से जामामस्जिद की ओर गया हुआ था। आसमान पर धूल छाई थी और सड़कें एक मौन शहर की भाँति सुनसान और उजाड़ मालूम हो रही थीं। पड़े हुए दोनों को चाटते हुए कई-एक कुत्ते उसे दिखाई दिये। एक नाली में एक मरा हुआ कबूतर पड़ा था। उसकी गर्दन मुड़ गई थी, उसकी कड़ी और नीली टाँगें ऊपर उठी हुई थीं, पर पानी में भीग गई थीं। उसकी

एक आँख फटी मालूम हो रही थी। शेरा खड़ा होकर उसे देखने लगा। इतने में सामने सड़क के मोड़ से कलमें की ध्वनि ज़ोर ज़ोर से आने लगी। लोग एक अर्थी लिये आ रहे थे। ज्यों ज्यों अर्थी शेरा के पास आती गई, भीड़ पीछे और भी ज़्यादा दीखने लग गई, यहाँ तक कि दूर दूर तक आदमियों को छोड़कर कुछ दिखाई नहीं देता था। झुण्ड का झुण्ड अब्दुर्रशीद की अर्थी को ले भागा था। शेरा भी उसकी ओर बढ़ा और कन्धा देने में सहायक हो गया। इतने में सामने से पुलिस देख पड़ी। उन्होंने अर्थी को आगे जाने से रोक दिया और कई एक आदमियों को गिरफ़्तार कर लिया। इन लोगों में शेरा भी था और उसको इस उपद्रव में भाग लेने के कारण दो साल की सज़ा हो गई।

अब वह क़ैद भुगत चुका था। लेकिन अब उसके गाहक उसकी आवाज़ को भूल-सा गये थे। उसके पास इतने पैसे न थे कि वह दुबारा ख़ोमचा लगा सके। कुछ लोगों ने चन्दा करके उसे दो रुपये दे दिये और उनसे शेरा ने फिर काम शुरू किया। अब वह चने बेचता फिरता था, लेकिन अब उसकी आवाज़ में वह करारापन न था और मुसीबत और दुःख उसकी हर पुकार में सुनाई देती थी, तो भी बच्चे उसकी आवाज़ सुनकर चने लेने को दौड़ते थे और वह मुट्ठी से निकाल निकाल कर चने तौलता और उनको देता था।

× × ×

एक और आदमी जो हमारे मुहल्ले में हर एक दिन रात को आया करता, एक अन्धा फ़क़ीर था। उसका क़द बहुत छोटा था और उसकी चुग्गी दाढ़ी पर हमेशा ख़ाक पड़ी रहती थी। उसके हाथ में एक टूटा हुआ बाँस का डण्डा रहता था, जिसे टेक टेककर वह आगे बढ़ता था। वह बिलकुल तुच्छ और नाचीज़ मालूम होता था, जैसे कूड़े के ढेर पर मक्खियों का गोल या किसी मरी बिल्ली का ढच्चर। लेकिन उसकी आवाज़ में वह नाउम्मेदी और दर्द था जो दुनिया की अस्थिरता को चित्रित कर देता है। जाड़े की रात में उसकी आवाज़ सारे मुहल्ले में एक असमर्थता-सी फैलाती हुई जैसे कहीं दूर से आती। मैंने आज तक इससे अधिक प्रभाव रखनेवाला स्वर नहीं सुना था और अभी तक वह मेरे कानों में गूँज रहा है। बहादुरशाह की ग़ज़ल उसके मुँह से फिर पुराने शाही ज़माने की याद को नई कर देती थी जब हिन्दुस्तान अपने नये बन्धनों में नहीं जकड़ गया था। और उसकी आवाज़ से केवल बहादुरशाह के रंज का ही अनुमान न होता था, वरन हिन्दुस्तान की गुलामी का रोदन सुनने में आता था। दूर से उसकी आवाज़ आती थी—

ज़िन्दगी है या कोई तूफ़ान है।
हम तो इस जीने के हाथों मर चले॥

लेकिन मुहल्ले के शरीफ़ लोग उसको पैसा देने से घबराते थे, क्योंकि वह (कदाचित्) चरस पीता था, ऐसा समझा जाता था।

× × ×

एक रोज़ रात को मैं अपने कमरे में बैठा हुआ था। गर्मियों की रात और कोई दस बजे का समय था। ज़्यादातर दूकानें बन्द हो चुकी थीं। लेकिन क़बाबी और मिर्ज़ा की दूकानें अभी तक खुली हुई थीं। सड़क के दोनों ओर लोग अपनी अपनी चारपाइयों पर लेटे हुए थे। कुछ तो सो गये थे और कुछ अभी तक बातें कर रहे थे। हवा में ख़ुश्की और गर्मी थी और नालियों में से सड़ान फूट रही थी। मिर्ज़ा की दूकान के तख़्ते के नीचे एक काली बिल्ली घात लगाये बैठी थी, जैसे किसी शिकार की फ़िक्र में हो। एक आदमी ने एक आने का दूध लेकर पिया और कुल्हड़ को ज़मीन पर डाल दिया। बिल्ली दबे पाँव तख़्ते के नीचे से निकली और कुल्हड़ को चाटने लगी। उसी वक़्त मेरी खिड़की के सामने से कल्लो गई और उसके पीछे मुन्नू क़दम बढ़ाता हुआ। कल्लो जवान थी। उसके चेहरे पर एक कान्ति और सुन्दरता थी। उसकी चाल में एक निर्भयता और अल्हड़पन था और उसकी देह जीवन के उभार से पुष्ट और लचीली थी। वह मुन्सिफ़ साहब के यहाँ नौकर थी। मुन्सिफ़ साहब की बीबी ने ही उसे छुटपन से पाला था और अब वह विधवा हो गई थी। उसे विधवा हुए भी तीन वर्ष बीत गये थे, लेकिन मुहल्ले के जवानों की निगाह उस पर गड़ी रहती थी। जब वह गली के मोड़ पर पहुँची तब मुन्नू ने उसका हाथ पकड़ लिया। कल्लो झुँझला कर चिल्लाई—"हट दूर हो मुए। मेरा हाथ छोड़।" पास के एक मकान की छत पर दो बिल्लियों के लड़ने की आवाज़ आई। उसी वक़्त कल्लो ने झटका दिया और अपना हाथ छुड़ा लिया—"झाड़ू पिटे, ज्वाना मरे। समझता है, मुझमें दम नहीं। इतना पिटवाऊँगी कि उम्र भर याद करेगा।"

मिर्ज़ा जो एक ख़रीदार को दूध देने के बाद तनिक देर के लिए घर में चला गया था, उसी वक़्त लौट आया और कल्लो का अन्तिम वाक्य उसे सुनाई दिया। वह बोला—

"क्या बात है कल्लो? क्या हुआ?" लेकिन कल्लो बिना पीछे मुड़े तेज़ी से गली में चली गई।

अज़ीज़ ख़ैराती जो अपनी दुकान के सामने सो रहा था, शोर से उठ गया। वह मुन्नू को खड़ा देखकर पूछने लगा—"अबे मुन्नू, क्या बात है?"

मुन्नू निराशा और क्रोध से भरा खड़ा था। उसका मुँह सूखकर सुन्न-सा मालूम हो रहा था। आँखें साँप की आँखों की तरह ज़हरीली और तेज़ हो गई थीं। कूड़े के ढेर पर एक बिल्ली की आँखें ज़रा देर चमकती हुई दिखाई दीं, लेकिन फिर छिप गईं। मुन्नू ने कुछ खोयी-सी निराशा-भरी आवाज़ में जवाब दिया—"कुछ नहीं यार कल्लो थी।"

ऊपर बिल्लियाँ अभी तक लड़ रही थीं। वे एक भयानक ढङ्ग से ग़ुर्राने के बाद ज़ोर ज़ोर से चीख़ती थीं। यह मालूम होता था कि एक-दूसरे को खा जायँगी। फिर "म्याऊँ म्याऊँ" करके एक भाग निकली और बिल्ला ग़ुर्राता हुआ उसके पीछे पीछे हो लिया।

अज़ीज़ ख़ैराती ने मुन्नू को अपने पलङ्ग पर बिठा लिया और सिरहाने से बीड़ी निकालकर उसकी तरफ़ बढ़ाई, लेकिन मुन्नू ने अपनी कमीज़ की जेब में से चाँदी का सिगरेट-केस निकाला और अज़ीज़ से कहा—"लो मियाँ, तुम भी क्या याद करोगे, मैं तुम्हें बड़ा बढ़िया सिगरेट पिलाता हूँ।" और एक सिगरेट निकालकर अज़ीज़ को दे दिया।

"अरे मियाँ, अबके किसका मार लाया?"

"मियाँ, यारों के पास किस चीज़ की कमी है। जिसको न दे मौला उसको दे आसफ़ुद्दौला। अगर अल्लामियाँ के भरोसे पर रहते तो काम चला लिया था।"

"मियाँ होश की लो, पिस से डरो। दोज़ख़ में जलोगे, तोबा करो!"

"जा यार, यह भी क्या गधों की बातें करता है। मैं तो यह जानता हूँ, 'खाओ पीओ और मज़े करो'। इससे ज़्यादा उस्ताद ने सिखाया नहीं। मैं तो मूँछों को ताव देता हूँ और पड़े पड़े ऐंड़ता हूँ। कहाँ की दोज़ख़ की लगाई। अगर हुई भी तो भुगत लेंगे। अब कहाँ का रोग पाला।"

"बस यार बस, क्यों ख़राब बातें मुँह से निकाल दिया है। सब आगे आ जाता है। सारी अकड़ धरी रह जायगी।"

"अच्छा यार ले तू इस तरह की बातें करने लगा। मैं अब चल दिया।"

"ज़री सुन तो यार, एक बात मुझे दिनों से हरियान कर रही है। क़सम खा, बता देगा।"

"अच्छा जा तू भी क्या याद रक्खेगा। अल्ला क़सम बता दूँगा।"

"यह बता, आख़िर तू चोरी क्यों करता है?"

"भाई, इसकी नहीं बदी थी।"

"देख क़ौल दे चुका है।"

"अच्छा जा, तू जीता, मैं हारा। जो सच पूछे तो बात यह है कि मैं कभी चोरी न करता। तू जानता है, मेरे रिश्तेदार काफ़ी अमीर लोग हैं।"

"जदी तो मैं और भी हरियान हो रिया हूँ।"

"मेरा एक भाई लगता था। यह कोई दस बरस की बात है। मेरी उससे कुछ चल गई थी। हम दोनों साथ रहते थे। उसने मेरी मास्टर से शिकायत कर दी और बेंतें लगवाईं। मेरे ऊपर भूत सवार हो गया। मैंने कहा, "साले, अगर बदला न लिया तो मूँछें मुड़वा दूँ।" एक रोज़ दाँव पाकर मैंने साले का बस्ता चुरा लिया। उसके अन्दर बड़ी बढ़िया चीज़ें थीं। उससे शुरुआत हो गई। फिर एक बार मुझे एक मामू का सिगरेट-केस पसन्द आ गया। मैं उनसे माँग तो सकता न था, लेकिन मैंने पार कर दिया। उसके बाद मैंने सोचा कि इन हरामज़ादों के पास रुपये भी हैं और अच्छी चीज़ें भी। क्यों न उड़ा लिया करो।"

"लेकिन अगर कभी पकड़े गये तो।"

"फिर तूने वही फ़िज़ूल की बातें शुरू कर दीं। अच्छा मैं अब चला, नहीं तो घर में तू-तू मैं-मैं होगी।"

यह कह कर वह उठा और अज़ीज़ की कमर पर ज़ोर से थप्पड़ मारकर चला गया।

× × ×

हमारे मुहल्ले की मस्जिद में हसानुर्रहीम अज़ान दिया करते थे। ये डील-डौल के भारी और मज़बूत थे। रङ्ग बिलकुल काला था। डाढ़ी मेंहदी से लाल रहती, सिर तामड़ा था, लेकिन कनपटी और गर्दन के पीछे तक बाल के पट्ठे पड़े रहते थे। उनके माथे पर ठीक बीच में एक बड़ा-सा गड्ढा पड़ गया था, जिसका रङ्ग राख का-सा था, और दूर से देख पड़ता था। वे मेरी खिड़की के सामने से खकारते हुए जाया करते थे। वे गाढ़े का ढीली मोरियोंवाला पायजामा और गाढ़े का कुर्ता पहने रहते और उनके कंधे पर एक बड़ा लाल रङ्ग का छपा हुआ रूमाल पड़ा होता था। उनकी आवाज़ में एक ऐसा करारापन, गर्मी के साथ वह नर्मी थी जो आदमी को कम मिलती होती है। उनकी आवाज़ दूर-दूर पहचानी जाती थी, और कई मुहल्लों तक पहुँचती थी। अज़ान से पहले उनकी खकार भी बहुत दूर से सुनाई देती थी। पहले-पहल तो उनकी आवाज़ से उस प्रकार का संकेत होता था जो मुसलमानों को नमाज़ को बुलाती है, फिर जब अन्त होने को आता तब आवाज़ की झङ्कार में कमी होती और उनके शब्द बल खाते हुए एक सन्नाटा और शान्ति पैदा करते हुए आकाश में खो जाते। लोग हसानुर्रहमान को हज़रत बुलाल हबशी कहते थे और इस तरह की बहुत-सी बातें दोनों में ही एक-सी पाई जाती थीं। उनकी गर्वीली आवाज़ें और उनका काला रङ्ग।

एक बार मैं अपने मकान की छत पर अकेला बैठा था। आसमान पर हलके-हलके बादल बिछे हुए और सूरज की रोशनी उन पर पीछे से पड़ रही थी। उनमें हलकी-सी फीकी-फीकी रोशनी देख पड़ती, क्योंकि वातावरण साफ़ न था और शहर की गर्द और दूर की मिलों का धुआँ हवा में फैला हुआ था। शहर का हल्ला-गुल्ला मक्खियों के गुनगुनाने की तरह सुनाई दे रहा था। और सारे आकाश-मण्डल में एक हृदय को टुकड़े-टुकड़े करनेवाली निराशा थी—वह दुख की अवस्था जो हमारे शहरों की एक ख़ास पहचान होती है और जिसमें घृणास्पद जीवन की असहाय अवस्था का भान होता है। धूलि से मैले और फीके बादलों में एक जंगली कबूतर उड़ता हुआ गया और उनके धूमिल रङ्गों में छिप गया। दूर से मिलों की सीटियों और रेल के इञ्जनों की आवाज़ें आ रही थीं। शहर की ऊँची ममटियों और मीनारों से कबूतर उड़ते थे या मँडरा-मँडराकर उन पर बैठ जाते थे। दूर-दूर जिधर दृष्टि जाती थी, गन्दी, विकृत, मैली-कुचैली इमारतें और उनकी छतें दिखाई देती थीं। दूर-दूर जिधर आदमी देख सकता था, जीवन में उदासीनता और निरुद्यमता का भान होता था। कहीं-कहीं कोई दुमञ्ज़िला या तिमञ्ज़िला मकान बन रहा था और उसकी पाड़ आसमान और निगाह के बीच एक रुकावट खड़ी करती थीं, लेकिन बाँसों और बल्लियों के रङ्ग देखने में कोई बुरे मालूम न होते थे। वे बादलों के रंगों में मिलकर मध्यम और हलके दिखाई देते थे। उसी वक्त हसानुर्रहमान के खकार की आवाज़ आई और फिर उनकी उठती हुई सुनहरी आवाज़ शून्य में फैल गई। यह आवाज़ कुछ ऐसी निराश करने के साथ ही साथ सान्त्वना देनेवाली थी कि मेरी निराशा दुःखमयी गम्भीरता में परिणत हो गई। उस आवाज़ से कोई महत्ता या बड़प्पन न टपकता था, बरन उससे जीवन की अस्थिरता का भान होता था—इस बात का कि जगत् क्षण-भंगुर है और उसके चाहनेवाले कुत्ते—इस बात का कि जीवन इसी प्रकार से तुच्छ और सारहीन है जिस प्रकार कि बादलों के ऊपर छाई हुई धूलि या धुआँ। अपने इन असम्बद्ध विचारों में निमग्न हुआ मैं अज़ान को सुनता रहा। यहाँ तक कि वह ख़त्म होने को आगई और "हई अलस्सला, हई अलस्सला" की ख़ामोशी पैदा करनेवाली आवाज़ कानों में गूँजने लगी। फिर "हई अललफ़िला, हई अललफ़िला" की आवाज़ सन्नाटा छाती हुई दुनिया की क्षण-भंगुरता का विश्वास दिलाती, एक लम्बी तान लेकर, धीमे स्वरों में होती, धीरे-धीरे आश्वासन-सा देती हुई इस प्रकार ख़त्म हुई कि यह जान न पड़ता था कि आवाज़ रुक गई है या सारी दुनिया पर ख़ामोशी फैली है। वह गहरी और व्याप्त निस्तब्धता जिससे मालूम होता था कि दुनिया के परे, कहीं बहुत दूर एक दुनिया है, जिसमें आदि और अन्त दोनों एक हैं, और यह हमारी दुनिया तुच्छ और अस्मरणीय है। आवाज़ इस प्रकार शून्य में खो

गई जिस प्रकार क्षितिज में जाकर ज़मीन ख़त्म हो जाती है और आसमान शुरू हो जाता है, और जान नहीं पाते कि ज़मीन ख़त्म हो गई या हर जगह आसमान ही आसमान है। आवाज़ इस तरह धीरे-धीरे रुक गई कि आवाज़ और उस ख़ामोशी में कोई भेद नहीं देख पड़ता था। आवाज़ कानों में गूँज रही थी, लेकिन यही सन्देह होता था कि केवल मौन का आतङ्क कानों पर छाया हुआ है।

× × ×

एक रात को मिर्ज़ा की दूकान पर चार आदमी बैठे हुए बातें कर रहे थे। उनमें से एक तो अज़ीज़ था, एक क़बाबी और एक-आध और इकट्ठे हो गये थे। उनके सामने हुक़्क़ा रक्खा था और वे बारी बारी से घूँट खींच रहे थे। उनमें से एक कह रहा था—

"मैं तो यार, हर एक चीज़ में विस की शान देख रिया हूँ।"

इस पर मेरे कान खड़े हुए और मैं ध्यान से सुनने लगा। इतने में एक गाहक आया और उसने मिर्ज़ा से एक आने का दूध माँगा और एक ओर खड़ा हो गया। मिर्ज़ा ने एक कुल्हड़ उठाया और दूध निकालने के लिए लुटिया कढ़ाई की ओर बढ़ाई। उस आवाज़ ने अपनी बात उसी तरह कहना शुरू किया—

"परले दिन मैं चाँदनी चौक में से जा रिया था कि सामने से एक बछिया आ री थी, उसी जगा एक बच्चा पड़ा वा था। गाय बच्चे के पास आन के रुक गई। मैंने सोचा कि देखो अब क्या करती है। वित्ने में साब विस बछिया ने अपने चारों पैर जोड़कर कुलाँच मारी कि बच्चे पै साफ़ लाँग गई। मुझको तो उस जानवर की अक़्ल में विस की शान नज़र आ गई।" मिर्ज़ा का एक हाथ कढ़ाई के पास था, दूसरे में कुल्हड़, और वह बोलनेवाले की ओर घूर रहा था।

अज़ीज़ बोला—"वाह क्या विस की शान है!" मिर्ज़ा ने लुटिया में दूध लिया और उसको उछालने लगा, उतने में एक दूसरा शख़्श बोला—"हाँ, मियाँ उसकी शान का क्या पूँछ रिये हो। एक मर्तबा हज़्ज़ सुलेमान को हुक्म मिला कि एक महल बनाओ तो बस साहब उन्होंने तैयारियाँ शुरू कर दीं। जिन्नातों ने आनन-फ़ानन में बड़े-बड़े फ़त्तर और सिल्लें ला-लाकर जमा कर दिये और मदत लग गई, तुम जानते ही हो कि जिन्नातों का काम कितना फ़ुर्त्ती का होता है। आज इतना, कल वितना, थोड़े ही दिन में महल आसमान से बातें करने लग गिया। हज़्ज़त सुलेमान रोज़ विस जंगा जाके देखा करते कि कोई काम में सुस्ती तो नहीं कर रिया है। तो बस, साहब एक दिन महल खड़ा हो गिया। अब सिर्फ़ विस के अन्दर की क़त्तलें और फ़त्तर साफ़ करने रह गिये। दूसरे रोज़ फिर हज़्ज़त सुलेमान अपनी लकड़ी टेककर खड़े हो गये और कूड़े-करकट को बाहर फेंकने का हुक्म दे दिया। लेकिन वित्ने में वहाँ से कुछ और ही हुक्म आ चुका था। अब देखिए विस की शान कि यहाँ तो महल की सफ़ाई हो रही है और वहाँ विस लकड़ी में घुन लगना शुरू हो गया। लेकिन वे डटे खड़े रहे। यहाँ तक कि घुन लगते-लगते मूँठ तक पहुँच गया, लेकिन विस को ज़री भी ख़बर नहीं हुई और लकड़ी राख की तरियों झड़ गई और विन का ख़ुद का दम निकल गया। लेकिन मैं तो इस बात पर हरियान हो रिया हूँ कि उन क़त्तलों और फ़त्तलों को कौन साफ़ करेगा।"

अज़ीज़ के हाथ में हुक़्के की नली उसके मुँह के बराबर रक्खी हुई थी और वह बोलनेवाले की तरफ़ घूर रहा था। मिर्ज़ा का एक हाथ जिसमें लुटिया थी, ऊपर था और आबख़ोरेवाला नीचे, और वह क़िस्से में बेसुध हो लगा हुआ था। मैंने ज़ोर से एक क़हक़हा लगाया, लेकिन फिर सोच में खो गया कि वाक़ई आख़िर इन "क़त्तलों और फ़त्तरों" को कौन साफ़ करेगा।

हवा का एक झोंका ज़ोर से आया और मिट्टी के तेल का लैम्प बुझ गया। सड़क पर अँधेरा था। उसी वक़्त लोग मिर्ज़ा की दूकान से उठकर चलने लगे और मैं भी घर के अन्दर चला गया।*

नरहरि का निवास

लेखक, श्रीयुत ठाकुर मानसिंह गौड़

अकबरी दरबार के हिन्दी-कवियों में नरहरि का अपना एक विशेष स्थान रहा है। ये अपने समय के एक स्वाधीनचेता और नीतिकुशल महाकवि थे। खेद है, इनके सम्बन्ध में अभी तक कोई जाँच-पड़ताल नहीं हुई है। जैसे गिरिधरदास अपनी कुण्डलियों के लिए प्रसिद्ध हैं, वैसे ही ये अपने छप्पयों के लिए प्रख्यात हैं। गिरिधरदास की कुछ कुण्डलियायें मिलती भी हैं, पर नरहरि के छप्पयों का लोप-सा हो गया है। तब इनके ग्रन्थों के सम्बन्ध में क्या कहा जा सकता है? और तो और, हिन्दीवालों ने यह तक जानने का प्रयत्न नहीं किया कि ये कहाँ के निवासी थे। ठाकुर शिवसिंह सेंगर ने अपने 'सरोज' में इन्हें असनी का निवासी लिखा है। बस उसी की नक़ल हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों ने कर ली। मिश्रबन्धुओं ने, कहा जाता है, अपना 'विनोद' विशेष खोजों के आधार पर लिखा है, परन्तु उनके संशोधित तथा परिवर्द्धित संस्करण में भी नरहरि असनी के ही निवासी लिखे गये हैं। और यह बात सोलहो आने ग़लत है। वास्तव में नरहरि बैसवाड़े के पखरौली ग्राम के निवासी थे। यह ग्राम रायबरेली-ज़िले के डलमऊ-क़स्बे से दो मील पूर्व गंगा जी से दो मील उत्तर स्थित है। इस गाँव में नरहरि जी के द्वारा स्थापित सिंहवाहिनी देवी का मंदिर आज भी मौजूद है। उनके वंशधर विवाह आदि शुभ अवसरों पर देवी का पूजन करने के लिए यहाँ प्रायः आते रहते हैं। यह कहावत यहाँ आज भी प्रचलित है कि—

"बरहद नदी पखरपुर गाँव,
तिनके पुरिखा नरहरि नाँव"

बरहद नाम का बहुत लम्बा-चौड़ा तालाब अब भी पखरौली में है। ज़्यादा पानी हो जाने पर इसका पानी गंगा जी में जाकर गिरता है। बरहद तालाब पखरौली के उत्तर-पश्चिम ग्राम से मिला हुआ है। पखरौली के पूर्व एक और तालाब है। वह 'हरताल' के नाम से प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि इसमें नरहरि के हाथी नहलाये जाते थे। मुझे 'अश्विनी-चरित्र' नाम की एक पुस्तक मिली है। यह रायगंज, कानपुर, के 'शंकर-प्रेस' से संवत् १९८४ विक्रमी में प्रकाशित हुई थी। इसमें नरहरि कवि के वंश के विषय में इस तरह लिखा है—

जग जानि आदि कवि वेद पुरुष।
तेहिं बंदीजन रामचरित मैं,
मुनिन कही यह बाज सुरुष ॥१॥
श्रीयुत नरहरि नाम महाकवि,
जिनके डंके बजत दुरुष ॥
जिन बन काटि बसाई असनी,
ब्राह्मणभक्ति न तन में है रुष ॥२॥
तिनसे श्री हरिनाथ प्रगट भे,
मधुर वचन कबहू न कुरुष ॥
जिनकी धुजा पताका फहरत,
जिनके कुल में कोउ न मुरुष ॥३॥
मन थिरात बिनु साधन देखत,
श्री गंगा की झाँक झुरुष ॥
सो असनी भूदेव बाग सी,
देखत उपजत हरष हुरुष ॥४॥

इससे प्रकट होता है कि नरहरि और उनके पुत्र हरिनाथ का आदिस्थान असनी नहीं था। और सुनिए—

श्रीहरिनाथ अश्विनी भाये।
पितु धन पाय सुग्राम बसाये ॥
आदिनाथ बैंती सुखधामा।
गोपालौ गोपालपुर नामा ॥

बैंती-कल्यानपुर नाम का गाँव गंगा जी के किनारे डलमऊ से तीन मील पूर्व है, अर्थात् पखरौली से केवल एक मील पर है। 'ब्रह्मभट्ट-प्रकाश' तृतीय खंड सफ़ा ४९ में हरिनाथ भट्ट की संक्षिप्त जीवनी दी गई है। उसमें भी हरिनाथ-द्वारा असनी का बसाया जाना लिखा है। यह भी लिखा है कि एक समय कार्यवश हरिनाथ रीवाँनरेश महाराज रामसिंह के पास गये थे। प्रसंगवश महाराज ने अपनी पाली हुई चिड़ियाँ दिखलाकर उनसे पूछा कि आपने भी चिड़ियाँ पाली हैं। तब उन्होंने यह उत्तर दिया—

राजसम बाजपेई पाँड़े पक्षिराजसम।
हंस से त्रिवेदी और सोहैं बड़े गाथ के ॥
कुही सम सुकुल मयूर से तिवारी भारी।
जुर्रा सम मिसिर नवैया नहीं माथ के ॥
नीलकंठ दीक्षित अवस्थी हैं चकोर चारु।
चक्रवाक दुबे गुरुमुख सब साथ के ॥
एते द्विज जाने रंग रंग के मैं आने।
देश देश में बखाने चिड़ीखाने हरिनाथ के ॥१॥

नरहरि के वंश में दयाल नाम के एक कवि हुए हैं। वे भी कहते हैं—

कोसभर गंगा ते प्रकट पखरौली गाँव।
देवी नरहरि की प्रसिद्ध 'सिंहवाहनी' ॥
हद ते बेहद बरहद नदी 'हरताल'।
हाथिन के हलके हिलत के अथाहनी ॥
भनत 'दयाल' भुइयाँ धई भीतर में।
बैंती व कल्यानपुर 'शीतला' सराहनी ॥
चकवे चकते अकबर बली बादशाह।
तेरी बादशाही में इतेक देवी दाहनी ॥१॥

'सिंहवाहनी' देवी का मंदिर पखरौली में, 'भुइयाँ देवी' का धई ग्राम में और 'शीतलादेवी' का मंदिर बैंती-कल्यानपुर में अब तक स्थापित है। अकबर बादशाह ने नरहरि कवि को निम्नलिखित ग्राम पुरस्कार में दिये थे—

कोसभर गंगा ते प्रगट पखरौली[1] गाँव।
दूजे मिरजापुर[2] कल्यानपुर[3] बैंती है ॥
और नरहरिपुर[4] गाँव धर्मापुर[5] है।
नागापुर[6] बन्ना[7] जमुनीपुर[8] कुनेती है ॥
भनत 'दयाल' एकडला[9] गौरी[10] बड़ोगाँव।
चाँदपुर लूक[11] सुरजपुर[12] बरेती[13] है ॥
आधी नानकार के इतेक नाम गाँवन के।
जाहिर जहाँन जहाँगिरवा[14] समेती है ॥१॥

कहते हैं कि हिन्दी के प्राचीन कवियों की काफ़ी खोज हो चुकी है। परन्तु जब नरहरि जैसे राजमान्य कवियों के सम्बन्ध में यह हाल है तब दूसरों के सम्बन्ध में क्या होगा, कौन कह सकता है। सुना है, नरहरि के वंश में आज भी लाल, ब्रजेश जैसे प्राचीन शैली के ख्याति-प्राप्त कवि विद्यमान हैं। ये चाहें तो नरहरि और हरिनाथ के ग्रन्थों का उद्धार हो सकता है। प्राचीन कविता के प्रेमियों को इस ओर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए।

गीत

लेखक, श्रीयुत कुँवर चन्द्रप्रकाशसिंह

शुचि-स्मित वर्णाभरणा!
थर थर थर नीलाम्बर,
बहा पवन परिमल-भर,
प्रतिहत तम के स्तर-स्तर,
जागी किरणास्तरणा।

व्यञ्जित रे! नव-नव स्तव,
उत्थित खग-कुल कलरव,
खोले दल मुद्रित भव,
उतरो, शिञ्जित-चरणा!
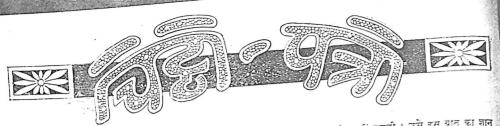
स्त्रियों के अपहरण के मूल कारण

साहित्य-सदन, कृष्णनगर, लाहौर,
७-२-३७

प्रिय महोदय !

फ़रवरी की 'सरस्वती' में 'स्त्रियों के सम्बन्ध में भ्रमात्मक सिद्धान्त' शीर्षक लेख पढ़ा। इसमें सितम्बर ३६ की 'सरस्वती' में प्रकाशित मेरे 'हिन्दू-स्त्रियों के अपहरण के मूल कारण' शीर्षक लेख की आलोचना है। लेखिका के रूप में जिन कुमारी का नाम 'सरस्वती' में छपा है वे भी लाहौर के उसी महल्ले में रहती हैं जिसमें मैं रहता हूँ। कुछ समय पूर्व जब मैंने एक मित्र से सुना कि एक देवी ने मेरे लेख की आलोचना लिखकर 'सरस्वती' में भेजी है तब इस विषय पर एक देवी के विचार जानने की आशा से मैं बहुत प्रसन्न हुआ था। मैंने समझ रक्खा था कि लेख के पाठ से मेरे ज्ञान में कुछ वृद्धि होगी। परन्तु अब लेख को पढ़कर मुझे घोर निराशा हुई, इसलिए नहीं कि उसमें मेरी कड़ी आलोचना है, वरन इसलिए कि वह लेख कृत्रिम है, उसमें किसी नारी-हृदय का उच्छ्वास नहीं, वरन किसी लहँगा-चुनरी-धारी पुरुष के नारी-सेवा-धर्म या 'शिवलरी' का प्रदर्शन-मात्र है। जिस बालिका का नाम लेख की लेखिका के रूप में दिया गया है वह स्कूल में पढ़ती है। लेख में जिस प्रकार की भाषा और विचार व्यक्त किये गये हैं, स्कूल में पढ़नेवाली कोई कुमारिका वैसी भाषा में वैसे विचार कभी व्यक्त कर ही नहीं सकती। उसे इस बात का ज्ञान हो नहीं हो सकता कि अमुक दम्पति में 'किसी प्रकार का वासना-पूर्ण सम्पर्क नहीं है।'

साड़ी-धारी लेखक ने मेरे लेख के आशय को या तो समझा ही नहीं या उसने जानबूझ कर मेरे विरुद्ध स्त्री-जाति को उभाड़ने और अपने को स्त्री-रक्षक प्रकट करने की चेष्टा की है। मैंने जो कुछ लिखा है उसमें कितनी सचाई है और मेरे खंडन में जो कुछ लिखा गया है उसमें कितना सत्यांश है, इसका पता कृष्ण-नगर-(लाहौर) निवासियों से पूछने से लग सकता है। युवक और युवतियों के अमर्यादित मेल-मिलाप से उनके नैतिक पतन का भय रहता है, इसलिए उन्हें अलग अलग रहना चाहिए, जिस प्रकार यह कहना किसी को व्यभिचारी ठहराना नहीं है, उसी प्रकार नारी-प्रकृति के सम्बन्ध में कोई मनोवैज्ञानिक तथ्य बताकर उससे लाभ उठाने का परामर्श देना किसी की निन्दा करना नहीं। स्त्रियों को झूठी प्रशंसा से वाहवाही तो मिल जाती है, परन्तु जाति को कोई लाभ नहीं पहुँच सकता। इच्छा रहते भी मैं समालोचक महाशय पर तब तक प्रहार नहीं करूँगा जब तक वे साड़ी-जम्पर उतारकर अपने प्रकृत पुरुष-रूप में मैदान में नहीं आते। इससे अधिक मैं इस समय और कुछ नहीं कहना चाहता।

आपका—
सन्तराम

जाग्रत नारियाँ

क्या आधुनिक स्त्री स्वाधीन है ?

लेखक, श्रीयुत संतराम, बी॰ ए॰

ह स्वतंत्रता का युग है। चारों ओर स्वतंत्रता, स्वतंत्रता का ही तुमुल नाद सुनाई पड़ता है। राजनैतिक स्वतंत्रता ही नहीं, जीवन के प्रत्येक विभाग में आज पूर्ण स्वतंत्रता की माँग हो रही है। स्त्रियों की दशा को लेकर बड़े हृदयस्पर्शी शब्दों में नर और नारी की समता का ढोल पीटा जा रहा है। स्त्री कभी स्वतंत्र न रहे, धर्मशास्त्र की इस आज्ञा को लेकर पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ बेचारे मनु की वह गति बना रही हैं कि उसकी स्वर्गस्थ आत्मा लज्जा के मारे आनन्दधाम के किसी कोने में मुँह छिपाये पड़ी होगी। भारत के तो पुरुष भी पराधीन हैं, फिर स्त्रियों की स्वाधीनता का तो उतना प्रश्न ही नहीं पैदा होता। परन्तु स्वाधीन योरप में 'स्त्री-स्वातंत्र्य' के प्रश्न को लेकर स्त्रियों ने वह ऊधम मचाया था कि पुरुष बेचारे त्राहि माम् त्राहि माम् कह उठे थे। गत महायुद्ध के पहले वहाँ स्त्रियाँ अपने को लोहे की सलाखों के जँगले के साथ ज़ंजीर से बाँध देती थीं, राजनैतिक सभाओं पर धावे बोलती थीं, जेलों में जाकर भूख-हड़ताल करती थीं, पुलिस के सिपाहियों के साथ गँवारों की तरह लड़ती-झगड़ती थीं, गिरजाघरों को जलाती थीं और क्रीड़ा-स्थलों पर तेज़ाब फेंक देती थीं। इँग्लेंड में लेडी कांस्टेंस लिटन कई बार जेल गईं और कई बार बाहर आईं। एक दूसरी स्त्री नेलसन-स्मारक जैसे ऊँचे स्थान पर से नीचे कूद पड़ी। यह सारी हलचल और गड़बड़ किसलिए की गई ?—पुरुषों के समान वोट देने का अधिकार पाने के लिए।

परन्तु आज उनका वह जोश कहाँ है ? वह सब ठंडा पड़ गया है। आज इँग्लेंड में कितनी स्त्रियाँ अपने वोट देने के अधिकार का उपयोग करती हैं ? अब तो वे इसे एक व्यर्थ का झमेला समझकर इसमें पड़ना ही नहीं चाहतीं।

महिला-मताधिकार के लिए आन्दोलन करनेवाली स्त्रियों के मन में जो भाव काम कर रहा था और जिसने उनमें वीरता और क्षोभोन्माद की अवस्था उत्पन्न कर दी थी वह इसलिए कि वे समझे हुए थीं कि पार्लियामेंट ही राष्ट्र पर राज्य करती है और सब बातों में उसको मार्ग दिखाती है, इसलिए उसमें अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार प्राप्त कर लेने से स्त्रियाँ अपनी स्थिति को अच्छा बना सकेंगी। परन्तु पार्लियामेंट की सारी शक्ति कर्मचारियों ने और राजनीतिज्ञों के छोटे छोटे समूहों ने छीन रक्खी है। ये राजनीतिज्ञ या तो बड़े बड़े आर्थिक और औद्योगिक स्वार्थदर्शियों के हाथ की बिलकुल कठपुतली होते हैं या इन पर उनका बहुत अधिक प्रभाव रहता है। ब्रिटिश उदार-दल के एक बड़े नेता श्रीयुत रेम्ज़े मूअर का कथन है कि

"पिछली पीढ़ी में पार्लियामेण्ट का प्रभुत्व और प्रभाव बड़ी शीघ्रता से और विपत्तिजनक रूप से क्षतिग्रस्त हुआ है; और इसकी कार्यवाही केवल समय का व्यर्थ नाश और हमारे वास्तविक शासकों—मंत्रिमण्डल और नौकरशाही—के कार्य में विलम्ब कराने और बाधा डालने की एक विधि समझी जाने लगी है। मंत्रिमण्डल के एकाधिपत्य ने पार्लियामेण्ट को निःसार और शक्तिहीन बना दिया है।"

यह बात जितनी आज स्पष्ट है, उतनी सन् १९१० में न थी। इसलिए यदि उस समय अँगरेज़ स्त्रियों ने पार्लियामेण्ट में प्रतिनिधि भेजने का अधिकार पाने को ही ख़ज़ाने की कुंजी समझा तो इसके लिए उनका उपहास नहीं किया जा सकता। उस समय पुरुषों को भी यही ग़लत-फ़हमी थी। परन्तु मताधिकार प्राप्त करने का आन्दोलन तो आक्रमणशील स्त्रियों की एक भाव-व्यञ्जना थी, राजनीति के सिवा दूसरे क्षेत्रों में भी यही भाव स्पष्ट प्रकट हो रहा था।

विलायत में इस समय बहुत थोड़ी ऐसी स्त्रियाँ होंगी जो समझती हैं कि 'मताधिकार' ने उनको कोई ठोस लाभ पहुँचाया है। परन्तु वहाँ ऐसी स्त्रियाँ अनेक हैं जिन्होंने 'मताधिकार' प्राप्त करने के अपने जोश को कार्य के दूसरे क्षेत्रों में लगा दिया है। इनमें उन स्त्रियों की भी थोड़ी-सी संख्या है जिनकी धारणा है कि उन्हें उस चीज़ से जिसे वे अपना 'स्वातंत्र्य' अथवा 'उद्धार' कहती हैं, बहुत बड़ा लाभ हुआ है। 'आज की पुरुष की दासता से छुटकारा पाई हुई स्त्री', ये शब्द प्रायः स्त्रियों की पत्रिकाओं में लिखे मिलते हैं। इन्हीं पत्रिकाओं में 'प्रसन्नचित्त स्नान करती हुई लड़कियों' के फ़ोटो इस ढंग के छपते हैं, मानो स्नान करने के तालाब के गिर्द गाजरों के गुच्छे सजाये हुए हों। अँगरेज़ी पत्रिकाओं में कभी कभी तो लड़की बड़े सुन्दर वेश में स्नान करती हुई दिखाई जाती है और चित्र के नीचे वह कुछ लिखा रहता है जो उसकी परदादी उसे देखकर कहती। उसमें भाव यह दिखाया जाता है कि यह एक तरुण अप्सरा है, जिसमें से माधुर्य और प्रकाश फूट फूटकर निकल रहा है, अथवा यह मनुष्य-जाति के इतिहास में नवीन उषाकाल की अग्रगामिनी है। इसके विपरीत उसकी परदादी एक पराधीन कुरूपा वृद्धा थी, जो पुरुषों की उस पर लादी हुई हास्यजनक प्रथाओं को

[कराची की कुमारी जगासिया की अवस्था अभी केवल १४ वर्ष की है। पर इस अल्प आयु में ही इन्होंने नृत्य और संगीत में बड़ी ख्याति प्राप्त कर ली है। लखनऊ की नुमाइश में गत २९ दिसम्बर को इन्होंने अ० भा० संगीत-सम्मेलन के अवसर पर अपना नृत्य दिखाया था। यह चित्र उसी समय का है।]

यह कहना ग़लत होगा कि जो दशा उनकी परदादियों की थी, स्वतंत्रता की दृष्टि से वही दशा आज की युवतियों की है। निस्सन्देह आज की युवतियाँ अपनी परदादियों से दो-एक छोटी छोटी बातों में कुछ फ़ायदे में हैं। परन्तु जिसे स्त्रियों का 'उद्धार' या 'नारी-स्वातन्त्र्य' कहते हैं, तनिक उस पर गम्भीरता-पूर्वक विचार कीजिए।

स्त्रियाँ इसी बात के लिए लड़ रही थीं कि हमें पुरुषों के समान नौकरियाँ मिला करें, हम सभी विभागों में काम कर सकें। परन्तु सभी स्त्रियों को दफ़्तरों और दूकानों में आराम की नौकरी नहीं मिल सकती। आधुनिक औद्योगिक

पद्धति के विकास में कभी कभी भाग्य का हाथ भी देख पड़ता है। जिस समय स्त्रियों ने अपना काम करने का अधिकार पुरुषों से बलपूर्वक छीना, ठीक उसी समय आधुनिक टाइप राइटिंग मशीन उपयोगिता और समर्थता की दृष्टि से उच्चता को प्राप्त हुई! इन दो घटनाओं का एक साथ होना पुरुष-जाति के लिए अथवा कम से कम उन पुरुषों के लिए जो श्रमजीवी समाज से काम लेते हैं, एक अतीव सुखद घटना थी। यह नई मशीन पत्र लिखने और हिसाब-किताब रखने के भारी काम में उन्हें बड़ा काम देनेवाली थी और इधर भाग्य के फेर ने उस मशीन पर काम करने के लिए सस्ती मज़दूरनों की भी कुछ कमी न रही, जो इस काम को करने का अधिकार पाने के लिए ही व्याकुल हो रही थीं।

इसके परिणाम-स्वरूप आज सहस्रों लड़कियाँ टाइप राइटिंग का काम कर रही हैं। यह एक ऐसा काम है जिसे पहले सीखना पड़ता है, और जो कम से कम उतना ही भारी होता है, जितने दफ़्तर में काम करनेवाले पुरुषों के दूसरे काम होते हैं, और जिससे नाड़ियों पर बहुत अधिक ज़ोर पड़ता है। परन्तु इसके लिए उनको जो पारिश्रमिक मिलता है वह पुरुषों के वेतन से प्रायः आधे के क़रीब होता है। यह भी 'स्त्रियों के उद्धार' की क्रिया का एक भाग समझा जाता है। जब हम फ़ैक्टरियों पर विचार करते हैं तब स्थिति इससे भी कहीं अधिक बुरी जान पड़ती है। सस्ती मज़दूर स्त्रियाँ आधुनिक कल-कारख़ानों के स्वामियों के लिए ईश्वर का वरदान सिद्ध हुई हैं। जिस काम के लिए पुरुष मज़दूरों को उन्हें एक रुपया रोज़ देना पड़ता था, वही काम वे छः-सात आने में स्त्रियों से करा रहे हैं।

"आज-कल स्त्रियों ने अपने आर्थिक उद्धार के लिए अभिनेत्री बनकर सिनेमा में काम करना आरम्भ किया है। वहाँ उनको अच्छा वेतन मिल जाता है, जिसके प्रलोभन से अनेक रूपवती युवतियाँ घर-बार छोड़कर एक्ट्रेस बन गई हैं। परन्तु वहाँ जाकर क्या वे स्वाधीनता का लाभ कर लेती हैं? घर में तो केवल एक पति को ही प्रसन्न करना पड़ता था। परन्तु सिनेमा में अनेक पुरुषों को प्रसन्न रखना पड़ता है। सिनेमा के स्वामी के अतिरिक्त उनको साऊँड रिकार्डर, फ़ोटोग्राफ़र, डायरेक्टर आदि को प्रसन्न रखना पड़ता है। तब कहीं वे सिनेमा में रह पाती हैं। इनमें से किसी एक की भी उपेक्षा करने से अभिनेत्री का सारा काम मिट्टी में मिल जाता है।"

जब लड़कियाँ फ़ैक्टरियों में मिल कर काम कर रही होती हैं तब उनकी बातचीत के विषय क्या क्या होते हैं, इसका पता लगाने के लिए हाल में इँग्लेंड में अनुसन्धान किया गया था। उनमें से तीन-चौथाई की बात-चीत पुरुषों के विषय में थी और बाक़ी में से अधिकांश की सिनेमा पर। इन लड़कियों पर वैसी कोई रोक या दबाव नहीं जैसा कि उनकी दादियों पर था। ये "आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त कर चुकी हैं," जिसका अर्थ यह है कि इन्होंने बहुत सस्ते वेतन पर अति कठोर श्रम करानेवाली दूकान में प्रतिदिन आठ या उससे भी अधिक घंटे काम करने का अधिकार पा लिया है। ये मनोविज्ञान के सर्वोत्तम आधुनिक सिद्धान्तों के अनुसार, अपने व्यक्तित्व का विकास करने के लिए 'स्वतंत्र' हैं; इसका अर्थ, व्यवहार में, यह होता है कि ये किसी प्रिय फ़िल्म स्टार के चेहरे, आवाज़, शृङ्गार, भाव-भङ्गी और वेष-भूषा की नक़ल करने को स्वतंत्र हैं।

क्षमा-याचना करते हुए कहना पड़ता है कि इस प्रकार की बातें भी 'स्त्रियों के उद्धार' का एक अंग हैं!

हाँ, निस्सन्देह स्त्रियाँ डाक्टर और वकील भी बनी हैं। स्त्रियों के संयुक्त प्रयत्न से संसार में कहीं कहीं एक-आध स्त्री पार्लियामेंट और असम्बली में भी पहुँचाई गई है। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि इन व्यवसायों में स्त्रियों की सफलता कोई आश्चर्यजनक बात है। ऐसी स्त्रियों को पुरुषों के समान ही कड़ा श्रम करना पड़ता है। वे प्रायः उनके समान योग्य नहीं होतीं; और उनको बहुधा उन बहुत-सी उचित और अच्छी चीज़ों को छोड़ना पड़ता है जो स्त्रियों की स्वाभाविक भवितव्यता का एक अंश होती हैं।

इस नमूने की स्त्रियों की संख्या बहुत थोड़ी है। जिन स्त्रियों ने 'आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है' उनका अधिकांश समय फ़ैक्टरियों और दफ़्तरों में ही काम करते बीतता है। स्त्रियों के इस आक्रमण को रमणियों के चापलूस उनकी एक बड़ी विजय मानते हैं। परन्तु इस विजय का मूल्य क्या है? इसका मतलब केवल इतना है कि अतीव कठोर प्रकार के आर्थिक दबाव के नीचे स्त्रियाँ एक प्रकार की आर्थिक परतंत्रता में से हाँकी जाकर एक ऐसी दूसरे

[आगरा का मुरारीलाल खत्री हाईस्कूल (लड़कियों के लिए) जुलाई सन् १९३४ से ही स्थापित हुआ है। पर इस थोड़े समय में ही इसने अच्छी उन्नति कर ली है। इस स्कूल की कन्यायें संगीत-प्रतियोगिताओं में बराबर भाग लेती रही हैं और [illegible] कितनी ही शील्डें, तमग़े आदि जीते हैं।]

प्रकार की परतंत्रता में ढकेल दी गई हैं जो पहले से भी बहुत ख़राब है। सैनिक परिभाषा का प्रयोग करते हुए हम कहें तो कह सकते हैं कि स्त्रियों की यह विजयी प्रगति खाइयों में सुरक्षित शरण स्थान से निकलकर उनका बरसते हुए गोलों के नीचे कच्ची मिट्टी के मोर्चों में लौट आना है। स्त्रियाँ इस बात को जानती हैं, चाहे उनके चापलूस हमें कितना ही धोखे में रखने का यत्न क्यों न करें।

स्वर्गीय श्रीयुत ए० आर० ओरेज पन्द्रह वर्ष तक 'न्यू एज' नामक पत्र के सम्पादक रहे थे। उन्होंने इस विषय पर अन्तिम शब्द कहा है। स्त्री-मताधिकार-आन्दोलन के जोश के दिनों में उन्होंने लिखा था—

"हमें आज तक ऐसा एक भी पुरुष नहीं मिला जिसे स्त्रियों को सहायता देकर, चाहे वे स्त्रियाँ उसकी बहनें हों और चाहे उपपत्नियाँ, प्रकट या गुप्त रूप से, गर्व न होता हो। हमें आज तक ऐसी एक भी स्त्री नहीं मिली जो एक दूकान या कारख़ाने के मालिक की आर्थिक निर्भरता को छोड़कर किसी एक पुरुष की आर्थिक निर्भरता ग्रहण कर लेने को प्रतिष्ठायुक्त उन्नति न समझती हो। इन बातों के विषय में स्त्रियों और पुरुषों के एक-दूसरे से झूठ बोलने से क्या लाभ? हमने उनको नहीं बनाया है, झूठ बोलने से वे बदल नहीं जायँगी।"

ओरेज महाशय के ये शब्द बार बार मनन करने योग्य हैं।

जी० के० चेस्टर्टन नामक एक दूसरे विद्वान् की सम्मति में फ़ेमिनिज़्म अर्थात् नारी-प्रभाव में आस्था का अर्थ है स्त्रीसुलभ विशेष गुणों को छोड़ देना। यह स्त्रियों की प्रशंसा करना नहीं, वरन उनको स्त्रीत्वहीन बनाना है। स्त्रियों के अधिकारों के लिए लड़नेवाली बड़ी से बड़ी [illegible] भी स्त्रियों को अधिक स्त्री-सुलभ गुण-सम्पन्न बनाने [illegible] दिलचस्पी नहीं रखती। हमारे देश में इस समय जितनी भी स्त्रियाँ मुखिया बन रही हैं उनमें से अधिकांश ऐसी हैं जिनका गार्हस्थ्य-जीवन दूसरी स्त्रियों के लिए कोई अच्छा उदाहरण नहीं उपस्थित करता। एक बार मुझे एक लीडर रानी के सामने एक गृहस्थ स्त्री की प्रशंसा करने का अवसर प्राप्त हुआ। इस पर उन्होंने अँगरेज़ी में कहा—"हो सकता है कि वह अच्छी भार्या हो, परन्तु हम उसे अच्छी स्त्री नहीं

कह सकते।" ऐसी नेत्रियाँ पहले तो स्त्रियों में व्याख्यान देना ही पसन्द नहीं करतीं, फिर यदि उन्हें कहीं विवश होकर स्त्रियों में बोलना ही पड़ जाय तो वे घर-गृहस्थी में लगी रहनेवाली स्त्रियों की निन्दा करके उनको 'स्वतंत्र' होने का ही उपदेश देती हैं। वे सदा उन्हें प्रत्येक बात में पुरुषों की नक़ल करने—पुरुषों के ऐसे कपड़े पहनने, पुरुषों के खेल खेलने, पुरुषों का काम करने, वरन मदिरा और धूम्र-पान करने तक को कहती हैं। देखा जाय तो यह पुरुष की एक भारी प्रशंसा है। परन्तु इस प्रशंसा की न तो उसे लालसा है और न वह इसके लिए याचना ही करता है। उसकी दृष्टि में यह एक दुःख और उपहास की बात है कि स्त्री कष्ट सहन करके शारीरिक और मानसिक रूप से अपनी आकृति को केवल इसलिए बिगाड़ ले ताकि वह पुरुष की एक अतीव भद्दी नक़ल दीख पड़े।

इस आवेग के अनेक और अरुचिकर छोटे-छोटे परिणाम हुए हैं। दो पीढ़ियाँ पहले योरप में भी सब कोई यह मानता था कि स्कूल से ताज़ा निकली हुई अल्पवयस्क और मनोहर लड़की लालसाओं का एक पुंज-मात्र होती है। लोग जानते और मानते थे कि वह अभिमानी, स्वार्थी और छिछोरी होती है, और छोटे जन्तुओं के सदृश, केवल बाहर के उत्तेजनों से उसमें बुरी भावनायें स्वतः उत्पन्न हो जाती हैं। इसलिए घर के बड़े-बूढ़े उसको रोकते और दबाते रहते थे। आज-कल की लड़कियाँ जिस प्रकार प्रायः दिगम्बरी-वेश में बाहर दौड़ती और युवकों के सामने अपना सौन्दर्य-सौरभ बिखेरती फिरती हैं ताकि भौंरों के सदृश वे उनके गिर्द मँडराते रहें, उस प्रकार वे अर्द्धनग्नावस्था में बाहर घूमने नहीं पाती थीं। परन्तु आज की युवतियों के इस प्रकार लगभग नग्न-अवस्था में घूमने का फल क्या हुआ? उनका दिगम्बरीवेश अब पूर्ववत् आकर्षण उत्पन्न करने में असमर्थ हो गया है। योरप के देशों में सागर-तट पर दूर तक लेटी हुई अर्द्धनग्न युवतियाँ ऐसी दीखती हैं, मानो सागर-पुलिन पर मांस के ढेर लगे हुए हैं। ऐसे दृश्य से दर्शक की तबीअत जल्दी ही ऊब जाती है। इससे हृदय में स्पन्दन उत्पन्न होने के बजाय पुरुष उकता कर जम्हाई लेने लगता है।

नारी-स्वातन्त्र्य के आन्दोलन का एक परिणाम लड़कों के कालेजों पर लड़कियों का धावा है। हमारे विश्वविद्यालय आज सूखी, सड़ी, बेडौल, चश्माधारिणी तरुण स्त्रियों से भरते जा रहे हैं। वे पाण्डित्य के पिछले दालान में घूमती हुई ज्ञान को बुहारकर एकत्र करने के लिए घोर परिश्रम कर रही हैं। उनमें से जो सर्वोत्तम हैं उनको विद्या-मन्दिर विवाह के सीधे मार्ग का काम देता है। उनमें जो सबसे बुरी हैं उन पर क्रमशः असफलदायक संस्कृति की मालिश होती रहती है और कालान्तर में वे जानखाऊ बन जाती हैं। किसी रूपवती स्त्री का पुरुष की जान खाना उतना बुरा नहीं लगता, युग-युगान्तर से पुरुषों को इसे सहन करने का अभ्यास हो गया है। परन्तु सींग के किनारेवाले चश्मेवाली बेडौल युवती-द्वारा तङ्ग किये जाने से, जो लीग आफ़ नेशन्स (राष्ट्र-संघ) की रचना और प्रबन्ध-सम्बन्धी संगठन समझाने के यत्न में पुरुष का सिर खा जाती है, पुरुष की आत्मा पर घाव हो जाता है। ऐसी स्त्री से कोई भी पुरुष विवाह करना नहीं चाहता। यह केवल योरप की ही बात नहीं, हमारे अपने देश में भी धीरे-धीरे यही अवस्था हो रही है। विदुषी युवतियाँ अविवाहिता रहने पर विवश हो रही हैं।

ऊपर की पंक्तियाँ लिखने में मेरा उद्देश अपनी लिखने की कोठरी में सुरक्षित बैठकर स्त्री-जाति पर कायर-सदृश आक्रमण करना नहीं है। मेरा आक्रमण तो उन नासमझ पुरुषों पर है जो बिना सोचे-समझे, पश्चिम के अनुकरण में, स्त्री-स्वातन्त्र्य के नाम पर स्त्रियों को उकसाकर उनकी दशा को सुधारने के बजाय बिगाड़ रहे हैं। हमें योरप की अवस्था से शिक्षा लेकर इस व्याधि को आरम्भ में ही रोक देना चाहिए।

स्त्रियों को अपना स्थान जानने की आवश्यकता है। एक पुरानी कहावत है कि स्त्रियों का स्थान रसोई-घर है। यद्यपि इसमें बहुत कुछ सत्यांश है, तथापि मैं इसे थोड़ा अवरोधक समझता हूँ। गत कुछ वर्षों से स्त्रियाँ चूल्हा-चौका छोड़कर बहुत दूर भटक गई हैं। अपने दुर्ग से बाहर निकलकर पुरुषों के जिन-जिन स्थानों पर इन्होंने हल्ला बोला है वहाँ या तो इन्हें विफलता हुई है या भयप्रद सफलता। परन्तु इस बात से इनकार नहीं हो सकता कि उनकी प्राप्त की हुई नवीन स्वतन्त्रता ने थोड़ी-सी दिशाओं में उन्हें लाभ पहुँचाया है।

—

गाँव

लेखक, श्रीयुत ज्वालाप्रसाद मिश्र, बी० एस- सी०, एल-एल० बी०

हे गाँव ! राष्ट्र के धन महान,
रवि ऊपर आग बरसता है
अपने पावक शर तान तान।
धरती तप रही इधर नीचे
तत्ती तत्ती सिकता-समान ॥
पर तप में निरत तपस्वी-से
तेरे सीधे सच्चे किसान।
श्रम के कष्टों को झेल रहे
सिर उठा उठाकर साभिमान ॥
हैं यही देश के विमल प्रान।
हे गाँव ! राष्ट्र के धन महान ॥

कल कालिन्दी के कूलों में
ढूँढ़ो अपना वैभव-विलास।
गोकुल की गलियों से पूछो
निज पूर्व-रूप—बीता विकास।
या रामराज्य में जा देखो
गंगा-सरयू के आस-पास।
अपना वह प्यारा प्रकृत रूप
इठलाता-सा वह विमल हास ॥
वह हँसता हुआ वसन्त और,
वह नीचे झुकते से पयोद।
वह शश्यश्यामला भूमि तथा—
वह प्रकृति देवि की भरी गोद ॥
अब दूर बहाकर निज प्रमाद
ओ सोनेवाले गाँव ! जाग।
आलस्य आदि को दूर हटा
अपनी कलङ्ककालिमा त्याग ॥
बिजली-सी जो भर दे दिल में
ऐसा वह गा दे कर्म-राग।
दुख-दैन्य जलें जिसमें ऐसी
जल उठे दिलों में प्रबल आग ॥
युग युग से तूने आज तलक
पाया है दुख भी बहुतेरा।
अब आज अविद्या का अपना
तू शीघ्र उठा दे रे डेरा ॥
धन-जन से भरे घरों में से
नभ-सा ऊँचा उठता विनोद।
यह देख यहाँ नीचे आना
नर-तन धर हरि का सहित मोद ॥
तेरे अतीत की वह गाथा
कह देगा विंध्याचल पुकार।
आसेतु हिमालय साक्षी है
कैसा था वह वैभव अपार ॥
ऋतुएँ आती हैं नित्य नई
धारण करके नूतन सिंगार।
रो रोकर, तपकर या कँपकर
जाती हैं पर वे बार बार ॥
जा छिपा कहाँ, किस कोने में
क्या जाने वह तेरा अतीत ?
स्मृति ही है उसकी शेष बची
जो स्वर्ण-सदृश युग गया बीत ॥
देखी है तुमने युग युग से
निज जीवन की जो 'हार-जीत'।
क्या कहें कहानी हम उसकी।
क्या गावें तेरे पूर्व-गीत ॥
आ देख तनिक निज वर्तमान।
हे गाँव ! राष्ट्र के धन महान ॥

वह कहाँ कहानी है तेरी
धुँधली अब उसकी याद हुई।
कृषि के गिर जाने से तेरी
कितनी नीची मर्याद हुई ॥
वह बसी हुई बस्ती तेरी
क्रम क्रम से फिर बरबाद हुई।
जिसकी विभूति से नगर बने
पर वहाँ न तेरी याद हुई ॥
निज वैभव ज्योति समेट सभी
हो गया अस्त तेरा अतीत।
जी उठे नया जीवन पाकर
वह लुप्त कला-कौशल तेरा।
वैभव का विमल प्रकाश करे।

तेरे आँगन भर में फेरा ॥
लक्ष्मी की वर विभूति तेरे
खेतों में शस्य समान उठे।
तेरे खलियानों-गोठों से
वंशी की मीठी तान उठे ॥
तेरी सुन्दर सक्षमता का
फिर से जग लोहा मान उठे।
अज्ञान निशा में पड़कर तू
पग पग पर कितना हुआ भीत ॥
किस कुक्षण में था हुआ अरे !
यह वर्तमान तेरा प्रणीत।
जो अब तक वह न व्यतीत हुआ
युग पर युग यद्यपि गये बीत ॥
वह कैसा जीवन है तेरा।
आलस्य और उन्माद भरा।
प्रतिपल भाई का भाई से
होता रहता है द्वेष हरा ॥
है तुझे पैरने को बाक़ी
अज्ञान-सिन्धु कैसा गहरा।
तूने तो तार दिया जग को
पर तू न तनिक भी आप तरा ॥
आता है इसका क्या न ध्यान ?
हे गाँव ! राष्ट्र के धन महान ॥

तू अगर चमक कर एक बार
प्रज्वलित दिनेश समान उठे ॥
तेरा श्रम तेरे घर घर में
सुख का फिर स्वर्ण विहान करे।
तेरा प्रकाश ही फैल फैल
तेरे तम का अवसान करे ॥
शत शत जिह्वाओं से सागर
तेरा गुरु गौरव गान करे।
तू वही वेश धर ले जिससे
तुझ पर सब जग अभिमान करे।
छा दे फिर निज वैभव वितान।
हे गाँव ! राष्ट्र के धन महान ॥

पंचवटी में

[चित्रकार—श्रीयुत रामगोपाल विजयवर्गीय

अनुवादक, पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र

वासन्ती माता-पिता से हीन एक परम सुन्दरी कन्या थी। निर्धन मामा की स्नेहमयी छाया में उसका पालन-पोषण हुआ था। किन्तु हृदयहीना मामी के अत्याचारों का शिकार उसे प्रायः होना पड़ता था, विशेषतः मामा की अनुपस्थिति में। एक दिन उसके मामा हरिनाथ बाबू जब कहीं बाहर गये थे, मामी से तिरस्कृत होकर अपने पड़ोस के दत्त-परिवार में आश्रय लेने के लिए बाध्य हुई। घटना-चक्र से राधामाधव बाबू नामक एक धनिक सज्जन उसी दिन दत्त-परिवार के अतिथि हुए और वासन्ती की अवस्था पर दयार्द्र होकर उन्होंने उसे अपनी पुत्र-वधू बनाने का विचार किया। राधामाधव बाबू का पुत्र सन्तोषकुमार कलकत्ते में मेडिकल कालेज में पढ़ता था। यहाँ उसकी अनादि बाबू नाम के एक बैरिस्टर के कुटुम्ब से घनिष्ठता हो गई, जिसका फल यह हुआ कि सन्तोष का उनकी पुत्री सुषमा से प्रेम हो गया। इसकी सूचना जब राधामाधव बाबू को मिली तब यह बात उन्हें बहुत बुरी मालूम हुई और उन्होंने उसका वासन्ती के साथ जल्दी से जल्दी विवाह कर डालने का प्रबन्ध किया।

पाँचवाँ परिच्छेद

विवाह में असन्तोष

नुष्य जब दुराग्रह के वश में आकर कोई काम कर बैठता है तब उसमें इस बात का अनुमान करने की शक्ति नहीं रहती कि इसके कारण भविष्य में कैसी कैसी विपत्तियाँ सहन करनी पड़ेंगी। पुत्र के जीवन की धारा परिवर्तित करने के विचार से राधामाधव बाबू ने जो इतनी बड़ी भूल कर डाली उसके दुष्परिणाम की ओर उनका ध्यान नहीं जा सका। कभी कभी जान बूझकर प्रियपात्र के गन्तव्य मार्ग में बाधा खड़ी करनी पड़ती है और उस बाधा के कारण बाधा पानेवाला व्यक्ति चाहे इतनी वेदना का अनुभव न करे, किन्तु बाधा डालनेवाले को कहीं अधिक मानसिक पीड़ा हुआ करती है। परन्तु फिर भी प्रियपात्र की मङ्गल-कामना से बहुधा उसके कार्य में बाधा डालनी पड़ती है, यही सनातन-प्रथा है। भविष्य की आड़ में कैसी कैसी विपत्तियाँ छिपी रहती हैं, यह बात समझने की शक्ति दृष्टि-शक्तिहीन मनुष्य में कहाँ है?

मनुष्य सोचता है कुछ और हो जाता है कुछ। सन्तोष के जीवन में भी यही बात घटित हुई थी। जिस समय वह भविष्य के सुख का चित्र अङ्कित करके मिलन-दिन की प्रतीक्षा में बैठा था, उसी समय बिना बादल की बिजली के समान उसने एक दिन सुना कि उसे विवाह करना पड़ेगा। उसे यह भी ज्ञात हुआ कि पिता जी कलकत्ता आ गये हैं, उनके साथ मुझे घर जाना पड़ेगा। उसके जी में आया कि मैं पिता जी से सारी बातें साफ़ साफ़ कह दूँ। किन्तु उसके बाद ही वह बहुत लज्जित हुआ। उसने सोचा कि इस तरह की बातें कहना ठीक नहीं है। यह सब सुनकर पिता जी अपने मन में क्या कहेंगे। अभी मुझे चुप ही रहना चाहिए। देखें, आगे चलकर क्या होता है।

सन्तोष की माता थी नहीं, पिता ने ही अत्यधिक स्नेह तथा परिश्रम से उसका पालन-पोषण किया था। पिता का इतना अपरिसीम स्नेह उस पर था कि एक दिन

भी वह माता के अभाव का अनुभव नहीं कर सका। अकेले पिता ही उसके माता-पिता दोनों थे। सन्तोष ने भी कभी पिता की इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य नहीं किया। आज भी वह वैसा नहीं कर सका। इससे पहले भी ऐसे कितने अवसर आये हैं, जब पिता से उसका मतभेद हुआ था, परन्तु किसी दिन भी उसने अपना मत नहीं प्रकट किया। पहली बात तो यह थी कि पिता के धार्मिक सिद्धान्त उसे बिलकुल ही पसन्द नहीं थे। जब तक वह पिता के सामने रहता तब तक तो वह पिता के आदेश के ही अनुसार कार्य करता रहता, किन्तु उन सब कार्यों के करने में उसकी ज़रा भी रुचि नहीं रहती थी। बात यह थी कि उसकी प्रवृत्ति थी आधुनिक प्रथा की ओर। पिता की पुरानी रीति-नीति उसे कैसे पसन्द आती? परन्तु पिता के रुष्ट होने के भय से उनके सामने वह कभी ऐसा काम नहीं करता था जिसे वे पसन्द नहीं करते थे।

सन्तोष पिता के साथ गाँव चला आया। वहाँ आकर उसने अपने विवाह का हाल सुना। इससे उसके हृदय को बड़ा क्षोभ और वेदना हुई। किन्तु भीतर ही भीतर वह अपना क्रोध दबाये रहा, मुँह से एक शब्द भी नहीं निकलने दिया। इस कारण उसकी वास्तविक अवस्था का पता किसी को भी नहीं चल सका। परन्तु सन्तोष के मनोभावों में जो कुछ परिवर्तन हुए उन्हें उसकी ताई कुछ कुछ समझ सकी थीं। इसी लिए एक दिन अकेले में पाकर उन्होंने उसे छेड़ा। सन्तोष के मलिन और सूखे मुँह की ओर ताककर उन्होंने पूछा—सन्तू, विवाह करने की तेरी इच्छा नहीं है क्या बेटा?

ताई की उद्वेग से व्याकुल तथा जिज्ञासामयी दृष्टि से दृष्टि मिला कर सन्तोष ने कहा—मेरी इच्छा या अनिच्छा से होता ही क्या है? जिसकी इच्छा से यह हो रहा है, बाद को वे ही समझ सकेंगे।

ताई ने क्लिष्ट स्वर से कहा—छिः! छिः! इस तरह की बात मुँह से न निकालनी चाहिए। सुनती हूँ कि लड़की बड़ी सुन्दरी है। इसके अतिरिक्त उसके कोई है नहीं। सुनती हूँ, वह बेचारी बड़ा कष्ट पा रही थी, इसी लिए...।

ताई की बात काटकर सन्तोष ने कहा—वह कष्ट पा रही थी तो इससे हमारा क्या मतलब? मुझे छोड़कर दुनिया में क्या और कोई वर ही नहीं मिल सकता था? मेरे सिर पर यह बला क्यों लादी जा रही है?

यह सुनकर ताई दुखी होगई। वे कहने लगीं—राम! राम! तुम्हें यह क्या हो गया है बेटा? तेरी तो इस तरह की बुद्धि नहीं थी। यह सब क्या कहता है? पिता तेरा विवाह कर रहे हैं। जहाँ उन्हें पसन्द होगा, वहीं तो करेंगे। इसमें तुझे क्यों आपत्ति होनी चाहिए? इस तरह की बातें यदि उनके कानों तक पहुँच गईं तो वे बहुत दुःखी होंगे। इसलिए इस तरह की बात अब और किसी के सामने मुँह से मत निकालना।

एक लम्बी साँस लेकर सन्तोष ने कहा—यदि आवश्यकता समझो तो उन्हें सूचना दे दो। उन्हें यह जान लेना चाहिए कि यह विवाह करने की मेरी इच्छा नहीं है। परन्तु मैंने आज तक उनके सामने कोई बात नहीं कही, आज भी नहीं कहना चाहता हूँ। तुम पूछ पड़ी हो, इसलिए तुमसे कह दिया। देख लेना, बाद को तुम्हीं लोगों को रोना पड़ेगा। इस घर में मेरा यही अन्तिम आगमन होगा।

ताई ने उतावली के साथ हाथ लगाकर सन्तोष का मुँह बन्द कर दिया। उन्होंने कहा—चुप, चुप। इस तरह की बात मुँह से न निकालनी चाहिए सन्तू। कहीं कोई ऐसी बात भी कहता है? तू भी पागल हुआ है। कलकत्ते जाकर तू एकदम से आवारा हो गया। हम लोग अब हैं कितने दिन के? तेरी चीज़ तेरे ही पास रहेगी। मेरे सामने ऐसी बात और कभी न कहना बेटा।

सन्तोष को इस तरह समझा-बुझा कर ताई अञ्चल से आँसू पोंछने लगीं। इधर सन्तोष ने एक रूखी हँसी हँसकर कहा—अच्छी बात है, यह सब बाद को मालूम हो जायगा।

यह बात कहकर सन्तोष बाहर चला गया। ताई वहीं पर बैठी रहीं। परन्तु ये बातें उन्होंने देवर से नहीं कहीं। उन्हें तो यह भली भाँति मालूम था कि वे कितने हठी और क्रोधी हैं। क्रोध में आकर वे कितना अनर्थ कर सकते हैं, यह भी वे जानती थीं।

घर में बड़े धूमधाम से विवाह की तैयारियाँ होने लगीं। इलाहाबाद से बसु महोदय की बहन अपने पुत्र तथा दोनों कन्याओं को लेकर आ गईं। उनका पुत्र

सन्तोष की ही कक्षा में पढ़ता था। सन्तोष से वह केवल एक वर्ष छोटा था। बसु महोदय के बहनोई रमाकान्त बाबू नहीं आ सके।

जिसके विवाह के उपलक्ष्य में घर में आनन्द की बाढ़ आ रही थी उसका मन किसी के एक छोटे-से मुँह के सामने मँडराता हुआ नाच रहा था। वह सोच रहा था कि पिता जी जब जानबूझ कर मेरी इच्छा के विरुद्ध विवाह कर रहे हैं तब उसके लिए सारा प्रबन्ध वे ही करेंगे, उसके साथ मेरा कोई सम्पर्क न रहेगा। दरिद्र की कन्या है। उसे भोजन नहीं मिल रहा था। अब तो वह चिन्ता रहेगी नहीं। इतने में ही वह सुखी हो जायगी।

सन्तोष का यही निश्चय रहा। पिता से वह कुछ कह नहीं सका। उसके क्रोध का सारा भार जाकर पड़ा बेचारी बासन्ती पर जो सर्वथा निरपराध थी।

अन्तरात्मा की असह्य यन्त्रणा को ज़रा-सा शान्त करके सन्तोष ने सोचा कि पिता जी यदि विलायत से लौटे हुए आदमी की कन्या के साथ मेरा विवाह करने के लिए तैयार नहीं हैं तो यह बात उन्होंने स्पष्ट क्यों नहीं कह दी। यदि ऐसी बात होती तो मैं आजीवन अविवाहित रहकर देश और समाज की सेवा में ही अपने जीवन का उत्सर्ग कर देता। परन्तु उन्होंने यह क्या कर डाला? उन्होंने केवल मेरा ही सर्वनाश नहीं किया, बल्कि एक निरपराध बालिका को भी सदा के लिए सङ्कट में डाल दिया।

सन्तोष इसी उधेड़-बुन में पड़ा था कि एकाएक उसकी बुआ के लड़के विनय ने आकर उसकी इस विचार-धारा को रोक दिया। उसने कहा—भैया, इस तरह चुपचाप बैठे बैठे क्या सोच रहे हो? चलो ज़रा-सा टहल आवें।

एक लम्बी साँस लेकर सन्तोष ने कहा—कहाँ चलें भाई?

सन्तोष का मुरझाया हुआ और गम्भीर मुँह देखकर विनय विस्मित हो उठा। ज़रा देर तक चुप रहने के बाद उसने कहा—भैया, यदि नाराज़ न होओ तो एक बात पूछूँ।

"क्या पूछना चाहते हो भाई? पूछते क्यों नहीं? नाराज़ी तो इस समय मुझे छोड़कर भाग गई है।"

"क्या आपको यह विवाह पसन्द नहीं है?"

अर्थहीन दृष्टि से विनय के मुँह की ओर ताककर उसने कहा—अभिभावक की इच्छा के ही अनुसार कार्य्य हुआ करते हैं। मेरी इच्छा या अनिच्छा से क्या होता जाता है?

सन्तोष की यह बात सुनकर विनय पहले तो चौंक उठा, बाद को उसने अपना भाव दबा लिया। उसने कहा—क्यों भैया, यह कैसी बात कह रहे हो?

सन्तोष ने विस्मित होकर कहा—कौन-सी बात?

"यही सब जो निरर्थक बक रहे हो।"

"यह सब निरर्थक नहीं है भाई। मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वह सब अर्थ रखता है। इस समय विवाह करने की मेरी बिलकुल ही इच्छा नहीं है।"

इतने में दीनू नामक नौकर ने आकर कहा—भैया जी, आपको बुआ जी बुला रही हैं।

सन्तोष ने कहा—कह दो कि आता हूँ।

यह सुनकर नौकर चला गया।

छठा परिच्छेद
विवाह

निर्दिष्ट लग्न में सन्तोषकुमार के साथ बासन्ती का विवाह हो गया। शुभ दृष्टि के समय लोगों के बहुत आग्रह करने पर भी वर-वधू में से किसी ने भी दूसरे के प्रति नहीं देखा। इससे लोगों के दिल में ज़रा-सी खलबली मची थी अवश्य, किन्तु इस बात को किसी ने विशेष महत्त्व नहीं दिया। एक एक करके विवाह की सभी रस्में पूरी हो गईं। दूसरे दिन बड़ी धूमधाम और हर्ष-ध्वनि के साथ बासन्ती मामा के घर से विदा हो गई। हरिनाथ बाबू ने हाथ पकड़कर उसे गाड़ी पर बिठा दिया। वह गाड़ी की बाज़ू में मुँह छिपाकर सिसक सिसककर रोने लगी।

सोहागरात के दिन ताई ने बड़े आग्रह के साथ सन्तोष को घर में बुलाया। परन्तु उसने भीतर की ओर पैर तक बढ़ाने की इच्छा नहीं की। अन्त में निरुपाय होकर उन्होंने सारा हाल अपनी ननद से कहा। सन्तोष की बुआ इस सम्बन्ध में भाई से पहले ही बहुत कुछ सुन चुकी थीं। बाद को भौजाई के मुँह से भतीजे के इस प्रकार के अनुचित आचरण का हाल सुनकर वे बहुत ही क्रुद्ध हो उठीं। घर में आये हुए अतिथियों तथा भाई-बन्धुओं को

भोजन आदि कराने से निवृत्त होने के बाद सन्तोष अपने कमरे में जाकर लेट गया। उसके ज़रा देर बाद ही बुआ जी उस कमरे में पहुँच गईं। वहाँ जाकर उन्होंने देखा तो वह सोफ़े के ऊपर लेटे लेटे वक्षस्थल पर दोनों बाहु रक्खे हुए कुछ सोच रहा है। उस समय वह इतना अधिक चिन्तामग्न था कि उसे बुआ जी के आने की आहट तक नहीं मिल सकी।

बुआ जी धीरे धीरे सन्तोष के बिलकुल समीप जा पहुँचीं और उसके ललाट पर हाथ रख दिया। बुआ के स्पर्श करते ही सन्तोष चौंक पड़ा। ज़रा-सी म्लान हँसी हँसकर उसने कहा—बुआ जी, क्या आप अभी तक सोईं नहीं?

एक धीमी-सी आह भरकर बुआ जी ने कहा—आज के इस शुभ दिन में तू यहाँ बाहर पड़ा है, और हम लोग निश्चिन्त होकर सोवें! यह भी कभी सम्भव है? चल, भीतर चल, वह बेचारी लड़की अकेली पड़ी है!

बुआ के मुँह की ओर ताककर सन्तोष ने कहा—मेरी तबीअत अच्छी नहीं है बुआ जी। मुझे चुपचाप सोने दीजिए। आप लोगों में से कोई जाकर उस कमरे में सो रहे।

बुआ ने ज़रा-सा हँसकर कहा—तेरे समान पागल लड़का तो मुझे और कहीं देखने में आया नहीं। आज भला हम लोगों को उसके कमरे में सोना चाहिए? यह सब बहानाबाज़ी न चलेगी। उठ, जल्दी से चल यहाँ से।

सन्तोष ने ज़रा अनुनयपूर्ण स्वर में कहा—आपकी बात मैं न काट सकूँगा बुआ जी। मुझे अब वहाँ जाने को न कहिएगा।

सन्तोष की यह बात सुनकर बुआ ने दृढ़ और गम्भीर स्वर से कहा—सन्तू, पढ़-लिखकर तुम इस तरह के मनमाने हो जाओगे, इस बात की आशा हम लोगों ने कभी नहीं की थी। छिः! छिः! दस आदमियों के बीच में तुमने इस तरह हमारे मुँह में कालिख लगा दिया। जो होना था वह तो हो ही गया, अब तो वह लौट नहीं सकता। अब तू इस तरह का आचरण क्यों कर रहा है? देखो न, चारों तरफ़ दस भाई-बिरादरी के लोग कितना हँस रहे हैं? बाद को तेरी जो इच्छा होगी वही करना, [illegible] मेरी बात माननी ही पड़ेगी। यह कहकर उन्होंने सन्तोष से उठने को फिर कहा।

घर में बुआ जी का अखण्ड प्रताप था। छः-सात वर्ष के बाद वे थोड़े दिनों के लिए अपने पित्रालय में आया करती थीं। लड़कपन से ही वे बड़ी अभिमानिनी थीं। साथ ही उनका लाड़-चाव भी ख़ूब था। जब कभी कोई उनकी बात न मानता या किसी प्रकार से उनकी अवज्ञा करता तो उसे वे सहन नहीं कर सकती थीं। वे मुँह से कहा तो कुछ नहीं करती थीं, परन्तु उन्हें जब कोई कुछ कहता था तब वे तुरन्त ही रो पड़ती थीं, और उनका रोना जल्दी नहीं समाप्त होता था। यही कारण था कि जब कभी वे पित्रालय में आतीं, सभी लोग उनके सामने फूँक फूँककर पैर रक्खा करते थे। वसु महोदय तक उनसे घबराते ही रहते थे। सन्तोषकुमार भी बुआ के स्वभाव को भली-भाँति जानता था, इससे यह बात अनुभव किये बिना वह नहीं रह सका कि यदि उनकी बात कट गई तो उनके हृदय को असह्य वेदना होगी। परन्तु फिर भी उसने स्पष्ट स्वर से ही कहा—बुआ जी, आज तो मैं आपकी आज्ञा का उल्लङ्घन न कर सकूँगा, परन्तु कल से कृपा करके इस सम्बन्ध में मुझसे कुछ न कहा कीजिएगा। आप मेरा मस्तक छूकर इस बात की प्रतिज्ञा कीजिए।

बुआ जी ने कहा—दुर पागल कहीं के! यह भी कोई ऐसी बात है कि मस्तक छूकर कहूँ! अच्छी बात है। कल से मैं तुझसे कुछ न कहूँगी।

बुआ जी ने मन ही मन कहा—आज तो तुम चलो, कल से कहना ही न पड़ेगा। बहू का इस तरह का सुन्दर मुँह देखते ही तुम ठिकाने पर आ जाओगे, कल तुम्हारा दिमाग़ इस तरह का न रहेगा। दस अक्षर अँगरेज़ी पढ़ लेने पर लौंडों का दिमाग़ ही उलटा हो जाता है। इसी लिए तो बड़े लड़कों को अकेले रहने नहीं देना चाहिए। ये लोग नाटक-उपन्यास पढ़कर स्वयं भी नायक-नायिका बनना चाहते हैं।

सन्तोष को लेकर बुआ जी के भीतर पहुँचते ही स्त्रियों ने उस समय के समस्त कर्मकाण्ड बात की बात में समाप्त कर डाले। बाद को सन्तोष को सोने को कहकर बुआ जी ने दरवाज़ा भिड़ा दिया और वे स्वयं भी सोने चली गईं। उनके जाने के बाद सन्तोष ने ज़मीन पर एक चटाई

बिछा ली और उसी पर वह सो गया। वासन्ती उस समय अकेली ही चारपाई पर सोई हुई थी। ज़रा देर के बाद करवट बदलने पर उसने देखा कि सन्तोष भूमि पर लेटे हुए हैं। यह देखकर वासन्ती बहुत ही विस्मित हुई। वह सोचने लगी कि यह क्या हुआ। वे भूमि पर क्यों लेटे हैं? वह उठकर बैठ गई। सन्तोष उसकी ओर पीठ किये और चदरे से सारा शरीर ढँके लेटा हुआ था। ज़रा देर तक उसकी ओर ताकने के बाद वह फिर लेट गई।

वासन्ती माता-पिता से हीन थी। जिस परिवार में उसका पालन-पोषण हुआ था उससे उसे सदा अनादर ही सहना पड़ा था। इस प्रकार उसका जीवन सदा से ही बहुत कष्टमय रहा था। ऐसी अवस्था में एक ज़मींदार की पुत्रवधू होकर जब वह राजप्रासाद के समान ऊँची अट्टालिका में पहुँची तब उसने सोचा कि अब हमारे दिन फिर गये हैं। परन्तु जिसके ऊपर विधाता की ही भृकुटि वक्र होती है उसे भला सुख कहाँ से मिल सकता है? उसे तो आशा से कहीं अधिक सुख-सामग्रियाँ प्राप्त करके भी उनके उपभोग से वञ्चित ही रहना पड़ता है।

उत्सव के दिन बहुत अच्छी तरह से बीत गये। एक एक करके नातेदार रिश्तेदार स्त्री-पुरुषों का दल विदा हो गया। बुआ जी का भी इलाहाबाद लौटने का समय आ गया। परन्तु भतीजे का रंग-ढंग देखकर वे डर गईं। दूसरे की कन्या को अपनी बनाने के लिए कितनी सहिष्णुता की आवश्यकता पड़ती है, यह बात शायद बहुत-से लोग नहीं जानते। नववधू जिस समय अपना आजन्म का परिचित घर, सखी-सहेलियाँ, माता-पिता तथा अन्यान्य आत्मीय जनों का परित्याग कर, हृदय में अपार वेदना लेकर ससुराल में निवास करने के लिए आती है, उस समय एक व्यक्ति का निष्कपट प्रेम एवं अनुराग प्राप्त करके पिता के यहाँ की स्मृतियों को भुलाने लगती है, भुला भी देती है। परन्तु जो अभागिनी उस व्यक्ति के प्रेम से वञ्चित रहती है उसे सुखी करने के लिए कोई चाहे कितना ही प्रयत्न क्यों न करे, वह सुखी नहीं हो सकती। वासन्ती का भी यह हाल हुआ था अवश्य, किन्तु अपनी इस अवस्था का अनुभव करने के योग्य वह तब तक नहीं हो सकी थी। परन्तु भतीजे की असाधारण गम्भीरता देखकर एक अज्ञात आशङ्का से बुआ जी का हृदय कम्पित हो उठा। वे सोचने लगीं कि विधाता ने यदि वासन्ती के भाग्य में ऐसा ही स्वामी लिखा था तो उस बेचारी को इस तरह अनाथिनी क्यों बना रक्खा है! अदृष्ट का यह कैसा निष्ठुर परिहास है! इसका परिणाम क्या होगा, यह कौन बतला सकता है? वासन्ती का तो अभी सारा जीवन ही पड़ा है। तो क्या आजन्म उसका यही हाल रहेगा? इस बात की तो मैं कल्पना तक नहीं कर सकती हूँ।

सोहागरात के दिन के बाद सन्तोष ने जब अपने पढ़नेवाले कमरे में आश्रय ग्रहण किया तब से वह बहुत कम बाहर निकलता था। किसी से बातें भी वह बहुत कम करता था। एक कोने में पड़े ही पड़े वह रात की रात और दिन का दिन काट दिया करता था। यदि कोई कभी उसके पास जाकर बैठता तो उसके मुँह पर विरक्ति का भाव उदित हो उठता। इस कारण धीरे धीरे उसके पास जानेवालों की संख्या कम होने लगी। लोग सोचने लगे कि जब वे रुष्ट ही होते हैं तब उनके पास जाने से लाभ ही क्या है। सोहागरात के बाद ही कलकत्ता जाने की भी उसकी इच्छा हुई थी, केवल बुआ जी के अत्यधिक आग्रह से ही वह नहीं जा सका। उन्होंने सन्तोष का हाथ पकड़कर कहा था कि जिस दिन मैं जाऊँगी, उसी दिन तू भी जाना। इसी लिए वह रुक गया।

सन्ध्या का अन्धकार प्रगाढ़ हो चुका था। सन्तोष के कमरे में उस समय भी चिराग़ नहीं जला था। उसी कमरे में टहलते टहलते वह सोच रहा था कि अब मैं सुषमा को कैसे मुँह दिखला सकूँगा। उस दिन मैं द्विज-देवता तथा अग्नि को साक्षी बनाकर जिस एक बालिका का हाथ पकड़ चुका हूँ, जिसके सुख-दुख का अंशभागी बन चुका हूँ, उसके भविष्य का उत्तरदायित्व किस पर है? मुझ पर या पिता जी पर? मैंने तो उन्हें अपने मन का भाव पहले ही सूचित कर दिया था। उस पर उन्होंने ध्यान नहीं दिया। ऐसी दशा में उसकी ज़िम्मेदारी भी उन्हीं पर है। मेरे जीवन की अधिष्ठात्री देवी तो केवल सुषमा है। उसे छोड़कर और कोई भी मेरे हृदय पर कभी अधिकार नहीं कर सकता। पिता जी के इस अन्याय को मैं कभी नहीं सह सकूँगा। मुँह पर मैं उनके प्रति कभी अवज्ञा अवश्य नहीं प्रकट करूँगा, किन्तु इसका फल शीघ्र ही उन्हें देखने को मिलेगा।

[प्रतिमास प्राप्त होनेवाली नई पुस्तकों की सूची । परिचय यथासमय प्रकाशित होगा]

१—सौरभ—लेखक, श्रीयुत दुर्गाप्रसाद झुँझनूवाला बी० ए०, प्रकाशक, नवराजस्थान-ग्रंथ-माला-कार्यालय, ७३।ए चासा धोबापाड़ा स्ट्रीट, कलकत्ता, हैं। मूल्य १।) है।

२—भग्न-तन्त्री—लेखक, श्रीयुत बलदेव शास्त्री, न्यायतीर्थ, प्रकाशक, मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास, संस्कृत-हिन्दी-पुस्तक-विक्रेता, सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर हैं। मूल्य ||।) है।

३—योगप्रदीप—लेखक, श्रीयुत अरविन्द घोष, प्रकाशक, श्री अरविन्द-ग्रन्थमाला, ४ हेयर स्ट्रीट, कलकत्ता हैं। मूल्य ||) है।

४—ब्वाय-स्काउटिङ्ग—लेखक, श्रीयुत कृष्णनन्दन-प्रसाद, प्रकाशक, सेन्ट्रल बुकडिपो, इलाहाबाद हैं। मूल्य २||) है।

५—ग्राम-सुधार—लेखक, श्रीयुत गंगाप्रसाद पाण्डेय एल० ए० जी०, श्रीयुत रमेशचन्द्र पाण्डेय, एम० ए०, प्रकाशक, कृषि-कार्यालय, जौनपुर हैं। मूल्य १) है।

६—उपदेशरत्न-माला—लेखिका, श्रीमती चन्दाबाई जी जैन, प्रकाशक, दिगम्बर-जैन-पुस्तकालय, सूरत हैं। मूल्य ||) है।

७—सारसमुच्चय—टीका—टीकाकार, श्रीयुत सीतलाप्रसाद जी, प्रकाशक, दिगम्बर-जैन-पुस्तकालय, गांधी-चौक, कापड़ियाभवन, सूरत हैं। मूल्य १।) है।

८—साहित्य-संचय—संग्रहकर्त्ता, श्रीयुत कामेश्वर-प्रसाद एम० ए०, विशारद, प्रकाशक, बिहार-पब्लिशिंग हाउस, पटना हैं। मूल्य ||)|| है।

९—स्मृति-शक्ति—संग्रहकर्त्ता, श्रीयुत द्वारिकाप्रसाद शर्मा, प्रकाशक, भारतवासी प्रेस, दारागंज, प्रयाग हैं। मूल्य ||) है।

१०—हिस्ट्री आफ़ दि ह्वाइट रेस (अँगरेज़ी में)—लेखक व प्रकाशक, पण्डित भगवानदास पाठक, पता—श्रीमती सुशीलकुमारी मिश्रा c/o श्री एच० एस० पाठक, डिप्टीकलेक्टर, बिजनौर हैं। मूल्य ३) है।

११-१७—गीता प्रेस, गोरखपुर की ७ पुस्तकें—

(१) भक्तियोग—लेखक, चौधरी श्री रघुनन्दनप्रसाद सिंह और मूल्य १=) है।

(२) शतपंच चौपाई—टीकाकार, पण्डित श्रीविजयानन्द त्रिपाठी और मूल्य ।=) है।

(३) तैत्तिरीयोपनिषद्—मूल्य |||-) है।

(४) माण्डूक्योपनिषद्—मूल्य १) है।

(५) ऐतरेयोपनिषद—मूल्य ।=) है।

(६) वर्त्तमान शिक्षा—लेखक, श्रीयुत हनुमानप्रसाद पोद्दार और मूल्य -) है।

(७) सूक्तिसुधाकर—मूल्य ||=) है।

१८—गीता-गायन (तीन भागों में)—लेखक, श्रीयुत बृजमोहनलाल सक्सेना, प्रकाशक, रावल प्रिंटिंग वर्क्स, कानपुर हैं। प्रत्येक भाग का मूल्य ≡) है।

१९-२८—वनिता-हितैषी प्रेस, कर्नेलगंज, प्रयाग द्वारा-प्रकाशित १० पुस्तकें—

(१) बच्चों की दिनचर्या—मूल्य ।=) है।

(२) परलोक की बात—मूल्य १) है।

(३) कन्याओं के पत्र—मूल्य ।=) है।

(४) कन्या-पाकशाला—मूल्य ||) है।

(५) शिशु-रक्षा-विधान—मूल्य |||) है।

(६) भारतीय कन्याओं का इतिहास—मूल्य ।=) है।

(७) बच्चों के गीत—मूल्य =) है।

(८) बच्चों की मातृ-सेवा—मूल्य ।) है।

(९) कन्या-विनय—मूल्य =) है।

(१०) बच्चों की आरोग्यता—मूल्य ।) है।

नं० १, नं० ८ और ९ की पुस्तकों को छोड़कर शेष पुस्तकें प्रसिद्ध लेखिका श्रीमती यशोदादेवी की लिखी हुई हैं।

२९—श्री कौशलेन्द्र-कौतुक—लेखक व प्रकाशक, श्रीयुत बिहारीलाल विश्वकर्मा, हंस-तीर्थ, काशी हैं। मूल्य १|||) है।

१—शृंगारलतिका-सौरभ—अयोध्या-नरेश महाराज मानसिंह 'द्विजदेव' का हिन्दी के पुराने कवियों में महत्त्व का स्थान है। उनकी रचित 'शृंगारलतिका' के पद्यों को उनके बाद के सभी संग्रहकारों ने अपने संग्रहों में गौरव पूर्ण स्थान दिया है। खेद की बात है कि उनकी उक्त रचना सर्व-साधारण को अप्राप्य थी। इस ग्रन्थ को इसके दो टीकाओं के साथ उनके दौहित्र तथा उत्तराधिकारी स्वर्गीय अयोध्या-नरेश महाराज प्रतापनारायणसिंह ने एक बार छपवाया था। बोल-चाल की हिन्दी में एक टीका स्वयं महाराज साहब ने लिखी थी और दूसरी टीका ब्रज-भाषा में पण्डित जगन्नाथ अवस्थी ने लिखी थी। परन्तु वह संस्करण भी अप्राप्य हो गया था। आलोच्य पुस्तक उसी अप्राप्य पुस्तक का नूतन संस्करण है, जिसे अयोध्याराज्य की वर्तमान महारानी श्रीमती जगदम्बादेवी ने अपने पतिदेव की स्मृति में छपवाया है। उसका यह संस्करण छपाई आदि की दृष्टि से मनोहर तथा नयनाभिराम ही नहीं है, किन्तु इसके सम्बन्ध में यह बात तक कही जा सकती है कि ऐसा सुन्दर संस्करण शायद ही किसी हिन्दी-ग्रन्थ का कभी निकला हो। 'शृंगारलतिका' के ऐसे सुन्दर संस्करण के प्रकाशन में महारानी साहब ने बहुत अधिक धन व्यय किया है। यही नहीं, उसका उत्तम ढंग से सम्पादन कराने में अपनी ओर से कुछ उठा नहीं रक्खा। मथुरा के ब्रज-भाषा-काव्य के मर्मज्ञ पण्डित जवाहर-लाल चतुर्वेदी ने इसका जिस परिश्रम और अध्य-वसाय से सम्पादन किया है उससे यह महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थ अति सुन्दर तथा शुद्ध रूप में प्रकाशित हो सका है। चतुर्वेदी जी ने मूल पुस्तक के पाठ को यथावत् देकर तथा पाद-टिप्पणियों में यथा-प्राप्त पाठान्तर एवं मूल रचना तथा टीकाओं के भावों को स्पष्ट और विशद करने के विचार से साहित्य के विद्वानों का मत तथा उनकी सूक्तियाँ उद्धृत कर इस ग्रन्थ के महत्त्व को और भी बढ़ा दिया है।

इस ग्रन्थ को इस प्रकार सुसम्पादित करवाकर तथा उत्तम रूप में छपवाकर श्री महारानी साहब ने वास्तव में एक उपयोगी कार्य किया है। इसके लिए वे सर्वथा धन्यवाद के पात्र हैं। परन्तु यह विशाल ग्रन्थ बिक्री के लिए नहीं है और यदि बिक्री के लिए भी होता तो भी इसे साधारण श्रेणी के लोग प्राप्त न कर सकते। ऐसी दशा में क्या ही अच्छा होता, यदि इसका एक ऐसा भी संस्करण निकलता जो सर्वसाधारण को भी सुलभ होता। इस विशाल ग्रन्थ की पृष्ठ-संख्या ८० + ६८४ + २४ = ८०८ है।

'शृंगारलतिका' नायिका-भेद का एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है। यह तीन सुमनों में विभक्त है। प्रथम सुमन में दोहा, सवैया आदि ६५ पद्य हैं। दूसरे सुमन में १७३ पद्य हैं और तीसरे में ३६ पद्य हैं। इसकी रचना महाराज द्विजदेव ने संवत् १९०६ में की थी और कदाचित् उसके निर्माण में उनका यह पूरा साल व्यतीत हुआ था। राधा-कृष्ण की लीला और नखशिख का वर्णन करते हुए द्विजदेव ने अपनी इस रचना में अपने भाषा-ज्ञान तथा उच्च कोटि के कवित्व का परिचय दिया है।

२—स्मृति-शक्ति—लेखक, चतुर्वेदी पण्डित द्वारका-प्रसाद शर्मा, प्रकाशक, भारतवासी प्रेस, दारागञ्ज, इलाहाबाद हैं। पृष्ठ-संख्या ७४ क्राउन आक्टेवो साइज़ और मूल्य ||) है।

चतुर्वेदी जी हिन्दी के पुराने लेखकों में हैं। यह पुस्तक अपने विषय की प्रथम पुस्तक है। एक कमज़ोर याददाश्तवाला भी अधिक से अधिक बातें किस तरह याद रख सकता है, यह सब इसमें अभ्यासों के सहित बहुत ही अच्छे ढंग से बताया गया है। पुस्तक की शैली रोचक है। वकीलों, विद्यार्थियों और मस्तिष्कजीवी लोगों को इसका उपयोग करना चाहिए।

३—राबर्ट क्लाइव—लेखक, चतुर्वेदी पण्डित द्वारकाप्रसाद शर्मा, प्रकाशक, भारतवासी प्रेस, दारागञ्ज, इलाहाबाद हैं। मूल्य |||) है।

चतुर्वेदी जी की यह एक मौलिक रचना है। राबर्ट क्लाइव भारतवर्ष में अँगरेज़ी राज्य के जड़ जमानेवालों में एक प्रधान पुरुष समझे जाते हैं। अपनी प्रतिभा के बल से एक मामूली क्लर्क से तत्कालीन ब्रिटिश भारत के सर्वेसर्वा हो गये थे। उन्हीं का इसमें विशद परिचय दिया गया है, साथ ही इसमें तत्कालीन भारत का बड़ा ही करुण चित्र खींचा गया है। इसकी रचना-शैली भी रोचक है। बी० ए०

और एम० ए० में जिन्होंने इतिहास लिया हो उन्हें यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए।

४—सचित्र योगासन और अक्षय युवावस्था—लेखक, स्वामी शिवानन्द सरस्वती, प्रकाशक भारतवासी प्रेस, दारागञ्ज, इलाहाबाद हैं। पृष्ठ-संख्या १७४ और मूल्य १) है।

योग-दर्शन के प्रेमियों से स्वामी शिवानन्द सरस्वती का नाम छिपा नहीं है। यह पुस्तक आपकी ही लिखी हुई है। इसमें योग-सिद्धान्तों का परिचय बड़ी सरल रीति से दिया गया है। यह दो भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में अध्यात्म-विषयक योग का वर्णन किया गया है, जिसके नित्य अभ्यास से मनुष्य योग की अणिमादि सिद्धियाँ प्राप्त करता हुआ चरम सीमा की कैवल्य-समाधि तक पहुँच सकता है। द्वितीय भाग में आसनों का वर्णन है, जिनके अभ्यास से मुख्यतः रोगों का नाश होता है और उन आसनों का अभ्यास करनेवाला अक्षय युवावस्था का उपभोग करता है। उन आसनों के अभ्यास से गौणरूप से आध्यात्मिक लाभ भी है। प्रत्येक आसन की क्रिया विशदरूप से समझाई गई है। आसनों-द्वारा रोगों से मुक्त हुए लोगों के अनुभव भी दिये गये हैं। तृतीय भाग में मुद्राओं और बन्धों का वर्णन है। अन्त में प्राणायाम और कुण्डलिनी आदि का वर्णन करके पुस्तक समाप्त की गई है। पुस्तक के अन्त में विशेष स्वभाव के मनुष्यों के लिए विशेष-विशेष आसनों के अभ्यास की व्यवस्था दिनचर्या के सहित दी गई है। स्वामी जी के कथनानुसार इस पुस्तक के आसन बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री और पुरुष सभी कर सकते हैं। इस विषय के प्रेमियों को इसका अवलोकन करना चाहिए।

५—मदिरा—श्री तेजनारायण काक 'क्रान्ति', प्रकाशक, छात्र-हितकारी-पुस्तकमाला, प्रयाग हैं। मूल्य १) है।

प्रस्तुत पुस्तक लेखक के सौ गद्य-गीतों का संग्रह है। 'मदिरा' के रचयिता में कविजनोचित पर्याप्त गुण हैं। उसमें प्रतिभा है, पाण्डित्य है, पर उसकी प्रतिभा पर पाण्डित्य का बोझ है। उसने यह भी लिखा है कि 'मदिरा' के अधिकांश गीतों के 'रहस्योन्मुख आध्यात्मिकता' के मूल में रवीन्द्र का प्रभाव है। निस्सन्देह कवि-हृदय के परिष्कार के लिए पाण्डित्य की अतीव आवश्यकता है। पर कलाकार का—जो हृदय का विश्लेषण करता है—प्रतिभा से निकटतम सम्पर्क है। श्रेष्ठ कला में इसी लिए अनुभूति की गहरी छाप होती है और 'मदिरा' में इसका अभाव है।

'मदिरा' काक जी की प्रथम रचना है। अतएव उनका यह प्रयत्न प्रशंसनीय है। पुस्तक के प्रारम्भ में हिन्दी-साहित्य के गद्य-काव्य पर एक विवेचना-पूर्ण निबन्ध है, जो उपयोगी है। हिन्दी-प्रेमियों को इस रचना को अपनाना चाहिए।

६—कल्पना—लेखक, श्रीयुत मोहनलाल महतो, 'वियोगी', प्रकाशक—विश्व-साहित्य-ग्रन्थमाला, लाहौर हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में 'वियोगी' जी का परिचय देने की विशेष ज़रूरत नहीं है। 'वियोगी' जी हिन्दी के एक प्रसिद्ध कवि तथा ज़ोरदार लेखक हैं। कविता के सिवा कहानियाँ, गद्य-काव्य, निबन्ध आदि लिखने में भी उन्होंने ख्याति प्राप्त की है। 'कल्पना' उन्हीं की स्फुट कविताओं का संग्रह है। उनकी प्रतिभा कल्पना में भी विशेष रूप से विकसित हुई है। 'कल्पना' में वियोगी जी का कवि-हृदय स्पष्ट दीख पड़ता है। वास्तव में 'कल्पना', 'हौंस', 'उलझन', 'दो मन', 'स्वप्न', 'नर कङ्काल से' आदि में दर्द भरी पंक्तियाँ पर्याप्त मात्रा में वर्तमान हैं। 'अपनी बात' में कवि ने लिखा है कि "देश में जब कि चारों ओर महानाश की ज्वाला धधक रही है, माँ बच्चे भूनकर खा जाना चाहती है और पुत्र पिता का सिर काट लेना चाहता है" तब कवि से खून के आँसू की अपेक्षा है। महतो जी का यह दृष्टि-कोण अभिनन्दनीय है। हिन्दी-प्रेमियों को वियोगी जी की इस रचना का रसास्वादन करना आवश्यक है।

—कुसुमकुमार

७—रोगों की अचूक चिकित्सा—लेखक, श्रीयुत जानकीशरण वर्मा, प्रकाशक, लीडर प्रेस, इलाहाबाद हैं। पृष्ठ-संख्या २७८, मूल्य १॥) है।

प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति के सिद्धान्तों को दृष्टि में रखकर लेखक ने इस पुस्तक की रचना की है। इसमें प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली के सारांश का वर्णन, रोगों के कारण, रोगों के तीन मुख्य प्रकार, चिकित्सा-सिद्धान्त, भोजन, हवा, पानी, धूप-नहान, भाप-नहान, व्यायाम

आदि सत्रह शीर्षकों में किया गया है। वर्णन सरल और मनोग्राही है। सर्वसाधारण भी इससे पूरा पूरा लाभ उठा सकें, इस उद्देश से पारिभाषिक तथा कठिन शब्दों का इसमें प्रयोग नहीं हुआ है। परिशिष्ट में विभिन्न खाद्य पदार्थों के गुण-दोष बताकर रोगावस्था तथा आरोग्यावस्था में देने योग्य नित्य के भोज्य पदार्थों का उल्लेख किया गया है। भाफ के स्नान के चित्रों के अतिरिक्त पुस्तक में प्राकृतिक चिकित्सा के विशेषज्ञों तथा प्रचारकों के चित्र भी दिये गये हैं। जो व्यक्ति अपने शरीर को आरोग्य तथा मन को बलवान् बनाना चाहते हैं उन्हें इस पुस्तक को पढ़ना चाहिए और विज्ञान के नाम पर शरीर को व्याधि-मन्दिर बना देनेवाली चिकित्सा-प्रणालियों से अपनी रक्षा करके प्रकृति के कल्याणकारी-पथ का अनुसरण करना चाहिए। पुस्तक सर्वथा उपयोगी है।

८-९—साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी), के दो काव्य-ग्रन्थ—

(१) द्वापर—लेखक, श्रीयुत मैथिलीशरण गुप्त। मूल्य १॥) है।

'साकेत' के यशस्वी कवि की यह नई कृति है। द्वापर युग की महा विभूति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र को केन्द्र में रखकर उनके सम्पर्क में आनेवाले व्यक्तियों के चरित्रों की चतुर्दशी से यह शोभित है। द्वापर की विभिन्न मनोधाराओं की एक एक प्रतीक एक एक व्यक्ति के रूप में इसमें अवतीर्ण की गई है। प्रेम-साधना राधा के रूप में, चिर-संरुद्ध नारी-आत्मा का मुक्ति-हुंकार विधृता के रूप में, कर्मशीलता का संदेश बलराम के रूप में, नेता के अनुसरण की भावना गोप-बालों के रूप में, युग युग में क्रान्ति के साधनों को प्रगति देनेवाले कारण नारद के रूप में; मातृस्नेह की करुण ममता देवकी के रूप में; दम्भ के उन्माद का कंस के रूप में तथा ज्ञान-प्रबोध और सान्त्वना का उद्धव के रूप में इसमें सुन्दर चित्रण किया गया है। भाव-पक्ष और कलापक्ष दोनों दृष्टियों से 'द्वापर' एक उच्च कोटि का ग्रन्थ है। राधा, उद्धव, ग्वाल-बाल, गोपी आदि हमारे चिर-परिचित पौराणिक व्यक्ति कवि की प्रतिभा और कौशल के आलोक से मण्डित होकर एक अपूर्व मौलिकता से इस रचना में उद्भासित हो उठे हैं।

अपने छः शिशुओं के छीने और मारे जाने से पागल देवकी कारागार की अँधेरी कोठरी में चिल्ला उठती है—

'मेरे षण्मुख कार्त्तिकेय, तुम
मुझे घेरकर घूमो;
आओ, अब तो तुम्हें चूम लूँ
और मुझे तुम चूमो।

चूमने के लिए बढ़ते ही उसकी बेड़ियाँ उसको मानो वास्तविक परिस्थिति का स्मरण कराती हैं और वह अपनी बेबसी से रो उठती है—

पर अब भी बन्धन में हूँ मैं,
विवश, देख लो बेटा;
और कंस उच्छृङ्खल अब भी
सुख-शय्या पर लेटा।

इसी तरह प्रत्येक चित्रित चरित्र अपनी विशेषताओं से भरा हुआ है। इस काव्य को पढ़कर हमारे मुँह से तो यही निकल पड़ा कि 'वयं तु कृतिनः तत् सूक्ति-संसेवनात्।'

(२) सिद्धराज—लेखक, श्रीयुत मैथिलीशरण गुप्त हैं। मूल्य १) है।

गुप्त जी की यह कृति एक वीर-गाथा-काव्य है। मध्य-कालीन भारत के वीर 'यश के लिए विजिगीषा' की प्रेरणा से जब परस्पर युद्ध करके केवल अपनी श्रेष्ठता को सिद्ध किया करते थे उसी युग की यह कथा है। विक्रम की बारहवीं शताब्दी में पाटन (गुजरात) के सिंहासन पर प्रताप-शाली नरेश सिद्धराज जयसिंह था। उसी के युद्धों और जीवन-घटनाओं का लयप्रधान अतुकान्त छन्दों में कवि ने वर्णन किया है। राजमाता मिनलदे के साथ जब सिद्धराज जयसिंह सोमनाथ के दर्शन को गया था, उसी बीच में मालव-महीप नरवर्मा ने उनके राज्य पर चढ़ाई की। जयसिंह के मंत्री साँतू से जयसिंह की सोमनाथ-यात्रा का फल लेकर विजयी नरवर्मा लौट गया। जयसिंह ने लौट-कर जब यह सुना तब उसने मालव-नरेश पर चढ़ाई की और उसे वीरगति प्रदान की। उसके पुत्र और वीर जगद्देव को पकड़ कर भी सिद्धराज ने अपने उदार व्यवहार से अपना मित्र बना लिया। जगद्देव तो उसकी सेवा में ही रहने लगा। इधर सोरठ-नरेश खँगार ने सिन्धुराज की ग्रहदोष के कारण परित्यक्त तथा एक कुम्भार दम्पती-द्वारा परिपालित 'रानकदे' नामक कन्या

से विवाह कर लिया। इसके रूप की प्रशंसा सुनकर स्वयं सिद्धराज भी इसे अपनी रानी बनाना चाहता था, अतएव इसमें सिद्धराज ने अपना अपमान समझा और पन्द्रह वर्ष में अनेक बार युद्ध करके वह विजयी हुआ। सोरठ-नरेश की मृत्यु के बाद सिद्धराज ने रानकदे को क़ैद कर लिया और उसके छोटे छोटे दो बच्चों की हत्या कर डाली। सती रानकदे ने सिद्धराज के नीच प्रेम-प्रस्तावों को ठुकरा दिया और जगद्देव की मध्यस्थता से अपने सतीत्व की रक्षा करके सती हो गई। सिद्धराज भी अपने पतन और भूल पर पश्चात्ताप करने लगा। अपनी माता की आज्ञा से सिद्धराज ने अपने पिता के शत्रु शाकम्भरी नरेश अर्णोराज को पराजित किया और उसे बन्दी करके ले आया। सिद्धराज की पुत्री कांचनदे और बन्दी अर्णोराज में प्रेम हो गया और दोनों का विवाह भी कर दिया गया। अन्त में सिद्धराज महोबा-नरेश मदनवर्मा का अतिथि हुआ और वसन्तोत्सव के प्रीति-रंग और गुलाल का उपभोग किया। उसकी नीति-पूर्ण बातें श्रद्धा से सुनकर सिद्धराज फिर अपने देश को लौट गया। यही इस काव्य का कथानक है। काव्य की दृष्टि से यह एक सफल रचना है। नारियों के सैन्य के सुन्दर चित्र, प्रकृति के मनोरम दृश्य, दूतों की वाक्‌चातुरी और हृदयहारी कथोपकथनों के अतिरिक्त कवि की कला की अन्य सभी विशेषतायें इसमें हैं।

पुस्तक काव्य-रसिकों के लिए आदर की वस्तु है।

(२) मृण्मयी—(काव्य) लेखक श्रीयुत सियारामशरण गुप्त हैं। मूल्य १।) है।

कविवर सियारामशरण गुप्त से प्रेमी अच्छी तरह परिचित हैं। उनकी इस कृति में ग्यारह शीर्षकों में ग्यारह रचनायें दी गई हैं। प्रत्येक कविता एक भाव-विशेष को लक्ष्य में रखकर लिखी गई है। सम्पूर्ण कविता का मर्म बीजरूप से इन शीर्षकों में निहित है। 'रजकण' नामक कविता में कवि ने क्षुद्रता और विशालता की पहेली को सुलझाया है। 'रजकण' जब हिमाचल के चरणों में पहुँचकर अपनी अहंभावजन्य क्षुद्रता को भूलकर उस 'एकत्व' से उत्पन्न 'नानात्व' का पता पा लेता है उस समय उसे अपने और हिमाचल में 'स्वजनत्व' का भान होने लगता है। विश्वात्मन् से अपने को पृथक् देखना 'क्षुद्रत्व' का कारण है, किन्तु उसी में अपना दर्शन करने से क्षुद्रता का लोप हो जाता है। 'ग्वालिनें' शीर्षक कविता में एक गोपी अपना दधि बेंचकर 'धन' का लाभ पाये लौट रही है, पर उसे 'प्रियतम' का लाभ कहाँ? दूसरी दधि न बेंचे ही लौट आई है, परन्तु उसे 'प्रियतम' मिल गया है। इस प्रकार कवि ने लाभ में अलाभ और अलाभ में लाभ का स्पष्टीकरण किया है। 'खिलौना' नामक कविता में कवि ने यह दिखाया है कि किस प्रकार मानव अपनी अपनी परिस्थिति और 'परिप्राप्ति' में असन्तोष का व्यर्थ ही अनुभव किया करते हैं। 'नाम की प्यास' नामक कविता में कवि ने बड़ी सुन्दरता से यह दिखलाया है कि 'नाम की प्यास' जब तक हमें कर्म की ओर प्रेरित करती है तब तक हमारा 'कर्म' असफल और रसहीन ही बना रहता है, पर ज्यों ही यह 'मान की कठोर शिला' फेंक दी जाती है तभी कर्म का सच्चा रस हमें प्राप्त होता है। अन्य कवितायें भी इसी प्रकार एक एक निगूढ़ उपदेश को प्रकाशित करती हैं। काव्य-रसज्ञ इन कविताओं में 'सद्यः परनिर्वृत्ति' के साथ साथ 'कान्तासम्मित' रूप से 'उपदेश' भी पा सकते हैं। भाषा सरल, प्रवाहमयी और प्रसाद-गुण-सम्पन्न है। वर्णनशैली की दृष्टि से हिन्दी में यह रचना अनूठी है। कवि ने एक नवीन दिशा की ओर पग बढ़ाया है और हिन्दी में उनका यह सफल प्रयत्न सर्वथा अभिनन्दनीय है।

११—राजपूत-मराठा एक हैं (भाग १ म तथा २ य)—ये दोनों पुस्तकें ग्वालियर के राजपूत-मराठा-संघ ने प्रकाशित की हैं। मराठा और राजपूत दोनों वीर जातियों को एक सूत्र में बाँधने और उनमें पारस्परिक विवाह-सम्बन्ध स्थापित करने के उद्देश से ये लिखी गई हैं। प्रथम भाग में इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् श्रीयुत यदुनाथ सरकार तथा श्रीयुत सी० वी० वैद्य के उन विचारों का अँगरेज़ी, मराठी तथा हिन्दी में संकलन किया गया है जिनसे मराठों तथा राजपूतों का क्षत्रियत्व प्रमाणित होता है। प्राचीन इतिहास की साक्षियों से यह सिद्ध कर दिया गया है कि इन दोनों जातियों में पूर्व-समय में पारस्परिक विवाह-सम्बन्ध होते थे। मुसलमानों के आक्रमणों के पश्चात् भौगोलिक बाधाओं तथा अन्य कारणों से वह सम्बन्ध टूट गया। पुस्तक के द्वितीय भाग में उज्जैन में १९३१ में जो राजपूत-मराठा-कान्फ़रेंस हुई थी उसमें दिये गये भाषणों, प्रस्तावों का तथा कान्फ़रेंस से सहानुभूति रखनेवाले सज्जनों के पत्रों का समावेश है। ये सभी लेख व पत्र आदि भी तीनों भाषाओं में दिये गये हैं। इनसे मराठों तथा राजपूतों का एक ही होना भली भाँति प्रमाणित होता है। मराठों तथा राजपूतों को इन प्रमाणों पर विचार करना चाहिए। संघ ने जिस उद्देश से इन छोटी छोटी पुस्तिकाओं का प्रकाशन किया है वह स्तुत्य है। अन्य ऐतिहासिक विद्वान् भी इनमें अनेक विचारणीय निर्देश पा सकते हैं।

—कैलाशचन्द्र शास्त्री, एम० ए०

१२—रत्ना—लेखक, कुँवर सोमेश्वरसिंह, बी० ए० एल-एल० बी०, प्रकाशक, हिन्दी-मन्दिर-प्रयाग हैं। मूल्य ॥) है।

कुँवर सोमेश्वरसिंह हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि ठाकुर गोपालशरणसिंह के ज्येष्ठ पुत्र हैं। उनकी कवितायें समय-समय पर हिन्दी के प्रमुख पत्रों में प्रकाशित होती रही हैं। 'रत्ना' उनकी कविताओं का प्रथम संग्रह है।

रत्ना की कविताओं को पढ़ने के बाद यह कहा जा सकता है कि कुँवर सोमेश्वरसिंह हिन्दी के उन नवयुवक कवियों में प्रमुख हैं जिनसे हिन्दी-साहित्य को बहुत बड़ी आशायें हैं। आधुनिक 'छायावाद' की कविताओं में प्रारम्भिक काल में जो दोष आ गये थे वे अब धीरे धीरे नवयुवक कवियों की कविताओं से निकलते जाते हैं—और आज-कल की कवितायें काफ़ी विकसित और सुन्दर हो रही हैं। कुँवर सोमेश्वरसिंह की कविताओं को पढ़ने के बाद हम उस निर्णय पर पहुँचते हैं कि वे इस दौड़ में पीछे नहीं हैं।

उनकी कवितायें सरल, भावपूर्ण तथा स्पष्ट होती हैं। शब्दों का खेल और कल्पना की दुरूहता उनमें नहीं है। इसके लिए हम उन्हें बधाई देते हैं। शब्द सीधे-सादे, भाषा सरल और इसके साथ हृदय को छू लेने की क्षमता—श्रेष्ठ कविता का मेरे मतानुसार यही लक्षण है; और इस कसौटी पर उनकी कविता खरी उतरती है। स्थानाभाव के कारण केवल एक उदाहरण यहाँ दे देना यथेष्ट होगा।

इस रंगमंच पर कितनों को आते-जाते देखा।
कितनों को रोते देखा कितनों को गाते देखा ॥
हँसते-हँसते जो आये आँसू बरसाते देखा।
दानी को अपना सूना आँचल फैलाते देखा ॥

कुँवर सोमेश्वरसिंह में करुणा प्रधान है, और सम्भवतः यह युग का प्रभाव है। इस संघर्ष और विमर्ष के युग में करुणा का न होना आश्चर्यजनक होगा। पर हम आशा करते हैं कि निकट भविष्य में उस करुणा और विवशता का स्थान आशा और विद्रोह ले लेगा।

—भगवतीचरण वर्मा

१३—प्रभा (मराठी)—मराठी का यह सचित्र साप्ताहिक पत्र पाँच साल से निकल रहा है। इस पत्र में विशेष खूबी यह है कि इसके प्रत्येक अङ्क में बारहों राशियों का भविष्य तथा किन्हीं किन्हीं अङ्कों में तो पूरे महीने भर का भविष्य दिया रहता है। इसमें सुरुचि-पूर्ण ऐतिहासिक कहानियाँ, उपन्यास भी रहते हैं। इस पत्र में स्त्री-पुरुषों की चिकित्सा-सम्बन्धी चुटकुले भी जो संग्रह करने योग्य होते हैं, छापे जाते हैं।

इस पत्र में निरी शिक्षाप्रद कहानियाँ और उपन्यास ही नहीं होते, बल्कि मन बहलाव के चुटकुले और पहेलियाँ भी, जिनके सोचने से बुद्धि विकसित होती है। बीच बीच में धार्मिक, व्यावसायिक तथा बड़े बड़े नेताओं के चित्र और उनके चरितों का सुन्दर वर्णन भी रहता है। सिनेमा का भी इस पत्र पर काफ़ी प्रभाव है। सिनेमा में काम करनेवाली अभिनेत्रियों के चित्र भी इसमें छापे जाते हैं। साल में तीन या चार विशेषाङ्क भी निकलते हैं।

पत्र सर्वथा उपयोगी है। इसका वार्षिक मूल्य पूने के लिए केवल ३) और अन्य स्थानों के लिए ३॥) है। इसके सम्पादक हैं—श्री रा० व० बोरपडे, बी० एस-सी० तथा संचालक हैं—डा० ना० भि० परुलेकर, एम० ए०, पी० एच० डी० मिलने का पता—६१७ क़सबा, पूना।

—भालचन्द्र दीक्षित

श्री राजेश्वरप्रसादसिंह हिन्दी के नवयुवक कहानी-लेखकों में अग्रगण्य हैं। 'सरस्वती' में आपकी अनेक सुन्दर कहानियाँ छप चुकी हैं। यह कहानी भी पाठकों को पसन्द आये बिना न रहेगी।

मतभेद

लेखक, श्रीयुत राजेश्वरप्रसाद सिंह

"सुनते हो ?"

"कहो।" क़लम रोककर, काग़ज़ से दृष्टि उठाकर, रमेश ने कहा।

"रीजेंट थियेटर में 'डेविड कापरफ़ील्ड' दिखाया जा रहा है।"

"अच्छा ! 'डेविड कापरफ़ील्ड' डिकेंस की सर्वोत्कृष्ट रचना है। किन्तु मेरा तो विश्वास है कि ये फ़िल्मवाले चार्ल्स डिकेंस जैसे महान् लेखकों के साथ न्याय नहीं कर सकते।"

"नहीं कर सकते ?"

"कदापि नहीं। कम से कम मेरी राय तो यही है। मूक फ़िल्मों के ज़माने में एक बार मैंने 'ए टेल आफ़ टू सटीज़' देखा था। डिकेंस की उस महान् रचना की जो दुर्गति की गई थी उसे देखकर मुझे तो बड़ा दुःख हुआ था।"

"लेकिन जानकारों का विचार तो यह है कि फ़िल्म-निर्माण-कला आज-कल उन्नति के उच्चतम शिखर पर पहुँच गई है।"

"यह उन्नति का युग है। प्रत्येक दिशा में उन्नति की दौड़ ज़ोरों पर है। अन्य कलाओं की भाँति फ़िल्म-निर्माण-कला भी बहुत काफ़ी उन्नति कर गई है। किन्तु मेरा तो यह दृढ़ विचार है कि फ़िल्म-निर्माताओं को चार्ल्स डिकेंस जैसे महान् लेखकों के पीछे न पड़ना चाहिए और कहानियों के लिए अपने ही कहानी-लेखकों पर निर्भर रहना चाहिए।"

"तुम्हारी इस राय से मैं सहमत नहीं हूँ। किसी मामूली कहानी के आधार पर बनी हुई सुन्दर फ़िल्म की अपेक्षा मैं उस मामूली फ़िल्म को अधिक पसंद करूँगी जो [illegible] कहानी के आधार पर बनी हो। और कुछ न सही फ़िल्मवाले कम से कम हम लोगों में साहित्य-प्रेम तो जाग्रत कर ही रहे हैं।"

"वास्तविक, यथार्थ, उच्च कोटि के साहित्य के लिए डुगडुगी बजानेवालों की ज़रूरत न पड़नी चाहिए। 'मुश्क वह है जो ख़ुद अपनी सुगन्ध फेंके, न कि अत्तार उसका ढिंढोरा पीटे !' साहित्य वह पवित्र मन्दिर है जिसके द्वार सदैव सबके लिए खुले रहते हैं। उच्च कोटि के मानसिक मनोरञ्जन तथा ज्ञान की कामना रखनेवाले सदैव वहाँ आते हैं और सन्तुष्ट होकर जाते हैं।"

"तुम आदर्शवादी हो, स्वप्न-लोक के निवासी हो। विवाद-ग्रस्त बातें कहने में तुम्हें मज़ा आता है। अगर मैं यह कहूँ कि यदि साहित्य को अपने क्षेत्र का विस्तार करना है तो उसे व्यवसाय की सहायता अवश्य लेनी होगी तो इसके जवाब में कोई न कोई टेढ़ी-सीधी बात तुरन्त कह दोगे। ख़ैर, यह सब रहने दो। मतलब की बात करो। कहो, 'डेविड कापरफ़ील्ड' देखने चलोगे ?"

रमेश हँस पड़ा।

"बोलो ?"

"नहीं चल सकता, प्रिये।"

"क्यों।"

"यह लेख मुझे इसी समय समाप्त करना है। 'इम्पेरियल' को अपने अगले साप्ताहिक के लिए इसकी ज़रूरत है। कल ही इसे रवाना कर देना होगा, ताकि देर न हो जाय।"

"सिनेमा से लौटने के बाद इसे आसानी से समाप्त कर सकते हो।"

"लिखने की मनःस्थिति इस समय मौजूद है और इसे भागने का मौक़ा न देना चाहिए। रात को [illegible] लौटी तो क्या करूँगा ? इस ख़तरे में न पड़ूँगा। मुआफ़ करो, प्रिये। आज अकेले ही चली जाओ। किसी दूसरे दिन तुम्हारे साथ ज़रूर चलूँगा।"

"अच्छी बात है, न जाओ।" नाराज़ होकर, तेज़ी से उठकर, आशा कमरे से बाहर हो गई।

रमेश ने दीर्घ निःश्वास खींचा। आशा के स्वर ने, भाव-भंगी ने साफ़ कह दिया था, सँभलो, तुम्हारी ख़ैरियत नहीं। किन्तु रूठी बीबी को मना लेने, उसके मन को करने या आनेवाले झगड़े पर विचार करने के लिए उसके पास समय न था। क़लम उठाकर वह अपने अधूरे लेख पर ध्यान जमाने लगा।

सीधे पोर्टिको में पहुँचकर आशा मोटर-कार में बैठ गई। शोफ़र ने दरवाज़ा बन्द कर दिया।

"रीजेंट थियेटर चलो।"

"बहुत अच्छा, सरकार।" वह अपनी सीट पर बैठ गया। कार चल पड़ा।

रमेश से, उसकी आदतों से, उसकी झक से, उसके विचारों से वह तंग आ गई थी।

तीन वर्ष हुए, एक मित्र के घर पर रमेश से उसकी पहले-पहल भेंट हुई थी और उसे ज्ञात हुआ था कि उसके अतिरिक्त वह किसी अन्य पुरुष को प्यार नहीं कर सकती। वह भी उसकी ओर आकृष्ट हुआ था। वह धनी था, रूपवान् था, लब्धप्रतिष्ठ साहित्यिक था, सुविख्यात पत्रकार था। वह भी सुन्दरी थी, स्वतन्त्र प्रकृति की नवयुवती थी और उसी वर्ष ग्रेजुएट हुई थी। इस तरह दोनों एक-दूसरे के सर्वथा उपयुक्त थे। जब रमेश ने अपना प्रेम प्रकट किया तब उसने भी अपना हृदय खोलकर रख दिया। दोनों ने विवाह कर लेने का निश्चय कर लिया।

जहाँ तक आशा का सम्बन्ध था, कोई कठिनाई न थी। उसी की भाँति उसके पिता भी स्वतन्त्र विचारवाले व्यक्ति थे। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कह दिया था कि वह बदमाश भिखमंगा को छोड़कर जिस किसी से चाहे शादी कर सकती है। किन्तु उसके प्रेमी की दशा भिन्न थी। उसके पिता पुराने विचार के और कट्टर हिन्दू थे। अपने कुटुम्ब-सम्बन्धी प्रत्येक विषय में अन्तिम फ़ैसला देना वे अपना धर्म और अधिकार समझते थे। रमेश ने जब अपने विवाह-सम्बन्धी निश्चय की सूचना उन्हें दी तब वे आगबबूला हो गये। ग़ैर ज़ात की लड़की के साथ शादी कर लेने की अनुमति वे अपने एकमात्र पुत्र को कैसे देते ? नहीं, यह असम्भव था। उन्होंने उसे आज्ञा दी कि वह अपना असंगत निश्चय तुरन्त त्याग दे। उसे यह धमकी भी मिली कि यदि वह अपने निश्चय पर अड़ा रहा तो उनके वसीयतनामे से उसका नाम काट दिया जायगा। किन्तु रमेश धमकी में आ जानेवाला व्यक्ति न था।

कुछ समय के बाद उन दोनों का विवाह सिविल मैरिजेज़ ऐक्ट के अनुसार आशा के पिता विनोदचन्द्र तथा कतिपय मित्रों की उपस्थिति में सम्पन्न हो गया। महाशय विनोदचन्द्र ने उदारता-पूर्वक सहायता दी, दोनों का स्वतन्त्र भवन स्थापित हो गया। रमेश के पिता बटुकनाथ को पुत्र की हर्कत बहुत बुरी लगी। आवेश में आकर उन्होंने उसका नाम अपने वसीयतनामे से निकाल दिया। कुछ दिनों के बाद जब उनका क्रोध शान्त हो गया तब उन्होंने उसे क्षमा कर दिया, नया 'विल' लिखा और उसे यथेष्ट आर्थिक सहायता देने लगे।

सुख के पथ पर उन दोनों का वैवाहिक जीवन बहुत दिनों तक सुव्यवस्थित गति से चलता रहा। एक-दूसरे की संगति में दोनों को अद्भुत आनन्द प्राप्त होता था—ऐसा आनन्द जैसा उन्हें कभी नहीं प्राप्त हुआ था, वह आनन्द जो शारीरिक सीमायें पारकर आध्यात्मिक रस में घुल-मिल जाना चाहता है। दोनों के बीच पूर्ण सामंजस्य था—शरीर तथा आत्मा में सामंजस्य, विचारों तथा आदर्शों में, इच्छाओं तथा अनिच्छाओं में।

फिर, प्रतिक्रिया आई—वह भयङ्कर प्रतिक्रिया जो उनके पारस्परिक अस्तित्व को पूर्णतया रस-हीन कर देने पर तुली हुई थी। विभेद उठ खड़े हुए। आये दिन झगड़े होने लगे। नूतन दृष्टि-कोण से वे एक-दूसरे को देखने लगे। दोनों की बुराइयाँ दोनों को अतिरञ्जित होकर दिखाई देने लगीं। उनमें निवास करनेवाले प्रेमी दब गये, और आलोचक उठ खड़े हुए और एक-दूसरे के सिर पर यथार्थ तथा कल्पित दोष मढ़ने लगे। ऐसा हो गया मानो दोनों में किंचित्-मात्र भी सामंजस्य न था, मानो कुटिल दुर्भाग्य ने दोनों को ज़बर्दस्ती एक-दूसरे के गले मढ़ दिया था।

प्रेम, अपने शैशवकाल में, सब कुछ दे देना और पाना चाहता है। इस सम्पूर्ण समर्पण के मध्य के स्वर्ण-मार्ग से वह सर्वथा अपरिचित होता है। ठोकरें खाकर, प्रौढ़ होकर जब वह अधिक देने और कम या कुछ न पाने की कामना रखने के औचित्य को समझ लेता है, तभी वह ओजस्वी, पावन तथा निष्कलंक बन पाता है। परिवर्तन-काल के कंटकाकीर्ण पथ पर अज्ञात रूप से चलते हुए आशा और रमेश पहली अवस्था से दूसरी अवस्था की ओर धीरे-धीरे बढ़ रहे थे—उस अवस्था की ओर जो उन्हें जीवन तथा संसार को उनके वास्तविक रूप में देखने और समझने की क्षमता प्रदान करने को थी। तब इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं कि वे विकल थे, अशान्त थे, अंधकार में भटक रहे थे।

(२)

आशा का मोटर रीजेंट थियेटर के सामने पहुँचकर रुका। पहले शो के शुरू होने में अभी बहुत देर थी। कार से उतरकर वह बरामदे में पहुँची। इतमीनान से इधर-उधर घूमते हुए दो-चार थियेटर के कर्मचारियों के अतिरिक्त वहाँ और कोई न था। रेस्तराँ के दरवाज़े खुले थे और अन्दर एक मेज़ के सामने बैठा हुआ एक गोरा सैनिक चाय पी रहा था। बोर्ड के समीप जाकर वह उस पर लगे हुए फ़ोटो देखने लगी। उन चित्रों में 'डेविड कापरफ़ील्ड' के अनेक मार्मिक दृश्य अंकित थे, किन्तु उन्हें देखने में उसका मन न लगा।

तब वह दूसरे बरामदे में चली गई और विचारों में डूबी हुई धीरे-धीरे टहलने लगी। अकेलेपन का विकल भाव उसके हृदय में व्याप्त था। मस्तिष्क में भी उसे ऐसा जान पड़ता जैसे इस विराट् विश्व में उसका कोई न था। रमेश क्या उसे अब नहीं चाहता? बिलकुल नहीं चाहता, यह तो स्पष्ट ही है। उसके प्रेम में वह उष्णता, वह स्निग्धता कहाँ है जो पहले थी और जिसे वह पसंद करती थी। उसके पास पहुँचने पर अब तो उसे ऐसा जान पड़ता था, मानो वह किसी हिमाच्छादित पर्वत के समीप हो। उसकी छोटी से छोटी इच्छा पहले उसके लिए मान्य होती थी, किन्तु अब तो उसकी किसी इच्छा की उसे ज़रा भी परवा नहीं। अगर वह आना चाहता तो क्या थोड़ी देर के लिए लिखाई बन्द करके यहाँ नहीं आ सकता था? लिखने की मनःस्थिति! महज़ बहानाबाज़ी! लिखने का जिसे अभ्यास हो, जो नित्य लिखता हो, वह जब चाहे क़लम उठाकर लिख सकता है। वह आना नहीं चाहता था, इसलिए एक बहाना पेश कर दिया। प्यार जब दिल से उठ गया तब अवहेलना के सिवा कोई क्या दे सकता है? ऐसा परिवर्तन उसमें कैसे हो गया? उसने तो कोई अपराध नहीं किया। वह तो उसे अब भी उतना ही चाहती है जितना पहले चाहती थी। फिर, पग-पग वह उसका तिरस्कार क्यों करता है? क्या वह किसी दूसरी स्त्री को चाहने लगा है? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। उसके जान में तो उसकी कोई स्त्री मित्र न थी। क्या उसने कभी सच्चे दिल से उसे प्यार नहीं किया? कौन जाने?

सहसा, उसने देखा, दो सजे-धजे युवक उस ओर खड़े हुए उसे घूर रहे थे। वे कौन हैं? वह तो उन्हें नहीं जानती। फिर, वे उसे क्यों घूर रहे हैं? पुरुष स्त्रियों को क्यों घूरते हैं? "स्त्रियाँ घूरी जाना पसन्द करती हैं", रमेश ने एक बार मज़ाक में कहा था, "इसी लिए मर्द उन्हें घूरते हैं!" स्त्री-जाति के प्रति ये कैसे अपमानजनक वाक्य हैं और मर्दों की बुरी आदत की कैसी झूठी सफ़ाई है! उस समय वह हँस पड़ी थी, लेकिन आज तो उसे हँसी नहीं आती। कम से कम वह तो घूरी जाना पसन्द नहीं करती। फिर, वे असभ्य युवक उसे क्यों घूर रहे हैं? कदाचित् वे भी अपनी स्त्रियों से घृणा करते हैं। वह पुरुष जो अपनी स्त्री से प्रेम करता है, शायद किसी दूसरी स्त्री की ओर देखना पसंद न करेगा। क्या यह सत्य है? कदाचित् है, कदाचित् नहीं। मर्द कितने स्वार्थी होते हैं, कितने बेवफ़ा! खीझकर वह अपने कार के समीप गई, और उसमें बैठ गई।

"बेनी! मेरे लिए टिकट ख़रीद लाओ।" पाँच रुपये का एक नोट उसने शोफ़र की ओर बढ़ा दिया।

"बहुत अच्छा, हुज़ूर!" नोट लेकर वह चला गया।

ये लोग आख़िर कब खेल शुरू करेंगे? तबीअत कितनी ऊब रही है! जल्दी आ जाना कितना बुरा हुआ! यह भी रमेश के कारण। अगर वह आने से इनकार न करता तो वह इतनी जल्दी क्यों आती? वह कितना समझदार है! वह जो कुछ कहता है तोलकर कहता है,

जो कुछ करता है तोलकर करता है! वाह री उसकी बुद्धिमानी!

बेनी वापस आया, और टिकट और बाक़ी रुपये स्वामिनी को दे दिये। पहली घंटी बजी। जाकर अपनी सीट पर बैठ जाना चाहिए? लेकिन भीड़ तो ज़्यादा नहीं दिखाई देती। नहीं, कोई जल्दी नहीं है। अभी से जाकर बैठना लोगों को फिर घूरने का मौक़ा देना होगा। काफ़ी घूर-घार हो चुकी, कम से कम आज के लिए! आख़िरी घंटी बजने का इन्तज़ार करना ही मुनासिब है।

अन्त में जब आख़िरी घंटी बजी तब वह मोटर से उतरी और अव्वल दर्जे की ओर बढ़ी। भीड़ ज़्यादा नहीं थी। गेट-कीपर को टिकट देकर वह अन्दर घुसी। एक को छोड़कर सब बत्तियाँ बुझ चुकी थीं। अच्छा! अब भी खेल शुरू नहीं हुआ! अजब लीचड़ हैं ये लोग!

सात बजकर ३० मिनट हो चुके थे जब रमेश ने अपने लेख का अन्तिम शब्द लिखा। लेख दोहराकर, हस्ताक्षर कर, अच्छा-सा शीर्षक लगाकर, सन्तोष की साँस लेकर, मुस्कराकर, उसने सिगरेट जलाई। उसे ऐसा जान पड़ता था, मानो उसने गहरा पड़ाव मारा हो। कांग्रेसवादियों के कौंसिल-प्रवेश के औचित्य के सम्बन्ध में उसने अनोखी बातें अनोखे ढंग से कही थीं। अपरिवर्तनवादी कांग्रेसी यह लेख पढ़कर जल उठेंगे। कैसा मज़ा रहेगा! सहसा, आशा की छाया-मूर्ति उसकी आँखों के सामने आ उपस्थित हुई। "अच्छी बात है, न चलो!" उसके ये शब्द उसके कानों में गूँज उठे। उसके स्वर में भयंकर नाराज़गी थी, प्रतिकार की विकट इच्छा थी। किन्तु क्या उसका इतना रुठ जाना उचित था? क्या यह प्रत्येक पति का अनिवार्य कर्तव्य है कि उसकी पत्नी जब कभी और जहाँ कहीं जाय वह उसके साथ जाय? यह कैसी अनुचित माँग है! अगर वह उसे पहले ही से बता देती तो शायद वह उसके साथ जा सकता। किन्तु केवल उसे ख़ुश करने के लिए उस समय लिखना बन्द कर देना उसके लिए असम्भव था। यह बात न थी कि उसे मनोरंजन की आवश्यकता न थी। थी, बहुत थी। किन्तु केवल मनोरंजन के लिए किसी आवश्यक कार्य को स्थगित कर देना उसके स्वभाव के विरुद्ध है। ऐसी परिस्थिति में वह दोषी कैसे ठहराया जा सकता है? अगर बेमतलब रूठने में उसे मज़ा आता है तो वह शौक़ से रूठे। आज-कल बात बात पर उन दोनों के बीच मतभेद क्यों उठ खड़े होते हैं? किसी विषय में वे सहमत क्यों नहीं हो पाते? अब भी वह उससे उसी तरह प्रेम करता है जैसे पहले करता था। उसने उसे पूरी स्वतंत्रता दे रक्खी है। उसकी किसी बात में वह दख़ल नहीं देता। वह छोटी छोटी सेवायें भी तो उससे नहीं लेता, जो अन्य पति अपनी पत्नियों से लेते हैं। अपनी देख-रेख स्वयं कर लेने की आदत उसने बाल्यकाल में ही डाल ली थी, और उसकी वह आदत अभी तक जैसी की तैसी बनी हुई है। वह सदैव प्रसन्न रहने की चेष्टा करता है। रुष्ट होने का कारण मिलने पर भी वह रुष्ट न होने का प्रयत्न करता है। फिर भी आशा उससे ख़ुश नहीं रहती। क्या वह चाहती है कि वह उसके सेवक की भाँति व्यवहार करे? एक स्वतंत्र प्रकृति का व्यक्ति ऐसा व्यवहार कदापि नहीं कर सकता। नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। उसका ख़याल है कि परिस्थिति के अनुकूल अपने को बना लेने की उसमें क्षमता है। किन्तु यह उसका भ्रम-मात्र है। वह सुशिक्षिता है, किन्तु उसे कभी समझ नहीं सकी, उसके अनुरूप अपने को बना नहीं सकी। स्त्री अपने पति से बहुत अधिक माँगती है—उतना माँगती है जितना वह दे नहीं सकता। अपनी इस अनुचित माँग की पूर्ति के निमित्त, स्वेच्छाचारिता तथा ज़िद के अस्त्र लेकर, वह भयंकर युद्ध करती है, और उसका पति जब अपने पुरुषत्व की सहायता लेकर अपने अधिकारों की सार्थकता सिद्ध कर देता है, तभी वह अनिवार्य के सम्मुख नतमस्तक होने के औचित्य को स्वीकार करती है! यह बात कितनी खेदजनक है, किन्तु कितनी सत्य है! आशा इस नियम का अपवाद नहीं है। क्या उसे भी उसके विरुद्ध वही कार्रवाई करनी पड़ेगी जो अन्य पतियों ने अपनी स्त्रियों के विरुद्ध की है? ज़रूर करनी पड़ेगी। पर वह पशु-बल से काम न लेगा। उसका-सा सभ्य व्यक्ति पशु-बल से काम लेना पसन्द नहीं कर सकता। वह कार्रवाई तो शायद उसने शुरू भी कर दी है। हाँ, शायद कर दी है।

उठकर वह कमरे से बाहर निकला। थोड़ी देर के बाद वह घूमने चला गया। साढ़े दस बजे वह वापस आया। एक सेवक से पूछने पर उसे ज्ञात हुआ कि आशा थियेटर से लौट आई है, उसने खाना नहीं खाया है

और वह अपने शयनागार में है। उसे कोई आश्चर्य
नहीं हुआ। यह तो वह जानता ही था कि उससे इसके
विपरीत व्यवहार करने की आशा करना व्यर्थ है। उसे
मनाने के विचार से वह शयनागार की ओर चला। किन्तु
क्या आसानी से वह उसे मना पायेगा ? असम्भव।

शयनागार का दरवाज़ा भिड़ा हुआ था, लेकिन उसकी
सिटकिनी नहीं चढ़ी थी। धीरे से दरवाज़ा खोलकर उसने
कमरे में प्रवेश किया। एक शाल ओढ़े हुए आशा अपने
बिस्तरे पर लेटी हुई थी और उसकी आँखें बन्द थीं।
वह बिस्तरे के समीप पहुँचा।

"आशा!"

उसने कोई उत्तर नहीं दिया। तब बिस्तरे पर बैठकर
उसने धीरे से उसे हिलाया।

"मुझे तंग मत करो।"

"उठो, प्रिये।"

"क्यों उठूँ ?"

"सोने का वक्त अभी नहीं हुआ है और तुमने
भोजन भी नहीं किया है।"

"मुझे भूख नहीं है और मैं सो रही हूँ।"

"नहीं, तुम जाग रही हो और मन में मुझे कोस रही
हो। मुझे बड़ा अफ़सोस है !"

"अफ़सोस करने की तुम्हें क्या ज़रूरत है ? तुमने
कौन-सी ग़लती की है ? तुम तो कभी कोई ग़लती नहीं
करते !"

"न-जाने क्यों आज-कल तुम मुझे समझने की कोशिश
नहीं करतीं ?"

"मैं तुम्हें ख़ूब समझती हूँ, तुमसे अधिक समझती
हूँ। मेरी इच्छाओं की अवहेलना करने में तुम्हें बड़ा मज़ा
आता है। तुम्हारे अन्दर जो मसख़रापन है वही सारे फ़साद
की जड़ है।"

"इस प्रशंसा के लिए धन्यवाद ! किन्तु मैं नहीं जानता
कि इस प्रशंसा के योग्य हूँ या नहीं।"

"तुम मसख़रे हो और इससे तुम इनकार नहीं कर
सकते।"

"ख़ैर, यही सही। लेकिन लोग कहते हैं कि मसख़रा
किसी को नुक़सान नहीं पहुँचाता।"

"यह मैं नहीं मानती।"

"कम से कम वह घृणा का पात्र तो नहीं होता।"

"मैं उससे घृणा नहीं करती। हाँ, उसे नापसन्द
ज़रूर करती हूँ।"

"क्या यह वाञ्छनीय नहीं है कि स्त्री अपने पति की
दुर्बलताओं को क्षमा करे ?"

"और, क्या यह भी वाञ्छनीय नहीं है कि पति अपनी
स्त्री की उचित इच्छाओं की अवहेलना न करे ? लेकिन
तुम्हें तो अगर किसी बात से मतलब है तो वह है लिखना-
पढ़ना। कम से कम मुझसे तो तुम कोई मतलब रखना
ही नहीं चाहते !"

"यह ऐसा दोष है जिसे मैं कभी स्वीकार नहीं कर
सकता। आज भी मैं तुम्हें उतना ही चाहता हूँ, जितना
पहले चाहता था। तुम्हारी उचित इच्छायें मैं सदा मानने
का प्रयत्न करता हूँ, यदि मानना असम्भव नहीं होता।
आत्म-विकास की आवश्यकता मुझे लिखने के लिए प्रेरित
करती है, और लिखना मेरे लिए उतना ही आवश्यक है
जितना किसी दूसरे को कोई दूसरा काम करना। जब मैं
लिखता रहता हूँ तब कोई दूसरा काम करना असम्भव होता
है। इसलिए अगर आज शाम को मैं तुम्हारी बात नहीं
मान सका तो इसमें मेरा कोई दोष नहीं है।"

"आज की ही बात नहीं है। बीसों बार तुम ऐसा कर
चुके हो। साफ़ बात तो यह है निराशा के अतिरिक्त मैं
तुम से कुछ नहीं पा सकी !"

"निराशा की बात करती हो तो मुझे भी कहना
पड़ेगा कि तुम्हारे सम्बन्ध में मेरा भी यही विचार है।
फिर भी मैं तुम्हें प्यार करता हूँ—तुम्हारे गुणों-अवगुणों
सहित तुम्हें प्यार करता हूँ।"

"जब तुम्हारे कार्य तुम्हारे शब्दों का समर्थन नहीं
करते तब मैं यह कैसे मान लूँ ?"

"तुम्हें कैसे विश्वास दिलाऊँ ? आशा ! हम बच्चे
नहीं हैं; हम समझदार हैं, जवान हैं। हमारा यह कर्त्तव्य
है कि एक-दूसरे के दृष्टि-कोण को समझें और अपने मत
भेदों को दूर करें।"

"तुम्हारे साथ विवाह करके मैंने भारी भूल की।
अगर किसी मामूली भोंदू आदमी से भी शादी करती
तो शायद आज से अधिक सुखी होती !"

"ये ऐसे शब्द हैं जिन्हें मैं हर्गिज़ बर्दाश्त नहीं कर

सकता। उचित-अनुचित का विचार तुम्हें ज़रा भी नहीं
रह गया है। ऐसे अपमानजनक शब्द सुनने के बाद शायद
कोई स्वाभिमानी पति अपनी स्त्री से कोई सम्बन्ध रखना
पसन्द न करेगा। तुम अपने को क्या समझती हो—परी,
रानी या क्या ?"

"चाहे मैं संसार की सबसे ख़राब स्त्री ही क्यों न
होऊँ, लेकिन तुम्हारी धौंस सहने के लिए अब मैं तैयार
नहीं हूँ !"

तीव्र वेग से उमड़ते हुए क्रोध को वश में रखना
असम्भव जानकर रमेश उठकर तेज़ी से कमरे के बाहर
निकल गया।

वाचनालय में जाकर वह एक आराम-कुर्सी पर लेट
गया। नौबत यहाँ तक पहुँच गई ! मामला इतना बिगड़
गया ! कोई व्यक्ति ऐसी स्त्री से कैसे सम्बन्ध बनाये रख
सकता है जो इतनी शान बघारती है, जिसे औचित्य-अनौ-
चित्य का लेश-मात्र भी विचार नहीं रह गया है; समझाने-
बुझाने का भी जिस पर कोई असर नहीं पड़ता ? विलग
होने का समय शायद आ गया है। जो लोग साथ साथ
शान्ति के साथ नहीं रह सकते उन्हें अलग हो जाना ही
उचित है। हे ईश्वर ! अब क्या करना चाहिए ?

दूसरे दिन प्रातःकाल आशा को एक पत्र मिला। वह
पत्र इस प्रकार था—

"प्यारी आशा,

यह बात अत्यन्त खेदजनक है कि इधर हम दोनों
को एक-दूसरे की संगति में सुख प्राप्त नहीं हो रहा है।
वैवाहिक जीवन की सार्थकता सुख पर ही आधारित है।
इसलिए उचित यही है कि जब कभी पति या पत्नी या
दोनों को उनके वैवाहिक जीवन से सुख प्राप्त न हो तो
उनका सम्बन्ध-विच्छेद हो जाय। वर्तमान क़ानून के
अनुसार हम लोगों का सम्बन्ध-विच्छेद होना असम्भव है।
किन्तु अपनी समस्या हल करने के लिए हमारे सामने
एक मार्ग है। अनेक अलिखित क़ानून विद्यमान हैं और
उनके अनुसार कार्य करने के लिए लोग स्वतन्त्र हैं।
बिना शोर-शराबा किये गुप्त-रूप से हम अपना सम्बन्ध तोड़
सकते हैं और एक-दूसरे को एक-दूसरे के प्रति अपनी
ज़िम्मेदारियों से मुक्त करके स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करने
का अवसर दे सकते हैं। इस सम्बन्ध में तुम्हारे विचार
क्या हैं ? कृपया इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करो। मैं
चाहता हूँ कि आज तीसरे पहर तुम मेरे साथ इस प्रस्ताव
पर विचार करो। इस समय मैं बाहर जा रहा हूँ और एक
बजे वापस आऊँगा। स्वतन्त्र रूप से गम्भीरतापूर्वक
विचार करने के लिए इतना समय शायद तुम्हारे लिए
काफ़ी होगा।

तुम्हारा,
रमेश"

आशा क्रोध से काँपने लगी। पत्र फाड़कर उसने एक
ओर फेंक दिया। बात इस हद तक पहुँच गई ! जले पर
नमक ! वह अपने को क्या समझता है ? उसके साथ
सम्बन्ध जोड़े रहने के लिए क्या वह मर रही है ? क्या
उसमें आत्म-सम्मान का अभाव है ? वह किसी की धौंस
सहनेवाली स्त्री नहीं है। उसकी कृपा प्राप्त करने के लिए
वह अनुनय-विनय न करेगी—कदापि न करेगी। अपने
पिता के घर जाकर वह शेष जीवन शान्ति के साथ व्यतीत
कर सकती है। इस कलहपूर्ण वातावरण में क्या
रक्खा है ?

तीसरे पहर जब रमेश मकान वापस आया तब उसे
पता चला कि सवेरे ही आशा अपने पिता के घर चली
गई। वह मोटर पर सवार होकर गई और उसके आज्ञा-
नुसार उसका असबाब ठेले पर लदवाकर पहुँचा दिया
गया। उसके लिए वह एक पत्र छोड़ गई थी। उस पत्र
में लिखा था—

"......, सदैव की भाँति इस बार भी तुम्हारी राय
ठीक ही है। इस खेदजनक वातावरण का शीघ्रातिशीघ्र
अन्त हो जाना ही उचित है। मेरे प्रति तुम्हारी जो
ज़िम्मेदारियाँ हैं उनसे मैं तुम्हें मुक्त करती हूँ। मैं अपने
पिता के घर जा रही हूँ। लेकिन यह तो मैं फ़िज़ूल ही
लिख गई, क्योंकि इस बात से तुम्हें कोई सरोकार नहीं।
जो भारी बोझ तुमसे उठाये नहीं उठता था वह आज
तुम्हारे सिर से उठ गया। आशा है कि अब तुम आराम
और चैन से जीवन व्यतीत कर सकोगे !

......,
आशा।"

झगड़ा इतनी आसानी से ख़त्म हो गया ! यह अच्छा
ही हुआ। निर्विघ्न भाव से अब वह जिस तरह चाहे रह

सकता है, जो कुछ चाहे कर सकता है, और वह भी पूर्णतया स्वतन्त्र है। उसका प्रस्ताव स्वीकार करके आशा ने बड़ी बुद्धिमानी प्रदर्शित की। उसके पत्र में व्यंग्य अवश्य भरा है, किन्तु यह तो स्वाभाविक ही है। वे जिस कठिनाई में थे उसे हल करने का इससे अच्छा कोई उपाय न था। कितना अच्छा हुआ कि उसे ऐसा सुन्दर उपाय सूझ गया!

(३)

पति से विलग हुए और पिता के घर पर निवास करते हुए एक पक्ष बीत गया, किन्तु आशा सुखी न थी। पग पग पर उसे रमेश की याद आती थी, और इस बात से उसे अपने ही ऊपर क्रोध आता था। जो उसे नहीं चाहता उसकी वह क्यों परवा करे? वह एक विधवा स्त्री के समान है और उसे विधवा के समान जीवन व्यतीत करना चाहिए। उसके भाग्य में यही लिखा था कि उसके जीवन के अन्तिम दिवस असीम दुख से व्यतीत हों। जो कुछ उसके लिए नहीं है उसकी कामना करने का उसे क्या अधिकार है? मानव-जीवन मनुष्य को उतना ही तो दे सकता है जितने का वह पात्र है।

रमेश! आरम्भ में वह कितना सहृदय प्रतीत हुआ था, किन्तु अन्त में कितना हृदयहीन सिद्ध हुआ! मनुष्य का बाह्य स्वरूप उसके अन्तःकरण का द्योतक नहीं होता। बाह्य रूप के बहकावे में आ जाना भारी भूल है। किन्तु इस विषय में उसकी जैसी अनुभव-हीन नवयुवती के लिए भूल करना स्वाभाविक ही है। यह कितने दुःख की बात है कि एक साधारण भूल समस्त जीवन के सुख को नष्ट कर देती है! अपनी उस साधारण-सी भूल के लिए उसे कैसा भारी मूल्य चुकाना पड़ा! अब वह उसका कोई नहीं, वह भी उसकी अब कोई नहीं। उसकी याद फिर उसे क्यों सताती है? क्या अब भी वह उससे प्रेम करती है? नहीं करती। शायद करती है। यह कितनी अपमान-जनक बात है! यदि उसका प्रेम लेश-मात्र भी उसके हृदय में विद्यमान है तो उसे निकाल फेंकना चाहिए; उसका विचार भी मन में न आने देना चाहिए। हाँ, उसे ऐसा करना चाहिए, दृढ़ता के साथ, निर्दयता के साथ। किन्तु इस सम्बन्ध में उसकी सारी प्रतिज्ञायें ... बार बार उसका मन उसी बात में उलझ जाता, जिससे वह दूर रहना चाहती थी। हृदय-संबंधी बातों में विवेक की एक नहीं चलती। रमेश के प्रति उसका प्रेम उसके हृदय में इतनी दृढ़ता से जमा हुआ था कि उसे उखाड़ फेंकना आसान न था। मनुष्य अपनी सहायता करना चाहे और न कर सके—यह कितने दुःख का विषय है! आशा के आश्चर्य का, विवशता का, दुःख का वारापार न था।

और रमेश? वह भी सुखी न था। सुविकसित पुष्प की भाँति जो घर सदा खिलखिलाता रहता था, सहसा आकर्षणहीन हो गया था। पहले ही की तरह अब भी वह साफ़-सुथरा रहता था, किन्तु हर समय उसमें अजीब सूनापन दिखाई देता था। उसके हृदय में भी विचित्र सूनापन आ गया था। काम में भी उसका मन न लगता। लिखने की मनःस्थिति किसी समय उत्पन्न न होती। वह ज़बर्दस्ती लिखता, किन्तु सन्तोषजनक ढंग से कुछ न लिख पाता। उसके आश्चर्य का ठिकाना न था। आशा से उसके लेखन-क्रिया का तो स्पष्टतः कुछ सम्बन्ध न था। उसके इस काम में तो वह बाधा ही उपस्थित करती थी। इस सम्बन्ध में उसके विरोध की भावना के ही कारण तो उन दोनों का सम्बन्ध-विच्छेद हुआ था। उसकी अनुपस्थिति से लेखन-शक्ति को प्रेरणा मिलनी चाहिए थी। फिर यह उलटी बात क्यों हुई?

उसका क्या हाल है? उसकी दिन-चर्या क्या है? किन्तु उसके लिए चिन्तित होने की उसे क्या आवश्यकता है? वह तो अब उसे नहीं चाहती। "तुम्हारे साथ विवाह करके मैंने भारी भूल की!"—उसके इन शब्दों का और क्या मतलब है? विचित्र है स्त्री-चरित्र! क्या अब भी वह उससे प्रेम करता है? नहीं करता। शायद करता है। उसे भूल जाने का प्रबल प्रयत्न करना चाहिए। भूल जाना सम्भव है? शायद है। शायद नहीं है। तब क्या करना चाहिए? समझौता? नहीं, यह असम्भव है। वह उसके जीवन से बाहर जा चुकी है। उसकी इच्छा के विरुद्ध वह कैसे उसे पुनःप्रवेश का निमन्त्रण दे सकता है? कैसी विषम परिस्थिति है!

दिन का तीसरा पहर था। रमेश समालोचनार्थ आई हुई एक पुस्तक पढ़ने का प्रयत्न कर रहा था। सहसा उसके श्वसुर विनोदचन्द्र ने कमरे में प्रवेश किया।

रमेश सम्मानार्थ उठ खड़ा हुआ। प्रणाम-आशीर्वाद के बाद दोनों बैठ गये। विनोदचन्द्र ने मुस्कराकर कहा—रमेश! तुमसे एक सीधा-सा सवाल करना चाहता हूँ और आशा करता हूँ कि ठीक ठीक जवाब दोगे!

"मैंने कभी आपसे कोई बात छिपाने की कोशिश नहीं की।"

"मैं यह जानता हूँ और इस बात के लिए तुमसे बहुत ख़ुश हूँ। इस समय जो कुछ जानना चाहता हूँ वह यह है। क्या आशा और तुम्हारे बीच झगड़ा हो गया है?"

"क्या मैं यह जान सकता हूँ कि आप यह क्यों पूछ रहे हैं?"

"मेरा हृदय पिता का हृदय है और मैं देखनेवाली आँखें रखता हूँ। आशा ने तो मुझसे कुछ नहीं कहा, लेकिन मेरा ख़याल है कि तुम दोनों में ज़रूर झगड़ा हो गया है। उस दिन जब वह मेरे घर ढेरों असबाब लेकर पहुँची तभी मुझे सन्देह हुआ था। उसने मुझे बतलाया था कि वह स्थान-परिवर्तन के विचार से आई है, किन्तु मुझे विश्वास नहीं हुआ था। मैंने और सवाल किये, लेकिन वह बात टालने की कोशिश करती रही। उसका चेहरा उतरा हुआ था और वह थकी हुई-सी मालूम होती थी। कई दिन बीत गये, लेकिन उसकी तन्दुरुस्ती नहीं सुधरी। तब मैंने अपने डाक्टर को बुला भेजा। उसकी परीक्षा करने के बाद डाक्टर ने मुझे बतलाया कि किसी मानसिक आघात के कारण उसे कोई स्नायु-रोग हो गया है। तब से उसका इलाज हो रहा है, लेकिन कोई फ़ायदा दिखाई नहीं देता। उसका चेहरा मुर्झाया रहता है और वह बहुत दुबली हो गई है। दिन-रात वह अपने में ही खोई रहती है और किसी मित्र से मिलना-जुलना भी उसे पसंद नहीं है। किसी मनोरञ्जन के वह पास नहीं फटकती। इतने दिनों से वह मेरे यहाँ मौजूद है और तुम एक बार भी नहीं आये। तुम्हीं बतलाओ, इन बातों से क्या मालूम होता है।"

तब रमेश ने उपर्युक्त दुःखद घटनायें बयान कर दीं। उसने कोई बात नहीं छिपाई। विनोदचन्द्र ठट्ठाकर हँस पड़े।

"रमेश! अब तक मैं तुम्हें गम्भीर स्वभाव का व्यक्ति समझता आया हूँ, लेकिन आज यह जानकर मुझे बेहद ख़ुशी हुई कि तुम बच्चों की तरह भी व्यवहार कर सकते हो। क्या तुम यह समझते हो कि आशा के बिना सुखी रह सकते हो? अगर तुम्हारा यह ख़याल है, तुम भारी भ्रम में हो। जब तुम्हारी शादी के मामले में मैंने अपनी रज़ामंदी दी थी तब उसी समय मैंने तुम्हें ख़ूब तोल लिया था। बेटा! स्त्रियों के मामले में पुरुषों को बड़ी होशियारी से काम लेना पड़ता है। अपनी पत्नियों पर अधिकार जमाये रखने के लिए हमें कभी झुकना पड़ता है, कभी तन जाना पड़ता है। किन्तु प्रत्येक दशा में उनकी मान-रक्षा करना हमारा परम कर्तव्य होता है। हमसे इतने की आशा करने का उन्हें पूरा अधिकार है।"

"मैं यह मानता हूँ, पापा कि मुझ से बड़ी ग़लती हुई।"

"अभी बहुत हानि नहीं हुई है। अब तुम एक काम करो। फ़ौरन मेरे साथ चलो और उससे समझौता कर लो।"

"लेकिन, पापा, क्या यह सचमुच उचित है कि...।"

"आगा-पीछा मत करो, बेटा। मैं तुम्हारा शुभ-चिन्तक हूँ और तुमसे अधिक अनुभवी हूँ। जो कहता हूँ, करो।"

"बहुत अच्छा, पापा।"

तब दोनों उठकर चले गये।

आध घण्टे में रमेश ने आशा के कमरे में प्रवेश किया। एक बार उसकी ओर देखकर आशा ने सिर झुका लिया। रमेश झपटकर उसके समीप पहुँचा, उसके बग़ल में बैठ गया और उसे भुजाओं में कस लिया।

"आशा! प्यारी आशा! मैं जानता हूँ कि मैंने तुम्हारे साथ जानवर का-सा बर्ताव किया है। मुझे क्षमा कर दो......मुझे क्षमा......!"

"मुझसे भी बड़ी भूल हुई।" आशा ने अवरुद्ध कंठ से कहा। "मेरा अपराध भी कम नहीं है। स्वार्थ ने, मिथ्याभिमान ने मुझे मूर्ख बना दिया था, अंधी बना दिया था। मुझे समझना चाहिए था कि अपने प्रति भी तुम्हारी कुछ ज़िम्मेदारियाँ हैं।"

"तुम्हारे बिना मैं जीवित नहीं रह सकता। जीवन के

अन्तिम दिवस तक, चिर-काल तक मैं तुम्हें प्यार करता रहूँगा। तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध अब कभी कोई कार्य न करूँगा।"

"और मैं अब कभी तुम्हारे काम में विघ्न न डालूँगी और तुम्हारी आज्ञाकारिणी स्त्री बनी रहने का सदा प्रयत्न करूँगी।"

उस कमरे के अधखुले दरवाज़े के समीप विनोदचन्द्र दबे पाँव आये और एक बार अन्दर झाँककर हट गये। आल इज़ वेल दैट एन्ड्स वेल (अन्त ठीक तो सब ठीक)—उन्होंने मुस्कराकर धीरे से कहा। उस समय उनका हृदय आत्मगौरव तथा अगाध संतोष से भर गया था।

उदय-अस्त

लेखक, श्रीयुत सद्‌गुरुशरण अवस्थी, एम० ए०

है प्रथम विलोड़न किसने,
मातरिश्वा में उपजाया ?
गति दी किसने इस जग को,
कब कम्पन इसे सिखाया ?

आकर्षण की निधि कब से,
इस दृश्य जगत ने पाई ?
यह मिलन-प्रक्षिपण-लीला,
गति में कब अगति समाई ?

इस मूक सृष्टि के भीतर,
चेतन चेता, रेंगा कब ?
बोला कब किससे कैसे,
सोचा समझा बूझा कब ?

इस प्रखर-ज्वाल-माला को
किसने कब प्रसव किया है ?
इस शीतल कन्दुक को कब
किसने आलोक दिया है ?

फेंका किसने कब इनको,
कब तक आएँ-जाएँगे ?
किस ओर कहाँ सूने में,
[illegible] शान्ति पायेंगे ?

है प्रथम बीज उपजाया,
अथवा कि वृक्ष पहले है ?
है अन्धकार पहले का,
अथवा प्रकाश पहले है ?

पहले उगना मिटना या
है क्या निसर्ग ने पाया ?
पहले विकास को अथवा,
पहले विनाश अपनाया ?

× × × ×

जब कहीं 'नहीं' सब कुछ था,
तब 'हाँ' सोचा है जिसने,
इस सारे प्रलय सृजन की,
है विधि बैठाई उसने ॥

'आरम्भ'-'अन्त' का विस्मय—
कौतूहल चेतनता का।
यह 'अब' का 'तब' का सम्भ्रम—
धोखा है मानवता का ॥

है 'उदय' 'अस्त' के भीतर;
है 'अस्त' 'उदय' का लेखा।
यह द्वैतभाव मर्त्यों का;
अमरों की सीधी रेखा ॥
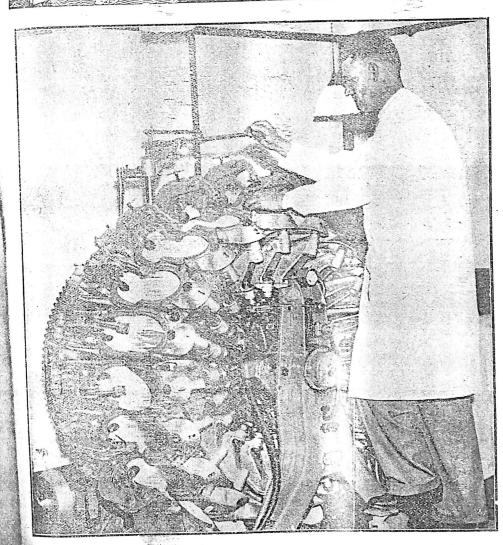
जूतों में कील लगाने या सिलाई करने की ज़रूरत अब नहीं रही। लन्दन के एग्रीकलचरल-हाल में गत वर्ष चमड़े

हिज़ हाइनेस महाराजा सेंधिया (ग्वालियर) का विवाह हिज़ हाइनेस महाराजा त्रिपुरा की छोटी बहन राजकुमारी कमल-प्रभा देवी से आगामी अप्रेल में होने जा रहा है। यह विवाह अपने ढंग का पहला विवाह है। विवाह की दोनों ओर तैयारियाँ धूम-धाम से हो रही हैं।

इँग्लैंड में खुली हवा और धूप में स्कूल लगाने का भाव बढ़ता जाता है। यह चित्र 'सेंट जेम्स पार्क ओपेन एयर [illegible] ने [illegible] डाल रक्खा है।

चीफ़ स्काउट लार्ड बेडेन पावेल और लेडी बेडेन पावेल। हाल में ही दिल्ली में स्काउटों की जो जम्बूरी हुई थी उसमें भाग लेने इँग्लेंड से आये।

श्रीयुत लक्ष्मीकान्त झा। ये लन्दन की आई० सी० एस० परीक्षा में भाग लेनेवाले प्रथम मैथिल ब्राह्मण हैं। ये हिन्दी के सुलेखक भी हैं।

श्रीयुत नाथूलाल जैन 'वीर'। ये हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा में इस वर्ष सर्वप्रथम उत्तीर्ण हुए हैं।

श्रीयुत प्रताप सेठ। आप खानदेश के एक मिल-मालिक हैं। आपने हिन्दू-भोंसला-मिलिटरी स्कूल के लिए एक लाख का दान दिया है। वह स्कूल शीघ्र ही नासिक में खुलेगा।

व्यत्यस्त रेखा शब्द पहेली

CROSSWORD PUZZLE IN HINDI

३००) शुद्ध पूर्तियों पर

२००) न्यूनतम अशुद्धियों पर

नियम :—(१) वर्ग नं० ८ में निम्नलिखित पारितोषिक दिये जायँगे। प्रथम पारितोषिक—सम्पूर्णतया शुद्ध पूर्ति पर ३००) नक़द। द्वितीय पारितोषिक—न्यूनतम अशुद्धियों पर २००) नक़द। वर्ग-निर्माता की पूर्ति से, जो मुहर बन्द करके रख दी गई है, जो पूर्ति मिलेगी वही सही मानी जायगी।

(२) वर्ग के रिक्त कोष्ठों में ऐसे अक्षर लिखने चाहिए जिससे निर्दिष्ट शब्द बन जाय। उस निर्दिष्ट शब्द का संकेत अङ्क-परिचय में दिया गया है। प्रत्येक शब्द उस घर से आरम्भ होता है जिस पर कोई न कोई अङ्क लगा हुआ है और इस चिह्न (■) के पहले समाप्त होता है। अङ्क-परिचय में ऊपर से नीचे और बायें से दाहनी ओर पढ़े जानेवाले शब्दों के अङ्क अलग अलग कर दिये गये हैं, जिनसे यह पता चलेगा कि कौन शब्द किस ओर को पढ़ा जायगा।

(३) प्रत्येक वर्ग की पूर्ति स्याही से की जाय। पेंसिल से की गई पूर्तियाँ स्वीकार न की जायँगी। अक्षर सुन्दर, सुडौल और छापे के सदृश स्पष्ट लिखने चाहिए। जो अक्षर पढ़ा न जा सकेगा अथवा बिगाड़ कर या काटकर दूसरी बार लिखा गया होगा वह अशुद्ध माना जायगा।

(४) प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए जो फ़ीस वर्ग के ऊपर छपी है दाख़िल करनी होगी। फ़ीस मनी-आर्डर-द्वारा या सरस्वती-प्रतियोगिता के प्रवेश-शुल्क-पत्र (Credit voucher) द्वारा दाख़िल की जा सकती है। इन प्रवेश-शुल्क-पत्रों की किताबें हमारे कार्यालय से ३) या ६) में ख़रीदी जा सकती हैं। ३) की किताब में आठ आने मूल्य के और ६) की किताब में १) मूल्य के ६ पत्र बँधे हैं। एक ही कुटुम्ब के अनेक व्यक्ति, जिनका पता-ठिकाना भी एक ही हो, एक ही मनीआर्डर-द्वारा अपनी अपनी फ़ीस भेज सकते हैं और उनकी वर्ग-पूर्तियाँ भी एक ही लिफ़ाफ़े या पैकेट में भेजी जा सकती हैं। मनीआर्डर व वर्ग-पूर्तियाँ 'प्रबन्धक, वर्ग-नम्बर ८, इंडियन प्रेस, लि०, इलाहाबाद' के पते से आनी चाहिए।

(५) लिफ़ाफ़े में वर्ग-पूर्ति के साथ मनीआर्डर की रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र नत्थी होकर आना अनिवार्य है। रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र न होने पर वर्ग-पूर्ति की जाँच न की जायगी। लिफ़ाफ़े की दूसरी ओर अर्थात् पीठ पर मनीआर्डर भेजनेवाले का नाम और पूर्ति-संख्या लिखनी आवश्यक है।

(६) किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह जितनी पूर्ति-संख्यायें भेजनी चाहे, भेजे। किन्तु प्रत्येक वर्गपूर्ति सरस्वती पत्रिका के ही छपे हुए फ़ार्म पर होनी चाहिए। इस प्रतियोगिता में एक व्यक्ति को केवल एक ही इनाम मिल सकता है। वर्गपूर्ति की फ़ीस किसी भी दशा में नहीं लौटाई जायगी। इंडियन प्रेस के कर्मचारी इसमें भाग नहीं ले सकेंगे।

(७) जो वर्ग-पूर्ति २२ मार्च तक नहीं पहुँचेगी, जाँच में नहीं शामिल की जायगी। स्थानीय पूर्तियाँ २२ ता० को पाँच बजे तक बक्स में पड़ जानी चाहिए और दूर के स्थानों (अर्थात् जहाँ से इलाहाबाद डाकगाड़ी से चिट्ठी पहुँचने में २४ घंटे या अधिक लगता है) से भेजनेवालों की पूर्तियाँ २ दिन बाद तक ली जायँगी। वर्ग-निर्माता का निर्णय सब प्रकार से और प्रत्येक दशा में मान्य होगा। शुद्ध वर्ग-पूर्ति की प्रतिलिपि सरस्वती पत्रिका के अगले अङ्क में प्रकाशित होगी, जिससे पूर्ति करनेवाले सज्जन अपनी अपनी वर्ग-पूर्ति की शुद्धता अशुद्धता की जाँच कर सकें।

(८) इस वर्ग के बनाने में 'संक्षिप्त हिन्दी-शब्दसागर' और 'बाल-शब्दसागर' से सहायता ली गई है।

अङ्क-परिचय

बायें से दाहिने

१–कृष्ण का नाम।
३–नाटक खेलने का स्थान।
६–कृष्ण को बहुतेरे ऐसा समझते हैं।
७– —, बड़े ठाट का, होता है।
१०–कृष्ण।
१२–इसका समय ही थोड़ा होता है।
१३–यहाँ नाज उलट पड़ा है।
१४–दिखाई देना।
१५–किसी काम के सिद्ध करने के लिए प्रायः इसकी आवश्यकता पड़ती है।
१८–शिवजी का धनुष।
१९–घोर कठिनाइयाँ पड़ने पर भी भारतीय महिला की श्रद्धा इस पर कम नहीं होती।
२०–चना।
२२–किसी बात का बार बार कहना।
२३–ऊँचे कुल का।
२४–जो कहा न जा सके।
२६–स्त्रियों के लिए इसका आकर्षण प्रबल होता है।
२७-यदि यह न होती तो मनुष्य अपने हाथ ही से बेकार हो जाता।
२९–इसी के द्वारा मक्खन निकाला जाता है।
३०-घर-घर बनती है।

ऊपर से नीचे

१–इसका फल प्रत्यक्ष है।
२–उद्देश्यपूर्ति के लिए इसकी क्रिया विधि-पूर्वक होनी चाहिए।
३–होली की महिमा इसके ही आनन्द से है।
४–इसके गरम होने से अनाज पकने में सहायता मिलती है।
५–कोई-कोई बहुत कोमल होती है।
६–सभ्य संसार में कहीं-कहीं अब यह प्रचलित नहीं।
८–इसका शब्द इनकी आन्तरिक ठेस का पता देता है।
९–एक अवतार ऐसा भी हुआ है जो इसी क्रिया से प्रसिद्ध हुआ है।
१०–श्री राधा जी का स्थान।
११–व्यापारी इसकी हवा हर एक ग्राहक को नहीं देता।
१४–दूध से बनता है।
१६–हृदय के चलने का शब्द।
१७-नये को देखने बहुतेरे दौड़े जाते हैं।
१९-युद्ध करती हुई सेना को अपने सरदार के हुक्म से प्रायः......पड़ा है।
२०–होली।
२१-लड़ाई।
२३–पुष्प।
२४–इसके लगने पर प्रायः लोग सिमट आते हैं।
२५–अनेक।
२८–वर्षा-ऋतु में यह अनोखी होती है।

नोट—रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रा रहित और पूर्ण हैं।

अपनी याददाश्त के लिए वर्ग ८ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ पर कर लीजिए। और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

१ क	हे	२ या	■	३ रं		४ भू	मि	■	५
	■		■		■		■	६	ली
७ म	८	क	९ ना	■	१०	ल	११ बी		■
■	को	■	१२	ह		■	१३	ना	■
१४	र		ना	■	१५ सा	१६ ध		■	१७
धि	■	■	■	१८ पि	ना		■	१९	र
■	२० हो	२१	हा	■	■	■	२२	ट	■
२३ कु	ली		■	२४	२५	घ	■	२६ ना	
सु	■	■	२७	ला	ई	■	२८	■	■
२९		नी	■		■	३०	या	ई	■

१ क	हे	२ या	■	३ रं		४ भू	मि	■	५
	■		■		■		■	६	ली
७ म	८	क	९ ना	■	१०	ल	११ बी		■
■	को	■	१२	ह		■	१३	ना	■
१४	र		ना	■	१५ सा	१६ ध		■	१७
धि	■	■	■	१८ पि	ना		■	१९	र
■	२० हो	२१	हा	■	■	■	२२	ट	■
२३ कु	ली		■	२४	२५	घ	■	२६ ना	
सु	■	■	२७	ला	ई	■	२८	■	■
२९		नी	■		■	३०	या	ई	■

वर्ग नं० ७ की शुद्ध पूर्ति

वर्ग नम्बर ७ की शुद्ध पूर्ति जो बंद लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दी गई थी, यहाँ दी जा रही है। पारितोषिक जीतनेवालों का नाम हम अन्यत्र प्रकाशित कर रहे हैं।

ज	ग	द्रा	ध्या	र	■	न	नो	र	थ
त	■	न	■	सा	क	र	■	ज	का
न	न	वी	■	ल	■	म	धु	व	न
■	ग	र	ल	■	ग	■	न	हा	■
अ	ज	■	गा	ज	र	■	ना	■	अ
ज	■	धा	म	■	ट	ल	■	म	नु
य	व	न	■	प	■	■	य	री	ज
■	■	पा	म	र	■	ह	ड़	■	■
झा	ड़	न	■	ता	न	■	ह	थ	नी
ग	■	■	■	■	ट	■	न	■	क

वर्ग नं० ८ फ़ीस ॥)

१ क	हे	२ या	■	३ रं		४ भू	मि	■	५
	■		■		■		■	६	ली
७ म	८	क	९ ना	■	१०	ल	११ बी		■
■	को	■	१२	ह		■	१३	ना	■
१४	र		ना	■	१५ सा	१६ ध		■	१७
धि	■	■	■	१८ पि	ना		■	१९	र
■	२० हो	२१	हा	■	■	■	२२	ट	■
२३ कु	ली		■	२४	२५	घ	■	२६ ना	
सु	■	■	२७	ला	ई	■	२८	■	■
२९		नी	■		■	३०	या	ई	■

(रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रा-रहित और पूर्ण हैं)
मैनेजर का निर्णय मुझे हर प्रकार स्वीकृत होगा।

पूरा नाम ....
पता ....

पूर्ति नं० ....

वर्ग नं० ८ फ़ीस ॥)

१ क	हे	२ या	■	३ रं		४ भू	मि	■	५
	■		■		■		■	६	ली
७ म	८	क	९ ना	■	१०	ल	११ बी		■
■	को	■	१२	ह		■	१३	ना	■
१४	र		ना	■	१५ सा	१६ ध		■	१७
धि	■	■	■	१८ पि	ना		■	१९	र
■	२० हो	२१	हा	■	■	■	२२	ट	■
२३ कु	ली		■	२४	२५	घ	■	२६ ना	
सु	■	■	२७	ला	ई	■	२८	■	■
२९		नी	■		■	३०	या	ई	■

(रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रा-रहित और पूर्ण हैं)
मैनेजर का निर्णय मुझे हर प्रकार स्वीकृत होगा।

पूरा नाम ....
पता ....

पूर्ति नं० ....

जाँच का फ़ार्म

वर्ग नं० ७ की शुद्ध पूर्ति और पारितोषिक पानेवालों के नाम अन्यत्र प्रकाशित किये गये हैं। यदि आपको यह संदेह हो कि आप भी इनाम पानेवालों में हैं, पर आपका नाम नहीं छपा है तो १) फ़ीस के साथ निम्न फ़ार्म की ख़ानापुरी करके १५ मार्च तक भेजें। आपकी पूर्ति की हम फिर से जाँच करेंगे। यदि आपकी पूर्ति आपकी सूचना के अनुसार ठीक निकली तो पुरस्कारों में से जो आपकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बाँटा जायगा और आपकी फ़ीस लौटा दी जायगी। पर यदि ठीक न निकली तो फ़ीस नहीं लौटाई जायगी। जिनका नाम छप चुका है उन्हें इस फ़ार्म के भेजने की ज़रूरत नहीं है।

वर्ग नं० ७ (जाँच का फ़ार्म)

मैंने सरस्वती में छपे वर्ग नं० ७ के आपके उत्तर से अपना उत्तर मिलाया। मेरी पूर्ति

नं०........में { कोई अशुद्धि नहीं है। / एक अशुद्धि है। / दो अशुद्धियाँ हैं। / ३, ४, ५, ६ हैं। }

मेरी पूर्ति पर जो पारितोषिक मिला हो उसे तुरन्त भेजिए। मैं १) जाँच की फ़ीस भेज रहा हूँ।

हस्ताक्षर ....
पता ....

इसे काट कर लिफ़ाफ़े पर चिपका दीजिए

मैनेजर वर्ग नं० ८

इंडियन प्रेस, लि०,
इलाहाबाद

जाँच का फ़ार्म

वर्ग नं० ७ की शुद्ध पूर्ति और पारितोषिक [illegible] नाम अन्यत्र प्रकाशित किये गये हैं। यदि आपके [illegible] हो कि आप भी इनाम पानेवालों में हैं, पर आपका [illegible] हुआ है तो १) फ़ीस के साथ निम्न फ़ार्म की ख़ाना[illegible] २४ मार्च तक भेजें। आपकी पूर्ति की हम [illegible] करेंगे। यदि आपकी पूर्ति आपकी सूचना के [illegible] निकली तो पुरस्कारों में से जो आपकी पूर्ति [illegible] होगा वह फिर से बाँटा जायगा और आपकी [illegible] दी जायगी। पर यदि ठीक न निकली तो फ़ीस [illegible] जायगी। जिनका नाम छप चुका है उन्हें इस [illegible] भेजने की ज़रूरत नहीं है।

वर्ग नं० ७ (जाँच का फ़ार्म)

मैंने सरस्वती में छपे वर्ग नं० ७ के [illegible] उत्तर से अपना उत्तर मिलाया। मेरी पूर्ति

नं०.........में { कोई अशुद्धि नहीं है। / एक अशुद्धि है। / दो अशुद्धियाँ हैं। / ३, ४, ५, ६ हैं।

मेरी पूर्ति पर जो पारितोषिक मिला हो उसे [illegible] भेजिए। मैं १) जाँच की फ़ीस भेज रहा हूँ।

हस्ताक्षर

पता

इसे काट कर लिफ़ाफ़े पर चिपका दीजिए

मैनेजर वर्ग नं० ८
इंडियन प्रेस, लि०,
इलाहाबाद

बिन्दीदार लकीर पर से काटिए

पुरस्कार विजेताओं की कुछ चिट्ठियाँ

(१)

बनारस
२२ जनवरी, १९३७

प्रिय महोदय,

आपका २ जनवरी का कृपा-पत्र प्राप्त हुआ, जिसके लिए आपको 'धन्यवाद'। इस प्रतियोगिता में भाग लेने का मुख्य उद्देश तो केवल मनोविनोद ही को लेकर था और पारितोषिकप्राप्ति गौण रूप में। परन्तु पहली बार निशाना ऐसा सटीक बैठा कि गौण मुख्य हो गया और मुख्य गौण। आप इससे घबरा न जायँ। मेरा विश्वास है कि आपकी 'सरस्वती' हिन्दी-संसार के मनोरंजन के लिए एक ऐसी सामग्री उपस्थित करती है जिसके अभाव की पूर्त्ति और कोई चीज़ न कर सकी थी।

इससे मनोविनोद तो होता ही है, पर 'कोष' को बार बार देखने और शब्दों के खोजने से वर्ग-पूर्त्ति के शब्दों के अतिरिक्त और बहुत-से शब्द मालूम हो जाते हैं। अब मैं इसकी प्रत्येक वर्ग-पूर्त्तियों में सम्भवतः भाग लूँगा।

भवदीय
रामगोपाल खन्ना

---

(२)

बनारस
२३-१२-३६

महाशय,

नमस्ते—आपका भेजा हुआ ४) का पुरस्कार हस्तगत हुआ जिसके लिए आपको अनेकानेक धन्यवाद—आपके पुरस्कार ने मेरे हृदय में एक जागृति उत्पन्न कर दी है—तथा जो विशेष पुरस्कार मेरे मित्रों को मिला है उससे उनकी मंडली में आनन्द का बादल उमड़ आया है—अब मैं तथा मेरे मित्रगण आपकी प्रतियोगिता में सम्मिलित रहने की चेष्टा करते रहेंगे। आगे मेरी तथा मेरे मित्रों की सम्मति में प्रत्येक शिक्षित मनुष्य को आपकी प्रतियोगिता में सम्मिलित होना चाहिए—इससे उनके हिन्दी शब्द-भांडार की वृद्धि होगी—

आपका—
भैरोंप्रसाद

(३)

प्रयाग २८-९-३६

प्रिय सम्पादक जी

मुझे आपका क्रासवर्ड पज़ल बहुत पसंद आया। हिन्दी में इस प्रकार का पज़ल अभी मुझे देखने को नहीं मिला था। शब्दों के संकेत बड़े व्यावहारिक और प्रत्येक मनुष्य के साधारण ज्ञान और अनुभव पर बनाये गये थे। आज-कल हिन्दी में जो पहेलियाँ निकल रही हैं उनमें बिना कोष के काम नहीं चलता। आपके पज़ल की यह विशेषता थी कि उसके लिए कोष देखने की ज़रूरत नहीं पड़ी और यदि पड़ी भी तो इतना ही कि—तबीअत लगी रहे और मनोरंजन होता रहे।

यद्यपि वर्ग नं० १ में मुझे सफलता बहुत कम मिली, तथापि जहाँ तक मनोरंजन और जानकारी का सम्बन्ध है मुझे पूर्ण संतोष है।

रही सफलता की बात, सो आशा और विश्वास करता हूँ कि किसी न किसी वर्ग में एक शुद्ध पूर्ति अवश्य भेजूँगा।

आपका
माधवप्रसाद शर्मा
खत्री पाठशाला

---

(४)

प्रिय महोदय,

मैंने वर्ग ५ की पूर्ति की और प्रथम पारितोषिक प्राप्त किया। अंक-परिचय अथवा संकेत इतने सरल हैं कि उनको देखकर प्रत्येक पाठक पूर्ति कर सकता है और पारितोषिक ने तो "आम के आम और गुठलियों के दाम" की किंवदंती को चरितार्थ कर दिया है। मेरी भावना है कि आपकी वर्गमाला पल्लवित हो।

आपका
रामेश्वरनाथ सेठ
हास्पिटल रोड
आगरा

५००) में दो पारितोषिक

इनमें से एक आप कैसे प्राप्त कर सकते हैं यह जानने के लिए पृष्ठ २८९ पर दिये गये नियमों को ध्यान से पढ़ लीजिए। आप के लिए दो और कूपन यहाँ दिये जा रहे हैं।
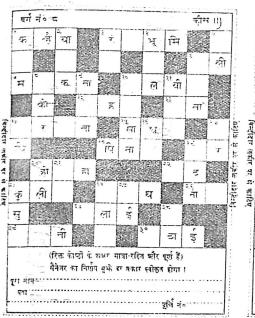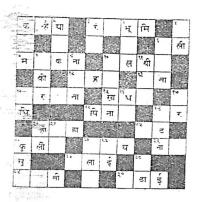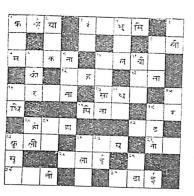
अपनी याददाश्त के लिए वर्ग ८ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ कर लीजिए, और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

आवश्यक सूचनायें

(१) स्थानीय प्रतियोगियों की सुविधा के लिए हमने प्रवेश-शुल्क-पत्र छाप दिये हैं जो हमारे कार्य्यालय से नक़द दाम देकर ख़रीदा जा सकता है। उस पत्र पर अपना नाम स्वयं लिख कर पूर्ति के साथ नत्थी करना चाहिए।

(२) स्थानीय पूर्तियाँ सरस्वती-प्रतियोगिता-बक्स में जो कार्यालय के सामने रक्खा गया है, १० और पाँच के बीच में डाली जा सकती हैं।

(३) वर्ग नम्बर ८८ का नतीजा जो बन्द लिफ़ाफ़े में मुहर लगा कर रख दिया गया है ता० २५ मार्च सन् १९३७ को सरस्वती-सम्पादकीय विभाग में ११ बजे सर्वसाधारण के सामने खोला जायगा। उस समय जो सज्जन चाहें स्वयं उपस्थित होकर उसे देख सकते हैं।

(४) मनिआर्डर की रसीद जो रुपया भेजते समय डाकघर से मिलती है, पूर्ति के साथ, अवश्य भेजनी चाहिए। पूर्तियों की प्राप्ति की सूचना नहीं भेजी जायगी। चिट्ठी के साथ टिकट किसी को नहीं भेजना चाहिए। मनिआर्डर से प्रवेश-शुल्क लिया जायगा। पतली निब से साफ़ बनाकर छपे वर्ग पर ही पूर्ति भेजनी चाहिए। वर्ग को काट कर जो काग़ज़ पर चिपका देते हैं और अलग से भी लिख कर भेजते हैं। ऐसी पूर्तियाँ प्रतियोगिता में नहीं ली जावेंगी। लिफ़ाफ़ों में पूर्तियों को इस तरह रखना चाहिए कि वहाँ खोलने में कूपन फटें नहीं।
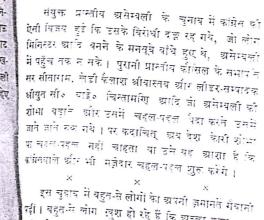
संयुक्त प्रान्तीय असेम्बली के चुनाव में कांग्रेस की ऐसी विजय हुई कि उसके विरोधी दङ्ग रह गये, जो लोग मिनिस्टर आदि बनने के मनसूबे बाँधे हुए थे, असेम्बली में पहुँच तक न सके। पुरानी प्रान्तीय कौंसिल के सभापति सर सीताराम, लेडी कैलाश श्रीवास्तव और लीडर-सम्पादक श्रीयुत सी० वाई० चिन्तामणि आदि जो असेम्बली की शोभा बढ़ाते और उसमें चहल-पहल पैदा करते उसमें जाने जाने रह गये। पर कदाचित् अब देश कोरी शोभा या चहल-पहल नहीं चाहता या उसे यह आशा है कि कांग्रेसवाले और भी मज़ेदार चहल-पहल शुरू करेंगे।

× × ×

इस चुनाव में बहुत-से लोगों को अपनी ज़मानतें गँवानी पड़ीं। बहुत-से लोग ख़ुश हो रहे हैं कि अच्छा हुआ, हम नहीं खड़े हुए और बहुत-से लोग सोचते हैं कि कांग्रेस के नाम पर हम भी खड़े हो जाते तो अच्छा होता। क्या अच्छा हो कि ये अनुभव लोगों को याद रह जायँ और आइन्दा फिर चुनाव आवे तब वे इससे लाभ उठावें।

× × ×

योरप में शान्ति की पुकार मची हुई है। ब्रिटेन शान्ति चाहता है, जर्मनी शान्ति के लिए लालायित है, फ्रांस शांति का उपासक है, इटली शांति के लिए चिन्तित है और रूस साक्षात् शान्ति का दूत होने की घोषणा कर रहा है। ये सब देश बम, विषैली गैसें, मशीनगनें और हवाई जहाज़ आदि युद्ध की सामग्री दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ाते चले जा रहे हैं, क्योंकि इनका ख़याल है कि इसके बग़ैर शांति की स्थापना नहीं हो सकती। कदाचित् इन राष्ट्रों का यह ख़याल है कि जिस भूमि पर शान्ति की स्थापना करनी हो उसे कुछ समय के लिए युद्ध-क्षेत्र बना दी जाय। लोग कट कर मर जावेंगे, शान्ति अपने आप स्थापित हो जायगी। इसी चिर शान्ति की ओर योरप जा रहा है। यदि ये सब बजाय यह कहने के कि हम शान्ति चाहते हैं, यह कहें कि हम मौत चाहते हैं तो अधिक सार्थक हो।

चमचमात चंचल नयन, बिच घूँघट पट झीन।
मानहु सुर-सरिता विमल, जल उछरत जुग मीन॥

चित्रकार—श्री केदार शर्मा

× ×

मैसूर नगर की म्युनिसिपैलिटी ने वहाँ के हज्जामों पर टैक्स लगा दिया है। इसके परिणाम-स्वरूप वहाँ के हज्जामों ने गत १८ फ़रवरी से हड़ताल कर रक्खी है और फ़ैशनेबल लोग 'पितृपक्ष' की याद दिला रहे हैं। इस प्रकार के पेशेवालों पर टैक्स लगाकर राज्य की आय बढ़ाने की म्युनिसिपैलिटी की सूझ प्रशंसनीय है। पर

इसके साथ ही उसे धोबियों और दर्ज़ियों आदि पर भी टैक्स लगाना चाहिए था। कदाचित् उसने यह सोचा हो कि यदि सब एक साथ हड़ताल कर देंगे तो शहर में पूरी मनहूसियत छा जायगी, इसलिए उसने फ़िलहाल हज्जामों को ही छेड़ा है। यह हड़ताल यदि एक महीने भी जारी रही तो मैसूर पूरा पूरा दढ़ियलों का नगर हो जायगा।

× × ×

कच समेटि कर, भुज उलटि, खए सीस पट डारि।
काको मन बाँधै न यह, जूरो बाँधनि हारि॥

चित्रकार—श्री केदार शर्मा

गत १२ फ़रवरी को पटना नगर में एक नवजात शिशु सड़क पर पड़ा पाया गया। कोई उसे गर्म कपड़ों में लपेटकर सड़क पर रख गया था। वह बच्चा सरकारी अस्पताल में रक्खा गया है और अनेक निःसन्तान लोगों ने उसे अपनाने के लिए मजिस्ट्रेट के पास दर्ख्वास्त दी है। मजिस्ट्रेट ने सब दर्ख्वास्तों को नामंज़ूर कर दिया है। पर वे एक हज्जाम की स्त्री की दर्ख्वास्त पर विचार कर रहे हैं। सम्भवतः बच्चा उसी को दिया जायगा। यह दुःख की बात है कि जो ऐसे बच्चों को जन्म देते हैं वे उसका पालन करने का साहस नहीं कर सकते, क्योंकि उस अवस्था में समाज में वे घोर तिरस्कार के भागी हो सकते हैं। ख़ैर, ग़ैर क़ानूनी बच्चों की रक्षा की ओर लोगों का ध्यान तो जाने लगा।

× × ×

अमृतसर के एक अन्धे नवयुवक को पुलिस ने आत्म-हत्या करने के प्रयत्न में गिरफ़्तार किया। मजिस्ट्रेट के सामने पेश होने पर नवयुवक ने अपने बयान में कहा—"न तो मैं अपनी जीविका कमा सकता हूँ और न भीख माँगने से रोटी मिलती है। सात दिन तक भिक्षा माँगने पर भी जब कुछ नहीं मिला तब मैं अफ़ीम खाने के लिए मजबूर हुआ। कृपया या तो मुझे जन्म भर के लिए जेल में बन्द रखिए या मुझे भोजन देने का प्रबन्ध किया जाय, या लाहौर के मेयो-अस्पताल में मेरी आँखें अच्छी कराई जायँ। नहीं तो जब मैं इस बार छूटूँगा तब रेलवे लाइन पर कटकर अपनी जान दे दूँगा।"

जिस संवाददाता ने यह समाचार पत्रों में भेजा है उसका कहना है कि मजिस्ट्रेट को उस पर दया आ गई और उन्होंने उसे ६ मास की सज़ा दे दी। बिना भोजन के घुल घुलकर मरना जुर्म नहीं है। पर इस प्रकार के जीवन को शीघ्रतापूर्वक ख़त्म कर देने का प्रयत्न जुर्म है। यह क्यों! क़ानून के विद्वानों का ध्यान इधर जाना चाहिए।

लखनऊ की प्रदर्शनी

लखनऊ की औद्योगिक और कृषि-प्रदर्शनी की पिछले महीनों अच्छी धूम रही। इस प्रान्त में इतने बड़े विस्तार के साथ की गई यह दूसरी प्रदर्शनी है। पहली प्रदर्शनी प्रयाग में सन १९१० में हुई थी। 'लीडर' के सम्पादक श्रीयुत सी० वाई० चिन्तामणि ने प्रयाग की प्रदर्शनी देखी थी और इस लखनऊ की प्रदर्शनी का भी आपने निरीक्षण किया है। दोनों की तुलना करते हुए आपने एक सुन्दर लेख 'लीडर' में लिखा था। यहाँ हम उसके आवश्यक अंश 'भारत' से उद्धृत करते हैं।

इस लेख को मैं पहले यही कह कर शुरू करूँगा कि मैं इस वर्ष शरद्-ऋतु में सरकारी प्रदर्शनी करने के प्रस्ताव का समर्थक नहीं था। मेरी धारणा है कि इस देश में छोटी तथा बड़ी प्रदर्शनियों की ज़्यादती हो गई है। अपने पूर्व-अनुभव से मैं यह भी जानता था कि सरकारी प्रदर्शनी में बहुत रुपये ख़र्च होंगे, क्योंकि सरकार जो भी काम करती है उसमें रुपये अधिक ख़र्च होते हैं। इसके अतिरिक्त यह एक सच्ची बात है कि इसके पहले जो प्रदर्शनियाँ हुई थीं उनमें विदेशी कारख़ानों का कारबार भारतीय कारख़ानों की अपेक्षा ज़्यादा अच्छा चला था। इसका पहला कारण तो यह था कि अभी भारतीय कारख़ानों का कारबार ही बहुत छोटा था और अब भी है और दूसरा कारण यह कि विदेशी कारख़ानों के लोग यह पता लगा लेते थे कि यहाँ की जनता किस तरह का माल पसन्द करती है और फिर उसी के अनुसार वे चीज़ें भी रखते थे। मैंने अपनी यह सम्मति कई बार लेजिस्लेटिव कौंसिल में प्रकट की थी और सम्पूर्ण प्रदर्शनी अथवा उसके अलग अलग विभागों के लिए कौंसिल से जो आर्थिक सहायता की माँग की गई थी उसे मंज़ूर करने के लिए मैंने अपना वोट नहीं दिया था।
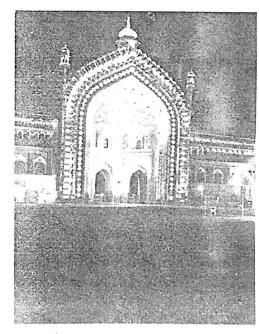
[प्रदर्शनी के मुख-द्वार (रूमी दरवाज़ा) पर की गई बिजली की रोशनी का दृश्य।]

बड़े दिन की छुट्टियों के पहले प्रदर्शनी में जाने का मुझे अवसर न मिल सका। प्रदर्शनी में मैं केवल दो बार जा सका हूँ। प्रदर्शनी के सेक्रेटरी मिस्टर शिवदासनी तथा उसके पब्लिसिटी आफ़िसर मिस्टर जगराज बिहारी माथुर ने मुझे प्रदर्शनी का चक्कर लगवाया। इस सौजन्य के लिए मैं उनका आभारी हूँ। बड़े दिन की छुट्टियों में अवश्य दर्शकों की संख्या इतनी भारी थी कि उससे कोई भी असन्तुष्ट नहीं हो सकता था। यह स्वाभाविक है कि छुट्टियों के पहले तथा उसके बाद दर्शकों की संख्या कम होती।
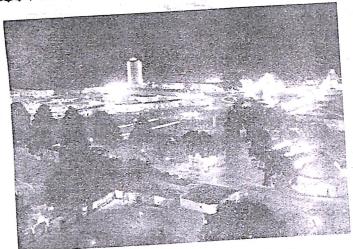
[रात में लिया गया प्रदर्शनी के भीतर का एक चित्र ।]

अपनी व्यक्तिगत जानकारी के आधार पर मैं यह राय ज़ाहिर कर रहा हूँ। मुझे यह सुनकर बड़ी हँसी आई कि वर्तमान प्रदर्शनी का नक़्शा आस्ट्रेलिया के एक गृहनिर्माण-विद्या के विशेषज्ञ ने तैयार किया था। यह प्रदर्शनी भारतीय उद्योगों की उन्नति का प्रदर्शन करने के लिए की गई है और इसका नक़्शा तैयार करना एक आस्ट्रेलिया के निवासी के सुपुर्द किया गया! प्रदर्शनी के ऊपर यह क्या ही अच्छी टीका-टिप्पणी है!

अस्तु, यह एक छोटी-सी बात है। इसे यहीं ख़त्म

प्रवेश-शुल्क-द्वारा जितनी आमदनी की आशा की जाती थी, उतनी प्रदर्शनी के समाप्त होने तक हो सकेगी या नहीं, यह मुझे नहीं मालूम। प्रदर्शनी एक बड़े विस्तृत क्षेत्र में फैली हुई है और उसकी चीज़ें दूर दूर पर बिखरी हुई हैं, जिसके कारण किसी भी दर्शक को असुविधा हो सकती है। मुझे तो यह अनुभव होता था कि प्रदर्शनी की चीज़ें न दिखाई देकर केवल उसका क्षेत्र ही दिखाई दे रहा है। प्रदर्शनी में इतना ज़्यादा पैदल चलना पड़ता है कि मज़बूत से मज़बूत आदमी भी थक जाय। प्रदर्शनी के प्रत्येक विभाग का दर्शन करने के लिए जितने समय की आवश्यकता है और जितनी बार प्रदर्शनी में जाने की आवश्यकता पड़ती है, साधारण मनुष्य उतनी बार न तो जा ही सकता है और न उतना समय ही निकाल सकता है।

यह स्वाभाविक ही है कि हृदय में इस प्रदर्शनी का गत सरकारी प्रदर्शनी से मुक़ाबिला करने का विचार उत्पन्न होता है। कम से कम एक बात में सन् १९१० की इलाहाबाद की प्रदर्शनी लखनऊ की प्रदर्शनी से अच्छी थी। उस प्रदर्शनी के भवन-निर्माण में ज़्यादा समझदारी से काम लिया गया था। मेरा यह विचार है कि इस सम्बन्ध में दो सम्मतियाँ नहीं हो सकतीं। दोनों प्रदर्शनियों की

कर देना चाहिए। प्रदर्शनी में जो चीज़ें आई हैं उनका ज़िक्र अधिक महत्त्वपूर्ण है। दोनों प्रदर्शनियाँ मैं देख चुका हूँ, और दोनों के सम्बन्ध में मेरी राय भी स्पष्ट है। केवल प्रदर्शनी के लिहाज़ से वर्तमान प्रदर्शनी निश्चित रूप से इलाहाबाद की प्रदर्शनी से घट कर है। किन्तु भारतीय उद्योग-धन्धों की प्रदर्शनी के लिहाज़ से यह इलाहाबाद की प्रदर्शनी से अच्छी है। इसका कारण बिलकुल सीधा-सादा है। गत २६ वर्षों में भारतीय उद्योगों ने भारी उन्नति की है और भारतीय व्यवसायियों के पास अब २५ वर्ष पहले से अधिक चीज़ें प्रदर्शन करने के लिए हो गई हैं। दूसरा कारण यह है कि वर्तमान प्रदर्शनी के अधिकारियों ने इलाहाबाद की प्रदर्शनी के अधिकारियों की अपेक्षा भारतीय उद्योगों की उन्नति के प्रदर्शन को ज़्यादा महत्त्व दिया है। वर्तमान प्रदर्शनी में एक और महत्त्वपूर्ण बात है। इसमें इस बात के प्रदर्शन की व्यवस्था की गई है कि औद्योगिक चीज़ें कैसे तैयार की जाती हैं, और इस सम्बन्ध में वर्तमान प्रदर्शनी के सामने इलाहाबाद की प्रदर्शनी कोई चीज़ न थी। दर्शकों के शिक्षार्थ प्रदर्शन किया जाना इस प्रदर्शनी का मुख्य अंग है। जिन लोगों का प्रदर्शन से सम्बन्ध है, वे हार्दिक बधाई के पात्र हैं

क्योंकि उनका प्रदर्शन का कार्य्य बहुत ही सफल हुआ है।

प्रदर्शनी के शिक्षा-सम्बन्धी कोर्ट का मैं विशेष रूप से ज़िक्र करूँगा। अब तक मैंने इस देश में जितने शिक्षा-सम्बन्धी कोर्ट देखे हैं उनमें यह सबसे अच्छा है। जिन लोगों ने को-आपरेटिव विभाग का दर्शन किया है उनका कहना है कि यह विभाग भी बहुत ही शिक्षाप्रद है। दुर्भाग्यवश मुझे को-आपरेटिव विभाग में जाने का अवसर नहीं मिला, किन्तु मैं अपने मित्रों की बतलाई हुई बात पर विश्वास कर सकता हूँ। सन् १९१० में भारतवर्ष में को-आपरेटिव आन्दोलन आरम्भ हुए केवल छः वर्ष हुए थे और

[लखनऊ की प्रदर्शनी में ग्रेहाउन्ड कुत्तों की दौड़ एक अभूतपूर्व वस्तु थी। इस चित्र में कुत्ते दौड़ के लिए तैयार हो रहे हैं।]

उसके महत्त्व को लोग मुश्किल से समझ पाये थे। दुर्भाग्यवश आज भी यह बात सत्य है कि सहयोग-समिति-आन्दोलन अब तक उतनी तरक़्क़ी नहीं कर सका है, जितनी उसे करनी चाहिए थी। फिर भी यह मानने से इनकार नहीं किया जा सकता कि गत २५ वर्षों में इस आन्दोलन
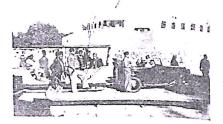
[लखनऊ-प्रदर्शनी के भीतर सैर करनेवालों के मज़े के लिए एक छोटी रेलगाड़ी चलाई गई थी। पर उसके इंजिन के बिगड़ जाने से एक मोटर से इंजिन का काम लिया गया।]

ने बड़ी सफलता प्राप्त की है। यह बड़ी प्रशंसनीय बात है कि को-आपरेटिव-आन्दोलन-सम्बन्धी कार्यों की सफलता को प्रदर्शनी में उचित महत्त्व दिया गया है।

अब मैं फिर शिक्षा-सम्बन्धी कोर्ट का ज़िक्र करूँगा। मैंने इस कोर्ट को इतना मनोरंजक तथा शिक्षाप्रद पाया कि मुझे यह जान कर बड़ा शोक हुआ कि सरकारी तथा ग़ैर-सरकारी शिक्षा-संस्थाओं के अधिकारियों ने प्रदर्शनी के इस भाग का निरीक्षण करने के लिए अपने छात्रों को शिक्षकों के साथ भेजने का प्रबन्ध नहीं किया है। इस कोर्ट में दीवारों पर अनेक नक़्शे टँगे हुए हैं। किसी नक़्शे में यह दिखलाया गया है कि संसार के विभिन्न देशों में कितने प्रतिशत व्यक्ति शिक्षित हैं; किसी में यह दिखलाया गया है कि विभिन्न देशों में प्रति-वर्ष कितने व्यक्तियों की मृत्यु होती है; और किसी में यह दिखलाया गया है कि प्रत्येक देश शिक्षा और फ़ौज पर कितने रुपये ख़र्च करता है। जिस नक़्शे में विभिन्न देशों के शिक्षितों की संख्या दिखाई गई है उसमें भारतवर्ष का स्थान सबसे नीचे है। मृत्यु के नक़्शे में उसका स्थान सबसे ऊँचा है। शिक्षा पर रुपये ख़र्च करने के सम्बन्ध में

उसका स्थान फिर सबसे नीचे या क़रीब क़रीब सबसे नीचे है। जिस नक़्शे में यह दिखाया गया है कि विभिन्न देश अपनी रक्षा करने के लिए फ़ौज पर अपनी आमदनी का कितना हिस्सा ख़र्च करते हैं उसमें फिर भारतवर्ष का स्थान सबसे ऊँचा है। जिस नक़्शे में यह दिखलाया गया है कि विभिन्न देशों के प्रत्येक मनुष्य की सालाना आमदनी कितनी होती है उसमें भी भारतवर्ष का स्थान सबसे नीचे है। एक और नक़्शा भी बड़ा शिक्षाप्रद है। इस नक़्शे में एक हिस्से में अशोक के समय का भारतवर्ष दिखलाया गया है और दूसरे हिस्से में ब्रिटिश सरकार के समय का। पहले नक़्शे में एक हिन्दू एक बौद्ध के साथ बड़े प्रेम के साथ हाथ मिला रहा है, यद्यपि दोनों धर्मों में वर्षों तक प्रतिस्पर्धा रही। इससे यह पता चलता है कि उस समय विभिन्न सम्प्रदायों में किस प्रकार का सम्बन्ध था। ब्रिटिश सरकार के समय के नक़्शे में हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे को पटकने की कोशिश कर रहे हैं। यह नक़्शा इस बात का द्योतक है कि हिन्दू-मुसलमान के बीच आज-कल कैसा रिश्ता है। ब्रिटिश सरकार अब यह शिकायत नहीं कर सकती कि आन्दोलनकारी उसकी अनुचित आलोचना करते हैं। अपने ही सरकारी शिक्षा-सम्बन्धी कोर्ट में और अपनी ही सरकारी प्रदर्शनी में ब्रिटिश सरकार की ऐसी सच्ची बातों का प्रदर्शन हुआ है जिनसे उसकी प्रतिष्ठा

[लखनऊ की प्रदर्शनी में 'फ्रेट सा' से लकड़ी को कलापूर्ण ढङ्ग से काटने का एक दृश्य।]

[प्रदर्शनी के भीतर स्त्रियों-द्वारा कताई और कसीदा आदि काढ़ने का प्रदर्शन।]

[दस्तकारी की वस्तुओं के प्रदर्शन का एक साधारण दृश्य।]

को यह हानि पहुँच सकती है जो अब तक बुरे-से-बुरा आन्दोलनकारी न पहुँचा सका होगा।

मेरा यह विश्वास है कि प्रदर्शनी के लिहाज़ से सन् १९१० की इलाहाबाद की प्रदर्शनी इससे कहीं अच्छी थी। किन्तु भारतीय उद्योग-धन्धों की प्रदर्शनी तथा शिक्षा-प्रद प्रदर्शन के लिहाज़ से लखनऊ की वर्तमान प्रदर्शनी सन् १९१० की इलाहाबाद की बड़ी प्रदर्शनी से कहीं अच्छी है।

अन्त में मैं उन सरकारी कर्मचारियों को बधाई देना चाहता हूँ जिनके ऊपर इस प्रदर्शनी के कार्य का भार पड़ा है और जिन्होंने इस कार्य को बड़ी सफलता के साथ सम्पन्न किया है। हमें आशा करनी चाहिए कि जब वर्तमान प्रदर्शनी के ख़र्चे का हिसाब तैयार किया जायगा तब वह इलाहाबाद की प्रदर्शनी की अपेक्षा कर-दाताओं के लिए कम भारी साबित होगी।

मलाया में भारतीयों की दशा

मलाया में भारतीयों की क्या स्थिति है? इसकी जाँच करने के लिए भारत-सरकार की ओर से माननीय श्रीनिवास शास्त्री वहाँ भेजे गये थे। शास्त्री जी अब वहाँ से लौट आये हैं और आपने अपनी रिपोर्ट भारत-सरकार को दे दी है। रिपोर्ट अभी प्रकाशित नहीं हुई, पर एक पत्र-प्रतिनिधि से उन्होंने बहुत-सी ज्ञातव्य बातें बताई हैं, जिनके आधार पर 'हिन्दी-मिलाप' ने उपर्युक्त शीर्षक में एक अग्रलेख प्रकाशित किया है। यहाँ हम उसी लेख का एक अंश उद्धृत करते हैं—

मलाया एक सुन्दर प्रायद्वीप है। इसमें भारतीयों ने बड़ी बड़ी जागीरें बना रक्खी हैं और वे कृषि तथा काश्त से बहुत कुछ पैदा करते हैं, मगर जैसा कि माननीय शास्त्री ने देखा कि पूँजी की कमी के कारण वहाँ के भारतीय अधिक उन्नति नहीं कर पाये। को-आपरेटिव आधार पर वहाँ कार्य हो सकता है, मगर भारतीय मज़दूरों में अशिक्षा का ज़ोर है। इसलिए उनकी अपने आपके सुधारने की शक्ति बहुत क्षुद्र तथा सीमित है। एक मलाया ही नहीं, बहुत-से अन्य विदेशों में भी भारतीय अशिक्षित होने के कारण ही अधिक बदनाम हैं। भारतीयों में शिक्षा के अभाव के लिए पहली और अन्तिम ज़िम्मेदारी गवर्नमेंट की ही है। अगर देश में शिक्षा का पर्याप्त मात्रा में प्रसार हो तो स्वभावतः यहाँ से बाहर जानेवाले देशवासी भी शिक्षित ही होंगे। माननीय शास्त्री से यह मालूम कर प्रत्येक भारतीय को हर्ष होना चाहिए कि आचरण के विचार से मलाया के भारतीय अब पहले वर्षों की अपेक्षा बेहतर अवस्था में है। देहात में भारतीयों का आचरण गिरा हुआ नहीं। इस पहलू में अगर किसी स्थान के भारतीयों पर अँगुली उठाई जा सकती है तो वे शहर में रहनेवाले भारतीय हैं और इनमें भी वे लोग जो रुपया उधार देने का कारबार करते हैं। ये लोग अपने परिवारों को अपने साथ नहीं ले जाते। इसी प्रकार क्लर्की और मिस्त्रीगिरी का काम करनेवाले कई लोग जिन्हें अधिक वेतन नहीं मिलता, स्त्रियों के बिना ही रहते हैं। इन लोगों का आचरण प्रायः ख़राब पाया जाता है, मगर यह ख़राबी कोई ऐसी नहीं कि जो दूर न की जा सकती हो। शराब की इल्लत मलाया के भारतीयों में निश्चित रूप से कमी पर है। माननीय शास्त्री का कहना है कि जब से सरकार ने यह पाबन्दी लगाई है कि कोई मनुष्य एक दिन में एक नियत मात्रा से अधिक शराब नहीं ले सकता तब से नशा पीने की आदत बराबर कमी पर है। मलाया की भारतीय स्त्रियों का इस बुराई को दूर करने में भारी हाथ है। वे न केवल यह कि ख़ुद नशा नहीं करतीं, बल्कि पुरुषों को भी विनाश के इस मार्ग पर जाने से रोकती हैं। ये सब हालात जो माननीय शास्त्री की ज़बानी मालूम हुए हैं, उत्साह भङ्ग करनेवाले नहीं। लेकिन फिर भी मलाया के भारतीयों की दशा का ठीक चित्र इन बिखरी हुई बातों से खिंच नहीं सकता। इन प्रवासी भारतीयों की हालत जानने के लिए हमें माननीय शास्त्री की रिपोर्ट की ही प्रतीक्षा करनी होगी।

महात्मा गांधी और देवदर्शन

मन्दिरों के भीतर जाकर देवदर्शन का अधिकार हिन्दू मात्र को प्राप्त हो, इसके लिए सतत उद्योग करते रहने पर भी महात्मा गांधी को इधर मंदिरों

में जाने से अरुचि-सी हो गई थी। परन्तु जब त्रावणकोर के महाराज ने अपने राज्य के समस्त मंदिरों को हरिजनों के लिए खोल दिये जाने की घोषणा की और इस सिलसिले में महात्मा जी भी वहाँ गये तब उन्होंने मंदिरों में जाकर श्रद्धापूर्वक देवदर्शन किये। इस अवसर पर त्रिवेन्द्रम में उन्होंने एक भाषण भी किया था। उसका एक महत्त्वपूर्ण अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

आज पद्मनाभ स्वामी के मन्दिर में मैंने जो देखा वह मुझे कह देना चाहिए। शुद्ध धर्म की जागृति के विषय में मैं जो कह रहा हूँ उसका शायद अच्छे-से-अच्छा उदाहरण इसमें मिलेगा। मेरे माता-पिता ने मेरे हृदय में जिस श्रद्धा-भक्ति का सिंचन किया था उसे लेकर मैं अपनी युवावस्था के दिनों में अनेक मन्दिरों में गया हूँ। किन्तु इधर पिछले वर्षों में मैं मन्दिरों में नहीं जाता था, और जब से इस अस्पृश्यता-निवारण के काम में पड़ा हूँ, तब से तो जो मन्दिर 'अस्पृश्य' माने जानेवाले तमाम लोगों के लिए खुले हुए नहीं होते उन मन्दिरों में जाना मैंने बन्द कर दिया है। इसलिए घोषणा के बाद इस मन्दिर में जब मैं गया तब अनेक अवर्ण हिन्दुओं की भाँति मुझे भी नवीनता-सी लगी। कल्पना के परों के सहारे मेरा मन प्रागैतिहासिक काल में जब मनुष्य ईश्वर का सन्देश पाषाण-धातु आदि में उतारते होंगे, वहाँ तक उड़ता हुआ पहुँच गया।

मैंने स्पष्टतया देखा कि जो पुजारी मुझे शुद्ध सुन्दर हिन्दी में प्रत्येक मूर्ति के सम्बन्ध में परिचय दे रहा था, वह यह नहीं कहना चाहता था कि प्रत्येक मूर्ति ईश्वर है। पर यह अर्थ दिये बग़ैर ही उसने मेरे मन में यह भाव उत्पन्न कर दिया कि ये मन्दिर उस अदृष्ट, अगोचर और अनिर्वचनीय ईश्वर तथा हम-जैसे अनन्त महासागर के अल्पातिअल्प बिन्दुओं के बीच सेतुरूप हैं। हम सब मनुष्य तत्त्वचिंतक नहीं होते। हम तो मिट्टी के पुतले हैं, धरती पर बसनेवाले मानव प्राणी हैं, इसी लिए हमारा मन धरती में ही रमता है, इससे हमें अदृश्य ईश्वर का चिंतन करके संतोष नहीं होता। कोई-न-कोई हम ऐसी वस्तु चाहते हैं, जिसका कि हम स्पर्श कर सकें, जिसे कि हम देख सकें, जिसके कि आगे हम घुटने टेक सकें। फिर भले ही वह वस्तु कोई ग्रन्थ हो, या पत्थर का कोई ख़ाली मकान हो या अनेक मूर्तियों से भरा हुआ पत्थर का कोई मंदिर हो। किसी को ग्रन्थ से शान्ति मिलेगी, किसी को ख़ाली मकान से तृप्ति होगी, तो दूसरे बहुत-से लोगों को तब तक संतोष नहीं होगा जब तक कि वे उन ख़ाली मकानों में कोई वस्तु स्थापित हुई नहीं देख लेंगे। मैं आपसे फिर कहता हूँ कि यह भाव लेकर आप इन मन्दिरों में न जावें कि ये मंदिर अंध-विश्वासों को आश्रय देनेवाले घर हैं। मन में श्रद्धाभाव रखकर अगर आप इन मन्दिरों में जायँगे तो आप देखेंगे कि हर बार वहाँ जाकर आप शुद्ध बन रहे हैं और जीवित-जाग्रत ईश्वर पर आपकी श्रद्धा बढ़ती ही जायगी। कुछ भी हो, मैंने तो इस घोषणा को एक शुद्ध धर्म-कार्य माना है। त्रावणकोर की इस यात्रा को मैंने तीर्थयात्रा माना है, और मैं उस अस्पृश्य की तरह इन मन्दिरों में जाता हूँ जो एकाएक स्पृश्य बन गया हो। आप सब इस घोषणा के विषय में अगर यही भावना रक्खेंगे तो आप सवर्ण और अवर्ण के बीच का सब भेद-भाव तथा अवर्ण-अवर्ण के बीच का भी सारा भेद-भाव, जो अब भी दुर्भाग्य से बना हुआ है, नष्ट कर देंगे। अन्त में मैं यह कहूँगा कि आपने अपने उन भाई-बहिनों को जो सबसे दीन और दलित समझे जाते हैं, जब तक उस ऊँचाई तक नहीं पहुँचा दिया, जहाँ तक कि आप आज पहुँच गये हैं, तब तक आप संतोष न मानें। सच्चे आध्यात्मिक पुनरुत्थान में आर्थिक उन्नति, अज्ञान का नाश और मानव-प्रगति में बाधा देनेवाली चीज़ों को दूर करने का समावेश होना ही चाहिए।

महाराजा साहब की घोषणा में जो महान् शक्ति है, उसे पूरी तरह से समझने की क्षमता ईश्वर आपको दे। आप लोगों ने मेरी बात शान्ति के साथ सुनी इसके लिए मैं आपका आभार मानता हूँ।

एक प्रसिद्ध ज्योतिषी की भविष्यवाणी

सन् १९३७ का वर्ष कैसा होगा इस सम्बन्ध में योरप के प्रसिद्ध ज्योतिषी श्री आर० एच० नेलर ने अपनी भविष्यवाणी एक अँगरेजी साप्ताहिक पत्र में

प्रकाशित कराई है। नीचे हम उसका सारांश भारत से उद्धृत करते हैं—

सर्वप्रथम उन्होंने इँगलैंड के नये सम्राट् के राज्याभिषेकोत्सव का उल्लेख किया है। यह उत्सव १२ मई को मनाया जायगा। उस दिन अच्छी धूम नहीं होगी। थोड़ी-सी जलवृष्टि होगी। अगर नये सम्राट् छठे जार्ज का अभिषेकोत्सव निर्दिष्ट दिन को ही मनाया जायगा तो यह निश्चय है कि कुछ अप्रत्याशित घटनायें घटित होंगी। जुलूस की व्यवस्था के विरुद्ध जनता असंतोष प्रकट करेगी। उस अवसर पर विराट् जन-समूह की शारीरिक रक्षा का प्रबन्ध करना कठिन प्रमाणित होगा। ये घटनायें निर्दिष्ट समय के कुछ पूर्व और कुछ बाद घटित होंगी।

यह भविष्यवाणी निश्चयात्मक रूप से की गई है कि १९३७ में कोई महायुद्ध नहीं होगा। हाँ, छोटे-मोटे युद्ध अनिवार्य हैं। उदाहरणार्थ जापान पूर्व में छोटी-मोटी लड़ाइयाँ छेड़ेगा। ब्रिटेन को भी जहाँ-तहाँ अपनी उच्छृंखल प्रजा का दमन करना होगा। छोटे-छोटे राष्ट्र भी आपस में झगड़ा करेंगे। १९३७ में सबसे अधिक ख़तरा भूमध्यसागर में और विशेष कर स्पेन-प्रायद्वीप में होगा। स्पेन की लड़ाई अपूर्व भीषणता के साथ साल के अधिकांश समय तक जारी रहेगी। इससे भी अधिक ख़राब बात यह होगी कि मुसोलिनी उस युद्ध में भाग लेने के लिए प्रलोभित होंगे। उन्हें और भी विजय प्राप्त होगी, किन्तु अन्त में ब्रिटेन और जर्मनी दोनों उनकी आशाओं और स्वप्नों पर पानी फेर देंगे।

जर्मनी और इटली के बीच सन्धि का होना असम्भव है। इस आशय का यदि कोई समाचार अख़बारों में प्रकाशित हो तो उस पर विश्वास नहीं करना चाहिए। ग्रहों की स्थिति से यह प्रकट होता है कि उनमें सन्धि नहीं होगी। हाँ, कुछ समय तक और किसी ख़ास बात के लिए उनमें मेल भले ही हो जाय, किन्तु राजनैतिक क्षेत्र में इन दोनों राष्ट्रों का स्थायी मित्र बना रहना सम्भव नहीं होगा। उनके ग्रह एक-दूसरे के बिलकुल विपरीत हैं।

मुसोलिनी धीरे-धीरे ब्रिटिश-साम्राज्य को छिन्न-भिन्न करने का प्रयत्न करेंगे। वे सम्भवतः उनके एक-एक अङ्ग को युद्ध अथवा राजनैतिक चाल के द्वारा भङ्ग करेंगे और इस बात की चेष्टा करेंगे कि ब्रिटेन संसार का शक्तिशाली राष्ट्र न रह जाय। प्रत्येक मास के साथ इस युद्ध का ख़तरा बढ़ता ही जायगा। स्पेन के गृह-युद्ध के सम्बन्ध में भूमध्यसागर में ख़तरनाक स्थिति उत्पन्न हो जायगी। अगर अबीसीनिया-युद्ध की प्रारम्भिक अवस्था में इटली ब्रिटेन के साथ युद्ध छेड़ देता तो फिर ऐसे महायुद्ध का श्रीगणेश हो जाता जो ६ से ८ वर्ष तक जारी रहता। सारे संसार के सामने एक सङ्कट-पूर्ण स्थिति उत्पन्न हो जाती।

यह विश्वव्यापी सङ्कट-स्थिति अब फिर किसी दूसरे रूप में उपस्थित होगी। किन्तु इसमें सन्देह है कि आगामी १२ महीनों के बीच ब्रिटेन किसी बड़े राष्ट्र के साथ युद्ध करेगा।

इँग्लैंड की शिक्षा-प्रणाली में महान् परिवर्तन होगा। परीक्षा की प्रणाली पूर्णतया बदल दी जायगी। ब्रिटेन के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में जटिल समस्यायें उत्पन्न हो जायँगी। बहुत-से व्यक्ति मरेंगे। आधुनिक चिकित्सा-प्रणाली विफल सिद्ध होगी। सार्वजनिक स्वास्थ्य की दृष्टि से १९३७ के सबसे अधिक ख़तरनाक महीने मार्च, जून, सितम्बर, नवम्बर और दिसम्बर होंगे। वहाँ एक विचित्र प्रकार का प्लेग फैलेगा। लन्दन तथा पश्चिम के समुद्र-तटवर्ती कुछ नगरों में उसका भीषण प्रकोप होगा। यह भविष्यवाणी ज़ोरदार शब्दों में की गई है कि ब्रिटेन में रक्त-हीन क्रान्ति होगी। १९३७ के वर्ष की सबसे प्रधान विशेषता यह होगी कि पहले ब्रिटेन में और फिर सम्पूर्ण ब्रिटिश-साम्राज्य में कानाफूसी का आन्दोलन होगा। आगामी दो या तीन साल में तरह-तरह की अफ़वाहें फैल जायँगी और लोग सशङ्कित हो जायँगे। सम्पूर्ण जनता विद्रोह कर उठेगी। कानाफूसी करनेवाले सत्यनिष्ठ राजनीतिज्ञों पर आक्रमण करेंगे और उन्हें नष्ट करने का प्रयत्न करेंगे।

फ़्रांस में संसार के दृष्टि-कोण से सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह होगी कि उसके अन्दर बोल्शेविज़्म का राज हो जायगा। किन्तु वह स्थायी नहीं होगा। फ़्रांस के लिए सबसे अधिक ख़तरनाक समय जनवरी, फ़रवरी, मार्च का अन्तिम भाग होगा। जून, जुलाई और अगस्त के महीने भी ख़तरनाक होंगे।

में जाने से अरुचि-सी हो गई थी। परन्तु जब त्रावणकोर के महाराज ने अपने राज्य के समस्त मंदिरों को हरिजनों के लिए खोल दिये जाने की घोषणा की और इस सिलसिले में महात्मा जी भी वहाँ गये तब उन्होंने मंदिरों में जाकर श्रद्धापूर्वक देवदर्शन किये। इस अवसर पर त्रिवेन्द्रम में उन्होंने एक भाषण भी किया था। उसका एक महत्त्वपूर्ण अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

आज पद्मनाभ स्वामी के मन्दिर में मैंने जो देखा वह मुझे कह देना चाहिए। शुद्ध धर्म की जागृति के विषय में मैं जो कह रहा हूँ उसका शायद अच्छे-से-अच्छा उदाहरण इसमें मिलेगा। मेरे माता-पिता ने मेरे हृदय में जिस श्रद्धा-भक्ति का सिंचन किया था उसे लेकर मैं अपनी युवावस्था के दिनों में अनेक मन्दिरों में गया हूँ। किन्तु इधर पिछले वर्षों में मैं मन्दिरों में नहीं जाता था, और जब से इस अस्पृश्यता-निवारण के काम में पड़ा हूँ, तब से तो जो मन्दिर 'अस्पृश्य' माने जानेवाले तमाम लोगों के लिए खुले हुए नहीं होते उन मन्दिरों में जाना मैंने बन्द कर दिया है। इसलिए घोषणा के बाद इस मन्दिर में जब मैं गया तब अनेक अवर्ण हिन्दुओं की भाँति मुझे भी नवीनता-सी लगी। कल्पना के परों के सहारे मेरा मन प्रागैतिहासिक काल में जब मनुष्य ईश्वर का सन्देश पाषाण-धातु आदि में उतारते होंगे, वहाँ तक उड़ता हुआ पहुँच गया।

मैंने स्पष्टतया देखा कि जो पुजारी मुझे शुद्ध सुन्दर हिन्दी में प्रत्येक मूर्ति के सम्बन्ध में परिचय दे रहा था, वह यह नहीं कहना चाहता था कि प्रत्येक मूर्ति ईश्वर है। पर यह अर्थ दिये बग़ैर ही उसने मेरे मन में यह भाव उत्पन्न कर दिया कि ये मन्दिर उस अदृष्ट, अगोचर और अनिर्वचनीय ईश्वर तथा हम-जैसे अनन्त महासागर के अल्पातिअल्प बिन्दुओं के बीच सेतुरूप हैं। हम सब मनुष्य तत्त्वचिंतक नहीं होते। हम तो मिट्टी के पुतले हैं, धरती पर बसनेवाले मानव प्राणी हैं, इसी लिए हमारा मन धरती में ही रमता है, इससे हमें अदृश्य ईश्वर का चिंतन करके संतोष नहीं होता। कोई-न-कोई हम ऐसी वस्तु चाहते हैं, जिसका कि हम स्पर्श कर सकें, जिसे कि हम देख सकें, जिसके कि आगे हम घुटने टेक सकें। फिर भले ही वह वस्तु कोई ग्रन्थ हो, या पत्थर का कोई ख़ाली मकान हो या अनेक मूर्तियों से भरा हुआ पत्थर का कोई मंदिर हो। किसी को ग्रन्थ से शान्ति मिलेगी, किसी को ख़ाली मकान से तृप्ति होगी, तो दूसरे बहुत-से लोगों को तब तक संतोष नहीं होगा जब तक कि वे उन ख़ाली मकानों में कोई वस्तु स्थापित हुई नहीं देख लेंगे। मैं आपसे फिर कहता हूँ कि यह भाव लेकर आप इन मन्दिरों में न जावें कि ये मंदिर अंध-विश्वासों को आश्रय देनेवाले घर हैं। मन में श्रद्धाभाव रखकर अगर आप इन मन्दिरों में जायँगे तो आप देखेंगे कि हर बार वहाँ जाकर आप शुद्ध बन रहे हैं और जीवित-जाग्रत ईश्वर पर आपकी श्रद्धा बढ़ती ही जायगी। कुछ भी हो, मैंने तो इस घोषणा को एक शुद्ध धर्म-कार्य माना है। त्रावणकोर की इस यात्रा को मैंने तीर्थयात्रा माना है, और मैं उस अस्पृश्य की तरह इन मन्दिरों में जाता हूँ जो एकाएक स्पृश्य बन गया हो। आप सब इस घोषणा के विषय में अगर यही भावना रक्खेंगे तो आप सवर्ण और अवर्ण के बीच का सब भेद-भाव तथा अवर्ण-अवर्ण के बीच का भी सारा भेद-भाव, जो अब भी दुर्भाग्य से बना हुआ है, नष्ट कर देंगे। अन्त में मैं यह कहूँगा कि आपने अपने उन भाई-बहिनों को जो सबसे दीन और दलित समझे जाते हैं, जब तक उस ऊँचाई तक नहीं पहुँचा दिया, जहाँ तक कि आप आज पहुँच गये हैं, तब तक आप संतोष न मानें। सच्चे आध्यात्मिक पुनरुत्थान में आर्थिक उन्नति, अज्ञान का नाश और मानव-प्रगति में बाधा देनेवाली चीज़ों को दूर करने का समावेश होना ही चाहिए।

महाराजा साहब की घोषणा में जो महान् शक्ति है, उसे पूरी तरह से समझने की क्षमता ईश्वर आपको दे। आप लोगों ने मेरी बात शान्ति के साथ सुनी इसके लिए मैं आपका आभार मानता हूँ।

एक प्रसिद्ध ज्योतिषी की भविष्यवाणी

सन् १९३७ का वर्ष कैसा होगा इस सम्बन्ध में योरप के प्रसिद्ध ज्योतिषी श्री आर० एच० नेलर ने अपनी भविष्यवाणी एक अँगरेज़ी साप्ताहिक पत्र में

प्रकाशित कराई है। नीचे हम उसका सारांश भारत से उद्धृत करते हैं—

सर्वप्रथम उन्होंने इँगलेंड के नये सम्राट् के राज्याभिषेकोत्सव का उल्लेख किया है। यह उत्सव १२ मई को मनाया जायगा। उस दिन अच्छी धूम नहीं होगी। थोड़ी-सी जलवृष्टि होगी। अगर नये सम्राट् छठे जार्ज का अभिषेकोत्सव निर्दिष्ट दिन को ही मनाया जायगा तो यह निश्चय है कि कुछ अप्रत्याशित घटनायें घटित होंगी। जुलूस की व्यवस्था के विरुद्ध जनता असंतोष प्रकट करेगी। उस अवसर पर विराट् जन-समूह की शारीरिक रक्षा का प्रबन्ध करना कठिन प्रमाणित होगा। ये घटनायें निर्दिष्ट समय के कुछ पूर्व और कुछ बाद घटित होंगी।

यह भविष्यवाणी निश्चयात्मक रूप से की गई है कि १९३७ में कोई महायुद्ध नहीं होगा। हाँ, छोटे-मोटे युद्ध अनिवार्य हैं। उदाहरणार्थ जापान पूर्व में छोटी-मोटी लड़ाइयाँ छेड़ेगा। ब्रिटेन को भी जहाँ-तहाँ अपनी उच्छृंखल प्रजा का दमन करना होगा। छोटे-छोटे राष्ट्र भी आपस में झगड़ा करेंगे। १९३७ में सबसे अधिक ख़तरा भूमध्यसागर में और विशेष कर स्पेन-प्रायद्वीप में होगा। स्पेन की लड़ाई अपूर्व भीषणता के साथ साल के अधिकांश समय तक जारी रहेगी। इससे भी अधिक ख़राब बात यह होगी कि मुसोलिनी उस युद्ध में भाग लेने के लिए प्रलोभित होंगे। उन्हें और भी विजय प्राप्त होगी, किन्तु अन्त में ब्रिटेन और जर्मनी दोनों उनकी आशाओं और स्वप्नों पर पानी फेर देंगे।

जर्मनी और इटली के बीच सन्धि का होना असम्भव है। इस आशय का यदि कोई समाचार अख़बारों में प्रकाशित हो तो उस पर विश्वास नहीं करना चाहिए। दोनों की स्थिति से यह प्रकट होता है कि उनमें सन्धि नहीं होगी। हाँ, कुछ समय तक और किसी ख़ास बात के लिए उनमें मेल भले ही हो जाय, किन्तु राजनैतिक क्षेत्र में इन दोनों राष्ट्रों का स्थायी मित्र बना रहना सम्भव नहीं होगा। उनके ग्रह एक-दूसरे के बिलकुल विपरीत हैं।

मुसोलिनी धीरे-धीरे ब्रिटिश-साम्राज्य को छिन्न-भिन्न करने का प्रयत्न करेंगे। वे सम्भवतः उनके एक-एक अङ्ग को युद्ध अथवा राजनैतिक चाल के द्वारा भङ्ग करेंगे और इस बात की चेष्टा करेंगे कि ब्रिटेन संसार का शक्तिशाली राष्ट्र न रह जाय। प्रत्येक मास के साथ इस युद्ध का ख़तरा बढ़ता ही जायगा। स्पेन के गृह-युद्ध के सम्बन्ध में भूमध्यसागर में ख़तरनाक स्थिति उत्पन्न हो जायगी। अगर अबीसीनिया-युद्ध की प्रारम्भिक अवस्था में इटली ब्रिटेन के साथ युद्ध छेड़ देता तो फिर ऐसे महायुद्ध का श्रीगणेश हो जाता जो ६ से ८ वर्ष तक जारी रहता। सारे संसार के सामने एक सङ्कट-पूर्ण स्थिति उत्पन्न हो जाती।

यह विश्वव्यापी सङ्कट-स्थिति अब फिर किसी दूसरे रूप में उपस्थित होगी। किन्तु इसमें सन्देह है कि आगामी १२ महीनों के बीच ब्रिटेन किसी बड़े राष्ट्र के साथ युद्ध करेगा।

इँग्लैंड की शिक्षा-प्रणाली में महान् परिवर्तन होगा। परीक्षा की प्रणाली पूर्णतया बदल दी जायगी। ब्रिटेन के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में जटिल समस्यायें उत्पन्न हो जायँगी। बहुत-से व्यक्ति मरेंगे। आधुनिक चिकित्सा-प्रणाली विफल सिद्ध होगी। सार्वजनिक स्वास्थ्य की दृष्टि से १९३७ के सबसे अधिक ख़तरनाक महीने मार्च, जून, सितम्बर, नवम्बर और दिसम्बर होंगे। वहाँ एक विचित्र प्रकार का प्लेग फैलेगा। लन्दन तथा पश्चिम के समुद्र-तटवर्ती कुछ नगरों में उसका भीषण प्रकोप होगा। यह भविष्यवाणी ज़ोरदार शब्दों में की गई है कि ब्रिटेन में रक्त-हीन क्रान्ति होगी। १९३७ के वर्ष की सबसे प्रधान विशेषता यह होगी कि पहले ब्रिटेन में और फिर सम्पूर्ण ब्रिटिश-साम्राज्य में कानाफूसी का आन्दोलन होगा। आगामी दो या तीन साल में तरह-तरह की अफ़वाहें फैल जायँगी और लोग सशङ्कित हो जायँगे। सम्पूर्ण जनता विद्रोह कर उठेगी। कानाफूसी करनेवाले सत्यनिष्ठ राजनीतिज्ञों पर आक्रमण करेंगे और उन्हें नष्ट करने का प्रयत्न करेंगे।

फ़्रांस में संसार के दृष्टि-कोण से सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह होगी कि उसके अन्दर बोल्शेविज़्म का राज हो जायगा। किन्तु वह स्थायी नहीं होगा। फ़्रांस के लिए सबसे अधिक ख़तरनाक समय जनवरी, फ़रवरी, मार्च का अन्तिम भाग होगा। जून, जुलाई और अगस्त के महीने भी ख़तरनाक होंगे।

योरप की भयानक स्थिति

योरप में इस समय घोर राजनैतिक संकट उपस्थित है
और वहाँ के राज्यों के बड़े बड़े क्षमताशाली उच्च राजकर्म-
चारियों की बुद्धि उसके वारण करने में कुंठित हो रही है।
पहली बात तो यह है कि पिछले महायुद्ध के विजेताओं
में से ब्रिटेन और फ्रांस युद्ध से ४ हाथ दूर रहने में ही
अपनी भलाई समझते हैं और कदाचित् उनकी इसी नीति
की बदौलत आज योरप का जुगोस्लेविया जैसा छोटा राष्ट्र भी
१५ लाख सुदृढ़ सेना रखने की घोषणा करने में गर्व का
अनुभव कर रहा है। एक यह उदाहरण काफ़ी है। योरप के
क्या छोटे और क्या बड़े सभी राष्ट्र अपनी क्षमता के बाहर
अपना सामरिक बल या तो बढ़ा चुके हैं या कुछ ही दिनों
के भीतर बढ़ा ले जायँगे। और यही अवस्था योरप में
विषम राजनैतिक संकट उपस्थित किये हुए है, जिसका हल
ढूँढ़े नहीं मिल रहा है। आश्चर्य तो यह है कि इस दशा
में भी, चारों ओर वैज्ञानिक ढंग के अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित
राष्ट्रों से घिरे हुए होकर भी, इटली और जर्मनी प्रकट रूप
से दिन-प्रति-दिन अपनी मनमानी करते जा रहे हैं। इटली
तो बड़े से बड़े राष्ट्र की दाढ़ी नोच लेने को उधार-सा खाये
रहता है। उसने बलपूर्वक अबीसीनिया पर क़ब्ज़ा कर
लिया है। उसके भय से आस्ट्रिया, हंगेरी और अलबेनिया
उसके आज्ञाकारी अनुयायी बन गये हैं और तुर्की एवं
मिस्र आदि देश उससे हर समय सशंक रहते हैं। और इस
समय तो वह स्पेन के भाग्य-निर्णय का खेल खेल रहा है।

इटली की देखादेखी जर्मनी भी ज़ोर पकड़ गया है
और गत ४ वर्षों में उसके भाग्य-विधाता हर हिटलर ने
उसे इस स्थिति को पहुँचा दिया है कि आज ब्रिटेन के
वैदेशिक मंत्री योरप में शान्ति स्थापित रखने के लिए
उसकी ख़ुशामद-सी कर रहे हैं। जर्मन ने इतना बल प्राप्त
कर लिया है कि आज वह प्रसिद्ध वर्सेलीज़ के सन्धि-पत्र
को खुल्लमखुल्ला पैरों से रौंद ही नहीं रहा है, किन्तु इटली
... विद्रोही-दल की प्रकट
रूप से सहायता कर रहा है। जर्मनी और इटली का यह
निर्बाध सैनिक प्रदर्शन योरप की एक असाधारण
अवस्था है।

तथापि यह सब ब्रिटेन और फ्रांस की आँखों के
आगे हो रहा है, जो इस समय संसार के सबसे अधिक
बलशाली एवं सबसे अधिक सभ्य राष्ट्र माने जा रहे हैं।
इन राष्ट्रों के ऐसा होते हुए भी योरप में धींगाधींगी मची
हुई है और अन्तर्राष्ट्रीय क़ानून-क़ायदों तक की कोई
परवा नहीं कर रहा है। निस्सन्देह यही कहा जायगा कि
इन दोनों राष्ट्रों में या तो पहले का-सा घनिष्ट सम्बन्ध
नहीं रहा है या इन राष्ट्रों के सूत्रधारों में समयानुकूल
क्षमता और प्रतिभा का अभाव हो गया है। यह
सच है कि इस समय ब्रिटेन जर्मनी की ओर तो फ्रांस
इटली और रूस की ओर अधिकाधिक झुक गया है,
और यही वह अवस्था है जिसके कारण योरप की समस्या
सुलझाये सुलझ नहीं रही है। और अब तो यह स्थिति
पहुँच गई है कि बोल्शेविकों का हौआ खड़ा करके इटली
और जर्मनी स्पेन में उसके विरुद्ध युद्ध-सा घोषित किये हुए
हैं। यही नहीं, उनमें से जर्मनी ने एक क़दम आगे रखकर
जापान से सहायता की सन्धि भी कर ली है। इस तरह उसने
फ्रांस को रूस के साथ सन्धि करने का जवाब-सा दिया है।
परन्तु जर्मनी-जापान की सन्धि से ब्रिटेन और उसके साथ
हालेंड भी चिन्तित हो उठे हैं। ऐसे ही राजनैतिक पेंच
की बातों से आज योरप में जो राजनैतिक सङ्कट उपस्थित
हुआ है, उसका प्रतीकार वहाँ के राजनैतिक नेता प्रयत्न
करके भी नहीं कर पाते। और उनकी यह असमर्थता यही बात
प्रकट करती है कि उसका प्रतीकार बिना युद्ध के नहीं होगा।
परन्तु वैसे संसारव्यापी युद्ध की कल्पना करने का साहस
योरप का कोई राष्ट्र नहीं कर सकता, क्योंकि वह युद्ध युद्ध
नहीं, नरसंहार होगा। आज योरप की सामरिक योजना
में विज्ञान की बदौलत तरह तरह की विषैली गैसों की प्रवृत्ति
कता हो गई है और सभी प्रमुख राष्ट्रों के सामरिक भारत
उनसे परिपूर्ण हैं। यही कारण है कि बार बार अव-
सर आ जाने पर भी युद्ध छेड़ने का कोई साहस नहीं कर
रहा है. और सारी परिस्थिति इस स्थिति को आ पहुँची है
कि वहाँ का सारा वायुमंडल अविश्वास और ईर्ष्या-द्वेष
से पूर्णतया विषाक्त हो गया है। ऐसी दशा में यही कहना
होगा कि योरप का रक्षक भगवान् ही है।

अबीसीनिया का अन्तिम प्रतिरोध

अबीसीनिया के सम्राट् हेल सेलासी के देश-त्याग करने
पर ही यह प्रकट हो गया था कि इटली की युद्ध में विजय
हो गई। परन्तु इधर की घटनाओं को देखने से जान पड़ता है
कि संगठित विरोध का अभाव हो जाने पर भी अबीसीनिया
के योद्धा बिना युद्ध के इटलीवालों का अपने देश पर
अधिकार नहीं हो जाने देंगे। रास कस्सा के दो पुत्रों के
मार डाले जाने और रास इमरू के आत्मसमर्पण कर
देने पर भी अबीसीनिया में योद्धाओं के दल, जान पड़ता
है, युद्ध को बराबर जारी किये हुए हैं। ऐसे योद्धाओं की
कुल संख्या इस समय १५,००० के लगभग अनुमान की
जाती है और ये लोग हरार-प्रान्त के चार प्रमुख सरदारों के
नेतृत्व में कारुम्लाटा और चेरचेर के आस-पास इटलीवालों
पर अपने अचानक आक्रमण करते ही रहते हैं। गत मई
से इटली के वायुयान इन पर बम्ब बरसाते आये हैं,
परन्तु इन योद्धाओं ने आत्मसमर्पण करने से बार बार इनकार
किया है। इटलीवालों के जनरल नासी उन सरदारों में से
प्रत्येक के सिर के लिए १० हज़ार लायर का पुरस्कार घोषित
किये हुए हैं, परन्तु वे आज भी अपने पहाड़ी देश की
बदौलत स्वाधीन हैं। इसके सिवा अरुस्सी और बली के
ज़िलों में दो अन्य सरदार अपने अनुयायियों के साथ स्वाधी-
नता का झंडा अलग खड़ा किये हुए हैं और मौक़ा पाते ही
इटलीवालों पर छापा मारकर उन्हें मार डालते हैं। इसी
प्रकार सिदामो में भी रास दस्सिता आदि कई स्थानीय
सरदारों के साथ शोअन और गल्ला योद्धाओं को लिये
हुए पहाड़ियों में छिपे रहकर लूट-मार मचाये रहते हैं।
उधर उगंडा की सीमा के पास माजी के समीप इथोपिया
के सिंहासन का दावीदार और मेनलिक का भतीजा देदज-
समैच थाया अपने दलबल के साथ मोर्चा लगाये
बैठा है। कहने का मतलब यह है कि अबीसीनिया में
इटलीवाले अभी तक अपना पूरा प्रभुत्व स्थापित करने
में सफलमनोरथ नहीं हो सके हैं और उन्हें वहाँ के स्वा-
धीनता-प्रेमी वीर निवासियों से जगह जगह करारा मोर्चा लेना
पड़ रहा है। यह सच है कि सुशिक्षित और साधन-सम्पन्न
इटली की सेनाओं के आगे अबीसीनियावाले अधिक समय
तक नहीं ठहर सकेंगे, तथापि उनको अपने वश में ले आने
के लिए इटलीवालों को धन-जन की बहुत अधिक हानि
उठानी पड़ेगी। तब कहीं जाकर वे अबीसीनिया पर अपना
आधिपत्य स्थापित करने में सफल हो सकेंगे।

संयुक्त-प्रान्त की म्युनिसिपेल्टियाँ

संयुक्त-प्रान्त की म्युनिसिपेल्टियों की गत वर्ष की
कार्यवाही पर प्रान्तीय सरकार का हाल में मन्तव्य प्रका-
शित हो गया है। उससे प्रकट होता है कि उनकी दशा
पूर्ववत् ही असन्तोषजनक बनी हुई है। वे न तो अपनी
सीमा के भीतर सभी स्थानों में समानरूप से पानी का
वितरण ही कर सकी हैं, न सड़कों की उपयुक्त मरम्मत
ही। सड़कों पर ३९ म्युनिसिपेल्टियों ने पिछले वर्ष की
अपेक्षा यदि कम ख़र्च किया है तो ४५ ने ज़्यादा ख़र्च
किया है और इस तरह पिछले वर्ष की अपेक्षा इस वर्ष
२·३२ लाख रुपए ज़्यादा ख़र्च किया है। तो भी सड़कों की
हालत अच्छी नहीं रही।

बच्चों की मृत्यु में भी वृद्धि हुई है। जहाँ पिछले
साल हज़ार में २२२·४६ मरे थे, वहाँ इस वर्ष २७१·८९
फ़ी हज़ार मरे हैं। यह अवस्था चिन्ताजनक है। निस्सन्देह
ज़च्चों और बच्चों की व्यवस्था में उचित ध्यान दिया गया
है और अन्य ६ नगरों में उनके लिए नये केन्द्र खोले
गये हैं। इस प्रकार उनकी संख्या अब ५२ हो गई है।
उनका काम भी सन्तोषजनक रहा है। कहा जाता है कि
लोगों ने उनसे पर्याप्त सहयोग नहीं किया। ऐसा क्यों हो
रहा है, इसका जानना ज़रूरी है। कोई न कोई असुविधा
ज़रूर होगी। नहीं तो लोग ऐसी उपयोगी संस्था से लाभ
उठाने से अपने को क्यों वंचित रखते?

म्युनिसिपल स्कूलों के व्यय में तथा उनकी छात्र-
संख्या में काफ़ी वृद्धि हुई है। परन्तु शिक्षा-विभाग के
डायरेक्टर की यह शिकायत है कि अनिवार्य प्रायमरी
शिक्षा के प्रचार में सुस्ती की गई है। यह निस्सन्देह बड़े

खेद की बात है। स्कूलों की इमारतें तथा उनका साज़-सामान भी अनुपयुक्त और दरिद्रता-द्योतक बताया गया है। पढ़ाई का हाल यह रहा है कि ५ वर्ष पहले बच्चों की श्रेणी की जो छात्र-संख्या ३०,३८९ थी उसमें से छठे दर्जे तक कुल १,६५३ ही लड़के पहुँच सके हैं। यह स्थिति कैसे आशाजनक मानी जा सकती है? लड़कियों के स्कूलों की संख्या ४३७ से ४५७ हो गई है और उनकी छात्र-संख्या ४२,६३५ से ४५,५५७ हो गई है।

मन्तव्य में यह भी कहा गया है कि अनेक बोर्ड कलह और द्वन्द्व के घर बने रहे हैं। यह वास्तव में बड़ी निन्दा की बात है।

डाक्टर लौबैच और हमारी निरक्षरता

अमरीका के न्यूयार्क नगर में एक बड़ी महत्त्व की सभा है। इस सभा का एक-मात्र उद्देश संसार की निरक्षरता दूर करना है, और यह एक नामधारी सभा भर नहीं है, किन्तु अपने उद्देश की पूर्ति के लिए व्यावहारिक कार्य भी करती है। अभी हाल में इस सभा के एक प्रतिनिधि श्रीयुत डाक्टर फ़ैंक सी० लौबैच भारत आये हैं और यहाँ की जनता को साक्षर बनाने के लिए भिन्न-भिन्न शिक्षा-संस्थाओं में जा जाकर भाषण कर रहे हैं। अब तक इस सभा ने संसार की ३६ भाषाओं में अपनी योजना का प्रयोग किया है और उसे आशातीत सफलता प्राप्त हुई है। अपनी ही भाषा का जल्दी से जल्दी और सो भी अति सरलता से लिखना-पढ़ना सिखा देना ही इस सभा की योजनाओं का मुख्य ध्येय है और इसमें उसे, विशेष-कर फ़िलीपाइन द्वीपों के मोरो लोगों में, आशातीत सफलता प्राप्त हुई है। यहाँ के प्रयोगों से यह बात प्रकट हुई है कि सामान्यतः लोग अपनी भाषा को एक से तीन दिन के भीतर ही पढ़ लेना बख़ूबी जान जा सकते हैं।

बातचीत के सिलसिले में डाक्टर लौबैच ने बताया है कि संसार की आधी आबादी से भी अधिक लोग अर्थात् १ अरब से भी अधिक लोग पढ़ना नहीं जानते हैं। दोतिहाई बिलियन तो एशिया में ही निवास करते हैं। इनमें से ३५ करोड़ चीन में और ३४ करोड़ भारत में रहते हैं। शेष निरक्षर विशेषकर अफ़्रीका, दक्षिण-अमरीका ... में हैं। साक्षरता के प्रचार की गति १० वर्षों में ४ फ़ी सदी रही है, परन्तु भारत में वह १ फ़ी सदी रही है। भारत में ९२ फ़ी सदी निरक्षर हैं। सन् १९२१ से सन् १९३१ तक मध्यप्रान्त में प्रत्येक साक्षर पर चार हज़ार रुपया ख़र्च करना पड़ा है। उस दशक में वहाँ साक्षरता की वृद्धि १ फ़ी सदी में ६० हुई है। इस गति से भारत को साक्षर होने में १,१५० वर्ष लगेंगे। भारत के साक्षर होने में अनेक बाधायें हैं। इनमें एक महत्त्व का कारण प्रौढ़ों का निरक्षर होना भी है। यह पता लग गया है कि बच्चे को पढ़ना-लिखना सिखाने में जितना समय लगता है उसके पंचमांश समय में ही प्रौढ़ लोग पढ़ना-लिखना सीख सकते हैं। इस नई खोज से भारत को लाभ उठाना चाहिए। प्रौढ़ लोगों का बच्चों की किताबों के पढ़ने में मन नहीं लगता है। उनके लिए उनकी प्रवृत्ति के उपयुक्त ही पाठ्य-पुस्तकें तथा शिक्षा का ढंग होना चाहिए। यह सम्भव होना चाहिए कि भारत २५ वर्ष के भीतर साक्षर हो जाय। रूस ने तो इस दिशा में १५ वर्ष में ही सफलता प्राप्त कर ली है।

इसमें सन्देह नहीं है कि डाक्टर लौबैच के ये विचार अत्यन्त उपयोगी हैं। खेद की बात है कि भारत अपनी वर्तमान परिस्थिति में उनसे जैसा चाहिए वैसा लाभ नहीं उठा सकता, तथापि यह नितान्त आवश्यक है कि देश इस महारोग से शीघ्रातिशीघ्र मुक्त किया जाय। क्योंकि देश की यह व्यापक निरक्षरता देश की उन्नति की प्रगति में सबसे बड़ी बाधा है। कुछ शिक्षा-प्रेमी देशभक्त यदि देश की निरक्षरता दूर करने का ही काम उठा लें तो इस क्षेत्र में काफ़ी सफलता मिल सकती है। आशा है, लोक-सेवकों का ध्यान इस ओर आकृष्ट होगा।

स्वर्गीय डाक्टर विंटर्नित्ज़

डाक्टर मोरित्ज़ विंटर्नित्ज़ का अभी हाल में ९ जनवरी को देहान्त हो गया। ये एक पारगामी विद्वान् थे। ये आस्ट्रियावासी जर्मन थे। इनका जन्म २३ दिसम्बर सन् १८६६ को हुआ था। १७ वर्ष की उम्र में ये वियना के विश्वविद्यालय में दर्शन और भाषा-विज्ञान पढ़ने को भर्ती हुए। इसी समय इनकी भेंट डाक्टर बूलर से हुई। १८८८ में इन्हें डाक्टर की डिगरी मिल गई। इन्होंने आपस्तम्बीय गृह्यसूत्र का सम्पादन और अनुवाद किया। इसके बाद

प्रोफ़ेसर मैक्समूलर को ऋग्वेद का दूसरा संस्करण निकालने में मदद की। इन दोनों ग्रन्थों के सम्पादन आदि में इन्होंने अपने ऐसे पाण्डित्य का परिचय दिया कि ये अपनी २५ वर्ष की ही उम्र में सर्वश्रेष्ठ प्राच्यविदों में गिन लिये गये। इन्होंने 'मंत्रपाठ' का सम्पादन किया तथा 'ब्राह्मण-ग्रन्थों में स्त्रियों का स्थान' और 'महायान बौद्धधर्म'-विषयक कई एक पुस्तकें लिखीं। पर इन्होंने 'भारतीय साहित्य का इतिहास' नाम का जो प्रसिद्ध ग्रन्थ तीन जिल्दों में लिखा है वह अपने विषय का सबसे अधिक महत्त्व का ग्रन्थ है। इन्होंने भारत की यात्रा भी की है। ये डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के विश्वभारती में गये। कलकत्ता-विश्वविद्यालय में इन्होंने अपनी व्याख्यान-माला भी पढ़ी। इनके प्रयत्नों से भारतीय संस्कृति का योरप में अच्छा प्रचार हुआ है। इनकी मृत्यु से भारतीय संस्कृति के एक प्रेमी विद्वान् का अभाव हो गया है।

जर्मन की उग्र राष्ट्रीयता

जर्मनी के नाज़ियों ने जर्मन-राष्ट्र का 'आर्यनत्व' विशुद्ध बनाये रखने के लिए यहूदियों को जिस तरह जर्मनी से निकाल बाहर करने की उग्र व्यवस्था कार्य में परिणत कर रक्खी है वह सर्वविदित है। इसी प्रकार वे अपने 'ईसाई-धर्म' में भी नूतन संस्कार करने का उपक्रम कर रहे हैं ताकि वह भी विशुद्ध 'जर्मन-धर्म' बन जाय। परन्तु उनकी उग्र राष्ट्रीयता यहीं से समाप्त नहीं हो जाती। वे अपनी मातृभाषा का भी संशोधन करने पर उतारू हो गये हैं। वे उससे सारे विदेशी शब्द निकाल बाहर करके उनके स्थान में विशुद्ध जर्मन-शब्द ही प्रयोग करने की व्यवस्था करना चाहते हैं। विद्वानों का कहना है कि उस दशा में जर्मन-भाषा एक विचित्र ही नहीं, अति कठिन भाषा हो जायगी। परन्तु नाज़ियों की राष्ट्रीयता को इसकी परवा नहीं है। वे तो अपने सारे राष्ट्र को क्या रक्त, क्या धर्म और क्या भाषा और क्या संस्कृति 'विशुद्ध जर्मन' बना डालने को तुले बैठे हैं।

पण्डित गणेशविहारी का स्वर्गवास

दुःख की बात है कि लखनऊ के पण्डित गणेशविहारी मिश्र का गत ३१ जनवरी को स्वर्गवास हो गया। आपकी उम्र इस समय ७२ वर्ष थी और आप वर्तमान मिश्रबन्धुओं में ज्येष्ठ थे। इधर कई महीने से आपका स्वास्थ्य ख़राब हो रहा था। परन्तु ऐसा नहीं था कि आप दिवंगत हो जाते। आपका भी अपने दोनों छोटे भाइयों की तरह हिन्दी से विशेष अनुराग था और अपने भाइयों के साहित्यिक कार्यों से विशेष सहानुभूति ही नहीं रखते थे, किन्तु 'हिन्दी-नवरत्न' तथा 'मिश्रबन्धुविनोद' की रचना में सक्रिय भाग भी लिया था। आप पर गृह-प्रबन्ध का ही सारा भार था और आपका अधिक समय अपनी ज़मींदारी आदि की देख-रेख करने में ही बीतता था। इस दुःख के अवसर पर हम आपके परिवार के साथ अपनी समवेदना प्रकट करते हैं।

मिस्र में नये युग का आविर्भाव

मिस्र अब एक स्वाधीन राज्य में परिणत हो गया है। यह सौभाग्य उसे एक लम्बे युग के बाद प्राप्त हुआ है। इसका सारा श्रेय मिस्र की प्रबुद्ध जनता तथा उसके लोक-नेता स्वर्गीय जगलूल पाशा तथा नहस पाशा को है। अब चूँकि ब्रिटिश सरकार से उसकी सन्धि हो गई है, अतएव मिस्र की सरकार ने भी एक स्वाधीन राष्ट्र की तरह अपने हाथ-पैर चलाना शुरू कर दिया है। एक ओर जहाँ उसने स्वदेश की रक्षा के लिए नूतन ढंग से अपने सामरिक बल का संगठन करना प्रारम्भ किया है, वहाँ वह संसार के राष्ट्रों के बीच भी अपने नये पद के अनुरूप अपना स्थान अधिकृत करने के लिए यत्नवान् हो रहा है। अभी तक मिस्र में रहनेवाले योरपीयों का, किसी तरह का अपराध करने पर, वहाँ के न्यायालयों में मुक़द्दमा नहीं चलता था, किन्तु भिन्न भिन्न राष्ट्र अपने अपने राष्ट्रीयों के अभियोगों का निर्णय अपनी ख़ास अदालत में किया करते थे। स्वाधीन मिस्र अब योरपीयों को ऐसा कोई अधिकार नहीं देना चाहता, क्योंकि इस व्यवस्था से उसके गौरव को ठेस पहुँचती है। उसने उन राष्ट्रों को जिन्हें मिस्र में विशेष अधिकार प्राप्त हैं, इस बात की सूचना दे दी है कि वह मिस्र में किसी राष्ट्र को विशेष अधिकार नहीं देना चाहता और १२ वर्ष के बाद ऐसे अधिकारों का अन्त हो जायगा। इस बीच में मिस्र में विशेषाधिकारवाले विदेशियों

के मामले सरकार-द्वारा नई मिस्रित अदालतों-द्वारा तय हुआ करेंगे। इन अदालतों के जजों की नियुक्ति में जाति व धर्म का विचार नहीं किया जायगा और यदि किसी विदेशी जज की जगह ख़ाली होगी तब वह स्थान किसी मिस्री जज को ही दिया जायगा। इन अदालतों को सरकार-द्वारा बनाये गये क़ानूनों और फ़र्मानों को मानना पड़ेगा। इस प्रश्न पर विचार करने के लिए उसने ऐसे अधिकार-प्राप्त योरपीय राष्ट्रों को आह्वान किया है। आशा है, मिस्र इस समस्या के हल करने में भी सफलमनोरथ होगा।

—

सैयद अमीरअली का स्वर्गवास

मध्य-प्रदेश के प्रसिद्ध हिन्दी-लेखक श्रीयुत सैयद अमीरअली का इसी जनवरी में एक दुर्घटनावश निधन हो गया। वे भाटपारा में रहते थे। घर स्टेशन के पास था। एक दिन संध्या-समय एक मित्र के यहाँ से लौट रहे थे। रेलवे लाइन पार करते समय वे मालगाड़ी के शंटिंग करनेवाले डिब्बों के नीचे आ जाने से कट गये और उनका स्वर्गवास हो गया।

सैयद साहब हिन्दी के पुराने लेखकों में थे और अपने समय के प्रसिद्ध लेखक थे। वे गद्य-पद्य दोनों के लिखने में सिद्धहस्त थे। उनका 'बूढ़े का ब्याह' आज भी बड़े आदर से पढ़ा जाता है। उनकी मृत्यु से एक उदार मुसलमान हिन्दी-लेखक का अभाव हो गया है। हम आपके दुखी परिवार के साथ अपनी समवेदना प्रकट करते हैं।

—

एक पारसी नवयुवक का चमत्कार

अवसर पाने पर भारतीय युवकों ने भी अपनी प्रतिभा का परिचय देकर यह बात बार बार प्रमाणित की है कि वे भी संसार के समुन्नत राष्ट्रों के युवकों की ही भाँति प्रतिभा-शाली हैं। बम्बई के एक पारसी नवयुवक श्री फ़िरोज़ प० नज़ीर ने इसकी एक बहुत ही उत्तम नज़ीर अपने वायुयान-सम्बन्धी नये आविष्कारों के द्वारा उपस्थित की है। अपने आविष्कार के फलस्वरूप आज इनका इँग्लैंड में बड़ा सम्मान हो रहा है। इन्होंने वायुयान में एक ऐसा सुधार किया है कि अब हवाई यात्रायें निर्विघ्न हुआ करेंगी और वायुयानों के अकस्मात् गिर पड़ने का अब वैसा डर नहीं रहेगा। यह आविष्कार इन्होंने १९३१ में किया था, जो कसौटी पर कसे जाने पर खरा उतर चुका है। सन् १९३५ में इन्होंने दो ऐसे नये आविष्कार किये हैं जिनसे हवाईयुद्ध में क्रान्ति-सी हो जायगी। एक तो इन्होंने एक ऐसा उड़नेवाला टारपीडो बनाया है जिसकी गति तेज़ से तेज़ जानेवाले गोले से चौगुनी है। यह दो सौ मील तक, बिना वाहक के, ३०० मील फ़ी घंटे के हिसाब से जा सकता है। दूसरा आविष्कार वायुयान की दुम में छिपाकर तोपें रखने का है। ये तोपें वायुयान में इस ढंग से लगाई जाती हैं कि पीछे से आनेवाले जहाज़ के मार के भीतर आते ही उसे वार करने के पहले ही मारकर गिरा दे सकती हैं। अपने इन आविष्कारों की बदौलत इस समय श्रीयुत नज़ीर का इँग्लैंड में बड़ा आदर हो रहा है।

श्रीयुत नज़ीर बम्बई के निवासी हैं। इनके पिता जी० आई० पी० रेलवे में मुलाज़िम थे। इन्होंने देवलली के पारसी-स्कूल में शिक्षा पाई है। प्रारम्भ से ही इनका मेक-निकल इंजीनियरिंग की ओर झुकाव था। स्कूल से निकलने पर ये बम्बई के एक मोटर के कारख़ाने में उम्मेदवार हो गये। इसके बाद जी० आई० पी० के माटुंगा के कारख़ाने में नौकर हो गये। यहाँ काम करते हुए ये अपने छुट्टी के समय में वायुयान-सम्बन्धी इंजी-नियरिंग सीखने लगे और वायुयान का एक माडल भी बनाया। अपने इस प्रयत्न से उत्साहित होकर ये पारसी ट्रस्टों की वृत्ति प्राप्तकर वायुयान-विद्या सीखने के लिए सन् १९३१ में इँग्लैंड चले गये। इँग्लैंड में ये ग्राउंड इंजी-नियर हो गये। इसी समय इन्होंने वायुयान की दुर्घटना रोकने का अपना पहला आविष्कार किया। इस सम्बन्ध में प्रिवी कौंसिल के सदस्य सर दीनशा मुल्ला ने इनकी बड़ी सहायता की और उन्हीं की सिफ़ारिश पर इनके उक्त आविष्कार पर सरकारी वायुयान-विभाग ने ध्यान दिया और उसकी सार्थकता की जाँच की। अब तो ये उसके लिए ५० हज़ार रुपया एकत्र करने की चिन्ता में हैं ताकि उस आविष्कार की पूर्ण रूप से जाँच की जा सके। निस्सन्देह श्रीयुत नज़ीर ने अपने इन आविष्कारों से बहुत बड़ी ख्याति प्राप्त की है। ये इस समय लन्दन में क्वीन

मेरी कालेज में डाक्टर एन० ए० बी० पियर्सी के निरीक्षण में खोज का काम कर रहे हैं। अभी ये ३० वर्ष के हैं। आशा है कि वायुयान-विद्या में ये अपने आविष्कारों से भविष्य में इनसे भी अधिक महत्त्व के चमत्कार कर दिखायेंगे।

—

प्रवासी विदेशियों की संख्या

राष्ट्र-संघ के अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर-आफ़िस ने उन विदेशियों की एक रोचक तालिका तैयार की है जो दूसरे देशों में निवास करते हैं। उस तालिका से प्रकट होता है कि सन् १९३० में स्वदेश छोड़कर परदेश में रहनेवाले विदेशियों की कुल संख्या २,८९,००,००० थी, जो संसार की कुल आबादी का १·६ फ़ी सदी है। और इनमें भी ६३ लाख संयुक्त राज्य तथा २८ लाख अर्जेन्टाइन में ही ये विदेशी थे। इनके सिवा फ़्रांस में सन् १९२६ में २४ लाख और सन् १९३१ में २७ लाख, ब्रेज़िल में सन् १९२० में १५ लाख, ब्रिटिश मलाया में १८,७०,०००, स्याम में १० लाख और जर्मनी में ७,८७,००० विदेशी थे।

योरप के देशों में, रूस को छोड़कर, विदेशियों का औसत फ़ी हज़ार १५·४ था, परन्तु वह बढ़ गया—लक-ज़ेम्बर्ग में १८६, स्वीज़लैंड में ८७, फ़्रांस में ६६, आस्ट्रिया में ४३ और बेल्जियम में ३९ का फ़ी हज़ार औसत हो गया। परन्तु जर्मनी में १२, बल्गेरिया में १०, हंगेरी में ९, तुर्की में ६, पुर्तगाल में ५, ब्रिटिशद्वीप में ४, इटली में और फ़िनलेंड में ३ औसत रह गया।

परन्तु महायुद्ध के बाद इस अवस्था में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है। जर्मनी में तो विदेशियों की संख्या में कमी हुई है, इसके विपरीत फ़्रांस में उसमें वृद्धि हुई है। फ़्रांस में जहाँ फ़ी हज़ार में सन् १९१० में २९, १९२१ में ३९ विदेशी थे, वहाँ १९३१ में वे फ़ी हज़ार में ६६ हो गये। स्वीज़लैंड में सन् १९१० में विदेशियों का औसत फ़ी हज़ार में १४८ था, वहाँ वह घटकर सन १९२० में १०४ और सन् १९३० में ८७ हो गया।

विदेशों में एशियाइयों की संख्या सन् १९१० में ५० लाख थी, पर वह १९३० में ९५ लाख हो गई है। परन्तु योरपीयों की विदेशों में संख्या यद्यपि अब कुछ कम हो गई है, तो भी वह २,२४,००,००० है।

यह उपर्युक्त तालिका प्रथम बार बनी है और इसकी रचना सन् १९१०, १९२०, और १९३० की मनुष्य-गणना की रिपोर्टों के आधार पर की गई है, अतएव प्रामाणिक है।

—

अध्यापक शरच्चन्द्र चौधरी का निधन

इलाहाबाद-विश्वविद्यालय के क़ानून-विभाग के लोक-प्रिय अध्यापक श्रीयुत शरच्चन्द्र चौधरी का ३० जनवरी को स्वर्गवास हो गया। इन प्रान्तों में क्या, समग्र भारत में उनके सदृश लोकप्रिय अध्यापक का नाम नहीं सुना गया है। उन्होंने अपने शिष्यों को शिष्य नहीं, किन्तु पुत्र ही समझा और उन्हें उपयुक्त शिक्षा तो बराबर ही दी, साथ ही उनके सुख-दुख में तन-मन और धन से भी सदा तत्परतापूर्वक शामिल रहे। यही कारण था कि वे अपने विद्यार्थियों में ही नहीं, विश्व-विद्यालय के सभी छात्रों में अत्यधिक लोकप्रिय तथा आदर-पात्र रहे। इसमें सन्देह नहीं है, चौधरी साहब सभी दृष्टियों से एक आदर्श अध्यापक ही नहीं थे, किन्तु इस क्षेत्र में अद्वितीय व्यक्ति थे और अपना सानी नहीं रखते थे। सर आशुतोष ने यदि बंगाल को ग्रेजुएटों से भर दिया है तो उन्होंने इन प्रान्तों को क़ानूनदाओं से भर दिया है। वे अपने नये क्या पुराने सभी विद्यार्थियों की विश्राम-समय की वार्ता के विशिष्ट पात्र बन गये थे और उनके समय के सभी छात्र उनकी चरित-गाथा बार बार कहते रहने पर भी नहीं अघाते थे। ऐसे अध्यापक इस देश में हो गये हैं और आज भी कदाचित् यत्र-तत्र हों जिन्होंने अपने छात्रों से काफ़ी से अधिक श्रद्धा प्राप्त की हो और जिनका नाम सुनते ही उनके छात्र बड़े आदर के साथ अपना मस्तक नत कर लेते हों। परन्तु अध्यापक चौधरी इस श्रेणी से भी परे थे। उन्होंने अपने ही छात्रों का नहीं, विश्वविद्यालय के समग्र छात्रों का श्रद्धा से भी अधिक प्रेम प्राप्त किया था। धन्य हैं अध्यापक चौधरी जिन्होंने आजीवन शतशः पुत्रों के पिता का स्वाभिमान रखते तथा सभी प्रकार स्वस्थ रहते हुए सुखपूर्वक अपनी जीवन-यात्रा समाप्त की। यहाँ हम उनके प्रतिरूप उनके योग्य पुत्र अध्यापक डाक्टर चौधरी के प्रति इस अवसर पर अपनी समवेदना प्रकट करते हैं।

—

दीर्घजीवियों का एक गाँव

'नवशक्ति' में छपा है—

चीन के एक समाचार-पत्र में छपा है कि क्यूचू प्रान्त में टाटिंग ज़िले के अन्दर एक गाँव है, जहाँ के अधिकतर निवासी १०० वर्ष से अधिक अवस्था के हैं। उस गाँव की आबादी १०० कुटुम्बों से कम की ही है। इस वक्त जितने आदमी वहाँ ज़िन्दा हैं, थोड़े-से लोगों को छोड़ कर प्रायः सभी की उम्र १०० वर्ष के लगभग है। १०० वर्ष से ज़्यादा उम्र के लोगों की संख्या बहुत बड़ी है। एक आदमी की उम्र १८० वर्ष है। इस समय भी उस आदमी में पूरी पूरी ताक़त है। वह अपनी जीविका के लिए लकड़ी के गट्ठे सिर पर लेकर बेचने जाया करता है। १६० वर्ष से वह नियमपूर्वक सूर्य डूबते ही सो जाया करता है और सुबह सूर्य के उदय होने के बाद ही जागता है। उसको नींद ख़ूब आती है। उसका कहना है कि उसके दीर्घजीवी होने का ख़ास कारण यही है कि वह ख़ूब सोया करता है। चीन में जब मिंग-वंश का राज्य था तब कुछ लोग आकर यहाँ आबाद हुए थे। आज के निवासी उन्हीं की संतान हैं। वर्षों से ये लोग अपना अलग उपनिवेश-सा बनाकर रहते आये हैं। बाहर के लोगों से ये बहुत कम मिलते-जुलते हैं। अपनी जीविका के लिए अधिक लोग खेती करते हैं। यहाँ की आबहवा न अधिक गरम है और न अधिक सर्द। टेम्परेचर कभी ६० फ़ारेनहाइट से ऊँचा नहीं जाता और न ४० से कभी नीचे ही जाता है।

ब्रिटेन और भारत की व्यापारिक स्थिति में सुधार

सरकारी व्यापार-विभाग की ओर से इण्डियन ट्रेड कमिश्नर ने ३१ मार्च १९३६ को समाप्त होनेवाले वर्ष की आर्थिक उन्नति के सम्बन्ध में जाँच करके एक रिपोर्ट प्रकाशित की है। उससे प्रकट होता है कि आज-कल की अवस्थाओं का ध्यान में रखते हुए सभी देशों ने अपने-अपने देश के आन्तरिक व्यापारों को केन्द्रित और व्यवस्थित करना ही उचित समझा है। इसलिए साल भर में जो प्रगति हुई है उससे अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों की अपेक्षा देशों की आन्तरिक स्थिति में अधिक सुधार हुआ है। भारत-सम्बन्धी कुछ बातें इस प्रकार हैं—

लंकाशायर भारतीय रुई के उत्पादकों को उत्साहित कर रहा है। इस वर्ष लंकाशायर ने भारत की लम्बे रेशे की की रुई केवल २ प्रतिशत कम ली है, किन्तु छोटे रेशे की रुई १०,१८,००० मन ली है जब कि पिछले वर्ष केवल ८,५५,००० मन और उससे पिछले वर्ष केवल ५६,८,०० मन ही ली थी।

रबड़ की उत्पत्ति में इस वर्ष १,००,००० टन की कमी हुई है। भारत से इस वर्ष गत वर्ष की अपेक्षा बहुत कम रबड़ ब्रिटेन गई है।

इस वर्ष भारत से ३० करोड़ के सन का निर्यात हुआ जब कि गत वर्षों में ३२ करोड़ व्यय होता था। किन्तु फिर भी यह स्थिति सुरक्षित नहीं समझी जा सकती। सभी देश आत्मनिर्भर होना चाहते हैं, अतः वे अब सन के स्थान पर कई अन्य प्रकार के रेशों का उपयोग कर रहे हैं। इसके सिवा वृक्षों की छालों को भी इस काम में लाया जाना शुरू हो गया है, अतः इस व्यवसाय की स्थिति बहुत ही ख़तरनाक हो रही है।

चाय का आयात तथा निर्यात करनेवाले देशों में एक समझौता हो गया है, जिससे चाय का व्यवसाय व्यवस्थित हो गया है। गत वर्ष भारत से १,८१५ लाख रुपये की चाय ब्रिटेन गई थी। किन्तु इस वर्ष १,७६८ लाख रुपये की ही गई। भारत में चाय की खपत को और बढ़ाने के लिए यत्न जारी है।

इस साल चावल की उत्पत्ति बहुत अधिक बढ़ गई। १९३३ में ६,४४,००० और १९३४ में ८०, ८,००० हंडरवेट चावल भारत से ब्रिटेन गया था जब कि १९३४ में ८,९६,००० हंडरवेट चावल इँग्लैंड भेजा गया है।

भारत के तम्बाकू का निर्यात भी ३४ लाख रुपये से बढ़कर ४४ लाख तक पहुँच गया है। और सिगरेट के कारख़ानों में इस तम्बाकू का प्रयोग शुरू किया जानेवाला है। इससे भारत को तम्बाकू-द्वारा और अधिक लाभ होने की आशा है।

जर्मनी और फ़्रांस के साथ हमारा भारत का और खालों का व्यापार अच्छा रहा क्योंकि जर्मनी ने हमारे चमड़े पर रोक-टोक जारी की है अतः जर्मनी से हमारा चमड़े का व्यापार उतना अच्छा न हो सका।

काफ़ी की खपत बढ़ाने के लिए निरन्तर यत्न कर

रहे हैं। काफ़ी पर निर्यात कर-द्वारा जो रक़म प्राप्त हुई है वह एक कमिटी के सुपुर्द कर दी गई है। यह कमिटी इस रक़म को काफ़ी के व्यापार को उन्नत करने के लिए ख़र्च करेगी।

रिपोर्ट में लकड़ी के सम्बन्ध में भी एक अध्याय है, जिससे मालूम होता है इस वर्ष भारत ने इँग्लैंड को ३९,००० टन लकड़ी का निर्यात किया है जब कि १९३४ में ३०,५०० टन लकड़ी का निर्यात हुआ था। लकड़ी के निर्यात में जो वृद्धि हुई है उसका कारण सागौन की उत्पत्ति की वृद्धि है।

ग्राम-सुधार का महत्त्व

ग्राम-सुधार इस समय इसलिए महत्त्व को प्राप्त हो गया है कि देश की सरकार ने स्वयं उस ओर ध्यान ही नहीं दिया है, किन्तु व्यावहारिक रूप से ग्राम-सुधार का कार्य कर भी रही है। परन्तु ग्रामीणों पर ऊपर से सुधार की भावना लाद देना एक बात है और स्वयं उनमें सुधार की भावना का पैदा होना दूसरी बात है। और जब तक यह दूसरी बात उनमें नहीं होती, जब तक उनमें यह भाव नहीं उठता कि वे अवनति की चरम सीमा पर जा पहुँचे हैं और अब समय आया है कि वे सँभल जायँ तब तक ग्राम-सुधार के सारे प्रयत्न विफल होंगे। उनमें आत्म-सम्मान का भाव, अपनी कठिनाइयों को हल करने को स्वयं प्रवृत्त होने की भावना तथा उनके सम्बन्ध में स्वेच्छा से विचार करना नहीं आता तब तक सुधार-सम्बन्धी प्रयत्न कैसे सफल हो सकेंगे। और इस स्थिति को लाने के लिए इस बात की आवश्यकता है कि सबसे पहले ग्रामीणों की निरक्षरता दूर की जाय। क्योंकि सारी बुराई की जड़ यही एक बात है। अपढ़ और अशिक्षित आदमी सुधार-सम्बन्धी योजनाओं का क्या, उनकी साधारण बातों तक का महत्त्व नहीं आँक सकता है।

शकर के कारख़ाने

श्री वेंकटेश्वर लिखता है—

इन दिनों बहस यह छिड़ी हुई है कि शकर के स्वदेशी कारख़ानों को संरक्षण मिलना चाहिए या नहीं। ५ वर्ष से स्वदेशी शकर को सरकार संरक्षण दे रही है। ३१ मार्च सन् १९३८ को संरक्षण की वर्तमान अवधि समाप्त हो जायगी। शकर के कारख़ानेवाले चाहते हैं कि संरक्षण की अवधि ८ वर्ष के लिए और बढ़ा दी जाय।

भारत में विदेशों से कुल मिलाकर कोई १५ करोड़ रुपये की शकर आया करती थी। पर अब क़रीब क़रीब वह आनी बन्द-सी हो गई है, क्योंकि वह भारतीय शकर के सामने नहीं टिक रही है। थोड़ी सहायता और मिली रहे तो भारतीय कारख़ाने स्वदेश के लिए ही शकर तैयार करके न रह जायँगे, वरन विदेशों को भी काफ़ी शकर भेजने लगेंगे। प्रतिवर्ष भारत में कोई १,५०,००,००० टन शकर ख़र्च होती है। और इतनी शकर हमारे स्वदेशी कारख़ाने तैयार कर सकते हैं।

भारत में शक्कर की तैयारी के आँकड़े नीचे दिये जाते हैं—

साल	टन
१९३१-३२	४,७८,११९
१९३२-३३	६,४५,२८३
१९३३-३४	७,१५,०५९
१९३४-३५	७,५७,२१८
१९३५-३६	१०,५०,०००
१९३६-३७	अनुमानतः ११,२५,०००

इस उद्योग में कितने मज़दूरों को और बेकार नौजवानों को प्रश्रय मिल रहा है, इसका सहज में ही अनुमान नहीं हो सकता।

शक्कर के कारख़ानों की बदौलत गन्ने की कृषि का भी विस्तार हुआ है, और इस तरह इससे किसान लाभ उठा रहे हैं। अब वे पहले से अच्छे दामों पर अपना माल बेचते हैं। नीचे की संख्यायें बताती हैं कि गन्ने की खेती किस गति से विस्तार पा रही है—

सन्	एकड़ भूमि
३१-३२	३०,७६,०००
३२-३३	३४,३५,०००
३३-३४	३४,३३,०००
३४-३५	३६,०२,०००
३५-३६	३६,८१,०००
३६-३७	४२,३२,०००

२,००० विज्ञानविद् ग्रेजुएट, १०,००० दूसरे प्रकार के

शिक्षित व्यक्ति और २ लाख मज़दूर इन शक्कर के कारख़ानों में लगे हुए हैं।

ऐसे राष्ट्रोपयोगी व्यवसाय को संरक्षण देते रहना परमावश्यक है।

संसार की विभिन्न-जातियाँ और उनकी संस्कृति

'मिथिला-मिहिर' लिखता है—

समस्त भू-मण्डल में प्रायः दो अरब मनुष्य बसते हैं। इनमें आर्य-वंश, द्राविड़-वंश, मंगोल-वंश, सेमेटिक और हेमेटिक, इथियोपियन, अमेरिका के मूलनिवासी रेड इण्डियन तथा आस्ट्रेलिया और सिंहल द्वीप के आदि-निवासियों का समावेश होता है। पृथ्वी के इन कतिपय प्रधान मानव गोत्रों में से द्राविड़-वंश आज-कल प्रायः आर्य-वंश में मिल-सा गया है। ब्रह्मदेश, चीन, जापान, पूर्व-रूस, कासगार, मंगोलिया, तिब्बत, स्याम और कम्बोडिया इन देशों में मंगोल-वंश का निवास है। इनकी संख्या अन्दाज़ से ६५ करोड़ है। फिनिशिया, सीरिया, अरबिस्तान, यहूदी-भूमि पैलेस्टाईन और उत्तर-अफ़्रीका का किनारा, इन प्रदेशों में सेमेटिक-हेमेटिक वंशवालों का वास है और इनकी संख्या प्रायः १५ करोड़ है। सहारा का रेगिस्तान अफ़्रीका के पूर्वीय और पश्चिमीय किनारे तथा दक्षिणी हिस्से में इथियोपियन-वंश के लोग रहते हैं। इनकी संख्या क़रीब १२ करोड़ होगी। अमेरिका के रेड-इण्डियन मुश्किल से १ करोड़ होंगे। अन्य सामुद्रिक टापुओं की आदम बर्बर जातियों की संख्या अन्दाज़ से ४ करोड़ होगी। इस प्रकार पृथ्वी पर अनार्य-वंशजों की संख्या ९७ करोड़ और आर्य-वंशजों की ९६ करोड़ है। मतलब यह कि अन्दाज़ से आधा संसार आर्य-वंशवालों से बसा हुआ है और आधे में अनार्य हैं।

आर्यों की प्राचीन संस्कृति के वेदों, ब्राह्मणों, आरण्यकों, गृह्यसूत्रों और उपनिषदों का उत्तराधिकार तो भारत की २३ करोड़ आर्य-जनता को ही मिला है। उपर्युक्त ९७ करोड़ अनार्य-वंशजों में तिब्बत, चीन, जापान, मंगोलिया, ब्रह्मदेश, स्याम, कम्बोडिया, जावा, सुमात्रा और पूर्वी रूस-वासी आदि के ६५ करोड़ मंगोल-वंश के लोग बुद्ध भगवान्-द्वारा प्रचारित आर्य-छाया में हैं। अफ़्रीका-वासी इथियोपियन-वंश तथा उसके उत्तर-पूर्व और दक्षिण के निवासी योरपीय (फ़्रांस, जर्मन, अँगरेज़ और रोमन आदि) आर्य-जातियों की सांस्कृतिक छाया में हैं। इस तरह क़रीब ८० करोड़ अनार्य-वंश के लोग भी वर्तमान में आर्य-संस्कृति की छाया में आ चुके हैं। अतः समस्त भू-मण्डल में सिर्फ़ बीस करोड़ अनार्यों को छोड़कर बाक़ी सब आर्य संस्कृति के मानव रहते हैं।

देवपुरस्कार की जीत

इस वर्ष दो हज़ार रुपये का 'देवपुरस्कार' ब्रजभाषा की रचना पर दिया गया है और वह मिला है पंडित रामनाथ 'जोतिसी' को उनके 'रामचन्द्रोदय-काव्य' पर। जोतिसी जी की इस सफलता पर अनेक बधाइयाँ। उन्होंने अपने इस काव्य में अपने सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है—

रायबरेली प्रान्त, निकट बछराँवाँ कौ पुर;
'विद्याभूषन' रामनाथ कवि, पुर भैरवपुर।
कान्यकुब्ज कुल सुकुल, तात विंध्याप्रसाद बुध;
कल्यानी पतिदेव, जननि जनि मार्ग चौथि सुध।
महि गुन नवेंदु बैक्रमि जनमि, जन्म दिवस वय ब्रह्म सर;
भो अवधपुरी में 'जोतिसी', रचित राम-जस पूर्नतर।
रायबरेली प्रांत, राज्य रहवाँ गुन-मंडित;
भए भूप रघुबीरबकस, कल कीर्ति अखंडित।
रघुनन्दन झा शास्त्रि, तहाँ परधानाध्यापक;
तिनकी कृपा-कटाक्ष, 'जोतिसी' भे बहु व्यापक।
बिज्ञान-ब्याकरन-न्याय-नय, ज्यौतिष-काव्य-कलाप प[र]
पुनि चन्दापुर-नृप सँग रहे, द्वादसाब्द मुद मान मति;
अवध-नरेस सुरेस-सरिस परतापनरायन;
जग जाहिर जस जासु, पुहुमि पति पूजित पाँयन।
जगदम्बा पटरानि, तासु नृप आसन राजै;
जगदंबिकाप्रताप, पुत्र ज्यहि अंक बिराजै।
तिहि राज ज्यौतिषी, राजकवि, अपर पुस्तकाध्यक्ष
लहि अवधपुरी रहि 'जोतिसी', अब निरखत सियराम

...lished by K. Mittra, at The Indian Press, Ltd., Allahabad.

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल श्रीनाथसिंह

मई १९३७ } भाग ३८, खंड १ संख्या ५, पूर्ण संख्या ४४९ { वैशाख १९९४

भविष्य

लेखक, ठाकुर गोपालशरणसिंह

जीवन का संघर्ष जगत् से,
बढ़ता ही जाता है।
निठुर सत्य का रङ्ग चित्त पर,
चढ़ता ही जाता है।
अनायास ही अभिलाषायें,
मिटती हैं बेचारी।
आशा भी करती रहती है,
जाने की तैयारी।

निज अतीत का दृश्य चित्त पर,
अङ्कित ही रहता है।
हृदय न जानें क्यों सदैव ही,
शङ्कित ही रहता है।
अन्धकारमय ही भविष्य का,
चित्र नजर आता है।
धीरे धीरे भाग्य-विभाकर,
अस्त हुआ जाता है॥

हेगा ही। उसे कम करने का प्रयत्न अवश्य करना चाहिए, परन्तु वह रहेगा अवश्य। अतः साहित्यिक भाषा में उर्दू और हिन्दी के प्रकार में भेद रहेगा। थोड़े दिन हुए लखनऊ में होनेवाले 'हिन्दुस्तानी-एकेडेमी' के पाँचवें 'साहित्यिक-सम्मेलन' में बोलते हुए कानपुर के मौलवी अब्दुल्ला साहब ने कहा है कि 'हम इस बात को भुला नहीं ते कि मामूली बोलचाल की भाषा साहित्य-विज्ञान दि सम्बन्धी विचार व्यक्त करने की भाषा से भिन्न होती। इसलिए बोलचाल की भाषा को अधिक सरल ने का तो प्रयत्न किया जा सकता है, पर वैज्ञानिक तथा त्यिक भाषा के सम्बन्ध में हिन्दी-उर्दू में बहुत भेद गा। भाषा का यह भेद तो तब तक रहेगा ही जब तक मान भारतीय भाषा और संस्कृति को अपना न समझेंगे।'

यदि भारतीय साहित्य-परिषद् की ओर से एक ऐसे श का निर्माण किया जाय, जिसमें सर्वनाम, अव्यय नम से समस्त प्रान्तीय भाषाओं में एक ही अर्थ में तोनेवाले शब्दों का संग्रह रहे तो सुगमता से दों के शब्दों का निर्णय हो सकता है। जो शब्द प्रर में एक अर्थ में अधिक प्रयुक्त होता है वही ११ का शब्द होगा। मेरा विचार है कि तब आज आपेक्षा अधिक संस्कृत-शब्द राष्ट्र-भाषा के अंग पाला आदि प्रान्तीय भाषाओं में संस्कृत-शब्दों इसता है।

त्रकांग्रेस ने 'हिन्दी' को राष्ट्र-भाषा का रूप दिया जानबूझकर उसके अधिवेशनों में अधिक न फ़ारसी-शब्दों का ही प्रयोग करते हैं, जिसे लोग नहीं समझ सकते। केवल हिन्दू ही नहीं, मुसलमान भी उसे नहीं समझ पाते। यह ही नहीं, स्वयं 'हिन्दी याने हिन्दोस्तानी' के ा साहब ही लिखते हैं—

"जो भाषण हिन्दी में होते हैं उनमें फ़ारसी शब्दों की भरमार होती है कि देहात से आनेवाले धियों को अँगरेज़ी और हिन्दी दोनों भाषायें दुर्बोध प्रतीत होती हैं।"

यदि सरलता और सुगमता की दृष्टि से ही 'हिन्दी याने हिन्दोस्तानी' शब्द का प्रयोग किया जाता है तो इसकी भी कोई आवश्यकता नहीं। क्योंकि हिन्दी की जो परिभाषा की जाती है उसका भी अर्थ य ही है। अर्थात् जिसे उत्तर-भारत की जनता आसानी से सम चुके समझती है। हाँ, यदि काका साहब का 'हिन्दी याने हिन्दो अपने इ स्तानी' से अर्थ यह हो कि इन दोनों शब्दों का अर्थ एक है, क्योंकि 'हिन्दी' और 'हिन्दुस्तानी' शब्दों की जो व्याख्या की जाती है उसमें कोई महान् अन्तर नहीं तो इसमें सं हमें कोई विशेष आपत्ति नहीं। सम्भवतः परिषद् के उद्देश में न हो। लेख भआये हुए 'हिन्दी याने हिन्दोस्तानी' शब्द का यही अर्थ होगा। काका साहब के भाषण में निम्न वाक्यों से यही ध्वनित होता इसी को है—

"राष्ट्रीय हिन्दी में समस्त भाषाओं के शब्दों को कुछ स्थ 'हिन्दी' मिलेगा ही। हम किसी का बहिष्कार नहीं चाहते विशन राष्ट्रीय शब्द किसी भी भाषा या बोली के हों, अधिकांश लोग जिन्हें समझ सकें वे सब शब्द राष्ट्रीय हैं।' करोड़ों भारतवासी जिस भाषा को आसानी से समझ सकें ऐसी सुलभ सर्वसाधारण और स्वदेशी भाषा में हम बोलेंगे।"

हमारा तो विश्वास है कि बोलचाल की भाषा और साहित्यिक भाषा में अन्तर आवश्यक है, हेय भी नहीं। इसमें कमी लाने का प्रयत्न करना चाहिए। इस समय तो 'हिन्दी-हिन्दुस्तानी' दोनों के पक्षपातियों को विदेशी भाषा से युद्ध करना है, अतः इस समय इस झगड़े में पड़ने से लाभ नहीं, हानि ही है। इस समय तो सबको देश-भाषा में सभी हिन्दुस्तानियों को शिक्षित करने का सतत प्रयत्न करना चाहिए। मुझे विश्वास है कि जब हिन्दुस्तान के मुसलमान साम्प्रदायिकता से उठकर विचार करेंगे तब वे देखेंगे कि हिन्दी ही राष्ट्र-भाषा होने के योग्य है।

यदि 'हिन्दी याने हिन्दुस्तानी' शब्द हिन्दी-हिन्दुस्तानी के झगड़े को कम करने में समर्थ हो जाय तो देश का कितना उपकार हो। परन्तु भय है कि यह इस अर्थ में तीसरा पर्याय न बने। आशा है, यह तीसरा शब्द विरोध को शान्त करके स्वयं भी उपरत हो जायगा।

ईर्ष्या और प्रतिशोध की आग में जलने-वाले एक पहाड़ी युवक की कहानी

बदरी

लेखक, श्रीयुत उपेन्द्रनाथ 'अश्क', बी० ए०, एल-एल० बी०

जिस प्रकार वर्षा का पहला छींटा पड़ते ही पहाड़ी नालों में जीवन जाग उठता है और वे उत्फुल्ल होकर बह निकलते हैं, उसी भाँति शिमला का मौसम शुरू होते ही पहाड़ी पगडंडियों में जान पड़ जाती है। पहाड़ी लोग पुरानी पगडंडियों को उनका अस्तित्व वापस देते, नई लीकें निकालते, शिमला की आबादी बढ़ाने लगते हैं। इन दिनों शिमले में यौवन आ जाता है; शिशिर के हिम से सिकुड़ा हुआ नगर अप्रैल-मई की जीवनदायिनी धूप से खिल उठता है। परन्तु जहाँ इस मौसम में शिमले में उल्लास खेलता है, वहाँ पहाड़ी देहात में उदासी छा जाती है। पहाड़ के युवक रोटी कमाने की धुन में शिमले को चल पड़ते हैं, पिता-पुत्र, भाई-बहन, प्रियतम-प्रेयसी एक दूसरे से बिछुड़ जाते हैं। देहात की रह इनके साथ ही चली जाती है, शिमले का जीवन उनकी मृत्यु बन जाता है।

अप्रैल का शुरू था। मैदान की गर्मियों से बचने के लिए शिमले की ठंडी और अनुरंजनकारी फ़िज़ा में पनाह लेनेवाले सरकारी दफ़्तरों का आगमन आरम्भ हो गया था। चारों ओर जीवन के आसार दिखाई देने लगे थे, मानो मृतक में फिर से जान पड़ गई हो।

शोली के ग़रीब पहाड़ी भी अपने सम्बन्धियों से जुदा होकर आगामी शीत के लिए कुछ धनोपार्जन करने जा रहे थे। लेकिन अकेले शिमला में कुटुम्ब कहाँ साथ जा सकता है? वहाँ का किराया ही इस बात की इजाज़त नहीं देता। पुरुष तो ख़ैर कहीं पड़कर ही काट लेंगे। पर स्त्रियाँ और बच्चे! उनके लिए तो घर चाहिए। इसी लिए भारी दिलों के साथ जुदा हो रहे थे। बाप अपने बच्चों से हँसकर प्यार करता था, पर उसकी आँखों में आँसू छलक रहे थे; पति पत्नी से मुसकराता हुआ विदा ले रहा था, पर सीने पर पत्थर रखे हुए, और स्त्रियाँ रोती थीं, तो भी प्रसन्न थीं कि उनके पुरुष उनके लिए ही सुख का सामान जुटाने जा रहे हैं। पहाड़ी युवतियों की आँखों से आँसू प्रवाहित थे, पर दिल ख़ुश थे कि यह कुछ दिनों की जुदाई स्थायी प्रसन्नता साथ लायेगी। उनके प्रेमी इतना धन जमा कर लेंगे कि उनके मा-बाप से उन्हें माँग सकें। बच्चों को भी इसी तरह का कुछ धैर्य था। मचलना चाहते थे, रोने के लिए उतावले हो रहे थे, पर ओंठों को सिये हुए चुपके से, क्योंकि यदि वे रोयेंगे तो उनके पिता उनके लिए खिलौने न लायेंगे। जो भी रोयेगा, मिठाई और खिलौनों से वंचित रह जायगा।

शोली ख़ाली हो रहा था। कल बिरजू गया, आज पिरथू गया। सब जा रहे थे। केवल वे ही घर पर थे जिनके शरीर में मेहनत-मज़दूरी करने की शक्ति न रह गई थी या वे जिनकी घर पर आवश्यकता थी। नहीं तो सब पहले पहले अच्छी जगह प्राप्त करने के विचार से भागे जा रहे थे। केवल बदरी अभी तक पहाड़ी पगडण्डियों पर ही भटकता दिखाई देता था। या नहीं गया था कांशी। वह भी अभी तक गाँव में ही मारा मारा फिर रहा था।

अपने रिश्तेदारों की नज़रों में वे दोनों बेकार घूम रहे थे। परंतु वे बेकार न थे, मुहब्बत के मैदान में घोड़े दौड़ा रहे थे। गत वर्ष बदरी बाज़ी ले गया था और अब की कांशी। बदरी घायल साँप की भाँति फुंकार रहा था और कांशी विजयी योद्धा की भाँति जामे में फूला न समाता था। एक की दुनिया स्वर्ग थी, दूसरे की नरक!

(२)

ऊँची ऊँची पहाड़ियों के दामन में नाला शोर करता हुआ बह रहा था, मानो अपने देवताओं के चरण धोकर जन्म सफल कर रहा हो। इधर-उधर फैली हुई झोंपड़ियाँ

मुहब्बत के अखाड़े में वह बाज़ी जीत गया था और अ... प्रतिद्वन्द्वी को उसने चारों ख़ाने चित गिरा दिया था।

कल जब उसे मालूम हुआ था, कांशी प्रातः शिमले को चल पड़ेगी तब उसने अपनी चिरसंचित प्रतिज्ञा को पूरा करने का फ़ैसला कर लिया था, जो उसने एक दिन पहले इसी पहाड़ी-शिखर पर की थी। उस दिन वह यहाँ मरने आया था। सुर्जू की अवहेलना ने उसे इस हद तक निराश कर दिया था कि अपना जीवन उसे सर्वथा शून्य दिखाई देता था—नीरस और विरस! और वह आया इस शिखर से गिर कर अपने इस व्यर्थ की साँसों के कारागार को फ़ना करने, इस शुष्क दुःखप्रद जीवन को नष्ट करने! लेकिन अचानक उसके कानों में उसके पूर्वजों के कारनामे गूँज उठे थे। आख़िर क्या वह उन्हीं बलवान् पहाड़ियों की सन्तान न था जो मरना न जानते थे, मारना जानते थे, जिन्होंने बीसियों मुसाफ़िरों का सर्वस्व लूट कर उन्हें खड्ड की गहराइयों में सदैव के लिए गिरा दिया था। इस घाटी में एक बड़ा भारी जल-प्रपात था। उसे देखने के लिए दर्शक दूर दूर से आया करते थे। उसके सामने आया कि किस प्रकार उसके पूर्वजों में से कोई डाकू किसी मुसाफ़िर के पथ-प्रदर्शक की हैसियत से जल-प्रपात दिखाने लाया और किस प्रकार उसने उसकी पीठ में छुरा भोंक कर लूट लिया और उसकी मृतक देह को गहरे खड्ड में गिरा दिया। इस दृश्य के सामने आते ही उसका हाथ कमर पर गया। लेकिन वहाँ ख़ंजर नहीं था। अँगरेज़ों ने इन भयानक डाकुओं को कायर और डरपोक पहाड़िये बना दिया था। इन ख़ूँख़ार भेड़ियों को निरीह भेड़ों में परिणत कर दिया था। परन्तु उस दिन कहीं से बदरी में उसके पूर्वजों की निडर और उद्दंड रूह व्याप गई थी और उस दिन वह फिर भेड़ से भेड़िया बन गया था और उसने प्रतिज्ञा की थी कि वह मरने के बदले मारेगा, स्वयं खड्ड में गिरने के बदले अपने रक़ीब को वहाँ गिराकर अपनी प्रतिहिंसा की प्यास बुझायेगा। उस दिन वह जहाँ मरने आया था, वहाँ से मारने का प्रण करके लौटा था।

रात भर वह सो न सका था। तड़के ही कांशी चल पड़ेगी, इस ख़याल से वह निशीथ-नीरवता में ही उठकर भरता हुआ यहाँ आ पहुँचा था। रात तो भला चाँद का कुछ क्षीण-सा प्रकाश भी था, परन्तु यदि घटाटोप अँधेरा भी होता तो वह इस शिखर पर पहुँच जाता। प्रतिशोध की आँखें उसे अवश्य ही मार्ग सुझा देतीं।

आज वह अपने उद्देश में सफल हो गया था, आज उसका प्रण पूरा हुआ था। वह वापस शोली को मुड़ा ताकि वह सुर्जू के दिल से कांशी की याद को निकाल कर फिर से अपनी मुहब्बत के बीज बोये। परन्तु कुछ दूर जाकर वह फिर शिमला को पलटा। उसने सोचा कांशी की मृत्यु का समाचार सुनकर सुर्जू उदास हो गई होगी और अपने इस दुःख में उसकी ओर आँख उठाकर भी न देखेगी। वह शिमला जायगा। समय को सुर्जू के घायल दिल पर मरहम रखने की इजाज़त देगा और इस बीच में इतना रुपया इकट्ठा कर लेगा कि वह सुर्जू पर उपहारों की वर्षा कर दे और उसे अपनी दौलत और मुहब्बत में इस भाँति जकड़ ले कि यदि कांशी फिर जीवित होकर भी आये तो उसे उससे न छीन सके।

यह सोचते-सोचते उसकी पशुता गम्भीरता में बदल गई और वह चुपचाप शिमले की ओर चल पड़ा।

(४)

अप्रैल बीता, मई, जून, जुलाई, अगस्त बीते और सितम्बर बीतने को आया। शिमला का मौसम ख़त्म हो गया। सरकारी दफ़्तर भी देहली और लाहौर जाने लगे। मैदान की गर्मियों से तंग आकर शिमला की पनाह लेने वाले शिमले की सर्दी के डर से फिर वापस मैदानों की ओर चले गये। बदरी ने इस अरसे में बड़े परिश्रम से काम लिया। वह कुछ देर बाद शिमला पहुँचा था... उस समय किसी स्थायी जगह का मिलना मुश्किल था, लेकिन उसने साहस नहीं छोड़ा। जहाँ भी कहीं म... की आवश्यकता हुई वह वहाँ पहुँच गया और फिर दयानतदारी से उसने अपना काम किया कि... आशा से भी अधिक मज़दूरी मिली। कभी वह ... ड्राइवर बना, कभी कमिटी का मज़दूर; कभी उसने स... विभाग में काम किया तो कभी बिजली-कम्पनी में। जब कोई काम न मिला तब स्टेशन से बाहर जाकर ... हो गया और आने-जानेवालों का सामान उठाकर पैसे ले आया। उसके अंग ईसपात हो गये। ...ने इतना बोझ उठाया कि कश्मीर के हातो भी दंग रह गये। थोड़ी-बहुत मात्रा में उसने व्यापार भी किया। ...बाज़ार से आम मोल लेकर नफ़े पर रुलदू भट्टा ...की और भराड़ी में बेच आया। इस काम में उसे इतना लाभ हुआ कि जब तक आमों का बाहुल्य रहा वह यही काम करता रहा। जीवन में जिस स्फूर्ति की आवश्यकता होती है वह उसके पास थी और वह दिन-रात काम करके भी न थकता था। उसने ख़र्च बड़ी सावधानी से किया और अब उसके पास लगभग तीन सौ रुपये मौजूद थे। इस रक़म को देखकर उसका उत्साह दुगुना हो जाता था। वह प्रतिदिन इस बढ़ती हुई संख्या को देखता था और प्रतिदिन उसकी आशालता पल्लवित होती जाती थी। कभी जब रात को थक-हार कर वह अपने डेरे में धरती पर लेटता तब उसके स्वप्नों की दुनिया सुनहरी हो जाती। इन स्वप्नों में वह सुर्जू से और सुर्जू उससे प्रेम करती। वह उसकी मुहब्बत को जीत लेता, उसके दिल में कांशी की याद को भुला देता और अपने उपहारों तथा उपकारों से उसे राज़ी कर लेता। और फिर कहीं से नींद की परी आकर उ... ई पलकों को सुला देती।

सितम्बर बीतने पर बदरी ... होता है कि ... इस हद तक बढ़ी कि उसके लिए शिमले के अक्टोबर का महीना काटना अत्यन्त मुश्किल हो गया। अक्टोबर के पहले सप्ताह ... ही उसने अपना जोड़ा-जत्था सँभाला, सुर्जू के लिए ...भिन्न उपहार ख़रीदे और उन नये वस्त्रों से सजकर जो ... सिलवाये थे, वह एक दिन शोली को चल पड़ा। ...ा का समय था। वह गाँव के समीप पहुँचा। ...के पास जाकर वह रुक गया। नाले के किनारों पर ...की गायें चर रही थीं। उसे यक़ीन था कि सुर्जू ... पत्थर पर बैठी पानी से अठखेलियाँ कर रही ... उसने देखा, तनिक दूर एक बड़ी झाड़ी के पीछे उसका दुपट्टा लहरा रहा है। निश्चय ही वह वहाँ बैठी हुई थी। उसका दिल धड़कने लगा। उसने पञ्जों के बल धीरे-धीरे चलना शुरू किया। परन्तु उससे चला न जाता था, उसके पैरों में कम्प पैदा हो रहा था। वह पीछे से जाकर उसकी आँखें बन्द कर लेगा। वह मचलेगी, तड़पेगी और वह हाथ छोड़कर उसके सामने शीशा, कंघी, रुमाल, इत्र की शीशी, बिजली का टॉर्च और दूसरे उपहारों का ढेर लगा देगा। उल्लास के मारे उसके पाँव न उठते थे। इस तरह चलता हुआ वह झाड़ी के समीप पहुँचा कि उसके कान में गाने की आवाज़ आई। वह ठिठक गया। उसका सब नशा हिरन हो गया, उसमें आगे बढ़ने की शक्ति ही न रही। यह तो कांशी की आवाज़ थी, यह तो वही गा रहा था। बदरी ने सुना, कांशी की पुरानी परिचित स्वर-लहरी धीरे-धीरे वायुमंडल में बिखर रही थी—

बदरी ने एक-एक शब्द ध्यान से सुना। कांशी गा रहा था। हाँ वही गा रहा था—अपना पुराना परिचित राग। बदरी के दिल की गहराइयों से दीर्घ निश्वास निकल गया। उसने उचक कर देखा। दोनों एक-दूसरे के आलिंगन में बद्ध थे।

सुर्जू बोली—"कांशी, यदि बदरी तुम्हें मिले तो तुम उससे क्या सलूक करो?"

"उसने मुझे पत्थर गिराकर मारने का प्रयास किया था, खड्ड में लुढ़कते समय मैंने उसे पहाड़ की चोटी पर क़हक़हा लगाते देखा था, परन्तु यदि तुम कहो, सुर्जू तो मैं उसे क्षमा कर दूँ।"

"कदापि नहीं"। सुर्जू ने कहा—"मेरा बस चले तो मैं उसे जीवित इस जल-प्रपात में फिंकवा दूँ।"

कांशी ने उसे अपनी भुजाओं में भींच लिया।

उस समय बदरी का सिर चकराया और वह मस्तक थामकर खोया हुआ-सा वहीं बैठ गया।
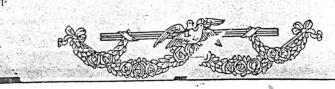
सिन्ध का लॉइड बॅरेज और रुई की खेती

लेखक, श्रीयुत मदनमोहन नानूराम जी व्यास

जनवरी १९३२ में 'लॉइड बॅरेज' का उद्घाटन किया गया था। तब से गत पाँच वर्षों में सिन्ध में रुई की खेती में उसके कारण कितनी प्रगति हुई है, इसी की प्रामाणिक समीक्षा इस लेख में की गई है।

भारत में रुई की खेती उतनी ही प्राचीन है, जितना कि इतिहास। पुराने ज़माने में यहाँ जितनी अच्छी रुई पैदा होती थी, उसका मुक़ाबला आज किसी भी देश की उत्तमोत्तम रुई भी नहीं कर सकती। जिस रुई से ढाके की प्रसिद्ध मलमल बनाई जाती थी, समय के प्रवाह के साथ साथ या तो वह नष्ट हो चुकी है या उसका ह्रास हो गया है। भारत में वर्तमान समय में जो रुई पैदा होती है उसके अधिकांश का रेशा ⅞ इंच से कम है। यहाँ इस दिशा में उन्नति करने के लिए सबसे पहले ईस्ट इण्डिया कंपनी ने सन् १८४० में प्रयत्न किया था।

'इंडियन-काटन-कमिटी' ने सन् १९१७-१९१९ की अपनी रिपोर्ट में लिखा था कि सिन्ध में उत्तम रुई की खेती की असफलता का एकमात्र कारण सिंचाई की असुविधा है। सिन्ध में लम्बे रेशेवाली रुई पैदा करने के सम्बन्ध में उसने स्पष्ट लिखा है—"यदि सिंचाई के लिए बारहों मास नियमित रूप से पर्याप्त जल प्राप्त होता रहे तो हमारा विश्वास है कि भारत का अन्य कोई भी प्रदेश लम्बे रेशेवाली रुई की सफलतापूर्वक खेती की जाने के लिए इतने अधिक और आशाप्रद सु-अवसर नहीं रखता।" आगे मालूम होगा कि सिन्ध में 'लॉइड बॅरेज' के खुल जाने से कमिटी के उपर्युक्त कथन का पूर्णतया समर्थन हो गया है।

उक्त कमिटी की विविध सूचनाओं के अनुसार मार्च १९२१ में 'इण्डियन सेन्ट्रल कॉटन कमिटी' की नियुक्ति की गई थी। सन् १९२३ में 'कॉटन सेस एक्ट' के अनुसार उसे स्थायी संस्था का रूप दे दिया गया और रुई की खेती के गई। पिछले वर्षों में इस कमिटी ने सिन्ध में अन्वेषण और बीज-गुणन-क्रियाओं के लिए प्रचुर धन दिया है।

'ब्रिटिश सिन्ध' का सम्पूर्ण क्षेत्रफल ५३,००० वर्ग मील है और १९३१ की मर्दुमशुमारी के अनुसार इस प्रान्त की जन-संख्या ९३,००,००० है, जिसमें ७३ प्रतिशत मुसलमान हैं।

सिन्ध-प्रान्त के उपविभाग—इस समय सिन्ध-प्रान्त बम्बई प्रान्त से अलग कर दिया गया है और वह आठ ज़िलों में विभक्त है—१ हैदराबाद, २ थरपारकर, ३ नवाबशाह, ये तीन ज़िले सिन्ध के बायें किनारे पर हैं और ये रुई की खेती के [illegible] पश्चिम में ४ लारकाना, ५ दादू ये दो ज़िले चावल की खेती के उपयुक्त हैं। सिन्ध का 'बॅरेज प्रदेश' इन पाँच ज़िलों को मिलाकर बनाया गया है, जिसकी सिंचाई बॅरेज से निकाली गई नहरों द्वारा होती है। ग़ैर-बॅरेज-प्रदेश में बाक़ी तीन ज़िले हैं—६ [illegible] ७ कराची, ८ उत्तर-सिन्ध सरहदी-ज़िला। इन ज़िलों की सिंचाई सिन्धु-नदी की वार्षिक बाढ़ों पर निर्भर है।

लॉइड बॅरेज और [illegible] ज़िलों का [illegible]—भारत के भूतपूर्व वाइसराय लार्ड विलिंग्डन ने [illegible] जनवरी १९३२ को 'लाइड बॅरेज' का उद्घाटन किया था। सक्खर सिंचाई के उद्देश्य से निर्माण किये गये बाँधों में यह बाँध दर्शनीय एवं महान् है। यह बाँध सक्कर के दर्रे पर सिन्धु नदी के आर-पार बाँधा गया है और इसके निर्माण में क़रीब २१ करोड़ रुपया ख़र्च हुआ है। बॅरेज में ६६ व्यास हैं। प्रत्येक व्यास ६० फ़ुट का है। जल-प्रवाह को मर्यादित रखने के लिए प्रत्येक व्यास में बिजली से खुलने और बन्द होनेवाले लोहे के दरवाज़े लगे हुए हैं। बाँध के नीचे भाग में आने-जाने का एक पुल भी है। 'ब्रिटिश सिन्ध' में [illegible] ३३,००० एकड़ भूमि बॅरेज की व्यवस्था हो जाने पर भली भाँति सींची जा सकेगी। बॅरेज बनने के पूर्व १८,५०,००० एकड़ की सिंचाई होती थी, जिसमें अब ३१,६३,००० की वृद्धि हुई है।

बॅरेज से जो कतिपय नहरें निकाली गई हैं तथा जो भू-भाग उनसे सींचे जाते हैं, नीचे के कोष्ठक से उनका परिचय प्राप्त होगा।

सिन्धु का बायाँ किनारा—

संख्या	नहर का नाम	लम्बाई	सींचा जानेवाला प्रदेश
*१	ईस्टर्न नारा कनाल	२२६ मील	थरपारकर-ज़िला
*२	रोहरी-कॅनाल	२९१ मील	नवाबशाह और कुछ अंशों में हैदराबाद ज़िला
३	ख़ैरपुर-फ़ीडर-ईस्ट	...	ख़ैरपुर-राज्य
४	ख़ैरपुर-फ़ीडर-ईस्ट	...	ख़ैरपुर-राज्य

सिन्धु का दाहना किनारा—

संख्या	नहर का नाम	लम्बाई	सींचा जानेवाला प्रदेश
*५	राइस-कनाल	८२ मील	मध्य-सिन्ध के चावल की खेती करनेवाले प्रदेश
६	दादू-कॅनाल	१३१ मील	दादू ज़िला
७	नाथ वेस्टर्न कनाल	३६ मील	लारकाना ज़िला

बॅरेज की बदौलत रुई की खेती का कैसा विकास हुआ है, अब इसका ब्योरा लीजिए।

बॅरेज के जनवरी १९३२ में खुल जाने के बाद सिंध में खेती का (विशेषकर रुई की खेती का) बहुत शीघ्र विकास हुआ है। बॅरेज-द्वारा बारहों मास के लिए आबपाशी का सुप्रबन्ध हो जाने से रुई की खेती के विस्तार में और उसकी पैदावार में बहुत अच्छी तरक़्क़ी हुई है जैसा कि निम्नलिखित अंकों से स्पष्ट होता है।

सन्		विस्तार (एकड़)	पैदावार (४०० रतल की प्रतिगाँठ)
१९२२-१९३२	दस वर्षों का वार्षिक औसत	३,२०,८८६	९५,६६० गाँठें
१९३२-१९३३	के वर्ष का ,, ,,	३,४२,८६०	१,१३,५८० ,,
१९३३-१९३४	,, ,, ,, ,, ,,	५,२०,९८६	१,६९ २१० ,,
१९३४-१९३५	,, ,, ,, ,, ,,	६,२२,७१०	२,५०,९६० ,,
१९३५-१९३६	,, ,, ,, ,, ,,	८,०४,१७०	३,२३,०२० ,,

विस्तार के अंकों से ज्ञात होता है कि १९३५-३६ में रुई की खेती का विस्तार बॅरेज के पूर्व के औसत से १५० प्रतिशत बढ़ गया है। पैदावार के भी अंक बतलाते हैं कि इस विस्तार के बढ़ने के साथ साथ प्रतिएकड़ से प्राप्त पैदावार में भी वृद्धि हुई है। बॅरेज-निर्माण के पूर्व १० वर्षों में औसत-रूप से १२० रतल रुई प्रतिएकड़ से प्राप्त होती थी, जो पिछली दो फ़सलों में १६० रतल तक प्राप्त होने लगी है। इस विकास के तीन कारण कहे जा सकते हैं—

(१) बारहों मास के लिए सिंचाई की समुचित व्यवस्था।

(२) सुधरे और अधिक रुई उत्पन्न करनेवाले पौधों की खेती का फैलाव।

(३) ज़मीन जोतने और तैयार करने के उत्तम साधनों का उपयोग।

सिंचाई का सुप्रबन्ध हो जाने से लम्बे रेशेवाली 'सिंध-अमेरिकन' रुई की खेती का बहुत विकास हुआ है। बॅरेज के पूर्व १० वर्षों में औसत रूप से २४,६४० एकड़ में इस रुई की खेती होती थी तथा १९३२-१९३६ के वर्षों में यह औसत १,९९,४१५ एकड़ था, पर पिछली फ़सल में प्रान्त के आधे भाग में अमेरिकन रुई की ही खेती की गई है।

सिन्ध में कितने प्रकार की रुई उत्पन्न की जाती है, इसका पता नीचे के अंकों से लगेगा—

सिन्ध-प्रान्त के बॅरेज-प्रदेश में तीन प्रकार की रुई की खेती होती है। १९३५-३६ की फ़सल में इनका विस्तार इस प्रकार था—

(अ) सिंध-देशी ४,२३,८०० ,,
(ब) सिंध-अमेरिकन [illegible]
(स) आयात की हुई 'इजिप्शियन' और 'सी-आइलेण्ड' जाति की २,५०० ,,

* सिन्ध में रुई की खेती का ९५ प्रतिशत भाग इन्हीं नहरों और इनकी विविध शाखाओं पर निर्भर है।

* यह नहर गर्मी के महीनों में बन्द रहती है।

सिन्ध-प्रान्त
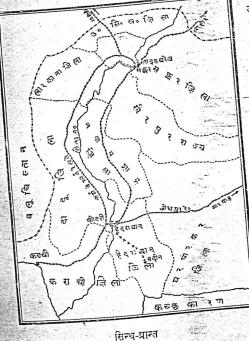
अब इन रुइयों का ब्योरा लीजिए—

(अ) सिन्ध-देशी—प्रान्त के कृषि-विभाग ने सिन्ध की असली देशी रुई की एक सुधरी जाति की 'सिन्ध एन० आर०' नाम की रुई तैयार की है और यह प्रान्त की स्टैंडर्ड देशी रुई बना दी गई है। यह रुई अधिक उपजती है, चमकीली, सफ़ेद और खुरखुरी होती है इससे इसकी प्रान्त में सबसे अधिक खेती होती है। इसका रेशा ¾ इञ्च से ½ इञ्च का होता है और इसकी जिनिंग प्रतिशत* ३८ है। इसकी उपज पुरानी देशी रुई से क़रीब १५-२० टका अधिक होती है और फ़सल भी जल्दी तैयार होती है। यह गया है। भिन्न रोगों से टक्कर लेने में सफल होती है और उक्त कमिटी के अन्तरों को भी सह लेती है। इस रुई

*१९२१ में 'इंडियन से... ास में से ज़िनिंग याने ओटाई की गई थी। सन् १९२३ ... २ मन बीज निकले तो उस

का स्वतन्त्र बाज़ार है और अपने खुरखुरेपन के कारण यह ऊन में मिलाने के लिए बहुत उपयुक्त होती है। १९३५-३६ की फ़सल में सिन्ध देशी रुई की फ़सल इस प्रकार थी—

	एकड़
(१) बायाँ किनारा	
नवाबशाह-ज़िला	१,९१,७००
हैदराबाद-ज़िला	१,१०,१००
थरपारकर-ज़िला	१,०७,६००
(२) दाहना किनारा	१४,४००
कुल	४,२३,८००

(ब) सिन्ध-अमेरिकन—यह रुई अमेरिका की 'अपलैंएड ज्यार्जियन' जाति की है। इसके बीज यहाँ पंजाब-प्रान्त से लाये गये थे। इसके प्रमुख उन्नत रेशे दो हैं—(१) 'सिन्ध-सुधार', (२) 'सिन्ध ४ एफ़'। 'पंजाब-अमेरिकन २८९ एफ़' से कृषि-विभाग-द्वारा 'सिन्ध-सुधार' रेशा निकाला गया था। इसके रेशों की लम्बाई १ से १1/16 इञ्च है और जिनिंग प्रतिशत ३० है। साधारणतया यह पैदा भी अधिक होती है और ऋतु-सम्बन्धी फेरफार सहने की और बीमारियों को रोकने की शक्ति भी इसमें काफ़ी होती है। इस कारण इसकी खेती दूसरी उपयोगी अमेरिकन जातियों की अपेक्षा अधिक होती है। इसके ढोंढ़ ठीक तरह से खुलते होने के कारण इकट्ठी की गई रुई स्वच्छ और पत्ती के टुकड़ों से मुक्त होती है। बीमारियों से बचाने तथा अधिक पैदावार के विचार से इसकी बोनी जल्दी (मार्च या अप्रेल में) की जाती है, किन्तु फ़सल कुछ देर से तैयार होती है।

'सिन्ध ४ एफ़' रुई 'पञ्जाब-अमेरिकन ४ एफ़' से निकाली गई है और यह भी एक उन्नत जाति की रुई है। यह रुई देर से बोई जाने के लिए विशेष रूप से उपयुक्त है और सिन्धु के दाहने किनारे पर इसकी उपज 'सिन्ध एन आर' की अपेक्षा ज़्यादा होने से इसकी खेती सफलता-पूर्वक की गई है। इसके रेशों की लम्बाई ⅞ से ... इञ्च है और जिनिंग प्रतिशत ३३ है। यह भी ऋतु-दोषों और बीमारियों से अपनी रक्षा कर सकती है। इसकी ... बहुत जल्दी तैयार होती है और यह बात बॅरेज-प्रदेश में काफ़ी महत्त्व रखती है। सन् १९३५-३६ की फ़सल में ... अमेरिकन रुई की फ़सल इस प्रकार थी—

	एकड़
(१) बायें किनारे	
नवाबशाह-ज़िला	३१,७००
हैदराबाद ,,	१,२२,१००
थरपारकर ,,	२,१५,१००
(२) दाहने किनारे	११,४००
कुल	३८०३०० एकड़

(स) आयात की हुई 'इजिप्शियन' और 'सी-आइलेंड' की जातियों की रुई—इन जातियों में से निम्नलिखित दो मुख्य हैं—१ सिन्ध बॉस III २ सिन्ध-सी आइलेंड। ये दोनों रुइयाँ क्रमशः मिस्रदेश और अमेरिका से लाई गई हैं। ये दोनों उत्तम श्रेणी की हैं तथा इनके रेशों की लम्बाई 1⅜ से 1¾ इंच है और जिनिंग प्रतिशत क़रीब ३० है। रुई की इन उन्नत जातियों की खेती का विकास १९३४ से ही आरम्भ हुआ है। १९३४ में १५० एकड़ में उनकी खेती हुई थी। १९३५ में उसका विस्तार २,५०० एकड़ तक हो गया था और यह धारणा है कि १९३६-३७ में क़रीब १५,००० एकड़ में उनकी खेती होगी।

'सिन्ध एन० आर०' और 'सिन्ध-अमेरिकन' से भी ये उत्कृष्ट हैं, अतएव ये विशेष ध्यान-पूर्वक और अच्छी भूमि में बोई जाती हैं। ये ऋतु-परिवर्तन कम सहन करती हैं और शुरू में बीमारियों और पाले का असर जल्दी होने से इनकी पैदावार अन्य अमेरिकन और देशी जातियों की अपेक्षा कम होती है। ये बहुत जल्दी अर्थात् मार्च में या अप्रेल के शुरू में बोई जाती हैं, किन्तु फ़सल देर से तैयार होती है। 'सिन्ध-सी-आइलेंड जाति' 'सिन्ध-बॉस III' से अधिक सहिष्णु है और इसकी खेती थरपारकर-ज़िले में ही होती है।

बॅरेज-प्रदेश में ऐसे कई तरह के कीड़े पाये जाते हैं ... के पौधों की शक्ति का शोषण कर फ़सल को काफ़ी नुक़सान पहुँचाते हैं। इन कीड़ों के विषय में अन्वेषण के लिए एक विभाग सकरन्द में खोला जानेवाला है। ... यदि कृषक-वर्ग खेती की व्यवस्था में सुधार और ... की जुताई अधिक ध्यानपूर्वक करे तो उसकी फ़सल ... और बीमारियों से सहज में बचाई जा सकती है।

जिनिंग तथा हाट-प्रणाली—लॉइड-बॅरेज के खुलने के पूर्व सिन्ध में जिनिंग-प्रेसिंग के ३७ कारख़ाने थे, जिनकी संख्या इस समय ६६ है। बम्बई प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा ने सन् १९२५ के 'जिनिंग-प्रेसिंग-फ़ेक्टरीज़ एक्ट' के लिए एक संशोधन पास किया है, जिसके द्वारा रुई में मिश्रण करने की कुचालों पर नियंत्रण रक्खा गया है। यह संशोधन १ सितम्बर १९३६ से सिन्ध में जारी कर दिया गया है।

सिन्ध-प्रान्त में रुई के क्रय-विक्रय के लिए व्यवस्थित बाज़ार यानी मण्डियाँ नहीं हैं। प्रायः समूची पैदावार गाँवों में ही बेच दी जाती है, जहाँ कृषक लोग कारख़ानेवालों और ख़रीदारों को अपना माल सीधा बेच देते हैं। इस तरह के व्यापार में तरह-तरह के बटाव और भिन्न-भिन्न तोल-मापों का उपयोग होने से अज्ञानतावश कृषकों को नुक़सान पहुँचता है। 'प्रान्तीय सिन्ध-कॉटन-कमिटी'-द्वारा व्यवस्थित बाज़ारों की स्थापना की जाने के लिए प्रयत्न किया जा रहा है और शायद 'सहयोगिनी विक्रय-संस्थायें' भी स्थापित हो जायँ।

भविष्य क्या होगा?—इसमें आश्चर्य नहीं कि कुछ ही वर्षों में सिन्ध-प्रांत १० लाख एकड़ में रुई की खेती करने लगेगा और क़रीब ५ लाख गाँठ की पैदावार होगी। साथ में यह बात भी निश्चित है कि भविष्य में सिन्ध में रुई की खेती अधिक व्यवस्थित रूप में की जायगी। इसी लिए वहाँ के कृषि-विभाग ने ⅞ से 1 1/16 इंच तक की लम्बाई के रेशोंवाली रुई की खेती के विकास पर अपना ध्यान केन्द्रित किया है, जिसके लिए प्रांत की भूमि भी बहुत उपयुक्त है। इसके लिए यह भी उचित है कि 'सिन्ध-देशी' रुई की पैदावार २,५०,००० या २,७५,००० गाँठों से अधिक बढ़ने न दी जाय, क्योंकि इससे अधिक पैदावार, माँग को कम करके, कृषकों को घाटा पहुँचावेगी। 'इजिप्शियन' और 'सी-आइलेंड' के विषय में कृषि-विभाग का विचार है कि इनकी खेती उन ख़ास-ख़ास जगहों में की जाय, जहाँ उनकी खेती ... से अधिक किफ़ायत से की जा सके।

एकड़ ... ,३०० ,, 'न' ... की २,५०० ,, ... में बन्द रहती है।

मानव

लेखक, श्रीयुत भगवतीचरण वर्मा

(१)

जब कलिका को मादकता में
हँस देने का वरदान मिला,
जब सरिता की उन बेसुध-सी
लहरों को कल-कल गान मिला,
जब भूले से, भरमाये से
भ्रमरों को रस का पान मिला,
तब हम मस्तों को हृदय मिला
मर मिटने का अरमान मिला!

पत्थर-सी इन दो आँखों को
जलधारा का उपहार मिला,
सूनी-सी ठंडी श्वासों को
फिर उच्छ्वासों का भार मिला,
युग-युग की इस तनमयता को
कल्पना मिली, संचार मिला,
तब हम पागल-से झूम पड़े
जब रोम-रोम को प्यार मिला!

भूखण्ड मापनेवाले इन
पैरों को गति का भान मिला,
ले लेनेवाले हाथों को
साहस-बल का सम्मान मिला,
नभ छूनेवाले मस्तक को
निज गुरुता का अभिमान मिला,
पर एक आप-सा हाय हमें
सहसा सुख दुख का ज्ञान मिला!

(२)

मरु को युग-युग की प्यास मिली—
पर उसको मिला अभाव कहाँ?
पिक को पंचम की हूक मिली—
पर उसको मिला दुराव कहाँ?
दीपक को जलना जहाँ मिला
पर उस[illegible] मिला लगाव कहाँ?
निर्झर को पीड़ा कहाँ मिली?
पत्थर के उर में घाव कहाँ?

वारिदमाला से ढँकने पर
रवि ने समझा अपमान कहाँ?
नगपति के मस्तक पर चढ़कर
हिम ने पाया सम्मान कहाँ?
मधुऋतु ने अपने रंगों पर
करना सीखा अभिमान कहाँ?
कह सकता है कोई किससे
कब कसका है अज्ञान कहाँ?

बेड़ों को करके ग़र्क़ किया
लहरों ने पश्चात्ताप कहाँ?
वृक्षों ने होकर नष्ट दिया
तूफ़ानों को अभिशाप कहाँ?
पानी ने कब उल्लास किया
लपटों ने किया विलाप कहाँ?
बादल ने देखा पुण्य कहाँ?
दावा ने देखा पाप कहाँ?

(३)

पर हम मिट्टी के पुतलों को
जब स्पन्दन का अधिकार मिला,
मस्तक पर गगन असीम मिला
फिर तलवों पर संसार मिला,
इन तत्त्वों के सम्राट बने
जिनका हमको आधार मिला,
पर हाय असह-सा वहीं हमें
यह मानवता का भार मिला!

जल उठी अहम की ज्वाल वहीं
जब कौतूहल-सा प्राण मिला,
हम महानाश लेते आये
जब हाथों को निर्माण मिला

बल के उन्मत्त पिशाचों को
सुख-वैभव का कल्याण मिला,
निर्बलता के कंकालों की
छाती पर फिर पाषाण मिला।

हम लेने को देवत्व बढ़े—
पशुता का हर्[illegible]ाद मिला,
पर की तड़फन में, आँसू में
हमको अपना आह्लाद मिला;
निज गुरुता का उन्माद मिला,
निज लघुता का अवसाद मिला,
बस यहाँ मिटाने को हमको
मिटने का आशीर्वाद मिला!

(४)

जब हमने खोली आँख वहीं
उठने की एक पुकार हुई;
रवि-शशि उडु भय से सिहर उठे
जब जीवन की हुंकार हुई;
'तुम हो समर्थ, तुम स्वामी हो'—
जब तत्त्वों की अनुहार हुई,
तब क्षिति की धुँधली रेखा में
खिंच कर सीमा साकार हुई।

जब एक निमिष में युग-युग की
व्यापकता व्याप्त विलीन हुई,
जब एक दृष्टि में दश-दिशि के
बन्धन से छवि स्वाधीन हुई,
जब एक श्वास में भावी की
स्वप्निल छाया प्राचीन हुई,
जब एक आह में मानव की
गुरुता खिंच कर श्रीहीन हुई!

जब हम सबलों की शक्ति प्रबल
निर्बल संसृति पर भार हुई,
जब विजित, पददलित अणु-अणु से
मानव की जयजयकार हुई,
जब जल में, थल में, अम्बर में
अपनी सत्ता स्वीकार हुई
तब हाय अभागे हम लोगों
की अपने ही से हार हुई!

(५)

नारी के द्युतिमय अंगों की
द्युति में मिल द्युतिमय होने को
पृथ्वी की छाती फाड़ लिया
हमने चाँदी को, सोने को।
हमने उनको सम्मान दिया
पल भर निज गुरुता खोने को
पर हम निज बल भी दे बैठे,
अपनी लघुता पर रोने को!

लोहे से असि निर्मित की थी
अपने अभाव को भरने को,
हिंसक पशुओं के तीव्र नखों
से अपनी रक्षा करने को;
हमने कृपि काटी थी उस दिन
निज तीव्र क्षुधा के हरने को,
पर हाय हमारी भूख! कि हम
लाये असि ख़ुद कट मरने को!

मथ डाले हैं सागर-अम्बर
हमने प्रसार दिखलाने को,
विद्युत् को हमने निगल लिया
मानव की गति बन जाने को;
तेलों को हमने दाह दिया
निशि में प्रकाश बरसाने को;
पर आज हमारे खाद्य विरे
हैं वे हमको ही खाने को!

(६)

देखो वैभव से लदी हुई
विस्तृत विशाल बाज़ार यहाँ!
देखो मरघट पर पड़े हुए
भिखमंगों के अम्बार यहाँ!
देखो मदिरा के दौरों में
नवयौवन का संचार यहाँ!
देखो तृष्णा की ज्वाला में
जीवन को होते क्षार यहाँ!
केवल मुट्ठी भर अन्न—कहाँ
है नारी में सम्मान यहाँ?

केवल मुट्ठी भर अन्न—कहाँ
है पुरुषों में अभिमान यहाँ?
केवल मुट्ठी भर अन्न—कहाँ
है भले-बुरे का ज्ञान यहाँ?
केवल मुट्ठी भर अन्न—यही
है बस अपना ईमान यहाँ
अपने बोझे से दबे हुए
मानव के नहीं विराम यहाँ;
सुख-दुख की सँकरी सीमा में
अस्तित्व बना नाकाम यहाँ;
बनने की इच्छा का हमने
देखा मिटना परिणाम यहाँ;
अभिलाषाओं की सुबह यहाँ,
असफलताओं की शाम यहाँ!

(७)

अपनी निर्मित सीमाओं में
हमको कितना विश्वास अरे!
यह किस अशान्ति का रुदन यहाँ
किस पागलपन का हास अरे!
किस सूनेपन में मिल जाते
जीवन के विफल प्रयास अरे!
क्यों आज शक्ति की प्यास प्रबल.
बन गई रक्त की प्यास अरे!
अपने पन में लय होकर भी
अपने से कितनी दूर अरे!
हम आज भिखारी बने हुए
निज गुरुता से भरपूर अरे!
अपनी ही असफलताओं के
बन्धन से हम मजबूर अरे!
अपनी दीवारों से दब कर
हम हो जाते हैं चूर अरे!
पथभ्रष्ट हमें कर चुकी आज
अपनी अनियन्त्रित चाल अरे!
डस रही व्याल बनकर हमको
यह अपनी ही जयमाल अरे!
हम प्रतिपल बुनते रहते हैं
अपने विनाश का जाल अरे!
बन गये काल के हम स्वामी
हैं अब अपने ही काल अरे!

(८)

अम्बर को नत करनेवाला
अपना अभिमान झुका न सका,
सागर को पी जानेवाला
आँखों की प्यास बुझा न सका,
व्यापक असीम रचनेवाला
निज सीमा स्वयम मिटा न सका,
अपनी भूलों की दुनिया में
सुख-दुख का ज्ञान भुला न सका!

अपनी आहों में संसृत के
क्रन्दन का स्वर तू भर न सका,
अपने सुख की प्रतिछाया में
जग को सुखमय तू कर न सका,
यह है कैसा अभिशाप अरे
क्षमता रख कर तू तर न सका?
तू जान न पाया—'जी न सका
जो उसके पहले मर न सका!'
'है प्रेम-तत्त्व इस जीवन का!'
यह तत्त्व न अब तक जान सका!
तू दया-त्याग का मूल्य अरे
अब तक न यहाँ अनुमान सका!
तू अपने ही अधिकारों को
अब तक न हाय पहचान सका!
तू अपनी ही मानवता को
अब तक हे मानव पा न सका!

सम्राट् का कुत्ता

लेखक, श्रीयुत कमलकुमार शर्मा

राजधानी से बादशाह का प्यारा कुत्ता खो गया था। कुत्ता देखने में कुछ ख़ूबसूरत नहीं था, और न उसमें कुछ ख़ास विशेषता ही। लेकिन था तो आख़िर राजा का प्रिय कुत्ता। उसे कोई पहचान न सका। वह अपनी ओर किसी को आकर्षित करने में सफल नहीं हुआ।

जब वह कुत्ता एक गन्दी और पतली गली में मटर-गश्ती कर रहा था, एक सरकारी मेहतर की निगाह उस पर पड़ी। कुत्ते के गले में पट्टा नहीं था, इसलिए उस ने सोचा कि अगर किसी भद्र पुरुष का यह कुत्ता होता तो इसके गले में पट्टा अथवा चेन ज़रूर रहती। लेकिन यहाँ तो दोनों चीज़ें नदारद थीं। राजाज्ञा थी कि यदि कोई भी कुत्ता रास्ते में चहलकदमी करता हुआ नज़र आये तो उसे पकड़कर सरकार के यहाँ जमा कर दे। यह क़ानून जारी था।

जिस तरह शिकारी अपने शिकार पर टूटता है, उसी प्रकार वह भी उस कुत्ते पर टूटा और पकड़कर उसे हाथ-गाड़ी में बन्द कर दिया। गिरफ़्तारी के समय कुत्ते ने किसी प्रकार की बाधा उपस्थित न की।

उस गाड़ी में कई जाति के कुत्ते थे। वे स्वजाति के नवागन्तुक के लिए गाड़ी में जगह नहीं करना चाहते थे। इसलिए कुत्ते के प्रवेश करते ही उन कुत्तों ने बड़ा गोल-माल मचाया। लेकिन उस नवागन्तुक ने प्रत्युत्तर न देने में ही अपना कल्याण समझा। उसको चुप बैठे देख वे भी चुप हो गये।

मेहतर विस्मित हुआ, क्योंकि उसने आज तक ऐसा कुत्ता अपनी ज़िन्दगी में नहीं देखा था जो गाड़ी में बन्द करने पर भी चुपचाप रहे और एक दफ़े भी अपनी गिरफ़्तारी का विरोध न करे। इसका कारण वह सोचने लगा कि [illegible] न हो यह किसी का पालतू कुत्ता है, असावधानी से खुला रह गया है, किसी प्रकार बाहर निकल आया है, गाड़ी में चढ़ने का अभ्यस्त है।

एक सिपाही अपनी ड्यूटी पर खड़ा था। मेहतर उसके पास गया और सलाम कर एक तरफ़ खड़ा हो गया। फिर धीरे-धीरे बोला—"मैंने एक कुत्ता पकड़ा है, ज़रा उसको........।"

"देखूँ!" कहकर सिपाही मेहतर के पीछे-पीछे गाड़ी के पास आया। कुत्ते को भलीभाँति देखकर सिपाही ने मेहतर को ज़ोर से एक घूँसा मारा; और फिर गुस्से से चिल्लाकर कहा—"अबे, ओ गधे, तेरी अक़्ल क्या घास चरने गई है? ऐसे कुत्ते क्या कभी भले आदमी पालते हैं? कितना दुबला-पतला है, हड्डियाँ निकल रही हैं। इस शहर के सब भद्र आदमियों के कुत्तों को मैं अच्छी तरह पहचानता हूँ। यह इस शहर का कुत्ता नहीं है।"

सिपाही की बात सुनकर मेहतर ने सोचा—यह ठीक ही तो कहता है, मेरी ही भूल है। यह सोचकर वह अपने काम में लग गया। जाते वक़्त परम श्रद्धा के साथ सिपाही को सलाम न करने की धृष्टता न की।

उसी वक़्त एक बुढ़िया उधर से निकला। उसने कुत्तों की गाड़ी में उस कुत्ते को देखकर बड़े ही भक्तिभाव से नमस्कार किया।

सिपाही ने आश्चर्य से कहा—"अबे बुढ़िया, क्या तू पागल है?"

बुढ़िया ने सरलता से पूछा—"क्यों सिपाही जी?"

"कुत्ते को सलाम क्यों किया?"

बुढ़िया ने बड़ी गम्भीरता से उत्तर दिया—"मैं पागल क्यों? यह काले और सफ़ेद रंग का कुत्ता हमारे महाराज का है। क्या आपने नहीं पहचाना?"

सिपाही का सिर घूमने लगा। उसे ऐसा प्रतीत हुआ, मानो उसके चारों ओर की पृथ्वी घूम रही है। अपने को सँभालकर रोब गाँठते हुए उसने मेहतर से कहा—"क्यों बे धाँगड़ के बच्चे, तेरी इतनी हिमाक़त कि हमारे शाहंशाह

[मडेरा में बे-पहिये की गाड़ी]

मडेरा

लेखक, प्रोफ़ेसर सत्याचरण, एम० ए०

प्रोफ़ेसर सत्याचरण जी के सम्बन्ध में हम दिसम्बर की सरस्वती में एक लेख छाप चुके हैं। आप दक्षिण-अमरीका के प्रवासी भारतीयों में आर्य-संस्कृति के प्रचार के लिए गये थे। अब आप स्वदेश लौट आये हैं। यह लेख आप की वापसी यात्रा का है। इसमें आपने मार्गगत सुन्दर मडेरा द्वीप का वर्णन किया है।

भारत से विदाई लिये लगभग सोलह-सत्रह मास से अधिक व्यतीत हो चुके थे। पिता जी की अस्वस्थता और मातृभूमि के दर्शन की उत्कण्ठा ने स्वदेश लौटने के लिए विवश किया। जितने भी मास मेरे प्रवास-काल के दक्षिणी अमेरिका में कटे वे सांस्कृतिक प्रचार के अतिरिक्त समाज-शास्त्र की दृष्टि से बड़े उपयोगी सिद्ध हुए। डच-गायना के जंगलों के बीच बहनेवाले नदी-नालों से गुज़र कर कैसी विचित्र जंगली जातियों के अध्ययन का अवसर मिला, इसका उल्लेख पुनः कभी 'सरस्वती'

विशेषतः अगस्त और सितम्बर मास में दक्षिण-अमे-रिका के गोरे लोग योरप की यात्रा करते हैं। डच-गायना से योरप के लिए डच और फ़्रांसीसी—इन्हीं दो लाइनों के जहाज़ मिलते हैं। फ़्रांसीसी जहाज़ों की अपेक्षा इस लाइन के डच-जहाज़ अधिक साफ़ और तेज़ रफ़्तार के होते हैं। डच-जहाज़ वैसे तो लगभग ४-५ हज़ार टन के होते हैं, पर अटलांटिक जैसे विशाल महासागर को पार करने में भी इनमें असुविधायें कम होती हैं। योरप से दक्षिण-अमेरिका आते समय 'कार्डिलेरा' नाम के जर्मन-जहाज़ से आया था। यह डच-जहाज़ का लगभग दूना था और प्रत्येक दृष्टि से उत्कृष्ट भी। किन्तु योरप आते समय डच-जहाज़ का ही आश्रय लेना पड़ा।
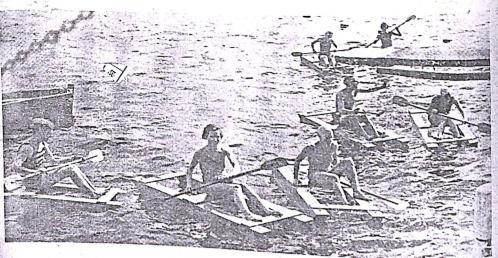
[मडेरा के समुद्र-तट पर जलक्रीड़ा]

१९३६ के १४ सितम्बर का मध्याह्न का समय था। लगभग ४०० व्यक्ति पैरामारिबो शहर की जेटी पर विदाई देने आये थे। दक्षिण-अमेरिका के प्रवासी भारतीयों के बीच रहने के ये मेरे अन्तिम क्षण थे। कितने ही सहृदयों के नेत्र तरल थे। जहाज़ सुरीनाम नदी की दूसरी ओर खड़ा था, जहाँ पहुँचने के लिए यात्रियों को 'फ़ेरी-बोट' से जाना पड़ता था। अतः 'फ़ेरी-बोट' में जा चढ़ा। मेरे साथ प्रोफ़ेसर भास्करानन्द जी एम० ए०, बी० एल० तथा अन्य प्रेमीजन भी थे। थोड़ी देर में पैरामारिबो शहर के भवनों का केवल धुँधला भर दृष्टिगत था। इसमें सन्देह नहीं, उसका ऊँचा दीपस्तम्भ मकानों की पंक्तियों के बीच विजय-केतु-सा दिखलाई पड़ता था।

कुछ मिनटों में 'आरेंज नसाऊ' नामक डच-जहाज़ के सामने हम लोग आ गये। मडेरा और योरप जाने के लिए बहुत-से यात्री उसमें भरे हुए थे। कुछ मास पहले मुझे इसी जहाज़ से डच-गायना से ट्रिनिडाड की यात्रा करने का अवसर मिला था। दूसरी बार इसी से यात्रा करने में जहाज़ के कई पूर्व-परिचित कर्मचारी मिले।

आकाश निर्मल था। नक्षत्रों की ज्योति पूर्ण यौवनावस्था में थी। अटलांटिक महासागर की उत्तुङ्ग लहरें जहाज़ के निम्न भाग से टकराकर फेनिल पर्वत का रूप धारण कर लेती थीं। समुद्र की नीरवता को भंग करनेवाली यदि कोई वस्तु थी तो वह वायु-संघर्ष से उत्पन्न हुई ध्वनि तथा जहाज़ के इंजन का संचालन।

डेक के एक कोने में बैठा हुआ मैं प्रकृति की नग्न सामुद्रिक शोभा को देख रहा था। पीछे से किसी के आने की पदध्वनि सुनकर उधर मुड़ा तब एक दक्षिण-अमरीकन नवयुवक को अपनी ओर आते देखा। वह नवयुवक मुझे जानता था। बात यह थी कि उसने मेरे डच-गायना के कई भाषणों को सुना था। पास आने पर बातचीत आरम्भ हुई।

"आप कहाँ तक जायँगे" ? युवक ने साधारण अँगरेज़ी में पूछा।

"वैसे तो मैं भारतवर्ष जा रहा हूँ, पर इस समय एम्सटर्डम जाना है।" मैंने कहा।

"मैं भी एम्सटर्डम तक जाऊँगा।" युवक ने कहा।

"एम्सटर्डम में आप क्या करते हैं ?"

"मैं विद्यार्थी हूँ और हेग में पढ़ता हूँ। एम्सटर्डम से कुछ घंटों में मैं हेग पहुँच जाऊँगा।" युवक ने उत्तर दिया।

[मडेरा का समुद्र-तट, धूप-स्नान का दृश्य]

हेग हालैंड का प्रसिद्ध शहर है। इसी स्थान पर हालैंड की महारानी रहती हैं। एम्सटर्डम में केवल एक बार वर्ष भर में आती हैं। हेग का महत्त्व अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय होने से और भी बढ़ गया है।

कुछ समय तक साधारण विषयों पर चर्चा होती रही। युवक की बोल-चाल की भाषा डच थी। अँगरेज़ी में बोलने का अभ्यास न होने के कारण त्रुटि और स्खलन होना स्वाभाविक था। उस युवक में एक विशेष बात देखने को मिली; वह थी उसका भारतीय दर्शन के प्रति प्रेम। पूछ-ताछ से ज्ञात हुआ कि डच-भाषा में अनूदित कुछ भारतीय पुस्तकों को देखने का उसे सौभाग्य प्राप्त हुआ था। थियोसोफ़ी का प्रचार हालैंड में अच्छा है। लीडेन इसका प्रमुख केन्द्र है। यहीं उस नवयुवक को कृष्णमूर्ति [illegible] का अवसर मिला था। उसी समय से उसके हृदय में भारतीय धर्म और संस्कृति की जानकारी के लिए अनुराग उत्पन्न हो गया था।

बातों के सिलसिले में उसे गीता आदि के सम्बन्ध में भी कुछ बतलाया और दूसरे दिन कुछ चुनी हुई भारतीय पुस्तकों के नाम नोट करा दिये। डच और जर्मन-भाषा [illegible] भले प्रकार जानने के कारण युवक को उन पुस्तकों के अनुवाद समझने में कठिनाई नहीं हो सकती थी। बात-चीत करते अधिक समय व्यतीत हो गया था। अतः हम लोग अपने केबिन में विश्राम के लिए चले गये।

जहाज़ में प्रथम दिन इस प्रकार कटा। नित्य प्रति कुछ व्यक्तियों से जिनमें वह नवयुवक भी था, वार्तालाप में समय जाता। वस्तुतः जहाज़-यात्रा का अनुभव व्यापक और मधुर होता है।

संसार में अटलांटिक महासागर सबसे अधिक गहरा
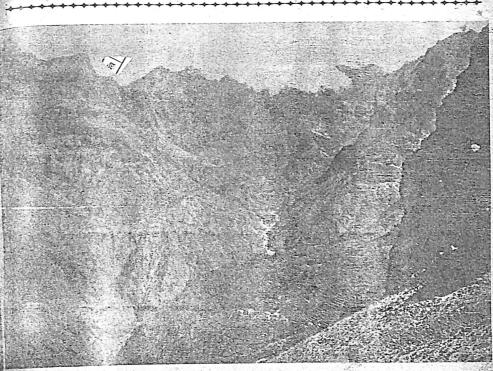
[मडेरा में ज्वालामुखी पहाड़ तथा उनके खोहों में आबादी]

है। जब नौ-विद्या की अधिक उन्नति नहीं हुई थी तब सैकड़ों जहाज़ उसके विशाल कुक्ष में विलीन हो गये थे। अब वह भय उस मात्रा में नहीं है, फिर भी अन्य सागरों की अपेक्षा अटलांटिक की गहराई की आभा मिल ही जाती है। पैरामारिबो से जहाज़ छूटते ही कुछ दूर तक जल मटमैला मिला। पर ज्यों ज्यों जहाज़ आगे बढ़ता जाता था, जल की अवस्था भी बदलती जाती थी। हज़ारों मील तक जहाज़ निकल आया होगा, पर पृथ्वी-तल का कहीं दर्शन नहीं हुआ।

पैरामारिबो से चलते समय यह मालूम हो गया था कि २३ तारीख़ के पूर्व पृथ्वी का दर्शन होना कठिन है। समस्त अटलांटिक महासागर पार करने पर केवल मडेरा [illegible] का द्वीप रास्ते में मिलता है। २३ तारीख़ को सायं-[illegible] यह सूचना जहाज़ में दे दी गई थी कि लगभग १०-११ बजे रात्रि को हम लोग मडेरा पहुँच जायँगे। लगातार १० दिन तक समुद्र-तल पर रहने के कारण सभी को भूमि के दर्शन की उत्कण्ठा थी। हम लोगों ने अब अटलांटिक महासागर के ½ से अधिक भाग को पार कर लिया था। अफ़्रीका का पश्चिमी तट कुछ ही मील शेष रह गया था। एकाएक डेक पर खड़े हुए यात्रियों में अजीब प्रसन्नता छा उठी। लोग अपने अपने केबिन को छोड़कर डेक पर आ डटे। सबका ध्यान एक दूरस्थ क्षीण ज्योति की ओर लगा था। वस्तुतः वह मडेरा के प्रकाश-स्तम्भ की ज्योति थी।

जहाज़ आगे बढ़ता चला जाता था, लाइट हाउस की ज्योति भी निखरती जाती थी। लगभग १ घंटे के पश्चात् हम लोग मडेरा पहुँच गये। रात्रि के दस बजे थे। सामने मडेरा की राजधानी फ़ुन्चल नगर ज्योति-समूह से आलो-

कित था। भारतवर्ष की अच्छी से अच्छी दीपावली का दृश्य उसके सामने फीका प्रतीत होता था। बात यह है कि मडेरा एक पहाड़ी स्थान है। फ़ुन्चल नगर के पास पहाड़ की उँचाई मज़े की है। इसी पहाड़ को काटकर उक्त नगर बसाया गया है। कई मंज़िले मकानों की तरह ऊपर नीचे टेढ़ी-मेढ़ी सड़कें निकाली गई हैं और इन्हीं सड़कों के किनारे मकानों की पंक्तियाँ बसी हुई हैं। इन मकानों के बिजली की रोशनी से आलोकित होते ही सारे फ़ुन्चल नगर की पहाड़ी प्रकाश से जगमगा उठती है। थोड़ी दूर पर खड़े हुए जहाज़ से यह सौन्दर्य और भी आकर्षक जान पड़ता है। जिन लोगों को योरप जाते समय रात्रि में अदन में रुकने का अवसर मिला होगा वे इस दृश्य का अनुमान सरलता से कर सकते हैं।

डेक पर खड़ा अन्य यात्रियों के साथ फ़ुन्चल की शोभा देख रहा था। सहसा मेरा हाथ कोट की पाकेट में गया तब मालूम हुआ कि ३ गिल्डर ग़ायब हैं। उसी पाकेट में मेरे ट्रंकों की चाभियाँ भी पड़ी हुई थीं। सन्देह हुआ कि कहीं और भी रुपये तो ग़ायब नहीं हुए। नीचे कमरे में जाकर जब ट्रंक को खोला तब माथा ठनक उठा। मनीबेग ग़ायब देखा। उसी समय मैंने घंटी बजाई और चीफ़ स्टुअर्ड को चोरी के सम्बन्ध में सूचना दी। उसने कैप्टेन को भी इत्तिला दे दी। मेरे कमरे के पास एक जर्मन युवक था। उसकी आकृति और चाल-ढाल से स्पष्ट मालूम होता था कि वह कोई घुटा हुआ चोर है। मेरा सन्देह भी उसी पर था। जहाज़ के कर्मचारियों की भी यही धारणा थी। पर केवल उसी की तलाशी नहीं ली जा सकती थी।

दूसरे दिन प्रातःकाल मेरे क्लास के लोगों को तट पर जाने के लिए मुमानियत कर दी गई। कुछ लोग मामले की असलियत को न जानने से घबराये हुए-से थे कि वे क्यों तट पर जाने से रोके गये। थोड़ी देर में जहाज़ के तीन-चार अफ़सर आये। मेरे क्लास के सभी कमरों की अच्छी तरह तलाशी ली गई। इसमें सन्देह नहीं कि उक्त जर्मन के कमरे की तलाशी बड़ी सावधानी से ली गई, पर कोई सफलता नहीं प्राप्त हुई। अन्त में मुझे निराश होना पड़ा और गई हुई चीज़ फिर मुश्किल से हाथ लगती है, यह सोचकर सन्तोष करना पड़ा। तलाशी हो जाने पर

रात्रि के समय मडेरा का दृश्य देखने का अवसर मिला ही था, पर प्रातःकाल उसकी कुछ और ही शोभा थी। तट के किनारे सैकड़ों छोटी छोटी नौकायें थीं, जिनमें मडेरा के रहनेवाले व्यापारी लोग बैठे हुए हमारे जहाज़ की ओर आ रहे थे। तट पर जानेवाले जहाज़ के यात्री भी इन्हीं नावों से जाते थे। रात्रि के समय तो प्रकाश की पंक्तियाँ दीख पड़ती थीं, किन्तु दिन में हरी-भरी लताओं और फूलों से लदा हुआ मडेरा अत्यन्त नयनाभिराम जान पड़ता था।

[मडेरा द्वीप के अन्वेषक ज़ारको की क़ब्र]

मडेरा स्पेन से दक्षिण-पश्चिम तथा अफ़्रीका के उत्तर-पश्चिमीय तट से पश्चिम की ओर एक छोटा-सा द्वीप है, जो पोर्चुगाल लोगों के आधिपत्य में है। अटलांटिक महासागर के पूर्वीय भाग में इसकी स्थिति बड़ी महत्त्वपूर्ण है। योरप से दक्षिण-अमेरिका जानेवाले जहाज़ प्रायः इसी द्वीप से गुज़रते हैं, अतः यह जहाज़ों का एक विशेष स्टेशन माना जाता है। प्रत्येक वर्ष दक्षिण अमेरिका जानेवालों की संख्या बढ़ती जाती है। हालैंड के रायल नेदरलैंड [illegible] ने सस्ते मूल्य पर यात्राओं का प्रबन्ध किया [illegible]

इन यात्राओं में भोजन आदि की बड़ी सुविधा रहती है और यात्री भी सैर के भाग से अटलांटिक महासागर के द्वीपों तथा दक्षिण-अमेरिका के अवलोकनार्थ बाहर निकलते हैं। मडेरा के पास एज़ोरेन-द्वीप-समूह है, जिसे देखने के लिए पोर्चुगीज़ जहाज़ मिलते हैं और दो-एक दिन के भीतर इन द्वीपों की सैर हो जाती है। मडेरा के तट से ही 'पीको बारसेलास' की चोटी दिखाई देती है। यात्री इस स्थान तक जाते हैं और यहाँ से उन्हें इस द्वीप का दक्षिणी भाग भी देखने को मिलता है।

[मडेरा का एक भीख माँगनेवाला]

मडेरा में रंग-बिरंगे फूल ख़ूब होते हैं, इसी लिए इसे 'सुमन-द्वीप' कहते हैं। जहाँ तक मेरा अनुमान है इस द्वीप के अतिरिक्त योरप अथवा अमेरिका में किसी अन्य स्थल पर इतने सस्ते मूल्य पर फूल नहीं मिलते। हमारे जहाज़ के जितने साथी थे, सभी के हाथ में फूलों का एक गुच्छा था। मडेरा द्वीप पर पैर रखते ही पोर्चुगीज़ कन्यायें फूलों की झपोलियाँ लेकर लोगों का स्वागत करती हैं। फिर कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो कम से कम दो-चार फूलों को न ख़रीदकर हृदय-हीनता दिखलावे? हमारे जहाज़ की शायद ही कोई ऐसी महिला रही होगी जिसने फूलों का एक गुलदस्ता न ख़रीदा हो। उस दिन तो जहाज़ के 'डाइनिङ्ग-हाल' में फूलों की ख़ूब रौनक़ थी।

फ़ुन्चल शहर साफ़-सुथरा है। सड़कें प्रायः पतली और पथरीली हैं। पत्थर के छोटे छोटे टुकड़े लोगों के आने-जाने से चिकने हो गये हैं। इन्हीं पर बेपहियों की गाड़ियाँ आसानी से चलती हैं। संसार में और कहीं मडेरा की भाँति बैलों से जुती हुई बेपहियेदार गाड़ियाँ देखने में नहीं आतीं। इन गाड़ियों के पेंदे के भाग में लोहे के पत्तर जड़े होते हैं, जो बराबर प्रयोग के कारण चिकने और साफ़ रहते हैं। बाहर से आनेवाले यात्री मडेरा में इस नवीन सवारी का आनन्द अवश्य उठाते हैं। जब यात्रियों की बड़ी भीड़ हो जाती है तब इन गाड़ीवालों की बन आती है। वे मनमाना चार्ज करते हैं और लोगों को अपने कौतुक की शान्ति के लिए रुपये देने ही पड़ते हैं।

मडेरा-वासियों का जीवन प्रायः सादा है। इस द्वीप में निर्धनता भी प्रचुर रूप से है, पर भारत से उसकी कोई तुलना नहीं। जलवायु मातदिल होने के कारण लोग कमीज़ और पैंट में आसानी से रह सकते हैं। वस्तुतः इसी पोशाक में यहाँ के अधिक संख्यक लोग अपने कारोबार में लगे रहते हैं। नंगे पैर भी बहुत-से लोग मिलेंगे। फ़ेल्टहैट और स्ट्राहैट में ही दो प्रकार के शिरोभूषण यहाँ प्रसिद्ध हैं। स्ट्राहैट का प्रचलन यहाँ अधिक है। साधारणतः मडेरा के रहनेवाले बहुत फ़ुर्तीले और परिश्रमी नहीं होते। पोर्चुगल देश के ही श्रमजीवी यहाँ पहले लाकर बसाये गये थे। कुछ शताब्दियों में इस द्वीप की अवस्था पूर्वापेक्षा सम्पन्न हुई, पर योरप और अमेरिका की भाँति समय और परिश्रम का मूल्य समझनेवाले यहाँ बहुत कम हैं। यही कारण है कि यहाँ की आर्थिक अवस्था उन्नत नहीं है। भारत से योरप आते समय पोर्टसईद में भिखमङ्गों की काफ़ी तादाद मिली। मडेरा में भी कुछ वैसी ही अवस्था थी। जहाँ सड़कों पर जाइए, कहीं न कहीं किसी मंगन से भेंट अवश्य हो जायगी। कभी कभी तो यात्रियों को बड़ा धोखा होता है। भीख माँगनेवाले पोर्चुगीज़-भाषा में याचना करते हैं। उनकी भाषा न समझने के कारण बाहर से आये हुए लोग यह भी नहीं समझ पाते कि वह भीख माँगनेवाला है अथवा कोई निर्धन नागरिक।
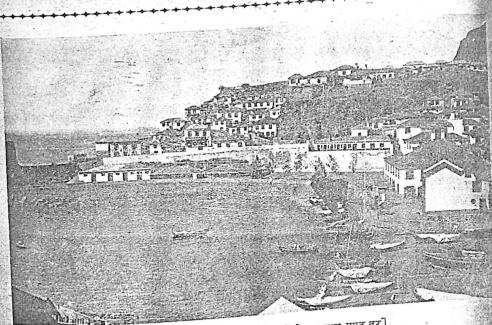
[कमारा दे लोबस में मछली मारनेवालों के घर तथा समुद्र-तट]

अटलांटिक महासागर के समस्त द्वीपों में मडेरा शराब के लिए बहुत प्रसिद्ध है। यहाँ अंगूर कसरत से पैदा होता है। उसकी एक विशेष प्रकार की शराब तैयार की जाती है, जिसे 'मडेरा-वाइन' कहते हैं। शराब पीनेवाले इसकी बड़ी प्रशंसा करते हैं। हमारे जहाज़ के बहुत-से लोग फ़ुन्चल के होटलों और शराब की दूकानों में सुरा-पान कर रहे थे। सस्ती शराब होने के कारण यात्रा के लिए बोतलें भी ख़रीद रहे थे। मडेरा की शराब अन्य-देशों को भेजी जाती है।

मध्याह्न के समय एक छोटी-सी दुर्घटना हो गई। हमारे जहाज़ में हालेंड जानेवाले दो फ़ौजी सिपाही थे। दोनों ही डच थे और पैरामारियो में ही नौकर थे। छुट्टी लेकर स्वदेश जा रहे थे। फ़ौजी सिपाही यों ही शराब अधिक पीते हैं, फिर यदि कहीं सस्ती शराब मिल जाय तो फिर क्या पूछना है। फ़ुन्चल में इन लोगों ने सुरा से अपनी पूरी ममता दिखलाई थी। कालान्तर में उसका गुबार निकलना स्वाभाविक था। डाइनिङ्ग-हाल में ये दोनों आमने-सामने बैठे थे। आपस में कुछ बात-चीत प्रारंभ हुई। ज्यों-ज्यों सुरादेवी का मादक नृत्य यौवन [illegible] प्राप्त होता जाता था, त्यों-त्यों इन फ़ौजी महोदयों की शिष्ट[illegible] और लज्जा भी शरीर से खिसक रही थी। देखते ही देख[illegible] छुरियों और काँटों के दूसरे ही रूप से उपयोग की नौब[illegible] आपड़ी। इतने में ही स्टुआर्ड ने उन्हें शान्त करने की चेष्टा की, पर सफल न हुआ। तब चीफ़ स्टुआर्ड ने माम[illegible] को शान्त किया। यह काण्ड इस बात के लिए पर्याप्त [illegible] कि ये दोनों सिपाही कप्तान के पास रिपोर्ट करने पर [illegible] त्तल कर दिये जाते। पर दयालु-हृदय कर्मचारियों [illegible] आपस में ही मामले को दबाकर उनकी रक्षा की।

मडेरा का मुख्य व्यवसाय शराब, आलू और [illegible] है। शराब के विषय में लिख ही चुका हूँ। आलू और [illegible] की भी उत्पत्ति अच्छी मात्रा में होती है। पश्चिमीय [illegible] पुञ्ज और दक्षिण-अमेरिका के उत्तरी भाग में [illegible] मुझे जाने का अवसर मिला, मडेरा के आलू और [illegible] मिले। इन देशों में आलू न होने के कारण योरप, मडेरा आदि देशों से ही इसकी पूर्ति की जाती है। ट्रिनिडाड में रहते समय मडेरा के आलू से मुझे नफ़रत-सी हो गई थी। उसमें भारत के आलू जैसा स्वाद नहीं था। पर वहाँ के लोग उसे बहुत प्यार से खाते थे। मडेरा की भूमि फल-फूल के लिए उपजाऊ है। अंगूर के अतिरिक्त और भी फल होते हैं।

अन्य व्यवसायों में यहाँ की बेंत की कुर्सियाँ प्रसिद्ध हैं। ये बेंत की कुर्सियाँ यहाँ से बनकर समीपवर्ती सभी देशों में जाती हैं। स्पेन और पोर्चुगाल तक में इनकी अच्छी खपत होती है। ये 'मडेरा चेयर्स' के नाम से प्रसिद्ध हैं। बेंतों का जंगल मुझे स्वयं देखने का अवकाश नहीं मिला, पर पूछने पर मालूम हुआ कि द्वीप के अन्य भागों में मीलों तक बेंतों का जंगल चला गया है और इसी के साथ हज़ारों मडेरावासियों की जीविका लगी है।

मडेरा को खोज निकालनेवाले ज़ारको थे। जिस समय वे मडेरा में पहुँचे, वहाँ न सभ्यता का कोई चिह्न था, न उस द्वीप से भविष्य में कुछ आशा ही की जा सकती थी। पर पोर्चुगीज़ लोगों ने उसी द्वीप को स्वर्गीय-सा बना दिया है। ज़ारको की क़ब्र आज तक बनी हुई है, जिसे देखने को दर्शक लोग जाते रहते हैं। इस क़ब्र के ऊपर मेहराब और दीवार की नक़्क़ाशी ध्यान देने योग्य है। इसे देखकर भारत के किसी मुग़लकालीन मक़बरे का स्मरण हो आता है। वास्तव में इसकी बनावट में मूरिश-कला के चिह्न हैं। स्पेन में मूर लोगों का शताब्दियों तक बोलबाला रहा है। उनकी विद्या और कला की आज तक स्पेन पर छाप है, अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि ज़ारको के समय में मूरिश-कला का प्राधान्य रहा है, जिसकी छाप स्वयं उसकी क़ब्र पर है।

अटलांटिक महासागर में जितने द्वीपसमूह हैं वे सभी जलक्रीड़ा के लिए अच्छे हैं। द्वीप के चारों ओर महासागर की लहरें आकर टकराती हैं। उनकी उत्तुङ्ग लहरों में स्नान करने के लिए तट पर कई उपयुक्त स्थल चुन लिये जाते हैं, जहाँ कुछ कृत्रिम उपकरण जुटा लेने से स्थान की उपयोगिता बढ़ जाती है। जहाँ स्नान करने के लिए स्थान चुना जाता है, वहाँ तट पर छोटे-छोटे कमरे बने होते हैं जिनमें लोग अपने कपड़े बदल कर जल में स्नान करते हैं और फिर जाकर कपड़े बदल लेते हैं।

मडेरा में दो प्रकार के स्नानों के लिए सुविधा है; एक धूप-स्नान और दूसरा जल-स्नान। धूप-स्नान के लिए कई ऐसे स्थान चुने गये हैं जो समुद्र-तट की ओर चट्टानों से घिरे हैं और इन चट्टानों के पीछे थोड़ी सी समतल भूमि है। इस घासदार भूमि को फूलों और अन्य वस्तुओं से सजाकर एक सुन्दर उपवन का रूप दे दिया जाता है। पुरुष और महिलायें अर्ध नग्नावस्था में होकर इन स्थानों पर लेटकर धूप-स्नान करती हैं। यहाँ सूर्य की किरणें प्रखर नहीं होतीं। समुद्र की लहरें तटवर्ती चट्टानों से टकराती हैं और उनसे मिले हुए वायु के झकोरे जल-शीकर से भरे रहते हैं। यही वायु धूप-स्नान करनेवालों

[[illegible] की शोभा]

[फ़ुन्चल नगर की पुरानी बस्ती में दैनिक जीवन का एक दृश्य, पथरीली सड़कें ध्यान देने योग्य हैं।]

के शरीरों को मन्द-मन्द स्पर्श करती है। इसलिए एक ही समय धूप और आर्द्रता दोनों का आनन्द अनुभव कर बड़ा सुख प्रतीत होता है।

जल-क्रीड़ा के अन्यान्य साधन हैं। लोग उठती हुई लहरों में स्नान करते तथा तैरते हैं। कुछ लोग छोटी-

में एक विशेष बात देखने में आई। यहाँ स्त्री-पुरुष एक विचित्र काठ के फट्टों से ही नौका का काम निकालते हैं। इस नौका का आकार और प्रकार अद्भुत है। काठ के दो लम्बे-लम्बे टुकड़ों पर तीन बेड़े टुकड़े लगे होते हैं। बीचवाले बेड़े तख़्ते पर बैठकर एक पतवार के सहारे लोग इसे समुद्र में चलाते हैं। समुद्र की लहरों के साथ यह उठता और गिरता है। इसके डूबने का ख़तरा नहीं होता और न नौकाओं की भाँति उलटने का। मडेरा के तट पर मैंने कई नर-नारियों को इस प्रकार जल-क्रीड़ा करते देखा। सभी प्रसन्न और मस्ती में डूबे हुए थे।

इस बात के कहने की आवश्यकता नहीं कि सभी द्वीपों के किनारे मछली मारने के लिए अच्छे स्थान समझे जाते हैं। जहाँ तट ऊँचे-ऊँचे चट्टानों से घिरा रहता है, वहाँ मछली मारने में सुविधा नहीं होती, पर समतल तट पर यह व्यवसाय अच्छी तरह चलता है। फ़ुन्चल नगर से थोड़ी दूर पश्चिम की ओर एक ऐसा ही स्थान है जिसका नाम 'कमारा दे लोबस' है। यहाँ पहाड़ी और समुद्र के बीच थोड़ी सी भूमि समतल मिलती है। पहाड़ी को काट-काट कर मकानों की श्रेणियाँ बनी हैं। इनमें मछुए लोग रहते हैं और अपना व्यापार चलाते हैं। तट पर सैकड़ों छोटी छोटी नौकायें पड़ी रहती हैं। इन्हीं में बैठकर बड़ी फुर्ती के साथ मछुए लोग समुद्र में चले जाते हैं और मछलियों का शिकार करते हैं।

कमारा दे लोबस में मछलियों के सुखाने और नमक लगा कर डिब्बे में भरने के कारख़ाने हैं। इन्हीं कारख़ानों से तैयार की हुई मछलियाँ मडेरा के अन्य भागों में तथा बाहर भेजी जाती हैं। भारत के लोग अपने मल्लाहों की अवस्था से यदि इन विदेशी मछुओं की तुलना करें तो उन्हें ज़मीन और आसमान का फ़र्क़ मालूम होगा। भारत के मल्लाह दीनता की मूर्ति हैं। ठीक इसके उलटे विदेशी मल्लाह सम्पन्न और ख़ुशहाल होते हैं। उनके रहने के लिए झोपड़ियाँ नहीं, वरन साफ़-सुथरे पक्के मकान होते हैं, जिनमें आराम के सभी सामान मौजूद रहते हैं। दिन भर जल और धूप में शरीर को पीड़ित करने के बाद यदि भारत के मल्लाह को पेट भर अन्न मिल जाय तो बहुत है, पर विदेश के मल्लाहों के पास बँगले और मोटर

यह बतलाना आवश्यक है कि मडेरा में कई ज्वालामुखी पहाड़ हैं। इनमें से बहुत-से बुझ गये हैं। अब भी किसी से लावा निकलता रहता है, इसे ठीक नहीं कह सकता। पर बुझे हुए ज्वालामुखी पहाड़ों के दो फल हुए हैं। एक तो पर्वत के फट जाने से पानी निकल आया है। ऐसे पानी से भरे हुए ख़ंदक झील की तरह दिखलाई देते हैं। दूसरे ऐसे स्थान हैं, जहाँ पानी नहीं निकला है और वे पर्वतों के भीतर बसने योग्य हैं। ज्वालामुखी पर्वतों के इन ख़न्दकों में हज़ारों मनुष्य बसे हुए हैं और खेती करते हैं। ज्वालामुखी पर्वत के पास की भूमि अत्यन्त उपजाऊ होती है। इसी लिए कृषक ऐसे स्थानों से अधिक लाभ उठाते हैं। मडेरा में ऐसे स्थानों पर आलू और प्याज़ ख़ूब बोये जाते हैं और उनकी पैदावार भी अच्छी होती है।

मडेरा को यदि हम अटलांटिक महासागर का फूल कहें तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं। प्रकृति का दान तो इसे मिला ही है, पर मनुष्य ने भी इसकी कृत्रिम शोभा बढ़ाने में कोई कमी नहीं की है। सुन्दर मकानों और सड़कों से द्वीप भरा हुआ है। यद्यपि धन यहाँ बहुत मात्रा में नहीं है, फिर भी यह द्वीप ख़ुशहाल कहा जा सकता है। फ़ुन्चल अटलांटिक का एक व्यापारिक केन्द्र है। योरप, अफ़्रीका, जिब्राल्टर, पश्चिमीय द्वीपपुञ्ज तथा दक्षिणी अमेरिका, इन सभी स्थानों से जहाज़ों का आना-जाना लगा रहता है। यदि इन जहाज़ों का आना-जाना न हो तो मडेरा दो दिन के भीतर एक अत्यन्त निर्धन द्वीप बन जाय। इसका सारा व्यापार और उद्योग निर्यात पर ही निर्भर है।

जहाज़ को ठहरे बहुत देर हो चुकी थी। जो माल
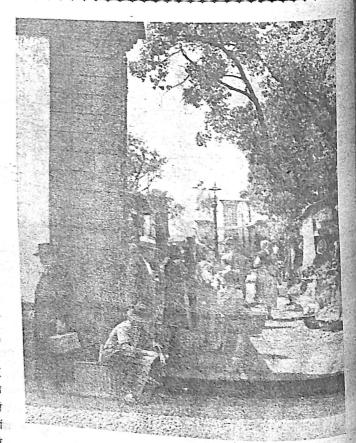
[फ़ुन्चल नगर में फूलों का बाज़ार]

लादना था वह सब लद चुका था। जहाज़ का पहला भोंपा हुआ और यात्रियों को यह सूचना मिल गई कि अब थोड़ी देर में जहाज़ छूटनेवाला है। कुछ समय पश्चात् जहाज़ की नीचे लटकनेवाली सीढ़ियाँ खींच ली गईं और अन्तिम भोंपे के साथ जहाज़ में स्पन्दन आ गया। फ़ुन्चल सूर्य की रोशनी से प्रकाशित था। देखते ही देखते लताओं और फूलों से आवृत फ़ुन्चल के चमकीले मकान लुप्त हो गये और केवल विशाल उत्तुङ्ग काली पहाड़ी ही दूर से दिखलाई देने लगी।

शिक्षा और भारतवासी

शिक्षित बेकारों की बढ़ती हुई संख्या को देखकर देश के कतिपय शिक्षाप्रेमी लोग विश्वविद्यालयों के वर्तमान शिक्षाक्रम को रोक देना या कम कर देना चाहते हैं। लेखक महोदय ने प्रमाण देकर ऐसे लोगों की उस भावना का इस लेख में विरोध किया है।

लेखक, श्रीयुत चैतन्यदास

'अलीगढ़-विश्वविद्यालय' के अर्थ-विभाग के प्रधान डाक्टर बी० एन० कौल का कहना है कि 'भारत जैसे देश में जहाँ इतने थोड़े शिक्षित हैं, शिक्षा को रोकना बुद्धि-विरुद्ध है'। अभी हाल में जापान के जगद्वि-ख्यात कवि नगूची ने भी यही बात और ढङ्ग से कही थी।

जापान में तो ग़रीब से ग़रीब आदमी अख़बार पढ़ता है। जैमिनि मेहता ने हिन्दू-विश्वविद्यालय के अपने पार-साल के भाषण में बतलाया था कि जापान ने ६० साल के अन्दर शिक्षा-सम्बन्धी आशातीत उन्नति की है। सन् १९३१ में वहाँ १०० आदमियों में ९६ आदमी पढ़े-लिखे थे। हिन्दुस्तान की मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट से पता चलता है कि यहाँ उसी समय १०० में सिर्फ़ ८ पढ़े-लिखे थे। जापान ने जो तरक़्क़ी की है वह भारतवासियों से छिपी नहीं है। भारत के व्यवसाय के क्षेत्र में उसका बोल-बाला है।

शिक्षा का महत्त्व संसार के सभी राष्ट्र महसूस करने लग गये हैं। इस काम को सभी राष्ट्रों की सरकार दिन पर दिन अपने हाथों में ले रही है। क्यों न हो? राष्ट्रों की उन्नति और शिक्षा का अभिन्न सम्बन्ध जो है। हम अपने देश में ही देखते हैं। ट्रावेनकोर रियासत बड़ी उन्नति पर है। वहाँ हर साल सरकारी ख़र्च का २३·२% शिक्षा-विभाग पर ख़र्च किया जाता है जब कि ब्रिटिश भारत में सिर्फ़ ४% शिक्षा के लिए ख़र्च होता है।

इस समय तो यहाँ लोगों को १८ यूनिवर्सिटियाँ ही ज़्यादा मालूम होती हैं। उधर जर्मनी में जिसकी आबादी ६ करोड़ ६० लाख के लगभग है, उनकी संख्या २३ है। इटली के ४ करोड़ १० लाख की जन-संख्या में २६ विश्व-विद्यालय हैं और ब्रिटेन में उनकी संख्या १६ है जब

उपर्युक्त योरपीय यूनिवर्सिटियों में कहीं कहीं २० से ३० हज़ार तक लड़के पढ़ते हैं।

जब हम दूसरे उन्नतिशील देशों की तरफ़ नज़र करते हैं तब हम अपने को बहुत पीछे पाते हैं। हमारी प्रगति इतनी धीमी है कि जिस स्थान से हम बहुत दिन हुए चले थे अभी उसके पास ही हैं। अगर ब्रिटेन के ही उदाहरण को लें तो आज भारत में १२८ यूनिवर्सिटियाँ होनी चाहिए। शिक्षा-संस्थाओं की कमी का ही यह कारण है कि अब भी भारत में १०० में केवल ८ आदमी ही पढ़े-लिखे हैं। अँगरेज़ी पढ़े-लिखों की संख्या तो और भी कम है।

इस हालत के होते हुए भी कुछ लोग ऐसे हैं जो शिक्षा के सख़्त ख़िलाफ़ हैं। वे यूनिवर्सिटियों को गिरा देना चाहते हैं, और कुछ ऐसे भी हैं जिनका यह कहना है कि हिन्दुस्तान की शिक्षा का तरीक़ा उसकी ज़रूरतों से मेल नहीं खाता, अतएव यहाँ रोज़ी-रोज़गार-सम्बन्धी शिक्षा आदि का भी प्रबन्ध होना चाहिए।

ऐसे विचार का आधार देश के शिक्षित नवयुवकों की बेकारी है। इसमें शक नहीं कि बेकारी भारत की महा-मारी है। अपने मुल्क के होनहार लड़कों को बेकार घूमते देखकर किसके दिल में दर्द न पैदा होगा?

अब हमारे सामने दो प्रश्न हैं—(१) क्या इन यूनिवर्सिटियों से देश का कुछ लाभ नहीं? (२) क्या इन्होंने देश में बेकारी को बढ़ाया है?

पहले प्रश्न के जवाब में हमारे तिलक, गांधी, टैगोर, मालवीय, नेहरू, रमन और बोस आदि हैं। ऐसे लोगों के नामों की सूची यहाँ देने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि देश का बच्चा बच्चा उससे वाक़िफ़ है। किसी अमेरिकन ने अभी हाल में कहा था कि संसार में कोई देश ऐसा नहीं है जहाँ तीन तीन महापुरुष एक साथ विद्यमान हों। जर्मनी में सिर्फ़ हिटलर हैं, इटली में

क्या ये भारतमाता के लाल अनपढ़ हैं? पुराने ज़माने के संस्कृत-पाठशालाओं के विद्यार्थी हैं? कभी नहीं। ये तो अँगरेज़ी स्कूलों-कालेजों के ही पढ़े हुए हैं। यूनिवर्सिटियाँ तो हमें आगे बढ़ना ही सिखलाती हैं और हमारी ग़ुलामी की भावना को दूर करती हैं। कांग्रेस के पिछले आन्दोलन से भी यह पता चलता है कि पढ़े-लिखों में ही स्वतन्त्रता पाने की विशेष अभिलाषा है।

पहले प्रश्न का हमने उत्तर दे दिया। अब हम दूसरे प्रश्न पर विचार करेंगे।

शिक्षितों में बेकारी ज़रूर है, लेकिन कुछ लोग उसे बढ़ाकर भी कहते हैं। अगर एक ग्रेजुएट पुलिस का सिपाही होता है तो लोग हाहाकार करते हैं। क्या योरपीय देशों में ग्रेजुएट पुलिस के सिपाही नहीं हैं? ज़रूर हैं। इसके लिए वहाँ लोग शिक्षा-संस्थाओं को कभी दोष नहीं देते हैं, बल्कि उद्योग-धन्धों के बढ़ाने की कोशिश करते हैं और आदमी के लिए उपयुक्त काम पैदा करते हैं। बी० ए०, एम० ए० पासों की बात छोड़िए, कानपुर के सरकारी टेकनिकल स्कूल के पढ़े लड़के, डफ़रिन के शिक्षित केडेट, रुड़की के इंजीनियर, कृषिशास्त्र-विशेषज्ञ और डाक्टर इत्यादि भी तो काफ़ी संख्या में भारत में बेकार हैं—विदेशी 'डिगरी होल्डर' भी यहाँ बेकार मिल जायँगे।

इससे साफ़ ज़ाहिर है कि शिक्षा-संस्थाओं का बेकारी के सवाल से कोई सम्बन्ध नहीं है। बेकारी का सवाल तो तभी हल हो सकता है जब भारतवर्ष में उद्योग-धन्धों की काफ़ी उन्नति होगी और नये नये कारख़ाने खुलेंगे, जिनमें हमारे पढ़े-लिखे नवयुवक अपने योग्यतानुसार काम पायँगे।

अर्थशास्त्र के आचार्य डाक्टर कौल का भी यही कहना है—"पढ़े-लिखों को काम दिलाने के दो तरीक़े हैं। पहला यह कि राष्ट्रीय आय का एक बड़ा भाग इस समाज के हाथ आये और दूसरा यह कि राष्ट्रीय आय बढ़ाई जाय।" चूँकि भारत की वर्तमान दशा में पहले तरीक़े से कुछ फ़ायदा नहीं होने का, इसलिए दूसरे तरीक़े से काम लेना चाहिए। दूसरे तरीक़े के माने हैं कृषि तथा व्यापार की तरक़्क़ी।

यूनिवर्सिटियों से जैसा हम देखते हैं, देश का फ़ायदा है, हानि बिलकुल नहीं। शिक्षा का प्रचार दिन पर दिन बढ़ना चाहिए। इस गुरुतम कार्य का भार राजा और प्रजा दोनों पर है। सरकार के ऊपर इसका विशेष भार है, यह सभी मानते हैं। लेकिन भारत की अँगरेज़ी सरकार, मालूम होता है, हिन्दुस्तानियों के लिए शिक्षा की ज़रूरत नहीं समझती है। शिक्षा के लिए भारत-सरकार का ख़ज़ाना हमेशा ख़ाली रहा है।

इसी सरकार ने अपने देश में अगले ५ वर्षों के लिए बजट में यूनिवर्सिटियों के वास्ते क़रीब ४० लाख रुपया और मंज़ूर किया है। शिक्षा के लिए यहाँ भारत में फ़ी आदमी ४ आना ३ पैसा सरकारी कोष से प्रतिवर्ष ख़र्च होता है, पर फ़ौज का ख़र्च हर एक आदमी पीछे १ रुपया ९ आना २ पैसा है।

सरकार शिक्षा को जैसा चाहिए वैसा प्रोत्साहन नहीं दे रही है, इसलिए यहाँ के धनी-मानी और दानी सज्जनों को आगे आना चाहिए। भारतवर्ष में अब भी काफ़ी पैसा है, दानियों की भी कमी नहीं है। सिर्फ़ नदी के बहाव को एक तरफ़ से रोक कर दूसरी तरफ़ ले जाना है। जो धन मन्दिरों, तालाबों और 'साधु-सन्तों' में ख़र्च होता है उसको अब स्कूलों, कालेजों और यूनिवर्सिटियों में ख़र्च करना है। इसकी अब सख़्त ज़रूरत है।

अभी हाल में ब्रिटेन के लार्ड नूफ़ील्ड ने आक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय को लगभग ३ करोड़ रुपया दान किया है। वहाँ की जनता की विद्या की तरफ़ कैसी रुचि है, इससे भली भाँति प्रकट हो जाता है। जिन्होंने काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय को देखा है वे यह सुनकर अवश्य आश्चर्य करेंगे कि यह सब करामात सिर्फ़ १½ करोड़ रुपये की है। उक्त विश्वविद्यालय की महत्ता को देखते हुए १½ करोड़ की रक़म बहुत थोड़ी मालूम पड़ती है। क्या भारत में नूफ़ील्ड नहीं है? क्या यहाँ का एक आदमी ३ करोड़ का दान नहीं कर सकता है? इन सवालों का जवाब हमारे लक्ष्मीपति भाई ही देंगे। उनके जवाब पर देश का भविष्य बहुत कुछ निर्भर करता है।

भारतीय बीमा-व्यवसाय की प्रगति

लेखक, श्रीयुत अवनोन्द्रकुमार विद्यालंकार

बीमा का महत्त्व

समाज व राष्ट्र के आर्थिक व सामाजिक जीवन में बीमा का क्या स्थान है, इसको भारतीय जनता ने अभी तक ठीक प्रकार से हृदयंगम नहीं किया है। आन्तरिक और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए बीमा सबसे अधिक आवश्यक है। कोई भी व्यवसायी अपना माल भेजने का साहस न करेगा जब तक कोई बीमा-कम्पनी उसकी सुरक्षा की ज़िम्मेवारी अपने ऊपर न ले। कोई भी व्यवसायी कोई नया कारख़ाना व स्टोर न खोलेगा जब तक उसका बीमा न करा लेगा। बीमा केवल आग लगने के भय से ही नहीं, बल्कि आग लगने के फलस्वरूप होनेवाले नुक़सानों के कारण भी आवश्यक है। इसी प्रकार कोई माल भारत से बाहर विदेश नहीं भेजा जा सकता जब तक उसका सामुद्रिक बीमा न हो गया हो। कोई भी व्यक्ति अपना मोटर बिना बीमा कराये सड़क पर चलाने का साहस न करेगा। यह केवल इसीलिए नहीं कि सड़क ख़राब होने से मोटर में पंचर हो जाने का अन्देशा है या मोटर-दुर्घटना से क्षति पहुँचने का भय है, बल्कि इसलिए भी कि कोई तीसरी पार्टी हर्जाने का दावा न कर दे। इसी प्रकार वैयक्तिक जीवन में दूरदर्शी आदमी अपने जीवन का बीमा कराते हैं, जिससे उनका परिवार उनके पीछे निराश्रित न रहे। यही नहीं, इससे बाधित रूप से मितव्ययिता की आदत पड़ती है। जीवन-बीमा के रूप में जमा रुपया राष्ट्र की एक सम्पत्ति होता है, जिससे नये नये उद्योग-धंधे चलते हैं और नये नये कारबार खुलते हैं।

यद्यपि बीमा-व्यवसाय हमारे देश में १८७१ से प्रारम्भ हुआ है, तथापि इसकी विशेष प्रगति पिछले पन्द्रह सालों में ही हुई है। मगर अब भी हमारे देश के जनसाधारण की दृष्टि में जीवन-बीमा का महत्त्व नहीं चढ़ा है।

भारतीय बीमा-व्यवसाय की प्रगति

१८७१ में पहले-पहल 'बाम्बे-म्युच्युअल कम्पनी' की स्थापना हुई। १८७५ में 'ओरियण्टल कम्पनी' ने काम शुरू किया। १८९७ में 'इण्डियन म्युच्युअल कम्पनी', कलकत्ता, एम्पायर आफ़ इण्डिया कम्पनी, बम्बई, की स्थापना हुई। इसके बाद लाहौर की भारत-बीमा-कम्पनी स्थापित हुई। १८७१-१९०६ तक बीमा-कम्पनियों की संख्या ५-६ से अधिक नहीं बढ़ी। १९०६ के बाद स्वदेशी आन्दोलन से अन्य व्यवसायों के समान इसको भी बल मिला। उस समय की मिली हुई उत्तेजना का ही यह फल है कि बीमा-व्यवसाय धीरे धीरे मगर स्थिरता के साथ तरक्क़ी करता जा रहा है।

१९२४ तक यह प्रगति बहुत धीमी थी। इस साल बीमा-कम्पनियों की कुल संख्या केवल ५३ थी। १९३४ में यह बढ़कर १९४ होगई।

१९१२ व १९२८ के बीमा-कम्पनी-एक्ट के मुताबिक़ १९३४ के साल इस देश में बीमा का काम करनेवाली कम्पनियाँ इस प्रकार थीं—

वर्ष	कुल	हिन्दुस्तान में रजिस्टर्ड	केवल जीवन बीमा का काम करनेवाली	जीवन बीमा व दूसरे काम करनेवाली	केवल दूसरे बीमा करनेवाली
१९३२	४१९	१६९	१२४	२९	१६
१९३३	४४१	१९४	१४५	३४	१५
१९३४	४६६	२१७	१६५	३६	१६

२१७ भारतीय बीमा-कम्पनियों का प्रान्तवार विवरण इस प्रकार है—

बम्बई	६१	सिंध	१४
बंगाल	४१	दिल्ली	१०
मदरास	३७	संयुक्त-प्रांत	१०
पंजाब	२९	इतर प्रांत	१५

१४९ विदेशी-कम्पनियों में से १२५ के अतिरिक्त अन्य जीवन-बीमा के अलावा अन्य प्रकार का बीमा भी कार्य करती हैं। विदेशी कम्पनियों का देश-विभाग प्रकार है—

ग्रेट ब्रिटेन	६९	अमरीका	[illegible]
ब्रिटिश साम्राज्य के इतर देश	२०	जापान	[illegible]
योरपीय देशों की	२०	जावा	५

१९३४ में २७ नई कम्पनियाँ खुलीं जिनका प्रान्तवार विवरण इस प्रकार है—

बम्बई ५ पंजाब ७ मदरास ६

पिछले पाँच सालों में १०० नई बीमा-कम्पनियाँ खुलीं, मगर काम न मिलने के कारण १३ को अपना काम-धंधा समेट लेना पड़ा।

नवीन काम

देशी और विदेशी बीमा-कम्पनियाँ किस प्रकार और कितना काम करती हैं, यह नीचे के कोष्ठक से मालूम होगा। इससे यह भी मालूम होगा कि देशी कम्पनियों की अपेक्षा विदेशी कम्पनियाँ कितना आगे बढ़ी हुई हैं और किस प्रकार इस देश का रुपया विदेश ले जा रही हैं।

बीमा-पत्रकों की संख्या	बीमा की रक़म (करोड़ रु०)	सप्ताह का उत्पन्न (करोड़ रु०)	प्रत्येक पालिसी की औसतन क़िस्त रुपये
१९३२			
भारतीय कम्पनी			
१,१३,०००	१९·०६	१	१,६७४
परदेशी कम्पनी			
२६,०००	८·६	५	३,३७६
कुल १,३९,०००	२७·६६	१६	
१९३३			
भारतीय कम्पनी			
१,५५,००५	२४·००	१·२५	१,५५५
विदेशी कम्पनी			
२,८०००	९·००	·५०	३,१२६
कुल १,८३,०००	३३·००	१·७५	
१९३४			
भारतीय कम्पनी			
१,८३,०००	२८·००	१·५०	१,५२८
विदेशी कम्पनी			
३२,०००	१७·००	·५०	३,२१३
कुल २,१५,०००	३८·००	२·००	

इससे स्पष्ट है कि इस व्यवसाय में भी बाज़ार विदेशी कम्पनियों के अधीन है। मक्खन और मलाई विदेशी कम्पनियाँ ले जाती हैं, और भारतीय कम्पनियों को छाछ से ही सन्तोष करना पड़ता है। इस बात को बीमा-कम्पनियों के चालू काम का नीचे दिया ब्योरा और अधिक स्पष्ट करता है—

चालू काम

	बीमा-पत्रकों की संख्या	बीमा की रक़म (करोड़ रु०)	वार्षिक उत्पन्न (करोड़ रु०)
१९३२	भारतीय ५·५४ लाख	१०२	४·७५
	विदेशी २·२० ”	७६	४·२५
१९३३	भारतीय ६·३६ ”	११४	५·३३
१९३४	भारतीय ७·४२ ”	१३२	६·००
	विदेशी २·४५ ”	८४	४·५०

इसका अर्थ है कि प्रतिवर्ष ४ करोड़ ५० लाख और प्रतिमास ३७ लाख और प्रतिदिन सवा लाख रुपया इस देश से विदेशों को बीमा के रूप में जाता है।

ऊपर हमने जीवन-बीमा के कार्य का उल्लेख किया है। इतर बीमा के धंधों की प्रगति निम्न कोष्ठक से मालूम होगी—

(रुपये लाखों में)

	१९३२		१९३३		१९३४	
	भारतीय	विदेशी	भारतीय	विदेशी	भारतीय	विदेशी
आग का प्रीमियम	२९	९७	३१	९७	३०	१०५
दुर्घटना और विविध	२८	४८	३८	४७	१७	५१
सामुद्रिक	८	३६	९	३५	७	३७
योग सामान्य प्रीमियम	६५	१८१	७२	१७९	५४	१९३

इससे स्पष्ट है कि भारतीय कम्पनियाँ इस दिशा में विदेशी कम्पनियों से पीछे ही नहीं हैं, बल्कि उन्होंने १९३३ में प्राप्त किया बाज़ार भी १९३४ में खो दिया है। सब और देशी कम्पनियों की आमदनी घटी है। इसका अर्थ है कि विदेशी कम्पनियों से मुक़ाबिला अभी बहुत ज़बर्दस्त है और भारतीय कम्पनियों के पैर अभी जीवन-बीमा के समान इधर जमे नहीं हैं।

यह चित्र निराशाजनक मालूम होता है। मगर जब हम पिछले २५ साल की प्रगति को देखते हैं तब कहना

पड़ता है कि निराशा का कोई स्थान नहीं है। १९२१ के असहयोग-आन्दोलन के स्थगित होने के बाद जब बहुत-से देशभक्त जेलों से बाहर निकले और उन्होंने अपने पुराने पेशों को करना पसन्द न किया तब राष्ट्रीय नेताओं का ध्यान इस ओर गया और यह उन्हीं के उद्योग का फल है कि १९२४ में जहाँ बीमा-कम्पनियों की कुल संख्या ७५ थी, वहाँ १९३४ में २१७ हो गई।

प्रगति का इतिहास

पिछले सालों में भारतीय बीमा-व्यवसाय ने कितनी प्रगति की है, यह निम्न कोष्ठक से भले प्रकार ज्ञात होगा—

वर्ष	साल के बीच नया काम-काज	साल के अन्त में कुल काम
१९१४	३२० लाख	२२½ करोड़
१९१५	२२४ ,,	२३ ,,
१९१६	१७५ ,,	२२ ,,
१९१७	२२३ ,,	२४ ,,
१९१८	२८७ ,,	२५ ,,
१९१९	४५० ,,	२८ ,,
१९२०	५१७ ,,	३१ ,,
१९२१	५४७ ,,	३३ ,,
१९२२	५६४ ,,	३७ ,,
१९२३	५८५ ,,	३९ ,,
१९२४	६८९ ,,	४२ ,,
१९२५	८१५ ,,	४७ ,,
१९२६	१०३५ ,,	५३ ,,
१९२७	१२७७ ,,	६० ,,
१९२८	१५४१ ,,	७१ ,,
१९२९	१७२९ ,,	८२ ,,
१९३०	१६५० ,,	८९ ,,
१९३१	१७७६ ,,	९८ ,,
१९३२	१९६६ ,,	१०६ ,,
१९३३	२४८३ ,,	११६ ,,
१९३४	२८९२ ,,	१३७ ,,

इससे स्पष्ट है कि १९२४ से इसमें झपाटे के साथ उन्नति हुई है। इसमें उल्लेख योग्य बात यह है कि जहाँ प्रतिवर्ष नया काम बढ़ा है, उसी के साथ निरन्तर प्रतिवर्ष प्रीमियम तथा अन्य चीज़ों में भी वृद्धि होती रही है। नीचे के कोष्ठक से मालूम होगा कि प्रीमियम और जीवन-फ़ंड में पिछले सालों में कैसी वृद्धि होती रही है—

वर्ष	प्रीमियम से आमदनी	कुल आमदनी	जीवन-फ़ंड
१९१३	१०३ लाख	१२७ लाख	५८३ लाख
१९१४	१०९ ,,	१३५ ,,	६३६ ,,
१९१५	१०७ ,,	१४१ ,,	६७७ ,,
१९१६	१०७ ,,	१३७ ,,	६८६ ,,
१९१७	१११ ,,	१४४ ,,	७२० ,,
१९१८	११४ ,,	१५४ ,,	७३६ ,,
१९१९	१२८ ,,	१६७ ,,	७८७ ,,
१९२०	१४० ,,	१९१ ,,	८४७ ,,
१९२१	१६० ,,	२१९ ,,	८६३ ,,
१९२२	१७४ ,,	२३७ ,,	९३७ ,,
१९२३	१८६ ,,	२४९ ,,	१०३० ,,
१९२४	२०५ ,,	२९० ,,	१२५७ ,,
१९२६	२५३ ,,	३३३ ,,	१३७६ ,,
१९२७	२९२ ,,	४२६ ,,	१५७१ ,,
१९२८	३५५ ,,	४२३ ,,	१७१७ ,,
१९२९	३६० ,,	४६२ ,,	१८७३ ,,
१९३०	४३१ ,,	५४० ,,	२०५३ ,,
१९३१	४६८ ,,	५८७ ,,	२२४४ ,,
१९३२	५१८ ,,	६८६ ,,	२५०८ ,,
१९३३	५७७ ,,	८१६ ,,	२८७२ ,,
१९३४	६५८ ,,	८३५ ,,	३१८७ ,,

सरसरी दृष्टि से देखने पर यह प्रगति सन्तोषजनक मालूम होती है। नये काम, कुल चालू काम, प्रीमियम सूद की आमदनी, जीवन-बीमा का जमाफ़ंड आदि सब ओर प्रगति ही नज़र आती है। मगर जब हम भारत की बढ़ती हुई जन-संख्या और उसके जीवन-निर्वाह आदि बातों को लक्ष्य में रखकर विचार करते हैं तब ये आँकड़े प्रभावोत्पादक नहीं मालूम होते। योरपीय देशों और अमरीका के जीवन-बीमा की रक़मों से जब हम इनकी तुलना करते हैं तब मालूम होता है कि इस

में कितना व्यापक क्षेत्र कार्य करने के लिए ख़ाली पड़ा है—

	डालर
अमरीका	१,०७,९४,८०,००,०००
योरप	२५,००,००,००,०००
इँग्लेंड	१२,६२,५०,००,०००
कनाडा	७,३९,३०,००,०००
जापान	४,५५,८०,००,०००
जर्मनी	४,१६,२०,००,०००
आस्ट्रेलिया	१,७७,१०,००,०००
फ्रांस	१,४०,००,००,०००
इटली	१,११,००,००,०००
दक्षिण-अफ़्रीका	७१,००,००,०००
डेन्मार्क	५०,००,००,०००
दक्षिण-अमरीका	५०,००,००,०००
भारत	३१,००,००,०००
न्यूज़ीलेंड	१२,३०,००,०००

हमारा देश इस व्यवसाय में कितना पिछड़ा हुआ है, इसका अन्दाज़ा इसी से किया जा सकता है कि हमारे देश में प्रतिव्यक्ति बीमा की रक़म ६) आती है, जब कि अन्य देशों में—

	प्रतिव्यक्ति बीमा
संयुक्त-राज्य (अमरीका)	२,३०० रु०
कनाडा	१,८०० ,,
न्यूज़ीलेंड	१,००० ,,
आस्ट्रेलिया	८०० ,,
इँग्लेंड	७५० ,,
स्वीडन	६०० ,,
इटली	४५० ,,
नार्वे	४०० ,,
जापान	७०० ,,
नीदरलेंड	३५० ,,
भारत	६ ,,

मार्ग की बाधायें

भारत अन्य व्यवसायों के समान इसमें भी पिछड़ा हुआ है। इसके दो कारण हैं। एक बाह्य और दूसरा आन्तरिक। बाह्य कारणों में विदेशी कम्पनियों की तीव्र प्रतियोगिता एक प्रमुख कारण है। ऊपर हम बता चुके हैं कि किस प्रकार विदेशी कम्पनियों का भारतीय बाज़ार पर प्रभुत्व है। वे भारतीय कम्पनियों से जहाँ अधिक सक्षम हैं, वहाँ उनको यहाँ व्यवसाय करने के लिए रियायतें भी बहुत-सी मिली हुई हैं। उनको भारत-सरकार के पास कोई पूँजी जमा नहीं करनी पड़ती। भारत में बीमे का जो कुछ कारबार वे करती हैं उसको दिखाने के लिए वे बाध्य नहीं हैं। इसलिए वे ग्राहक को फँसाने के लिए मनमाना ख़र्च कर सकती हैं। उन पर इसके लिए कोई बन्धन नहीं है। 'यूनियन एंश्युरेंस सोसायटी' के मैनेजर मिस्टर डब्ल्यू० एच० वाल्कर के कथनानुसार 'बीमा का जहाँ तक ताल्लुक़ है, भारत मुक्त वाणिज्य द्वार का देश है। यहाँ कोई रक़म जमा नहीं करनी पड़ती, और नाम-मात्र को प्रतिबन्धक-क़ानून है। कर विशेषकर वास्तविक आमदनी पर इन्कमटैक्स भर है।' इससे अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि विदेशी और भारतीय कम्पनियाँ समान स्थिति में अपना कारबार नहीं कर रही हैं। इसके मुक़ाबिले में तुर्की, स्पेन, इटली, आस्ट्रेलिया, ब्रेज़िल, चिली, उरुगुआ आदि देशों में या तो विदेशी कम्पनियों के लिए दरवाज़ा एकदम बन्द है या इतने कड़े क़ानून हैं कि उनको काम ही नहीं मिलता। सन्तोष की बात इतनी है कि भारत-सरकार ने देशी कम्पनियों की इस दैन्यावस्था को दूर करने का निश्चय कर लिया है और इस बात को स्वीकार कर लिया है कि जिस देश में भारतीयों को बीमा का व्यवसाय करने की मनाही होगी उस देश की कम्पनी इस देश में काम-काज न कर सकेगी। इतना ही नहीं, उसने नये बिल में जो ३ फ़रवरी १९३७ को असेम्बली में पेश हुआ है—विदेशी कम्पनियों के लिए भारत-सरकार के पास पूँजी जमा कराना, और भारत में किये धन्धे का हिसाब अलग रखने और उसकी भारत-सरकार के एक्युरेटर-द्वारा जाँच कराने का भी विधान किया है। मगर इतना ही काफ़ी नहीं है।

भारतीय बीमा-कम्पनियाँ संरक्षण चाहती हैं। सरकार की अब तक की उदासीनता भारतीय बीमा-व्यवसाय की उन्नति के मार्ग में बहुत बाधक रही है। सरकार अपना सब बीमा का काम व बीमे की रक़म देशी कम्पनियों में जमा कराकर देशी व्यवसाय को प्रोत्साहन दे सकती है। इसी प्रकार रेलवे, कार्पोरेशन, ट्राम-कम्पनी, पोर्टट्रस्ट, म्युनिसि-

पल बोर्ड आदि सरकारी व नीम सरकारी संस्थाओं को बाधित कर सकती है कि वे बीमा की सब रक़में देशी कम्पनियों में जमा करें। देशी कम्पनियों का विदेशी कम्पनियों के ऊपर वर्चस्व और श्रेष्ठता स्थापित करने के लिए यह भी आवश्यक है कि इस देश में बीमा का काम करनेवाली विदेशी कम्पनियाँ अपना बीमा देशी कम्पनियों में करें। इसी प्रकार अन्य उपायों-द्वारा सरकार देशी बीमा-कम्पनियों को संरक्षण दे सकती है। यह कहना कि देशी और विदेशी कम्पनियों की होड़ अनुचित तरीक़े पर नहीं चल रही है, ठीक नहीं है। यह सम्भव है कि यह सच हो कि विदेशी कम्पनियाँ अनुचित वग़ैर क़ानूनी साधनों, व उपायों का मुक़ाबिले में सहारा न लेती हों। विदेशों की अपेक्षा यहाँ दर उन्होंने न गिराई हो, एजेण्टों को भी वे देशी कम्पनियों की अपेक्षा अधिक कमीशन न देती हों। मगर नये बिल के द्वारा एजेण्टों के कमीशन की दर का निश्चित किया जाना इस बात का सूचक है कि प्रतियोगिता अनुचित ढंग पर चल रही है। यह सब न भी हो, तो भी यह मानना होगा कि दोनों समान स्थिति में नहीं हैं। उचित प्रतियोगिता उन्हीं के बीच कही जा सकती है जो समान बल और समान स्थिति के हों। इस दृष्टि से देखने पर मालूम होगा कि भारतीय बीमा-कम्पनियाँ मासूम बच्चे हैं। इसके मुक़ाबिले में विदेशी कम्पनियों को यह व्यवसाय करते हुए बहुत साल हो गये हैं। उनका विश्वव्यापी संगठन है और विश्वव्यापी व्यापार है। इसके मुक़ाबिले में अधिकांश भारतीय बीमा-कम्पनियों का व्यवसाय किसी प्रान्त की सीमा से भी आगे नहीं बढ़ा है। इसलिए देशी बीमा-कम्पनियों को सरकार-द्वारा संरक्षण अवश्य मिलना चाहिए।

आन्तरिक बाधायें

विदेशी कम्पनियों की तीव्र प्रतियोगिता के अतिरिक्त भारतीय बीमा-व्यवसाय की उन्नति में दूसरी रुकावट आन्तरिक बाधायें हैं। भारतीय कम्पनियों की पूँजी थोड़ी है। इसी का परिणाम है कि पिछले दस वर्षों में स्थापित बहुत-सी कम्पनियों के पाँव अभी जमे नहीं, कुछ एक ने मुनाफ़ा अभी नहीं बाँटा है, और पिछले पाँच वर्षों में स्थापित कम्पनियों में से कई ने अपना काम-धन्धा बन्द कर दिया है। इसका कारण यही है कि देखादेखी पर्याप्त पूँजी के अभाव में भी बहुत-सी कम्पनियाँ खड़ी हो जाती हैं और पीछे काम न चलने पर बैठ जाती हैं। कुछ ने तो और कोई रोज़गार न देखकर बीमा-कम्पनी खोलने का बीड़ा ले रक्खा है। इसका फल यह होता है कि ऐसे अनुत्तरदायी लोगों के उठाये काम के फ़ेल हो जाने से सारे व्यवसाय को धक्का लगता है। यद्यपि नये बिल में यह व्यवस्था की गई है कि जीवन-बीमा का काम आरम्भ करने से पहले कम से कम दो लाख रुपया सरकार के पास जमा कराना और ५० हज़ार से काम चालू करना होगा। हम चाहते हैं कि बीमा कम्पनी की पूँजी चार साल के अन्दर दो लाख हो जानी चाहिए। ऐसी एक धारा बिल में जोड़ दी जाय। कम्पनी के जीवन के स्थायित्व के लिए यह आवश्यक है। जीवन-बीमा का सम्बन्ध एक व्यक्ति से व इसी जीवन से नहीं, अपितु एक परिवार और इस जीवन के बाद के जीवन से भी है। इसका सम्बन्ध वस्तुतः सारे राष्ट्रीय व सामाजिक जीवन से है। इसलिए यह ज़रूरी है। डिपाज़िट की रक़म दो लाख रखकर कम्पनी के जीवन को स्थायी बनाने का यत्न किया गया है और यह उचित है। पूँजी थोड़ी होने की हालत में डिपाज़िट की रक़म का ज़्यादा होना बीमा करानेवालों के लाभ की दृष्टि से उचित ही है।

नवीन कम्पनियाँ अधिक मात्रा में काम प्राप्त करने के लिए एजेण्टों को कमीशन भरपूर देती हैं। एजेण्ट भी काम पाने के प्रलोभन में मित्रों, सम्बन्धियों, रिश्तेदारों तथा अन्य व्यक्तियों को बीमा कराने के लिए बाधित करने के लिए उनको अपने कमीशन में से कुछ हिस्सा दे देते हैं, और बहुत बार तो अपना हिस्सा क़तई छोड़ देते हैं, और कई तो पहली बार का प्रीमियम तक अपने पास से दे देते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि बीमा करानेवाले कुछ साल के बाद प्रीमियम देना बन्द कर देते हैं। १९२९ में ऐसे लोगों की संख्या ३० प्रतिशत और १९३३ में इनकी संख्या ४६ प्रतिशत थी। यह बढ़ती हुई संख्या बता रही है कि इसको रोकने के लिए क़ानून की आवश्यकता है। एजेण्टों के लिए लाइसेन्स की व्यवस्था करने और एजेण्टों के कमीशन और रिबेट की दर निर्धारित कर देने से आशा है, बिल इस बुराई को कम करने में सहायक होगा।

पूँजी का उपयोग

भारतीय बीमा-कम्पनियों की इस समय ३५ करोड़ से ऊपर पूँजी सरकारी सिक्यूरिटीज़ में जमा है। यह पूँजी इस समय अचल है और इसका उपयोग देश के व्यवसाय तथा उद्योग-धन्धों के बढ़ाने में कुछ नहीं हो रहा है। इसके मुक़ाबिले में विदेशी कम्पनियों की पूँजी का विनियोग तद्देशीय उद्योग-धन्धों को बढ़ाने में होता है। यहाँ बहुत-से कार्य पूँजी के अभाव में रुके पड़े हैं। कराची से बम्बई तक रेल बनाने का काम पूँजी के बिना रुका पड़ा है। दूसरी ओर सरकार के पास जमा कराने से सूद आज-कल कम होता जाता है। इसलिए ज़रूरत इस बात की है कि बीमा-कम्पनियों को अपनी पूँजी का कुछ भाग देश के उद्योग-धन्धों और व्यवसाय में लगाने की इजाज़त दी जाय। इससे जहाँ बीमा-कम्पनियों को लाभ होगा, वहाँ देश के आर्थिक जीवन को भी बल मिलेगा। बीमा कम्पनियाँ म्युनिसपैलिटियों के सहयोग से ग़रीब लोगों के लिए मकान बनाने का काम अपने हाथ में ले सकती हैं। दिल्ली की घनी बस्ती की समस्या सरकार को इस समय परेशान कर रही है। किरायेदार किराये की ऊँची रेट देखकर दङ्ग हैं। बीमा-कम्पनियाँ इस कार्य में जनता और सरकार दोनों के लिए अपनी पूँजी से सहायक हो सकती हैं। दुःख है कि नये बिल में इसकी कोई व्यवस्था नहीं रक्खी गई है। आशा है, सिलेक्ट कमिटी इस अभाव को दूर कर देगी।

युवकों के लिए

बीमा-व्यवसाय अभी बचपन में है और शहरों तक ही सीमित है। गाँवों की तो बात दूर रही, बड़े बड़े क़स्बों तक भी नहीं पहुँचा है। इस व्यवसाय को गाँवों तक पहुँचाने के लिए यह ज़रूरी है कि यदि एक परिवार के दो या तीन व्यक्ति एक ही कम्पनी में बीमा करावें तो उन्हें प्रीमियम में कम से कम पाँच प्रतिशत छूट दी जाय। नवीन बिल इस विषय में सर्वथा चुप है। मगर व्यवसाय के विस्तार और लाभ की दृष्टि से यह आवश्यक है।

यह व्यवसाय युवकों की बेकारी बहुत अंशों में दूर करने में सहायक हुआ है। यह तो एक प्रकट रहस्य है कि १९२२ के बाद असहयोग-आन्दोलन स्थगित होने पर बहुत-से वकीलों और नेताओं को इसी व्यवसाय ने अवलम्ब दिया है और जीविका से निश्चिन्त कर दिया है। कुछ को तो इस व्यवसाय ने अमीरों की श्रेणी में पहुँचा दिया है। यह व्यवसाय कितना लाभप्रद है, यह इसी से जाना जा सकता है कि भारत की बड़ी चार बीमा-कम्पनियों ने अपने एजेण्टों को इस प्रकार कमीशन दिया है—

सन्	रुपये
१९३०	२८,२६,१८०
१९३१	२७,५१,३७१
१९३२	२८,९६,९९१
१९३३	३३,०४,१८४

इससे स्पष्ट है कि इस व्यवसाय में उत्साही, परिश्रमी, चतुर युवकों के लिए बहुत क्षेत्र खुला हुआ है। आशा है, बेरोज़गारी के कारण इधर-उधर भटकनेवाले युवक अपने भाग्य की परीक्षा इस लाइन में भी करेंगे।

कवि गा दुखियों के आह गीत

लेखक, श्रीयुत मित्तल

कवि बहुत गा चुके मधुर गीत,
उन मधुर मिलन के, मधुर गीत
अब हृदय-तंत्रि के तार छेड़
कवि गा दुखियों के आह गीत।
वे मधुर गीत, ये आह गीत
कवि दोनों ही हैं देख गीत
उनसे भरता वैभव अपार
इनसे बहते आँसू पुनीत।
कवि गा दुखियों के रुदन गीत—
जिनके नन्हें नन्हें बालक—
रोटी को उठते चीख, चीख
कवि गा अब ऐसे आह गीत

एकांकी नाटक

कलिंग युद्ध की एक रात

लेखक, श्रीयुत दुर्गादास भास्कर, एम० ए०, एल-एल० बी०

पहला दृश्य

लिंग-युद्ध के अन्तिम दिनों में चक्रवर्ती सम्राट् अशोक की सेनायें कलिंग की राजधानी स्वर्णपुर को घेरे हुए हैं। वसन्त-ऋतु की तारांभरी रातें हैं। सम्राट् की सेना के दो सिपाही युद्धजित और वसन्तकुमार एक तम्बू में बैठे हैं। वसन्तकुमार दिये की रोशनी में कोई पुस्तक पढ़ रहा है। युद्धजित रात के सन्नाटे में आकाश में टिमटिमाते हुए तारों को देख रहा है। तम्बू के पीछे एक रक्षक टहल रहा है।]

युद्धजित—आज मुझे अपनी जन्मभूमि की याद फिर तड़पा रही है। तारों के मध्यम प्रकाश में ये सफ़ेद सफ़ेद तम्बू कैसे भले मालूम देते हैं, ठीक उसी तरह जैसे वसन्त-ऋतु की छिटकी हुई चाँदनी में नहाते हुए हमारे उपवनों के पेड़।

इस समय हवा के मधुर झोंके मेरे घरवालों को थपकियाँ देकर मीठी नींद सुला रहे होंगे। हाँ, शायद वह मेरी याद में अभी जाग रही हो और इस भयंकर युद्ध से जहाँ क्रूर मृत्यु हर समय घात लगाये बैठी है, मेरे बच निकलने की सम्भावना पर विचार कर रही हो।

मेरी प्यारी जन्मभूमि जहाँ भीनी भीनी सुगन्धि हवाओं के कंधों पर लदी रहती है, प्रकृति ने जहाँ अपनी निधि को लुटा दिया है, जहाँ फलों से लदे वृक्ष खड़े हैं, अनन्त का गीत गानेवाले सुन्दर झरने हरी-भरी घाटियाँ, हिमालय की गगनचुम्बी चोटियाँ, यह सब मेरे लिए स्वप्न हो गये हैं। आह! मेरे प्यारे देश भू-स्वर्ग कश्मीर......वहाँ के काँटों की याद भी मुझे तड़पा देती है। शायद मेरे बचपन के नवयुवक साथी इस समय अपने घरों में अनाज के ढेर लगा रहे होंगे........। इन दिनों वहाँ कितने ही फल पके होंगे। पर मेरे भाग्य में वह सब चीज़ें कहाँ? अपने देश की सुरम्य भूमि को छोड़कर मैं अपने जीवन के दिन इस सूखे बंजर मैदान में गुज़ार रहा हूँ। यह सब क्यों? क्योंकि हिन्दू-कुलपति महाराज कलिंग के दरबार में कुछ बौद्ध भिक्षुओं का अपमान हुआ था, इसलिए कलिंग-अधिपति को सम्राट् अशोक की अधीनता स्वीकार करनी होगी। उनके अपमान के प्रतिशोध के लिए। मेरे ईश्वर! अपने प्यारे देश को छोड़े हुए मुझे एक साल हो रहा है।......लेकिन नहीं। इन बातों से क्या? तक़दीर में यही लिखा होगा। वसंतकुमार, सुन्दर चीज़ों के विचार-मात्र से ही हृदय में कसक-सी क्यों उठने लगती है?

वसंतकुमार—इसलिए कि सुन्दरता लोक-पूजित होने पर भी स्थिर नहीं है। वह समय के बहाव में बहती चली जाती है। कोई चीज़ उसके प्रवाह को रोक नहीं सकती। हमारी सृष्टि की यही एक करुण कहानी है।

युद्धजित—इस युद्ध के ख़ूनी पंजों में हमें फँसे हुए कितना समय बीत चुका है! जन्मभूमि की किसी अदना बस्ती की कोई गली भी याद आ जाती है तो हृदय में एक हूक सी उठती है। वसंतकुमार, दिन-रात हम अपने विपक्षियों के ख़ून से होली खेलते हैं, परन्तु हमारी नसों में बहनेवाले एक बिन्दु लहू में भी उन स्वर्णपुरनिवासियों के विरुद्ध जिनके ख़ून से हमारे हाथ आठों पहर रँगे रहते हैं, ज़रा भी वैरभाव नहीं है। तुम्हें इस पर कभी हैरानी नहीं हुई?

वसंतकुमार—हैरानी! मुझे तो कोई हैरानी नहीं होती। जो विनाशकारी मृत्यु के साथ रहकर आठों पहर उसके रौरव ताण्डव का तमाशा देख रहा हो, अपने विपक्षियों पर किये गये एक एक वार के दुष्परिणामय अन्त को दिल में लिये फिरता हो, उसके ख़ून में वैरभाव कैसे रह सकता है? और फिर हम मुर्दों से वैरभाव भला क्योंकर कर सकते हैं। युद्धजित, जहाँ मौत विनाश का भयानक खेल खेल रही हो, जैसा कि आज-कल यहाँ, तो समझ लो कि वहाँ 'तुम' और 'मैं' हमारे शत्रु और हमारे साथी

(पहरेदार गुज़रता है)

मुर्दों की तरह ही हैं, जिनकी आत्मायें किसी दूसरे रहस्यमय संसार के छोर पर विचर रही हों। युद्धजित, अब हमारी वह अवस्था कहाँ है, जो हमारे दिलों की गहराइयों में शत्रुता, द्वेष-भाव, घृणा या इस प्रकार के दूसरे विकारों का प्रवेश हो सके।......

हम उस अवस्था को पार कर चुके हैं। संसार के ये राजमुकुटधारी एक दूसरे से घृणा कर सकते हैं या धर्म के ठेकेदार नंगे सिरवाले ये भिक्षु जिनका अभिमान इन मुकुटधारी राजाओं से भी बढ़कर है और जो शायद यह समझते हैं कि मनुष्यों की परस्पर सहानुभूति उन्हें उनके उच्च पद से डिगा देगी वे एक-दूसरे के विरुद्ध ज़हर उगल सकते हैं या ईश्वर के प्रतिनिधि ये भूदेव एक दूसरे के विरुद्ध घृणा का प्रचार कर सकते हैं। शत्रुता और वैर-भाव को अपने दिलों में वही स्थान दे सकते हैं। हम तो केवल इसलिए हैं कि इन मुकुटधारियों और धर्म के ठेकेदारों की क्रूर इच्छाओं के इशारे पर मरें या दूसरों को मारें।

युद्धजित—यह तो नहीं कि समय गुज़रने के साथ हमारा उत्साह ठंडा पड़ गया है या यह कि दिल अपने कर्तव्य-परायणता के धर्म से उकताने लग गया हो। नहीं, हर्गिज़ नहीं। मैं इस समय भी चक्रवर्ती प्रियदर्शी सम्राट् अशोक के लिए अपने प्राण न्योछावर कर सकता हूँ। मृत्यु का समय तो नियत हो चुका है, चाहे वह घड़ी आज—इस रात को अभी आ जाय। पर आह! इस बात को मैं कैसे भूल जाऊँ कि मेरा यह कौमार्य जिसमें जीवन की उमंगें भरी हैं, जो सैकड़ों महत्त्वाकांक्षाओं को दिल में लिये है, जो गृहस्थ जीवन के सुखी बहाव में बहना चाहता है, जिसमें प्रेम की हिलोरें लेने की उत्कट आकांक्षा है, जो अमर यश का भूखा है, बताओ कुमारावस्था की इन उमंगों, आकांक्षाओं और उसके सुख-स्वप्नों को भूलकर मौत के भयानक विचारों को जिन्हें कौमार्य के संसार से दूर रहना चाहिए, भरी जवानी में मैं अपने दिल में कैसे स्थान दूँ? और फिर मृत्यु के रहस्य को समझने के लिए भी तो आयु की प्रौढ़ता चाहिए! पर इस बर्बरता के राज्य में हमारे सामने उसका नग्न नृत्य दिन-रात कराया जा रहा है। वसंतकुमार, मैं अपने जीवन के पहले ढंग को तिलाञ्जलि दे चुका हूँ। वे रंगीन स्वप्न और महत्त्वाकांक्षायें विस्मृति के गड़े में चली गई हैं, पर मुझे मेरी जन्मभूमि की याद नहीं भूलती। मेरी बस्ती के फलों से लदे हुए पेड़, निर्मल जल की बहती हुई नदियाँ, झरनों के आह्लादकारी गीत, हरी-भरी घाटियाँ और विशाल पर्वत-शिखरों का चित्र मेरी आँखों के सामने खिंचा रहता है। साँझ को घर लौटते हुए ढोरों के गले की घंटियों की मीठी आवाज़ अब भी मेरे कानों में सुनाई दे रही है। तुम्हीं बताओ, इन्हें मैं दिल से कैसे निकाल दूँ।

वसंतकुमार—युद्धजित, तुम ठीक कहते हो। जन्म-भूमि की छोटी छोटी प्यारी चीज़ों की मधुर स्मृति से हृदय अधीर होने लगता है। पाटलीपुत्र में मेरा घर ठीक पतितपावनी गङ्गा के किनारे है, जहाँ गङ्गाजल के कणों से लदे हुए हवा के झोंके मेरे हर वक़्त के साथी थे। दिन भर मैं माँझियों को माल से लदी हुई कश्तियों को खेते हुए देखा करता था। उनकी सुरीली तानें अब भी मेरे कानों में गूँज रही हैं। वहीं मैंने अपनी कुछ चुनी हुई कवितायें लिखी थीं।

युद्धजित—तुम्हारी सुन्दर कविताओं ने गंगा के किनारे पर जन्म लिया है। वहाँ कश्मीर में मैं भी मनोहर स्वप्नों के संसार में रहा करता था। पर मेरे स्वप्न तुम्हारी कविताओं का रूप धारण न कर सके। मेरा स्वर्ण-स्वप्न एक आदर्श समाज की सृष्टि करना चाहता था। मैं एक ऐसी संस्कृति और नीति को जन्म देना चाहता था जो इस संसार के इतिहास में एक नई चीज़ होती। मैं इस पृथ्वी को स्वर्ग बनाना चाहता था, जहाँ हर एक प्राणी स्वतन्त्र हो। मैं झोंपड़ियों में भी राजमहलों का-सा सुख लाना चाहता था। अनीति से दबे हुए हर प्राणी की आत्मा में मैं एक नया जीवन फूँक देता और उन्हें अटल विश्वास दिला

देता कि अपनी तक़दीर के मालिक वे स्वयं हैं। परन्तु युद्ध-भूमि की इस उड़ती हुई धूल से मेरे वे स्वर्ण-स्वप्न धुँधले पड़ गये हैं। अब यदि मेरे दिल में कोई इच्छा होती है तो रात को सोने की। ईश्वर से मेरी एक ही प्रार्थना होती है—वह मेरी भुजाओं में विपक्षियों का सामना करने की शक्ति दे या उनकी ख़ूनी तलवार से बचने के लिए सतर्क आँखें। हाँ, तुम्हारे उन गीतों का अब क्या हाल है?

वसन्तकुमार—वे बहुत दिनों से मेरे हृदय में सोये पड़े हैं। शायद अवसर मिलने पर वे फिर हरे हो जायँ।

युद्धजित—और इधर मौत हर वक़्त घात लगाये बैठी है। तुम्हारे हृदय के वे गीत जो भविष्य में मानव-समाज की प्रसन्नता का उद्गम हो सकते थे, शायद वे तुम्हारी ज़बान पर आने से पहले ही तुम्हारे साथ ही इस मिट्टी में मिल जायँ और उनके स्थान पर सम्राट् अशोक के इस भयानक युद्ध और बौद्ध-भिक्षुओं के लोमहर्षण प्रतिशोध की कहानी रह जाय। परन्तु इन दुःखद विचारों में पड़े रहने से क्या लाभ? ये विचार किसी विगत जीवन की भूली हुई स्मृतियों की तरह लौट लौटकर प्रेतात्माओं की तरह मुझे मेरे कर्त्तव्य से विमुख कर रहे हैं। समय हो गया है कि मैं स्वर्णपुर की प्राचीर पर किसी अभागे विपक्षी के शिकार के लिए छिपता हुआ पहुँचूँ। एक स्थान पर जहाँ मैंने तुम्हें एक टूटा हुआ पत्थर दिखाया था, कई रातों के लगातार परिश्रम से मैंने एक सूराख़ बनाकर पाँव रखने के लिए जगह बना ली है। उसमें पैर रखकर प्राचीर की छत पर चढ़ने में कोई कठिनाई नहीं होगी। वसन्तकुमार, अँधेरे में एकाएक किसी पर वार करके उसकी जान लेना भी एक खेल है। उसके घावों से बहता हुआ गर्म गर्म ख़ून अभी बन्द होने भी नहीं पाता कि उसका शरीर मांस के लोथड़े की तरह ज़मीन पर गिर पड़ता है। और उसके सगे-सम्बन्धी उसके शोक में उसी तरह दुःख से बिलखते हैं, जिस तरह मेरे मरने पर मेरे शोक-सन्तप्त आत्मज करुण-क्रन्दन करेंगे। वसन्तकुमार, अब मुझे इन बातों से घिन होने लगी है। परन्तु अब तुम्हें सो जाना चाहिए। रात बहुत बीत चुकी है और सवेरे तुम्हारा पहरा है।

(अपने हथियार सँभालकर एक कम्बल ओढ़ता है।)

यह तुम क्या पढ़ रहे हो?

वसन्तकुमार—कुछ गीत हैं, जो मेरे देश के एक सुकवि ने रचे थे। इन गीतों में स्वदेश के गगनचुम्बी पर्वतों, विशाल नदियों, सुविस्तृत मैदानों और वनों में कलोल करनेवाले पक्षियों के कलरव का वर्णन है। यदि समय ने साथ दिया तो मैं भी ऐसे ही अमर गीत बनाया करूँगा।

युद्धजित—ठीक है। तुम ऐसे ही गीत बनाया करोगे। (सुराही से थोड़ा पानी उँडेल कर पीता है) हाँ, यदि मुझे लौटने में देर हो जाय तो दिया बुझा कर सो जाना। लो मैं चला।

वसन्तकुमार—जाओ, ईश्वर तुम्हारा सहायक हो।

युद्धजित—और नौकर से कहना, थोड़ा पानी भर रक्खे। जब मैं लौटूँगा तब मेरे हाथ किसी के ख़ून से रँगे होंगे।

(रात के निबिड़ अन्धकार को एक बार देखता है और फिर बाहर निकल जाता है।)

वसन्तकुमार कोई गीत गुनगुनाता है।

(पर्दा गिरता है)

दूसरा दृश्य

कलिंग की राजधानी स्वर्णपुर के प्राचीर का एक बुर्ज। [सुदत्त एक नवयुवक सिपाही नीचे मैदान में—जहाँ सम्राट् अशोक के असंख्य सैनिक तम्बुओं में पड़े हैं, नज़र दौड़ाता है। वीरसेन उसका एक और समवयस्क साथी रीछ की खाल ओढ़े उसी की ओर आ रहा है। एक कोने में दीवट पर एक दिया जल रहा है।]

वीरसेन—तुम्हारा पहरा कब ख़त्म होता है?

सुदत्त—एक घड़ी तक जब रात आधी बीत जायगी।

वीरसेन—नीचे मैदान में मगध-सेना के विस्तृत डेरों में कैसी ख़ामोशी छाई हुई है? मैं रात के अँधेरे में परछाईं की तरह इनके बीच में जाकर अपनी जन्मभूमि के एक शत्रु की जीवनलीला समाप्त कर परछाईं की तरह चुप-चाप वापस लौट आऊँगा। सुदत्त, इस छोटी आयु में ऐसे ख़ूनी काम में यह निपुणता प्राप्त कर लेना कैसी विचित्र बात है? इन छः महीनों में मैं पूरे १०० नौजवानों के ख़ून से होली खेल चुका हूँ, और केवल एक बार मेरा वार ख़ाली गया है। सुदत्त, विचार करो। मेरे और तुम्हारे जैसे पूरे एक सौ जवान जिनके दिल में अपने सम्राट् के लिए मर मिटने की प्रबल आकांक्षा और हृदय में निडरता का राज्य था, ऐसे पूरे एक सौ अशोक के सिपाहियों को मैं मौत की गोद सुला चुका हूँ। मेरे इन ख़ूनी हाथों ने उनके सुन्दर शरीरों को सदा के लिए मिट्टी में मिला दिया है। सुदत्त, तुम जानते हो मुझे सुन्दर चीज़ों से कितना अनुराग है। आह! यदि हिन्दू-कुल-पति कलिंग-नरेश को उनके अभिमानी सामन्त सम्राट् अशोक की भेजी हुई सन्धि की शर्तों को इस तरह ठुकराने का परामर्श न देते तो कलिंग की पवित्र भूमि में ये ख़ून की नदियाँ न बहतीं! जब मैं चारों ओर भूख से विलपते हुए स्वर्णपुर-निवासियों का करुण क्रन्दन सुनता हूँ तब मुझे इन अभिमानी सामन्तों पर अपार क्रोध आता है, दिल चाहता है कि एक एक को पकड़ कर छकड़ों में जोत दूँ। हाँ, सुदत्त, तुम्हारी उन प्रतिमाओं का क्या हुआ?

सुदत्त—मित्र, तुम हमेशा यह बात पूछकर मुझे उदास कर देते हो। क्या बताऊँ? बहुत दिन हुए मेरे हथियार निकम्मे हो गये। मेरी छैनियों को ज़ंग लग गया है। हथौड़े टूट चुके हैं। वीरसेन, किसी समय मेरे हृदय में उन दिव्य मूर्तियों की सृष्टि होती रहती थी। कभी मैं उन सुडौल मूर्तियों को स्वर्णपुर में प्रतिष्ठित करता और 'सत्यं' 'शिवं 'सुन्दरम्' के भाव से अपने देश-वासियों के हृदय ओत-प्रोत कर देता। मेरी उन दिव्य मूर्तियों पर लोग श्रद्धा के फूल चढ़ाते। आह! यदि मुझे इस अन्धेरगर्दी से छुट्टी मिल जाती तो यह सब कुछ अब भी हो सकता है। आज भी यदि यह ख़ूनी होली बन्द हो जाय तो मैं अपनी इन दिव्य मूर्तियों से स्वर्णपुर को स्वर्गधाम बना दूँ।

वीरसेन—आह! क्या ही अच्छा हो यदि हमारे शासक हमसे वह सेवा लें जिसके लिए हम बनाये गये हैं। वह घड़ी भी कैसी शुभ होगी जब हमारे यहाँ 'सत्य' का राज्य होगा। जब एक ऐसे राज्य का निर्माण होगा जहाँ लोग एक-दूसरे से ईर्ष्या न करेंगे, जहाँ मिथ्या अभिमान न होगा। सुदत्त, सत्य का यह मार्ग कोई कठिन मार्ग नहीं है। भला बताओ, सम्राट् अशोक से हमारा क्या झगड़ा है। यही न कि कुछ भिक्षुओं का स्वर्णपुर-निवासियों ने अपमान किया था और इस बात को भी हुए कई साल हो गये और हम सब भूल चुके हैं। परन्तु मिथ्या अभिमान और झूठे हठ के वश कोई भी पक्ष इस झगड़े का अन्त करने को तैयार नहीं है। कई बार जब मैं अपने विपक्षियों के ख़ून से होली खेलते हुए मगध-सेना के डेरों में जाता हूँ तब मेरे दिल में अनायास ही यह विचार उठता है कि 'जिस विपक्षी की मैंने अभी जान ली है उसने मेरा क्या बिगाड़ा था? शायद अवसर मिलने पर हम दोनों एक-दूसरे के मित्र बन जाते और इस राक्षसी कार्य की अपेक्षा हम मानव-जाति की भलाई में लग रहते थे'। मेरे अन्दर अपने प्रति एक विरोध-भाव पैदा हो गया है, अपने आपसे घृणा-सी हो गई है। पर दूसरे ही दिन फिर उसी अमानुषिक कृत्य के लिए मैं कमर बाँध कर चल निकलता हूँ, जिससे देश-सेवा का जो बीड़ा मैंने उठाया है उस पर हर्फ़ न आये। यह देश-सेवा की धुन भी दिमाग़ में लगे हुए एक कीड़े की तरह है जो हमारे अन्दर एक पागलपन-सा पैदा करता रहता है।

सुदत्त—कौन है?

एक आवाज़—स्वर्णपुर का दुर्जेय खड्ग। मगध की मौत का सन्देश!

चले जाओ कह कर सुदत्त बोला—

वीरसेन, उधर नीचे देखो, कैसा सन्नाटा छाया हुआ है, आकाश में तारे किस तरह जगमगा रहे हैं। भाई सावधान रहना। मुझे इन तारों के प्रकाश से डर लगता है। मेरे कितने ही साथी मुझसे बिछुड़ चुके हैं और इनके चले जाने पर मुझे अपने बचे हुए साथियों से कुछ मोह-सा हो गया है। ईश्वर तुम्हारी रक्षा करे। मुझे कुछ ऐसा वहम-सा हो गया है कि ये टिमटिमाते हुए तारे तुम्हारे विरुद्ध कोई कुचक्र रचने के लिए कहीं आज ही रात को न चुन लें। मित्र, सावधान रहना।

वीरसेन—मैं मगध के इन डेरों से भले प्रकार परिचित हूँ और पहरेदारों की आँखों में धूल झोंकता हुआ अपने शिकार के लिए परछाईं की तरह फिरता रहता हूँ। विचार करो, पूरे एक सौ बार मैं ऐसा खेल खेल चुका हूँ।

सुदत्त—फिर भी मैं चाहता हूँ—आह कितना चाहता हूँ कि तुम्हारे साथ रह कर आज किसी ख़तरे में तुम्हारा हाथ बँटा सकूँ।

वीरसेन—नहीं, नहीं, इन वहमों में न पड़ो। इसमें केवल साहस का ही काम नहीं है। और अभी तो तुम्हारी छैनियों को उन दिव्य मूर्तियों में जान डालनी है, जिनसे हमारी राजधानी का सिर ऊँचा होना है।

सुदत्त—और तुम्हारे वे स्वप्न जिनसे देश में तुम एक नई राज्यव्यवस्था की नींव रखना चाहते हो, जिसमें हमारे शासक राजसत्ता का ठीक प्रयोग करें, जिसमें वह सच्चा अभिमान और स्वार्थपरायणता के लिए प्रजाओं को उत्पीडित करने की अपेक्षा उनकी सेवा करना अपना धर्म समझें। क्या जाने किसी समय अपने इन स्वर्गीय स्वप्नों को कार्य के रूप में परिणत करने का हमें अवसर प्राप्त हो जाय। हाँ, आज तुम कितनी देर में लौटोगे?

वीरसेन—तुम्हारा पहरा ख़त्म होने से पहले ही मैं लौट आऊँगा। जब मैं इसी स्थान पर वापस आकर (सीटी बजाता है) इस तरह सीटी बजाऊँ तब तुम यह रस्सा नीचे लटका देना। (प्राचीर पर से लटकते हु[illegible] रस्से से नीचे उतरता है।) मेरे लौटने तक भगवान् तुम्हारी रक्षा करे।

सुदत्त—सावधान रहना। ईश्वर तुम्हारा सहायक हो।

(वीरसेन—नीचे ज़मीन पर कूद पड़ता है। सुदत्त रस्सा ऊपर खींच लेता है।)

[illegible] समय तक निस्तब्धता छाई रहती है। सुदत्त इधर-उधर प्राचीर पर टहलता है। 'यह मगध और कलिंग,' 'हिन्दू और बौध'! इनका झगड़ा ही क्या है? अब जब यहाँ हम सबके सिरों पर मौत मँडरा रही है, उस समय भी इन भेद-भावों को भुलाने में हम असमर्थ हैं। वसन्त-ऋतु की इन खिलती हुई कलियों के फूल बनने में शायद कोई सन्देह न हो, परन्तु इ[illegible] भरी जवानी में हम यहाँ मृत्यु की लपेट से एक क्षण भर भी सुरक्षित रह सकेंगे, यह कोई नहीं कह सकता। जहाँ चारों ओर मृत्यु मुँह बाये घूमती रहती है, वहाँ जीवन का क्या भरोसा?' (प्राचीर पर किसी का हाथ सहारे के लिए टटोलता दिखाई देता है) युद्धजित इधर-उधर सावधानी से देखकर सुदत्त के पीछे आकर खड़ा हो जाता है, परन्तु उसे इसका पता नहीं चलता। वह उसी प्रकार अपनी धुन में गुनगुनाता है। 'हमारे ऊपर कोई अदृश्य हाथ हर समय परछाईं की तरह पीछे-पीछे लगा रहता है और जब वह हाथ अनजान में किसी नवयुवक पर वार करता है..., (कोई आहट पाकर पीछे मुड़ता है) कौन है?

युद्धजित—(उस पर एकाएक वार करता हुआ) सम्राट् अशोक का एक युद्ध-सेवक स्वर्णपुर-निवासियों का काल।

(सुदत्त इस आघात को सहन नहीं कर सकता। युद्धजित उसके पेट में कटार भोंक देता है। सुदत्त गिर कर वहीं ठंडा पड़ जाता है।

युद्धजित कटार को बाहर निकालता है और अपने प्रतिद्वन्द्वी की लोथ देखकर काँप उठता है। फिर इधर-उधर देखकर जहाँ से वह प्राचीर पर चढ़ा था, उसी स्थान से नीचे उतर जाता है।)

पर्दा गिरता है।

तीसरा दृश्य

[सम्राट् अशोक की सेना के डेरे। वसन्तकुमार पुस्तक पढ़ने में तल्लीन है। नौकर पानी भर कर लौट जाता है।

(पहरेदार गुज़रता है)

कुछ समय तक निस्तब्धता छाई रहती है। वसन्तकुमार पुस्तक का पन्ना उलटता है। तम्बू की आड़ में वीरसेन रीछ की खाल ओढ़े सतर्क होकर आगे बढ़ता है और दबे पाँव तम्बू के अन्दर जाकर बिना आहट किये अपनी कटार से वसन्तकुमार का हृदय विदीर्ण कर देता है और उसके मृत शरीर को उसकी शय्या पर लिटा देता है।

(पहरेदार गुज़रता है)

वीरसेन साँस रोके वहाँ खड़ा रहता है और फिर चुपके से जिधर से आया था, उधर ही लौट जाता है।

कुछ समय गुज़र जाता है। अँधेरे में युद्धजित आता हुआ दिखाई देता है। (अपना कम्बल उतार कर हाथ धोने लगता है।)

युद्धजित—वसन्तकुमार, अभी तक तुम जाग रहे हो? वे क्या ही अच्छे गीत होंगे जो एक सिपाही को इतनी रात तक सोने नहीं देते। वसन्तकुमार, वह भी कितना दर्दनाक समय था। उस विचारे को एक शब्द भी कहने का अवसर न मिला। तारों के प्रकाश में प्राचीर पर इस तरह टहल रहा था, जैसे कोई प्रेमी छिटकी हुई चाँदनी में किसी खिले हुए उपवन में टहल रहा हो। शायद वह कोई गीत गुनगुना रहा था जब मृत्यु ने उसे अपनी गोद में ले लिया।

इस ठंडे पानी से मेरे चित्त को कुछ शान्ति मिली है। अब मैं निश्चिन्त होकर सोऊँगा। वसन्तकुमार, नींद भी क्या प्यारी चीज़ है, जो सब चिन्ताओं को समेट लेती है?

(पहरेदार गुज़रता है)

अब यह दिया बुझा देना चाहिए। मुझे इसकी कोई आवश्यकता नहीं है और तुम्हें अब सो जाना चाहिए।

(पहली बार वसन्तकुमार को देखता है। अरे तुम सो रहे हो। कपड़े भी नहीं उतारे। यह तो ठीक नहीं। दिया भी जलता छोड़ दिया।)

(ज़रा नज़दीक जाकर) वसन्त......मेरे प्यारे मित्र।

(पछाड़ खाकर गिरता है)......उफ़...मौत! ......वसन्त का यह अन्त।......यह ईश्वर का न्याय है—मेरी करनी का फल........

और वहाँ? स्वर्णपुर के प्राचीर पर मेरे जैसा ही कोई अभागा आयगा और............मेरे ईश्वर ....(पहरेदार गुज़रता है)

पर्दा गिरता है।

चौथा दृश्य

(स्वर्णपुर के प्राचीर पर सुदत्त का निर्जीव शरीर ठण्डा पड़ा है।) कुछ देर बाद वीरसेन आकर सीटी बजाता है...ज़रा रुक कर फिर सीटी बजाता है। चारों ओर निस्तब्धता का राज्य है।*

पर्दा गिरता है।

---

* जान ड्रिंकवाटर के एक नाटक के आधार पर।

आँसू की माला

लेखक, श्रीयुत श्यामनारायण पाण्डेय साहित्यरत्न

संसृति में पग पग पर दुख है।
मृत्यु-अंक में सुख है॥

रजत-करों के झीने पट से कोमल अंग छिपाया।
तारक-हार पिन्हा रजनी को रिमझिम रस बरसाया।
निर्झरिणी के निर्मल जल में धो धो बदन नहाया।
कहाँ इन्दु वह राहु-विमुख है।
मृत्यु-अंक में सुख है॥

भीनी सुरभि उठी गुलाब की मधुप हुए मतवाले।
नवल पँखुरियों के स्वागत में नाच, गान, मधु प्याले।
बेसुध रँगरलियाँ आये वन वन से मिलनेवाले।
वह विनाश-मुख के सम्मुख है।
मृत्यु-अंक में सुख है॥

पहनाती सेवा-रत कमला नव मणियों की माला।
सरस्वती पीती आसव से भर प्याला पर प्याला।
स्वर्ग-चरण पर जननी के वैभव की यह मधुशाला।
निधन और उसका भी रुख है।
मृत्यु-अंक में सुख है॥

भाई परमानन्द और भूले हुए हिन्दू

लेखक, प्रोफ़ेसर प्रेमनारायण माथुर, एम० ए०, बी० काम०

श्री भाई परमानन्द हिन्दू-महासभा के प्रमुख कर्णधारों में हैं। इस नाते यदि भाई जी हिन्दू-संस्कृति और सभ्यता की उन्नति के करने या उसकी अवनति के रोकने में विशेष दिलचस्पी लें तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। इस विषय में भाई जी का अपना एक विशेष दृष्टि-कोण है। किन्तु भाई जी जिस राजनैतिक सूझ और देश-प्रेम का प्रायः परिचय देते रहते हैं वह एक अजीब-सी वस्तु मालूम पड़ती है।

भाई जी ने 'सरस्वती' के पिछले अंक के अपने 'भूले हुए हिन्दू' शीर्षक लेख में तीन प्रश्नों पर विचार किया है—(१) कांग्रेस का देश में जागृति उत्पन्न करने में कोई हाथ नहीं था और न है। "कांग्रेस का सत्याग्रह आन्दोलन भारत में राजनैतिक जागृति का परिणाम था, न कि उसका कारण"। भाई जी की राय में देश की इस जागृति का एकमात्र कारण गत महायुद्ध था। (२) कांग्रेस की क़ुरबानियों के बारे में भाई जी का ख़याल है कि वे ग़लत रास्ते पर की गई क़ुरबानियाँ हैं और उनमें "असलियत के बजाय शोर बहुत ज़्यादा है"। (३) भाई जी ने यह बतलाया है कि यदि नया विधान पहले से बुरा है जैसा कि कांग्रेस कहती है, (और मेरे ख़याल से तो इस विषय में सम्भवतः ही, भाई जी को कोई संदेह हो, अन्यथा सारा देश यह बात एक-स्वर से कह चुका है) "तो उस हालत में कांग्रेस अपनी क़ुरबानियों पर कोई गर्व नहीं कर सकती। और अगर यह विधान अच्छा है तो जैसा कि ऊपर कहा गया है, इसके लिए ब्रिटिश गवर्नमेंट ज़िम्मेदार है, क्योंकि ब्रिटिश गवर्नमेंट महायुद्ध की समाप्ति पर पार्लियामेंट में की गई घोषणा के अनुसार भारत में एक प्रजा-सत्तात्मक विधान प्रचलित करने के लिए बाध्य थी।"

इसके पहले कि हम भाई जी की इन धारणाओं को ज़रा ग़ौर से समझने की कोशिश करें, यह जान लेना अनुचित न होगा कि भाई जी की विचारधाराओं के पीछे कौन-सी मनोवृत्ति कार्य करती रही है।

भाई जी 'हिन्दू-महासभा' के प्रमुख सूत्रधार हैं। यह भी एक प्रकट बात है कि 'हिन्दु-महासभा' के विरोध में 'मुसलिम लीग' की स्थापना हुई है और सो भी उसी के उसूलों पर। मुसलिम लीग को भी हमेशा इसी बात का ख़तरा रहता है कि यदि किसी प्रकार देश में 'स्वराज्य' स्थापित हो गया तो हिन्दू मुसलमानों को हर प्रकार से दबाने का प्रयत्न करेंगे और मुसलिम सभ्यता और मुस्लिम हितों की सर्वथा अवहेलना की जायगी। अतः वे सदा इस बात का प्रयत्न करते रहते हैं कि इसके पहले कि देश में स्वराज्य की स्थापना हो, जहाँ तक हो सके और जिस प्रकार भी संभव हो, मुसलिम हितों की पूर्ण रूप से रक्षा कर ली जाय। जब तक यह सम्भव न हो और इस बारे में उन्हें संतोष न हो तब तक वे यही पसन्द करेंगे कि देश वर्तमान राजनैतिक और आर्थिक शोषण का शिकार भी बना रहे तो कोई हानि नहीं। इस प्रकार देश में इन दलों में परस्पर संघर्ष चलता रहता है और हिन्दू-मुसलिम प्रश्न का जो कुछ अस्तित्व है वह इन संस्थाओं की नीति का ही बहुत कुछ परिणाम है। जिस वातावरण के लिए हिन्दू-सभा और मुसलिम-लीग उत्तरदायी हैं वह हिन्दू-मुसलिम प्रश्न को हल करने की अपेक्षा उसको अधिक जटिल बनाने में ही सहायक हो सकता है। यहाँ एक बात और विचारणीय है। जिन हितों की हिन्दू-सभा और मुसलिम-लीग रक्षा करना चाहती हैं वे वास्तव में उन्हीं उच्च और मध्यम श्रेणी के हिन्दुओं और मुसलमानों से सम्बन्ध रखते हैं जिनको सरकारी नौकरियों, टाइटिलों और कौंसिलों तथा असेम्बलियों की सीटों की ही विशेष चिन्ता रहती है। अन्यथा आज तो प्रत्येक भारतवासी को रोटी का प्रश्न हल करने की सबसे बड़ी समस्या नज़र आती है और इस विषय में जाति और धर्म का भेद-भाव तो उठता ही नहीं। आज एक हिन्दू किसान, मज़दूर और व्यापारी भी उन्हीं आर्थिक कठिनाइयों का शिकार बना हुआ है जिनका कि एक मुसलमान, सिख या पारसी। उनकी समस्या एक है, उसमें कोई विरोध देखना उस सम[illegible]

प्रति अपनी अज्ञता प्रकट करना है। इस प्रकार हिन्दू-सभा या मुसलिम-लीग का यह दावा कि वे हिन्दुओं या मुसलमानों के हित-चिन्तन में लगी हुई हैं, बिलकुल रद हो जाता है। उनके तो हित एक हैं और उसकी रक्षा भी वही संस्था कर सकती है जिसका द्वार सबके लिए खुला हुआ हो और जो अपनी शक्ति के लिए सबकी शक्ति और संगठन पर निर्भर रहती हो। परन्तु भाई जी यह सब जान-कर भी नहीं जानना चाहते और वे हिन्दू-सभा के दृष्टिकोण को ही सब बातों में आगे रखना उचित समझते हैं।

अब भाई जी के उक्त लेख के विचारों की ओर आइए। भाई जी इस बात को तो स्वीकार करते हैं कि आज देश में राजनैतिक जागृति उत्पन्न हो चुकी है, किन्तु वे कांग्रेस को इसका श्रेय नहीं देना चाहते। वे महात्मा गांधी को केवल इस बात का 'क्रेडिट' देने को तैयार हैं कि उन्होंने "सत्याग्रह-आन्दोलन चलाने में इसे इस्तेमाल कर लिया और कांग्रेस का नाम बढ़ाया।" उनकी राय में देश में जो जागृति उत्पन्न हुई है वह केवल महायुद्ध के कारण। इसमें संदेह नहीं कि महायुद्ध का प्रभाव भारतवर्ष पर भी पड़ा जैसा कि संसार के अन्य देशों पर पड़ा, और भारत-वासियों में जागृति उत्पन्न हुई। किन्तु आज की दुनिया के अन्दर जब एक देश का दूसरे देश से रेल, तार, डाक आदि के द्वारा इतना घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित होगया है, यह बात तो प्रतिदिन हमारे जीवन में घटती ही रहती है कि हमारी विचारधाराओं पर न केवल हमारी शिक्षा, हमारे देश की परिस्थिति, किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय बातों का भी प्रभाव पड़ता है, यद्यपि यह प्रभाव हम लोग प्रतिदिन न तो अनुभव ही कर सकते हैं और न अपनी विचारधाराओं का इस प्रकार विश्लेषण ही कर सकते हैं कि इसका कितना अंश और कौन-सा किस परिस्थिति का परिणाम है, और न इस प्रकार के विश्लेषण की कोई आवश्यकता ही जान पड़ती है। केवल इतना ही जान लेना पर्याप्त है कि वर्तमान समय में मनुष्य की विचार-गति अनेक राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों का परिणाम है। महायुद्ध के समय का यह प्रभाव अधिक विकसित रूप में पड़ा और इस कारण इसका हमें शीघ्र अनुभव हो सका। किन्तु, मूल में बात यही है। उस समय जो अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव प्रत्येक देश पर पड़ा था वह आज भी पड़ रहा है। भाई जी जैसे दूरदर्शी व्यक्ति से यह आशा [illegible] अनुचित नहीं है कि वे इस अन्तर को भले प्रकार समझें और उसमें कोई मौलिक और वास्तविक भेद न करें।

भाई जी का यह कहना भी ठीक ही है कि कांग्रेस भी स्वयं उस वातावरण से प्रभावित हुई जैसा कि वह आज भी होती है। यह तो प्रत्येक जीवित संस्था का लक्षण ही है। पर वास्तविक और महत्त्वपूर्ण प्रश्न तो यह है कि राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय तथा शिक्षा और अनुभव के फल-स्वरूप जो चन्द लोग अपने अन्य भाइयों की अपेक्षा अधिक लाभ उठा लेते हैं और उनसे अधिक जागृत हो जाते हैं वे उस जागृति का किस प्रकार उपयोग करते हैं। यदि वे लोग संगठित होकर एक संस्था के रूप में उस जागृति का अन्य लोगों में भी प्रचार करते हैं और उनकी भी विचार-धाराओं में परिवर्तन उत्पन्न करने में सफल हो जाते हैं तो हम उसी संस्था को इस जागृति के उत्पन्न करने का श्रेय देते हैं। क्या कांग्रेस ने इस प्रकार देश में जागृति नहीं उत्पन्न की? क्या उसके नेताओं और कार्यकर्ताओं ने इस लम्बे-चौड़े मुल्क के गाँव गाँव में जाकर वहाँ की सोती हुई जनता के कानों में जागृत और जीवित संसार की झनकार नहीं डाली? क्या उन्होंने उन तक मुल्क की आज़ादी और आत्म-विश्वास का सन्देश नहीं पहुँचाया? क्या भाई जी का यह ख़याल है कि भारतवर्ष की ३५ करोड़ जनता में से प्रत्येक के अन्दर जो जागृति और देश-प्रेम की मात्रा पाई जाती है वह उनके निजी अध्ययन, अनुभव और संसार की परिस्थितियों को स्वयं समझ सकने का परिणाम है? जिस देश में ९२ फ़ी सदी लोग गाँवों में अशिक्षा का जीवन व्यतीत करते हों उनके विषय में यह सोचना तो साफ़ भूल होगी। यह नहीं कहा जा सकता है कि यह जागृति उन लोगों के द्वारा उत्पन्न की गई है जो स्वयं लड़ाई के मैदानों में अन्य देशों के लोगों के सम्पर्क में आये और नवीन विचार-धारा लेकर अपने मुल्क को लौटे। इसलिए यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि देश की वर्तमान जागृति के उत्पन्न करने में अधिकांश में कांग्रेस का हाथ रहा है। हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि कांग्रेस स्वयं ऐसे लोगों की संस्था थी, जैसा कि वह आज भी है, जो अपने अन्य भाइयों से अधिक जागृत अवस्था में थे। ऐसी दशा में यह कह देना कि वर्तमान

जाग्रति केवल महायुद्ध का परिणाम है, केवल विचार-विश्लेषण की शक्ति का अभाव प्रकट करना है। और सत्याग्रह-आन्दोलन जहाँ एक ओर राजनैतिक जाग्रति का परिणाम था (और वह जाग्रति कांग्रेस-द्वारा उत्पन्न की गई थी), वहाँ यह भी मानना पड़ेगा कि इससे आगे के लिए राजनैतिक जाग्रति में बहुत कुछ वृद्धि भी हुई है। केवल एकतरफ़ा बात कह डालना तो ठीक नहीं।

दूसरा प्रश्न कांग्रेस की क़ुरबानियों के बारे में उठता है। भाई जी का यह कहना तो ठीक ही है कि "इस प्रकार के त्याग का लाभ तब ही हो सकता है जब सत्य-मार्ग पर चल कर ठीक उद्देश (राइट काज़) के लिए क़ुरबानी की जाय"। परन्तु उनका यह ख़याल कि कांग्रेस ने जो क़ुरबानियाँ की हैं वे न सत्य-मार्ग पर हैं, न ठीक उद्देश के लिए, समझ में ही नहीं आता। भाई जी का 'सत्य-मार्ग' और 'ठीक-उद्देश' से क्या अर्थ है, यह सब उन्होंने स्पष्ट नहीं किया है। कांग्रेस का उद्देश तो संसारविदित है। वह तो पूर्ण स्वतंत्रता के लिए क़ुरबानियाँ कर रही है। कांग्रेस का मार्ग भी निश्चित है—सत्य और अहिंसा।

भाई जी का ख़याल है कि कांग्रेस की मुसलमानों के प्रति जो सौदाबाज़ी की नीति रही है वह देश के लिए घातक सिद्ध हुई है। भाई जी का यह विचार उनके दृष्टि-कोण के हिसाब से सर्वथा ठीक है, क्योंकि वे 'हिन्दुओं' और 'मुसलमानों' के हितों में विरोध मानते हैं और इस वास्ते उनमें सौदाबाज़ी का प्रश्न भी उठ सकता है। यही कारण है कि एक तरफ़ हिन्दू-महासभा इस सौदाबाज़ी को अपने पक्ष में करना चाहती है तो दूसरी ओर मुसलिम-लीग अपनी ओर ज़ोर लगाना चाहती है। फल वही होता है जो ऐसी परिस्थिति में सम्भव हो सकता है कि सौदा हो ही नहीं सकता।

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, कांग्रेस की दृष्टि में तो हिन्दू और मुसलमानों का सवाल एक है। उनके हितों में विरोध नहीं और इस वास्ते वहाँ तो सौदाबाज़ी का प्रश्न ही नहीं उठता। इसके अतिरिक्त कांग्रेस ने जिन चीज़ों में मुसलमानों से सौदा करना चाहा (नौकरियाँ और कौंसिलों की बैठकें) उनका हिन्दुओं और मुसलमानों के हितों से कोई सम्बन्ध नहीं। मान लो, यदि हमारी धारासभाओं के सब सदस्य मुसलमान जनता के सच्चे प्रतिनिधि हैं तो उनके लिए ऐसा क़ानून बनाना लाज़मी होगा जिससे मुसलमान किसानों और मुसलमान मज़दूरों और व्यापारियों को लाभ हो। पर उन क़ानूनों का लाभ मुसलमानों तक ही सीमित रह सकेगा? उनका लाभ तो हिन्दू किसानों और व्यापारियों को भी अवश्य ही मिलेगा। तात्पर्य यह है कि भाई जी की यह दलील भी ठीक नहीं मालूम होती। और यह कहना कि कांग्रेस में क़ुरबानियों के अतिरिक्त 'शोर' अधिक है, केवल अपने हाथ से अपनी आँखों पर बुक़ा डालना है।

अन्त में एक बात और रह जाती है और वह यह कि वर्तमान विधान में जो कुछ अच्छाइयाँ हैं वे सरकार की कृपा से। ठीक है, यदि भाई जी जैसे सज्जन ऐसा न कहेंगे तो और फिर कौन कहेगा? वे यह भी इसके साथ कहते हैं कि अगर नया विधान पहले से भी बुरा है तो वह कांग्रेस के कारण। यह भी ठीक है। जब बदनामी का टीका कांग्रेस के मत्थे लगाना ही है तब यह न कहा जायगा तो और क्या कहा जायगा?

साधना

लेखिका, श्रीमती दिनेशनन्दिनी चोरड्या

मैं चित्तवृत्तियों का निरोध करूँगी, बिखरी मनःशक्तियों को केन्द्रीभूत कर ध्यानावस्थित होऊँगी, संकल्प विकल्प से मुक्त परमोज्ज्वल आत्मा में, मैं सूक्ष्म आकाश, चन्द्र और सूर्य ही नहीं देखूँगी, किन्तु आत्म-दर्शन भी कर सकूँगी, उस विचित्र दर्पण में भूत और भविष्य के चलचित्र ही नहीं देखूँगी, किन्तु मदान्ध और मोहान्ध प्राणियों को छोटी-छोटी बातों के लिए मर मिटते देखकर आत्मग्लानि और अवज्ञा के मुख मोड़ लूँगी।

मैं चित्तवृतियों का निरोध करूँगी!!!

मलार में महेश्वर

लेखक, श्रीयुत कुमारेन्द्र चटर्जी, बी० ए०, एल-टी०, और श्रीयुत गणेशराम मिश्र

भारत का प्राचीन इतिहास उसके प्राचीन ध्वंसावशेषों में कितना अधिक छिपा हुआ है, यह बात दिन प्रतिदिन अधिकाधिक प्रकट होती जाती है। यह लेख उसका एक नया प्रमाण है। इस लेख में यह बतलाया गया है कि मलार गाँव के निवासियों ने अपने देवमन्दिर निर्माण की कामना से एक प्राचीन टेकरी को खोदकर मध्यकालीन इतिहास पर कितने महत्त्व का प्रकाश डाला है।

[महेश्वर के मन्दिर के भीतर की मूर्ति]

स परिवर्तनशील संसार में आदि-काल से लेकर आज तक कितने कितने परिवर्तन हुए, इसका पता लगाना कठिन है। लोगों ने अपने को अजर और अमर समझा और अपना विस्तार बढ़ाया। मदोन्मत्त सत्ताधीशों ने असहायों को ध्वंस किया और अपना प्रभुत्व जमाया। पृथ्वी पर वे अपने को अजेय समझकर अपना ताण्डव-नृत्य करते रहे, पर अन्त में मेदिनी को 'मेरी' 'मेरी' कहते कहते काल के गाल में समा गये। परन्तु उन लोगों ने कीर्ति-स्थापनार्थ नाना प्रकार के जो देवालय, प्राचीर, कलागार, स्तूप, स्तम्भ इत्यादि स्थापित किये थे वे अब भी भूतल पर या भूगर्भ में पड़े पड़े उनके समय की वस्तु-स्थिति की घोषणा और उनकी धर्मपरायणता का परिचय देने के लिए अपना अस्तित्व बनाये हुए हैं। यदि इन पूर्वपुरुषों ने अपनी कला और सभ्यता की कथा (गाथायें) केवल आधुनिक शैली पर केवल लेखनी-द्वारा ही प्रकट की होती तो आज उनका चिह्न न रहता। पर वे कीर्ति-प्रेमी बड़े दूरदर्शी थे, जिन्होंने अपने मनोगत भावों को एक ऐसे अमिट साधन-द्वारा व्यक्त किया जो कई सदियों के पञ्च-तत्त्वों के आघातों को सहते हुए भी अपने समय के प्रभुओं की कथा कहने के लिए निर्जीव होते हुए भी जीवित बने हुए हैं।
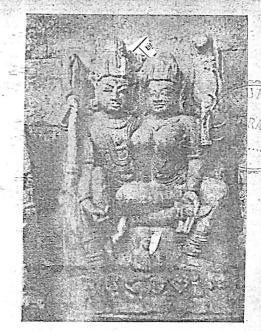
पुरातत्त्ववेत्ताओं ने अनेक स्थानों पर इन धराशायी कथाकारों-द्वारा उनके प्रभुओं की सामाजिक, ऐतिहासिक और सभ्यता-पूरित कथायें सुनने और समझने का प्रयत्न किया है और संसार के कोने कोने में उनका कीर्ति-ढिंढोरा पीटा है। तथापि भारत के अनेकानेक स्थान अभी 'बे-देखे-सुने' पड़े हुए हैं। भूगर्भ में अभी अनेक रहस्यमय स्थान छिपे हुए हैं, जिनका पता समय ही दे सकेगा और तब भारत के शृंखलाबद्ध प्राचीन इतिहास का पूरा पता लग सकेगा।

प्राचीनता का पता देनेवाला एक ऐसा ही भूगर्भशायी स्थान 'महामाया' की कृपा से अपढ़ कृषकों-द्वारा मध्य-प्रान्तगत बिलासपुर-ज़िले में खोजा जा चुका है। इस प्राचीन स्थान का नाम 'मलार' है। यह स्थान बिलासपुर

[महेश्वर के मन्दिर के दरवाज़े पर महामाया की मूर्तियाँ]

के दक्षिण-पूर्व की ओर स्थित है। इसकी जन-संख्या ३½ हज़ार है। बस्ती गढ़ के बाहर बसी हुई है। गढ़ गिरकर तालाब के पाल-सरीखे बन गया है। क़िले के चारों तरफ़ जल से परिपूरित चौड़ी खाई बनी हुई है। खाई के उस पार और गाँव के बीच में एक टेकरी के ऊपर कुछ मास पहले महामाया का एक स्थान था, और पास ही विशाल वृक्ष उगे हुए थे। गाँव के लोग कहते हैं कि वे महामाया को ४-६ पीढ़ी से देखते-सुनते चले आते हैं। महामाया की प्राण-प्रतिष्ठा कब हुई, किसने की और कराई, यह कोई नहीं जानता।

कुछ मास हुए उक्त महामाया की प्रेरणा से या उनके पति भू-गर्भित महेश्वर की प्रेरणा से मलार के मालगुज़ार और ग्रामीण जनता के मन में मन्दिर बनाने की आकांक्षा जाग उठी। लोगों ने दृढ़ संकल्प किया और कार्य भी प्रारम्भ कर दिया। पहले विशाल वृक्ष काटे गये। इसी समय एक दुर्घटना हो गई। एक उत्साही कृषक वृक्ष के गिरने से दबकर मर गया। गाँव का प्रत्येक उत्साही स्त्री-पुरुष कुली बना और महामाया के मन्दिर की नींव खोदी जाने लगी। सब कृषक अपना अपना समय बचाकर काम करने लगे। केवल उन्हीं लोगों को मज़दूरी दी जाती थी जिनकी मज़दूरी करना ही जीविका थी।

नींव खोदने पर पत्थरों का सिलसिला तथा महेश्वर के मन्दिर की सीढ़ियाँ मिलते ही अपढ़ धर्मप्रेमी स्वयंसेवकों का उत्साह बढ़ गया और उन्होंने धीरे धीरे अनेक देव-मूर्तियाँ और महेश्वर का मन्दिर ढूँढ़ निकाला। इतनी खुदाई के बाद अब पता चला कि महामाया की दो मूर्तियाँ देहली के दोनों तरफ़ हैं और बीच में से ९ सीढ़ियों के नीचे संगमूसा की जलहरी के मध्य में त्रिकोणाकार महेश्वर विराजमान हैं। ऐसे त्रिकोणाकार शिव-लिङ्ग भारतवर्ष में अत्यन्त विरल हैं। यथार्थ में महामाया नामक दोनों मूर्तियाँ दरवाज़े की चौखट के दोनों तरफ़ द्वारपाल-स्वरूप बनाई गई प्रतीत होती हैं।

मन्दिर का भीतरी स्थान १०'×१०' के लगभग है। दो तरफ़ कुछ मूर्तियाँ समूची, कुछ टूटी-फूटी रक्खी हुई हैं। मन्दिर के चारों तरफ़ का हिस्सा भी बहुत अच्छा है। बाहरी तरफ़ उसके किनारे हाथियों के खुदाव का काम है। अन्य प्रकार की बेलें भी खुदी हुई हैं। जो हिस्सा मन्दिर के चारों तरफ़ ठीक दिखता है उसकी ऊँचाई नींव से १० या १२ फ़ुट तक है। इन दीवारों के ऊपर गाँव के एक ब्राह्मण ने जो अब सर्वसम्मति से पुजारी बना दिया

[मलार के संग्रहालय के भीतर की मूर्तियाँ]

गया है, लकड़ी डाल कर छप्पर बना लिया है और अपने बैठने का स्थान।

टेकड़ी के खोदे जाने पर अनेकानेक समूची (अखण्डित) और टूटी प्राचीन मूर्तियाँ निकली हैं। ये मूर्तियाँ कई प्रकार के महादेव, देवी, विष्णु, गणेश, भैरव, सर्प, महावीर, नंदी, नृसिंह, हाथी इत्यादि की निकली हैं। कुछ दिगम्बर मूर्तियाँ भी निकली हैं। ये मूर्तियाँ दो प्रकार की हैं। कुछ तो बुद्ध की हैं और कुछ जैन तीर्थंकरों की। कई मूर्तियाँ तत्कालीन राजाओं की-सी भी निकली हैं। मूर्तियों के अलावा बड़े मंदिर के बग़ल में एक छोटा मंदिर या चबूतरा-सा निकला है, जिसके मध्य में एक शिवलिंग है। और एक ओर राजाओं की मूर्तियाँ जो खंडित हैं, निकली हैं। राजाओं की मूर्तियों में डाढ़ी का बनाव दिखाया गया है, सिर पर मराठी ढंग की पगड़ी दिखती है। हाथ जोड़े हुए इनकी रचना की गई है। कई राजाओं की पगड़ी या टोपी प्राचीन ढंग की बनाई गई हैं। हनूमान् का एक सिर बहुत ही उत्तम भावपूर्ण मिला है। चेहरे पर चमड़े की झुर्रियाँ भी बनाई गई हैं। इतनी बारीकी प्राचीन मूर्ति में कहीं भी देखने में नहीं आई थी। कई मूर्तियाँ पहचान में नहीं आतीं। तो भी नागपुर-म्यूज़ियम के क्यूरेटर ने बहुत कुछ अनुमान भिड़ाकर उनके नामकरण किये हैं। एक कुबेर की मूर्ति को वे बहुत प्राचीन बताते हैं।

मूर्तियों के अतिरिक्त पानी भरने का एक टाँका मिला है। एक समई दीपक जलाने की, चरण-पादुकायें और कुछ अश्लील मूर्तियाँ भी निकली हैं। मूर्तियाँ मालगुज़ार साहब ने एक कोठा बनवाकर दीवार के सहारे क़तार में रखवा दी हैं। यदि ये मूर्तियाँ चारों तरफ़ ३ फ़ुट ऊँचा

[नींव पर खुदाई का काम]

[मलार गाँव के तालाब के पास काले पत्थर की मूर्ति]

और १½ फ़ुट चौड़ा चबूतरा बनाकर रक्खी जातीं तो अच्छा होता। अब भी ऐसा किया जा सकता है। प्रकाश के लिए चारों तरफ़ खिड़कियाँ बनवा देना भी आवश्यक है।

कई मूर्तियाँ बाहर पड़ी हैं। कई गाँव भर में फैली हुई हैं। कई मूर्तियाँ जो संभवतः टेकड़ी के आस-पास से प्राप्त हुई होंगी, वर्षों से गाँववालों ने अपने घर के सामने और कई ने अपने घर की दीवारों पर चुनवा ली हैं।

एक दीवार में एक दिगम्बर खड़ी मूर्ति, ३ या ४ अश्लील मूर्तियाँ, बुद्ध की मूर्ति और देवी की मूर्तियाँ लगी हैं। एक मकान के सामने दरवाज़े के दोनों ओर २ घोड़ों की मूर्तियाँ रक्खी हैं। गाँव के मध्य में तिली या गन्ना पेरने का क़रीब ३ या ४ फ़ुट ऊँचा एक कोल्हू रक्खा है। कोल्हू पर भी चारों तरफ़ मूर्तियाँ खुदी हुई हैं। इससे प्राचीन कलाप्रेमियों की प्रवृत्ति का ठीक ठीक पता चलता है। ऐसा नहीं था कि वे अपने देवी-देवताओं को और उनके मंदिरों को ही कलापूर्ण बनाने का प्रयत्न करते थे, वरन वे जीवन के उपयोगी पदार्थों को भी भाव और कलापूर्ण बनाते थे। गाँव के बाहर दूसरी ओर दो मील की दूरी पर एक तालाब के किनारे एक देवी का मंदिर है। मूर्ति काले पाषाण की है। उसके दोनों ओर कुछ अन्य मूर्तियाँ भी हैं। मदिर के चारों तरफ़ अनेक टूटी फूटी मूर्तियाँ पड़ी हैं, जिनमें से दो समूची अश्लील मूर्तियाँ भी हैं।

मलार में पाई गई विभिन्न मूर्तियों से पता चलता है कि इस प्राचीन स्थान पर बौद्ध, जैन (दिगम्बर), शैव और

[हनुमान् की मूर्ति]

वाममार्गी और मराठे राजाओं का राज्य रहा होगा। गाँव-वाले कहते हैं कि गढ़ के भीतर राजा लोगों के महल भी पहले रहे हैं, जिनका अब पता नहीं है। क़िले के चारों तरफ़ की चौड़ी खाई के अलावा पहले कई तालाब थे, पर अब दो ही शेष हैं।

यहाँ सर्प भी बहुतायत से पाये जाते हैं। देखने में बड़े भयंकर और अजगर जैसे मोटे हैं, पर किसी को सताते नहीं। इनके मुख्य चार प्रकार हैं। इनसे गाँववाले बिल-कुल नहीं डरते। गाँव की पाठशाला के हेडमास्टर श्री कुमुदसिंह बतलाते थे कि खुदाई के समय बड़े बड़े नाग चारों प्रकार के निकले थे। गाँववालों ने उन्हें पकड़-कर दूध पिलाया था, उनकी पूजा की थी और छोड़ दिया था।

खुदाई के समय तीन ताम्र-पत्र जो एक कड़े या छल्ले से नत्थी थे, पाये गये हैं। साथ ही एक गोल मुहर भी मिली है। मुद्रा और ताम्रपत्र मलार के मालगुज़ार श्री सुधाराम जी द्वारा बिलासपुर सेण्ट्रेल बैंक के मैनेजर बाबू प्यारेलाल गुप्त के पास भेजे गये थे। गुप्त जी 'महाकोसल-इतिहास-समिति' के सहायक मन्त्री हैं।

गुप्त जी ने इन चीज़ों को पंडित लोचनप्रसाद पांडेय के पास भेजा। पांडेय जी उक्त समिति के मन्त्री हैं। आपने ताम्रपत्रों को पढ़ा और भाषान्तर किया और फिर गुप्त जी के द्वारा बिलासपुर के डिप्टी कमिश्नर मिस्टर के० एन० नगरकट्टी के पास भेज दिया। ये सब चीज़ें

तीन ताम्रपत्रों में से पहला और तीसरा एक ही ओर लिखे गये हैं। और दूसरा दोनों ओर। यद्यपि सदियों से ये पत्र भूगर्भ में छिपे रहे, तो भी ज्यों के त्यों पढ़ने योग्य पाये गये हैं। नागपुर भेजे जाने पर वहाँ के संग्रहालय के क्यूरेटर श्री० एम० ए० सबूर ने उन्हें साफ़ कर लिया है और उनकी प्रतिलिपि भी छाप ली है।

ताम्र-लेख को नागपुर के मारिस-कालेज के प्रोफ़ेसर श्री मिराशी और श्री लोचनप्रसाद जी पांडेय ने पढ़कर उसका सम्पादन किया है। उनका लेख 'एपीग्राफिया इंडिका' में शीघ्र छपेगा। श्री पांडेय जी ने ताम्रपत्रों की प्रतिलिपि लेने की अनुमति दी थी, पर वे शीघ्र ही नागपुर भेज दिये गये। हम लोग उन्हें देख भी न पाये।

ताम्रपत्रों पर संस्कृत के अक्षर जो पेटिका शीर्षक या सम्पुट-शिखा-लिपि के नाम से प्रख्यात हैं, खुदे हैं। यह लिपि 'वाका-टक'-राजवंश के समय में ५०० ईसवी से ७०० ईसवी तक मध्य-भारत में प्रचलित थी। पत्रों पर लिपि अच्छे अक्षरों में और गहरी खुदी हुई है। लेख की भाषा संस्कृत है।

तीनों ताम्रपत्र ८·४" लम्बे, ५" चौड़े और ·१" मोटे हैं। एक ही आकार के ये तीनों ताम्रपत्र एक गोल छल्ले-द्वारा नत्थी किये हुए हैं। तीनों का वज़न १२३½ तोला है। गोलाकार मुहर ३·५" व्यास की है। यह मुहर तीन भागों में विभक्त है। ऊपरी भाग पर नन्दी बैल का उठाव-दार चित्र बना हुआ है। नन्दी के सामने त्रिशूल और कमंडलु बना है। चित्र के नीचे कुछ खुदाव है और दो

[गाँव में एक मकान की दीवार में लगी हुई एक दिगम्बर मूर्ति]

समानान्तर रेखायें बनी हैं। इसके नीचे एक खिला हुआ कमल और उसके दोनों ओर दो बन्द कमल अंकित हैं। छल्ले का और मुहर का कुल वज़न ८२ १/३ तोला है।

पत्रों पर सब खुदाव २८ सतरों में है और हर तरफ़ सात सात सतरें लिखी हैं। अक्षर १/२" बड़े हैं। इनकी लिखावट महाशिव तीवरदेव के ताम्रपत्रों से मिलती-जुलती है, जो रायपुर-ज़िले के राजिम और बलोदा (फुलझर-ज़मींदारी) में पाये गये थे।

ये ताम्रपत्र चंद्रवंशी राजा हर्षदेव या हर्षगुप्त के पुत्र महाशिवगुप्त राजदेव-द्वारा खुदवाये गये थे। राजा महा-शिवगुप्त महेश्वर का बड़ा भक्त था, पर मलार की खुदाई में जो महेश्वर का मन्दिर मिला है वह किसके द्वारा बन-वाया गया था, इसका पता नहीं लगता। यद्यपि ताम्र-पत्र में कोई भी सन् या संवत् नहीं दिया गया है, तथापि लिपि और मूर्तियों की बनावट इत्यादि और राजाओं के

[सरस्वती की मूर्ति]

[ताम्रपत्र की मुहर]

नामों पर से दान-पत्रों का रचनाकाल विशेषज्ञों ने सातवीं सदी का प्रथमार्द्ध ठहराया है।

प्राचीन 'श्रीपुर' जो आज-कल रायपुर-ज़िले में 'सिरपुर' के नाम से प्रख्यात है, पहले महाकोसल की राज-धानी था। ६०० ई० में चीनी-यात्री यूनच्वाँग संभवतः इसी श्रीपुर में आया था। सिरपुर के राजा चन्द्रवंशी थे। वे अपने को पाण्डुवंशी कहते थे। वे वैष्णव थे, पर आलोच्य ताम्र-पत्र या दान-पत्र के दाता महाशिव गुप्त ने अपने को 'परम माहेश्वर' लिखा है और उनकी नान्दी-अंकित मुद्रा भी उनके महेश्वर-भक्त होने का प्रमाण है। गुप्तराज ने तरडंशक भोग के अन्तर्गत कैलासपुर नामक ग्राम बौद्ध-भिक्षु-संघ को आषाढ़-अमावास्या के दिन दान में दिया था और लिखित घोषणा की थी कि जो इस वंश में दान को अक्षुण्ण रक्खेगा वह ६०,००० वर्ष तक स्वर्ग भोग करेगा और जो इस दान को क्षुण्ण करेगा वह अनन्त नरक का भागी होगा। कथित ताम्र-पत्र इसी दान के अवसर पर लिखकर दिये गये थे।

मलार के आस-पास कैलासपुर नाम का कोई गाँव नहीं है। कालावधि से कैलासपुर का अपभ्रंश कलसा या
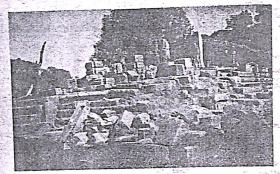
[टेकरी की खुदाई का दृश्य]

केसला होना सम्भव है। और कलसा का कला हो जाना भी सम्भव प्रतीत होता है। मलार से ८ मील दूर आग्नेय की ओर 'कला' नामक एक ग्राम है। सम्भव है, यहीं कभी कैलासपुर रहा हो।

उसी भाँति मलार से ११ मील दूर अकलतरा स्टेशन से तीन मील तारोद नाम का एक गाँव है, जो सम्भवतः तरडन्शक का अपभ्रंश हो। वहाँ कोई प्राचीन बौद्ध-मठ के खण्डहर हों तो निश्चित रूप से उसके 'तरडन्शक' होने की सम्भावना है।

वैष्णव राजा अपने को परम भागवत, शैव राजा अपने को परम माहेश्वर, बौद्ध राजा अपने को परम सौगत कहते थे। सुगत या तथागत बुद्ध को कहते हैं।

कन्नौज के राजा हर्षवर्धन एक दिन सूर्य की, दूसरे दिन शिव की और तीसरे दिन बुद्ध की पूजा करते थे। इसी प्रकार उदारहृदय महाशिव गुप्त ने शैव होते हुए भी बौद्ध-भिक्षु-संघ को कथित ग्राम कैलाशपुर ग्रहण के समय दानपत्र लिखकर दिया था।

ज्योतिष-गणित से पता लगता है कि आषाढ़ महीने में सूर्य-ग्रहण ६०८, ६२७ और ६४६ ईसवी में अमावास्या तिथि को पड़ा था। अतः महाशिव गुप्त का दान ६०८ या ६२७ में दिया गया होगा। ६४६ इसका होना संभव नहीं हो सकता।

सिरपुर के एक प्रसिद्ध राजा तीवरदेव हो गये हैं। उनके भी कई ताम्रपत्र मिले हैं। वे वैष्णव थे। ताम्र-पत्र की मुद्रा में गरुड़ की मूर्ति अंकित है। तीवरदेव का भतीजा हर्षगुप्त था। उसका विवाह, मगध ?) के मौखारी राजा ईशान वर्म्मा के पुत्र राजा सूर्य्य वर्म्मा की लड़की 'वासटा' से हुआ था। रानी वासटा और राजा हर्षगुप्त के सुपुत्र महाशिवगुप्त हुए, जो बालार्जुन भी कहे जाते थे। वासटा रानी के भाई महाशिवगुप्त बालार्जुन के मामा भास्कर वर्म्मा (याने सूर्य वर्म्मा के पुत्र) बौद्धमतावलम्बी थे। उनकी सिफ़ारिश से महाशिवगुप्त ने बौद्ध-भिक्षुओं को कैलाशपुर दान में दिया था। तीवरदेव का समय अनुमानतः ५५५ ईसवी है। इससे उनके भतीजे के लड़के का समय ६०० से ६३० तक होना सम्भव है। मलार के पास जैतपुर नामक ग्राम सम्भवतः यहाँ के बौद्धों को ही दान में दिया गया हो और वहाँ कोई प्रख्यात चैत्य रहा हो।

दानपत्र के तथा कुछ मूर्तियों के भेजे जाने के बाद से ही खुदाई का काम सरकार-द्वारा बन्द करा दिया गया है। विशेषज्ञों का कहना है कि साधारण व्यक्तियों द्वारा खोदने के कारण भी कई मूर्तियाँ इत्यादि टूट-फूट गई होंगी, अतएव खुदाई-विभाग की देख-रेख में यह काम होना चाहिए। जब यह काम उक्त विभाग-द्वारा होगा तब संभवतः और भी ऐतिहासिक रहस्य प्रकट हुए बिना न रहेगा।

कथित दानपत्रों के मूल लेख की नक़ल हम नीचे दे रहे हैं—
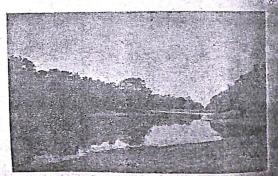
[गढ़ के चारों ओर जलपूर्ण खाई]

मल्लार (ज़िला बिलासपुर, सी० पी० में प्राप्त महाशिवगुप्त बालार्जुन का ताम्र-लेख।

मुद्रा— त्रिशूलयुक्त समासीन वृषभ।

लिपि—सम्पुट शिखा।

ॐ स्वस्त्य शिष क्षितीशविद्याभ्यासविशेषा सादित-महनीयविनयसम्पतसम्पादितसकलविजिगीषुगुणो गुणवत्स-मात्र सकृत्तरशौर्यमज्ञा प्रभावसंभावितमहाभ्युदयः कार्तिकेय इव कृत्तिवाससो राज्ञः श्रीहर्षदेवस्य सूनुः सोमवंशसम्भवः परममाहेश्वर मातापितृपादानुध्यात श्रीमहाशिवगुप्तराजः कुशली। तरडन्शक भोगीय कैलासपुर ग्रामे ब्राह्मणान् सम्पूज्य सप्रधानान् प्रतिवासिनो यथाकालाध्यासिनस्समाहर्तृ-सन्निधातृ सप्रमुखानाधिकारिणः सकरणानन्यांश्चास्मत्पा-दोपजीविनः सर्वराजपुरुषान् समाज्ञापयति विदितमस्तु भवतां यथास्माभिरयं ग्रामः सनिधिः सोपनिधिः सदशाप-राधः सर्वकरसमेतः सर्वपीड़ावर्जितः प्रतिनिषिद्ध चाटभट-

[कुबेर की मूर्ति]

[एक सुन्दर मूर्ति का सर]
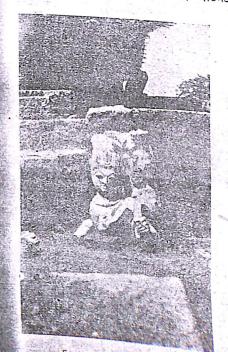
प्रवेशतया। तरडन्शक प्रतिष्ठित कोरदेव भोम्पालककारित विहारिकानिवासी चतुर्दशार्यभिक्षुसंघाय श्री भास्करवर्म मातुलविज्ञप्तया ताम्रशासनेन चन्द्रार्कसमकालं माता-पित्रोरात्मनश्च पुण्याभिवृद्धये आषाढामावास्या सूर्यग्रहोपरागे उदकपूर्वं प्रतिपादित इत्यतश्च विधेयतया समुचितभोग-भागादिकमुपनयद्भिर्भवद्भिः सुखं प्रतिवस्तव्यमिति। भाविनश्च भूमिपालानुद्दिश्येदमभिधीयते—

भूमिप्रदादिवि ललन्ति पतन्ति हन्त हृत्वा महीं नृप-तयो नरके नृशंसाः एतद्द्वयं परिकलय्य चलाञ्च लक्ष्मी-मातुस्तथा कुरुत यद्भवतामभीष्टम अपि च।

रक्षापालनयोस्तावत् फले सुगतिदुर्गती।

को नाम स्वर्गमुत्सृज्य नरकं प्रतिपद्यते॥

व्यासगीतांश्चात्र श्लोकानुदाहरन्ति—

अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्णं

भूर्वैष्णवी सूर्यसुताश्च गावः।

दत्तास्त्रयस्तेन भवन्ति लोका
य: काञ्चनं गां च महीञ्च दद्यात् ॥
षष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्गे मोदति भूमिदः ।
आच्छेत्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत् ॥
बहुभिर्वसुधा दत्ता राजभिः सगरादिभिः ।
यस्य यस्य यदा भूमिः तस्य तस्य तदा फलम् ॥
स्वदत्तां परदत्तां वा यत्नाद्रक्ष युधिष्ठिर !
महीं महिमतां श्रेष्ठ दानाच्छ्रेयोनुपालनम् ॥

मुद्रा:—

राज्ञः श्रीहर्षगुप्तस्य सूनोः सद्गुणशालिनः ।
शासनं शिवगुप्तस्य स्थितमासवनस्थितेः ॥

नीचे हिन्दी अनुवाद दिया जाता है—

स्वाथ्य-सम्पन्न महाशिवगुप्त राजा सदा माता-पिता के चरणों का ध्यान किया करते हैं। वे महेश्वर-भक्त हैं। सोमवंशी हैं और हर्षगुप्त के पुत्र हैं। वे कृत्तिवासपुत्र कार्तिकेय के समान पराक्रमशाली और विजेता के सब गुण, बुद्धि और बलसम्पन्न ... तरडन्शक भोगस्थित कैलासपुर गाँव में ब्राह्मणों को ... करके प्रत्येक ग्राम-वासी को, राजकर्मचारियों का ... राजामात्यों को और अपने पदाश्रित सब सेवकों को ... आज्ञा देते हैं कि तुम लोगों को विदित हो कि सब ... और गुप्त धन सम्पत्ति और समस्त कर-समेत यह ... (कैलासपुर) अपनी और पुरखों की महिमा और ... बढ़ाने के हेतु इस ताम्र-पत्र पर जल छोड़कर आ... महीने की १५वीं तिथि (अमावास्या) को सूर्य-ग्रहण ... समय तरडन्शक स्थित कोरदेव की स्त्री अलकानि... (बौद्ध) भिक्षुसंघ के १४ आर्य भिक्षुओं को मामा ... श्री भास्कर वर्म्मा के अनुरोध से दान किया।

जब तक चंद्र-सूर्य रहें तब तक यह भिक्षुसंघ इस गाँव की आमदनी भोग करे। इस गाँव में कोई राजकर्मचारी कर वसूल न कर सकेगा, न किसी प्रकार का अत्याचार कर सकेगा। कोई सैनिक या पुलिसवाला इस गाँव में प्रवेश नहीं कर सकेगा। ऐसा जान कर सब लोग गाँव की सब प्रकार की आमदनी आनन्दपूर्वक भिक्षुसंघ को दिया करें।

भविष्य अधिकारियों को बताया जाता है कि जो भूमि-दान करनेवाले इस दान को क़ायम रक्खेंगे वे इस लोक में प्रतिष्ठा और परलोक में स्वर्ग भोग करेंगे। जो इस दान को ज़ब्त करेंगे, हाय ऐसे नृशंस मनुष्य नरक में जायँगे। यह मनुष्य-जीवन नश्वर है और लक्ष्मी चंचला है, ऐसा जानकर किस मार्ग से चलोगे, चुन लो।

अविच्च भूमिदान सुख का कारण है और भूमिहरण दुःख का कारण है। स्वर्ग-सुख छोड़ करके कौन नरक भोगना चाहेगा? इस सम्बन्ध में सुधीगण व्यास का यह श्लोक गाया करते हैं।

यथा—अग्नि का प्रथम सन्तान सुवर्ण है। भूमि विष्णु की कन्या है। गाय सूर्य से उत्पन्न हुई है। जो सुवर्ण, भूमि और गोदान करता है वह त्रिभुवन दान का फल लाभ करता है। भूमिदाता ६०,००० वर्ष तक स्वर्ग में ... करता है और जो दान की हुई भूमि को छीन लेता है या छीनने में सहायता करता है या सहमत होता है वह नरक में जाता है। सगर से आज तक बहुत-से राजाओं ने भूमि-दान किया है। जब जो राजा भूम्यधिकारी होकर भूमि-दान कर गये हैं वे ही उसका फल पा गये हैं। हे युधिष्ठिर, अपनी दी हुई या दूसरे की दी हुई भूमि की सदा यत्न-पूर्वक रक्षा करते रहो। किसी की ज़मीन छीन कर दान करने की अपेक्षा दान की हुई भूमि की रक्षा करना अधिक पुण्य-जनक है।

शनि की दशा

अनुवादक, पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र

राधामाधव बाबू एक बहुत ही आस्तिक विचार के आदमी थे। सन्तोष उनका एक-मात्र पुत्र था। कलकत्ते के मेडिकल कालेज में वह पढ़ता था। वहाँ एक बैरिस्टर की कन्या से उसकी घनिष्ठता हो गई। उसके साथ वह विवाह करने पर भी तैयार हो गया। परन्तु वह बैरिस्टर विलायत से लौटा हुआ था और राधामाधव बाबू की दृष्टि में वह धर्मभ्रष्ट था इसलिए उन्हें यह सह्य नहीं था कि उसकी कन्या के साथ उनके पुत्र का विवाह हो। वे उस बैरिस्टर की कन्या की ओर से पुत्र की आसक्ति दूर करने की चिन्ता में पड़े ही थे कि एकाएक वासन्ती नामक एक सुन्दरी किन्तु माता-पिता से हीन कन्या की ओर उनकी दृष्टि पड़ी। उन्होंने उसी के साथ सन्तोष का विवाह कर दिया। परन्तु सन्तोष को उस विवाह से सन्तोष नहीं हुआ। वह विरक्त होकर घर से कलकत्ते चला गया। इससे राधामाधव बाबू और भी चिन्तित हुए। वे सोचने लगे कि वासन्ती का जीवन किस प्रकार सुखमय बनाया जा सके।

—नवाँ परिच्छेद

उपदेश

बड़े ज़ोरों की गर्मी थी। दो पहर रात व्यतीत हो चुकी थी। वायु नाम तक को नहीं चल रही थी। पूर्व के आकाश में चन्द्रमा उदित हो आये थे। उनकी किरणें चाँदी की चद्दर-सी बिछाकर चारों दिशाओं को उज्ज्वल कर रही थीं। एक घर के बरामदे में एक ...आ पुरुष खड़ा था। ज्योत्स्ना के प्रकाश में अनिमेष दृष्टि ... वह यमुना की तरङ्गों का नर्तन देख रहा था।

वह युवा सन्तोष था। चन्द्रमा के प्रकाश में उसने ...खा कि समीप ही पिता जी खड़े हैं। उस समय उसकी ...न्ता का वेग इतना प्रबल था कि वह पिता के आगमन ... आहट नहीं पा सका। ज़रा दूर आगे बढ़ते ही उसने ...ना कि पिता उसे बुला रहे हैं। उसके समीप आते ही ... महोदय ने कहा—"सन्तोष, तुमसे थोड़ी-सी बातें कहनी हैं। क्या इस समय तुम सुनोगे?" सन्तोष ने मस्तक हिला कर अपनी सहमति सूचित की। तब वसु महोदय ने वहीं पर उसे बैठने को कहा और स्वयं भी उसके पास ही बैठ गये।

सन्तोषकुमार पिता का तार पाकर गाँव आया था। उसको आये जब दो दिन बीत गये तब सदाशिव से उसने कहा—"पिता जी ने मुझे क्यों बुलाया है, यह बात अब भी उन्होंने मुझे नहीं बतलाई। कल ही मैं चला जाऊँगा।"

सदाशिव ने वसु महोदय के पास जाकर यह बात कह दी। उन्हें जब मालूम हुआ कि सन्तोष कलकत्ता लौट जानेवाला है तब वे उसे खोजने के लिए आये। सामने ही बरामदे में वह उन्हें मिल गया। वसु महोदय ने उसे बैठने को कहा। पिता-पुत्र दोनों ... अपने आप कुछ बोलेगा ... उनका सन्तोष आज ... करके भी उन्हें नहीं तृ... आँसुओं की धारा ... उसका संवरण करन...

के मुँह की ओर दृष्टि फेरकर उन्होंने कहा—सन्तू, क्या तू कल चला जायगा?

कातर स्वर से सन्तोष ने कहा—इच्छा तो है। अधिक समय तक रुकने से पढ़ाई में हानि होगी।

वसु महोदय का वक्ष भेदकर एक व्यथित निःश्वास वायु में मिल गया। उन्होंने रुद्धप्राय कण्ठ से कहा—मैं चाहता हूँ कि तू अभी से ही ज़मींदारी का थोड़ा-बहुत काम देख लिया कर। मैं वृद्ध हो चला हूँ, शरीर में बल भी नहीं रह गया है, अधिक समय तक जीवित रह सकूँगा, यह नहीं मालूम पड़ता। इसके सिवा तुझे तो डाक्टरी पढ़ने की इतनी अधिक आवश्यकता भी नहीं है। तुझे आहार-वस्त्र की तो कोई चिन्ता है नहीं, अतएव यदि अभी से ही तू थोड़ा-बहुत काम-काज देखने लगे तो बाद को कोई झंझट न मालूम पड़ेगा। इसी लिए तुझसे कहता हूँ कि अब पढ़ने की आवश्यकता नहीं है।

पिता जी आज इस प्रकार विशेष स्नेह किस मतलब से प्रकट कर रहे हैं, यह बात सन्तोष से छिपी न रह सकी। पिता जी उसे अपने पास क्यों रखना चाहते हैं, यह भी उसने समझ लिया। जो पिता बाल्य-काल से ही इस ओर विशेष ध्यान रखता आया है कि कहीं पुत्र के पढ़ने-लिखने में किसी प्रकार का विघ्न न होने पावे, वही आज उससे कह रहा है कि अब पढ़ने-लिखने की कोई आवश्यकता ही नहीं है। सन्तोष ने सोचा कि यह सब कुछ नहीं है, सुषमा से मुझे दूर रखना ही उनका एकमात्र उद्देश है।

पुत्र को मौन देखकर वसु महोदय ने कहा—क्या तुझे यह पसन्द नहीं है?

सन्तोष ने दृढ़ कंठ से कहा—अब अधिक समय तो लगेगा नहीं। थोड़े दिनों तक परिश्रम करके यदि पास कर सकता हूँ तो उसे अधूरा क्यों रक्खूँ?

वसु महोदय ने कहा—ज़मींदारी का काम सीखना भी तो आवश्यक है। वह भी तो यों हीं नहीं आ जायगा।

"— ...झसे किसी काल में भी नहीं हो सकेगा ...न-पर्य्यन्त न समझ सकूँगा। आप

...दीवान सदाशिव से। ...ई कहकर पुकारता

सन्तोष के मुँह की ओर दृष्टि स्थिर रखकर वसु महोदय ने कहा—सन्तोष, तुझसे इस तरह का उत्तर पाऊँगा, यह आशा मैंने कभी नहीं की। किसी भी कार्य के संबंध में असमर्थता प्रकट करना क्या पुरुष के लिए लज्जा का विषय नहीं है? तू मूर्ख नहीं है, पढ़ा-लिखा है। तेरे मुँह से यह बात शोभा नहीं देती। इसके सिवा, बेटा, तुझे छोड़कर मेरे और कोई है नहीं, यह भी तुझे मालूम है। इस वंश की सारी मान-मर्यादा तेरे ही ऊपर निभर है। इस ओर यदि तू ध्यान नहीं देता तो क्या पिता-पितामह की कीर्ति नष्ट कर देना चाहता है? यह क्या तेरे लिए गौरव की बात होगी? तू ही मेरा एकमात्र वंश-रक्षक है दूसरा कोई है नहीं, जिसके द्वारा इस अभाव की पूर्ति कर लूँ। बेटा, अब भी समझ जा। मेरा सभी कुछ तेरे ही ऊपर निर्भर है। तू अब लड़का नहीं है। पढ़ा-लिखा है, हर एक बात को सोच-समझ सकता है। इस समय तेरे जो विचार हैं वे कल्याणकारी नहीं हैं।

"तो भला मैं क्या करूँ? यह सब तो मैं बिलकुल ही नहीं समझता।"

ज़रा देर तक चुप रह कर करुण कंठ से उन्होंने फिर कहा—छिः! बेटा, ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए। यह सब तू न देखेगा तो भला और कौन देखेगा? दूसरी बात यह है कि तू अब अकेला नहीं रह गया है। तूने विवाह कर लिया है। उसके प्रति भी तेरा कुछ कर्तव्य है? तू मेरे ऊपर क्रुद्ध हो सकता है, परन्तु उसने क्या किया है? उसका तो कोई अपराध नहीं है। सन्तू, भैया मेरे, ... भी तू समझने की कोशिश कर। बुढ़ापे में ... और—आगे उनके मुँह से और कोई शब्द न निकल सका।

यह सुनकर सन्तोष ने रुद्धप्राय स्वर से कहा—"... जी, मुझे क्षमा कीजिएगा। मैं आपकी समस्त आज्ञाओं का पालन करता आया हूँ, केवल......" सन्तोष का गला रुँध गया। धीरे-धीरे उठ कर वह चला गया। वसु महोदय उसी तरह अकेले ही बैठे बैठे बड़ी देर तक सोचते रहे। बालिका की भावी दुखमय अवस्था का ... करके अनुताप से उनका हृदय परिपूर्ण हो उठा। रात को उन्हें फिर नींद नहीं आ सकी।

दूसरे दिन सन्तोषकुमार दोपहर को अन्तःपुर में ...

उसे देखते ही ताई ने पूछा—तो क्या तू आज ही कलकत्ते चला जायगा ?

सन्तोष ने धीमी आवाज़ में उत्तर दिया—तुम्हें किसने बतलाया ?
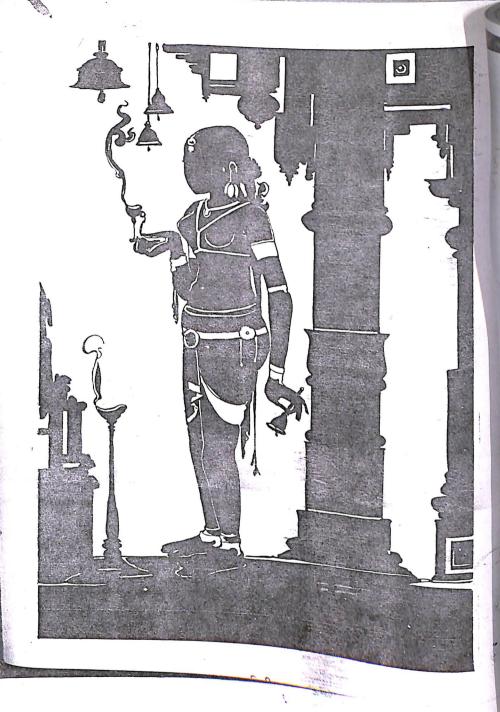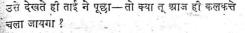
ज़रा-सा मुस्कराकर ताई ने कहा—तुमने नहीं बतलाया तो क्या मैं सुन ही नहीं सकती थी ? अभी कुल दो ही दिन तो तुझे यहाँ आये हुए। आज ही चलने को भी तैयार हो गया !

इस बात के उत्तर में सन्तोष ने कहा कि यहाँ रहने पर मेरी तबीअत अच्छी नहीं रहती। इसके सिवा यहाँ रहने में लाभ ही क्या है ? केवल झमेला ही तो लगा रहता है।

सन्तोष की यह बात ताई के हृदय में बहुत तेज़ बाण की तरह बिंध गई। एक आह भर कर उन्होंने कहा—यह कैसी बात कहता है सन्तू ? भला ऐसा भी कहीं हो सकता है ? घर में रहने से कहीं तबीअत ख़राब हो जाती है ? बेचारी बहू मुँह सुखाये बैठी रहती है। उसे उदास देखकर हम लोग कितने दुःखी होते हैं, यह क्या तू समझ सकेगा ? राजरानी होकर भी दुलारी हमारी सब कुछ त्याग कर बैठी है, क्या तू यह देखता है ? ऐसा करके और न जला सन्तू, मेरा राजा भैया तो। एक बार अपने बाबू जी के चेहरे पर दृष्टि डालकर तो देख ! छिः ! छिः ! तू इस तरह का हो कैसे गया ? तेरी तो बुद्धि ही जाती रही। जिस एक पराई लड़की को तूने गले से बाँध रक्खा है उसकी चिन्ता तो करनी ही चाहिए।

ताई की बात काटकर सन्तोष ने कहा—इतनी बातें तो कह गई हो, लेकिन यह नहीं देखती हो कि दोष किसका है। मैंने तो पहले ही बतला दिया था। अब मुझसे यह सब कहने की क्या आवश्यकता है ? तुम सब लोग मिल कर यदि मुझे इस तरह तङ्ग करते रहोगे तो भाई बतलाये देता हूँ, मामला ठीक न होगा। अभी तो मैं घर आ भी जाया करता हूँ, किन्तु यदि इसी तरह की बातें जारी रहीं तो इस ओर देखूँगा भी नहीं।

सन्तोष की यह बात सुनकर ताई जी डर गईं। वे कहने लगीं—तू तो इतनी ही-सी बात पर क्रुद्ध हो गया। तुझे तो लोगों के सामने मुख दिखाना नहीं पड़ता। तुझे क्या बतलाऊँ ? चारों ओर जो इस तरह का हँसी-ठट्ठा हो रहा है, वह क्या इस अवस्था के लोगों के सहने के योग्य है ? भला बताओ तो !

सन्तोष ने कहा—जब किया है तब क्यों नहीं सोचा ? अब मैं क्यों इस तरह घसीटा जा रहा हूँ ? अपने कर्म का फल अपने आप भोग करो। बहू चाहते थे, बहू पा गये हो। अब क्या चाहिए ? मुझे क्या करना है ? मैं चाहूँ तो इसी क्षण यह सब छोड़कर चला जाऊँ। और मैं समझता हूँ कि शीघ्र ही मुझे ऐसा करना भी पड़ेगा। नहीं तो तुम लोगों के हाथ से छुटकारा न मिल सकेगा ?

उत्तर की ज़रा भी प्रतीक्षा न करके सन्तोष तेज़ी से पैर बढ़ाता हुआ घर से बाहर निकल गया। देवर के लड़के की यह दुर्बुद्धि देखकर ताई जी सन्नाटे में आ गईं। बड़ी देर तक वे उसी स्थान पर बैठी रहीं।

दुर्भाग्यवश वासन्ती पासवाले कमरे में ही बैठी थी। वह चुपचाप बैठी बैठी पति तथा ताई की सारी बातें सुन रही थी। एक भी बात ऐसी नहीं हुई जो उसके कान तक न पहुँच सकी हो। ताई के मुँह से उसने जब अपनी चर्चा सुनी तब उसे बड़ी लज्जा आई। वह मन ही मन सोचने लगी कि स्वामी की जो कुछ इच्छा हो, वे वही करें। ताई उनसे कोई बात क्यों कहती हैं ? वे यदि मुझे नहीं प्यार करते तो क्या कोई ज़बर्दस्ती प्यार करवा सकता है ? व्यर्थ में इस तरह की बातें कह कहकर उन्हें चिढ़ाने की क्या आवश्यकता है ?

वासन्ती को यह नहीं मालूम था कि मेरे पतिदेव किसी और स्त्री को प्यार करते हैं। उससे यह बात किसी ने बतलाई ही नहीं। इसलिए स्वामी के चरित्र के सम्बन्ध में उसे किसी प्रकार का सन्देह नहीं हो सका। स्वामी जो उसे प्यार नहीं करते, घृणा की दृष्टि से देखते हैं, उसका कारण वह कुछ और ही समझती थी। उसकी धारणा थी कि मुझे ग़रीब की लड़की समझ कर ही वे इस प्रकार उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। वह मन ही मन कहने लगी—होगा। इसके लिए क्या शिकायत है ? वे यदि इसी में शान्ति पाते हैं तो उनके हृदय में अशान्ति का भाव उत्पन्न करने की क्या आवश्यकता है ?

—

दसवाँ परिच्छेद

विल

पुत्र के प्रतिकूल आचरण के कारण वसु महोदय का शरीर क्रमशः गिरने लगा। श्वशुर के शरीर की अवस्था देखकर वासन्ती बहुत ही चिन्तित हो उठी। वसु महोदय को अब खाने-पीने की भी इच्छा बहुत कम हुआ करती थी। इससे वासन्ती और दुखी होती। किसी किसी दिन तो वह बहुत ही अनुनय-विनय करती, रोती और खाने के लिए उनसे बहुत आग्रह करती। पुत्रवधू को सन्तुष्ट रखने के लिए वे सदा ही सचेष्ट रहा करते थे, इसलिए जो कुछ वह कहती, वे वही किया करते थे। परन्तु विधाता के विधान को अन्यथा करने की शक्ति तो किसी में है नहीं, वह होकर ही रहता है। दुश्चिन्ताओं के कारण उनका शरीर दिन दिन गिरने लगा।

एक दिन की बात है। दोपहर के समय वसु महोदय भोजन करने के लिए बैठे थे। ताई जी थाली लगा रही थीं। पास बैठी वासन्ती पंखा झल रही थी। सन्तोषकुमार कलकत्ता लौट गया था, इससे वे उस पर बहुत ही क्रुद्ध हो उठे थे। परन्तु अपना सारा क्रोध वे मन ही मन लिये रहे, इस सम्बन्ध में किसी से कोई बात उन्होंने कही नहीं।

थोड़ी देर तक चुपचाप बैठी रहने के बाद वासन्ती ने कहा—बाबू जी, आप दिन दिन आहार छोड़ते जा रहे हैं, इससे आपका शरीर और ख़राब होता जा रहा है।

पुत्रवधू के उदास और सूखे हुए मुँह की ओर ताककर वसु महोदय ने कहा—क्या सदा ही आदमी की ख़ूराक वैसी की वैसी ही बनी रहती है बेटी? बुढ़ाई का शरीर ठहरा! इसके सिवा, मेरे इनकार करने पर भी तो खिलाये बिना तुम प्राण छोड़नेवाली नहीं हो!

एक हलकी आह भर कर वासन्ती ने कहा—आप शरीर की ओर ज़रा भी ध्यान नहीं देते बाबू जी, इसलिए आपका शरीर और भी ख़राब होता जा रहा है। आपकी इस अवस्था के कारण हमें बड़ा भय हो रहा है।

वसु महोदय ने कहा—इसमें डरने की कौन-सी बात है बिटिया! मेरा शरीर ज़रा कुछ ख़राब रहता है, थोड़े ही दिनों में ठीक हो जायगा। इसमें घबराने की कौन-सी

आँसुओं के आवेग से वासन्ती का कण्ठ रुँध गया। किसी प्रकार अपने को सँभाल कर उसने कहा—बाबू जी, आप हमारे भविष्य की ओर ज़रा भी ध्यान नहीं देते। आपके चले जाने पर हमारी क्या दशा होगी? और वह कुछ कह न सकी। आँसुओं ने उसका कण्ठ रुद्ध कर दिया।

वासन्ती को सान्त्वना देते हुए वसु महोदय ने कहा—क्या ज़रा-सा शरीर ख़राब हो जाने से ही कोई आदमी मर जाता है बिटिया? तुम मेरे लिए चिन्ता मत करो। परन्तु मुझे यह बहुत बड़ा दुःख रह ही गया कि बिटिया मैंने किया तो तुम्हें सुखी करने का प्रयत्न किन्तु कर दिया बहुत दुःखी। यह कष्ट मुझे साथ में लेकर ही जाना पड़ेगा।

वासन्ती ने स्निग्ध कण्ठ से कहा—आप यह बात क्यों कह रहे हैं बाबू जी? आपके पास आकर मैं बहुत ही सुखी हुई हूँ। आपको उसके लिए दुःख क्यों हो रहा है?

उस प्रसङ्ग को रोक देने के लिए वसु महोदय ने कहा—चलो बिटिया, हम लोग थोड़े दिन तक कहीं हवा खा आवें और तुम अपने इस 'बच्चे' को मोटा कर ले आओ।

वासन्ती प्रसन्न हो गई। उसने कहा—बहुत अच्छी बात है बाबू जी। यह आपने अच्छा सोचा है। इससे आपकी तबीअत भी बहल जायगी और शरीर भी सुधर जायगा। यह कहकर उसने फिर पूछा—तो कहाँ चलने का विचार है?

"यह तो अभी नहीं ठीक किया बिटिया, लेकिन चलना जल्द ही होगा। मुझे भी यह अनुभव हो रहा है कि आज-कल मेरी तबीअत कुछ ख़राब है।

ताई ने कहा—काशी या इसी प्रकार के अन्य किसी स्थान में चला जाय तो क्या ठीक न होगा?

वसु महोदय ने कहा—अच्छा तो है। काशी ही चला जाय। अभी से ही थोड़ी-बहुत तैयारी कर लेनी चाहिए। इस बार का हिसाब-किताब तय करके निकल पड़ना चाहिए।

भोजन से निवृत्त होने के बाद वसु महोदय बैठक में चले गये। वसन्ती वहीं पर बैठ कर चुपचाप अपने भाग्य पर विचार करने लगी। वह सोचने लगी कि श्वशुर

मृत्यु हो जाने पर मेरी क्या दशा होगी। जिसकी दया से आज मैं राजराजेश्वरी बनी बैठी हूँ, उसी के अभाव में कदाचित् फिर मुझे आश्रय के लिए भटकना पड़ेगा। यही चिन्ता उसे कई दिनों से उद्विग्न कर रही थी।

सन्तोषकुमार अत्यधिक हठ के ही कारण कलकत्ते चला गया। वसु महोदय ने उसे बहुत रोका था, परन्तु वह किसी प्रकार भी घर रहने को तैयार नहीं हुआ। उसके चले जाने पर वसु महोदय ने मन ही मन यह स्थिर किया कि यदि कहीं मेरी मृत्यु हो गई और वासन्ती सन्तोष के हाथ में पड़ गई तो उसकी बड़ी दुर्दशा होगी। सन्तोष की यह दुर्मति जब तक दूर नहीं होती तब तक वासन्ती का भविष्य बहुत ही अन्धकारमय बना रहेगा। इसलिए यह आवश्यक है कि मैं अपने जीवनकाल में ही उसके लिए कोई पक्का प्रबन्ध कर दूँ, अन्यथा बाद को सन्तोष कहीं उसे घर से बाहर न कर दे। जिसने विवाहिता पत्नी की इस प्रकार की उपेक्षा कर रक्खी है उसके लिए असाध्य कुछ भी नहीं है। उसका हृदय आज भी अनादि बाबू की कन्या के ही प्रति आकर्षित है। बहुत सम्भव है कि मेरी मृत्यु हो जाने पर वह उसके साथ विवाह भी कर ले। कदाचित् वह मेरी मृत्यु की ही प्रतीक्षा में रुका भी है। यह भी सम्भव है कि विवाह करके वह कलकत्ते में ही बस जाय गाँव की ओर एक बार दृष्टि फेर कर देखे भी न। तब तो पूर्वजों का घर और राधावल्लभ का मन्दिर आदि नष्ट ही हो जायगा।

तीन-चार दिन के बाद वसु महोदय के यहाँ विपिन बाबू तथा तीन-चार अन्य सज्जन आकर उपस्थित हुए। उन सबसे परामर्श करके उन्होंने एक दान-पत्र तैयार किया। उस दान-पत्र के द्वारा उन्होंने अपनी सारी ज़मींदारी, कोठियाँ तथा अन्य प्रकार की स्थावर और जंगम सम्पत्ति का वासन्ती को ही उत्तराधिकारी बना दिया। सन्तोषकुमार के लिए उन्होंने उसमें कोई व्यवस्था नहीं की। साधारण भत्ता भी नहीं नियत किया। ताई जी के लिए यह व्यवस्था हुई कि उन्हें जीवनपर्य्यन्त दो सौ रुपये मासिक मिलते रहेंगे। घर में ही वे रहेंगी। तीर्थ-यात्रा, दान-पुण्य या अन्य धार्मिक कृत्यों के लिए वे रियासत से स्वतन्त्र वृत्ति पावेंगी। वसु महोदय ने उस दान-पत्र के द्वारा वासन्ती को सम्पत्ति का दान तथा विक्रय तक करने का अधिकार दे दिया। इस प्रकार उन्होंने पुत्रवधू को ही सारी सम्पत्ति की एकमात्र स्वामिनी बना दिया और यह भी लिख दिया कि इनकी अनुमति के बिना कोई कुछ भी न कर सकेगा, यदि कोई कुछ करेगा भी तो वह नियमित न माना जा सकेगा।

दानपत्र लिखकर वसु महोदय ने वृद्ध दीवान जी तथा कलकत्ते से आये हुए चार महानुभावों को साक्षी बनाकर उस पर स्वयं हस्ताक्षर किया। रजिस्ट्री करवाने के लिए एटर्नी को दे दिया। उन्होंने उससे यह भी कह दिया कि रजिस्ट्री करवा कर इसे तुम अपने ही पास रक्खे रहो, मेरी मृत्यु होने पर जब श्राद्ध आदि हो जाय तब इसे वासन्ती को देना। इससे पहले हम लोगों को छोड़ कर और किसी के भी कान में यह बात न पड़ने पावे। दूसरे दिन वह दानपत्र लेकर वे लोग चले गये। दीवान सदाशिव ने एक बार कहा था कि सन्तोष को सम्पत्ति से बिलकुल ही वञ्चित कर देना उचित न होगा। इसके उत्तर में वसु महोदय ने कहा—हमारे पिता पितामह के पवित्र स्थान में कोई विलायत से लौटे हुए आदमी की कन्या आकर इसे अपवित्र करे, यह मेरे लिए असह्य है। यदि कहीं ऐसा हुआ तो मेरी आत्मा को बड़ा क्लेश मिलेगा, स्वर्ग में जाकर भी मैं शान्ति न पा सकूँगा। उसके अतिरिक्त सन्तोष मूर्ख भी नहीं है, वह पढ़ा-लिखा है, अपने निर्वाह के लिए बहुत कुछ कमा लेगा। यह बात सुनते ही दीवान जी चुप हो गये, फिर उन्होंने इस बात की चर्चा नहीं की।

दान-पत्र तैयार हो जाने पर वसु महोदय मानो बहुत कुछ निश्चिन्त हो गये। इस दान-पत्र के सम्बन्ध में उन्होंने भौजाई या वासन्ती को कोई भी बात नहीं बतलाई। वासन्ती वृद्ध की सेवा में तन-मन से लगी रहती, वृद्ध श्वशुर को सुखी करने के लिए असाध्य साधना करके भी वह तृप्ति का अनुभव नहीं करती थी।

वासन्ती कभी किसी प्रकार का बनाव-शृङ्गार नहीं करती थी। वह सदा ही बहुत सादी पोशाक में रहती थी। साथ ही उसकी मुखाकृति पर प्रसन्नता की रेखा भी कभी नहीं दिखाई पड़ती थी। उसकी इस मलिन छवि पर दृष्टि पड़ते ही वसु महोदय हृदय में अपार वेदना का अनुभव करते थे। उन्होंने सोचा था कि

दो दिन के बाद ही सन्तोष को अपनी भूल मालूम हो जायगी और वह मन ही मन दुःखी होकर क्षमा माँगने के लिए आवेगा। परन्तु इसका कोई लक्षण न दिखाई पड़ा। तब उन्होंने पुत्र को बुलाकर उपदेश किया, समझाया-बुझाया, उसे डाँट-फटकार बतलाई। किन्तु इसका भी उस पर किसी प्रकार का प्रभाव न पड़ा। अन्त में वे निराश हो गये। अब वे यह अनुभव करने लगे कि मैंने वासन्ती के प्रति बहुत बड़ा अपराध किया है। उन्होंने वासन्ती को बहुत-से बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण दिये थे, परन्तु उन्हें वह अनावश्यक समझती रही, कोई उनका उपयोग नहीं करती थी। वह फटे-पुराने कपड़े पहनकर ही दिन काटा करती थी। वासन्ती की इस प्रकार की अशान्तिमय मानसिक अवस्था तथा मलिन वेश-भूषा देखकर वसु महोदय भी बहुत दुःखी होते थे। उन्होंने दो-एक बार इस सम्बन्ध में वासन्ती से पूछा भी। इससे वह इधर थोड़े दिनों से श्वशुर को प्रसन्न करने के लिए उनके सामने जाते समय कुछ अच्छे कपड़े और दो-चार गहने भी पहन लिया करती थी, किन्तु शायद संसार की अवस्था से अनभिज्ञ वासन्ती यह नहीं जानती थी कि गुरुजनों से सत्य छिपाया नहीं जा सकता।

वासन्ती को सुखी करने के लिए वसु महोदय अपनी शक्ति भर कुछ उठा नहीं रखते थे। वासन्ती से भी जहाँ तक बन पड़ता, वह अपनी अवस्था उनसे छिपाये ही रखने का प्रयत्न किया करती थी। वे दोनों ही श्वशुर और पुत्रवधू एक-दूसरे से अपनी अवस्था छिपा कर ही रखना चाहते थे। परन्तु वसु महोदय के हृदय में वासन्ती की हीन और मलिन आकृति बाण की तरह चुभा करती थी। लाख प्रयत्न करके भी वासन्ती उसे छिपा नहीं सकती थी। निर्मम और असह्य यन्त्रणा के कारण किसी किसी दिन तो वसु महोदय के हृत्पिण्ड की क्रिया तो मानो बन्द-सी हो जाया करती थी, वे किसी प्रकार भी अपने को सँभाल नहीं पाते थे। ताई जी दिन दिन देवर के शरीर को इस तरह गिरते देखकर बहुत चिन्तित हो रही थीं। वे छिपाकर कभी कभी सन्तोष को पत्र भी लिखा करती थीं और हर एक पत्र में उससे यही आग्रह करतीं कि तुम घर चले आओ। परन्तु आना तो दूर रहा, वह किसी पत्र का उत्तर तक नहीं देता था।

समय जिस तरह बीत रहा था, उसी तरह वह बीतता गया। उसने किसी की ओर ध्यान न दिया। श्वशुर के शरीर की अवस्था देखकर वासन्ती पश्चिम की ओर जाने के लिए बहुत व्यग्र हो रही थी, किन्तु घर-गृहस्थी के झंझटों तथा तरह तरह के बाधा-विघ्न के कारण यात्रा का दिन क्रमशः पीछे हटने लगा। अन्त में एक दिन वसु महोदय ने कहला भेजा कि आसाढ़ मास की अमावास्या के आस-पास काशी-यात्रा का दिन स्थिर हुआ है। तब वासन्ती की दुश्चिन्ता बहुत कुछ दूर हो गई।

गीत

लेखिका, श्रीमती तारा पाण्डेय

कौन तू मुझको बुलाती?
भूमि में, जल में, गगन में,
प्रलय सा तू क्यों मचाती?
सजनि यह मधु-मास आया,
संग प्रिय के मैं रहूँगी।
चिरव्यथा को भूल कर अब,
प्रेम का ही गान गाती।
कौन तू मुझको बुलाती?

जननि जीवन आज मेरा,
सफल होने को हुआ है।
मधुर मंजुल इस घड़ी में, निठुर हो मुझको रुलाती।
कौन तू मुझको बुलाती?

आ रहा बचपन नया, तू देखने दे हास शिशु का?
हो रही ममता निराली, आज तू मुझको न भाती।
कौन तू मुझको बुलाती?

उन्नति के पथ पर

लेखक, पण्डित मोहनलाल नेहरू

पचासों वर्षों से नवयुवकों के दिमाग़ों में यह बात घूमा करती है कि हमारे बाप दादा यदि बेवक़ूफ़ नहीं तो निरे बकवासी थे। यों तो कुछ न कुछ विचारों में और उनके प्रकट करने में समय समय पर भेद रहा ही है, मगर अब उन विचारों का बहाव इसी तरफ़ रहता है कि हमारे बाप-दादा निरे बकवासी थे और हम नौजवान काम करके दिखानेवालों में हैं।

हम यह भूल जाते हैं कि बहुधा जो कुछ भी हम कर सकते हैं वह उसी 'बकवास' का नतीजा होता है या यों कहिए कि बड़ों के प्रताप का पुण्य होता है। आज-कल छुआछूत के ख़िलाफ़ बड़े ज़ोर लग रहे हैं। इसी का उदाहरण देना शायद बेजा नहीं। आज से पचास या साठ वर्ष पहले ऐसे हिन्दू सज्जन हो चुके हैं जिन्होंने छुआछूत के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाई थी। पहले वे नक्कू बने रहे, किन्तु अपनी रट लगाये रहे। उन्हें स्वयं किसी का छुआ खाने की हिम्मत न पड़ी। उनके बाद की पीढ़ी ने कहा कि कहते तो आप हैं, मगर जब खुद न किया तो बकबक से क्या लाभ, हम तो कर दिखायेंगे। उन्होंने चोरी-छिपे होटलों में खाना-पीना शुरू किया, यहाँ तक कि ऐसा करनेवाले एक-दूसरे से छिपकर होटलों में खाते और पीते भी थे। उनको यह हिम्मत न हुई कि स्वजाति के किसी व्यक्ति के सामने ऐसा करें। वहाँ तो वे भी बगुला-भगत ही बने रहते। लड़केवालों पर इसका यह असर हुआ कि वे एक क़दम आगे आये और चोरी-छिपे की रस्म उड़ा दी। यह बुरा हुआ या भला, इससे हमें मतलब नहीं। हमारा तो यह कहना है कि इन्होंने जो कुछ भी किया वह उसी 'बकवास' का नतीजा है जो उनके दादा-परदादा किया करते थे। सीढ़ी सीढ़ी वे लोग यहाँ तक पहुँचे, मगर स्वयं हर पीढ़ी एक ही सीढ़ी चढ़ी। फिर यह कहना कि उन्होंने अपने बाप-दादों से कोई बात ज़्यादा की, झूठा अभिमान है।

आदमी सदा ही तबदीली चाहता है, जिसे हम तरक़्क़ी कहता है और वृद्ध होने पर दूसरों का उससे आगे बढ़ना बुरा समझता है। इसी से युवक उसे बुद्धिहीन कहने लगते हैं। जिसे देखो, तरक़्क़ी की दोहाई देता है।

तरक़्क़ी है क्या? वर्तमान स्थिति में परिवर्तन। कोई भी किसी बात से [illegible] नहीं, शायद मौजूदा स्थिति से कभी कोई सन्तुष्ट नहीं रहा। परिवर्तन की या तरक़्क़ी की सदा चाहना रही है।

थोड़े ही दिनों की बात है कि सामाजिक क्षेत्र में स्त्री को किसी परिवर्तन की चाहना न थी। वह अपनी उस ज़माने की दशा से खुश थी और किसी परिवर्तन के पक्षपाती को घृणा की दृष्टि से देखती थी। वह दशा अच्छी थी या बुरी, मुझे इससे इस वक़्त मतलब नहीं। स्त्री-शिक्षा के, ख़ासकर उस शिक्षा के जो आज-कल प्रचलित है, फैलाव से उसे अपने व्यक्तित्व का ख़याल पैदा हुआ और उसने अपनी दशा के सुधार का आन्दोलन उठाया।

पश्चिमी देशों में उस आन्दोलन का विरोध हुआ। पुरुषगण ने उसका ख़ासा विरोध किया और मार-पीट की नौबत पहुँची, परन्तु आख़िर में उसको सफलता मिली। यह तरक़्क़ी समझी गई, किन्तु थोड़े ही दिनों में फिर उसका विरोध उठ खड़ा हुआ और जर्मनी-इटली में स्त्री फिर पुरानी दशा में ढकेल दी गई। उन विरोधियों की राय में यह तरक़्क़ी हुई।

पूर्वी देशों में स्त्री-आन्दोलन का विरोध नाममात्र को भी नहीं हुआ। पुरुषों ने स्वयं उन्हें बहुत कुछ उसके लिए उत्साहित किया। भारतवर्ष स्वयं ही दासता में है, देने का सवाल ही क्या? फिर भी जो कुछ वह दे सका था उसमें उसने संकोच नहीं किया। देने या न देने के वास्ते यह ज़रूरी है कि देनेवाले के पास वह वस्तु हो। यहाँ तो आप मियाँ माँगतेवाला मसला है। जो कुछ भी आप देना चाहें या जो भी परिवर्तन करना हो उसके वास्ते अपने मालिकों से दरख़्वास्त करनी होती है। और वहाँ विरोध मिलता है जैसा कि हिन्दू पुत्री के सम्पत्त्यधिकार-क़ानून और अन्तर्जातीय-विवाह क़ानून की दुर्दशा से साबित है।

स्त्री-शिक्षा की मिसाल लीजिए। थोड़े ही दिन

हुए कि स्त्री को शिक्षा देना बिलकुल बुरा समझा जाता था। सुधारक पैदा हो गये और लेकचरबाज़ी काफ़ी कर डाली। कुछ लोग उनकी बात मानकर लड़कियों को पढ़ाने लगे। मगर उन सुधारकों की यह मंशा कभी न थी कि लड़कियाँ उसी तरह की और उतनी ही शिक्षा पावें, जैसी लड़के पाते हैं। उनमें से कोई तो इतनी शिक्षा देना चाहते थे कि स्त्री को घर के काम-काज में सुविधा [illegible] एक्टीमिस्ट [illegible] इतना हो, कोई जो उनसे अधिक [illegible] थे, [illegible] चाहते थे कि उनकी लड़की अन्य पुरुषों से बातचीत कर सके और हो सके तो विदेशी भाषा में भी चटाख़-पटाख़ बोल सके। थोड़े से आदमी ऐसे भी थे जो उसे पुरुषों के बराबर शिक्षा देना चाहते थे। मगर वे भी यह नहीं सोचते थे कि वह पुरुष की बराबरी को तैयार हो जायगी। ऐसे पुरुष मौजूद हैं जो यह कहते हैं कि स्त्री को पुरुषों के बराबर अधिकार होने चाहिए और ऐसी स्त्रियाँ भी हैं जो यही बात कहती हैं। मगर शायद वे पुरुष और वे स्त्रियाँ यह बात ग़लत कहती हैं कि पुरुषों ने उनके वास्ते कुछ नहीं किया। ऐसा कहनेवाले स्त्री-आन्दोलन का इतिहास नहीं जानते।

अगर किसी बुज़ुर्ग ने घरेलू शिक्षा देने की आवाज़ न उठाई होती या यों कहें कि बकवास शुरू न की होती और उनके बाद कुछ लोग और आगे न बढ़े होते तो आज यह दशा न होती कि उन्हें इतना भी कहने का साहस होता। यह उन्हीं बकवासी लोगों के पुण्य का फल है कि ऐसे लोग मौजूद हैं जो समानता की ध्वनि उठाये हुए हैं। उठावें, ज़रूर उठावें, ऐसा चाहिए भी, मगर उन लोगों को जिन्होंने नींव डाली है, क्या बदनाम करना ज़रूरी है? जिन्होंने इतनी सहायता दी उनका दिल बेजा दुखाया जाय, यह कहाँ का इन्साफ़ है?

गत पचास वर्ष का कांग्रेस का इतिहास देखा जाय, शुरू शुरू के नेताओं के व्याख्यान पढ़े जायँ, तो ठकुरसोहाती की गंध उनमें आती है। "सरकार ने किया तो बहुत कुछ और हम इस पर उसे धन्यवाद देते हैं, किन्तु वह काफ़ी नहीं है।"

आगे चल कर ये ढंग बदल गये। उस समय के नेताओं ने बधाई देनी छोड़ दी और साफ़ साफ़ शिकायत करनी आरम्भ कर दी। अपने से पहले नेताओं का मज़ाक़ उड़ाया। उनके बाद तीसरा दल आया जो गर्म कहलाने लगा और सरकार के [illegible] ने माँगें पेश करने लगा। चौथे ने असहयोग की धमकी दी और कर दिखाया। एक को दूसरा, दूसरे को तीसरा और तीसरे को चौथा डरपोक बताया किये और यही कहा किये कि पहलेवाले बकबक के अतिरिक्त किसी मसरफ़ के नहीं थे। पुराने नेताओं के अनुयायी अब तक उन्हीं शब्दों में याद किये जाते हैं।

ज़रा ग़ौर कीजिए और सोचिए कि बिना पहले के शुरू किये और दबी ज़बान शिकायत किये चौथे तक मामला पहुँचता ही कैसे? बच्चा पैदा न हो तो कभी बड़ा कैसे होए? वास्तव में कोई भी कायर न था, बिना कहे सुननेवाले कैसे सुनें और बिना सुने दूसरे कैसे जानें? अगर हम कहें कि निरी बकवास भी इतनी बुरी चीज़ नहीं जितना उसे कुछ लोग दिखाना चाहते हैं तो शायद ग़लत न होगा।

अब राजनैतिक आन्दोलन ने फिर पलटा खाया है। गर्म ही लोग एक-दूसरे को बुरा-भला कहने लगे हैं। जो लोग मंत्रि-पद-ग्रहण के विरोधी हैं वे उसके पक्षपातियों को कमज़ोर और एक तरह से कायर समझने लगे हैं और ये दोनों पुराने क़िस्म के लिबरल नेताओं को तो आराम-कुर्सीवाले राजनीतिज्ञ समझते ही हैं। शायद यह ठीक भी है, क्योंकि वे सिवा गर्म लोगों को बुरा कहने के और ४०-५० वर्ष पहले के पुराने नेताओं की दोहाई देने के कुछ करते भी तो नहीं। वे यह भूले हुए हैं कि उस समय से पचास वर्ष आगे दुनिया जा चुकी है। मगर कांग्रेस के भीतरी दोनों दलों में समानता होते हुए भी उनमें से एक दूसरे को पिछड़ा हुआ दल समझता है जो उसकी राय में थोदा है।

वास्तव में ऐसा नहीं है। अपने समय के प्रत्येक सुधारक-दल ने पूरा काम किया और अब भी कर रहा है।
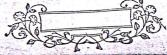
मदरास का सम्मेलन

लेखक, श्रीयुत श्रीमन्नारायण अग्रवाल

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन मदरास जैसे अहिन्दी प्रान्त में होना कितना महत्त्वपूर्ण था, इसका अन्दाज़ा तो सम्मेलन में उपस्थित हुए बिना नहीं चल सकता था। महात्मा गांधी और सेठ जमनालाल जी के कारण सम्मेलन ने वहाँ के बहुत-से नेताओं और प्रतिष्ठित सज्जनों तथा सन्नारियों को आकर्षित किया। हिन्दी-प्रचार और राष्ट्रीय भावना की दृष्टि से मदरास का यह अधिवेशन कुछ कम महत्त्व का न था। इसने राष्ट्रभाषा हिन्दी के सूत्र-द्वारा उत्तर और दक्षिण को एक सूत्र में बाँधकर एक महान् राष्ट्र की पक्की नींव डाली है। जिस काम को महात्मा गांधी और सेठ जमनालाल जी क़रीब अठारह वर्षों से कर रहे थे उसका दिग्दर्शन इस सम्मेलन से भले प्रकार हुआ हैं।

× × × ×

वर्धा से हम लोग २५ मार्च को रवाना हुए। मैं महात्मा जी के डिब्बे में ही था। महात्मा जी के साथ सफ़र करने का मेरा यह पहला ही मौक़ा था। उनके दर्शन के लिए प्रत्येक स्टेशन पर इतनी भीड़ इकट्ठी हो जाती है, इसकी मुझे कल्पना भी न थी। रात भर "महात्मा गांधी की जय" कानों में पड़ती रही। सोना तो बहुत मुश्किल हो गया। लेकिन महात्मा जी तो इतना शोरगुल होने पर भी गहरी नींद लेने के आदी हैं। दिन में तो महात्मा जी हरिजनों के लिए धन एकत्र करने में लग गये। ज्यों ही स्टेशन आता, और भीड़ हमारे डिब्बे के सामने इकट्ठी हो जाती, महात्मा जी "डब्बो! डब्बो!" कह कर अपना हाथ बढ़ा देते थे। पहले तो मैं 'डब्बो' का अर्थ नहीं समझा। बाद में मालूम हुआ कि 'डब्बो' का अर्थ तेलगू में 'पैसा' है। महात्मा जी के दर्शनों के लिए ज़्यादातर ग़रीब लोग जिनके तन पर काफ़ी वस्त्र भी नहीं थे, जमा होते थे। उनसे हरिजनों की सेवा के लिए महात्मा जी एक एक पैसा एकत्र करने में संतोष मानते हैं।

× × ×

मदरास-स्टेशन पर भीड़ कम करने के लिए श्री राजगोपालाचार्य महात्मा जी को एक स्टेशन पहले ही आकर मोटर में ले गये। सेठ जमनालाल जी का डिब्बा हमारे डिब्बे के पास ही था। मदरास-स्टेशन पर उनका ख़ूब स्वागत किया गया। स्वयंसेवकों का भी अच्छा प्रबन्ध था। हम लोग त्यागराय नगर में 'दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचार-सभा' के नये भवनों में ठहराये गये। उसी स्थान पर सम्मेलन का अधिवेशन भी हुआ।

शाम को थोड़ी ही देर बाद कनवोकेशन हुआ। श्री पुरुषोत्तमदास टंडन ने दीक्षान्त-भाषण किया। महात्मा जी भी सभापति की हैसियत से उपस्थित थे। शहर के क़रीब क़रीब सभी प्रतिष्ठित लोग आये थे। महात्मा जी ने भी काफ़ी देर तक भाषण किया और राष्ट्रीयता की दृष्टि से हिन्दी-प्रचार का महत्त्व बतलाया।

× × × ×

दूसरे दिन दोपहर को सम्मेलन का खुला अधिवेशन हुआ। श्रीमती लोकसुन्दरी रामन (सर सी० वी० रामन की पत्नी) स्वागताध्यक्षा थीं। उन्होंने हिन्दी में अत्यन्त सुन्दर भाषण किया। हिन्दी बोलना तो उनको अभी अच्छी तरह नहीं आता, लेकिन राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति उनका अगाध प्रेम देखकर सबको बड़ा आनन्द हुआ।

सेठ जमनालाल जी का भाषण छोटा किन्तु सारगर्भित था। साहित्यकार होने का दावा तो उन्होंने कभी किया ही नहीं, और इस सम्बन्ध में उन्होंने बड़े सुन्दर ढंग से अपनी सफ़ाई भाषण के शुरू में ही दे दी। किन्तु हिन्दी-प्रचार-कार्य में सेठ जी ने तन, मन, धन से सेवा की है, और उन्होंने प्रचार का कार्य बढ़ाने के लिए अपने अनुभव और विचार सरल किन्तु स्वाभाविक भाषा में हमारे सामने रक्खे। अपने भाषण में उन्होंने दक्षिण के नेताओं से हिन्दी सीखने के लिए ज़ोरदार अपील की ताकि हमको अन्तर्प्रान्तीय कार्य में एक विदेशी भाषा—अँगरेज़ी का सहारा न लेना पड़े।

× × × ×

उसी दिन शाम को महात्मा जी ने मदरास के क़रीब क़रीब सभी कांग्रेस के नेताओं को बुलाया और 'हिन्दुस्तानी' को कांग्रेस की कार्रवाई की भाषा बनाने के सम्बन्ध

[सेठ जमनालाल बजाज़ सम्मेलन के सभापति]

में क़रीब तीन घंटे तक चर्चा की। श्री राजगोपालाचार्य इस प्रस्ताव का हमेशा विरोध करते आये हैं, किन्तु महात्मा जी के बहुत कुछ समझाने पर उन्होंने बात मान ली। दूसरे दिन सम्मेलन के खुले अधिवेशन में 'हिन्दी-हिन्दुस्तानी' को कांग्रेस के कार्य की भाषा बनाने का प्रस्ताव श्री राजगोपालाचार्य से ही पेश करवाया गया। उन्होंने अपना भाषण तामिल में किया, जिसका हिन्दी में भाषान्तर किया गया। सर्वश्री प्रकाशम्, शाम्बमूर्ति, और कालेश्वरराव ने अपने जीवन में पहले-पहल हिन्दी में भाषण कर अपने देश-प्रेम का परिचय दिया। इस सम्मेलन में अँगरेज़ी का बिलकुल उपयोग न होना कम महत्त्व की बात न थी। हिन्दी-प्रचार को मज़बूत बनाने के लिए इसमें कई प्रस्ताव पास हुए।

× × ×

हिन्दी-प्रचार को सफल बनाने के लिए केवल प्रोपेगेन्डा से काम न चलेगा, कुछ ठोस साधनों की भी आवश्यकता है, जिनके बिना हमारी नींव कभी पक्की नहीं हो सकती। अगर हम अँगरेज़ी के प्रचार की ओर अपनी नज़र डालें तो मालूम होगा कि अँगरेज़ी भाषा के शिक्षण के सिवा अँगरेज़ी शार्टहेंड (संकेत-लिपि) और टाइप राइटिंग की वजह से अँगरेज़ी का प्रचार देश के प्रत्येक क्षेत्र में बहुत बढ़ा है, इसलिए जब तक हम हिन्दी टाइप राइटिंग और संकेत-लिपि जाननेवालों को काफ़ी संख्या में तैयार नहीं करेंगे तब तक जनता से हिन्दी में ही कार्रवाई और पत्र-व्यवहार करने की अपील करना व्यर्थ ही समझना चाहिए। इस सम्बन्ध में इस बार सम्मेलन ने एक प्रस्ताव भी स्वीकृत किया है। किन्तु इस काम को हमें प्रस्ताव पास करके ही नहीं छोड़ देना चाहिए। सम्मेलन ने प्रयाग में शार्टहेंड और टाइप राइटिंग के वर्ग खोलने का जो निश्चय

[श्री सत्यनारायण जी और पं० हरिहर शर्मा]

[इस भवन में महात्मा जी ठहरे थे]

किया है उसको शीघ्र ही कार्य का रूप देना चाहिए और शिक्षण-संस्थाओं को भी इस ओर ध्यान देना आवश्यक है।

× × × ×

आख़िरी दिन श्री टंडन जी के हिन्दी-व्याकरण-सम्बन्धी प्रस्ताव पर काफ़ी देर तक बहस हुई। श्रीराजगोपालाचार्य तक ने वादविवाद में भाग लिया।

सम्मेलन के समाप्त होने के पहले श्रीमती रामन ने कुछ देर हिन्दी में और फिर अपने उद्‌गारों को अच्छी तरह व्यक्त करने के लिए तामिल में भाषण किया। उनके सुन्दर भावों, विचारों तथा राष्ट्रभाषा के प्रति प्रेम की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी होगी। नम्रता तो उनमें कूट कूट कर भरी हुई है। उनके भाषण का बहुत प्रभाव हुआ। सेठ जमनालाल जी का भी अन्तिम भाषण मर्मस्पर्शी तथा भावपूर्ण था।

× × × ×

हर वर्ष की तरह सम्मेलन के अन्तर्गत भिन्न भिन्न परिषदें भी हुईं। किन्तु निर्वाचित अध्यक्षों के न आने से श्री टंडन जी को ही साहित्य और दर्शन-परिषदों की अध्यक्षता का भार लेना पड़ा। ये दोनों परिषदें एक साथ ही कर दी गईं। टंडन जी ने साहित्य और दर्शन के पारस्परिक सम्बन्ध पर सुन्दर भाषण किया। विज्ञान-परिषद् के निर्वाचित अध्यक्ष श्री रामनारायण जी मिश्र उपस्थित थे। उनके ठोस और महत्त्वपूर्ण कार्य की सब लोगों ने प्रशंसा की। आचार्य नरेन्द्रदेव जी की अनुपस्थिति के कारण इतिहास-परिषद् का अध्यक्ष-पद इस बार फिर श्री जयचन्द्र विद्यालंकार ने ग्रहण किया। कवि-सम्मेलन का सभापतित्व श्री गांगेय नरोत्तम शास्त्री ने किया।

विभिन्न परिषदों का वर्तमान ढंग बिलकुल सन्तोषजनक नहीं मालूम पड़ता। इन परिषदों में स्वागताध्यक्ष और अध्यक्ष का भाषण पढ़ा जाना ही काफ़ी समझा जाने लगा है। महत्त्वपूर्ण विषयों पर चर्चा होना ज़रूरी है। इसलिए

[श्री सेठ जमनालाल बजाज़ और श्रीमती लोकसुन्दरी रमन]

इन परिषदों को जीवित बनाने के लिए अधिक समय और तैयारी होनी चाहिए।

× × × ×

भारतीय साहित्य-परिषद् भी साथ साथ होने से सम्मेलन का कार्यक्रम इतना जकड़ गया था कि अधिकतर कार्य ठीक समय पर शुरू न हो सका। कार्यक्रम में अदल-बदल भी कई बार की गई। इस प्रकार समय का अपमान करना उचित नहीं मालूम पड़ता। आशा है, भविष्य में इस बात पर अधिक ध्यान दिया जायगा। पाठकों को यह जानकर ख़ुशी हुई होगी कि आगामी सम्मेलन शिमले में होना निश्चित हुआ है।

× × × ×

दक्षिण-भारत हिन्दी-प्रचार-सभा ने गत १८ वर्षों में अत्यन्त प्रशंसनीय काम किया है। इस सभा के प्रयत्न का ही यह फल था कि उत्तर और दक्षिण भारत के लोग राष्ट्रभाषा के द्वारा परस्पर विचार-विनिमय कर सके।

जिस पौधे को महात्मा गांधी और सेठ जमनालाल जी ने अठारह वर्ष पूर्व लगाया था उसको आज एक पुष्पित वृक्ष के रूप में देखकर किस हिन्दी-भाषी को प्रसन्नता न होगी?

एक भारतीय सैनिक की साहस-पूर्ण कहानी

विक्टोरिया क्रास

लेखक, श्रीयुत बेनीप्रसाद शुक्ल

दिल्ली से दस कोस दक्षिण यमुना के किनारे किशनपुर नाम का एक छोटा-सा गाँव है। जाटों की बस्ती है। मकान सब कच्चे हैं। गाँव के बीच में केवल सूबेदार घनश्यामसिंह के घर में पत्थर के खम्भे लगे हैं, और घर के आगे एक लम्बा-चौड़ा चबूतरा है जिसके किनारे पर पत्थर जड़े हुए हैं। इन्हीं पत्थरों पर गाँव के कुछ लड़के इकट्ठे होकर चिकने पत्थर पर कंकड़ की गोटें बनाकर खेल रहे थे। खेलनेवाले दो थे और दस-बारह लड़के घेर कर खेल देख रहे थे। सूर्यदेव अपनी तिरछी किरणों से ऊँचे पेड़ों को सोने का मुकुट पहनाते और पके गेहूँ के खेतों पर सुनहरी चादर बिछाते अस्ताचल को जा रहे थे, लेकिन ये खिलाड़ी अपने काम में व्यस्त थे कि इनके खेल में विघ्न पड़ गया। घर के भीतर से एक नवयुवती बाहर निकली और लड़कों को देखकर द्वार पर खड़ी हो गई।

लड़की का क़द ऊँचा, रंग तपाये सोने की तरह और लम्बा मुख स्वास्थ्य की ललाई से दमक रहा था। काले बालों का जूड़ा ऊँचा करके बाँध रक्खा था, जिससे वह और भी लम्बी मालूम होती थी। वह काली घाँघरी, पीले रंग की ओढ़नी और पीले रंग की कमीज़ जिसमें हरे साटन के कफ़ लगे थे, पहने थी। पेट का जितना हिस्सा ओढ़नी नहीं ढँक सकी थी, वहाँ जंज़ीरदार चाँदी के बटन दिखाई देते थे। नवयुवती के पैर का शब्द सुनकर सब लड़के उधर देखने लगे। एक खिलाड़ी ने धीरे से अपने साथी से कहा—"चेतसिंह! उधर देख। कलावती आगई।"

"मुझसे क्या कहता है? भाई, मैं क्या करूँ?"

नटखट लड़के ने हँसकर फिर कहा—"करना क्या है? कलावती से ब्याह कर ले।" इस बात पर सब लड़के ठहाका मारकर हँस पड़े। लड़कों के हँसते ही कलावती जो सब बातें सुन रही थी और क्रोध में भर रही थी, लड़कों की ओर दौड़ी। भेड़ों की गोल में सिंहनी की तरह कलावती के आते ही बेचारी कंकड़ की गोटों को कलावती की दया पर छोड़कर सब लड़के चबूतरे से कूदकर गली में खड़े हो गये। कलावती ने लात मारकर गोटों को नीचे गिरा दिया; और हाँफती हुई गरज कर बोली—"ख़बरदार! जो मेरे दरवाज़े पर क़दम रक्खा। हाँ, कहे देती हूँ।"

"इतना नाराज़ क्यों होती है? मेरी गोटें क्यों फेंक दीं? गालियाँ क्यों देती है?"

बाहर कलावती को ज़ोर से बोलते सुनकर कलावती की मा बाहर निकल आई और गरजकर बोली—"क्या है री कलावती?"

"मा! ये निकम्मे यहाँ जुआ खेलते हैं, झगड़ते हैं। मैंने आकर मना किया तब यह चेता गाली देने लगा। कहता है, कलावती के साथ ब्याह......" इतना कहते कहते कलावती का स्वर लज्जा से मध्यम पड़ गया और वह माता की ओर देखने लगी। लड़की की आधी बात सुनते ही माता की भौंहें कमान की तरह तन गईं। वह आकर पत्थर पर खड़ी हो गई और दहाड़ कर बोली—

"क्यों रे चेता! तेरी इतनी हिम्मत! जानता नहीं कलावती सूबेदार की बेटी है। छोटे मुँह बड़ी बात कहता है। इसका बाप लाम पर गया है। नहीं तो तेरी ज़बान खींच लेता। जा, चला जा यहाँ से। बस।"

शोरगुल सुनकर आस-पास के जाट स्त्री-पुरुष वहाँ एकत्र हो गये। चेतसिंह की माता भी अपने दरवाज़े पर खड़ी सब बातें सुन रही थी। लोगों ने चेतसिंह को वहाँ से हटा दिया। चेतसिंह दुखी हृदय से घर आया। घर के द्वार पर क्रोध से भरी माता को खड़ी देखकर सन्न हो गया। चेतसिंह को चुपचाप पत्थर की मूर्ति की तरह निश्चल देखकर माता का क्रोध और भी बढ़ गया। लगी चेतसिंह को डाँटने—

"क्यों रे चेता! तेरे लाज नहीं है। कुत्ते की तरह दुतकारा जाता है, लेकिन फिर वहीं जाता है। तेरे बाप

उनसे वैर था। अब उनके दरवाज़े पर मत जाना। ऐसी बात ज़बान पर मत लाना। वह सूबेदार की बेटी है। अच्छा, चल। घर चल।"

चेतसिंह चुपचाप घर के भीतर आया। क्रोध, क्षोभ और अपमान से उसका हृदय लंका की तरह जल रहा था। उसकी वृद्धा माता अब भी चुप नहीं होती थी, धीरे धीरे बड़बड़ाती जाती थी। चेतसिंह अब नहीं सह सका, घायल सिंह की तरह गरज कर बोला—"मा, बस कर। हद हो गई। अच्छा, तब नहीं तो अब कहता हूँ। मैं भी जाट का बेटा हूँ, तेरे चरणों की सौगंध खाता हूँ। अब मैं सूबेदार बनूँगा और तब कलावती से ब्याह करूँगा। नहीं इस गाँव में मुँह नहीं दिखाऊँगा।"

दूसरे दिन चेतसिंह को गाँव में किसी ने नहीं देखा।

(२)

एक छोटे से डेरे में ब्रिगेडियर जनरल एलिस चुपचाप बैठे हैं। सामने छोटे टेबिल पर एक मोमबत्ती जल रही है, जिसके मन्द प्रकाश में जनरल के चेहरे पर चिन्ता की रेखायें स्पष्ट दिखाई देती हैं। अर्धरात्रि का समय है, प्रचण्ड ठंडी वायु गरज गरजकर रुई की तरह बर्फ़ की वर्षा से उत्तरी फ़्रांस को ढँक रही है। आकाश स्याही की तरह काला है और बर्फ़ की वर्षा से हाथ भर दूर की वस्तु भी नहीं दिखाई देती। इतने में डेरे का पर्दा हटकर एक ओर होगया, और एक सिख आफ़िसर जिसकी पगड़ी और ओवरकोट पर बालू की तरह सफ़ेद बर्फ़ जमी थी, डेरे के अन्दर आया, और सीधे खड़े होकर साहब को फ़ौजी सलाम किया। जनरल साहब ने सलाम का जवाब देते हुए प्रश्नसूचक दृष्टि से सिख आफ़िसर की ओर देखा। साहब का इशारा पाकर सिख सूबेदार ने फिर सलाम किया और कहा—"हुज़ूर, हम सिख स्काउट कंपनी नं० २ लेकर नाले पर गये। हमको दुश्मन की मौजूदगी का ख़याल था, इससे बर्फ़ में छिपते हुए गये। लेकिन दुश्मन होशियार थे, इससे पूरी ख़बर लेने के लिए हमने हमला किया और नाले पर पहुँच गये। नाले में दुश्मन के पाँच सौ जवान छिपे हुए हैं। पचास जवानों का नुक़सान उठाकर हमने कंपनी को लौटाया।"

जनरल ने अधीर होकर सूबेदार को इशारे से रोका और फिर गम्भीर स्वर में बोला—"वेल सूबेदार! हम होल ब्रिगेड को फ़ालेन का हुक्म देता है।"

हुक्म पाकर अर्दली सूबेदार ने बाहर आकर बिगुल बजाया, और जनरल साहब फिर गहन चिन्ता में लीन हो गये।

जनरल एलिस की चिन्ता का यह सबब था कि जर्मन-सेना ने दो महीने में बेलजियम का तहस-नहस कर उत्तरी फ़्रांस पर महाविकट हमला किया था। अँगरेज़ों की सेना फ़्रांस की सहायता न कर सके, इसी लिए जर्मन जनरल वान क्लुक ने एकाएक तीन आर्मी कोर पश्चिम की ओर मोड़कर 'इँग्लिश चेनेल' को घेर लेना चाहा। लेकिन बेलजियम के जीतने में दो महीने की देर हो जाने से जनरल फ़्रेंच के अधीन डेढ़ लाख अँगरेज़ी सेना और जनरल सर जेम्स विलकाक्स के अधीन ६०,००० हिन्दुस्तानी सेना इँग्लिश चेनल को बचाने के लिए उत्तरी फ़्रांस में पहुँच गई।

हिन्दुस्तानी सेना के पाँचों डिवीज़न ब्रिटिश सेना के दाहने बाज़ू पर आरास नगर की रक्षा करने के लिए तैनात थे। ब्रिगेडियर जनरल राबर्ट तीन डिवीज़न (३६,०००) सेना लिये आरास नगर से दस मील उत्तर एक पहाड़ी पर (हिल नं० ६०) खाइयाँ खोदकर जेनरल वान क्लुक की सेना को रोक रहे थे। पहली लाइन के दो मील पीछे जनरल एलिस के साथ दो डिवीज़न रिज़र्व सेना थी। इन दोनों सेनाओं के बीच में एक गहरा नाला था। पिछली रात में भीषण तूफ़ान और बर्फ़ में छिपकर ५०० जर्मन-सिपाहियों ने नाले पर सन्तरियों को मारकर अधिकार कर लिया था और कटीले तार बाँधकर मेशीनगनें लगा दी थीं। यही चिन्ता जनरल एलिस को हैरान कर रही थी।

सूबेदार सन्तसिंह के बाहर-जाते ही जनरल एलिस अपने मन में कहने लगे कि 'यदि हमला करके नाले पर से जर्मन-सेना हटाई जायगी तो तोपों की गरज सुनकर कहीं जेनरल राबर्ट कोई भयंकर भूल न कर बैठें। इसमें तो कोई शक ही नहीं कि नाले पर जर्मन टुकड़ी की मदद पर और भी जर्मन-सेना इधर-उधर छिपी होगी। इससे जनरल राबर्ट को नाला पारकर दुश्मनों को मारते हुए पीछे हटकर हमारी रिज़र्व लाइन से मिल जाना चाहिए। अगर जनरल राबर्ट को ख़बर न दी जायगी तो तीन

डिवीज़न सेना घिर जायगी। ओह! चाहे जैसे हो, जनरल राबर्ट को ख़बर देना होगा। लेकिन कैसे ख़बर पहुँचाई जाय? सैनिक कबूतर इस भयंकर बर्फ़ीले तूफ़ान में बेकार हैं। बेतार की ख़बर जर्मन पा जायँगे। चाहे जैसे हो, जनरल राबर्ट को ख़बर देनी ही पड़ेगी। क्या इंडियन सेना में ऐसा कोई बहादुर सिपाही नहीं है, जो हमारा सांकेतिक पत्र नाला पारकर जनरल राबर्ट के पास पहुँचा दे। जनरल एलिस ने सिगार एक ओर फेंक दिया, और उठ खड़े हुए। ओवरकोट पहनकर और टोप लगाकर डेरे से बाहर निकल आये।

बाहर मैदान में २४,००० सिपाही क़तारों में दीवार की तरह खड़े थे। अँगरेज़ और हिन्दुस्तानी आफ़िसर अपनी अपनी जगह मूर्ति की तरह खड़े थे। इतने में अर्दली सूबेदार सन्तसिंह ने कड़ककर साहब का हुक्म सुनाया—"है कोई ऐसा बहादुर सिपाही जो जेनरल साहब का पत्र लेकर नाला पारकर जेनरल राबर्ट के पास ले जाय?" सूबेदार की ललकार पर कुछ क्षण सेना में सन्नाटा छाया रहा। फिर एक सिपाही अपनी क़तार से बाहर आया और सूबेदार को फ़ौजी सलाम किया। सिपाही को लेकर सूबेदार सन्तसिंह ने जनरल एलिस के सामने पेश किया। सिपाही कुछ क़दम आगे बढ़ा और जनरल साहब को सलाम कर सीधा खड़ा होगया।

साहब ने नोटबुक निकालकर सिपाही को सिर से पैर तक देखकर कहा—"वेल! तुम किस रेजिमेंट का सिपाही है? क्या नाम है?"

"नवीं भूपाल इनफ़ैंट्री, जाट-कम्पनी नं० ३, नाम चेतसिंह ३३३ नं०।"

"वेल चेतसिंह! हमारा ख़त ब्रिगेडियर जनरल राबर्ट के पास ले जा सकता है? दुश्मन ने रात के तूफ़ान में नाले पर क़ब्ज़ा कर लिया है। तुमको दुश्मन के बीच से नाला पारकर जाना पड़ेगा। मुश्किल काम है। जानता है?"

"हुज़ूर! जानता हूँ। हमको अच्छा घोड़ा मिलना चाहिए। हम आपका ख़त पहुँचा देंगे।"

"अच्छा, अच्छा, शाबाश! हम अपना ख़ास घोड़ा तुमको देगा।"

जनरल एलिस ने चिट्ठी लिखकर चेतसिंह के हवाले की। चेतसिंह ने चिट्ठी सँभालकर जेब में रख ली, उछलकर घोड़े पर सवार होगया और परमात्मा का नाम लेकर घोड़े को एँड़ लगा दी। हवा की तरह घोड़ा नाले की ओर बढ़ा और बर्फ़ में छिप गया।

मिनटों में घोड़ा तीर की तरह नाले के पास पहुँच गया। बालू की तरह बर्फ़ से पृथ्वी ढँकी थी और धुनकी रुई की तरह बर्फ़ का पर्दा पड़ा था, इससे नाला-स्थित जर्मन-सेना ने न तो घोड़े की टाप का शब्द सुना और न उसे देखा ही। एकाएक नाले के पास अकेले सवार को देखकर जर्मन अकचका गये, लेकिन फिर सँभलकर धड़ाधड़ गोलियाँ बरसाने लगे। कितनी गोलियाँ वर्दी छूकर और कितनी कान के पास से सनसनाती हुई निकल गईं। चेतसिंह ने घोड़े को और तेज़ किया और कसकर एँड़ लगाई। अच्छी नस्ल का घोड़ा छलाँग मारकर नाला पार कर पलक मारते ही हवा की तरह अँगरेज़ी क़तार में पहुँच गया। चेतसिंह कूद पड़ा। पीठ ख़ाली होते ही बहादुर घोड़ा गिरा, और गिरते ही मर गया। उसके शरीर में ८० गोलियों के घाव थे।

जनरल राबर्ट खाईं पर खड़े दूरबीन से अकेले सवार का यह अद्भुत साहस देख रहे थे। बर्फ़ बड़े ज़ोर से गिर रही थी, लेकिन अब अन्धकार कम हो चला था, धुँधला-सा प्रकाश फैल रहा था। चेतसिंह ने रोबदार चेहरे और वर्दी से जनरल राबर्ट को पहचान कर फ़ौजी सलाम किया और ख़त निकाल कर आगे बढ़ाया। जनरल राबर्ट ख़त खोलकर उसी समय पढ़ने लगे और फिर कुछ विचार करते हुए बोले—

"शाबाश बहादुर! तुम्हारा नाम क्या है?"

"चेतसिंह नं० ३३३, नवीं भूपाल इन्फ़ैंट्री जाट कम्पनी नं० ३।"

"अच्छा चेतसिंह! तुम्हारे काम से हम बहुत ख़ुश है। क्या इस ख़त का जवाब जनरल एलिस के पास ले जा सकता है? तुम्हारा दर्जा बढ़ा दिया जायगा। तुमको इनाम मिलेगा।"

"हुज़ूर, बेशक ले जायगा। हमको अच्छा घोड़ा मिलना चाहिए।"

"वेल बहादुर! हम अपना ख़ास घोड़ा देता है।" घोड़ा लाया गया और चेतसिंह जेनरल राबर्ट का

पत्र लेकर घोड़े पर सवार हुआ और बर्फ़ में छिपता नाले की ओर बढ़ा। नाले के पास पहुँचकर चेतसिंह ने घोड़े को एक कड़ी एँड़ लगाई। उसी विचित्र सवार को फिर अकेला देखकर जर्मन-सिपाही फ़ायर करने लगे, लेकिन गोलियों की भयानक वर्षा में भी घोड़ा नाला पारकर जनरल एलिस की सेना में पहुँच गया और जर्मन फ़ायर करते ही रह गये।

जनरल एलिस के साथ सब अँगरेज़ और भारतीय आफ़िसर चेतसिंह का अद्भुत कार्य देख रहे थे। अपनी लाइन में आकर चेतसिंह घोड़े पर से कूद पड़ा। उसके कूदते ही बेचारा घोड़ा जिसका शरीर गोलियों से चलनी हो गया था, गिरकर परमधाम को सिधार गया। चेतसिंह के पृथ्वी पर पैर रखते ही समस्त सेना ने हर्षनाद किया। जनरल एलिस ने आगे बढ़कर आदर के साथ चेतसिंह से हाथ मिलाया। चेतसिंह ने फ़ौजी सलाम कर जनरल राबर्ट का पत्र जनरल एलिस के हाथ में रख दिया और तीन क़दम पीछे हटकर खड़ा होगया। जनरल एलिस ने पत्र खोलकर पढ़ा और कुछ सोचते हुए गम्भीर स्वर से बोले—"वेल बहादुर! अभी काम पूरा नहीं हुआ है। एक बार तुमको हमारा ख़त जनरल राबर्ट के पास फिर ले जाना होगा।"

"हुज़ूर, हम ले जायगा। हमको अच्छा घोड़ा मिलना चाहिए।"

कप्तान वाटसन का घोड़ा पहले से ही मौजूद था। चेतसिंह ख़त लेकर घोड़े पर सवार होगया। गरज कर घोड़े को एँड लगाई और पूरे वेग से उसे छोड़ दिया। इस बार चेतसिंह ने पहला स्थान छोड़कर दूसरी जगह से नाले को पार करना चाहा। बर्फ़ और भी घनी होगई थी; हाथ से हाथ नहीं सूझता था। बर्फ़ में छिपता हुआ घोड़ा इस बार भी नाला पार कर गया। लेकिन इस बार मुहिम बड़ी कठिन थी, नाले के चारों ओर जर्मनों ने कटीले तार की तीन क़तारें लगा दी थीं। उक़ाब की तरह उछल उछल कर चेतसिंह का घोड़ा तारों को पार करता चला जा रहा था। क्रोध में आकर जर्मनों ने नाले में छिपी हुई जर्मन-तोपों से ताक ताक कर सवार पर गोले बरसाना शुरू कर दिया। चेतसिंह के चारों ओर भयंकर शब्द कर गोले फटने लगे। घोड़ा तारों की क़तार डाक कर आगे बढ़ गया था कि एक गोला भयंकर शब्द करके उसके पास आ गिरा। चेतसिंह बड़े ज़ोर से एक ओर गिर पड़ा, उसकी रान से घोड़ा निकल गया। रान में चोट आ जाने से चेतसिंह बेहोश-सा होगया।

चेतसिंह ने समझा कि गोले का कोई टुकड़ा उसकी जाँघ में लग गया है, लेकिन होश सँभालने पर उसने देखा कि गोले की चोट से घोड़े के टुकड़े-टुकड़े उड़ गये हैं, केवल घोड़े की पसलियाँ और काठी रान में दबी रह गई है। कमर में लटकती हुई तलवार के बल गिरने से जाँघ में धमक आगई थी, इसी से वह लँगड़ाने लगा और कोई चोट शरीर में नहीं आई थी। ईश्वर को धन्यवाद देकर चेतसिंह उठ खड़ा हुआ और लँगड़ाते लँगड़ाते अँगरेज़ी लाइन में पहुँच गया।

जनरल राबर्ट बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे थे। चेतसिंह को देखते ही प्रसन्न होकर आगे बढ़े और जनरल एलिस का पत्र लेकर पढ़ने लगे। पत्र पढ़कर उन्होंने जेब के हवाले किया और घूम कर अपने पीछे खड़े हिन्दुस्तानी आफ़िसर से कहने लगे—"वेल सूबेदार घनश्यामसिंह! हमने इस बहादुर का नाम नोट कर लिया है। तुम्हारी कंपनी में यह हवलदार बनाया जाता है। इसको आराम चाहिए।"

यह कहकर जनरल राबर्ट चले गये और हवलदार चेतसिंह सूबेदार घनश्यामसिंह के साथ ट्रेंच में घुसे।

२५ फ़ुट गहरी और तीस फ़ुट चौड़ी तीन या चार मील लम्बी एक नहर पहाड़ी के अग्रभाग में खोद दी गई थी। इसी नहर में जनरल राबर्ट की सेना दुश्मन से [illegible] कर रही थी। इस नहर के पीछे स्थान स्थान पर दर[illegible] थीं। इन नहरी सड़कों में गाँठ भर कीचड़ भर गया था, जिसको तख़्ते डालकर पाटने का प्रयत्न किया जाता था। नहर के एक तरफ़ की दीवार पर मोर्चे बाँधकर तरह तरह की तोपें लगा दी गई थीं, और आधी सेना—आफ़िसर और सिपाही अपनी अपनी जगह पर लोहे की मूर्ति की तरह खड़े थे। आधी थकी सेना के विश्राम के लिए नहर के दूसरी ओर शेरों की माँद की तरह दरवाज़े खोद कर भीतर बड़े बड़े कमरे खोद दिये गये थे, जिसमें सिपाही सोते थे और जिसमें अस्पताल भी था। गाँठ भर

बर्फ़ीले कीचड़ में डूबते हुए सूबेदार चेतसिंह को लिये एक माँद में प्रविष्ट हुए।

बीस क़दम जाने पर एक बड़ा गोल कमरा मिला। यह भी पृथ्वी खोद कर बनाया गया था। दीवार से मिला हुआ एक चबूतरा था, जिस पर सूखी घास पड़ी थी और क़तार की क़तार कम्बल पड़े हुए थे जिन पर सिपाही पड़े सो रहे थे। कुछ कम्बल ख़ाली भी थे। केवल एक मोमबत्ती अपनी क्षुद्र-किरण से वहाँ के अभेद्य घने अन्धकार को भेद कर मनुष्य-जाति के कठोर क्रूर हिंसक कार्यों पर प्रकाश डाल रही थी। कुछ घायल सिपाही भी थे। मोमबत्ती के सामने बैठे जो तीन मनुष्य काम कर रहे थे वे डाक्टर थे। सूबेदार घनश्यामसिंह चेतसिंह को डाक्टर के सिपुर्द कर चलते बने। वे चेतसिंह से कहते गये कि दो घंटे आराम करने के बाद तुमको अपनी नौकरी पर हमारे पास बैटरी नं० १० पर हाज़िर होना है।

डाक्टर ने चेतसिंह को देखा। थकावट के कारण वह खड़ा नहीं हो सकता था। भारतीय डाक्टर ने उसको चाय इत्यादि देकर एक कम्बल पर सो जाने और दो कम्बल ओढ़ने के लिए दिये और यह भी कह दिया कि तुम ठीक दो घंटे में जगा लिये जाओगे। थकावट से चेतसिंह की नस नस टूट रही थी। कम्बल ओढ़ते ही वह गहरी नींद में सो गया।

सूबेदार घनश्याम को मोर्चे पर आते ही कप्तान एटली का हुक्म मिला कि एक घंटे में तोपों के साथ पीछे हटना पड़ेगा। कप्तान एटली को जनरल राबर्ट के हुक्म के मुताबिक़ पीछे नाला पार कर जनरल एलिस की सेना से मिल जाना है। रास्ते में शत्रु-सेना के छिपने की पूरी और सच्ची ख़बर मिल चुकी है, इससे लौटती हुई एडवान्स लाइन को युद्ध करते हुए शत्रु-सेना को साफ़ करते हुए जाना होगा। कुछ सेना पीछे छोड़ दी जायगी, जो बराबर तोप चलाकर जनरल वान क्लक को धोखा देती रहेगी और एक घंटे के बाद पीछे वह भी हटकर नाला पार कर प्रधान सेना से मिल जायगी। सूबेदार घनश्यामसिंह ने हुक्म पाते ही १५ मिनट में ट्रेंच का मोर्चा छोड़ दिया। उनको सिवा अपनी प्यारी कलदार तोपों के और किसी की भी सुध नहीं रही।

चेतसिंह थका होने से गहरी नींद सो गया था। उसकी नींद तब खुली जब तोपों की भीषण गरज उसकी गुफा में भी आने लगी। वह तड़प कर उठकर बैठ गया। मोमबत्ती बुझ गई थी। भयानक अन्धकार और सन्नाटा था। बड़े बड़े चूहे उसके पैर से होकर दौड़ रहे थे और पीठ पर चढ़ने का प्रयत्न करते थे। चेतसिंह वेग से उठ खड़ा हुआ। कम्बल फेंक दिया, साफ़ा बाँधा, और बन्दूक़ उठाकर अँधेरे में टटोलता, दो-चार चूहों को कुचलता, बाहर निकल आया।

चेतसिंह ने बाहर आकर देखा। स्मशान को मात करनेवाला दृश्य था। चेतसिंह समझ गया कि सरकारी सेना ने ट्रेंच छोड़ दिया है। बिजली की तरह उसके मस्तिष्क में यह विचार आया कि उसने जान पर खेल कर जो समाचार जनरल राबर्ट को दिया था उसी से जनरल राबर्ट ने एक घंटे में मोर्चा छोड़ दिया है। गाँठ भर कीचड़ मझाता हुआ वह अपनी सेना के पद-चिह्नों पर आगे बढ़ने लगा। भीषण सर्दी से उसके हाथ-पैर ठिठुरे जा रहे थे। बर्फ़ ने अन्धकार को चौगुना कर दिया था लेकिन उसका ध्यान इधर नहीं था। उसका मन किसनपुर की गलियों का चक्कर काट रहा था। "हाय भाग्य! मेरे ही काम से सेना ने घिर जाने से बचने के लिए ट्रेंच छोड़ी, और वही मुझे—केवल मुझी को यहाँ छोड़कर चली गई! कलावती! याद रखना। मैंने तेरे लिए गर्दन हथेली पर रख दी, तो भी हवलदार ही रहा। इससे यह न समझना कि मैं हवलदार ही रहूँगा। अभी लड़ाई बहुत दिन चलेगी। तुझ पर तिनके की तरह जान निछावर कर दूँगा और सूबेदार ज़रूर बनूँगा।"

अपने विचारों में डूबा हुआ चेतसिंह ट्रेंच के बाहर निकल आया और नाले की ओर बढ़ा। जनरल एलिस का अनुमान सच्च निकला। जनरल राबर्ट को नाला पार करने में युद्ध करना पड़ा। जर्मनों की पाँच रेजिमेंटें नाले में थीं। उन्होंने कप्तान एटली की सेना पर एक घंटे तक बड़ी भीषण आग बरसाई, लेकिन संगीनों से दुश्मनों को मारती हुई जनरल राबर्ट की सेना जनरल एलिस की सेना से जाकर मिल गई। इस युद्ध में दो हज़ार जर्मन लाशें मैदान में पड़ी रह गईं, जिन्हें बर्फ़ ने समाधि दे दी।

जब जनरल वान क्लक को पता लगा कि हिन्दुस्तानी सेना आरास की ओर हटकर बच गई। तब उन्होंने अंधेरे

में जनरल राबर्ट का पीछा करना अच्छा नहीं समझा। जनरल वान क्लक ने हाविटज़र तोपों की क़तार लगाकर ब्रिटिश सेना और नगर को भूँज डालना चाहा। गोलों के फटने से धुएँ के बादल और लाल रंग की रोशनी चारों ओर फैल रही थी। सारी ब्रिटिश सेना धुएँ के बादलों में ढँकी थी। अन्धकार ऐसा था कि हाथ से हाथ नहीं सूझता था। इस निविड़ अन्धकार में शत्रु का पता लगाने और निशाना मारने के लिए बड़े बड़े गोले आकाश में फेंके जाते थे और वहाँ से फटकर सूर्य की तरह प्रकाश करते हुए शत्रु-सेना पर गिरते और गिरकर भी अपने प्रकाश से शत्रु का भेद खोल देते थे।

इसी फ़ौजी आतिशबाज़ी की रोशनी का सहारा लेता हुआ चेतसिंह नाले की ओर चला जा रहा था। गोलों की लाल रोशनी से भी उसको सहायता मिल रही थी। धीरे धीरे वह उन झाड़ियों के पास पहुँचा जो नाले के किनारों पर उगी हुई थीं। यहाँ बहुत-सी लाशें उन जर्मन और भारतीय सिपाहियों की पड़ी थीं जिन्हें सेना उठा नहीं सकी थी। यहाँ की दशा देखकर चेतसिंह ने समझ लिया कि इन झाड़ियों में छिपे हुए जर्मनों को निकालने के लिए भारतीय सेना को संगीनों से काम लेना पड़ा है। घायलों और मृतकों को बचाता हुआ चेतसिंह चला जा रहा था कि उसको एक ओर कराहने का शब्द सुनाई दिया। लाशों को बचाता हुआ जब वह उस शब्द की ओर बढ़ा तब उसने गोले की रोशनी में देखा कि कुछ सिपाही मरे पड़े हैं और उनके बीच में एक आदमी उठने का यत्न करता है, लेकिन कराह कर गिर जाता है।

चेतसिंह लपक कर घायल सिपाही के पास पहुँचा। दियासलाई निकाल कर ओवरकोट की आड़ में जलाकर घायल को पहचान लिया, और अचानक उसके मुँह से निकल गया "सूबेदार घनश्यामसिंह।" सूबेदार की वर्दी ख़ून से भीग गई थी, और पास ही उनका झब्बेदार साफ़ा पड़ा था। चेतसिंह ने उसी साफ़े से सूबेदार के घुटने का घाव बाँध दिया, और फिर उन्हें पीठ पर लादकर नाले में उतर कर पार हो गया। दो-चार क़दम अँधेरे में बढ़ने पर वह कँटेदार तारों से अड़ गया। तारों में अड़ते ही बिजली का तीव्र प्रकाश उस पर आ पड़ा और सन्नाटे को चीर कर शब्द हुआ, "हाल्ट!"

"हाल्ट! हैंड्स अप! कौन है?"

चेतसिंह ने कड़क कर आवाज़ दी—"इंडियन सोल्जर चेतसिंह।"

बिजली का प्रकाश मिट गया, और अन्धकार में दो काली शकलें चेतसिंह के सामने आकर खड़ी हो गईं। चेतसिंह के सिर पर पिस्तौल तानकर लेफ़्टिनेंट स्टेनली ने टार्च की रोशनी डाली और पूछा—

"दूसरा घायल आदमी कौन है?"

"सूबेदार घनश्यामसिंह चौथी जाट पल्टन।"

"हमारे साथ चले आओ।"

आगे आगे लेफ़्टिनेंट स्टेनली, उनके पीछे चेतसिंह सूबेदार को पीठ पर लादे, उनके पीछे सूबेदार सन्तसिंह ट्रेंच (मोर्चों) को पार कर कैंप में आये। सूबेदार के घुटने को तोड़ती हुई दो गोलियाँ निकल गई थीं, इससे वे लाहौर इंडियन जेनरल हास्पिटल रूआन बेस में भेज दिये गये। और सन्तसिंह ने चेतसिंह को ब्रिगेडियर जनरल राबर्ट के सामने पेश कर दिया। उस समय जनरल राबर्ट बैटरियों के पीछे खड़े हुए ऊँचे आफ़िसरों से परामर्श कर रहे थे। सन्तसिंह ने चेतसिंह के साथ जाकर फ़ौजी सलाम किया। साहब ने घूमकर चेतसिंह को सिर से पैर तक देखा, और फिर अपनी नोट-बुक निकालकर कुछ पन्ने उलटने के बाद मधुर स्वर से बोले—"सूबेदार साहब, इस जवान का नाम चेतसिंह है? क्या यह वही सिपाही है जिसने अपनी बहादुरी से हमारी फ़ौज को बहुत बड़े ख़तरे से बचाया है। चेतसिंह कहाँ काम करता है?"

चेतसिंह ने कहा—"हुज़ूर ने हमें फ़ोर्थ जाट रेज़िमेंट में मेहरबानी करके हवलदार कर दिया था। उस दिन हमें दो घटे का वक़्त आराम करने को मिला था, लेकिन हमको अस..."

बात काट कर सन्तसिंह आगे बढ़ आये और फ़ौजी सलाम कर कड़क कर बोले—"हुज़ूर, इस सिपाही ने जर्मन-लाइन पारकर जो बहादुरी का काम किया है उसे सब आफ़िसर जानते हैं। लौटते हुए यह जवान मैदान में घायल पड़े हुए सूबेदार घनश्यामसिंह को भी उठाकर लाया है। इसकी बहादुरी इनाम के क़ाबिल है।"

साहब प्रसन्न होकर हँसने लगे और हँसते हँसते चेतसिंह की ओर देखकर बोले—"चेतसिंह, हम तुम्हारे काम

से बहुत खुश हो गया है। हवलदारी तुम्हारे इनाम के लिए काफ़ी नहीं है। तुमको कमिशन दिया जाता है। सूबेदार घनश्यामसिंह की जगह तुम फ़ोर्थ जाट में सूबेदार किये गये। हम जागीर के लिए गवर्नमेंट आफ़ इंडिया से सिफ़ारिश करेगा। चेतसिंह, तुमको सबसे ऊँचा मिलिट तमग़ा 'विक्टोरिया क्रास' दिया जाता है।"

चेतसिंह, सन्तसिंह के इशारे पर, साहब के सामने घुटने टेक कर बैठ गये। जनरल राबर्ट ने अपनी तलवार म्यान से निकाल कर चेतसिंह के दोनों कन्धों पर क्रम से छू दिया। फिर चेतसिंह को खड़े हो जाने का हुक्म दिया। जब चेतसिंह विनम्रभाव से खड़ा हो गया तब साहब ने आगे बढ़कर अपने हाथ से चेतसिंह के दोनों कन्धों पर तीन तीन स्टार जड़कर छाती पर 'विक्टोरिया क्रास' का तमग़ा लटका दिया।

जनरल वान क्लक का प्रयत्न सफल नहीं हो सका। १५ दिन गोलों की प्रलयंकारी वर्षा में भी भारतीय सेना एक पग पीछे नहीं हटी। हज़ारों वीर काम आ गये। १५ दिन ड्यूटी करने पर चेतसिंह को ७ दिन की छुट्टी मिली। झट मिलीटरी लारी पर सवार होकर चेतसिंह ३० मील दूर रूआन की ओर चले आये। ८ बजने का समय था। तेज़ ठंडी हवा चल रही थी। लारी आरास नगर के भीतर से जा रही थी। आकाशयानों और बड़ी तोपों की मार से रमणीक आरास नगर स्मशान हो रहा था। बड़ी बड़ी इमारतें गोलों के गिरने से हाँड़ी की तरह फूट गई थीं। नगर जन-शून्य था। भारतीय सिपाहियों, कुछ रसद-सामान और एक चलते-फिरते अस्पताल के सिवा वहाँ कुछ नहीं था।

१ घंटे में चेतसिंह को लेकर लारी लाहौर इंडियन जनरल अस्पताल के फाटक पर खड़ी हो गई। इस अस्पताल में ५,००० घायल और बीमार सिपाही कपड़े के डेरों में पड़े थे। लारी से कूदकर चेतसिंह सूबेदार घनश्यामसिंह की तलाश में भीतर पहुँचे। सूबेदार की वर्दी देखकर सब कर्मचारी आदर से पेश आये। इससे चेतसिंह को सहज में मालूम हो गया कि सूबेदार का आपरेशन हो रहा है। झटपट चेतसिंह सर्जन-वार्ड के डेरे में गये। वहाँ डाक्टरों की भीड़ थी। चेतसिंह भी जाकर पीछे चुपचाप

क्लोरोफ़ार्म देकर डाक्टर कर्नल ब्राडफ़ोर्ड ने डाक्टर कप्तान जोशी की सहायता से अपना कामकर पट्टी बाँध दी। डाक्टर कर्नल ब्राडफ़ोर्ड सूबेदार के पलंग पर झुके हुए थे। सूबेदार के चेहरे पर से क्लोरोफ़ार्म का असर धीरे धीरे दूर हो रहा था। पहले उन्होंने आँखें खोलने का यत्न किया, और फिर बड़े यत्न से अपनी रक्तवर्ण आँखें खोलकर चारों ओर देखने लगे। सूबेदार घनश्यामसिंह को होश में आया देख दयालु कर्नल ने बड़ी नर्मी से उनके मस्तक पर हाथ रखते हुए हँस कर कहा—"वेल सूबेदार साहब, आल राइट। सब ठीक है। आप का सिर्फ़ एक पैर काट दिया गया है।"

साहब हः हः हः हः हँसते हुए डाक्टर जोशी के साथ चले गये। केवल एक योरपीय नर्स रह गई। सूबेदार ने पानी माँगा। नर्स ने शीशे के ग्लास में दूध भरकर पिला दिया और फिर दो चम्मच पानी। दूध और पानी पीने से स्वस्थ होकर सूबेदार ने चेतसिंह की ओर देखा। उसके तमग़ों से विभूषित सुन्दर शरीर को वे निर्निमेष नेत्रों से देखते रह गये। चेतसिंह आगे बढ़ और चरण छूकर सूबेदार को प्रणाम किया। घनश्यामसिंह गद्गद हो गये, उनकी आँखों से दो बूँद आँसू टरक पड़े। उन्होंने प्रेम से चेतसिंह के सिर पर हाथ रक्खा और गद्-गद गिरा से बोले—"बेटा चेता, तूने अपनी हिम्मत और जवाँमर्दी से दर्जा पाया है। अब मेरा कोई ठीक नहीं। मुझसे प्रण कर, मेरा लड़का बनकर मेरा घर-बार सँभाल।"

चेतसिंह सूबेदार का फिर चरण-स्पर्श कर कहने लगे—चाचा जी, आप फ़िक्र न करें। मुझे आप अपना बेटा ही समझें। आप जो आज्ञा देंगे मैं वही करूँगा।" सात दिन 'रूआनवेस' में रहकर चेतसिंह फ़्रांट पर चले गये। सूबेदार घनश्यामसिंह अच्छे होने लगे, दो महीने में उनके कटे पैर में लकड़ी की नक़ली टाँग लगाकर वे बम्बई भेज दिये गये। वहाँ से पेंशन पाकर अपने घर चले गये।

दो बरस फ़्रांस में काम करने के बाद चेतसिंह की बदली इजिप्ट को होगई। लंदन के वार-आफ़िस ने सब शक्ति लगाकर तुर्कों को पराजित करना सबसे पहली नीति माना। जनरल एलेनबी इजिप्ट में पड़ी हुई भारतीय और ब्रिटिश सेना के प्रधान फ़ील्ड मार्शल बनाये गये। जनरल एलेनबी ने तुर्कों को पूर्णरूप से पराजित करने के लिए

लाख सवारों की माँग पेश की। इसलिए फ़्रांस में भारतीय रिसाले जो पैदल पल्टन का काम कर रहे थे, घोड़े-सहित इजिप्ट लौटा दिये गये। चेतसिंह भी रिसाले के सवार थे, इसलिए १५ जाट केवेलरी में रिसालदार होकर एजिप्ट आगये।

सेना के एकत्र हो जाने पर जनरल एलेनबी ने ६०,००० सवारों को जहाज़ों पर सवार कराकर तुर्की-सेना के उत्तर के पृष्ठ-भाग के समीप के बंदरगाह में उतार दिया, और दक्षिण से १,४०,००० सवारों को लेकर दोनों ओर से बाज़ की तरह उस पर टूट पड़े। तुर्कों के १,६०,००० जवानों ने घिर कर अपने शस्त्र रख दिये। तुर्कों के पूर्ण पराभव से भारतीय सिपाहियों का काम मेसोपोटामिया और इजिप्ट में हलका पड़ गया। तीन बरस इजिप्ट में जनरल एलेनबी के अधीन काम करने पर चेतसिंह ने ६ महीने की छुट्टी पाई। महायुद्ध समाप्त होगया था। एप्रिल के आरम्भ में चेतसिंह स्वेज़ में जहाज़ पर बैठे। हज़ारों हिन्दुस्तानी सैनिक ५ वर्ष के बाद स्वदेश को लौट रहे थे।

जहाज़ को अदन छोड़े सातवाँ दिन था। आठवें दिन जब चेतसिंह डक पर आये उस समय पूर्व-दिशा में सूर्य का रथ आ गया था। उनका सारथी अरुण [illegible] को भगाता हुआ भगवान् के प्रखर तेज की सूचना दे रहा था। आकाश में लाल-लाल बादल घोड़े थे, [illegible] आभा बम्बई की ऊँची मीनारों पर पड़ रही थी। [illegible] के बन्दरगाह में पहुँचते पहुँचते सूर्यदेव के भी [illegible] होने लगे और उन्होंने बम्बई के ऊँचे ऊँचे मीनारों [illegible] सुनहरे रङ्ग से रँग कर समुद्र की नीली छाती पर एक [illegible] रेखा खींच दी।

चेतसिंह ७ बजे सवेरे जहाज़ से उतरे। एक गाड़ी [illegible] माधवबाग़ आये। धर्मशाला में दिन भर विश्राम कर [illegible] में बाम्बे-मेल से रवाना हो गये। वे दूसरे दिन अर्द्ध-[illegible] के समय देहली-स्टेशन पर आगये और वेटिंगरूम में [illegible] गये। सवेरे इक्का करके अपने गाँव की ओर रवाना [illegible] गये। दिन भर चलकर इक्का जब गाँव में पहुँचा, [illegible] अस्त हो चुका था, लेकिन धुँधला-सा प्रकाश पके गेहूँ के खेतों पर पड़ रहा था। अपूर्व शान्ति थी, जिसे पक्षियों

का कलरव घर लौटते हुए गो-वृन्द के गले की घंटियाँ, और मज़दूरों की बेसुरी तान भंग कर रहा था। इन्हें काफ़ी न समझकर गाँव के लड़कों ने अपने कोलाहल से गाँव की शान्ति को कोसों दूर भगा दिया था। गाँव भर में दौड़कर उन्होंने अपने स्वर से गाँव भर को हिला दिया था। वे चिल्ला रहे थे, "चेतसिंह आगये", "चेतसिंह आगये।"

शोर सुनकर चेतसिंह की माता द्वार पर आकर खड़ी होगई। चेतसिंह इक्के से कूद पड़े और माता के चरणों पर सिर रखकर अश्रुजल से धो दिया। माता ने पाँच वर्ष से बिछुड़े हुए पुत्र को हृदय से लगाकर आँचल से आँसू पोंछ दिये। चेतसिंह घर में गये, माता से बातें कर सूबेदार के घर में आये और निःशंक भीतर चले गये।

आँगन में एक बड़े पलंग पर लँगड़े सूबेदार घनश्यामसिंह बैठे हुक्क़ा पी रहे थे। पास ही एक मचिया पर बैठी सूबेदारिन पंखा झल रही थीं। चेतसिंह ने जाते ही दोनों के चरण छुए। सूबेदार चेतसिंह को देखकर गद्गद होगये और चेतसिंह का हाथ पकड़कर अपने पास बैठाते हुए कहा—"आओ बेटा।" फिर चेतसिंह की पीठ पर हाथ फेरते हुए सूबेदारिन की ओर देखकर कहा—"देख, कलावती की माँ, चेतसिंह ने लड़ाई में बड़ा नाम पाया [illegible] है। मेरी जान बचाई है और अपनी बहादुरी से सूबेदार होगया है।"

सूबेदारिन ने हँसकर कहा—"चेता, तुझे तो मैंने पहचाना ही नहीं। ५ बरस में इतना ऊँचा होगया है। कलावती पाँच बरस में मुझसे भी लंबी होगई है। मैं हैरान थी कि इसके लिए वर कहाँ मिलेगा?"

सूबेदार घनश्यामसिंह ज़ोर से हँस पड़े। उन्होंने कहा—"हैरान क्यों होती है? चेतसिंह से अच्छा वर कहाँ मिलेगा? चेतसिंह कलावती से भी लम्बा है। दोनों का कैसा अच्छा जोड़ा है! कलावती सूबेदार की बेटी है और चेतसिंह सूबेदार मेजर है।"

सूबेदारिन ने हँसते हँसते कहा—"यही बात तो मैं सदा से कहती आई हूँ।" इस पर सब हँसने लगे।

एक खम्भे की आड़ से कलावती झाँक रही थी, लेकिन उसका गोरा हृष्ट-पुष्ट एक हाथ दिखाई देता था।

ब्याह में सूबेदार सन्तसिंह भी आये थे।
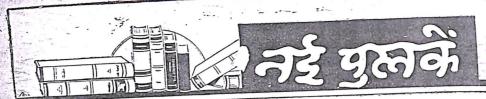
[प्रतिमास प्राप्त होनेवाली नई पुस्तकों की सूची । परिचय यथासमय प्रकाशित होगा]

भारती-भण्डार, लीडर-प्रेस, इलाहाबाद से प्रकाशित २ पुस्तकें—

१—कामायनी—लेखक, श्रीयुत जयशंकरप्रसाद, सजिल्द पुस्तक का मूल्य ३) है।

२—आधी रात—लेखक, श्रीयुत लक्ष्मीनारायण मिश्र, बी० ए०, मूल्य १) है।

३—सहेली के पत्र—लेखिका, मिसेज़ सय्यद क़ासिम अली, साहित्यालंकार, प्रकाशक, नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ हैं। मूल्य ।=) है।

४—हज़रत मुहम्मद का जीवन-चरित—लेखक, श्रीयुत पं० सुन्दरलाल, प्रकाशक, दक्षिण-भारत हिन्दी-प्रचार-सभा, मदरास हैं। मूल्य ।।) है।

५—मीराबाई नाटक—लेखक, श्रीयुत मुकुन्दलाल वर्मा, बी० ए०, प्रकाशक, भार्गव-पुस्तकालय, गायघाट, बनारस हैं। मूल्य ।।=) है।

६—मिश्रबन्धुप्रलाप—(प्रथम भाग) निर्माणकर्त्ता श्रीयुत नारायणप्रसाद 'बेताब', प्रकाशक, महामंत्री कवीन्द्र 'राम', सम्पादक ब्राह्मण राय पत्रिका, पटियाला स्टेट हैं। मूल्य ।।) है।

७—गीत—लेखक व प्रकाशक, श्रीयुत बालकृष्ण बलदुवा, बी० ए०, एल-एल० बी०, बेलदार फाटक चौरस्ता, ५७/१२३ सिरकी मुहाल, कानपुर हैं।

८—प्रकाश के कुछ किरण—संकलयिता, श्रीयुत श्रीरामरत्नदास 'तरुण', प्रकाशक, श्रीरामानन्द-मिशन, नासिक हैं। मूल्य —)।। है।

९—चेचक या शीतला से बचने के उपाय—लेखक, गोस्वामी सीताराम शर्मा वैद्य विशारद, श्रीमती आनन्ददेवी-धर्मार्थ-औषधालय, बरफ़ख़ाना, अलीगढ़ हैं। बिना मूल्य वितरणार्थ।

१—राष्ट्रसंघ और विश्व-शान्ति—लेखक, श्रीयुत रामनारायण यादवेन्दु, बी० ए०, एल-एल० बी, प्रकाशक, मानसरोवर-साहित्य-निकेतन, मुरादाबाद हैं। मू० ३।।) है।

यद्यपि क्रमगति से भारतीय राजनीति का सम्बन्ध अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति से निकटतर होता जा रहा है, तथापि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन की ओर हिन्दी-भाषा-भाषी विद्वानों का अपेक्षाकृत कम ध्यान गया है। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक ने इस गम्भीर पुस्तक-द्वारा हिन्दीवालों का इस सम्बन्ध में निस्सन्देह उपकार किया है।

पुस्तक के प्रथम भाग में राष्ट्र-संघ की उत्पत्ति और विकास तथा उसके विधान-व्यवस्था का विशद वर्णन है। द्वितीय भाग में संघ-द्वारा किये गये विभिन्न प्रयोग-प्रयत्नों का वर्णन है। इस भाग में निःशस्त्रीकरण, युद्ध का मूल-कारण और उसका निराकरण, फ़ैसिज़्म और साम्यवाद आदि विषयों का पाण्डित्यपूर्ण विवेचन किया गया है। इसके अतिरिक्त परिशिष्ट में संघ का विधान, उसके सदस्य और उनका वार्षिक शुल्क आदि भी जोड़ दिया गया है।

इस ग्रन्थ के पढ़ने से जान पड़ता है कि लेखक ने विश्व-समस्यायों का गम्भीर अध्ययन किया है। उनके लिखने की शैली भी सुन्दर है। लेखक के निष्पक्ष व्यक्तिगत विचारों ने पुस्तक का पाठ अधिक मनोरंजक बना दिया है।

ऐसी पुस्तक में विषय-सूची, अनुक्रमणिका आदि का न रहना खटकता है। श्री सम्पूर्णानन्द की भूमिका का भी पता-ठिकाना नहीं। प्रकाशक ने छपाई-सफ़ाई की ओर सतर्कता से ध्यान नहीं दिया। तथापि पुस्तक उपयोगी है और हिन्दी-प्रेमियों को इसे अपनाना चाहिए।

२—हिटलर महान्—लेखक, श्रीयुत चन्द्रशेखर शास्त्री, प्रकाशक, भारती-साहित्य-मन्दिर, देहली हैं। मूल्य [illegible]

आज समस्त संसार की आँखें जर्मनी के उस भाग्य-विधाता एडल्फ़ हिटलर की ओर लगी हुई हैं जिसने कल और आज के जर्मनी में आकाश-पाताल का अन्तर ला दिया है। हिटलर ने अपनी क्रान्तिकारी नीति से एक वर्ष के भीतर ही भीतर जर्मनी की जो काया पलट दी है उसका अध्ययन वास्तव में राजनीति का एक बड़ा मनोरंजक और साथ ही साथ मनोरम अध्ययन है। चाहे हम हिटलरिज़्म के पक्ष में हों या विपक्ष में, संसार की वर्तमान राजनीति को समझने के लिए हिटलर के व्यक्तित्व का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है।

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने हिटलर के जीवन-चरित के अतिरिक्त जर्मनी में राष्ट्रीयता का विकास और महायुद्ध-सम्बन्धी उसकी नीति की भी काफ़ी सुन्दर विवेचना की है। वर्तमान जर्मनी का चित्रण तो लेखक ने अधिक सुन्दर किया ही है। भाषा के सम्बन्ध में लेखक कहीं-कहीं असावधान-सा देख पड़ते हैं। अँगरेज़ी-वाक्य-विन्यास का इस प्रकार प्रयोग कि हिन्दी का मौलिक स्वरूप ही लुप्त हो जाय, सुन्दर नहीं लगता। तथापि शैली मनोरंजक और प्रभावशाली है। राजनीति के विद्यार्थियों के अतिरिक्त साधारण वर्ग के पाठकों के लिए भी यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी।

—कुसुमकुमार

३—फूटा शीशा—लेखक श्रीयुत सद्गुरुशरण अवस्थी एम० ए०, प्रकाशक, कृष्णकला-पुस्तकमाला, इलाहाबाद हैं। मूल्य २।।) है।

'फूटा शीशा' में लेखक की इसी शीर्षक की दस कहानियों का संग्रह है। लेखक योग्य, शिक्षक तथा साहित्य के विभिन्न-अङ्गों के समालोचक हैं। ऐसी स्थिति में उनका साहित्य-सृजन की ओर अग्रसर होना अनुपयुक्त नहीं।

'फूटा शीशा' की सब कहानियाँ अपना एक ही शीर्षक रखने के कारण सम्भव है, अपने भीतर लेखक का क्षेत्र सीमित किये हों। लेखक कथानक के उपयुक्त शीर्षक रखने का निश्चय करके जैसा जीवन के स्टारों का निरीक्षण करता, अपने विचारों का उनमें उन्मेष करता, और अपनी अन्तर्दृष्टि को किसी दूसरी सीमा की ओर बढ़ाता, न हुआ हो; किन्तु प्रस्तुत शीर्षक की कहानियाँ पाठक के मन पर ऐसा प्रभाव नहीं छोड़तीं। सब कहानियों का एक ही शीर्षक होने के कारण पाठक पहले से ही प्रत्येक कहानी को एक नवीन उत्सुकता से पढ़ना प्रारम्भ करता है। कहना न होगा कि इन कहानियों के संग यह एक सुन्दर बात हुई है। इस संग्रह की अधिकांश कहानियाँ सुन्दर हैं। भाषा का सुन्दर प्रवाह, वर्णन में सुरुचि और विचारों का अच्छा चयन इन कहानियों में मिलता है।

आशा है, सुयोग्य लेखक की इस कृति का हिन्दी-प्रेमी अवश्य स्वागत करेंगे।

—बा० पा०

४—तीन वर्ष (उपन्यास)—लेखक श्री भगवतीचरण वर्मा, प्रकाशक दि लिटरेरी सिंडिकेट, प्रयाग। मूल्य २) है। पृष्ठ-संख्या ३४७ और छपाई, गेट अप आदि सुन्दर।

प्रस्तुत पुस्तक 'तीन वर्ष' एक श्रेष्ठ उपन्यास है। इसका वातावरण ऊँची श्रेणी के धनी-मानी लोगों का है, जिसमें रमेशचन्द्र—एक बुद्धिमान्, किन्तु निधन व्यक्ति आ मिलता है। कुँवर अजितकुमार से क्लास में उसकी दोस्ती होती है और वह अपने दो साल उसी के साथ समृद्धि की हिलोरों में झूलता हुआ बिताता है। इसी बीच सर कृष्णकुमार की लड़की प्रभा से इन दोनों की दोस्ती हो जाती है। प्रभा रमेश को अपने प्रेम का खिलौना बना लेती है। पहला वर्ष तो रंग-रलियों में बीता। दूसरे वर्ष रमेश प्रभा के साथ 'ज्वाइंट-स्टडी' करता है और एक लड़की के साथ ज्वाइंट स्टडी करने का जो परिणाम होना चाहिए, वही होता है। रमेश द्वितीय श्रेणी में पास हुआ, अजित प्रथम श्रेणी में।

तीसरा वर्ष प्रारम्भ हुआ। रमेश और प्रभा का प्रेम बढ़ता गया। अजित रमेश को प्रभा से अलग रखना चाहता था, किन्तु अन्धा रमेश न माना अजित के अनुरोध से रमेश प्रभा से विवाह का प्रस्ताव करता है। किन्तु प्रभा एक हज़ार रुपया माहवार चाहती है। निराश रमेश एक दिन अजित पर टूट पड़ता है। किसी प्रकार अजित के प्राण बच जाते हैं। रमेश शराब पीना शुरू करता है। वह कानपुर भाग जाता है। सरोज नाम की एक वेश्या के यहाँ रहने लगता है। सरोज के हृदय था। वह रमेश से प्रेम करने लगी, किन्तु धोखा खाया हुआ रमेश उसे ठुकरा देता है। सरोज बीमार होकर मर जाती है और रमेश के नाम चार लाख छोड़ जाती है। इस रुपये को पाकर

रमेश फिर गम्भीर जीवन आरम्भ करता है। प्रभा अब भी विवाह का प्रस्ताव करती है, किन्तु रमेश इसे 'वेश्या-वृत्ति' कहकर ठुकरा देता है।

'तीन वर्ष' ऐसे तो चरित्र-प्रधान उपन्यास है, किन्तु उसमें अभिनयात्मक उपन्यास के तत्त्व भी मिलते हैं। अजित यथार्थवादी है। वह सांसारिक वस्तुओं के स्थित रूप में ही विश्वास करता है। प्रेम उसके लिए कोरी पार्थिव लेन-देन है और स्त्री एक आमोद-प्रमोद की वस्तु। रमेश आदर्शवादी है। वह स्त्री को देवी समझता है और प्रेम को आध्यात्मिकता के समकक्ष। वह धोखा खाकर ही अजित का अनुयायी होता है। प्रभा एक तितली है, पुरुषों को ख़ुश करने के लिए समय समय पर रंग बदलती है। सरोज आदर्श वेश्या है। वेश्या होते हुए भी हृदयहीन नहीं है। साथ ही ज़मींदार, रईस, वेश्यागामी, शराबी, रेलवे के टिकट एक्ज़ामिनर आदि विभिन्न श्रेणी के लोगों का भी इस उपन्यास में सजीव और मनोरञ्जक चित्रण है।

वर्मा जी जीवन को एक ढला हुआ सुसंगठित रूप नहीं देते। उनके मत में "प्रत्येक व्यक्ति एक पहेली है और संस्कृति इन पहेलियों के एकत्रित समूह का दूसरा नाम है।" एक अदृश्य शक्ति मनुष्यों को पर्दे के पीछे से नचाती-डुलाती रहती है। बुराई भलाई को ये "केवल तुलनात्मक व्यक्तिगत प्रश्न" समझते हैं। ये पाप और पुण्य को भी "मनुष्य के दृष्टिकोण की [illegible]ता का दूसरा नाम" समझते हैं।

इस उपन्यास में कौतूहल, रोमैन्स और घटनाक्रम बहुत ही उपयुक्त रक्खे गये हैं। सभी पात्र वांछित परिणाम के लिए काम करते हैं। इसमें नायक कोई नहीं है। सभी प्रमुख पात्र स्वतन्त्र हैं, किन्तु लेखक के दृष्टिकोणों का समर्थन करते हुए परिणाम की पुष्टि में योग देते हैं। प्रेम की विफलता दिखाने में उपन्यासकार सफल हुए हैं। घटना-क्रम इतना स्वाभाविक हो गया है कि उपन्यास उपन्यास नहीं मालूम पड़ता।

सरोज से चरित्र-चित्रण में मानव-जीवन की उपादेयता और श्रेष्ठता की ध्वनि है। 'सेवा-सदन' की सुमन प्रतिफल के लिए व्याकुल होकर कुछ अस्वाभाविक-सी हो जाती है, किन्तु सरोज एक शांतप्रेमिका के रूप में गालियाँ सुनती रहती है।

एक बार शुरू करने पर पूरे उपन्यास को पढ़कर ही शांति मिलती है। घटना-क्रम पाठक की कौतूहल-प्रवृत्ति को सजग रखता है। सहृदय व्यक्तियों को उपन्यास में "स्त्री उसी प्रकार की संपत्ति है जिस प्रकार की संपत्ति हम ग़ुलाम को, कुत्तों को अथवा अन्य जानवरों को कह सकते हैं" (पृष्ठ १३६) आदि अप्रिय स्थल अवश्य ही खटकेंगे; किन्तु पूरे उपन्यास को पढ़कर वर्मा जी को बधाई दिये बिना नहीं रहा जाता।

—सत्यप्रसाद थपलियाल

५—भवभूति—मूललेखक, महामहोपाध्याय स्वर्गीय सतीशचन्द्र विद्याभूषण, अनुवादक, पंडित ज्वालादत्त शर्मा और प्रकाशक गङ्गा-पुस्तकमाला कार्यालय लखनऊ हैं। मूल्य सादी कापी का ॥=) दस आने और सजिल्द का १=) एक रुपया दो आने है।

यह पुस्तक संस्कृत के सुप्रसिद्ध नाटककार महाकवि भवभूति का आलोचनात्मक परिचय है। विद्वान् लेखक ने उक्त महाकवि की जीवनी, वंश-परिचय तथा कवित्वशक्ति पर प्रकाश डालने का समुचित रूप से प्रयत्न किया है। किन्तु इससे भी अधिक प्रयत्न किया है पाठकों को उक्त महाकवि की विचारधारा तथा उनके समय की सामाजिक अवस्था से परिचित कराने का। लेखक महोदय के मतानुसार महाकवि भवभूति के तीनों ही नाटकों—महावीरचरित, उत्तररामचरित तथा मालती-माधव—की रचना उस युग में हुई थी जब बौद्धधर्म अपने अभ्युदय की चरम सीमा पर पहुँच कर अवनति के पथ पर अग्रसर हो रहा था और वैदिक धर्म की दुन्दुभी फिर से बजनी आरम्भ हो गई थी। महाकवि भवभूति ने अपनी उपर्युक्त रचनाओं के द्वारा वैदिक धर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करने की चेष्टा की थी। इस मत की पुष्टि के लिए विद्याभूषण जी ने इन तीनों ही नाटकों से बहुत-से प्रमाण उद्धृत किये हैं, जो सर्वथा मान्य हैं।

महाकवि भवभूति की रचनाओं पर उनके युग का कितना अधिक प्रभाव पड़ा है और उनकी रचनाओं में इतिहास की कितनी अधिक और प्रामाणिक सामग्री बिखरी पड़ी है, इस बात की विवेचना विद्याभूषण महोदय ने महाकवि के द्वारा निर्मित नाटकों में आये हुए पात्रों के पारस्परिक संलाप तथा क्रियाकलाप की आलोचना के

सिलसिले में की है। भवभूति के द्वारा वर्णित स्थानों का भी परिचय देने के लिए विद्याभूषण महोदय ने यथेष्ट प्रयत्न किया है। किन्तु आधुनिक भूगोल के अनुसार उन स्थानों का परिचय देने में उन्हें कहाँ तक सफलता मिली है, यह बात विचारणीय है। उदाहरण के लिए भवभूति के महावीरचरित के चौथे तथा उत्तररामचरित के पहले अङ्क में शृङ्गवेरपुर का नाम आया है। इसका परिचय देते हुए विद्याभूषण महोदय ने लिखा है—"निषादराज गुह से उसकी राजधानी शृङ्गवेरपुर में मिले थे। गुह की राजधानी का वर्त्तमान नाम चण्डालगढ़ या चुनारगढ़ है।" यहाँ विद्याभूषण जी का शृङ्गवेरपुर का मतलब है ईस्ट इंडियन-रेलवे के स्टेशन चुनार से, जो युक्तिसङ्गत भी नहीं है। कहाँ प्रयाग से पश्चिम बीस-बाइस मील की दूरी पर अवस्थित शृङ्गवेरपुर और कहाँ मिर्ज़ापुर से भी मीलों पूर्व चुनार! अयोध्या से चलकर चुनार के सामने गङ्गा पार करनेवाला व्यक्ति इतना लम्बा रास्ता तय करने के बाद भी प्रयाग नहीं पहुँच सकता, क्योंकि उसे प्रयाग के समीप भी आकर नौका की शरण लेनी पड़ेगी। अस्तु, इस पुस्तक में भवभूति के सम्बन्ध में अध्ययन करने की काफ़ी सामग्री प्रस्तुत की गई है। पुस्तक गम्भीर अध्ययन तथा बहुत अधिक खोज के साथ लिखी गई है।

—ठाकुरदत्त मिश्र

६—स्त्री व बालरोग चिकित्सा—लेखक व [illegible]
शक डाक्टर [illegible] सी० सी० सरकार एच० [illegible]
होमियोपैथिक [illegible]डिकल कालेज, लखन[illegible]
४४३ और मूल्य २॥) है।

आलो[illegible] [illegible]स्तक होमियोपैथि[illegible]
का दूसरा पु[illegible]। इसमें स्त्रि[illegible]
उनकी चिकि[illegible] का वर्ण[illegible]
डाक्टर सर[illegible] इस चि[illegible]
[illegible]सक हैं, अ[illegible] वे [illegible]
अधिकारी [illegible]
प्रणाली-स[illegible]

एक अभाव की उत्तम ढंग से पूर्ति हो रही है। होमियोपैथी चिकित्सा प्रणाली दिन प्रतिदिन इस देश में अधिकाधिक उपयोगी सिद्ध होती जा रही है। ऐसी दशा में इस विषय के प्रामाणिक ग्रन्थों का हिन्दी में हो जाना अति आवश्यक है। प्रसन्नता की बात है कि अधिकारी विद्वानों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हो गया है। उपर्युक्त ग्रन्थमाला एक ऐसा ही प्रयत्न है। चिकित्सा-प्रेमियों को इस माला के ग्राहक बनकर लाभ उठाना चाहिए।

७—ज्योति—सम्पादक, श्रीयुत मदनगोपाल मिश्र, प्रकाशक, मैनेजर ज्योति (मासिक पत्रिका) ज्योति-कार्यालय, कान्यकुब्ज-कालेज रोड, लखनऊ हैं। वार्षिक मूल्य स्वदेश में ३॥) और विदेश में ५) है।

यह विविध विषय विभूषित एक मासिक पत्रिका है। लखनऊ के कान्यकुब्ज-कालेज के तत्त्वावधान में इसका प्रकाशन हो रहा है। आलोच्य अंक इसका द्वितीय अंक है। इसमें प्रकाशित सभी लेखों, कविताओं और कहानियों की संख्या २३ है। अनेक चित्रों का भी सुन्दर संग्रह किया गया है। छपाई साफ़ और सुन्दर है। यदि ज्योति का प्रकाशन इसी रूप में होता रहा तो इससे हिन्दी का हित होगा। हिन्दी-प्रेमियों को इस नई पत्रिका का स्वागत करना चाहिए। इसका ५० कारण भोजन में फलों का नियमित ..। का चित्र है।

चित्र-संग्रह

दिल्ली में पद-ग्रहण के प्रश्न पर विचार करने के लिए पिछले मार्च मास में नेताओं का एक सम्मेलन हुआ था। यह चित्र उसी अवसर का है। पंडित जवाहरलाल नेहरू, महात्मा गांधी, खान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ाँ आदि हरिजन-बस्ती में जा रहे हैं।

नाम है ...
नचाती-डुलाती रहती है। बुराई भलाई को ... तुलनात्मक व्यक्तिगत प्रश्न" समझते हैं। ये पाप- पुण्य को भी "मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता का दूसरा नाम" समझते हैं।

इस उपन्यास में कौतूहल, रोमैन्स और घटनाक्रम बहुत ही उपयुक्त रक्खे गये हैं। सभी पात्र वांछित परिणाम के लिए काम करते हैं। इसमें नायक कोई नहीं है। सभी प्रमुख पात्र स्वतन्त्र हैं, किन्तु लेखक के दृष्टिकोणों का समर्थन करते हुए परिणाम की पुष्टि में योग देते हैं। प्रेम की विफलता दिखाने में उपन्यासकार सफल हुए हैं। घटना-क्रम इतना स्वाभाविक हो गया है कि उपन्यास उपन्यास नहीं मालूम पड़ता।

सरोज से चरित्र-चित्रण में मानव-जीवन की उपादेयता और श्रेष्ठता की ध्वनि है। 'सेवा-सदन' की सुमन प्रतिफल के लिए व्याकुल होकर कुछ अस्वाभाविक-सी हो जाती है, किन्तु सरोज एक शांतप्रेमिका के रूप में गालियाँ सुनती रहती है। सरोज का चरित्र आदर्श है, किन्तु अस्वाभाविक नहीं है।

में हु...
पर पहुँच क...
वैदिक धर्म की दुन्दु...
महाकवि भवभूति ने ...
वैदिक धर्म की श्रेष्ठता को...
थी। इस मत की पुष्टि के लि...
तीनों ही नाटकों से बहुत-से प्र...
सर्वथा मान्य हैं।

महाकवि भवभूति की रचनाओं ...
कितना अधिक प्रभाव पड़ा है और उ...
इतिहास की कितनी अधिक और प्रामाणि...
पड़ी है, इस बात की विवेचना विद्याभूष...
महाकवि के द्वारा निर्मित नाटकों में आये...
पारस्परिक संलाप तथा क्रियाकलाप की ...
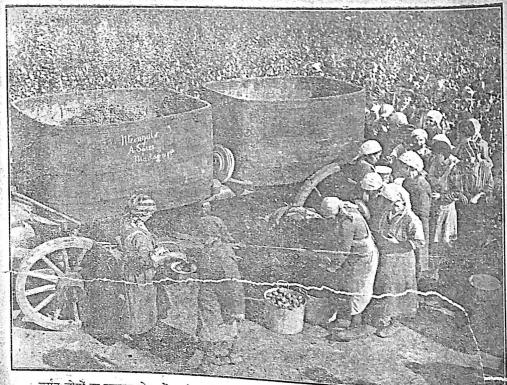
जर्मन लोगों का स्वास्थ्य योरप में सबसे अच्छा समझा जाता है। इसका एक कारण भोजन में फलों का नियमित व्यवहार है। यह जर्मनी के एक फलोद्यान और फल इकट्ठा करनेवालों का चित्र है।
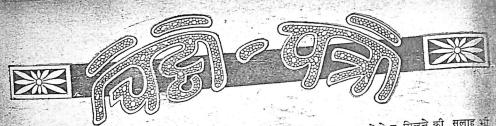
हिन्दू-स्त्रियों के अपहरण के मूल-कारण

आदरणीय सम्पादक जी !

सादर वन्दे !

सितम्बर की 'सरस्वती' में प्रकाशित श्री संतराम जी के 'हिन्दू-स्त्रियों के अपहरण के मूल कारण' शीर्षक लेख को पढ़कर मेरे हृदय में जो विचार उठे उन्हें लेखबद्ध करके मैंने आपकी सेवा में प्रकाशनार्थ भेजा और वह 'फ़रवरी' के अंक में प्रकाशित हुआ। लेख का उत्तर देना तो दूर रहा अपितु आपको पत्र लिखकर श्री संतराम जी ने वैयक्तिक रूप से मुझे अयोग्य तथा मूर्ख सिद्ध करने की चेष्टा की है। उनकी समझ में मेरी उम्र की लड़कियाँ सांसारिक बातों से इतनी अनभिज्ञ होती हैं कि वे स्त्रियों पर लगाये गये आक्षेपों को न तो समझ सकती हैं और न उनका उत्तर देने की योग्यता ही रखती हैं।

श्री संतराम जी को यह समझ लेना चाहिए कि प्रतिभा किसी की विरासत नहीं है। मैं भी कुछ न कुछ लिख लेती हूँ और मेरा अपना छोटा-सा रेकार्ड भी है। मेरे लेख में यदि उन्हें नारी-हृदय का उच्छ्वास नहीं मिलता तो इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि वह लेख मेरा नहीं है, अपितु उससे यही प्रकट होता है कि लेखक महोदय को नारी-हृदय की ज़रा भी पहचान नहीं है। यह बात उनके पिछले लेख से भी स्पष्ट हो जाती है। श्री संतराम जी ने इस प्रकार का आक्षेप करके जिस मनोवृत्ति का परिचय दिया है वह कदापि क्षम्य नहीं। जब देश उन्नति की ओर अग्रसर हो रहा है और ऐसे लोगों की आवश्यकता है जो नारी-जाति की जाग्रति में सहायक हों, इस ज़माने में इस प्रकार के पीछे ले जानेवाले विचार कहाँ तक उचित हैं? इसका निर्णय 'सरस्वती' के पाठक स्वयं कर सकते हैं।

आगे चलकर आपने अपने विचारों को मनोवैज्ञानिक तथ्य कहने का साहस किया है, साथ ही कलापूर्ण वाक्यों में युवतियों को युवकों से न मिलने की सलाह भी दी है। इस मर्यादा का स्वयं लेखक महोदय के घर में कहाँ तक पालन होता है, यह एक पड़ोसी की हैसियत से मुझे भली भाँति विदित है। किन्तु मैं इस विषय में कुछ न कहना ही उचित समझती हूँ।

मैं स्वयं ऐसे वाद-विवाद को अनुचित समझती हूँ जिसमें वैयक्तिक आक्षेप की नौबत आ जाय। श्री संतराम जी वयोवृद्ध और विचारवान् व्यक्ति हैं। भविष्य में इस विषय में मेरा चुप रहना ही उनके लिए काफ़ी उत्तर है।*

निवेदिका

—विश्वमोहिनी व्यास

मार्च के अंक की कहानियाँ

'मतभेद' की उत्तमता में कदापि मतभेद नहीं हो सकता और वह अन्य दो कहानियों से भी उत्तम प्रतीत होती है। प्रोफ़ेसर अहमदअली एम॰ ए॰ की 'हमारी गली' उनकी अपनी गली है, उसमें प्रवेश करना ज़बर-दस्ती होगी।

सुदर्शन जी की 'कलयुग नहीं करयुग है यह!' कहानी में कदाचित् ही कोई दोष निकाल सके। पर उक्त शीर्षक उन्होंने क्यों दिया, यह समझ में नहीं आता। 'मतभेद' में रमेश और उषा के मतभेद का दर्शन सारी कहानी में [illegible] है, जो उसके प्रादुर्भाव से लेकर पाठक को उसके [illegible] तक पहुँचने को अत्यन्त उत्सुक कर देता है। 'कलयुग नहीं' कह कर लेखक ने चाहे वर्तमान पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित नवयुवकों के सम्बन्ध में अपने विचार ज़ाहिर किये हों, पर 'करयुग है यह' का कोई भाव प्रदर्शित नहीं होता। पूरी कहानी पढ़ जाइए, पर 'करयुग है यह' की याद तक नहीं आती।

—सुमेरचन्द कौशल, बी॰ [illegible]

---

*श्रीमती विश्वमोहिनी जी का यह पत्र इस विवाद का अन्तिम लेख है। आशा है, लेखक महानुभाव इस विवाद का यहीं से अन्त समझेंगे।—सम्पादक

वर्ग नं॰ ६ का नतीजा

इस बार शुद्धपूर्ति किसी की नहीं आई। परन्तु प्रथम पुरस्कार की रक़म रोकना हमारा अभीष्ट नहीं जैसा कि ऐसी स्थिति में हमने पहले भी नहीं रोका इसलिए सम्पूर्ण ७५०) का पुरस्कार प्रतियोगियों में इस प्रकार बाँटा गया।

प्रथम पुरस्कार ४५०) (एक अशुद्धि पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ४ व्यक्तियों में बराबर बराबर बाँटा गया। प्रत्येक को ११२॥) मिला।

(१) बेनीमाधव जगदीशपुर पो॰ (बिहार)
(२) रमाशङ्कर रायपुर (सी॰ पी॰)
(३) मिसेज एम॰ मैत्रा बाग़ मुज़फ़्फ़र ख़ाँ, आगरा।
(४) राधाकृष्ण c/o श्रीयुत हरिकृष्ण कपूर कैंट बोर्ड्स आफ़िस, आगरा।

द्वितीय पुरस्कार १३२॥) (दो अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ५ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को २६।) मिला।

(१) पं॰ नित्यानन्द शर्मा जनरल न्यूज़ एजंसी हापुड़, यू॰ पी॰।
(२) श्रीयुत ए॰ एल॰ मैत्रा ११२९ बाग़ मुजफ़्फ़र ख़ाँ, आगरा।
(३) पं॰ बद्रीप्रसाद शास्त्री अध्यापक सनातनधर्म स्कूल, भरतपुर।
(४) मुनियादेवी c/o श्रीमती प्रयागीदेवी माहेश्वरी २६ ऊँचामंडी, इलाहाबाद।
(५) मुन्नीदेवी c/o बी॰ सी॰ सेठ ट्रेज़री आफ़िसर, बरेली।

तृतीय पुरस्कार ७०) (तीन अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ५ व्यक्तियों में बराबर बराबर बाँटा गया। प्रत्येक को १४) मिला।

(१) हरिकृष्ण टाइपिस्ट कैंट बोर्ड्स आफ़िस, आगरा।
(२) मिसेज़ हरिनन्दनप्रसाद से॰ c/o श्री रघुनन्दनप्रसाद से॰ सीतलागली, आगरा।
(३) मधुसूदनलाल c/o माधवलाल याज्ञिक हाई स्कूल फीरोज़ाबाद, आगरा।
(४) संतोषकुमार c/o शिवप्रसाद महाजनीटोला, इलाहाबाद।

चतुर्थ पुरस्कार ६६) (चार अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित २३ व्यक्तियों में बराबर बराबर बाँटा गया। प्रत्येक को ≈) मिला।

(१) श्रीमती यू० डी० गुप्त, c/o शिवराजकारख़ाना, बरेली।

(२) सूरजकली देवी जायसवाल २२५, कलवारी टोला कटरा, इलाहाबाद।

(३) राममनोहर शुक्ल, c/o रामरतनलाल शुक्ल पो० आ० हरसूद, ज़िला निमाड़ (सी० पी०)

(४) राजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी एल० ए० जी०, एल० सी० स्कूल बलराम।

(५) नरेन्द्रचन्द्र जैन c/o बाबू महादेवप्रसाद, महाजन टोल आरा।

(६) एच० एल० सेठ c/o एन० सी० सेठ, हास्पिटल रोड, आगरा।

(७) शकुन्तला देवी c/o मिस्टर सेठ, ट्रेज़री आफ़िसर, बरेली।

(८) डाक्टर जी० डी० मैत्र, ११२९ बाग़ मुजफ़्फ़रख़ाँ, आगरा।

(९) गोपालनन्दन पाठक c/o हिन्दी-साहित्य-समिति कुम्हेरगेट, भरतपुर।

(१०) हरीमोहन c/o डा० जी० पी० अग्रवाल, ८६ गाड़ीवान टोला, इलाहाबाद।

(११) रामनन्दन राम c/o गिरीशप्रसाद श्रीवास्तव, शिवपुर, बनारस।

(१२) योगेन्द्रनाथ श्रीवास्तव c/o गिरीशप्रसाद श्रीवास्तव, शिवपुर, बनारस।

(१३) एच० बी० कक्कड़, ११ बैंक रोड, इलाहाबाद।

(१४) मदनगोपाल c/o हरिशरण[illegible] वकील, इसलामपुर, मुजफ़्फ़रपुर।

(१५) कीर्तिनारायण c/o हरिशरणदत्त वकील, मु० इसलामपुर, मुजफ़्फ़रपुर।

(१६) गुलाबदेवी सेठ, बाग़ मुजफ़्फ़रख़ाँ, आगरा।

(१७) दनेशचन्द्र श्रीवास्तव, कक्षा १०, विनय हाई स्कूल राजगढ़ स्टेट वाया भोपाल।

(१८) सरोजकुमारी c/o बी० एल० अस्थ[illegible] आ० पडरौना, ज़ि० गोरखपुर।

(१९) मिसेज़ रघुनन्दनप्रसाद सेठ, सीतलागली, आगरा।

(२०) श्रीयुत रघुनन्दनप्रसाद सेठ, सीतलागली, आगरा।

(२१) एस० के० मैत्र c/o डा० जी० डी० मैत्र, बाग़ मुजफ़्फ़रख़ाँ, आगरा।

(२२) रघुवरदयाल मिश्र, हाई स्कूल मीरजाबाद, आगरा।

(२३) लीलाधर शर्मा विशारद, जनरल न्यूज एजेंसी हापुड़, यू० पी०।

पंचम पुरस्कार २८॥) (पाँच अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ५७ व्यक्तियों में बराबर-बराबर बाँटा गया। प्रत्येक को ॥) मिला।

(१) सुरेशचन्द पाठक c/o चन्द्रप्रिंटिंग प्रेस, फ़तहपुरी, देहली।

(२) कोमल बाबू c/o दीक्षित सन एंड कम्पनी, बुकसेलर, आगरा।

(३) गोपीकृष्ण c/o हरिकृष्ण टाइपिस्ट, कैंट, बोर्ड स

(५) विमलादेवी c/o पं० सालिगराम भट्ट, गोकुलपुरा, आगरा।

(६) जयकृष्ण कपूर c/o बाबू रामकृष्ण कपूर, रईस व ज़मींदार, पिहानी, हरदोई।

(८) सुप्रभादेवी c/o श्री रामसुन्दर, गाँव योगिपारा, पो० आनन्दपुर, दरभंगा।

(९) सुभद्राकुमारी c/o ईश्वरशरण सब-रजिस्टार, गाज़ीपुर।

(१०) मि० एम० एल० मैत्र, ११२९ बाग़ एम० खान, आगरा।

(११) श्री त्रिवेणीशंकर c/o वैद्यराज पं० प्रेमनारायण तिवारी, पँचमढ़ी सी० पी०।

(१२) मक्खनलाल सहल एम० ए०, सहल-सदन, नवलगढ़, जयपुर।

(१३) कुमारी उमा c/o पं० कृष्णकुमार वाजपेयी, डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड आफ़िस, लखीमपुर-खीरी।

(१४) युधिष्ठिरप्रसाद चतुर्वेदी c/o पं० गोपालनन्दन पाठक, कुम्हेरगेट, भरतपुर।

(१५) सुशीलादेवी c/o श्रीमती श्यामादेवी माहेश्वरी, सत्याश्रम, ऊँचामंडी, इलाहाबाद।

(१६) एस० डी० जाँवधिया c/o चमेलीदेवी प्रधान अध्यापिका, म्युनिसिपल स्कूल कल्याणीदेवी, इलाहाबाद।

(१७) शान्तादेवी गुप्ता c/o मूलचन्द गुप्ता हेड मास्टर, पचमढ़ी।

(१८) गोरेलाल श्रीवास्तव, मैनुअल ट्रेनिंग टीचर, बी० एन हाईस्कूल अकबरपुर, फ़ैजाबाद।

(१९) दुर्गाप्रसाद वर्मा इंजीनियर, लीडर प्रेस, इलाहाबाद।

(२०) प्रेमवतीदेवी, गुरुकुल, वृन्दावन।

(२१) भवानीप्रसाद बी० ए० सेक्रेटरी, अजयगढ़ स्टेट सी० आई०।

(२२) हरिनन्दनप्रसाद सेठ c/o श्री रघुनन्दनप्रसाद सेठ, सीतलागली, आगरा।

(२३) हरिहरशरण दत्त वकील, इस्लामपुर, मुज़फ़्फ़रपुर।

(२४) जे० एम० c/o मास्टर एस० ए०, वर्ना० मि० स्कूल, हरसूद, पो० हरसूद, ज़िला निमाड़ (सी० पी०)

(२५) महावीरप्रसाद तिवारी, मन्दिर गजानन, सीसामऊ, कानपुर।

[illegible] डिप्टी इन्स्पेक्टर, डिस्ट्रिक्ट

(२७) सी० के० डी० तिवारी c/o एस० ओ०, थाना रुधौली, ज़ि० बस्ती।

(२८) के० के० डी० तिवारी c/o एस० ओ०, थाना रुधौली, ज़ि० बस्ती।

(२९) बैजनाथप्रसाद c/o श्री विश्वम्भरनाथ मेहरोत्रा, २० रानीमंडी, इलाहाबाद।

(३०) एस० पी० श्रीवास्तव, प्रायमरी स्कूल, जगतगंज, बनारस कैंट।

(३१) डी० एन० श्रीवास्तव c/o एस० पी० श्रीवास्तव, प्रायमरी स्कूल, जगतगंज, बनारस कैंट।

(३२) प्रभाकर c/o हरिकिशन लाल अग्रवाल हेडमास्टर, पचमढ़ी।

(३३) जी० एल० मैत्र, ११२९ बाग़ मुजफ़्फ़रख़ाँ, आगरा।

(३४) श्रीप्रसाद c/o रामप्रसाद गुप्त, दाउदनगर, पटना-फाटक, गया।

(३५) सावित्रीदेवी c/o बी० सी० सेठ, ट्रेज़री आफ़िसर, बरेली।

(३६) कुन्नीदेवी c/o बी० सी० सेठ, ट्रेज़री आफ़िसर, बरेली।

(३७) वी० वी० डी० गुप्ता c/o शिवराजकारख़ाना, बरेली।

(३८) बाबूलाल जैन 'जलज', कोरिया स्टेट, बैकुण्ठपुर, बिलासपुर सी० पी०।

(३९) ओ० एच० राठेड़ c/o राठोड़ ब्रादर्स, कोटा।

(४०) माधवलाल याज्ञिक, हाई स्कूल, फ़िरोज़ाबाद, आगरा।

(४१) मुन्नीदेवी c/o पं० राजारामजी व्यास, मौ० अधिकरियान, पो० ज्वालापुर, सहारनपुर।

(४२) दुर्गाप्रसाद सिनहा, १०३ गाड़ीवान टोला, इलाहाबाद।

(४३) श्रीससकुमार मुकर्जी, खत्रीपाठशाला, इलाहाबाद।

(४४) गोपीकुमार व्यास c/o गंगाधर व्यास, इन्द्रगढ़ (राजपूताना)।

(४५) गिरीशप्रसाद श्रीवास्तव, पो० शिवपुर, ज़ि० बनारस।

(४६) आशुसिंह शेखवत, स्टेट हाईस्कूल, चूरू

(४७) महेन्द्रशंकर पांडे एम० ए०, स्टेट हाईस्कूल, चूरू, बीकानेर।

(४८) जगतराम मिश्र, कोटद्वार, गढ़वाल।

(४९) काशीनाथ उपाध्याय, ४/३१ सराय गोवर्धन, चेतगंज, बनारस सिटी।

(५०) बेधड़क बनारसी, ४/३१ सराय गोवर्धन, चेतगंज, बनारस सिटी।

(५१) हरि c/o बालकृष्ण प्रधानाध्यापक, हिन्दी माडल स्कूल, कोटा।

(५२) अवधकुमार c/o शीतल सुरमा, बरेली।

(५३) नारायण भारती विद्यार्थी, मिडिल स्कूल, सोमेश्वर, ज़ि० अल्मोड़ा।

(५४) विजयपाल अग्निहोत्री, अकबरपुर, कानपुर।

(५५) माया c/o डाक्टर महेन्द्रनाथ चतुर्वेदी, सी० पी०।

(५६) सूर्यनारायण गुप्त c/o श्याम सुन्दरगुप्त, पो० देवघर (वैद्यनाथ धाम)।

(५७) कुमारी शकुन्तला अवस्थी c/o कुंजविहारी अवस्थी, अफ़ीम कोठी, बृजलाल क्वार्टर नं० १ कानपुर।

उपर्युक्त सब पुरस्कार २४ मई को भेज दिये जायँगे।

नोट—(१) जाँच का फ़ार्म ठीक समय पर आने से यदि किसी को और भी पुरस्कार पाने का अधिकार सिद्ध हुआ तो उपर्युक्त पुरस्कारों में से जो उसकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बाँटा जायगा।

(२) केवल वे ही लोग जाँच का फ़ार्म भेजें जिनका नाम यहाँ नहीं छपा है, पर जिनको यह सन्देह हो कि वे पुरस्कार पाने के अधिकारी हैं।

(३) जिनको ।।) का पुरस्कार मिला है उन्हें ।।) का प्रवेश-शुल्क-पत्र भेज दिया जायगा। जो नियम ४ के अनुसार तीन महीने के भीतर इसके साथ एक पूर्ति भेज सकेंगे।

नियम—(१) वर्ग नं० १० में निम्नलिखित पारितोषिक दिये जायँगे। प्रथम पारितोषिक—सम्पूर्णतया शुद्ध पूर्ति पर ३००) नक़द। द्वितीय पारितोषिक—न्यूनतम अशुद्धियों पर २००) नक़द। वर्गनिर्माता की पूर्ति से, जो मुहर बन्द करके रख दी गई है, जो पूर्ति मिलेगी वही सही मानी जायगी।

(२) वर्ग के रिक्त कोष्ठों में ऐसे अक्षर लिखने चाहिए जिससे निर्दिष्ट शब्द बन जाय। उस निर्दिष्ट शब्द का संकेत अङ्क-परिचय में दिया गया है। प्रत्येक शब्द उस घर से आरम्भ होता है जिस पर कोई न कोई अङ्क लगा हुआ है और इस चिह्न (▒) के पहले समाप्त होता है। अङ्क-परिचय में ऊपर से नीचे और बायें से दाहनी ओर पढ़े जानेवाले शब्दों के अङ्क अलग अलग कर दिये गये हैं, जिनसे यह पता चलेगा कि कौन शब्द किस ओर को पढ़ा जायगा।

(३) प्रत्येक वर्ग की पूर्ति स्याही से की जाय। पेंसिल से की गई पूर्तियाँ स्वीकार न की जायँगी। अक्षर सुन्दर, सुडौल और छापे के सदृश स्पष्ट लिखने चाहिए। जो अक्षर पढ़ा न जा सकेगा अथवा बिगाड़ कर या काटकर अक्षर दूसरी बार लिखा गया होगा वह अशुद्ध माना जायगा।

(४) प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए जो फ़ीस वर्ग के ऊपर छपी है दाख़िल करनी होगी। फ़ीस मनीआर्डर-द्वारा या सरस्वती-प्रतियोगिता के प्रवेश-शुल्क-पत्र (Credit voucher) द्वारा दाख़िल की जा सकती है। इन प्रवेश-शुल्क-पत्रों की किताबें हमारे कार्यालय से ३) या ६) में ख़रीदी जा सकती हैं। ३) की किताब में आठ आने मूल्य के और ६) की किताब में १) मूल्य के ६ पत्र बँधे हैं। एक ही कुटुम्ब के अनेक व्यक्ति, जिनका पता-ठिकाना भी एक ही हो, एक ही मनीआर्डर-द्वारा अपनी अपनी फ़ीस भेज सकते हैं और उनकी वर्ग-पूर्तियाँ भी एक ही लिफ़ाफ़े या पैकेट में भेजी जा सकती हैं। मनीआर्डर व वर्ग-पूर्तियाँ 'प्रबन्धक, वर्ग-नम्बर १०, इंडियन प्रेस, लि०, इलाहाबाद' के पते से आनी चाहिए।

(५) लिफ़ाफ़े में वर्ग-पूर्ति के साथ मनीआर्डर की रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र नत्थी होकर आना अनिवार्य है। रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र न होने पर वर्ग-पूर्ति की जाँच न की जायगी। लिफ़ाफ़े की दूसरी ओर अर्थात् पीठ पर मनीआर्डर भेजनेवाले का नाम और पूर्ति-संख्या लिखनी आवश्यक है।

(६) किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह जितनी पूर्ति-संख्यायें भेजनी चाहे, भेजे। किन्तु प्रत्येक वर्गपूर्ति सरस्वती-पत्रिका के ही छपे हुए फ़ार्म पर होनी चाहिए। इस प्रतियोगिता में एक व्यक्ति को केवल एक ही इनाम मिल सकता है। वर्गपूर्ति की फ़ीस किसी भी दशा में नहीं लौटाई जायगी। इंडियन प्रेस के कर्मचारी इसमें भाग नहीं ले सकते।

(७) जो वर्ग-पूर्ति २४ मई तक नहीं पहुँचेगी, जाँच में नहीं शामिल की जायगी। स्थानीय पूर्तियाँ २४ ता० को पाँच बजे तक बक्स में पड़ जानी चाहिए और दूर के स्थानों (अर्थात् जहाँ से इलाहाबाद डाकगाड़ी से चिट्ठी पहुँचने में २४ घंटे या अधिक लगता है) से भेजनेवालों की पूर्तियाँ २ दिन बाद तक ली जायँगी। वर्ग-निर्माता का निर्णय सब प्रकार से और प्रत्येक दशा में मान्य होगा। शुद्ध वर्ग-पूर्ति की प्रतिलिपि सरस्वती पत्रिका के अगले अङ्क में प्रकाशित होगी, जिससे पूर्ति करनेवाले सज्जन अपनी अपनी वर्ग-पूर्ति की शुद्धता अशुद्धता की जाँच कर सकें।

(८) इस वर्ग के बनाने में 'संक्षिप्त हिन्दी-शब्दसागर' और 'बाल-शब्दसागर' से सहायता ली गई है।

अङ्क-परिचय

बायें से दाहिने

१—जगत के मालिक। ५—ठीक।
८—कठिनाइयाँ पड़ने पर कच्चे दिल के मनुष्य...... हो जाते हैं।
९—इसके मुख पर एक विशेष चमक रहती है।
११—अंगीकार।
१६—जिनकी मानसिक शक्तियाँ तीव्र होती हैं, वे बिना अभ्यास ही यह ठीक करते हैं।
१८—हाथ।
१९—शहरों में कच्चा दूध प्राय: ऐसा ही मिलता है।
२०—यहाँ धाक उलट गया है।
२१—किसी अजनबी मनुष्य का रहन-सहन सबसे पहले इसी से मालूम पड़ता है।
२२—इसकी दशा या अवस्था में परिवर्तन नहीं होता।
२३—यदि शहर न होता, तो यह भी दिखलाई न पड़ता।
२४—तराज़ू। २५—सब्ज़।
२६—यह काम तोपों के द्वारा होता है।
२७—ऐसा मनुष्य यदि सर्वप्रिय होता है, तो बहुत समय के बाद। २९—अनुचित।
३०—यदि सर्दी मामूली हो, तो इसमें मालूम नहीं पड़ती।
३१—कमरे की दीवार पर प्राय: कील के सहारे लटकती हुई देखी गई है।

ऊपर से नीचे

१—किसानों के किसी किसी कच्चे कुएँ की......ऐसी नीची और ढालू होती है, कि पास से निकलने वालों को कुएँ में फिसल जाने का भय रहता है।
२—कोई कोई बहुत सुरीला होता है।
३—ग़रीबी। ४—गुप्तभेद।
५—इसका नाम दूर दूर तक प्रसिद्ध हो जाता है।
६—तसवीर बनाना। ७—उस प्रकार का।
१०—राज-महल में बढ़िया से बढ़िया का पाया जाना एक साधारण बात है।
१२—प्राय: साहसी और परिश्रमी ही इससे आनन्द उठाते हैं।
१३—इस पर चलने से कठिनाइयाँ उठानी ही पड़ेंगी।
१४—वे माता-पिता बड़े ही कट्टर हैं, जो लड़कों की निरपराध......को भी बुरा समझते हैं।
१५—थके हुए घोड़े को इससे आराम पहुँचता है।
१७—दुखियों का काम प्राय: इसके बिना नहीं चलता।
१९—बेल का फिर से हरा होना।
२०—दिवाली का बना हुआ शुभ समझा जाता है।
२१—शास्त्रों से प्रकट है, कि सिद्धि प्राय: इसी के द्वारा मिली है। २२—कंडों का ढेर।
२७—तुच्छ होने पर भी धनी एक समय इसको अपने महल में स्थान देते हैं। २८—लगातार वर्षा।

नोट—रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रा-रहित और पूर्ण हैं।

(...की) यादगार के लिए वर्ग १० की पूर्तियों की नकल यहाँ पर कर लीजिए। और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

वर्ग नं० ९ की शुद्ध पूर्ति

वर्ग नम्बर ९ की शुद्ध पूर्ति जो बंद लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दी गई थी, यहाँ दी जा रही है। पारितोषिक जीतनेवालों का नाम हम अन्यत्र प्रकाशित कर रहे हैं।

१ मं	न	२ मो	ह	३ न		४ अ	५ नु	रा	६ ध
न		ह		७ म	धु	क	र		म
८ का	९ र	क		स्का		१० ल	च	११ ना	क
	द		१२ धे	र	म		अ	ट	
१३ अ	न	य			१४ ध	१५ रा		१६ क	१७ पि
ट			१८ ल	१९ ना		२० गि	र		ल
२१ क	२२ ठि	न		२३ र	ज	नी			ना
न	ठ		२४ ब	द			२५ बा	२६ ट	
	२७ क	२८ ह	ना		२९ द	३० म		३१ घ	न

वर्ग नं० १० फ़ीस ।।)

१ ज	२ ग	३ दी	स्व	४ र		५	यो	६ चि	७
ग				८	ता				
		९ ता	१०	स		११ स्वी	१२ का		
	१३		ल		१४			ना	
१५	प		का		१६ र		ना		१७
१८ ह				१९	नी	ला		२०	धा
ला		२१ व		न			२२ अ		र
२३ ना				२४			२५	रा	
		२६ दा		ना		२७	ग		२८
२९	ली				३० खे			३१	डी

(रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रा-रहित और पूर्ण हैं)
मैनेजर का निर्णय मुझे हर प्रकार स्वीकृत होगा। पूर्ति नं० ....
पूरा नाम ....
पता ....

निर्दिष्ट लकीर पर से काटिए

जाँच का फ़ार्म

वर्ग नं० ९ की शुद्ध पूर्ति और पारितोषिक पानेवालों के नाम अन्यत्र प्रकाशित किये गये हैं। यदि आपको यह संदेह हो कि आप भी इनाम पानेवालों में हैं, पर आपका नाम नहीं छपा है तो १) फ़ीस के साथ निम्न फ़ार्म की ख़ानापुरी करके १५ मई तक भेजें। आपकी पूर्ति की हम फिर से जाँच करेंगे। यदि आपकी पूर्ति आपकी सूचना के अनुसार ठीक निकली तो पुरस्कारों में से जो आपकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बाँटा जायगा और आपकी फ़ीस लौटा दी जायगी। पर यदि ठीक न निकली तो फ़ीस नहीं लौटाई जायगी। जिनका नाम छप चुका है उन्हें इस फ़ार्म के भेजने की ज़रूरत नहीं है।

वर्ग नं० ९ (जाँच का फ़ार्म)

मैंने सरस्वती में छपे वर्ग नं० ९ के आपके उत्तर से अपना उत्तर मिलाया। मेरी पूर्ति

नं०........में { कोई अशुद्धि नहीं है। / एक अशुद्धि है। / दो अशुद्धियाँ हैं। / ३, ४, ५ हैं। }

मेरी पूर्ति पर जो पारितोषिक मिला हो उसे तुरन्त भेजिए। मैं १) जाँच की फ़ीस भेज रहा हूँ।

हस्ताक्षर ____________

पता ____________

निर्दिष्ट लकीर पर से काटिए

इसे काट कर लिफ़ाफ़े पर चिपका दीजिए

मैनेजर वर्ग नं० १०
इंडियन प्रेस, लि०,
इलाहाबाद

प्रतियोगियों की शंकायें और बधाइयाँ

शुद्ध वर्गपूर्ति प्रकाशित होने पर प्रतियोगियों को अपनी भूल का पता चल जाता है। पर कुछ ऐसे भी लोग हैं जो अपनी दलील को छोड़ना नहीं चाहते और अपनी ही पूर्ति को ठीक समझते हैं। इस तरह के एक पत्र का एक आवश्यक अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

(१) 'पामर' क्यों 'पातर' क्यों नहीं ?

पिछले मास के वर्ग में नं० २५ बायें से दाहने आपने 'पामर' शब्द निर्दिष्ट किया है और इसका संकेत था—"इसका उद्देश्य ही नीच है"। किन्तु 'पामर' का उद्देश्य ही नीच नहीं होता, 'पामर' तो स्वयं नीच का पर्यायवाची शब्द है और यदि इसकी जगह 'पातर' शब्द जो वेश्या के अर्थ का है, होता तो विशेष शुद्ध व वैज्ञानिक होता। और उसका उद्देश्य भी नीच होता है, यह अर्थ इसमें फिट होता है। आशा है, आप मेरे इस पत्र को छाप देंगे ताकि अन्य व्यक्ति भी इस पर अपनी सम्मति दें।

मिश्रीलाल शर्म्मा c/o डा० पृथ्वीनाथ चतुर्वेदी
मदनमोहन फ़ार्मेसी, धनकुटी, कानपुर

नोट—वर्गनिर्माता का कहना है कि "पामर" शब्द ही ठीक है। पर वे चाहते हैं कि इसका उत्तर कोई प्रतियोगी ही जिसने इस शब्द को अपनी पूर्ति में भरा हो, दे तो अच्छा होगा, क्योंकि पत्रलेखक महोदय भी यही चाहते हैं। उत्तर हमारे पास १५ मई तक आ जाना चाहिए। —सम्पादक

(२) किस भाषा के शब्द हैं ?

श्रीमान् जी, आपने जो वर्ग नं० ७ की शुद्ध पूर्ति अपने मार्च सन् १९३७ के अंक में प्रकाशित की है उसमें कुछ शब्द ऐसे दिखाई देते हैं जो न तो प्रचलित हैं और न किसी कोष में हैं और न उनका कोई अर्थ समझ में आता है—जैसे (१) नं० १० (ऊपर से नीचे)—'नगज' ? (२) नं० ३ (बायें से दाहने)—'साकर' ? (३) नं० २४ (ऊपर से नीचे)—'बड़हन' ? जो अर्थ इन नम्बरों का दिया है उनसे 'नगर' 'सागर' 'बड़हल'—उत्तम और सार्थक शब्द बनते हैं। तब क्या आप यह बतलाने की कृपा करेंगे कि आपके लिखे 'नगज', 'साकर' और 'बड़हन' किस भाषा के शब्द हैं—और कहाँ ज़्यादा बोले जाते हैं और इनका क्या अर्थ है ?

सौ० सरस्वतीदेवी शर्मा
—श्रीसरस्वती महिला पुस्तकालय जेनरलगंज, मथुरा

आशा है, इस पत्र में की गई शंकाओं का भी उत्तर वे प्रतियोगी देंगे जिन्होंने संकेतों को ठीक ठीक समझा है। —सम्पादक

(३) तीन वार में प्रथम पुरस्कार जीत लिया

आपकी वर्ग-पूर्तियों में मेरा यह तृतीय प्रयत्न था। प्रथम प्रयत्न में मुझे सन्तोष ही मात्र करना पड़ा। द्वितीय प्रयत्न में १) का प्रवेश शुल्क-पत्र प्राप्त हुआ। इससे मेरा उत्साह बढ़ा। अब इस तृतीय प्रयत्न में—वर्ग नं० ५ की पूर्ति में—मुझे प्रथम पुरस्कार पाने का अवसर मिला है।

इन पहेलियों की पूर्ति में मन इतना व्यस्त हो जाता है कि पूर्तिकार इसकी पूर्ति के समय दुनिया के अन्य व्यवहार भूल-सा जाता है।

मेरे नाम से वर्ग नम्बर ५ की पूर्ति में प्रथम पुरस्कार की घोषणा सुनकर यहाँ के अनेक व्यक्ति उत्साहित हुए हैं, फलस्वरूप उन्होंने अग्रिम वर्ग नं० ६ की पूर्तियाँ आपके पास भेजी भी हैं।

सुन्दरीदेवी c/o पण्डित रामचन्द्र जी
साहित्याचार्य (गोल्ड मेडलिस्ट) मीठापुर, पटना

(४) बधाई का एक और पत्र

चि० सुधीरकुमार तथा चि० सुकुमारी बाला ने जो वर्ग नं० ५ की पूर्तियाँ भेजी थीं उनका इनाम ठीक समय पर मिल गया। धन्यवाद।

अब बहुत-से लोगों ने आपकी नक़ल करनी शुरू की है, किन्तु मेरा विश्वास है कि वे आप को नहीं पहुँच सकते—मूल्य में कमी तथा इस पहेली के कारण 'सरस्वती' की लोकप्रियता इतनी अधिक बढ़ गई है कि देखकर आश्चर्य होता है।

सुशीलकुमारी मिश्रा c/o एच० एस० पाठक, डिप्टी
कलक्टर, बिजनौर।

५००) में दो पारितोषिक

इनमें से एक आप कैसे प्राप्त कर सकते हैं यह जानने के लिए पृष्ठ ४९७ पर दिये गये नियमों को ध्यान से पढ़ लीजिए। आप के लिए और दो कूपन यहाँ दिये जा रहे हैं।

वर्ग नं० १० फ़ीस ।)

1 ज	2 ग	3 दी	श्व	4 र	■	5	यो	6 चि	7
ग			■	8	ता		■		
	■	9 ता	10	स	■	11 स्वी	12 का		■
■	13	■	ल	■	14	■		ना	■
15	प	■	का	■	16 र		ना	■	17
18 ह		■	■	19	नी	ला	■	20	धा
ला	■	21 व		न	■	■	22 अ		र
23 ना			■	24		■	25	रा	■
■	■	26 दा		ना	■	27	रा	■	28
29	ली		■	■	30 खे		■	31	ड़ी

(रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रा-रहित और पूर्ण हैं)
मैनेजर का निर्णय मुझे हर प्रकार स्वीकृत होगा।
पूर्ति नं० ....
पूरा नाम ....
पता ....

बिन्दीदार लकीर पर से काटिए

वर्ग नं० १० फ़ीस ।)

1 ज	2 ग	3 दी	श्व	4 र	■	5	यो	6 चि	7
ग			■	8	ता		■		
	■	9 ता	10	स	■	11 स्वी	12 का		■
■	13	■	ल	■	14	■		ना	■
15	प	■	का	■	16 र		ना	■	17
18 ह		■	■	19	नी	ला	■	20	धा
ला	■	21 व		न	■	■	22 अ		र
23 ना			■	24		■	25	रा	■
■	■	26 दा		ना	■	27	रा	■	28
29	ली		■	■	30 खे		■	31	ड़ी

(रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रा-रहित और पूर्ण हैं)
मैनेजर का निर्णय मुझे हर प्रकार स्वीकृत होगा।
पूर्ति नं० ....
पूरा नाम ....
पता ....

बिन्दीदार लकीर पर से काटिए

अपनी याददाश्त के लिए वर्ग १० की पूर्तियों की नक़ल यहाँ कर लीजिए, और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

आवश्यक सूचनायें

(१) वर्ग नं० ८ के जाँच के फ़ार्मों पर विचार होने से श्रीमती मनोरमादेवी, ८२ बैरहना, इलाहाबाद, का भी तृतीय पुरस्कार पाने का अधिकार सिद्ध हुआ, अतः वह पुरस्कार फिर से बजाय १४ के १५ व्यक्तियों में बाँटा गया और प्रत्येक को ५॥=) मिला।

(२) स्थानीय पूर्तियाँ 'सरस्वती-प्रतियोगिता-बक्स' में जो कार्यालय के सामने रक्खा गया है, दिन में दस और पाँच के बीच में डाली जा सकती हैं।

(३) वर्ग नम्बर १० का नतीजा जो बन्द लिफ़ाफ़े में मुहर लगा कर रख दिया गया है, ता० २७ मई सन् १९३७ को सरस्वती-सम्पादकीय विभाग में ११ बजे दिन में सर्वसाधारण के सामने खोला जायगा। उस समय जो सज्जन चाहें स्वयं उपस्थित होकर उसे देख सकते हैं।

(४) नियमों में हमने स्पष्ट कर दिया है कि प्रवेश-शुल्क मनिआर्डर द्वारा या हमारे कार्य्यालय से ख़रीदे गये प्रवेश-शुल्क-पत्रों के रूप में ही आना चाहिए; फिर भी कुछ लोग डाक के टिकटों के रूप में प्रवेश-शुल्क भेज देते हैं। यहाँ हम एक बार फिर स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि इस प्रकार टिकटों के साथ आई हुई पूर्तियाँ अनियमित समझी जाती हैं और इस प्रकार आये हुए टिकटों के भी हम ज़िम्मेदार नहीं होंगे।
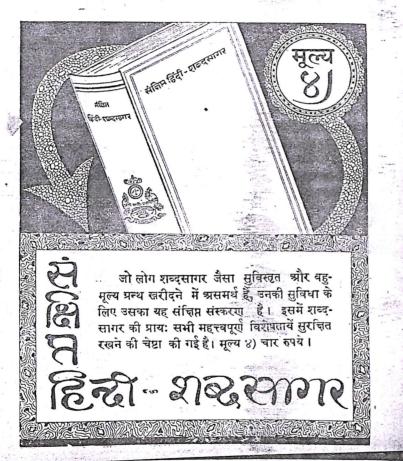
हुक्का या सिगरेट पीने से पीनेवाले का ही स्वास्थ्य ख़राब हो सो बात नहीं है। इसका दुष्परिणाम उसके पड़ोसियों को भी भुगतना पड़ता है। जिन मज़दूरों या किसानों को चिलम पीने का शौक़ होता है उनमें कितने ही अपने पड़ोसियों की झोपड़ियाँ फूँक देने का श्रेय प्राप्त करते हैं। रेल की यात्रा जिन्हें थोड़ी-बहुत भी करनी पड़ी है वे जानते हैं कि चिलम पीनेवाले रेल के डिब्बों के अन्दर चिथड़े आदि जलाकर किस प्रकार दुर्गन्धि फैलाते हैं और मुसाफ़िरों को परेशान करते हैं। ऐसे लोग किस किस प्रकार से हानि पहुँचा सकते हैं, इसकी गिनती नहीं है। अभी हाल में इलाहाबाद-यूनिवर्सिटी के सिगरेट के शौक़ीन एक विद्यार्थी ने अपने एक साथी को काना बना दिया है। ये महाशय लापरवाही से मित्रों के साथ बैठे सिगरेट पी रहे थे। इत्तिफ़ाक से इनके सिगरेट की जलती हुई नोक इनके एक मित्र की आँख में लग गई। उससे उस बेचारे की पुतली जल गई और वह लखनऊ के मेडिकल कालेज में इलाज के लिए भेजा गया। एम० एस-सी० की परीक्षा में वह बैठनेवाला था, जो अब उसके लिए सम्भव नहीं रहा।

× × ×

संयुक्त-प्रान्त में कांग्रेस के मंत्रिपद अस्वीकार कर देने से नवाब छतारी ने जी-हुज़ूरों का मंत्रिमंडल बनाया है। उस दिन समाचार-पत्रों में हमने पढ़ा कि प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा की बैठक तब बुलाई जायगी जब यह मंत्रिमंडल अपना कार्य-क्रम तैयार कर लेगा। हमारा प्रस्ताव है कि यदि यह मंत्रिमंडल सब काम छोड़कर सिर्फ़ सिगरेट-पान को नियमित और नियन्त्रित करने का बीड़ा उठा ले तो बहुत जल्द लोकप्रिय हो जाय। स्कूलों में सिगरेट पीनेवाले लड़के एक तरफ़ और न पीनेवाले दूसरी तरफ़ बैठाले जायँ, रेलों में जैसे ज़नाने और मर्दाने डिब्बे रहते हैं, वैसे ही धूम्र-पानवाले और अ-धूम्र-पानवाले डिब्बे लगाये जायँ, शहरों में जैसे इक्का, ताँगा, मोटर आदि खड़ा करने के अड्डे रहते हैं, वैसे ही धूम्र-पान के अड्डे बनाये जायँ। उन जगहों से अन्यत्र कोई सिगरेट आदि न पीने पावे और वहाँ लिखा रहे—ख़तरा! धूम्र-पान का अड्डा! यदि नवाब छतारी की मिनिस्ट्री कम से कम इतना भी कर दे तो समझेंगे कि वह बहुत सफल रही।

× × ×

पञ्जाब में कांग्रेसी बहुमत का भय नहीं है। कदाचित् इसीलिए वहाँ की व्यवस्थापिका सभा जल्द बुलाई गई है। पहले दिन जब सदस्य राज-भक्ति की शपथ ले रहे थे, एक विचित्र घटना हुई। एक बुर्क़ापोश सदस्य ने सभापति से शिष्टाचार के अनुसार हाथ मिलाने से इनकार कर दिया और कहा—"मैं मुसलमान स्त्री हूँ। इसलिए किसी अन्य मर्द से हाथ नहीं मिलाऊँगी।" यह तो ठीक है, पर बिना मुँह देखे लोग यह कैसे समझेंगे कि ये वही सदस्या हैं जो बाक़ायदे चुनी गई हैं। पता नहीं, ये महाशया वोट माँगने कैसे गई थीं और वोटरों ने बिना मुँह देखे इन्हें वोट कैसे दे दिया। एक पंजाबी पत्र का कहना है कि इस्लामी आदेश के अनुसार स्त्री की आवाज़ भी पर-पुरुष के कानों में न पड़नी चाहिए। पता नहीं, इस आदेश का पालन ये देवी कैसे करेंगी। कुछ लोगों का अनुमान है कि संयुक्त-प्रान्तीय कौंसिल की जब बैठक होगी तब उसमें भी दो-एक मियाने पहुँचेंगे। देखना है कि उन पर कैसी बीतती है।

× × ×

उस दिन लश्कर (ग्वालियर) में एक ब्राह्मण स्त्री अपनी ९ वर्षीया कन्या के साथ मकान की छत से पृथ्वी पर कूद पड़ी और मर गई। कारण यह बताया जाता है कि उसने एक वैश्य को अपना पति बनाने की भूल की थी। इत्तिफ़ाक़ की बात कि उस बेचारे वैश्य का इन्तक़ाल हो गया। उसकी इस ब्राह्मण-स्त्री ने अपने पड़ोसियों से बहुतेरा कहा कि वे उसके पति की लाश को श्मशान पहुँचा दें। पर उसे हाथ कौन लगाता? उसने जाति के बाहर शादी की थी! सवेरे दस बजे से शाम को साढ़े

इँग्लेंड दोनों जगह मान है। उनका कहना है कि बहुमत होते हुए कांग्रेस ने आश्वासन व्यर्थ माँगा। और जब आश्वासन न मिलने पर उसने मंत्रि-पद नहीं स्वीकार किया तब गवर्नरों ने जो किया उनके लिए वही उचित था। अल्पसंख्यकों के मंत्रिमंडल वे बना सकते थे। ऐसे मंत्रिमंडल बन भी चुके हैं। उनके वक्तव्य के कुछ अंश इस प्रकार हैं—

मुझे इस बात में सन्देह नहीं है कि महात्मा गांधी ने जो युक्ति निकाली थी वह सचाई और ईमानदारी से प्रेरित थी। किन्तु सवाल तो यह है कि क्या उनका प्रस्ताव विधान के अनुकूल था या प्रतिकूल। इस सम्बन्ध में मैं यही कह सकता हूँ कि गवर्नरों ने जो कुछ किया है उसके सिवा उनके सामने और कोई रास्ता नहीं था। सब प्रान्तों के गवर्नरों ने एक-सा ही जवाब दिया है इससे यह तर्क करना कि उच्च अधिकारियों का आदेश पाकर ही उन्होंने अपनी नीति अख़्तियार की है, अतः प्रान्तीय विधान एक मज़ाक है—द्वेष और पक्षपात से ख़ाली नहीं है। अगर सबने एक-सा ही जवाब दिया है या जवाब

[सर तेजबहादुर सप्रू]

देने को उन्हें आदेश किया गया है तो इसका सबब यह है कि इसके सिवा और कोई जवाब ही नहीं था।

जहाँ तक राजनैतिक पहलू का सम्बन्ध है, प्रारम्भ अच्छा नहीं हुआ है। शत्रुता और तनातनी का वातावरण उत्पन्न हो गया है। एक ओर यह बात स्पष्ट है कि कुछ प्रान्तों में कांग्रेस ने निर्वाचक-समुदाय का विश्वास इतनी

जा सकती; और दूसरी ओर यह बात है कि इतने बड़े बहुमत में होकर भी कांग्रेसी लोग गवर्नरों से आश्वासन माँगने के लिए उत्सुक हुए। मंत्रियों के पीछे जो भारी बहुमत था उसकी उपेक्षा कोई गवर्नर नहीं कर सकता था। अगर वह ऐसा करता भी तो उसकी दवा कांग्रेसी मंत्रियों के हाथ में थी। कांग्रेस ने आश्वासन की जो माँग पेश की है उसके कारण उस पर यह दोष लगाया जा सकता है कि उसने ज़िम्मेदारी को ग्रहण करने में आना-कानी की है और चुनाव की सरगर्मी में जो वादे वोटरों से किये थे उनको पूर्ण रूप से पूरा करने में वह असमर्थ है। अगर यह कहा जाय कि दायित्व बड़ा है और अधिकार सीमित है, तो भी मंत्रिपद के दायित्व को स्वीकार करने से इनकार करना न्यायसंगत नहीं कहा जा सकता। चुनाव की सफलता के बाद मंत्रिपद तो स्वाभाविक रूप से ग्रहण कर लेना था।

चूँकि बादशाह की सरकार जारी रहना ज़रूरी है, इसलिए गवर्नर इस बात के लिए बाध्य हुए हैं कि अल्पसंख्यक दलों या समूहों को मत्रिमंडल बनाने के लिए बुलावें। अल्पसंख्यकों का शासन गत १०० वर्षों के अन्दर कई बार कार्यान्वित हो चुका है। एक लेखक ने लिखा है कि १८३६ से १८४१ तक, १८४६ से १८५२ तक, १८५८ से १८५९ तक, १८६६ से १८६८ तक, १८८५ से १८८६ तक, १८८६ से १८९२ तक, १९१० से १९१५ तक, १९२४ में और फिर १९२६ से १९३१ तक अल्पसंख्यकों का शासन रहा है। किन्तु सर्वोत्तम परिस्थितियों में भी अल्पसंख्यकों के शासन में एकता, साहस तथा आवश्यक समर्थन का अभाव रहता है। अल्पसंख्यकों का शासन क़ानूनी और वैधानिक दृष्टि से उसी प्रकार शासन कहा जा सकता है जैसा कि बहुमत का शासन है। उसमें त्रुटियाँ अवश्य हैं, उदाहरणार्थ वह कोई स्थायी नीति नहीं अख़्तियार कर सकता। अतः भारत के ६ प्रान्तों में अल्पसंख्यकों के जो मंत्रिमंडल बनने जा रहे हैं वे बहुत थोड़े ही दिनों तक चल सकेंगे, अधिक दिनों तक क़ायम न रह सकेंगे। इस वास्ते ऐसे मंत्रिमंडलों से किसी को प्रसन्नता नहीं हो सकती। आवश्यकता है दृढ़ और स्थायी मंत्रिमंडल की। जब ये मंत्रिमंडल अपदस्थ कर दिये जायँगे, जिसका होना निकट भविष्य में अनिवार्य है तब

क्या होगा? एसेम्बली को भंग करने का परिणाम यह होगा कि प्रत्येक प्रान्त में कांग्रेस की और भी अधिक सफलता होगी। दूसरा रास्ता यह होगा कि गवर्नर शासन के सब अधिकारों को अपने हाथ में ले लेंगे। किन्तु ऐसा करना शायद गवर्नरों को भी अच्छा न मालूम होगा।

कांग्रेसी नेताओं को शान्त चित्त से सम्पूर्ण स्थिति पर विचार करना चाहिए। समस्या को सुलझाने के लिए उन्हें तथा वायसराय और गवर्नरों को कुछ समझौता करना चाहिए। संरक्षणों के औचित्य पर मैं कुछ नहीं कहूँगा उनमें से कुछ ऐसे हैं जिनका मैं विरोध कर चुका हूँ। किन्तु मुझे यह आशा नहीं है कि रोज़मर्रा के शासन में उनका उपयोग किया जायगा। अगर किसी गवर्नर में इतनी नासमझी हो कि मंत्रिमण्डल के पीछे जो बहुमत का बल है उसकी उपेक्षा करे तो एक अव्वल दर्जे की वैधानिक समस्या उत्पन्न हो जायगी। उस समय मंत्रिमंडल का इस्तीफ़ा देना न्याय-संगत होगा और बहुमत के द्वारा शासन चलाना गवर्नर के लिए कठिन हो जायगा। लोकमत ऐसे मंत्रिमंडल के पक्ष में होगा। गवर्नर को किसी प्रकार का नैतिक या राजनैतिक समर्थन न प्राप्त होगा। महात्मा गांधी पूछते हैं कि क्या सर सैमुएल होर तथा अन्य मन्त्रियों को मैंने यह कहते नहीं सुना कि गवर्नर साधारणतः हस्तक्षेप करने के अपने विस्तृत अधिकारों का उपयोग नहीं करेंगे।

अगर कांग्रेस के प्रस्ताव में और कुछ नहीं माँगा गया है तो सम्मान के साथ यह पूछा जा सकता है कि आश्वासनों के पीछे वह क्यों पड़ी है। अपने बहुमत पर क्यों नहीं निर्भर करते जो आपकी अपनी शक्ति है। जब निर्वाचक समुदाय का समर्थन प्राप्त है तब गवर्नर के हस्तक्षेप से भय खाने की क्या ज़रूरत है? मैं महात्मा गांधी के साथ अन्याय नहीं करना चाहता। किन्तु उनके वक्तव्य के एक भाग को दूसरे भाग से संगत नहीं पाता। उस वक्तव्य में एक अच्छी बात यह है कि उसके अनुसार कांग्रेस अब भी मंत्रि-पद ग्रहण करने के सम्बन्ध में अपनी स्थिति पर पुनर्विचार कर सकती है। उसमें इसके लिए मार्ग अभी खुला है। जब मंत्रिपद ग्रहण कर लेंगे तब उनमें और विरोधी पक्ष में संपर्क हो जायगा और तभी पार्लियामेंटरी शासन की विशेषता होगी।

श्री राजगोपालाचार्य का वक्तव्य

श्री राजगोपालाचार्य मदरास के कांग्रेसदल के प्रधान नेता हैं और उनकी सूझ, प्रतिभा और विवेक-बुद्धि का बड़े बड़े विद्वान् लोग लोहा मानते हैं। उन्होंने कई वक्तव्य प्रकाशित कराये हैं और प्रत्येक में उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया है कि यदि इच्छा होती तो सरकार की ओर से आश्वासन दिया जा सकता था। अपने एक वक्तव्य में वे कहते हैं—

सर तेजबहादुर सप्रू के वक्तव्य के दो भाग किये जा सकते हैं—एक तो उन्होंने कठपुतले की तरह बने हुए मंत्रिमंडलों की पैरवी की है, और दूसरे गवर्नरों से जो आश्वासन माँगा गया था उस पर उन्होंने टीका-टिप्पणी की है।

उन्होंने ब्रिटेन के उन अल्पसंख्यक दल के मंत्रि-मंडलों की सूची पेश की है जिनके द्वारा वहाँ भिन्न भिन्न समयों पर शासन हुए हैं, पर ब्रिटेन में उन मंत्रि-मंडलों

[श्री राजगोपालाचार्य]

ने जिन परिस्थितियों में शासन किया था, वे यहाँ की उस परिस्थिति से बिलकुल भिन्न हैं जिसमें यहाँ के गवर्नरों ने मंत्रि-मंडल बनाये हैं, जिनकी सार्वजनिक रूप से निन्दा हो रही है। सर तेजबहादुर ने ब्रिटिश विधान की वर्तमान कार्य-पद्धति की उपेक्षा की है, जिसका यह रूप है कि आम चुनाव के बाद पराजित दल के [illegible] देते हैं, और वे पुराने सम का शासन होगा, क़लम का या पार्लियामेंट की बैठक हो ज। सब तरह की सद्भावना रखते में नये विधान के अनुसार का यही अर्थ सूझता है, क्योंकि हो जाता है, इसलिए [illegible]चाई पर स[illegible] आने विश्वास है और

है। इँग्लेंड में यह बात बहुत ही अनुचित समझी जायगी और वहाँ ऐसा होना असम्भव है कि उस दल के नेता को मन्त्रि-मंडल बनाने के लिए बुलाया जाय जिसके विरुद्ध निर्वाचकों (वोटरों) ने निश्चित रूप से अपना निर्णय प्रकट किया है। पर यहाँ भारत में जिन प्रान्तों में कांग्रेस को बहुमत प्राप्त हुआ है, वहाँ ऐसा ही हो रहा है। सर तेजबहादुर सप्रू ने अपने वक्तव्य में जेनिंग की किताब का हवाला दिया है। वह यहाँ बिलकुल नहीं लागू होता।" यहाँ के प्रान्तों में काम चलाने के लिए जो मंत्रि-मंडल बनाये गये हैं उनसे उनका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है इसलिए भारतीय प्रान्तों में जो मंत्रि-मंडल बने हैं उनका औचित्य मौजूदा या पुराने ब्रिटिश कार्यों से सिद्ध नहीं हो सकता। गवर्नमेंट आफ़ इंडिया एक्ट के शब्दों की आड़ में इन विचित्र असम्भव कार्यों की पुष्टि की जा सकती है। गवर्नमेंट आफ़ इंडिया एक्ट के भाव का आशय उसी सिद्धान्त के अनुसार ब[illegible] जा सकता है जिस पर वह एक्ट निर्भर है और केवल शब्द-कोष देखकर उस एक्ट का मतलब नहीं समझाया जा सकता।

सर तेजबहादुर सप्रू के वक्तव्य के दूसरे भाग पर अब विचार किया जाता है, जिसमें आप लिखते हैं कि क़ानूनी रूप से गवर्नरों के सामने हस्तक्षेप न करने का आश्वासन देने की माँग नहीं पेश की जा सकती। सर सप्रू कहते हैं कि क़ानूनी ज़िम्मेदारी के बाहर गवर्नर कुछ नहीं कर सकते। इसका उत्तर यह है कि उनसे ऐसा कराने के लिए कोई नहीं चाहता था। हम सिर्फ़ यही चाहते हैं कि हमें तभी मंत्रिपद स्वीकार करना चाहिए जब गवर्नर यह आश्वासन दे दें कि वे हस्तक्षेप करने के क़ानूनी हक़ों से काम न लेंगे। यदि गवर्नर यह महसूस करें कि किसी मामले में मंत्रि-मंडल ग़लती पर है, और वह इतनी ग़लती पर है कि उन्हें (गवर्नर को) अवश्य हस्तक्षेप करना चाहिए तो ऐसी दशा में उन्हें एसेम्बली भंग कर देनी चाहिए या मन्त्री को निकाल देना चाहिए, यानी [illegible] उन्हें प्रान्तीय शासन अच्छा नहीं हुआ है। शत्रुता [illegible] चाहिए कि हस्त- उत्पन्न हो गया है। एक ओर यह को बदलना है या पुनः प्रान्तों में कांग्रेस ने निर्वाचक-[illegible] करना है। अधिक मात्रा में प्राप्त किया है कि उ[illegible] (स्वायत्त शासन) क़ायम करने की इच्छा होती तो कांग्रेस को आश्वासन देने को एक से अधिक उपाय थे। हम स्वायत्त शासन तब तक कभी नहीं प्राप्त कर सकते जब तक हम उसे कहीं से आरम्भ न करें। सर तेजबहादुर कहते हैं कि रीतियाँ अभ्यास से बड़ी हैं, और इसके बाद वे गर्व के साथ कहते हैं कि अभ्यास का यह मतलब है कि काम किया जाय और काम करने से इनकार न किया जाय। इससे कोई इनकार नहीं करता, और सर तेजबहादुर यह बात कह कर कुछ भी साबित नहीं कर रहे हैं। हम आश्वासन माँगते थे और अब भी माँगते हैं, ताकि हम मंत्रिपद स्वीकार करें और उस आश्वासन के अनुसार काम कर सकें। पर हमने पद-ग्रहण करने से इनकार कर दिया, क्योंकि गवर्नर यह नहीं चाहते कि यह रीति क़ायम हो या इसे शुरू भी किया जाय। गवर्नर चाहते हैं कि मंत्रियों का सदा उनके हस्तक्षेप का भय लगा रहे, और उन्हें यह आशा है कि हम कोई ऐसा काम न करें जिसमें उनका हस्तक्षेप हो। इस तरह से काम करना राजनीति नहीं है, और इससे कोई रीति क़ायम न होगी।

महात्मा गांधी का वक्तव्य

आश्वासन माँगने के सम्बन्ध में कांग्रेस ने दिल्ली में जो प्रस्ताव पास किया था उसके एकमात्र प्रेरक महात्मा गांधी थे। उनका कहना है कि इस सम्बन्ध में उन्होंने क़ानूनी पंडितों से परामर्श कर लिया था और उन्होंने कोई ऐसी कड़ी शर्त नहीं रक्खी थी जिसे गवर्नर लोग विधान के भीतर स्वीकार नहीं कर सकते थे। उन्होंने दुःख के साथ यह कहा है कि अब क़लम या बहुमत का नहीं, तलवार का शासन होगा। वे कहते हैं—

कोई असम्भव शर्त लगाने की मेरी इच्छा नहीं थी। इसके विरुद्ध मैंने ऐसी शर्त लगानी चाही जिसे गवर्नर लोग आसानी से स्वीकार कर सकें। ऐसी शर्त लगाने का कोई इरादा ही नहीं था जिसका मतलब विधान में कुछ भी परिवर्तन कराना हो। कांग्रेसजन अच्छी तरह जानते हैं कि वे ऐसे किसी संशोधन के लिए नहीं कह सकते और न कहते।

कांग्रेस की नीति कोई संशोधन कराना नहीं, [illegible]

विधान का बिलकुल अन्त करना है, जिसे कोई आदमी नहीं पसन्द करता। कांग्रेसजन यह भी जानते थे और जानते हैं कि वे शर्त के साथ पद ग्रहण करके भी उस विधान का अन्त नहीं कर सकते। कांग्रेस की जिस शाखा का विश्वास पद ग्रहण करने में है उसका उद्देश यह था कि ऐसे उपायों-द्वारा जो कांग्रेस के अहिंसात्मक ध्येय से असंगत न हो, ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी जाय जिससे सारा अधिकार जनता के हाथ में चला जाय। उसका उद्देश कांग्रेस का बल बढ़ाने का था, जिसने यह प्रकट कर दिया है कि वह जनता का प्रतिनिधित्व करती है।

मैंने सोचा कि यह उद्देश तब तक सिद्ध नहीं हो सकता जब तक गवर्नरों और कांग्रेस-मन्त्रियों में यह सज्जनोचित क़ौल-क़रार न हो जाय कि गवर्नर लोग तब तक अपने विशेषाधिकारों-द्वारा हस्तक्षेप न करेंगे जब तक मन्त्री उस विधान के अन्दर काम करेंगे। ऐसा न करने से पद-ग्रहण के बाद शीघ्र अड़ंगे लगाये जाने लगते। मैं समझता हूँ कि सचाई की दृष्टि से ऐसा क़ौल-क़रार उचित था। गवर्नरों को अपने विचार से काम करने का अधिकार है। निस्सन्देह उनका ऐसा कह देना विधान के विरुद्ध न होता कि वे मन्त्रियों के वैधानिक कामों के विरुद्ध अपनी इच्छा का प्रयोग नहीं करेंगे। याद रखना चाहिए कि यह क़ौल-क़रार या समझौता उन बहुत-से संरक्षणों को स्पर्श न करता जिन पर गवर्नरों का अधिकार नहीं है। निर्वाचकों का सुविचारित सहारा प्राप्त किये हुए किसी प्रबल दल से यह आशा नहीं की जा सकती कि वह गवर्नरों के मनमाने तौर पर हस्तक्षेप करने की आशंका के रहते हुए अपने को अनिश्चित अवस्था में डाले।

यह प्रश्न दूसरे रूप में भी किया जा सकता है। गवर्नर लोगों को मन्त्रियों के प्रति सौजन्य का बर्ताव रखना चाहिए। मेरी राय में जिन विषयों पर क़ानून से मन्त्रियों को पूरा नियंत्रण दिया गया है और जिनमें हस्तक्षेप करने के लिए गवर्नर क़ानून से बाध्य नहीं हैं उनमें अगर वे हस्तक्षेप करें तो यह स्पष्टतः असौजन्य होगा। एक आत्मसम्मानी मन्त्री जिसे यह याद हो कि उसे अजेय बहुमत का सहारा है, हस्तक्षेप न करने का ऐसा वचन माँगे बिना रह नहीं सकता। क्या मैंने सर सेमुएल होर और दूसरे मंत्रियों को बार बार यह कहते नहीं सुना है कि साधारणतः गवर्नर लोग अपने हस्तक्षेप-सम्बन्धी अत्यधिक अधिकारों का प्रयोग नहीं करेंगे? मैं कहता हूँ कि कांग्रेस के उस प्रस्ताव में इससे अधिक कुछ नहीं माँगा गया था। ब्रिटिश सरकार की ओर से कहा गया है कि यह विधान प्रान्तों को भीतरी स्वतंत्रता देता है। अगर ऐसा है तो गवर्नर लोग नहीं, बल्कि मन्त्री लोग अपनी अवधि तक अपने प्रान्तों के शासन समझदारी से करने के लिए ज़िम्मेदार हैं। ज़िम्मे-
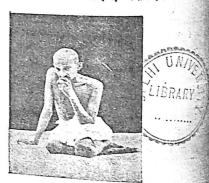
[महात्मा गांधी]

दार और कर्तव्यपरायण मन्त्री अपने नित्य के कर्तव्य में हस्तक्षेप बरदाश्त नहीं कर सकता।

इस लिए मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि ब्रिटिश सरकार ने फिर एक बार की हुई अपनी प्रतिज्ञा तोड़ी है—वादाख़िलाफ़ी की है। कानों को जो वादा सुनाया था उसका अनुभव हृदय को नहीं कराया। इस बात में मुझे सन्देह नहीं है कि वह हम लोगों पर अपनी इच्छा तब तक लाद सकती है और लादेगी जब तक उसका विरोध करने के लिए भीतर से अपना बल काफ़ी बढ़ा नहीं लेते। परन्तु यह कार्यतः प्रान्तीय स्वतन्त्रता नहीं कही जा सकती। सरकार के ही बनाये हुए नियम से कांग्रेस ने बहुमत प्राप्त किया, मगर उसका तिरस्कार करके सरकार ने स्पष्ट शब्दों में उस स्वतन्त्रता का अन्त कर दिया जो विधान-द्वारा देने की दोहाई उनकी ओर से दी गई है।

इसलिए अब तलवार का शासन होगा, क़लम का या निर्विवाद बहुमत का नहीं। सब तरह की सद्भावना रखते हुए भी सरकार के काम का यही अर्थ सूझता है, क्योंकि मुझे अपने सूत्र की सचाई पर सोलह आने विश्वास है और

उसके स्वीकार करने से संकट रोका जा सकता था और उसके फल-स्वरूप अधिकार स्वभावतः नियम और शान्ति-पूर्वक नौकरशाही के हाथ से सबसे बड़े और पूरे लोकतन्त्र के हाथ में सौंपा जा सकता था।

भारत-सचिव लार्ड ज़ेटलेंड का वक्तव्य

भारत-सचिव लार्ड ज़ेटलेंड का कहना है कि महात्मा गांधी ने कदाचित् विधान को पढ़ा ही नहीं या पढ़ा है तो उन्हें हिदायतों का स्मरण ही नहीं रहा। चूँकि भारतवासी महात्मा जी की सभी बातों को सच मान लेते हैं इसलिए उन्होंने ग़लतफ़हमी दूर करने के उद्देश से एक लम्बा वक्तव्य निकाला है। [illegible]का एक आवश्यक अंश यह है—

ऐसी अवस्था में यह उचित है कि ग़लतफ़हमी को दूर करने के लिए मैं इस बात को स्पष्ट कर दूँ कि गवर्नरों के सामने जो माँग उपस्थित की गई थी वह ऐसी माँग

[लार्ड ज़ेटलेंड]

थी जिसे विधान में संशोधन हुए बिना गवर्नर पूरा नहीं कर सकते थे। यह बात एक उदाहरण देकर समझाई जा सकती है। ऐक्ट की दफ़ा २५२ ने गवर्नरों पर कुछ ख़ास ज़िम्मेदारियाँ लाद दी हैं। अल्पसंख्यकों के वैध हितों की रक्षा करना उनमें से एक ज़िम्मेदारी है। जहाँ तक इस प्रकार की किसी ज़िम्मेदारी का सवाल उठता है, गवर्नर को अपनी व्यक्तिगत निर्णय-बुद्धि से यह निश्चय करना चाहिए कि क्या काररवाई की जाय। मान लीजिए कि किसी ऐसे प्रान्त में जिसमें हिन्दुओं का बहुमत है अथवा मुसलमानों का बहुमत है, मंत्रिमंडल ने एक प्रस्ताव किया कि मुस्लिम स्कूलों अथवा हिन्दू-स्कूलों की संख्या कम कर दी जाय। ऐसा प्रस्ताव करना क़ानून की सीमा के अन्दर होगा, इसे अवैधानिक कार्य नहीं कह सकते। विधान के अन्दर ऐसा करना सम्भव होगा, इसी कारण तो पार्लियामेंट ने संरक्षण की व्यवस्था की और गवर्नरों पर विशेष ज़िम्मेदारियाँ लादी हैं। इस मामले से यह स्पष्ट है कि अल्पसंख्यकों के वैध हितों की रक्षा का सवाल खड़ा होगा और गवर्नर अपनी व्यक्तिगत निर्णय-बुद्धि से काम लेगा। अगर गवर्नर आश्वासन दे देता तो वह इस मामले में गवर्नर अपने दायित्व का निर्वाह नहीं कर सकेगा। इससे यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है कि विधान के अनुसार गवर्नर आश्वासन नहीं दे सकते थे। महात्मा गांधी का यह कथन कि गवर्नर आश्वासन दे सकते थे, ग़लत है।

ऐसे संरक्षणों की आवश्यकता और विस्तार के सम्बन्ध में मतभेद हो सकता है, किन्तु इस बात में सन्देह नहीं किया जा सकता कि भारत की अल्पसंख्यक जातियाँ इन संरक्षणों को बहुत महत्त्वपूर्ण और मूल्यवान् समझती हैं। एक भारतीय पत्र ने लिखा है कि हस्तक्षेप न करने की कांग्रेस की मंशा ठीक वैसी है जैसी कि आग लगानेवाले उपद्रवकारियों की यह माँग कि उनके द्वारा प्रज्वलित की जानेवाली आग के बुझाने के लिए दमकलों का उपयोग न किया जाय।

दुख है कि बहुमतवाले दल ने ६ प्रान्तों में मंत्रिपद ग्रहण करने से इनकार कर दिया है। बंगाल, पंजाब, पश्चिमोत्तर-प्रान्त, सिन्ध तथा आसाम के प्रान्तों में जहाँ कांग्रेस का बहुमत नहीं है, मंत्रिमंडल बन गये हैं और वे अपना कार्य कर रहे हैं। उन प्रान्तों में जहाँ कांग्रेस का बहुमत है अल्पमतवाले मंत्रिमंडल बनाये गये हैं। इन मंत्रियों के साथ हमारी सद्भावना है और हम उनकी

सराहना करते हैं कि इस कठिन काम को उन्होंने अपने हाथ में लिया है। कुछ लोगों का कथन है कि ऐसे मंत्रिमंडलों को नियुक्त करना विधान के विरुद्ध है। किन्तु ब्रिटिश सरकार इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं है। ऐक्ट में प्रान्तीय शासन को चलाने के लिए मंत्रिमंडल की आवश्यकता अनिवार्य कर दी गई है। उसमें लिखा है कि गवर्नर को सलाह व सहायता देने के लिए मंत्रियों की एक परिषद् होगी। और उसमें यह भी लिखा है कि जहाँ तक मंत्रियों को चुनने का सम्बन्ध है, गवर्नर अपने स्वतंत्र इच्छानुसार काम करेगा। एक्ट का आशय यह ज़रूर है कि अगर सम्भव हो तो मंत्रियों का चुनाव बहुमतवाले दल से करना चाहिए, क्योंकि ऐसा न होने से कोई मंत्रिमंडल व्यवस्थापिका में अपने बिलों को नहीं पास कर सकेगा और न ख़र्च की माँगों को स्वीकार करा सकेगा, इसीलिए हिदायतनामे के ७ वें पैरा में लिखा है कि ऐसे मंत्रियों को चुनने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए जो व्यवस्थापिका में बहुमत को अपने पक्ष में रख सकें। किन्तु यह आदेश बहुत सख़्त और अपरिहार्य नहीं है।

अगर बहुमतवाले दल के प्रतिनिधि पद-ग्रहण करना अस्वीकार कर देते हैं तो फिर गवर्नर को इस बात की स्वतन्त्रता है कि वह अन्य व्यक्तियों को मंत्रिमंडल बनाने के लिए निमंत्रित करे, क्योंकि सम्राट् की सरकार का जारी रहना आवश्यक है। अगर ऐसे लोगों ने गवर्नर के निमंत्रण को स्वीकार कर लिया है तो ऐक्ट में ऐसी कोई बात नहीं है जो उनके या गवर्नर के काम को ग़ैर-क़ानूनी कर दे।

यह भी सलाह दी गई है कि वायसराय महात्मा गांधी को बुलावें और पदग्रहण के सम्बन्ध में अपने रुख़ में परिवर्तन करने को उन्हें राज़ी करें, क्योंकि उन्हीं के कहने से कांग्रेस ने यह रुख़ अख़्तियार किया है। मैं नहीं समझता कि ऐसा करने से कुछ लाभ होगा। कांग्रेस के लोगों ने ही पद-ग्रहण करने से इनकार किया है, अतः जब तक वे अपने रुख़ को बदलने के लिए तैयार न होंगे तब तक इस सम्बन्ध में और कुछ कहना फ़ज़ूल है। इसके विपरीत अगर गवर्नरों की वैधानिक स्थिति के सम्बन्ध में ग़लत-फ़हमी होने के कारण ही उन्होंने अपना निर्णय किया है और अगर महात्मा गांधी या कांग्रेस का और कोई प्रतिनिधि वायसराय से भेंट करने की इच्छा प्रकट करे तो वायसराय समझौता करने के लिए उससे मिलने को ख़ुशी से तैयार होंगे।

जहाँ तक भविष्य का सम्बन्ध है वह व्यवस्थापिका सभाओं के रुख़ पर निर्भर करता है। ऐक्ट में लिखा है कि विधान के कार्यान्वित होने की तारीख़ से ६ महीने के अन्दर ही वे सभायें बुलायी जायें। हो सकता है कि अल्पमतवाले मंत्रिमंडलों की नीति को व्यवस्थापिका सभायें स्वीकार कर लें। अगर ऐसा हुआ तो ठीक ही है। अगर व्यवस्थापिकाओं ने उनकी नीति को स्वीकार न किया तो उन्हें अधिकार होगा कि वे निर्धारित रूप से अपनी अस्वीकृति प्रकट करें। फिर बहुमतवाले दल को उत्तरदायित्वपूर्ण शासन की संसार-प्रचलित रीति के अनुसार मंत्रिमंडल बनाने का और मंत्रियों को अपदस्थ करने का अधिकार होगा।

संरक्षित अधिकार विधान का एक अन्तर्गत अंग है। पार्लियामेंट के अतिरिक्त और कोई उसमें परिवर्तन नहीं कर सकता। गवर्नर कांग्रेस को विधान की उन शर्तों से जिनसे और सब दल बँधे हुए हैं, मुक्त नहीं समझ सकते। मैं ख़ुशी के साथ इस बात को जो सर सैमुएल होर तथा दूसरों के द्वारा कही गई है, फिर दुहराता हूँ कि कोई कारण नहीं है कि गवर्नर के विशेषाधिकारों के उपयोग करने की आवश्यकता क्यों उत्पन्न हो। वे अपने विशेषाधिकारों का उपयोग करेंगे या नहीं, यह बात मंत्रियों की नीति और कार्य पर ही निर्भर करेगा। सहयोग और सहानुभूति ही के आधार पर विधान संचालित हो सकेगा

कांग्रेस की विज्ञप्ति

इस सम्बन्ध में भारतीय कांग्रेस-कमिटी के दफ़्तर से भी एक विज्ञप्ति निकली है, जिसका एक महत्त्व-पूर्ण अंश इस प्रकार है—

हमारे मित्र कहते हैं कि कांग्रेस उन थोड़े दिनों में भी किसानों की दशा सुधारने के लिए कुछ न कुछ कर ही सकती। पर कांग्रेस को विश्वास है कि उतना तो छतारी, राव और रेड्डी भी करेंगे। मंत्रिमण्डल बने या न बने, जनता का कुछ भला होगा ही और वह इस कारण कि

उसने कांग्रेसजनों को बड़ी संख्या में व्यवस्थापक-सभाओं में भेजा है।

तब भी कहा जाता है कि कांग्रेस ने अपनी चाल चलने में ग़लती की है। उसने ग़लती की या नहीं, इसे समय ही सिद्ध करेगा। यह ठीक है कि कांग्रेस केवल चालबाज़ियों से होनेवाले लाभ में विश्वास नहीं करती। उसे मालूम है कि वह साम्राज्यवाद जो भारतीयों को पीस कर उनका जीवन रस चूसता जा रहा है, केवल चालबाज़ियों से नहीं हटाया जा सकता। अतः उसके प्रोग्राम में चालबाज़ियाँ गौण स्थान रखती हैं।

इसके सिवा यदि कांग्रेस आधार केवल वैधानिक नीति होती तो वह भी दूसरे दलों की तरह इस मौक़े को न चूकती। व्यवस्थापक-सभाओं का प्रवेश कांग्रेस के कार्यक्रम का एक बहुत छोटा-सा अंग है। उससे जितना लाभ उठाया जा सकता था—अर्थात् जनवर्गतक पहुँचना और उसे जागृत करना—वह चुनाव के समय ही उठाया जा चुका है। जो और कुछ किया जा सकता है उसे कांग्रेस के विरोधी स्वयं ही करेंगे, क्योंकि बहुमतरूपी तलवार उनके सिर पर बराबर लटक रही है। कांग्रेस इससे आगे बढ़ती यदि ह्वाइट-हाल ने अपने गवर्नरों को उस आश्वासन-प्रदान की आज्ञा दी होती जिसकी माँग कांग्रेसवालों ने की थी। यह नहीं हुआ, अतः स्वभावतः कांग्रेसवाले बिना किसी प्रकार की परेशानी के अपने स्थान पर डटे हैं। कांग्रेसजनों के लिए मंत्रित्व ग्रहण करना स्वयमेव कोई लक्ष्य या साध्य नहीं था। कांग्रेस आज भी यह विश्वास करती है कि जनता के हाथों में वास्तविक शक्ति तभी आवेगी जब ज़ोर-ज़बर्दस्ती का मुक़ाबिला किया जायगा। और उसका यह विश्वास तब तक रहेगा जब तक साम्राज्यवाद स्वयं ही दूसरा रास्ता नहीं पकड़ता। वह दूसरा रास्ता पकड़ना चाहता है या नहीं, इसकी परीक्षा के लिए ही भारतीय कांग्रेस कमिटी ने अपने प्रस्ताव में आश्वासन-वाली बात जोड़ दी थी। उसने उसे अस्वीकार कर दिया और साथ साथ बहुमत-द्वारा शासन होने के वैधानिक खेल को भी अस्वीकार कर दिया। उसके लिए अब केवल एक ही चीज़ बच गई है और वह है गांधी जी के शब्दों में 'तलवार का शासन'।

महात्मा जी का दूसरा वक्तव्य

लार्ड ज़ेटलेंड के उत्तर में महात्मा जी ने एक वक्तव्य निकाला है जिसका एक आवश्यक अंश यह है—

मैं समझता हूँ कि ब्रिटिश राजनीतिज्ञों के वक्तव्य न्याय-रहित तथा पक्षपात और ख़ुदमुख़्यारी की भावना से युक्त हैं। इसलिए मैं उनसे कहना चाहता हूँ कि मैंने जो शर्त रक्खी थी उसको गवर्नर लोग पूरा कर सकते थे अथवा नहीं, इस बात पर विचार करने के लिए एक पंचायत बैठाई जाय, जिसमें एक प्रतिनिधि ब्रिटिश सरकार का हो, एक कांग्रेस का और तीसरा उक्त दोनों प्रतिनिधियों का सम्मत व्यक्त हो।

'वर्तमान मन्त्रियों को क़ानूनन मन्त्रि-पद ग्रहण करने का अधिकार है या नहीं', इस विषय पर भी उक्त पंचायत ही विचार करे। पहले भी ऐसी पंचायतें बैठी हैं। यदि ब्रिटिश सरकार मेरे इस प्रस्ताव को स्वीकार कर ले तो मैं कांग्रेस को यही सलाह दूँगा कि वह भी इसके लिए तैयार रहे। मैं चाहता हूँ, सत्य की विजय हो।

भविष्य

इस प्रकार अभी इन वक्तव्यों का अन्त नहीं हुआ है और कांग्रेस और सरकार दोनों अपनी अपनी ज़िद पर क़ायम हैं। दोनों के शुभचिन्तक इस प्रयत्न में हैं कि उनके बीच एक सम्मानजनक समझौता हो जाय और भारत के इतिहास में एक नया पृष्ठ आरम्भ हो। परन्तु तर्कों के कटु-प्रवाह ऐसे दिन को दूर किये हुए हैं और भविष्य कांग्रेस और सरकार के नवीन संघर्ष से व्याप्त जान पड़ता है। ऐसी स्थिति में परिणाम क्या होगा, यह अभी कहा नहीं जा सकता। यह तो समय ही बतायेगा।

सम्पादकीय नोट
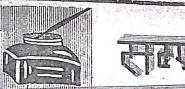
भारत में राजनैतिक संकट

पहली अप्रेल से भारत के ग्यारह प्रान्तों में नये विधान के अनुसार शासन-कार्य प्रचलित किया गया है। इस सिलसिले में जो निर्वाचन हाल में हुआ था उसमें ग्यारह प्रान्तों में से छः प्रान्तों में कांग्रेस की जीत हुई है। परन्तु इन छः कांग्रेसी प्रान्तों में नये विधान के अनुसार व्यवस्थापक सभाओं की बैठक नहीं हो सकी, क्योंकि इन प्रान्तों के गवर्नरों ने कांग्रेस की विशेषाधिकार न प्रयोग करने की माँग को अस्वीकार कर दिया, अतएव कांग्रेस ने भी अपने मंत्रि मंडल बनाने से इनकार कर दिया। फलतः इन प्रान्तों के गवर्नरों ने अल्पमत के मंत्रि-मंडलों का निर्माण कर विधान को कार्यान्वित किया है। परन्तु शेष पाँच प्रान्तों में जहाँ कांग्रेस का बहुमत नहीं हो सका, मुसलमानों के बहुमत के कारण सुदृढ़ मंत्रि मंडल बन गये हैं और विधान के अनुसार शासन-कार्य भी चल डगरा है। तथापि छः प्रधान प्रान्तों में विधान के अनुसार मंत्रि-मंडलों की रचना न हो सकने से यह नहीं कहा जा सकता कि नया शासन-विधान पूर्णरूप से कार्यान्वित हो गया है। क्योंकि विधान वस्तुतः एक-तिहाई भाग में ही जारी हो सका है। कहने को तो वह पाँच प्रान्तों में जारी हुआ है, परन्तु आबादी और रक़बे की दृष्टि से वे पाँच प्रान्त इन छः प्रान्तों के एक-तिहाई अंश ही ठहरते हैं। चाहे जो हो, इस स्थिति ने तो देश में एक प्रकार का राजनैतिक संकट उपस्थित कर दिया है और सो भी बहुत पेचीदा।

इस सम्बन्ध में देश के प्रमुख नेताओं और अन्य लोगों में इस समय जो महत्त्वपूर्ण वाद-विवाद छिड़ा हुआ है उसका मुख्यांश हमने इसी अंक में अन्यत्र संकलित किया है। उससे पाठकों को इस परिस्थिति की गम्भीरता का बहुत कुछ बोध हो जायगा। इसमें सन्देह नहीं है कि इस सम्बन्ध में दोनों ओर से बहुत जल्दी की गई है और इस जल्दी के कारण जो भारी भूल हुई है वह वास्तव में चिन्ताजनक है। जब सरकार और कांग्रेस दोनों ही इस देश की दरिद्र जनता के दुःखों का अवसान करने के लिए कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण होने की घोषणा कर चुके हैं तब उन्हें एक मामूली बात पर अड़कर एक ऐसी भूल नहीं करनी चाहिए थी कि बना-बनाया काम बिगड़ जाय और देश का भविष्य संकट में पड़ जाय। देश की इस परिस्थिति के सूत्रधारों को इस ओर समुचित ध्यान देना चाहिए ताकि इस भूल का परिहार होकर देश में सहयोग की भावना को दृढ़ता प्राप्त हो और जनता सुख और शान्ति की आशा करे। इस समय भारत में ऐसी ही परिस्थिति वाञ्छनीय है।

स्वर्गीय राजा रामपालसिंह

कुर्री-सुदौली के राजा सर रामपालसिंह का गत १ अप्रेल को लखनऊ में ७० वर्ष की उम्र में स्वर्गवास हो गया। पिछले दो वर्ष से आप रोगग्रस्त थे और अन्त में आपका रोग आपका अन्त करके ही विनष्ट हुआ।

राजा रामपालसिंह अवध के एक अति प्राचीन राज्य के अधीश्वर ही नहीं थे, किन्तु इन प्रान्तों के क्या राजनैतिक, क्या सामाजिक और क्या धार्मिक सभी क्षेत्रों में अपना विशिष्ट स्थान रखते थे। आप आजीवन कर्तव्य-क्षेत्र में अटल डटे रहे। न आपने अपने राज्य-प्रबन्ध-सम्बन्धी दायित्व से ही कभी मुँह मोड़ा, न सार्वजनिक जीवन के महत्त्व के कार्यों के करने में ही कभी उदासीनता दिखाई। आपका जीवन कर्मनिष्ठा का जीवन रहा है। ऐसी दशा में यदि इन प्रान्तों के क्षत्रियों ने आपको 'राजर्षि' की पदवी से विभूषित किया था तो यह उनके लिए सर्वथा उचित ही था। स्वर्गीय राजा साहब अपनी उदात्त भावना के कारण अपने प्रजाजनों के प्रेमभाजन थे [illegible] उन्ह अगले वर्ष ही पूर्ण में भी आपका अत्यधिक [illegible] कर रही है। और कर्तव्यपरायणता [illegible] कि संयुक्त राज्य के हट जाने पर भी आपका यथोचित [illegible] तक अपने को स्वाधीन बनाये की उपाधि से विभू[illegible]पड़ोस में अत्यन्त बलशाली जापान है।

[स्वर्गीय राजा रामपालसिंह]

से भी बड़ा अनुराग था। गुप्त जी ने अपनी 'भारत-भारती' आपको ही समर्पित की थी।

राजा साहब ने सार्वजनिक क्षेत्र में प्रारम्भ से ही सहयोग दिया था। अपने ज़िले के ज़िला-बोर्ड के आप पहले हिन्दुस्तानी चेयरमैन बनाये गये थे। सन् १९०९ से १९१६ तक आप प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा के सदस्य रहे। सन् १९१६ से १९२० तक आप वायसराय की कौंसिल के आर ... तक आप राज्य-परिषद् के खेल को भी अस्वीकार कर दिया।

...न के भी सदस्य थे। दो ...। अवध की ब्रिटिश ... अध्यक्ष हुए। पिछले अखिल भारतीय लिबरल फ़ेडरेशन की स्वागत-समिति के आप अध्यक्ष थे। आप 'लीडर' पत्र के शेयरहोल्डर तथा इलाहाबाद बैंक के एकमात्र डाइरेक्टर भी थे।

ऐसे महान् व्यक्ति के स्वर्गगत हो जाने से आज इन प्रान्तों के रईसी समाज से एक ऐसा व्यक्ति उठ गया है जिसके अभाव की जल्दी पूर्ति नहीं हो सकती। उनके निधन से वास्तव में इन प्रान्तों से एक ऊँची आत्मा उठ गई है जिसका ध्येय एकमात्र लोककल्याण था। भगवान् करे उनके पुत्र श्रीमान् राजा कृष्णपालसिंह जी भी अपने लोकमान्य पिता का उच्च आदर्श ग्रहण कर अपने जीवन में यशस्वी हों और अपने कुर्री-सुदौली के राजघराने की कीर्ति बढ़ाने में सफलता प्राप्त करें।

समाज-सुधार का प्रयत्न

वर्तमान राजनैतिक उथल-पुथल के युग में भारत में समाज-सुधारक—विशेषकर हिन्दू-सुधारक अपने काम में तत्परता से लगे हुए हैं। हिन्दुओं में उनकी वर्णव्यवस्था एक भारी अभिशाप है और यद्यपि इसका उन्मूलन करने के लिए सदियों से प्रयत्न होता आया है, पर वह आज भी अपने स्थान पर पहले की ही तरह सुदृढ़ है। इसी से सुधारकों ने भी चाहा कि ऐसे समाजोपयोगी क़ानून बनाये जायँ जिनसे एक ओर समाज का हित हो तो दूसरी ओर वर्ण-व्यवस्था का सुदृढ़पाश भी शिथिल होकर नष्टभ्रष्ट हो जाय। पिछले दिनों एसे...म्बली में डाक्टर भगवानदास ने अन्तर्वर्ण-विवाह का जो बिल पेश किया था उसका भी बहुत कुछ ऐसा ही उद्देश था। परन्तु उक्त बिल पास न हो सका। और तो और, सरकार के क़ानून के सदस्य तक ने उसका विरोध किया। परन्तु हाल में डाक्टर खेर का जो बिल पास हुआ है उससे कदाचित् सुधारकों को बहुत कुछ सन्तोष हो जायगा। इसका समर्थन सरकार के क़ानून के सदस्य ने भी किया है। यद्यपि सनातनियों और मुसलमान सदस्यों ने इस साधारण बिल का भी ख़ासा विरोध किया था, तो भी कांग्रेसी सदस्यों के बहुमत तथा सरकार के क़ानून के सदस्य के समर्थन से डाक्टर खेर का बिल पास हो गया। परन्तु यह बिल उतना व्यापक नहीं है, ... केवल हिन्दू-समाज के 'आर्य-समाज' की श्रेणी के हिन्दुओं के ही लिए है और इससे केवल आर्य-समाजी हिन्दू ही लाभ उठा सकेंगे। तथापि यह इस दिशा की ओर एक दृढ़ क़दम उठा है और सुधारक यद्यपि अपने विषय के प्रयत्न में आंशिक रूप से ही सफल हुए हैं, तथापि इस सफलता से वे भविष्य में और भी यत्नवान् हो सकेंगे और सम्भवतः सफलमनोरथ भी।

महायुद्ध की भीषण तैयारी

निःशस्त्रीकरण के सारे विराट् आयोजन विफल हो गये, अतएव अब संसार की महाशक्तियाँ शस्त्रीकरण के विराट् आयोजन में लग गई हैं। अभी उस दिन अँगरेज़-सरकार ने जापान से यह प्रस्ताव किया था कि जंगी जहाज़ों में १४ इंच के मुँह की तोपें लगाई जायँ। परन्तु जापान ने ऐसा कोई समझौता करने से इनकार कर दिया। फलतः संयुक्तराज्य ने घोषणा की है कि वह अपने जंगी जहाज़ों में १६ इंच के मुँह की तोपें लगायेगा। कहते हैं कि जापान अपने जंगी जहाज़ों पर १८ इंच के मुँह की तोपें लगा रहा है। इस तरह ब्रिटेन, संयुक्तराज्य और फ्रांस भी शस्त्रीकरण की दौड़ में आ कूदे हैं और संसार के ये तीनों महान् राष्ट्र स्थल, जल और वायु की सेनाओं के सज्जित करने में जुट गये हैं। उधर रूस, जापान, इटली और जर्मनी जो पहले से ही शस्त्रीकरण में सरगर्मी से लगे हुए थे, इन महान् शक्तियों के वर्तमान रङ्ग-ढङ्ग को देख कर अपने अपने शस्त्रीकरण के आयोजनों को और भी अधिक व्यापक रूप देने में यत्नशील हो रहे हैं। शस्त्रीकरण की इस भयानक होड़ का जो नाशकारी परिणाम होगा वह भी किसी से छिपा नहीं है। परन्तु परिस्थिति ने भविष्य के ऊपर पर्दा डाल दिया है और आज संसार के सभी राष्ट्र अगले लोकसंहारक युद्ध के लिए उत्साह के साथ तैयारी कर रहे हैं। पाश्चात्य सभ्यता की विफलता का प्रमाण इससे अधिक और क्या हो सकता है! आज संसार जिस सर्वनाश की ओर गतिशील है उससे विरत करने में आज वह कितनी असहाय है, यह भले प्रकार प्रकट है। साथ ही यह भी कि भविष्य का प्रलयकारी युद्ध दिन-दिन निकट आता जा रहा है।

फ़िलीपाइन की स्वाधीनता

संयुक्त राज्य की सरकार ने फिलीपाइन द्वीपों को सन् १९३६ में पूर्ण स्वाधीनता प्रदान करने की घोषणा की थी। परन्तु इधर उसके प्रतिनिधियों और फिलीपाइन के प्रजातंत्र के अध्यक्ष से जो बातचीत हुई है उसके फलस्वरूप फिलीपाइन द्वीप अब १९३८-१९३९ में ही पूर्ण स्वाधीन घोषित कर दिये जायँगे और संयुक्त राज्य की फ़ौजें वहाँ से बुला ली जायँगी एवं जो थोड़े-बहुत प्रतिबन्ध वहाँ की प्रजातंत्र-सरकार पर लगे हुए हैं वे भी हटा लिये जायँगे। वर्तमान तानाशाही के युग में मिस्र के बाद फिलीपाइन द्वीपों को इस तरह स्वाधीनता का मिल जाना वास्तव में एक महत्त्व-पूर्ण घटना है। यह सच है कि संयुक्तराज्य की प्रजातंत्र-सरकार साम्राज्यवादी सरकार नहीं है और यद्यपि वह फिलीपाइन-द्वीपों को बहुत कुछ स्वाधीनता पहले से ही दिये हुए थी तथा इधर १० वर्षों में उन्हें पूर्ण स्वाधीन कर देने की घोषणा भी कर दी थी, तथापि जब फिलीपाइनवालों ने उक्त १० वर्ष की मियाद का भी विरोध किया तब संयुक्तराज्य की सरकार ने उनकी इच्छा के अनुसार उन्हें स्वाधीन कर देना ही उचित समझा। यह फिलीपाइन-वालों के लिए बड़े सौभाग्य की बात है कि अब वे परतंत्रता के बन्धन से इस तरह अनायास मुक्त हो रहे हैं।

प्रशान्त-सागर के ये महत्त्वपूर्ण द्वीप सन् १५६५ से पाश्चात्यों के अधिकार में हैं। सन् १८९९ से वे अमरीका के संयुक्त राज्यों के क़ब्ज़े में आये। उसके पहले उन पर स्पेनवालों का अधिकार था और उनके समय में भी इन द्वीपों के निवासी अपनी स्वाधीनता के लिए बराबर लड़ते रहे। अमरीका के संयुक्त-राज्यों के अधिकार में आ जाने पर उन लोगों ने अपना स्वाधीनता का संग्राम बराबर जारी रक्खा और यद्यपि संयुक्त-राज्य की सरकार उनका दमन करने में पूर्णतया सफल हो गई, तथापि वह उनको आत्मशासन के अधिकार बराबर देती गई, यहाँ तक कि अन्त में उसने उनको स्वाधीन कर देने का क़ानून भी पास कर दिया। और अब तो वह उन्हें अगले वर्ष ही पूर्ण स्वाधीन कर देने का उपक्रम कर रही है।

परन्तु प्रश्न यह है कि संयुक्त राज्य के हट जाने पर क्या ये द्वीप अधिक समय तक अपने को स्वाधीन बनाये रह सकेंगे। उनके पड़ोस में अत्यन्त बलशाली जापान है,

जो अपने साम्राज्य के विस्तार के लिए यत्नशील है; साथ ही चीन भी मौक़ा पाकर उनका शिकार कर सकता है। और इन दोनों में से किसी एक के भी आगे वे अपनी रक्षा नहीं कर सकेंगे। परन्तु संयुक्त-राज्य भी उन्हें इस तरह रक्षित कदापि नहीं रहने देगा, तथापि यह भी प्रकट है कि वह उनके लिए किसी भारी संग्राम में अपने को नहीं फँसा बैठेगा। चाहे जो हो, इस समय तो ये द्वीप अपनी स्वाधीनता प्राप्त कर ही रहे हैं, उन्हें भविष्य की उतनी परवा नहीं है।

——

ट्रोटस्की का पराभव

बोल्शेविक क्रान्ति के प्रारम्भिक काल में रूस में जो गृह-युद्ध शुरू हुआ था उस युद्ध में बोल्शेविकों को जो पूर्ण विजय प्राप्त हुई थी उसका यदि सारा नहीं तो अधिकाश श्रेय लेनिन के दाहने हाथ लेअन ट्रोटस्की को ही प्राप्त है। परन्तु दैवदुर्विपाक से आज वही ट्रोटस्की महोदय रूस से निकाल बाहर किये गये हैं और बाहर भी वे किसी देश में चुपचाप बैठने नहीं पाते। वर्षों से वे एक देश को छोड़कर दूसरे देश में रहने को बाध्य किये जा रहे हैं। तुर्की, स्वीज़लैंड, फ्रांस और नार्वे आदि देशों में वे अब तक रह चुके हैं। कतिपय देश तो उन्हें अपने यहाँ आने की अनुमति तक नहीं देते। हाल में नार्वे छोड़कर वे मेक्सिको में जाकर रहने को बाध्य हुए हैं।

अभी हाल में रूस में जोसेफ़ स्टेलिन के मारने के षड्यन्त्र का जो मुक़द्दमा वहाँ के कतिपय लोगों पर चला था और जिसमें ट्रोटस्की पर भी भीषण आरोप लगाये गये थे उसी बात को लेकर नार्वे की सरकार ने इस बोल्शेविक क्रान्तिकारी को नार्वे से निकल जाने का हुक्म दे दिया। फलतः मेक्सिको की सरकार ने ट्रोटस्की को अपने यहाँ आ जाने को आदेश दे दिया। नार्वे में उन्हें वहाँ की सरकार की कड़ी निगरानी में रहना पड़ा था, परन्तु मेक्सिको में वे पूर्ण स्वतन्त्र रूप से अपना जीवन-यापन कर सकेंगे, बशर्ते कि वे वहाँ की राजनीति में भाग न लें। ट्रोटस्की ने इसका वचन भी दे दिया है।

ट्रोटस्की और स्टेलिन—ये दोनों व्यक्ति मार्क्स के साम्यवाद के दो भिन्न दलों के प्रमुख नेता हैं। इन सिद्धान्त पर दृढ़ हैं और वे संसार में बोल्शेविक क्रान्ति कराने के पक्ष में हैं। इधर स्टेलिन अपनी कार्यवाही रूस तक ही सीमित रखना चाहते हैं। परन्तु ट्रोटस्की स्टेलिन की तरह साधन-सम्पन्न नहीं हैं और न उनमें स्टेलिन जैसी क्षमता है। तथापि वे अपना साहस बनाये हुए हैं और समाचार-पत्रों में वर्तमान समस्याओं पर बराबर लेख लिखते रहते हैं। इस समय उनकी उम्र कुल ५७ वर्ष है। इसमें सन्देह नहीं है कि वे वर्तमान समय के सर्वश्रेष्ठ आन्दोलनकारी और ज़बर्दस्त लेखक हैं।

——

स्पेन का गृह-युद्ध

स्पेन का गृह-युद्ध समाप्त नहीं हो रहा है। यदि एक सप्ताह विद्रोही दल की जीतों के समाचार पत्रों में छपे पढ़ने को मिलते हैं तो उसके बाद सरकारी दल की जीतों के समाचार छपने शुरू हो जाते हैं। इससे इस बात का पता नहीं लगता कि वहाँ के युद्ध की वास्तविक स्थिति क्या है। पिछले दिनों विद्रोही दल ने मेड्रिड पर वायुयान से जो गोलाबारी की थी उस सम्बन्ध में संसार के अधिकांश पत्रों में छपा था कि उस आक्रमण में बहुसंख्यक निर्दोष बच्चे तथा स्त्रियाँ तक मारी गई थीं। उस सम्बन्ध में पत्रों में जो चित्र छापे गये थे उनके सम्बन्ध में कैथोलिक सम्प्रदाय के 'यूनीवर्स' नाम के पत्र ने हाल में लिखा है कि वे चित्र सच्चे चित्र नहीं थे, किन्तु महायुद्ध के समय सन् १९१८ में जर्मनों की एक अस्पताल पर की गई गोलाबारी के दृश्यों के चित्र थे। कहने का मतलब यह है कि इस युद्ध के सम्बन्ध में समाचार-पत्र भी काफ़ी ग़लतफ़हमियाँ फैला रहे हैं और वास्तविक स्थिति पर समुचित प्रकाश नहीं डाल रहे हैं। तथापि इसमें सन्देह नहीं है कि दोनों दल दृढ़ता से युद्ध कर रहे हैं और वे बाहर के शिक्षित सैनिक दलों से ही लैस नहीं हैं, किन्तु उनके पास पर्याप्त युद्ध-सामग्री और खाद्य-सामग्री भी है। इस समय ब्रिटेन और फ्रांस इस बात का बड़ा प्रयत्न कर रहे हैं कि अब योरपीय राष्ट्र इस युद्ध में सहायता करने से अपना हाथ खींच लें। इस प्रयत्न का अच्छा प्रभाव पड़ा है, और जो राष्ट्र अभी तक इस युद्ध में किसी एक पक्ष की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहायता कर रहे थे वे अब अपने उस [illegible] और यदि यह समय तक यह [illegible] बनी रही तो स्पेन का यह गृह-युद्ध भी अधिक समय तक टिक न सकेगा। यदि ऐसा हुआ तो इसे स्पेन का सौभाग्य ही समझना चाहिए।

——

मलाया के प्राचीन निवासी

प्रोफ़ेसर वान स्टीन कालेन फ़ेल्स बड़े विद्वान् ही नहीं, बड़ी लगन के भी आदमी हैं। गत पैंतीस वर्ष से वे जावा से लेकर फ़ीजी तक के द्वीपों की छानबीन इसलिए कर रहे हैं कि इस बात का ठीक ठीक पता लग जाय कि उन द्वीपों के निवासी वहाँ कब आकर बसे। प्रोफ़ेसर साहब अब सिंगापुर में बस गये हैं और वहाँ के प्रसिद्ध अजायबघर की प्राचीन सामग्री का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन कर रहे हैं। अपनी अब तक की खोज का उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला है कि वहाँ के निवासी उत्तर-भारत से प्रथक् प्रथक् समूहों में आये हैं और उनका यह देशान्तर्गमन ईसा के पूर्व ८००० वर्ष से ४५०० वर्ष के बीच में किसी समय हुआ था। एक ये विद्वान् हैं जो ज्ञान के विकास के लिए इस तरह यत्नवान् हैं और एक हम हैं जो ऐसे लोगों के ऐसे प्रयत्नों की ओर सहृदयता-पूर्वक दृष्टि तक डालना समुचित नहीं समझते।

——

अदिस अबाबा में क़त्ल आम

फ़रवरी के तीसरे सप्ताह में अदिस अबाबा में जो भयानक घटना घटित हुई थी उसका विवरण संसार को एक महीना बाद ही मालूम हो सका है और सो भी ब्योरेवार नहीं। फ़रवरी के उस दिन अबीसीनिया के गवर्नर जनरल मार्शल ग्रेज़ियानी लोगों को पुरस्कार-वितरण कर रहे थे कि एकाएक उन पर किसी ने बम फेंक दिया, जिससे वे बहुत बुरी तरह आहत हो गये। इस अत्याचार का दूसरे दिन जो भयानक बदला लिया गया उसका लोमहर्षण विवरण अब समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुआ है। उसके अनुसार कोई छः हज़ार नगरनिवासी क़त्ल किये गये। यह हत्याकांड अपने ढंग का विलक्षण इसलिए है कि यह घटित हुआ है बीसवीं सदी में और उस राष्ट्र के सैनिकों द्वारा जिसने अबीसीनिया को सभ्य बनाने की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ली है। पता नहीं कि इस अभागे देश को इटली की अधीनता में कैसे कैसे भीषण अत्याचारों का सामना करना पड़े। लक्षण भी अच्छे नहीं दिखाई दे रहे हैं, क्योंकि अब वहाँ से दूसरे राष्ट्रों के लोग एक एक करके निकाले जा रहे हैं और वहाँ जंगी शासन का बाज़ार गर्म हो रहा है।

——

मदरास में साहित्य-सम्मेलन

इस बार सम्मेलन का २६वाँ वार्षिक अधिवेशन मदरास में श्रीमान् सेठ जमुनालाल जी बजाज़ के सभापतित्व में सफलतापूर्वक हो गया। इस अधिवेशन में महात्मा गान्धी ने भी क्रियात्मक भाग लिया था। दूरी के कारण उत्तर-भारत के लोग इस अधिवेशन में बहुत कम संख्या में शामिल हुए थे, तथापि मदरास-प्रान्त में हिन्दी का काफ़ी प्रचार हो जाने से एवं महात्मा जी की उपस्थिति के कारण वहाँ के बहुत से हिन्दीप्रेमियों ने तथा अनेक प्रमुख लोगों ने भी उसकी कार्यवाही में भाग लिया था। अतएव मदरास का यह अधिवेशन बहुत कुछ सफल रहा। इस अधिवेशन में जो प्रस्ताव पास हुए हैं उनमें दो प्रस्ताव बड़े महत्त्व के हैं। एक है कांग्रेस की कार्यसमिति से यह अनुरोध करना कि अखिल भारतीय समिति और कार्य-समिति की कार्रवाई अँगरेज़ी के बजाय 'हिन्दी याने हिन्दुस्तानी' में की जाय और दूसरा है स्थायी समिति को इस बात का अधिकार देना कि वह लिंग-विषयक-समस्या का अन्तिम निर्णय कर दे। इस अधिवेशन में यह बात एक बार फिर स्पष्ट कर दी गई है कि अहिन्दी-भाषी प्रान्तों में हिन्दी का प्रचार केवल इसलिए किया जा रहा है कि अन्तर्प्रान्तीय कार्रवाई अँगरेज़ी के बजाय 'राष्ट्रभाषा हिन्दी' के द्वारा हो सके। सम्मेलन के प्रस्तावों तथा उसकी कार्यवाही से प्रकट होता है कि उसका ध्यान इसी बात की ओर विशेषरूप से है कि हिन्दी का सारे देश में 'राष्ट्र-भाषा' के रूप में प्रचार हो। उसका यह प्रयत्न निस्सन्देह श्लाघ्य है।

——

काशी का एक आदर्श सत्र

काशी हिन्दुओं का एक महातीर्थ ही नहीं है, वह उनका विद्याकेन्द्र भी है। इधर हिन्दू-विश्वविद्यालय की स्थापना से इस सम्बन्ध में उसका महत्त्व और भी अधिक बढ़ गया है, परन्तु इसके साथ ही उसकी कम हानि नहीं

हुई है। बात यह है कि काशी केवल संस्कृत की शिक्षा के लिए प्रसिद्ध रही है, साथ ही उसकी शिक्षा-व्यवस्था भी सदा विलक्षण ढंग की रही है। पाठशालायें वहाँ कदाचित् बहुत पहले से रही हैं, परन्तु महत्त्व सदा रहा है गुरुगृहों की शालाओं का ही। काशी में जितने भी विद्वान् रहे हैं, चाहे वे त्यागी रहे हों, चाहे रागी, अपनी योग्यता के अनुसार सभी विद्यार्थियों को बड़े प्रेम तथा त्याग के भाव से शिक्षा दिया करते थे। ये विद्यार्थी इधर-उधर मन्दिरों-मठों में रहते, सत्रों में खाते और यथारुचि विद्वानों के पास जाकर उनके घरों में शिक्षा ग्रहण करते। इस प्रकार की पाठशालायें काशी में बहुसंख्यक रही हैं और उनमें शिक्षा पानेवाले विद्यार्थियों की संख्या भी हज़ारों के ऊपर। तब काशी ऐसे ही अगणित पाठशालाओं का संगठित विद्यापीठ था। परन्तु इधर नये ढंग के पाठशालाओं की वृद्धि से उस प्राचीन परिपाटी का उन्मूलन-सा हो गया है। यही कारण है कि उस दिन जब कलकत्ता के बाबू लक्ष्मीनारायण और बाबू गुलाबचन्द अरोड़ा ने काशी आकर अपने प्रसिद्ध सत्र से सम्बद्धित विद्यार्थियों को खिला-पिलाकर अपनी उदारता का परिचय दिया तब काशी में उनकी बड़ी प्रशंसा हुई। काशी के सत्र में अरोड़ा जी की ६० विद्यार्थियों को नित्य भोजन देने की व्यवस्था है। इसके सिवा २५०) मासिक वे अध्यापकों को भी देते हैं। वर्तमान युग में प्राचीन प्रणाली के प्रति अरोड़ा जी का यह अनुराग प्रशंसनीय ही नहीं, अनुकरणीय भी है। ऐसा होने पर काशी की प्राचीन शिक्षा-पद्धति की बहुत कुछ रक्षा ही नहीं होगी, किन्तु हज़ारों अनाथ विद्यार्थी जिनका काशी के विद्यालयों में किसी कारण प्रवेश नहीं हो पाता, सरलता से शिक्षा ग्रहण कर सकेंगे।

——

संयुक्तप्रान्त के ज़िला-बोर्ड

संयुक्तप्रान्त के ज़िला-बोर्डों की गत १९३४-३५ ईसवी की रिपोर्ट अभी हाल में प्रकाशित हुई है। इस रिपोर्ट के पढ़ने से ज्ञात होता है कि ज़िला-बोर्डों के अधिकांश सदस्य अपने उत्तरदायित्व की ओर ध्यान नहीं देते। अधिक से अधिक उपयोगी बनाने के लिए कोई योजना उपस्थित करना तो दूर रहा, कितने ही सदस्य बोर्ड की बैठकों तक में उपस्थित होने का कष्ट नहीं स्वीकार करते। प्रान्त के समस्त ज़िला-बोर्डों की इस एक वर्ष के भीतर जितनी बैठकें हुई हैं उन सबमें सदस्यों की उपस्थिति का अनुपात ५१·३७ अर्थात् आधे से कुछ ही अधिक था। सदस्यों की अनुपस्थिति की दृष्टि से गोंडा के ज़िला-बोर्ड का नम्बर सबसे बढ़कर था, क्योंकि उसकी कुल २१ बैठकों में से १८ कोरम पूरा न हो सकने के कारण स्थगित कर देनी पड़ीं। इसके विरुद्ध बनारस-ज़िला-बोर्ड की सत्रह बैठकों में से केवल एक बैठक कोरम न होने के कारण स्थगित हुई। लखनऊ और जौनपुर के ज़िला-बोर्डों में आठ-आठ ऐसे भी सदस्य पहुँच गये हैं, जिन्हें वर्ष में एक बार भी बोर्ड की बैठक में सम्मिलित होने भर का समय नहीं मिल सका। इस प्रकार के तीन सदस्य मिर्ज़ापुर ज़िला-बोर्ड तथा एक-एक गोरखपुर और बस्ती ज़िला-बोर्डों में भी थे।

संयुक्तप्रान्त के समस्त ज़िला-बोर्डों की सन् १९३४-३५ की सम्मिलित आय १,९७,४१,५५१) और व्यय १,९४,७८,७३७) था। इसमें से ८१,३४,०२०) सरकार से सहायता के रूप में, शेष १,१६,०७,५३१) अन्य आयों से प्राप्त हुए, जिनमें ८७,९७३) पिछले साल की सरकारी सहायता की बचत के थे। इस प्रकार सरकारी सहायता के अतिरिक्त ज़िला-बोर्डों की आय के जितने भी साधन हैं, उन सबसे कुल १,१५,१९,५५८) प्राप्त हुए। इनमें ७४,६१,३४५) लोकलरेट से प्राप्त हुए, जिन्हें सरकार वसूल करके देती है और ४७,७५८) कुमाऊँ-डिवीज़न की मालगुज़ारी से। ये सब आय के ऐसे साधन हैं जिनके लिए ज़िला-बोर्ड को प्रायः कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता। इनके अतिरिक्त मवेशीख़ानों, घाटों तथा आमदनी पर लगाये गये करों आदि से ज़िला-बोर्डों को आशानुरूप आय नहीं हुई। विशेषतः आमदनी पर लगाये गये कर से जितने रुपये वसूल हुए हैं, उनका चतुर्थांश वसूल करने में ही ख़र्च हो गया।

विभिन्न ज़िला-बोर्डों की आर्थिक अवस्था का दिग्दर्शन कराने के लिए इस रिपोर्ट में जो आँकड़े संग्रहीत किये [illegible] है कि कितने ही ज़िला-बोर्डों ने

अपनी आय से व्यय अधिक कर दिया है और कितनों ने सार्वजनिक सेवा के कार्यों में कमी करके अपना आय-व्यय बराबर किया या बचत दिखलाई है। इस प्रकार की त्रुटि का कारण यह बतलाया गया है कि सदस्य लोग न तो आय के साधनों की ओर सतर्क होकर आशानुरूप धन एकत्र कर सके और न अपने आय-व्यय का चिट्ठा ही ठीक समय पर और ख़ूब सोच-समझ कर तैयार कर सके।

प्रान्त के ज़िला-बोर्डों ने इस एक वर्ष में जितना व्यय किया उसका ५६·६४ प्रतिसैकड़ा शिक्षा में, १७·०९ प्रतिसैकड़ा सड़कों तथा इमारतों आदि के बनवाने या उनकी मरम्मत आदि में, ९·४ प्रतिसैकड़ा औषधालयों तथा चिकित्सालयों में, १·४ प्रतिसैकड़ा स्वास्थ्य तथा सफ़ाई के विभाग में और ४·८ प्रतिसैकड़ा कार्यालयों के सञ्चालन में लगा। ज़िला-बोर्डों ने विदेशी ओषधियों के अतिरिक्त देशी ओषधियों पर भी कुछ व्यय किया है, किन्तु वह बहुत न्यून है।

वास्तव में ज़िला-बोर्डों के अधिकांश सदस्य पारस्परिक ईर्ष्याद्वेष तथा दल-बन्दी के ही भाव में पड़े रहते हैं। वे सार्वजनिक हित की भावना से किसी भी विषय पर विचार नहीं करते। कार्य्यकर्त्ता की नियुक्ति, स्थान-परिवर्तन तथा दण्ड या पुरस्कार-विधान के सम्बन्ध में भी वे सार्वजनिक हित की अपेक्षा व्यक्तियों की ही ओर अधिक ध्यान देते हैं। यही कारण है कि मवेशीख़ानों तथा टैक्स आदि के विभाग में उचित सुधार नहीं हो पाता। क्या ही अच्छा हो कि इस प्रजातन्त्र-युग में बोर्ड के सदस्य सार्वजनिक जीवन की पवित्रता का ध्यान रखते हुए ग्रामीण जनता के लिए अधिक हितकारी बनें।

—ठाकुरदत्त मिश्र

——

क्या भारतवर्ष और अधिक भूखों मरेगा?

संसार के कतिपय देश जहाँ अपनी आबादी बढ़ाने के लिए तरह तरह के यत्न कर रहे हैं, वहाँ भारत में जन्म-संख्या में अपने आप वृद्धि हो रही है। पर इस समय यह वृद्धि उसके लिए उसकी अर्थहीनता के कारण अभिशाप हो रही है। इस विचार को दृष्टि में रखकर 'हिन्दी-समाचार-समिति' ने एक लेख छपवाया है, जो महत्त्वपूर्ण है।

वह सन् १९३४ की भारतीय स्वास्थ्य की रिपोर्ट के आधार पर तैयार किया गया है। उसका ज्ञातव्य अंश हम 'राजस्थान' से यहाँ देते हैं—

सन् १९३४ में भारत की जन्म-संख्या ९२,८८,८९७ तथा मृत्यु संख्या ६,८५,२४४ थी। बच्चों की मृत्यु प्रति हज़ार १८७ थी। अन्य देशों के मुक़ाबिले में हमारी हालत कैसी है, यह निम्न आँकड़ों से प्रत्यक्ष होगा—

जन्म-संख्या प्रतिसहस्र

भारत ३३.७	इटली २३.२
ब्रिटेन १४.८	हंगरी २१.४
बेलजियम १६	पुर्तगाल २८.४
जेकोस्लोविया १८.८	हालेंड २०.७
स्पेन २६.२	जर्मनी १८

मृत्यु-संख्या प्रतिसहस्र	बच्चों की प्रति सहस्र
भारत २४.९	१८७
ब्रिटेन ११.८	५९
बेलज़ियम ११.२	८२
जेकोस्लोवेकिया १८.८	१२६
रुमानिया २०.७	१८२
स्पेन १५.९	११३
इटली १२.१	९९
हंगरी १४.४	१५०
पुर्तगाल १६.६	—
हालेंड ८.४	—
जर्मनी १०.९	६६

जन्म-संख्या में यहाँ भारत में प्रतिसहस्र ८.८ की वृद्धि हो रही है। यही क्रम रहा तो भारत की जन्म-संख्या सन् १९४१ तक ३९ करोड़ के क़रीब हो जायगी।

४ करोड़ की यह वृद्धि भारत के लिए एक बड़ा सवाल हो जायगा; क्योंकि मोटे अनुमान से अगर एक व्यक्ति के लिए प्रतिवर्ष ५ मन ग़ल्ले की भी ज़रूरत पड़े तो १९४१ तक हमें हर वर्ष २० करोड़ मन ग़ल्ले की ज़रूरत पड़ेगी। वैसे तो इस देश की करोड़ों की जनता भूखों मरती रहती है। इसका परिणाम मालथस के आर्थिक सिद्धान्तों के अनुसार या तो अकाल में प्रकट होगा या महामारी में। लेकिन हिन्दुस्तान में जिस तेज़ी से जन-संख्या बढ़ रही है जान पड़ता है, उसके मुताबिक-

इस मुल्क में एक बड़ा भीषण संकट आयेगा। इस अन्धकार में आशा की एक किरण यही है कि वैज्ञानिक अनुसंधानों के द्वारा तेज़ी से पैदावार भी बढ़ती जा रही है। इधर बाल-विवाह की कमी हो जाने से स्त्रियाँ देर में बच्चे देंगी और जितने बच्चे पहले होते थे अब उनसे कम ही होंगे। लेकिन यह तो एक कल्पना है। वास्तविकता तो हमारे सामने उपस्थित है और इसका सुलझाना जनता और सरकार दोनों के लिए महान् चिन्ता का विषय बन कर रहेगा। क्योंकि ज्यों-ज्यों भूख ज़्यादा बढ़ेगी, त्यों-त्यों लोग रोटी की माँग करेंगे। इसी से कहना पड़ता है कि सन् १९४१ की राजनैतिक परिस्थिति ख़तरे की घंटी देकर रहेगी। हिन्दुस्तानियों के लिए विदेशों में बसने के दरवाज़े बन्द ही हो रहे हैं, इसलिए इस तरीक़े से भी इस मुल्क की आबादी का दबाव कम नहीं किया जा सकेगा।

जन-सख्या की वृद्धि का यह सवाल साधारण सवाल नहीं है। इस शताब्दी के प्रारम्भ से ही जन्म-संख्या का औसत बढ़ता जा रहा है और मृत्यु का औसत कम हो रहा है। डाक्टर राजा का ख़याल है, मृत्यु का औसत अभी घटता ही जायगा और सन् १९४१ तक जन-संख्या ४०,१४,२२,५१७ हो जायगी। देखें, इस समस्या का क्या हल निकलता है।

भारत के अजायबघर

न्यूयार्क के कारनेगी-कारपोरेशन ने भारत के अजायब-घरों की जाँच की थी। 'हिन्दुस्तान' में उसकी रिपोर्ट का वर्णन छपा है। उसमें लिखा गया है—

भारतवर्ष के इस छोटे से महाद्वीप में १०५ अजायब-घर हैं, परन्तु उन पर सब मिलाकर जो ख़र्च होता है—अर्थात् १८,००० पौंड—वह उस ख़र्च से भी कम है जो योरप और अमरीका की बड़ी बड़ी राजधानियों के अकेले एक अजायबघर पर होता है।

धन की इस कमी का परिणाम यह हुआ है कि भारत के अजायबघरों में रक्खी चीज़ों को जो भारत की बड़ी से बड़ी निधि हैं, कीड़े-मकोड़े खा चुके हैं और खा रहे हैं। इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं कि यदि इस सम्बन्ध में कोई तात्कालिक कार्यवाही न की गई तो भूतकालीन भारतीय संस्कृति की महत्ता के सबूत तथा ख़राब हो जानेवाली चीज़ों पर अंकित भारतीय कला और कारीगरी के चिह्न हमेशा के लिए भारत से मिट जायँगे और वे योरप तथा अन्य स्थानों के कुछ बड़े-बड़े संग्रहालयों में ही प्राप्त हो सकेंगे। सरकार का, साथ ही देश के विद्वानों का ध्यान इस अवस्था की ओर आकृष्ट होना चाहिए।

Printed and published by K. Mittra, at The Indian Press, Ltd., Allahabad.

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल श्रीनाथसिंह

जून १९३७ }　　भाग ३८, खंड १　संख्या ६, पूर्ण संख्या ४५०　　{ ज्येष्ठ १९९४

नियति

लेखक, ठाकुर गोपालशरणसिंह

आशाओं की मादकता
　　कुछ रङ्ग दिखानेवाली है।
जीवन को अब कहाँ खींचकर
　　वह पहुँचानेवाली है॥
अभिलाषाओं के उपवन में
　　मधुऋतु आनेवाली है।
यही देखना है अपने को
　　क्या वह लानेवाली है॥

जो दुनिया है बीत गई
　　वह कभी न आनेवाली है।
पर जो दुनिया अब आई है
　　वह भी जानेवाली है॥
जीवन के सुख-दुख का निर्णय
　　नियति सुनानेवाली है।
घोर घटा यह काली-काली
　　क्या बरसानेवाली है॥

जवाहरलाल नेहरू

लेखक, श्रीयुत ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल'

पण्डित जवाहरलाल नेहरूजी का व्यक्तिगत जीवन भारतवर्ष के राजनैतिक जीवन के साथ इतना अधिक घुल मिल गया है कि एक को दूसरे से अलग करना असम्भव है। इसीलिए उनकी आत्मकथा को बहुत-से लोग देश की कथा भी कहते हैं। उनकी इस आत्मकथा को बग़ैर पढ़े किसी भारतवासी का राजनैतिक ज्ञान पूर्ण नहीं समझा जा सकता है। इस लेख में योग्य लेखक ने जवाहरलाल जी की इस आत्मकथा का संक्षेप में बड़े ही सुन्दर ढङ्ग से परिचय दिया है।

पंडित जवाहरलाल नेहरू देश के कर्णधारों में प्रधान हैं। वे राजनैतिक नेता और राजनीति के मर्मज्ञ तो हैं ही, एक उत्कृष्ट विद्वान्: विचारशील लेखक और प्रवीण आलोचक भी हैं। विदेशी राजनीति और इतिहास की विद्वत्ता उनकी विशेषता है। जिस प्रकार उनकी वाणी में ओज, प्रवाह, वीरत्व, मधुरता और स्पष्टवादिता है, उसी प्रकार उनकी रचना में भी ये सारे गुण विद्यमान हैं। नेहरू जी की वाणी देश को जाग्रत और उन्नति करने में जितनी सहायक हुई है, उतनी ही उनकी रचनायें भी सहायक हुई हैं। इस दृष्टि से इस सम्बन्ध में महात्मा गांधी के बाद नेहरू जी का ही स्थान है। नेहरू जी ने संसारव्यापी राजनैतिक समस्याओं को ओजस्वी और आकर्षक रूप में लिपिबद्ध करके राष्ट्रीय प्रगति को व्यापक और स्थायी बनाने का सुन्दर उद्योग किया है। वे अँगरेज़ी-भाषा के उच्च कोटि के ज़बर्दस्त लेखक हैं। उनकी अँगरेज़ी की पुस्तकों का यथेष्ट प्रचार भी हुआ है। प्रसन्नता की बात है कि हिन्दी में भी उनकी रचनायें अब सुलभ हो गई हैं और इनसे हिन्दी-साहित्य के एक विशेष अंग की पूर्ति हुई है।

'मेरी कहानी'—नेहरू जी ने यों तो कई [illegible]पूर्ण पुस्तकें लिखी हैं, किन्तु कुछ समय हुआ उ[illegible] 'मेरी कहानी' नाम का नवीन ग्रंथ प्रकाशित हुआ है [illegible] विशाल ग्रंथ है। राजनीति के विद्वानों का [illegible] राष्ट्रीय विषय की यह एक श्रेष्ठ कृति है। विलायत तथा अन्यान्य देशों के प्रमुख पत्रकारों ने इस ग्रंथ की विस्तृत आलोचनायें प्रकाशित की हैं और बीसवीं सदी का इसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ बतलाया है। नेहरू जी ने इस पुस्तक में 'अपनी बात' कहते हुए नवीन विचारों से युक्त भारत के राष्ट्रीय इतिहास का क्रमिक विकास इतने सुन्दर ढंग से अंकित किया है कि इससे लगभग पन्द्रह वर्ष के भीतर की भारतीय समस्याओं पर पूर्ण प्रकाश पड़ जाता है। 'मेरी कहानी' क्या है, नेहरू जी ने स्वयं लिखा है—"इसमें पिछले कुछ वर्षों की ख़ास ख़ास घटनाओं का संग्रह नहीं; इसके लिखने का यह मक़सद था भी नहीं। यह तो समय समय पर मेरे अपने मन में उठनेवाले ख़यालात और जज़बात का और बाहरी वाक़यात का उन पर किस तरह और क्या असर पड़ा, उसका दिग्दर्शन-मात्र है। इसमें मैंने अपने मानसिक विकास को—अपने ख़यालात के उतार-चढ़ाव को—सही चित्रित करने की कोशिश की है।.........ख़ास बात यह नहीं कि मुझ पर क्या गुज़रा, बल्कि यह है कि वह मुझे कैसा लगा और उसका मुझ पर क्या असर हुआ। यही इस किताब की अच्छाई और बुराई जानने की कसौटी है।" पुस्तक का नाम 'मेरी कहानी' सार्थक है। नेहरू जी ने इसमें अपनी कहानी लिखी है। प्रारम्भ में उन्होंने अपने पारिवारिक जीवन, बाल्यकाल और शिक्षा से सम्बन्ध रखनेवाली बातें लिखी हैं। फिर सन् १९२० से लगभग वर्तमान काल तक की राजनैतिक घटनाओं का वर्णन किया है। इस बात को

इस प्रकार भी कह सकते हैं कि उन्होंने अपनी कथा लिखने के बहाने 'देश की कथा' लिखी है। गत आन्दोलनों में नेहरू जी का विशेष हाथ रहा है, इसलिए घटनाओं के वर्णन में स्फूर्ति और सत्यता का सुन्दर परिचय मिलता है। महात्मा गांधी ने अपनी 'आत्मकथा' में वास्तविक रूप से अपनी ही कहानी लिखी है, किन्तु उनके लिखने का ढंग निराला है। महात्मा जी की 'आत्मकथा' एक दार्शनिक पहलू पर लिखी गई है, किन्तु नेहरू जी की 'मेरी कहानी' लिखने का ध्येय दूसरा ही है। उन्होंने इस ग्रंथ में अपने जीवन के अनुभवों के वर्णन के साथ-साथ, उस समय के आन्दोलनों से उनका मानसिक विकास कैसे हुआ और देश-सेवा की ओर उनके विचारों की किस प्रकार पुष्टि होती गई, इसका प्रभावशाली वर्णन किया है। हम इसे एक प्रकार से देश के पिछले चौदह वर्षों में घटित होनेवाली घटनाओं की 'डायरी' भी कह सकते हैं। इस 'डायरी' या 'मेरी कहानी' में नेहरू जी ने भारत में राजनैतिक दृष्टि से क्या उथल-पुथल हुए, किन किन आन्दोलनों से देश में जाग्रति हुई, कौन-कौन-सी घटनाओं का प्रभाव भारतीय जन-समूह पर पड़ा, देश के किन किन नेताओं ने इसमें प्रमुख भाग लिया और भारत-सरकार का रुख़ किस ओर रहा, यह सबका सब आपने बड़े अच्छे ढंग से इस पुस्तक में बताया है।

शैली और भाषा—ग्रंथ की रचना-शैली बड़ी मनोहर और रोचक है। पढ़ने में उपन्यास का-सा आनन्द आता है। घटनाओं का वर्णन सिलसिलेवार होने के कारण वह एक राजनैतिक उपन्यास-सा जान पड़ता है। व्यक्तिगत अनुभवों, समय समय पर होनेवाली साधारण से साधारण घटनाओं का प्रभाव हृदय पर पड़े बिना नहीं रहता। इससे शैली और भी आकर्षक और मनोरंजक हो गई है। विषय के वर्णन में विनोद, हास्य और व्यंग्य की पुट नेहरू जी ने जगह जगह ऐसे ढंग से दी है कि रचना सजीव हो उठी है। विनोद तो उनके संघर्षमय जीवन की जीवनी-शक्ति है। उन्होंने स्वयं लिखा है—".....मगर ज़िन्दा रहना मेरे लिए तो प्रायः असह्य हो जाता, अगर मेरी ज़िन्दगी में कुछ लोग हँसी-मज़ाक की कुछ मात्रा न [illegible] रहते।" ('मेरी कहानी' पृष्ठ २५४)

बंगाल के स्वर्गीय नेता सर रासबिहारी घोष के सम्बन्ध में एक स्थान पर उन्होंने लिखा है—"सर रासबिहारी घुटे हुए माडरेट माने जाते थे और खापर्डे उन दिनों प्रमुख तिलक-शिष्य माने जाते थे, यद्यपि पीछे जाकर वे कपोत की तरह कोमल और माडरेटों के लिए भी अत्यधिक माडरेट हो गये।" (पृष्ठ ४७) इसके सिवा और भी पंक्तियाँ पठनीय हैं—

"मगर शौकतअली वहाँ मौजूद थे, जो अधकचरे लोगों में जोश भरा करते थे।" (पृष्ठ ५९)

"अदालत में एक फटे-हाल महाशय पेश किये गये जिन्होंने हलफ़िया बयान दिया कि दस्तख़त मोतीलाल जी के ही हैं।" (पृष्ठ १०९)

"जिस तरह जादूगर के पिटारे में से अचानक कबूतर निकल पड़ते हैं, उसी तरह आर्डिनेन्स वग़ैरह निकल पड़ते हैं।" (पृष्ठ २२६)

"......रामस्वामी (सर पी० सी० रामस्वामी अय्यर) चक्करदार ज़ीनों को पार करते हुए गगन-चुम्बी मीनार पर चढ़ते चढ़ते चोटी तक जा पहुँचे, जब कि मैं पृथ्वी पर ही पृथ्वी का साधारण प्राणी बना हुआ हूँ।" (पृष्ठ ७२६)

इसी प्रकार सारी पुस्तक में व्यंग्य-विनोद और मुहावरों से भाषा का ओज व्यक्त होता है। यही नहीं, कहीं कहीं हेडिंग तक विनोदपूर्ण हैं—जैसे 'ब्रिटिश शासकों की हू हू', 'ब्रिटिश शासन का कच्चा चिट्ठा' और 'नाभा का नाटक' आदि। जहाँ एक ओर गद्यशैली में मनोरंजकता का ध्यान रक्खा गया है, वहाँ दूसरी ओर कवित्व की भी झलक दिखाई पड़ती है। नेहरू जी ने लिखने में जहाँ गम्भीरता धारण की है, वहाँ की भाषा प्रौढ़ और भावनापूर्ण हो गई है। प्रत्येक 'चैप्टर' में संसार के दार्शनिकों, कवियों की उत्कृष्ट रचनायें भी उद्धृत हैं। इससे भावुकता और गम्भीरता का पूर्ण आभास मिलता है। कविताओं में ही नहीं, गद्य में भी स्थान स्थान पर उनकी भावुकता प्रकट होती है। महात्मा गांधी और पंडित मोतीलाल नेहरू के मिलाप को उन्होंने इस प्रकार लिखा है—

"मनोविश्लेषण-शास्त्र की भाषा में कहें तो यह एक अन्तर्मुख का एक बहिर्मुख के साथ मिलाप था।" (पृष्ठ ८१)

"बरसों मैंने जेल में बिताये हैं! अकेले बैठे हुए, अपने विचारों में डूबे हुए, कितनी ऋतुओं को मैंने एक-दूसरे के पीछे आते-जाते और अन्त में विस्मृति के गर्भ में लीन होते देखा है! कितने चन्द्रमाओं को मैंने पूर्ण विकसित और क्षीण होते देखा है और कितने झिलमिल करते तारामंडल को अबाध और अनवरत गति और शान के साथ घूमते हुए देखा है! मेरे यौवन के कितने अतीत दिवसों की यहाँ चिता-भस्म हुई है और कभी कभी मैं इन अतीत दिवसों की प्रेतात्माओं को उठते हुए, अपनी दुःखद स्मृतियों को साथ लाते हुए, कान के पास आकर यह कहते हुए सुनता हूँ 'क्या यह करने योग्य था'! और इसका जवाब देने में मुझे कोई झिझक नहीं है।" (पृष्ठ ७२८)

यह अवतरण काव्यात्मक शैली का एक सुन्दर उदाहरण है।

विचार-स्वातंत्र्य और ऐतिहासिक महत्त्व—विचार-स्वातंत्र्य नेहरू जी की रचना का प्रधान गुण है। तीव्र भाषा में खरी बात कहने या प्रकट करने में वे पूर्ण स्वतंत्रता से काम लेते हैं। 'मेरी कहानी' में विचारों के प्रकट करने में पूर्ण स्वतंत्रता पाई जाती है। स्पष्टवादिता की तो झलक सारे ग्रंथ में है ही। दिखावटी शिष्टाचार से युक्त विचारों का सर्वथा अभाव है। ऐसी शैली पर पंडित जी को पूरा विश्वास भी है। वे स्वयं लिखते हैं—"......जो लोग सार्वजनिक कामों में पड़ते हैं उन्हें आपस में एक-दूसरे के और जनता के साथ, जिसकी कि वे सेवा करना चाहते हैं, स्पष्टवादिता से काम लेना चाहिए। दिखावटी शिष्टाचार और असमंजस और कभी कभी परेशानी में डालनेवाले प्रश्नों को टाल देने से न तो हम एक-दूसरे को अच्छी तरह समझ सकते हैं और न अपने सामने की समस्याओं का मर्म ही जान सकते हैं।" (प्रस्तावना पृष्ठ १०) किन्तु स्पष्टवादिता और विचार-स्वातन्त्र्य के कारण कहीं भी विक्षोभ और कटुता का अनुभव नहीं होता, वरन पढ़ने पर आनन्द ही आता है। द्वेष या दुर्भावना लेश-मात्र भी कहीं नहीं प्रकट होती। अपने पिता स्वर्गीय पंडित मोतीलाल नेहरू, महात्मा गांधी तथा असहयोग और सत्याग्रह में शामिल होनेवाले देशभक्तों की उन्होंने यथा-स्थान चर्चा करते हुए उनके कार्यों की तीव्र आलोचनायें की हैं, किन्तु ऐसे स्थल भी विनोद और शिष्टता से पूर्ण ही हैं। लिबरल पार्टी के कार्यों तथा उसके नेताओं की टीका-टिप्पणी में भी विचार-स्वातंत्र्य को प्रधानता दी गई है, और बड़ी सुन्दरता के साथ उनके वास्तविक विचारों, मनोभावों का चित्रण किया गया है, जो शालीनता से युक्त है। संभवतः ऐसे स्थल विचार-वैषम्य के कारण लिबरलों को क्षुब्ध करनेवाले हो सकते हैं, किन्तु नरम-गरम का विचार न करनेवाले पाठकों के लिए सारे ग्रंथ में विचार-स्वतंत्रता और स्पष्टवादिता का प्रवाह एक-सा प्रवाहित होता ही मिलेगा। इसी प्रकार भारत तथा ब्रिटेन की शासन-पद्धतियों पर भी—जो घटनाओं से संबंध रखती हैं—अपना स्पष्ट मत प्रकट किया गया है। विचार-स्वातंत्र्य की दृष्टि से इस पुस्तक की समता राजनीति-विषय की कोई दूसरी पुस्तक नहीं कर सकती है।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से भी इस ग्रंथ का कम महत्त्व नहीं है। इसे हम सन् १९२० से सन् १९३४ तक का

पंडित जवाहरलाल नेहरू का एक अप्राप्य चित्र। इसे प्रयाग के प्रसिद्ध फ़ोटोग्राफ़...

(१९२० ... १९३०) इसी प्रकार सारा ... तक भारत के इस विशाल समुदाय ... आ है, जिससे नेहरू जी के हृदय की ... मिलता है।

कांग्रेस का इतिहास कह सकते हैं। इन चौदह-पन्द्रह वर्षों में देश की जो उन्नति हुई और जन-साधारण में जागृति का जो संचार हुआ है वह राष्ट्रीय दृष्टि से इतिहास की चीज़ है। नेहरू जी ने प्रधान रूप से इस ग्रंथ में 'असहयोग', 'साम्प्रदायिकता का दौरदौरा', 'साइमन कमीशन का आगमन', 'सविनय अवज्ञा', 'यरवदा की संधि-चर्चा', 'दिल्ली का समझौता', 'गोलमेज़ कान्फ़रेंस', 'डोमीनियन स्टेट्स' और 'आज़ादी', 'भूकम्प', 'पूरब और पश्चिम में लोकतंत्र' तथा देश के भिन्न भिन्न शहरों में होनेवाले कांग्रेस के अधिवेशनों का वर्णन तथा उसके गुण-दोषों का विवेचन भले प्रकार किया है। उक्त समस्यायें अपना ऐतिहासिक महत्त्व रखती हैं। इसी लिए यह पुस्तक भी अपनी महत्ता रखती है। एक ख़ास बात और है कि अभी तक राष्ट्रीय या कांग्रेस-संबंधी जो ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं उनमें प्रायः घटनाओं का क्रमपूर्वक वर्णन ही प्राप्त होता है, किन्तु 'मेरी कहानी' में घटनाओं के वर्णन के साथ ही साथ उनकी आंतरिक परिस्थितियों का—अवसर के अनुसार व्यक्तिगत भी—जो चित्रण किया गया है वह बड़ा व्यापक है और वास्तविकता से परिचित कराने में सहायक होता है।

वर्णन और आलोचना—यह पुस्तक अरसठ परिच्छेदों में समाप्त की गई है। प्रायः सभी परिच्छेदों के विषयों का प्रतिपादन वर्णनात्मक रीति से किया गया है। कुछ परिच्छेदों में विषयों का सुन्दर विवेचन भी हुआ है। 'मज़हब क्या है', 'जेल में पशु-पक्षी', 'लिबरल दृष्टिकोण', 'डोमीनियन स्टेट्स और आज़ादी', 'अन्तर्जातीय विवाह और लिपि का प्रश्न', 'पूरब और पश्चिम में लोकतंत्र' आदि प्रकरण विवेचनात्मक ढंग से लिखे गये हैं। वर्णन और विवेचन में नेहरू जी ने ज़ोरदार भाषा में अपने विचारों को व्यक्त किया है। किसी भी विचार को घुमा-फिरा कर और विस्तार के साथ नहीं लिखा है, वरन चुस्त और दुरुस्त ढंग से वर्णन और विवेचन किया है। नेहरू जी को कई वर्षों तक आज़ादी के लिए जेलों में रहना पड़ा है,
है।" (पृष्ठ ७२८) ने उन्होंने बड़ी सुन्द-
यह अवतरण काव्यात्मक शैल जेलों के सुधार के
हरण है। । 'मेरी कहानी' में
विचार-स्वातंत्र्य और प्रेम...

हुआ है। यही आलोचना और टीका-टिप्पणी पुस्तक का जीवन है। इसके पढ़ने से लिबरल पार्टी, कांग्रेस-दल, कांग्रेस और सरकार का मतभेद, सरकारी रुख़, साम्प्रदायिकता आदि के संबंध में बहुत-सी आन्तरिक बातों का ज्ञान हो जाता है। देश में बड़े बड़े नेता हैं। लिबरल दल के और कांग्रेस के नेताओं में मतभेद रहा है। मुस्लिम नेता भी समय समय पर अपनी नीति बदलते रहे हैं। कभी सम्प्रदायवादियों का बोलबाला हुआ, कभी अन्य दल के नेताओं का। धीरे धीरे आन्दोलनों का ख़ातमा होता गया और राजनैतिक क्षेत्र में नेताओं की नीति ने कठिन पहेली का रूप धारण कर लिया। पंडित जी ने 'मेरी कहानी' में राष्ट्र के ऐसे भिन्न भिन्न दलों और नेताओं की नीतियों का आलोचनात्मक रूप में विश्लेषण किया है। इससे हमें उनकी नीतियों का ही पता नहीं चलता, वरन उन्हें व्यक्तिगत रूप से भी जानने का मौक़ा मिलता है। नरम से नरम और गरम से गरम नेताओं के व्यक्तित्व का आकर्षक और निर्भीक चित्रण किया गया है।

लिबरल नेताओं में श्री गोपाल कृष्ण गोखले के शान्त स्वभाव और सहनशीलता की नेहरू जी ने प्रशंसा की है। सर तेजबहादुर सप्रू, सर पी० सी० रामस्वामी अय्यर, भूपेन्द्रनाथ वसु, सर रासबिहारी घोष और महामान्य श्रीनिवास शास्त्री के संबंध में अनेक घटनाओं का ज़िक्र करते हुए कई मनोरंजक बातें लिखी हैं। मिस्टर गोखले से एक बार भूपेन्द्रनाथ वसु से रेल में भेंट हो गई। इस घटना का ज़िक्र करते हुए नेहरू जी ने लिखा है—

"वसु महोदय गोखले के पास गये और बात-चीत में पूछने लगे कि क्या मैं आपके डिब्बे में सफ़र कर सकता हूँ। यह सुनकर पहले तो गोखले कुछ चौंके, क्योंकि वसु महाशय बड़े बातूनी थे, लेकिन फिर स्वभाववश वे राज़ी हो गये।" (पृष्ठ ३६)

माननीय श्रीनिवास शास्त्री की कई स्थलों पर चर्चा की गई है। मिसेज़ बेसेन्ट की नज़रबन्दी पर श्री शास्त्री जी की नीति का ज़िक्र करते हुए लिखा है—

"मुझे याद है कि नज़रबन्दी के कुछ दिन पहले तक श्री श्रीनिवास शास्त्री के वक्तृत्वपूर्ण भाषणों को पढ़कर हम लोगों के दिल हिल जाते थे। लेकिन नज़रबन्दी से पहले या उसके बाद से श्री शास्त्री ...

जब काम का वक़्त आया तब वह हमें बिलकुल छोड़ गये......उनकी चुप्पी पर हममें बहुत मायूसी और नाराज़गी फैली। तब से मेरे दिल में यह विश्वास घर कर गया है कि श्री शास्त्री कर्मवीर नहीं हैं और संकट-काल उनकी प्रतिभा के अनुकूल नहीं पड़ता।" (पृष्ठ ४१)

एक स्थान पर तिलक के प्रमुख शिष्य श्री खापर्डे और माडरेट नेता सर रासबिहारी घोष की बातचीत का प्रसंग है। वह इस प्रकार है—

"खापर्डे कहने लगे कि गोखले ब्रिटिश सरकार के एजेन्ट थे। उन्होंने लन्दन में मेरे ऊपर भेदिये का काम किया।......सर रासबिहारी बोले—गोखले पुरुषोत्तम थे। मैं किसी को उनके ख़िलाफ़ एक शब्द न बोलने दूँगा। तब खापर्डे श्रीनिवास शास्त्री की बुराई करने लगे। लेकिन उन्होंने कोई नाराज़गी नहीं दिखाई। इसके बाद श्री खापर्डे उनके मुक़ाबिले में तिलक की तारीफ़ करने लगे। बोले—'तिलक निस्सन्देह महापुरुष, एक आश्चर्य-जनक पुरुष, महात्मा हैं।' सर रासबिहारी बोले—महात्मा! मैं ऐसे महात्माओं से नफ़रत करता हूँ।"

इसी प्रकार लिबरल पार्टी की नीति और उसके नेताओं के बारे में अनेक प्रसंग आये हैं, जिनसे बड़ा मनोरंजन होता है तथा तत्कालीन लिबरल नेताओं के सम्बन्ध में—जो कांग्रेस के भी कर्ताधर्ता थे—व्यक्तिगत बातें मालूम होती हैं। साथ ही इससे उनकी विचार-प्रवृत्तियों का भी अनुमान लगाया जा सकता है।

ख़िलाफ़त-आन्दोलन, मुसलमान नेताओं और सम्प्रदायवादियों पर ऐसा जान पड़ता है कि नेहरू जी की प्रारम्भ से ही वक्रदृष्टि रही है। 'मेरी कहानी' में इनकी तीव्र आलोचना की गई है। मुसलमानों के नेता श्री मुहम्मद अली जिन्ना के व्यक्तित्व का चित्रण बड़ी ख़ूबी के साथ हुआ है। एक स्थान पर लिखा है—

"सरोजिनी नायडू ने उन्हें (मि० जिन्ना) 'हिन्दू-मुसलिम एकता का दूत' कहा था......उस खद्दरधारी भम्भड़ में जो हिन्दुस्तानी में व्याख्यान देने का मतालबा करती थी, वह अपने को बिलकुल बेमेल पाते थे।...... आगे जाकर एकता का यह पुराना एलची उन प्रतिगामी लोगों में मिल गया जो मुसलमानों में बहुत ही सम्प्रदायवादी थे।"

मौलाना मोहम्मद अली देश के बड़े मुसलिम नेताओं में थे, किन्तु 'कोकोनडा की कांग्रेस और मुहम्मद अली' शीर्षक परिच्छेद को पढ़कर मौलाना साहब के विचारों का पूर्णतया बोध हो जाता है। पंडित जी ने अली भाइयों को उसी वक़्त से सम्प्रदायवादी समझ रक्खा था जब वे ख़िलाफ़त-आन्दोलन के कर्ताधर्ता थे और कांग्रेस के स्तम्भ थे। नेहरू जी के मत के अनुसार—"अली भाइयों ने भी, जो ख़ुद मज़हबी तबीअत के आदमी थे, इस सिलसिले को (मौलवियों का प्रभाव बढ़ाने में) और ताक़त दी।" अली बन्धुओं के सम्बन्ध में दो अवतरण अधिक रोचक हैं—

"मुहम्मद अली ने कहा—कोई भी क़ुरान को अपने दिमाग़ का दरवाज़ा खोलकर और एक जिज्ञासु की भावना से पढ़ेगा तो ज़रूर ही वह उसकी सचाई का क़ायल हो जायगा। उन्होंने यह भी कहा कि बापू (गांधी जी) ने उसे ग़ौर से पढ़ा है और वे ज़रूर इस्लाम की सचाई के क़ायल हो गये होंगे। लेकिन उनके दिल की मग़रूरी उन्हें उसको ज़ाहिर करने से मना करती है।" (पृष्ठ १४६)

"लाहौर कांग्रेस के वक़्त आख़िरी दफ़ा, मैं उनसे मिला था।......उन्होंने मुझे गम्भीर चेतावनी दी—जवाहर! मैं तुम्हें चेताये देता हूँ कि तुम्हारे आज के ये साथी-संगी सब तुमको अकेला छोड़ देंगे। जब कोई मुसीबत का और आन-बान का मौक़ा आयेगा उसी वक़्त ये तुम्हारा साथ छोड़ देंगे। याद रखना ख़ुद तुम्हारे कांग्रेसी ही तुम्हें फाँसी के तख़्ते पर भेज देंगे।' कैसी मनहूस भविष्य-वाणी थी!" (पृष्ठ १४७)

कांग्रेस-आन्दोलन और उसके नेताओं की नीति पर भी 'मेरी कहानी' में आलोचनात्मक दृष्टि डाली गई है। अपने पिता स्वर्गीय पंडित मोतीलाल नेहरू, महात्मा गांधी, पं० मदनमोहन मालवीय, लाला लाजपतराय, देशबन्धु दास, जे० एम० सेन गुप्त, अब्दुल गफ़्फ़ार ख़ाँ, डाक्टर अन्सारी, हकीम अजमल ख़ाँ आदि का भी प्रसंग के अनुसार ज़िक्र किया गया हुई थी। नेहरू जी ने स्वयं सम्बन्ध में अनेक० एन० राय के बुद्धि-वैभव का मुझ पंडित मोतील पड़ा।" (पृष्ठ १९०) इसी प्रकार सारी सचाई और नि से अंत तक भारत के इस विशाल समुदाय स्नग़क्र प्रेजगवश हुआ है, जिससे नेहरू जी के हृदय की विशालता का परिचय मिलता है।

पहले वे माडरेट थे, बाद को वे उग्र कांग्रेसी बन गये थे। अनेक स्थलों पर स्वर्गीय नेहरू जी के व्यक्तित्व पर सुन्दर प्रकाश पड़ता है। कुछ अवतरण इस प्रकार हैं—

"लेकिन जहाँ मैं उनकी इज़्ज़त करता था और उन्हें बहुत ही चाहता था, वहाँ मैं उनसे डरता भी था। नौकर-चाकर और दूसरों पर बिगड़ते हुए मैंने उन्हें देखा था। उस समय वे बड़े भयंकर मालूम होते थे और मैं मारे डर के काँपने लगता था।......उनका स्वभाव दर असल भयंकर था और उनकी आयु के ढलते दिनों में भी उनका-सा ग़ुस्सा मुझे किसी दूसरे में देखने को नहीं मिला। लेकिन ख़ुशक़िस्मती से उनमें हँसी-मज़ाक का माद्दा बड़े ज़ोर का था और वे इरादे के बड़े पक्के थे।" (पृष्ठ १०)

पंडित मोतीलाल जी 'स्वराज्य-पार्टी' के लीडर थे। स्वराज्य-पार्टी ने असेम्बली में अपना बहुमत क़ायम कर लिया था। इस सम्बन्ध में एक स्थान पर लिखा है—

"पिता जी असेम्बली के कामों में उसी तरह तैरने लगे जैसे बत्तख़ पानी में।" (पृष्ठ १६०)

स्वराज्य-पार्टी के साथ महामना मालवीय जी की नेशनलिस्ट पार्टी का भी प्रसंग आया है। इस प्रसंग में महामना मालवीयजी के सम्बन्ध में कई बातें लिखी हैं। कहीं कहीं मालवीय जी की नीति और देश-प्रेम की सुन्दर व्याख्या की गई है। कुछ अवतरण इस प्रकार हैं—

"नई नेशनलिस्ट पार्टी अधिक माडरेट या गरम दृष्टि-कोण की प्रतिनिधि थी। वह निश्चित रूप से स्वराज्य-पार्टी से ज़्यादा सरकार की तरफ़ झुकी हुई थी।" पृष्ठ (१९३)

"पुराने ताल्लुक़ात की वजह से वे कांग्रेस में ज़रूर बने हुए थे, लेकिन उनका (मालवीय जी) दिमाग़ी दृष्टिकोण लिबरलों या माडरेटों के दृष्टिकोण से ज़्यादा भिन्न न था।" (पृष्ठ १९३)

"उनकी आवाज़ की तरफ़ लोगों का ध्यान अब भी ... विस्तार के साथ ... ने हैं उसे अब बहुत-दुरुस्त ढंग से वर्णन और विवेचन कि ... की परवाह ही को कई ... आज़ादी के लिए जेलों में ... हैं।" (पृष्ठ ७२८) ... ने उन्हों ...

यह अवतरण काव्यात्मक शैल ... जेलों ... हैसा-सम्बन्धी ... हरण है। ... । 'मेरी कहानी' में ...

विचार-स्वातंत्र्य और ऐति ... वनात्मक रीति से यदाकदा मतभेद प्रकट करते हुए अपनी नीति का प्रति-पादन किया है। नेहरू जी एक युद्ध-प्रिय नेता हैं, संघर्ष ही उनके जीवन की प्रधानता है। महात्मा जी ने जितने आन्दोलनों का संचालन किया, कुछ दिन बाद वे महात्मा जी की प्रेरणा या देश में मतभेद के कारण असफलता को प्राप्त हुए, इस पर नेहरू जी ने अपनी स्पष्ट राय ज़ाहिर की है। इस सम्बन्ध में महात्मा जी के कुछ विचारों से मत-भेद भी ज़ाहिर किया है। कुछ अवतरण इस प्रकार हैं—

"यों मजमों से मुझे परहेज़ न था, मगर गांधी जी के साथ चलनेवालों का जैसा हाल होता है, यानी धक्के खाना और अपने पैर कुचलवाना ये मुझे ललचाने को काफ़ी न थे।"

"वे अकसर कहते थे कि 'दरिद्र नारायण' के लिए धन चाहिए।...मुझे यह बात पसन्द नहीं थी। क्योंकि मुझे तो दरिद्रता एक घृणित चीज़ मालूम होती थी, जिससे लड़कर उसे उखाड़ फेंकना चाहिए, न कि उसे बढ़ावा देना चाहिए।" (पृष्ठ २३७)

सत्याग्रह-आन्दोलन को महात्मा जी ने चौरीचौरा-कांड के बाद स्थगित कर दिया था। इस पर नेहरू जी ने अपनी दलीलों से यह ज़ाहिर किया है कि गांधी जी ने यह ग़लती की थी और अपनी ओजस्विनी आलोचना में अपना मत प्रकट किया है। इसी प्रकार अनेक स्थलों पर महात्मा जी और उनके भक्तों की प्रशंसा भी की है। सरदार वल्लभभाई पटेल के लिए एक स्थान पर लिखा है—"सरदार वल्लभभाई से बढ़कर हिन्दुस्तान में कोई दूसरा गांधी जी का भक्त नहीं है।" नेहरू जी ने महात्मा जी की आलोचना के साथ ही अनेक स्थलों पर उनकी भूरि भूरि प्रशंसा की है। उनकी सचाई, आध्यात्मिकता, और चरित्र-बल के वे क़ायल हैं। उदाहरणार्थ—

"असहयोग जनता का एक आन्दोलन था। उसका अगुआ था ऐसा दबंग शख़्स जिसे हिन्दुस्तान के लोग बड़े भक्ति-भाव से देखते थे।" (पृष्ठ ८५)

"गांधी जी का ज़ोर किसी किसी सवाल को बुद्धि से समझने पर कभी नहीं होता था, बल्कि चरित्र-बल और पवित्रता पर होता था, और उन्हें हिन्दुस्तान के लोगों को दृढ़ता और चरित्र-बल देने में आश्चर्यजनक सफलता ... ठीक है।" (पृष्ठ ९३)

"कुछ कुछ तो गांधी जी के शब्द मेरे कानों में खटकते थे जैसे 'राम-राज्य' जिसे फिर वे लाना चाहते थे। लेकिन मैं इसी ख़याल से तसल्ली कर लिया करता था कि गांधी जी ने उसका प्रयोग इसलिए किया है कि इन शब्दों को सब जानते हैं और जनता उन्हें समझ लेती है। उनमें जनता के हृदय तक पहुँच जाने की विलक्षण स्वाभाविक शक्ति थी।" (पृष्ठ ९०)

पं० जवाहरलाल जी ने 'मेरी कहानी' में गांधी जी के लिए 'महात्मा' का शब्द दो ही एक स्थानों में प्रयोग किया है। इस सम्बन्ध में उन्होंने जो दलील दी है वह भी बड़े मार्के की है—

"मैंने इस पुस्तक में सब जगह महात्मा गांधी के बजाय गांधी जी लिखा है, क्योंकि वह ख़ुद 'महात्मा गांधी' के बदले 'गांधी जी' कहा जाना पसन्द करते हैं। अँगरेज़ लेखकों के लेखों और पुस्तकों में मैंने इस 'जी' की विचित्र व्याख्यायें देखी हैं। कुछ ने कल्पना कर ली है कि वह प्यार का शब्द है, और गांधी जी के मानी हैं 'नन्हें से प्यारे गांधी'। यह बिलकुल वाहियात है।" (पृष्ठ ३८)

देश में जितने आन्दोलन हुए वे प्रायः एक के बाद दूसरे असफल होते गये। ऐसा क्यों हुआ, इस पर भी नेहरू जी ने विहंगम दृष्टि डाली है। नेहरू जी ने यह साफ़ तौर से लिखा है कि असफलता की ज़िम्मेदारी कुछ तो कांग्रेस में घुस आनेवाले ग़ैर-ज़िम्मेदार कार्यकर्ताओं पर और कुछ देश के वातावरण के परिवर्तन पर है। इनमें साम्प्रदा-यिक लोगों के सिवा सरकार के राजनैतिक दाँव-पेचों का भी विशेष हाथ रहा है। 'कौंसिल-प्रवेश', 'किसान-आन्दो-लन', 'नमक-सत्याग्रह' आदि की असफलताओं के रहस्यों का भी उद्घाटन ज़ोरदार दलीलों के साथ किया है। पुस्तक का तीन हिस्सा आलोचना और वर्णन से भरा हुआ है। जेल में अधिक रहने के कारण यद्यपि नेहरू जी को कहीं कहीं आन्दोलनों के सम्बन्ध में कुछ ज्ञातव्य बातों का विवरण नहीं मिल सका है—जैसा कि उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है—तो भी उपलब्ध सामग्री इतनी यथेष्ट है कि उसके वर्णन और आलोचनात्मक चित्रण में काफ़ी सजी-वता आ गई है।

किसान और मज़दूर—पंडित जवाहरलाल नेहरू ने 'अपनी कहानी' में प्रायः मज़दूरों और किसानों की माँगों का, उनकी उन्नति और संगठन का पक्ष समर्थन किया है। उनके स्वार्थ में जो रुकावटें पड़ीं या पड़ रही हैं उनकी हर जगह मुख़ालिफ़त की है। नेहरू जी में यह भावना विद्यार्थी जीवन से ही है। पुस्तक के प्रारंभिक अंशों और घटनाओं के पढ़ने से इस बात का परिचय प्राप्त होता है। विलायत में शिक्षा पाने के समय से ही उनके हृदय में इस भावना का उदय हो चुका था। भारत में जब वे आये और सार्वजनिक कामों में भाग लेने लगे तब 'अवध के किसान-आन्दोलन' ने उनके हृदय पर गहरा प्रभाव डाला। इन्हीं किसान-सभाओं के द्वारा नेहरू जी को भाषण करने की शक्ति प्राप्त हुई। 'किसानों में भ्रमण' परिच्छेद में उन्होंने किसानों की दरिद्रता और संकट का अच्छा दिग्दर्शन कराया है। 'युक्तप्रांत में करबंदी', 'युक्त-प्रांत में किसानों-संबंधी दिक़्क़तें' और 'ट्रेडयूनियन कांग्रेस' के परिच्छेद इसी प्रकार के विचारों से ओत-प्रोत हैं। ग़रीबी की कठिनाइयों का नेहरू जी को अच्छा अनुभव है और उसे दूर करने में उनकी प्रेरणा है। उन्होंने अपने विचारों को निर्धन श्रेणी के विचारों के अनुरूप बना लिया है। यही कारण है कि वे इस समस्या को बड़ी ख़ूबी और विवेचना-त्मक ढंग से अंकित करने में सफल हुए हैं। भारत में ही नहीं, जब जब नेहरू जी ने योरप की यात्रा की थी तब तब वहाँ भी इसी समुदाय के विचारों का स्वागत किया और उसके आन्तरिक स्वरूप को समझने की चेष्टा की। 'ब्रूसेल्स में पीड़ितों की सभा' लेख में योरप के पीड़ितों तथा वहाँ के मज़दूरों की नीति और आन्दोलन का जीता-जागता चित्र चित्रित किया है। भारत में मज़दूरों के समर्थक और नेता श्री एन० एम० जोशी की नेहरू जी ने बड़ी प्रशंसा की है। नेहरू जी में समाजवाद की भावना बहुत कुछ इसी श्रेणी के लोगों के कारण प्राप्त हुई है और समाजवाद की व्याख्या भी उनके अनुरूप हुई है। समाजवादी नेता श्री एम० एन० राय से उनकी मुलाक़ात मास्को (रूस) में हुई थी। नेहरू जी ने स्वयं लिखा है—"एम० एन० राय के बुद्धि-वैभव का मुझ पर अच्छा असर पड़ा।" (पृष्ठ १९०) इसी प्रकार सारी पुस्तक में प्रारंभ से अंत तक भारत के इस विशाल समुदाय का ज़िक्र प्रसंगवश हुआ है, जिससे नेहरू जी के हृदय की विशालता का परिचय मिलता है।

विदेशी राजनीति—नेहरू जी ने पिछले वर्षों में दो-एक बार योरप की यात्रा की। जर्मनी, स्विट्ज़लैंड, फ़्रांस, इँग्लैंड और रूस आदि देशों में जाकर वहाँ के सार्वजनिक आन्दोलनों का अध्ययन किया। योरप की समस्याओं का वर्णन नेहरू जी ने 'योरप में', 'आपसी मतभेद,' 'ब्रूसेल्स में पीड़ितों की सभा,'-शीर्षक स्तम्भों में भली भाँति किया है। इन परिच्छेदों में राजनैतिक विचारों को लिपि-बद्ध करने के सिवा विदेशों में निर्वासित कई भारतीयों का भी ज़िक्र किया है। इन अंशों को पढ़कर निर्वासितों के संबंध में कई ज्ञातव्य बातें मालूम होती हैं। ऐसे स्थल मनोरंजक हैं। राजा महेन्द्रप्रताप, श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा, लाला हरदयाल, मौलवी उबैदुल्ला, मौलवी बरकत उल्ला, वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, एम० एन० राय और चम्पक रमन पिल्ले के विचारों और उनके व्यक्तिगत जीवन की अनेक घटनाओं का विवरण प्राप्त होता है। सन् १९२७ में ब्रूसेल्स में होनेवाली पीड़ितों की कान्फ़रेंस में नेहरू जी शामिल हुए थे। इस कानफ़रेंस के सभापति ब्रिटेन के मज़दूर-नेता जार्ज लांसबरी थे। नेहरू जी ने जार्ज लांसबरी की राजनीति को बड़े विनोदात्मक ढंग से लिखा है। भारत की ही भाँति योरप में भी पूँजीवाद के विरुद्ध एक आन्दोलन हो रहा है। कम्यूनिस्टों का प्रचार-कार्य बढ़ रहा है, इसका भी ज़िक्र किया है। इस स्तम्भ से योरप की राजनैतिक उथल-पुथल पर गहरा प्रकाश पड़ता है। रूस के भ्रमण ने तो नेहरू जी को "अध्ययन करने की एक बुनियाद दे दी।"

व्यक्तिगत बातें—ग्रंत में हम नेहरू जी की व्यक्तिगत बातों और सौजन्य-पूर्ण विचारों का बिना उल्लेख किये नहीं रह सकते। नेहरू जी ने 'अपनी कहानी' में व्यक्तिगत बातें भी लिखी हैं। जहाँ उन्होंने औरों के संबंध में स्पष्टवादिता से काम लिया है, वहाँ अपने लिए भी वही रुख़ अख़्तियार किया है। वे मुसीबतों से घबरानेवाले नहीं। संघर्षमय जीवन के वे क़ायल हैं। अपने परिवार, मालीहालत का भी यथास्थान स्पष्टता के साथ लिखा है। कुछ स्थल तो बड़े हृदयविदारक हैं, मार्मिक भावना से भरे हैं। स्वर्गीय कमला नेहरू के संबंध में कुछ अवतरण इस प्रकार हैं—

अपने परिवार में शान्ति और सान्त्वना मिली है। मैंने महसूस किया कि इस दिशा में मैं ख़ुद कितना अपात्र निकला। यह सोचकर मुझे शर्म भी मालूम हुई। मैंने महसूस किया कि सन् १९२० से लेकर मेरी पत्नी ने जो उत्तम व्यवहार किया उसका मैं कितना ऋणी हूँ। स्वाभिमानी और मृदुल स्वभाव की होते हुए भी उसने न मेरी सनकों ही को बरदाश्त किया, बल्कि जब जब मुझे शान्ति और तसल्ली की सबसे ज़्यादा ज़रूरत थी तब तब वह उसने मुझे दी।" (पृष्ठ १३०)

श्रीमती कमला नेहरू के संबंध में कई स्थानों पर कुछ मार्मिक बातें लिखी गई हैं और वे करुणा से पूर्ण हैं। ऐसा जान पड़ता है कि नेहरू जी ने स्वयं ऐसे मार्मिक विषयों की उपेक्षा की है [illegible] ऐसे अवतरणों को पढ़ने से वेदना का अनुभव होता है [illegible]

परिवार के लोगों में [illegible] माता श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू, श्री विजयालक्ष्मी [illegible] श्रीमती कृष्णा नेहरू और श्री रनजीत पंडित का ज़िक्र [illegible] किया है। अपनी आर्थिक स्थिति का दिग्दर्शन भी [illegible] है। लोगों को यह मालूम है कि पं० मोतीलाल जी [illegible] से कपड़ा धुलवा कर मँगवाते थे। इस संबंध में [illegible] जी ने उत्तेजना-पूर्ण और स्पष्ट विचार प्रकट किये हैं—

"मुझे पता लगा कि [illegible] पिता जी और मेरे बारे में एक बहुत प्रचलित कहावत [illegible] है कि हम हर हफ़्ते अपने कपड़े पेरिस की किसी ल[illegible] धुलने को भेजते थे।... इससे ज़्यादा अजीब और [illegible] हयात बात की कल्पना भी मैं नहीं कर सकता। अगर कोई इतना मूर्ख हो कि वह ऐसे झूठे बड़प्पन के लिए इस तरह की फ़िज़ूलख़र्ची करे, तो मैं समझता हूँ कि वह अ[illegible] दर्जे का उल्लू ही समझा जायगा।" (पृष्ठ २५२)

पं० जवाहरलाल [illegible] ने अपने को व्यक्तिगत रूप से 'हिन्दू' और 'ब्राह्मण' [illegible] किया है। यह एक मार्के की बात है। आज-कल [illegible] ग्रेस के हिन्दू-नेता प्रायः इस विचार के हैं कि वे अपने [illegible] 'हिन्दू' कहने और 'हिन्दूत्व' का समर्थन करने में लज्जा [illegible] अनुभव करते हैं। नेहरू जी ने 'हिन्दूत्व' की अत्यधि[illegible] प्रशंसा की है। कांग्रेस के एक नेता के लिए, फिर पंडि[illegible] जवाहरलाल जी ऐसे व्यक्ति [illegible]

सहन प्रारंभ में विलायती ढङ्ग का रहा है, बड़े गौरव का विषय है। उन्होंने हिन्दूधर्म की शालीनता और उदारता की अत्यधिक प्रशंसा की है। वे एक स्थान पर लिखते हैं—

"बहुत-से मुसलमानों के लिए तो यह शायद और भी मुश्किल हो, क्योंकि उनके यहाँ विचारों की आज़ादी मज़हबी तौर पर नहीं दी गई। विचारों की नज़र से देखा जाय तो उनका सीधा मगर तङ्ग रास्ता है और उसका अनुयायी ज़रा भी दाहने-बायें नहीं जा सकता। हिन्दुओं की हालत इससे कुछ अलग है। व्यवहार में चाहे वे कट्टर हों, उनके यहाँ बहुत पुराने बुरे और घसीटनेवाले रस्म-रवाज माने जाते हैं, फिर भी वे हमेशा धर्म के विषय में निहायत क्रांतिकारी और मौलिक विचारों की चर्चा करने के लिए भी हमेशा तैयार रहते हैं।......हिन्दू-धर्म को साधारण अर्थ में मज़हब नहीं कह सकते। और फिर भी कितने गज़ब की दृढ़ता उसमें है! अपने आपको ज़िन्दा रखने की कितनी ज़बर्दस्त ताक़त! भले ही कोई अपने को नास्तिक कहता हो—जैसा कि चार्वाक था, फिर भी कोई यह नहीं कह सकता कि वह हिन्दू नहीं रहा।" (पृष्ठ १४५)

नेहरू जी को 'ब्राह्मणत्व' और 'पंडित' शब्द से नफ़रत नहीं है। वे स्वयं लिखते हैं—"मैं एक ब्राह्मण पैदा हुआ था और मालूम होता है कि ब्राह्मण ही रहूँगा, फिर मैं धर्म और सामाजिक रस्म- रवाज के बारे में कुछ भी कहता और करता रहूँ। हिन्दुस्तानी दुनिया के लिए मैं पंडित ही हूँ।" (पृष्ठ १४५)

इसी प्रकार के अनेक क्रांतिकारी विचार पंडित जी ने 'मेरी कहानी' में अंकित किये हैं। 'अन्तर्जातीय विवाह और लिपि का प्रश्न' स्तम्भ में उन्होंने वैवाहिक समस्या पर अच्छा प्रकाश डाला है। हिन्दी-भाषा और हिन्दुस्तानी-लिपि पर भी अपनी विशेष राय दी है। इसी प्रसंग में उन्होंने हिन्दी के अख़बार-नवीसों की भी थोड़ी सी ख़बर ली है। उन्होंने लिखा है—"हिन्दी के साहित्यिक और सम्पादक कितने ज़्यादा तुनुकमिजाज़ हैं"। "आत्म-आलोचना की हिन्दी में पूरी कमी है और आलोचना का स्टैंडर्ड बहुत नीचा है।" लेकिन "किसी दिन देश में हिन्दी के अख़बार एक ज़बर्दस्त ताक़त बन जायँगे, लेकिन जब तक हिन्दी के लेखक और पत्रकार पुरानी रूढ़ियों और बन्धनों से अपने आपको बाहर नहीं निकालेंगे और आम जनता को साहस के साथ संबोधित करना न सीखेंगे तब तक उनकी अधिक उन्नति न हो सकेगी।" (पृष्ठ ५५३)

'मेरी कहानी' के अन्त में 'परिशिष्ट' में स्फुट पत्र-व्यवहार प्रकाशित किया गया है। फिर 'निर्देशिका' दी गई है। अंतिम भाग में 'उपसंहार' का चैप्टर बड़ा ही भावपूर्ण और पं० जवाहरलाल जी के व्यक्तिगत या निजी भावना का एकीकरण है। यह स्तम्भ कुछ काव्यात्मक-सा हो गया है। इसमें उन्होंने अपने सिद्धान्तों, विचारों और नीति का थोड़े शब्दों में स्पष्ट प्रतिपादन किया है। उन्होंने अन्त में लिखा है—

"अगर अपने मौजूदा ज्ञान और अनुभव के साथ मुझे अपने जीवन को फिर से दुहराने का मौक़ा मिले तो इसमें शक नहीं कि मैं अपने व्यक्तिगत जीवन में अनेक तबदीलियाँ करने की कोशिश करूँगा......लेकिन सार्वजनिक विषयों में मेरे प्रमुख निर्णय ज्यों के त्यों बने रहेंगे क्योंकि वे मेरी अपेक्षा कहीं अधिक ज़बर्दस्त हैं......।" (पृष्ठ ७२८)

इस प्रकार 'मेरी कहानी' एक गौरवपूर्ण और सुन्दर ग्रन्थ है। इसे पढ़कर कितनी ही ज्ञातव्य बातें हृदय-पटल पर अंकित हो जाती हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि भारतवर्ष के एक बड़े नेता के—जिसका घराना आज़ादी के युद्ध में हृढ़परिकर है, जिसके चेहरे पर हास्य, गम्भीरता और संघर्ष के चिह्न निरन्तर अमिट हो रहते हैं—मानसिक विचारों का यह सुन्दर लिपिबद्ध इतिहास हमें उन्नति के मार्ग में अग्रसर होने का संदेश देता है। मूल ग्रन्थ अँगरेज़ी-भाषा में है। इसके हिन्दी-सम्पादक पंडित हरिभाऊ उपाध्याय तथा 'सस्ता-साहित्य-मंडल' भी बधाई के पात्र हैं जिन्होंने ऐसे सुन्दर ग्रन्थ को हिन्दी-भाषियों के सामने उपस्थित किया है।*

---

* 'मेरी कहानी' पंडित जवाहरलाल नेहरू की आत्म-कथा। हिन्दी सम्पादक—श्री हरिभाऊ उपाध्याय; प्रकाशक—सस्ता-साहित्य-मंडल दिल्ली। आकार डिमाई [illegible]

[महाराना कुम्भ का विजय-स्तम्भ (चित्तौर)।]

उदयपुर-यात्रा

लेखक, श्रीयुत दि० नेपाली बी० ए०

उदयपुर के सम्बन्ध में हिन्दी में काफ़ी सचित्र लेख प्रकाशित हो चुके हैं। पर यह लेख उन सबसे भिन्न है। इसके लेखक नैपाल के एक सम्भ्रान्त व्यक्ति हैं और आपने एक विशेष दृष्टिकोण से उदयपुर के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किये हैं। इस लेख के साथ जो चित्र हैं वे भी सर्वथा नवीन हैं।

नवम्बर की रात थी जब मैं 'पंजाब-एक्सप्रेस' से पश्चिम की ओर जा रहा था। मेरे दिमाग़ में तरह तरह के ख़याल आ रहे थे कि वह देश कैसा होगा, लोग कैसे होंगे। मैंने सुन रक्खा था कि वह ऐसी जगह है, जहाँ ऊँचे पहाड़ हैं, जिन्होंने बहादुर राजपूतों को आश्रय दिया था। राजपूतों की इस वीर-भूमि के बारे में मैंने जो कथायें पढ़ी थीं उनसे नाना काल्पनिक चित्रों का मानस-पटल में उदित होना स्वाभाविक था।

जाड़ा शुरू ही हुआ था, तो भी गाड़ी जितना ही पश्चिम की ओर जा रही थी, सर्दी भी उतनी ही बढ़ती मालूम पड़ती थी। मैं इन्टर क्लास का यात्री था। गाड़ी में शोर-गुल इतना था कि नींद नहीं पड़ी।

लिए वहीं उतर पड़े। देहली-मेल के आने में ढाई घण्टे बाक़ी थे। मैंने अपने मित्र को जो फ़र्स्ट क्लास के पैसेन्जर थे, वेटिंग-रूम में विश्राम करने के लिए कहा। परन्तु वे राज़ी न हुए और हमने प्लेटफ़ार्म पर ही अपना बिस्तरा लगाया। मुझे अब भी नींद नहीं थी। राजस्थान के ख़याल उसी तरह मेरे दिमाग़ में चक्कर काट रहे थे।

कोई परिचित आदमी तो वहाँ था नहीं, जिससे मैं उदयपुर के बारे में बातें करता और अपने कल्पित चित्रों से उसकी तुलना करता। कुछ देर बाद मैंने भी वहीं व्हीलर के स्टाल पर अपना बिस्तरा लगा दिया। उसी समय एक रोचक घटना घटी, जो अब भी मुझे हँसा देती है। गाड़ी आने में देर थी और बहुत-से मुसाफ़िर इधर-उधर टहल रहे थे। इतने में एक सज्जन ने मुझे व्हीलर के स्टाल पर पड़ा देखकर मुझे व्हीलर का एजेन्ट समझ लिया।

न लेकर कहा कि मैं भी आपकी ही तरह एक मुसाफ़िर हूँ, व्हीलर का एजेन्ट नहीं हूँ। वे सज्जन शर्मिन्दा होकर मुझसे माफ़ी माँग चले गये। सुबह होने पर जब मैंने अपने मित्र से यह कथा सुनाई तब वे भी बहुत हँसे और उदयपुर तक मुझे व्हीलर का एजेन्ट कहकर ही सम्बोधित करते रहे।

दूसरे दिन ९ बजे हमारी गाड़ी आगरा पहुँची। बी० बी० सी० आई० रेलवे की गाड़ी में हम लोगों को यहाँ सवार होना था। ट्रेन में ९ घण्टे की देर थी, किन्तु उसके लिए क्या चिन्ता थी, जब हम आगरा में मौजूद थे। जलपान कर हम लोग ताजमहल की ओर चल पड़े। रास्ते में आगरे के प्रसिद्ध क़िले को देखकर मुझे बहुत ख़ुशी हुई। यह हिन्दू-मुस्लिम कला का एक सुन्दर नमूना है।

[उदयपुर—जगन्नाथ मन्दिर और शहर के कुछ अंश का दृश्य।]

भीतर कितनी ही संगमरमर की इमारतें हैं। एक कोठरी ऐसी है जिसको बन्द कर देने पर भी उसके अर्धपारदर्शक पत्थरों-द्वारा भीतर रोशनी आती रहती है। हमारे पथप्रदर्शक को तो मुग़ल-साम्राज्य का सारा इतिहास मुखस्थ-सा था। उनको क़िला-सम्बन्धी अनेक क़िस्से याद थे और उन क़िस्सों को वे इस तरह कहते थे, मानो उन्होंने वे सारी घटनायें अपनी आँखों देखी हों। ऐतिहासिक घटनाओं के बीच बीच में वे मज़ाकिया ढंग से मुग़ल बादशाहों की रासलीलाओं का भी वर्णन करते जाते थे।

क़िला देखने के बाद हम लोग सीधे ताजमहल की ओर बढ़े। दुनिया की इस प्रसिद्ध इमारत को अभी तक मैंने तसवीरों में ही देखा था। उसे साक्षात् देखकर मेरा ख़ुशी का कोई ठिकाना न रहा। मैं बहुत देर तक टकटकी लगाये उसे देखता रहा। मैं सोच रहा था कि घर लौटने पर ताज के बारे में पूछने पर मेरा उत्तर क्या होगा। ताज की तारीफ़ आँखें ही कर सकती हैं—ज़बान नहीं। शाम को हम लोग गाड़ी पर सवार हो गये। रात होने के कारण रास्ते की चीज़ें नहीं देख सकते थे।
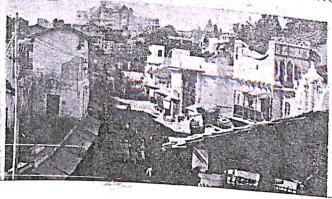
हाँ, भरतपुर का दही-बड़ा अभी तक याद है! सुबह सात बजे आँखें खुलीं। आसमान में लाली छा रही थी। इस लाली में वृक्ष-रहित पर्वत भी लाल मालूम पड़ते थे। चारों तरफ़ जिस ओर नज़र दौड़ती, सूखी ज़मीन के सिवा और कुछ नहीं देख पड़ता था। हाँ, कहीं कहीं गेहूँ की खेती नज़र आती थी। धान राजपूताने में होता ही नहीं। उदयपुर में सुनने में आया
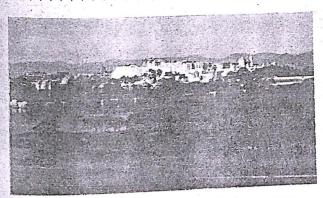
[उदयपुर—"पेग्स फ़ीडिङ्ग" (सूअरों को खाना देना) नामक स्थान से शहर का दृश्य।]

सारी प्रजा को दीवाली के अवसर पर ही भात खाने को मिलता है।

हमारी गाड़ी कितने राज्यों की सीमाओं को पार करती हुई धक धक करती जा रही थी। राजपूताने में कितने ही ऐसे छोटे-छोटे राज्य हैं जिनका अधिकांश मरुभूमि ही है। अतः वहाँ के राजा लोग बहुत अमीरी ठाटबाट या शौक़ीनी रहन-सहन नहीं रख सकते। साधारण जनसमुदाय के विषय में तो कहना ही क्या है। वे तो हिन्दुस्तान में सर्वत्र ही ग़रीब हैं। पहाड़ों को लाँघती हुई हमारी गाड़ी इस मरुप्राय देश में जा रही थी। पहाड़ और गाड़ी से मानो बाज़ी लगी हुई थी, किन्तु इसमें पहाड़ों की ही जीत जान पड़ती थी। हमारी आँखें थक
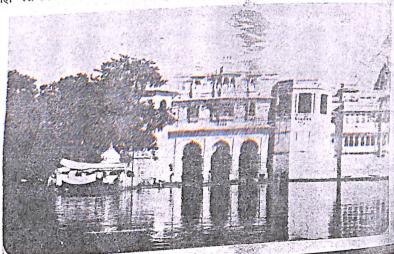
[उदयपुर—

से परिचित मेरे नेत्र उस दीन प्रकृति को देखकर विरक्त-से हो रहे थे। उस समय मैं सोचता था, क्या उदयपुर भी ऐसा ही होगा।

अजमेर के बाद जितने पहाड़ नज़र आये, प्रायः उन सबों पर मैंने क़िलेबन्दी देखी। क़िलों में मज़बूत पत्थर के मकान बने हुए थे। देखने में बहुत पुराने जान पड़ते थे। राजस्थान के बहादुर लड़ाके यहीं रात्रि में आश्रय लेते थे। उन दिनों किसी मुग़ल के लिए उन पहाड़ों का सामना करना आसान न था। मेरी ध्यान-मुद्रा टूट गई जब मेरी गाड़ी चित्तौरगढ़ पहुँची। यहीं से बदलकर उदयपुर-स्टेट-रेलवे पकड़नी थी।

गाड़ी पहले से ही खड़ी थी। सवार होते ही चन्द्रदेव के सहित पश्चिम का नीला नभ साथ ही चल रहा था। हम जल-पान करते हुए उस दिगन्त-व्याप्त पर्वतप्राय मरुभूमि पर अपनी राय भी ज़ाहिर करते जाते थे।

हम लोग चित्तौरगढ़ से चार घंटे में उदयपुर पहुँच

गये। स्टेशन पर हम लोगों को लेने के लिए कुछ सज्जन आये हुए थे। कुछ समय तो जान-पहचान और कुशल-प्रश्न में लगा। फिर मोटर में सवार होकर हम शहर में गये। गेस्ट-हाउस बिजली की रोशनी से जगमगा रहा था। एक छोटी पहाड़ी पर महाराना का महल चमक रहा था। उस समय मुझे कोई भी छोटा मकान नज़र नहीं पड़ा। रात्रि के समय उस विद्युत्प्रकाश में मुझे यही मालूम होता था, मानो सारा उदयपुर जगमग कर रहा है! मैंने अपने मित्र से कहा—हमें अब अपनी सुनी-सुनाई धारणा बदलनी पड़ेगी।

[उदयपुर—"घनघोर नृत्य"—यह बड़े बड़े त्योहार और पर्व के अवसर पर महाराजा के सामने हुआ करता है। वहाँ पर दरबार के प्रतिष्ठित सज्जन लोग उपस्थित रहते हैं।]

प्रातःकाल जब हम लोग उठे तब सात बज चुके थे, किन्तु अभी अँधेरा ही था। उस समय कुछ वृष्टि भी हो रही थी, जिससे प्रकृति का सौन्दर्य कुछ निखर-सा आया था। सघन वृक्षों से ढँके उस पहाड़ पर कुहरा-सा छाया हुआ था, जो शोभा में और भी वृद्धि कर रहा था।

आठ बजे हम लोग बाहर निकलनेवाले थे, प्रोग्राम काफ़ी लम्बा-चौड़ा था, तो भी हम लोगों को रुकना ही पड़ा। किन्तु जल-पान करने के बाद भी पानी नहीं बन्द हुआ। कुछ देर और रुके, किन्तु वहाँ कोई सुनवाई न थी। अन्त में हम लोगों को चलना ही पड़ा, क्योंकि उदयपुर में हम लोगों को गिने-चुने दिन ही बिताने थे, और उन्हीं दिनों में ही मुख्य मुख्य दर्शनीय स्थानों को देखना था। हम लोगों का मोटर शहर की एक मुख्य गली से गुज़र रहा था। इमारतें तो बड़ी बड़ी थीं, किन्तु सड़कें कहिए या गलियाँ हमें बिलकुल रद्दी मालूम पड़ती थीं। उस रोज़ पर्व का दिन था, बाज़ार में काफ़ी चहल-पहल थी। राजपूत लोग बड़ी संख्या में राजमहल की ओर जा रहे थे। स्त्रियों की भी काफ़ी भीड़ थी। इतने बड़े जन-समूह में मैंने बहुत कम लोगों को राजपूती बाने में देखा। अब न वह लम्बी दाढ़ी और मूछें हैं, न वह विराट् शरीर और चौड़े सीने। उनके चेहरों पर कान्ति या तेज भी नहीं, और न वह गेहुँआ रङ्ग ही। नाक पिचकी और आँखें भीतर धँसी हुई देखकर मेरा चित्त प्रसन्न नहीं हुआ।
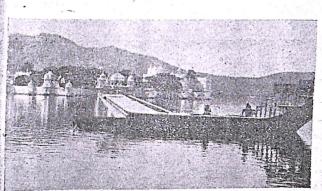
[उदयपुर—जगनिवास—यह मह.ाना का आनन्द-भवन है।]

हम लोग उदयपुर के
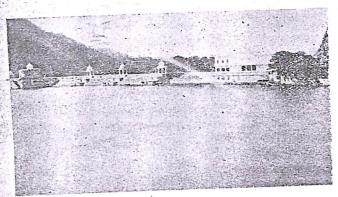
[उदयपुर—'जय-समन्दर' जिसका घेरा ९२ मील है।]

ब्रिटिश के सिक्के के समान ही वज़नदार होते हुए भी मूल्य में कम हो गया है। उदयपुरी रुपया अँगरेज़ी दस आने के बराबर है। उदयपुर में पुराने ज़माने से ही अपना सिक्का है। यहाँ की एकन्नी चाँदी की होती है। यहाँ के अपने सिक्कों पर 'दोस्ते-लंदन' शब्द लिखा होता है।

उदयपुर पहाड़ों के भीतर बसा है। राज्य की उपजाऊ ज़मीन बड़े-बड़े जागीरदारों में बँटी हुई है और प्रत्येक जागीरदार अपनी अपनी जागीर का स्वतंत्र शासक है। प्रजा बहुत ग़रीब, अशिक्षित और बाहरी दुनिया से अपरिचित है। यहाँ के भीलों को जंगल के कन्द-मूल खाकर जीना और फटे-पुराने लत्तों से अपनी लाज ढँकना पड़ता है। भीलों की ऐसी दशा देखकर मैं बहुत दुखी हुआ।

सारे राज्य का भार आठ-दस व्यक्तियों के हाथ में है। यही महाराना को सलाह देते हैं और उसके मुताबिक़ सब काम होता है।

आधुनिक जगत् से उदयपुर बहुत पीछे है। कई देशी राज्यों में निर्वाचन का अधिकार प्रजा को मिल चुका है और असली शक्ति न रहने पर भी जन-सभा राजकाज में अपना मत ज़ाहिर करती है। हम लोगों ने सुना कि यहाँ के अधिकारी राज्य में किसी प्रकार का आन्दोलन पसन्द नहीं करते। आर्यसमाज तक को भी सँभल सँभल कर पैर रखना पड़ता है।

हाल में उदयपुर-राज्य के भीतर 'नाथद्वारा' में कई सिक्के मिले हैं। इन सिक्कों में 'सिविजानपदा' शब्द लिखे हैं, जिससे मालूम पड़ता है कि पाँचवीं-छठी शताब्दी में यहाँ प्रजातन्त्र राज्य था। उस समय इस बहादुर देश में जनसत्ताक शासन था। हिन्दुस्तान में पहले ऐसे बहुत-से प्रजातन्त्र राज्य थे। उन्हीं में से शिवि का भी एक गणतंत्र था। उदयपुर की आर्थिक दशा असन्तोषजनक है। कुछ ही वर्ष पहले अफ़ीम की खेती से उदयपुर-राज्य को काफ़ी आमदनी होती थी। अब इसके रुक जाने से उदयपुर का निर्यात प्रायः बन्द हो गया है और कोई चीज़ व्यापार के लिए बाहर नहीं जाती, बल्कि बाहर से ही खाने-पीने से लेकर कपड़े-लत्ते तक सभी चीज़ें बहुत परिमाण में राज्य में आती हैं। इसलिए वहाँ का सिक्का

हमने उदयपुर से लौटती बार चित्तौरगढ़ को भी देखा। रेलवे-स्टेशन से सिर्फ़ तीन ही मील की दूरी पर एक छोटी-सी पहाड़ी पर यह ऐतिहासिक गढ़ बना हुआ है। चित्तौरगढ़ महाराना प्रताप और उनके पहले समय में भी समस्त राजपूती शक्ति का एक प्रधान केन्द्र था। यहीं अलाउद्दीन ख़िलजी की अपार सेना से महीनों घिरे रहने पर जब सफलता की आशा न रह गई तब पद्मिनी ने अपने को अग्नि को अर्पण किया था। मीराबाई के पूजा-गृह का चिह्न अब भी मौजूद है, और उसका जीर्णोद्धार किया जा रहा है। महाराना कुम्भ का विजय-स्तम्भ भी उस ज़माने की एक शानदार स्मृति है। चित्तौर के भीतर ऐसी ऐसी बहुत सामग्रियाँ हैं जो किसी भी इतिहास-प्रेमी के लिए काफ़ी हैं। चित्तौरगढ़ में वहाँ की बहुत-सी पुरानी चीज़ों को एक बड़े मकान में रखकर एक म्युज़ियम का रूप दिया गया है।

चित्तौरगढ़ की चारों ओर पत्थर की मज़बूत दीवार है, जो दूर से ही बहुत डरावनी मालूम पड़ती है। गढ़ तक गाड़ियों की सड़क बनी हुई है और रास्ते के बीच बीच में बड़े बड़े फाटक हैं जिनको पोल कहते हैं।

एकांकी नाटक

पाप की छाया

लेखक, प्रोफ़ेसर र[illegible]ंकर शुक्र, एम० ए०

[ताल्लुक़ेदार आनन्दमोहन की कोठी का एक कमरा, जो वास्तव में उनकी एकान्त बैठक है। कमरे का ठाट-सजावट का ढंग, पुराने रईसों की रुचि का है। दीवारें हलके सब्ज़ रंग की हैं और उनके ऊपरी छोरों पर ख़ूबसूरत बेलों के रंग डाले गये हैं। दीवारों पर तीन ओर केवल तीन चित्र टँगे हैं, जिनमें से दो चित्रों पर हलके आसमानी रंगवाले रेशम के आवरण पड़े हैं। खुला हुआ चित्र ताल्लुक़ेदार साहब की युवा अवस्था का है। छत के चार कोनों पर चार रंग की शीशे की हंडियाँ टँगी हैं और बीच में एक बहुत बड़ा शीशे का झाड़ लटक रहा है। फ़र्श पर क़ालीन बिछा है और दो बहुत बड़े और ऊँचे गद्दों पर हिमधवल चादरें बिछी हैं, जिनके सहारे क़रीने से कई बड़े तकिये लगाये गये हैं। दरवाज़े से पायंदाज़ से पैर उठाते ही दो कोनों में आबनूसी काम की दो ऊँची, गोल, और मोर की गर्दन पर सधी हुई टेबलों पर रंगीन महकते हुए फूलों के गुलदस्ते रक्खे हैं, जो दोपहरी झेलकर मुरझा-से गये हैं। उत्तर की ओर रंगीन शीशोंवाली खिड़की है और दरवाज़े से दूर बाईं ओर एक पुराने ढंग की टेबल और उसके तीन ओर ऊँची कुर्सियाँ पड़ी हैं। टेबल पर लिखने-पढ़ने का सभी आवश्यक सामान सजा है।

गद्दे पर तकिये के सहारे आनन्दमोहन बैठे हैं। शरीर अधिक स्थूल है। रंग गेहुँआँ और आँखें बड़ी पर चेहरे की मोटाई के कारण कुछ भीतर की ओर हो गई हैं। चश्मा लगाये हुए हैं। बदन पर बनियायन के ऊपर बढ़िया [illegible]दार मलमल का ढीला कुर्ता है, जिसमें शायद इतना इत्र मल दिया गया है कि सारा कमरा ख़ुशबू से भर गया है। ढीला पायजामा पहने हुए हैं। आस-पास बहुत-से काग़ज़ात फैले हुए हैं।

उनके सामने वसुधा-सम्पादक चारुचंद्र बैठे हैं। क़द के आदमी जान पड़ते हैं। गौर वर्ण हैं; किन्तु मूँछ-दाढ़ी हमेशा साफ़ करते रहने से चेहरे पर श्यामता झलक आई है। पोशाक सादी, किन्तु चुस्त है। सारा बाना खादी का है। सिर पर किश्तीनुमा खादी की टोपी लगाये हैं।

आनन्दमोहन और चारुचन्द्र परस्पर बड़े विश्वस्त मित्र हैं। आनन्दमोहन पुरानी ढब के विनोदी साहित्यिक जीव हैं। किन्तु पुराने होने पर भी नवीनता से परहेज़ नहीं करते। [illegible] —कुमारी प्रफुल्ल [illegible] एम० ए० [illegible] के संरक्षक हैं। चारु पर बड़ी कृपा रखते हैं और पारिवारिक अन्तरंग मामलों में प्रायः उनसे सलाह लिया करते हैं। आज भी किसी मसले पर दोनों बैठे बातें कर रहे हैं।]

आनन्द०—मुझे नहीं मालूम था कि दुनिया इतनी आगे बढ़ गई होगी। एक विज्ञापन में ३१ चिट्ठियाँ और १४ तसवीरें! इन विज्ञापनवाली बहुओं का अलबम बनाऊँ या क्या?

चारु०—नहीं साहब, विनोद के लिए इनमें से एक को चुनना होगा और फिर वही तसवीर जीती-जागती आपके घर की शोभा बढ़ायेगी।

आनन्द०—अजी, ये सब इश्तहारी बहुएँ हैं। और इश्तहारी चीज़ें सब नुमायशी होती हैं। समझे!

चारु०—आपने ये सभी पत्र पढ़े होंगे। इनमें अनेक परिवार अत्यन्त प्रतिष्ठित होंगे। सभी लोग अपनी कन्याओं को सुयोग्य बनाना चाहते हैं और श्रेष्ठकुल से नाता जोड़ना चाहते हैं। फिर आपका परिवार तो.........

आनन्द०—यही तो बात है। देखते हो मेरी जायदाद! मुझे इसी की चिन्ता है। ये सब लड़कियाँ मोटर और पेट्रोल की भूखी हैं। इन्हें मोटर की हवा अच्छी लगती है, अँगरेज़ी कम्पनियों और दूकानों में इनकी प्रतिष्ठा बढ़ती है और सिनेमा-थियेटरों में इनका जी

चारु०—परन्तु आपका विनोद भी तो उतना ही शिक्षित है। आप ही कहिए कि यूनीवर्सिटी की सर्वोच्च शिक्षा प्राप्त युवक के लिए आप कैसी जीवन-संगिनी ढूँढ़ना चाहते हैं।

आनन्द०—तुम नौजवानों में अभी समझ की गहराई नहीं है। मैं भी पढ़ा लिखा हूँ, मैंने भी दुनिया देखी है। मैं तुमसे पूछता हूँ कि मान लो (एक तसवीर उठाकर), यह लड़की बी० ए० पास है। देखते हो इसकी सूरत ? आँखों पर चश्मा चढ़ा है और शरीर एक दम काड़ीतोड़ है। यह तो रंग-बिरंगी तितली है। तितलियाँ घर का बोझ नहीं सँभाल सकतीं। विनोद की मा जब तक जीवित रही, मैंने घर के प्रबन्ध में कभी चूँ नहीं की। न नौकरों का तूफ़ान था, न चीज़ों का नुक़सान। बीसियों आये-गये बने रहते हैं, परन्तु स्वागत-सत्कार में कभी भूल नहीं हुई। फिर क्या वह पढ़ी-लिखी न थी ? जब कभी अवकाश मिलता, रामायण और ब्रजविलास का पाठ करती और सदा ही पूजा-पाठ और दानधर्म में लगी रहती थी।

चारु०—इस योग्यता पर कोई कैसे कुछ कह सकता है। परन्तु यह तो आपको मानना पड़ेगा कि दम्पति में परस्पर विचार-साम्य की अत्यन्त आवश्यकता है। आज के शिक्षित युवकों के विचार आपकी कोटि के नहीं हैं।

आनंद०—मैं तो समझता हूँ, जितनी अधिक शिक्षा, उतना ही ज़्यादा विचार-वैषम्य। एम० ए० पास पति और बी० ए० पास पत्नी दोनों ही मिलकर शेक्सपियर के नाटकों को एक रुचि से नहीं पढ़ सकते। फिर गृहस्थी न तो डिबेटिंग सोसायटी है और न उसका भार असेम्बली का बजट है। पति और पत्नी में विजय-पराजय का प्रश्न नहीं है जितना कि समझदारी के साथ झुकने और प्रभाव डालने का। (एक पत्र उठाकर) देखिए (तसवीर पर अँगुली रखते हुए) ये कौन हैं (चश्मे के भीतर से आँखें गड़ा कर देखते

सरकारी अफ़सर हैं। (कुछ सोचकर) हाँ, इनके पिता बहुत बड़े अफ़सर हैं। हूँ। (कुछ सोचने लगते हैं)

चारु०—और लड़की भी तो कुछ कम शिक्षित नहीं है—विनोद के मुक़ाबिले की ही है।

आनंद०—यह बात भी है, पर इनके पिता बहुत बड़े अफ़सर हैं। मैं विनोद का विवाह ऐसे कुल में ज़रूर करना चाहता हूँ।

चारु०—तो क्या लड़की आपको पसंद नहीं है ? उसका कुल ही पसंद है ?

आनंद०—लड़की ? हाँ, यह तो मैं क्षण भर के लिए भूल ही गया था।

चारु०—जी हाँ, विवाहित होकर लड़की ही यहाँ आयगी, उसका कुल नहीं।

आनंद०—यह लड़की......(कुछ ठहर कर) क्यों चारु... (फिर कुछ सोचकर) कुछ मोटी और भद्दी जान पड़ती है। है न ? (तसवीर दिखाता है)

चारु०—शायद ऐसा हो सकता है।

आनंद०—लेकिन इतनी मोटी-ताज़ी बहू भी किस काम की, जिसे......

चारु०—किसी को आप काड़ीतोड़ कहते हैं और किसी को मोटी-ताज़ी। मेरा ख़याल है कि यह लड़की बहुत ही स्वस्थ है।

आनंद०—मेरे पिता जी कहा करते थे कि शादी के लिए कुंडली का मेल मिलना चाहिए, लेकिन अब तो तसवीरों का मेल मिलने लगा है !

चारु०—कुंडली के अंकों के रहस्य से तो तसवीर की छाया कहीं अधिक स्पष्ट है। विवाह कुंडली मिलने में नहीं है—मन मिलने में है।

आनंद०—और आपका मन मिलना वैसा ही है, जैसे घी के साथ कोकोजम। तसवीर से मन नहीं मिलता—शकल मिलती है।

चारु०—लेकिन जब स्वयंवर होते थे तब सिवा रूप-रंग और धन-वैभव के किस बात का विचार किया जाता था ?

आनंद०—मैं समझता हूँ कि एम० ए० पास हो जाना ही समझदार गृहस्थ होने की निशानी नहीं है। मैं तो

चारु०—ताल्लुक़ेदार साहब, ज़रा ठहरिए। इस प्रश्न को यहाँ छेड़कर आप किसी बात का फ़ैसला नहीं कर सकते। सवाल विनोद के विवाह का है। 'वसुधा' में विज्ञापन देने पर आपके पास ये सब पत्र-तसवीरें और संदेस आये हैं। लड़की पसंद करनी ही है। हाँ, आपका ख़याल कहीं दूसरी ओर हो तो बात निराली है।

आनंद०—तब आपका क्या ख़याल है ?

चारु०—मैं आपकी मन मिलनेवाली बात ज़रूर पसंद करता हूँ, अगर आप सच्चे दिल से ऐसा कह रहे हैं।

आनंद०—मैंने यों ही कह दिया है; क्योंकि मैं जानता हूँ, हमारे समाज में 'मन' की पटरी पर चलनेवाला कोई 'मेल' नहीं है।

चारु० (हँसते हुए)—किन्तु इस मामले में तो आप विनोद को भी कोई आज़ादी नहीं देना चाहते, यद्यपि वह एम० ए० पास करने के बाद क़ानून का भी पंडित हो चुका है।

आनंद०—किन्तु आप यह भी तो भूल जाते हैं कि यह सवाल मेरी ख़ानदानी इज़्ज़त का है।

चारु०—विनोद पर तो आपका अविश्वास नहीं है ? उसकी योग्यता ही आपके कुल की शोभा है। उसकी प्रसन्नता से आप कैसे इनकार कर सकते हैं ?

आनंद०—इसी विश्वास पर तो मैं फूला हुआ हूँ। मुझे भरोसा है कि वह मेरे निर्णय को ग़लत नहीं साबित कर सकता। मैंने इसी लिए निश्चय कर लिया है कि प्रफुल्ल के साथ विनोद का विवाह निश्चित कर लिया जाय।

[इसी समय नौकर आकर सूचना देता है कि कोई सरकारी अफ़सर ताल्लुक़ेदार साहब से मिलने आया है। [सुनते ही आनंदमोहन तेज़ी से उठकर दीवानख़ाने की ओर जाते। सम्पादक जी अकेले रह जाते हैं]

(विनोद का प्रवेश)

[विनोद ऊँचे क़द का बहुत सुंदर युवक है। चौड़ा ललाट और बड़ी-बड़ी पानीदार आँखें। स्वस्थ शरीर और चेहरा हँसमुख। टेनिस खेलने की पोशाक में है। हाथ में

विनोद—कहिए सम्पादक जी, आज तो पूरा दफ़्तर खोले बैठे हैं। (चिट्ठियों और तसवीरों को देखकर) यह-सब क्या बला है ? (कुछ उत्सुकता के साथ) अच्छा, जान पड़ता है, महिला-संसार के स्तंभ के लिए ये चित्र आपके पास आये हैं ? (चित्रों को हाथ में लेकर एक-एक करके देखता है और कुछ टीका-टिप्पणी भी करता जाता है) यह कौन हैं—कुमारी शीलवती। इनकी योग्यता नहीं लिखी कि आप प्रथम म्युनिसिपल कमिश्नर हैं—हाँ, यह दूसरा चित्र किसका है ? कुमारी दुर्गारानी बी० ए०। इनकी योग्यता क्या है ? क्या आपने लेडीज़ सिंगल्स में चैम्पियनशिप ली है ? अच्छा, यह तीसरी कौन हैं—कुमारी प्रफुल्ल एम० ए०। आप कौन हैं ? क्या महिला व्यायामशाला की संचालिका हैं ! (ख़ूब हँसता है) शरीर से तो बिलकुल 'डनलप टायर जान पड़ती हैं' !

चारु०—जी नहीं 'वसुधा' के आगामी अङ्क में इनका परिचय इस प्रकार छपेगा—आपका विवाह श्री विनोदकुमार एम ए० एल-एल० बी० से हुआ है। नवदम्पति को बधाई !

विनोद—तब तो उसके नीचे यह कविता भी छाप देना—

सूछम रचना करि थकी,
भहरि गिरी भव-कूप।
बिधिना की मोटी अकल
कलि प्रगटी या रूप !

चारु० (उछलकर)—वाह-वाह ! (ख़ूब हँसता है) (तत्काल गम्भीर बनकर) किन्तु विनोद, यह विनोद नहीं है। याद रखना, तुम्हारे लिए यह नियुक्ति हो चुकी है।

विनोद—यह क्यों नहीं कहते कि क़ानून की परीक्षा पास करने के बाद प्रैक्टिस करने का 'लायसेन्स' मिलनेवाला है। अच्छा, यह तो कहो, पिता जी जाते जाते आपसे क्या कह गये और (हाथ के चित्रों को एक ओर फेंक कर) यह सब क्या माजरा है ?

चारु०—यह आपको सिंगल से डबल करने की तैयारी है। प्रफुल्ल के पिता ताल्लुक़ेदार साहब से मिल चुके हैं। वे एक बहुत बड़े सरकारी अफ़सर हैं। तुम्हें एक

और तुम एक साथ बहुत बड़े सरकारी अफ़सर के दामाद बन जाओगे !

विनोद—क्या यह सब सच है ?

चारु०—हाँ, क्यों तुम्हें ख़ुशी होती है न ?

विनोद—छिः छिः सम्पादक जी...(कुछ सोच कर) अच्छा देखा जायगा। अभी सुषमा और रेणुका टेनिस खेलने नहीं आई ?

चारु०—आती होंगी। मगर यह तो कहो कि तुम्हारी इस सम्बन्ध में क्या राय है। मैं शायद समझ लूँ तो तुम्हारी सहायता कर सकूँगा। साथ ही यह तो मैं स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि तुम्हें कल्पना की लगाम खींचकर अनुभव के मार्ग पर चलना होगा।

विनोद—इसका क्या अर्थ है ?

चारु०—मेरा संकेत सुषमा से है। (कुछ सोचकर) शायद रेणुका से भी हो।

विनोद—(गम्भीर होकर) यह किसी की सम्मति देने-न-देने का सवाल नहीं है।

चारु०—ताल्लुक़ेदार साहब तो ऐसा नहीं समझते। उन्हें विवाह-सम्बन्ध करते समय कुल-मर्यादा का बड़ा ख़याल है। फिर प्रफुल्ल भी तो ख़ूब पढ़ी-लिखी है।

विनोद—(एक ओर जाकर कुर्सी पर बैठता है) सम्पादक जी, आपसे साफ़ साफ़ बातें कर लेने में कोई हर्ज नहीं। मैं अपने लिए सुषमा को चुन चुका हूँ।

(आनन्दमोहन का प्रवेश। आते आते वे विनोद के अन्तिम शब्द सुन लेते हैं।)

आनन्द०—मैंने यह क्या सुना विनोद ?

(गद्दी पर तकिये के सहारे बैठ जाते हैं)

[विनोद लज्जा से सिर नीचा कर लेता है] क्यों सम्पादक जी, मैंने क्या यह ठीक सुना है कि विनोद ने सुषमा को अपने लिए चुन लिया है ?

चारु०—(विनोद की ओर देखते हुए) मैं समझता हूँ कि वधू के चुनाव में वर की सम्मति उतनी ही आवश्यक है, जितनी वर के पिता तथा अन्य परिवारवालों की।

(इसी समय विनोद उठकर जाना चाहता है)

आनन्द०—(हाथ के संकेत से रोकते हुए) ठहरो विनोद, मातृहीन हो, अन्यथा मैं तुम्हारे विचार दूसरी तरह समझ सकता था। इसी लिए मैं......(कुछ रुककर) हूँ...जो कुछ हो। मैं तुम्हारे मन की बात जानना चाहता हूँ।

विनोद—(स्पष्टता और गम्भीरता से) शायद अभी-अभी आप मालूम कर चुके हैं।

आनन्द०—यही न ! यही न ! वे दोनों नित्य यहाँ टेनिस खेलने आती हैं। मैं निरन्तर इस व्यसन को सशंक दृष्टि से देखता था। परन्तु आज तो मैं देखता हूँ, यह निर्लज्जता मेरे वंश की लज्जा से झूमना चाहती है। विनोद, रेणुका हो या सुषमा। तुम्हारे साथ दोनों पढ़ी हैं। परन्तु क्या शिक्षालयों के आदर्श तुम्हें इसी मार्ग पर ले जाना चाहते हैं ? रेणुका हो या सुषमा, इनकी कुल-मर्यादा क्या है ? अब से चार-छः वर्ष पूर्व वे कहाँ थीं, यह कौन जानता है ? सुषमा एक वृद्ध नौकर और विधवा माता के साथ रहती है। हो सकता है, कुछ सम्पत्ति उसकी माता के पास हो। और रेणुका, वह एक वृद्धा दासी के साथ उस बँगले में रहती है। वही बुड्ढा नौकर उसके यहाँ भी आता-जाता है। कौन जानता है कि रेणुका की कुल-मर्यादा क्या है ? तुम क्या इतना भी नहीं सोच सकते कि मेरे उच्च वंश के लिए किस प्रकार का सम्बन्ध आवश्यक है ?

विनोद—बाबू जी, प्रेम की मर्यादा तो सीमित नहीं है।

आनन्द०—(आवेश में) प्रेम-प्रेम-प्रेम ! तुम लोगों का हृदय प्रेम का स्रोत है या निर्लज्ज वासना का ? चकाचौंध का नाम प्रेम है या समझदारी का ?

विनोद—प्रेम न चकाचौंध है, न समझदारी, वह अनुभूति है। वह एक आश्रय है—हृदय वहीं ठहरता है।

आनन्द०—अफ़सोस ! मैंने तुमसे बातचीत ही क्यों की ! मैं लड़कों की ना-समझी में क्यों पड़ गया ? (कुछ ठहर कर) तो तुम्हारा निश्चय क्या यही है ? यदि यही है तो तुम्हें उसे तुरन्त ही भूल जाना पड़ेगा।

(इसी समय रेणुका कमरे के दरवाज़े तक आकर ठहर

सटे हुए ड्राइंगरूम में पहुँचकर कान लगाकर बातें सुनती हैं।)

विनोद—मैं सभी कुछ भूलने के लिए तैयार हूँ। पर एक बात नहीं भूल सकता (बीच में ही आनन्दमोहन तेज़ी से उठकर बाहर चले जाते हैं। रेणुका उन्हें देख नहीं पड़ती)...(विनोद कहता ही रहता है) और वह है—सुषमा।

(रेणुका तुरन्त प्रवेश करती है)

रेणुका०—क्या नहीं भूल सकते विनोद ? (सम्पादक जी की ओर देखकर कुछ लज्जा और संकोच से आरक्त मुख हो जाती है) क्या कहा विनोद ?

(इसी समय नौकर का प्रवेश)

नौकर—(सम्पादक जी की ओर देखकर) आपको बाबू साहब ने सब काग़ज़ों के साथ बुलाया है) (विनोद की ओर देखकर) चाय, हाज़िर करूँ ?

(सम्पादक जी जाते हैं)

विनोद—नहीं, अभी नहीं। (रेणुका से) तुमने क्या सुना रेनू ? तुम क्या समझीं ?

रेणुका—कुछ सुना है और कुछ समझी हूँ। बाक़ी सुनना और समझना चाहती हूँ।

विनोद—उसमें सुनने और समझने जैसी बात ही कौन-सी है ? तुम यह तो जानती ही हो कि विवाह एक व्यवस्था है—विधान है। उसमें कुछ विचार से काम लेना पड़ता है।

रेणुका—इसका अर्थ यह है कि विवाह की बात एक अविचार है और विवाह वस्तुतः विचार है ! क्या तुम्हारी क़ानूनी योग्यता ऐसे ही तर्क का सहारा ले सकती है ?

[इसी समय सुषमा भी आ पहुँचती है; किन्तु वह एकाएक भीतर प्रवेश नहीं करती। संदेह के साथ बाहर खड़े खड़े सुनती है।]

विनोद—पर मैंने तुमसे कब घृणा की है रेनू ?

रेणुका—घृणा ! वह मैं सहन कर सकती थी। तुमने मुझसे घृणा नहीं की, पर मुझे घृणित बना डाला विनोद !

विनोद—प्रवाह के विरुद्ध तैरनेवाले को कभी पानी की सतह के नीचे होकर जाना पड़ता है। हमारी लालसायें

रेणुका—प्रकाश का मार्ग अंधकार के ऊपर है ! हमारी मैत्री का वैभव क्या यही तुच्छ लालसा थी ? तुम जानते थे, मैं अनाथिनी हूँ, मैंने दूसरों के दान और परोपकार पर जीवन-यापन किया है। फिर, तुमने किस आशा से, किस मोह से, किस भ्रम से मेरी आँखों पर पट्टी बाँधी ? विनोद, तुमने क्षण भर के लिए भी न सोचा कि तुम्हारे वैभव का उन्माद मेरी दरिद्र असमर्थता को नहीं कुचल सकता था। पाप की आँखें अंधी हुआ करती हैं ?

विनोद—यह क्यों भूलती हो रेनू कि आँखें बंद कर लेने से ही क्षण भर के लिए बवंडर से बच सकती हो। अच्छी दृष्टिवालों को भी तो आँधी में अंधा बनना पड़ता है !

रेणुका—यह सच है विनोद, तुमने अपने नाटक का पहला ही पर्दा मेरी आँखों के सामने फैलाया था ! यह भी सच है कि तुम्हारे सुख की चाँदनी को मैंने ही पहली बार बदली बनकर उदास और म्लान बना डाला। किन्तु...किन्तु...(ठहरकर और अवरुद्ध कंठ से) विनोद, तुमने यह न समझा कि छाया का अस्तित्व वस्तु से भिन्न नहीं हुआ करता। यह भी समझ लो विनोद कि प्रकाश में ही छाया का बोध होता है। आज मैं अनुभव करती हूँ कि इस बवंडर में मैं तिनके की तरह उड़ चुकी हूँ और तुम पत्थर की तरह स्थिर हो। ......

(चक्कर आ जाता है)

विनोद—(उसे सँभालना चाहता है। इसी समय सुषमा प्रवेश करती है। विनोद सकपका जाता है)

सुषमा (विनोद की उपेक्षा करती हुई) रेनू, (रेनू को गश आगया है। वह रूमाल निकाल कर हवा करती है। विनोद सहायता देने के लिए फिर आगे बढ़ता है) दूर रहो, (विनोद की ओर घृणा और क्रोध से देखती है) मैंने इन्हीं कानों से सब कुछ सुना है। तुम्हारा पौरुष—तुम्हारा उन्माद स्त्रियों के हृदय के साथ यों खिलवाड़ कर सकता है ! (रेणुका की ओर संकेत कर) ये तुम्हारी ही आँखें हैं जिन्हें तुमने अंधा बनाया है—यह तुम्हारा ही हृदय है जिसे तुमने चूर-चूर किया

कलंकित किया है ! (क्रोध और आवेग का नाट्य करती है)

(रेणुका होश में आकर सुषमा की ओर देखती है—फिर विनोद की ओर देखती है—फिर एकाएक उछल कर खड़ी हो जाती है)

रेणुका—तुम भी आगईं सुषमा—मेरा अपमान करने के लिए !

सुषमा—छिः ! वहन, मैं तो तुम्हारे इस अपमान पर लज्जित हूँ। और सबसे अधिक लज्जित हूँ इसलिए कि मैं भी आज एक स्त्री ही हूँ।

रेणुका—स्त्री—स्त्री—स्त्री हूँ—(विनोद से) क्या देखते हो विनोद ? इन्हीं आँखों से मुझे और सुषमा दोनों ही को एक साथ देख सकते हो ? एक ही दृष्टि में तुम घृणा और प्रेम दोनों ही वहन कर सकते हो ? एक ही निगाह में मृत्यु और जीवन की झाँकी दिखा सकते हो ? पुरुष ! तुम्हारा पाप समाज में पुण्य के नाम से बिकता है—तुम्हारी नारकीय वासनायें समाज में कल्याण का प्रसार करती हैं।

विनोद—वासना का प्रतिदान धिक्कार है और असंयम का पुरस्कार तिरस्कार है। रेनू, हम दोनों ही वासना के शिकार हैं, जिसे समाज दुर्बलता कहता है। पर मैं यह मानता आया हूँ कि प्रेम का पहला उभार वासना ही है।

सुषमा—(आवेश में) तब तो तुम निरे पशु हो, क्योंकि पशु विकार ही जानते हैं और पशुओं का संयम उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है।

विनोद (किञ्चित् क्षोभ से)—सुषमा, तुम कुछ न कहो। मैं पशु हूँ और पशुता कर सकता हूँ, किन्तु मैं मनुष्य भी हूँ और तुम्हें यह भी मानना पड़ेगा कि मैं पशुता की सतह से ऊपर भी उठ सकता हूँ—उठ रहा हूँ।

रेणुका—(घृणा और क्रोध से) कैसा अच्छा मनुष्यत्व है ! पाप की पहली सिद्धि को वह पशुत्व कह सकता है और पाप की दूसरी सिद्धि को मनुष्यता। (क्षण भर ठहर कर) अच्छा विनोद,......(फिर कुछ सोच कर) ख़ैर, अभी नहीं। अभी तो मुझे देखना है कि अंधी आँखें इस क़लई को कब तक सोना समझती हैं। आह ! विनोद, तुमने मेरा तिरस्कार कर अच्छा ही किया ! आशाओं का एक एक तिनका चुनकर मैंने जो नीड़ बनाया था उसे तुमने एक ही फूँक में उड़ा दिया। ठीक किया। (सुषमा की ओर देखकर) मनुष्यता का तक़ाज़ा अब तुम्हारे साथ है, सुषमा। हो सकता है संसार में पुण्य भावनायें गंगाजल की तरह बह रही हों, यह भी हो सकता है कि पृथ्वी पर निर्मलता चाँदनी की तरह फैल रही हो और कदाचित् प्रेम दुनिया की आँखों में बाल-सुलभ मोहकता बनकर झलक रहा हो—परन्तु मैं इन सबका अपवाद ही हूँ। इसी लिए विधाता ने मुझे निराश्रित बनाया है, और मैं अभी इस अनंत आकाश में छोटी-सी बदली बनकर उड़ रही हूँ। पर मेरी अत्यन्त इच्छा है कि मैं काली घटा बन कर इस पृथ्वी पर उमड़ूँ संसार का समस्त पुण्य मेरे पाप के आवरण से ढँक जाय।

(वेग के साथ बाहर चली जाती है। सुषमा उसके पीछे 'रेनू रेनू' कहती हुई दौड़ती है। विनोद सिर नीचा किये कुछ सोचता है)

(पर्दा गिरता है)

कब मिलेंगे !

लेखक, श्रीयुत नरेन्द्र

आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे—
आज से दो प्रेम-योगी अब वियोगी ही रहेंगे !
आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे !

सत्य हो यदि, कल्प की भी कल्पना कर धीर बाँधूँ,
किन्तु कैसे व्यर्थ की आशा लिये यह योग साधूँ ?
जानता हूँ अब न हम-तुम मिल सकेंगे !
आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे !

आयगा मधु-मास फिर भी, आयगी श्यामल घटा घिर,
आँख भर कर देख लो अब, मैं न आऊँगा कभी फिर,
प्राण तन से बिछुड़कर कैसे मिलेंगे !
आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे !

अब न रोना, व्यर्थ होगा हर घड़ी आँसू बहाना,
आज से अपने वियोगी हृदय को हँसना-सिखाना
अब न हँसने के लिए हम तुम मिलेंगे !
आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे !

आज से हम तुम गिनेंगे एक ही नभ के सितारे,
दूर होंगे पर सदा को जो नदी के दो किनारे—
सिन्धु-तट पर भी न जो दो मिल सकेंगे !
आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे !

तट नदी के, भग्न उर के दो विभागों के सदृश हैं,
चीर जिनको विश्व की गति बह रही है, वे विवश हैं,
एक-अथ-इति पर न पथ में मिल सकेंगे !
आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे !

विश्व-पथ है, हम पथिक, पर कौन जाना, कहाँ जाना ?
तीर भी धारा-सदृश गतिवान्, थिरता का बहाना !
अन्त ? गति ही सत्य है, कैसे मिलेंगे !
आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे !

यदि मुझे उस पार के भी मिलन का विश्वास होता,
सत्य कहता हूँ न मैं असहाय या निरुपाय होता,
व्यर्थ हैं वे स्वप्न— 'हम फिर भी मिलेंगे !'
आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे !

आज तक किसका हुआ सच स्वप्न, जिसने स्वप्न देखा ?
कल्पना के मृदुल कर से मिटी किसकी भाग्य-रेखा ?
क्या कभी सम्भव कि हम फिर भी मिलेंगे ?
आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे !

आह, अन्तिम रात वह ! बैठी रहीं तुम पास मेरे—
शीश कन्धे पर धरे घन कुन्तलों से गात घेरे !
क्षीण स्वर में कहा था—'अब कब मिलेंगे ?'
आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे !

'कब मिलेंगे ?' पूछता मैं विश्व से जब विरह-कातर,
'कब मिलेंगे ?' गूँजते प्रतिध्वनि-निनादित व्योम-सागर,
'कब मिलेंगे ?' प्रश्न, उत्तर 'कब मिलेंगे ?'
आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे !

१९३६ का देशी कम्पनी-क़ानून

लेखक, श्रीयुत प्रोफ़ेसर प्रेमचन्द मलहोत्र

उद्योग-धन्धों तथा अन्य व्यवसायों के चलाने तथा उनकी उन्नति करने के लिए पूँजी का संचय होना अति आवश्यक है। अधिक परिमाण की उत्पत्ति के लिए बड़ी पूँजी दरकार होती है। पूँजी कम्पनियों-द्वारा सुगमता से एकत्र हो जाती है। आज-कल प्रायः मिश्रित पूँजीवाली कम्पनियों-द्वारा ही उद्योगों तथा व्यवसायों के लिए पूँजी मिलती है। ये कम्पनियाँ परिमित ज़िम्मेदारी के सिद्धान्त पर स्थापित होती हैं। यदि इन कम्पनियों का प्रबन्ध स्वार्थियों और छलियों के हाथों में आ जाय तो लोगों का विश्वास कम्पनियों पर से हट जाय और तब धनोत्पत्ति तथा व्यवसाय के लिए पूँजी का एकत्र करना बहुत कठिन हो जाय और देश की बहुत हानि हो।

भारत में मिश्रित पूँजीवाले बैंकों का आरम्भ १८६५ से हुआ है। इसी वर्ष इलाहाबाद-बैंक स्थापित हुआ था। १८९४ में पंजाब-नेशनल-बैंक और १९०१ में पीपल्स बैंक खुले। पर मिश्रित पूँजीवाले बैंकों की वृद्धि १९०६ से ही हुई है। इसी समय स्वदेशी-आन्दोलन बड़े ज़ोरों पर था। इसलिए यह स्वाभाविक था कि बहुत-से स्वदेशी बैंक भी खुलते। १९१३-१४ में ५५२ मिश्रित पूँजीवाले बैंक थे, जिनकी प्राप्त पूँजी ७,९१,५१,४२० रुपया थी।

१९१३ में बहुत-से बैंक टूट गये, क्योंकि कई बैंक शुरू से ही अस्थिर थे। कई बैंकों के तो नाम बड़े और दर्शन थोड़े थे। जैसे कि सोलर बैंक आफ़ लाहौर की प्रामाणित पूँजी तो एक करोड़ रुपया थी और प्राप्त पूँजी केवल ८ हज़ार रुपया! ऐसे अनेक बैंक थे। कई बैंकों ने अपने पास काफ़ी नक़द रुपया न रखकर बहुत-सा धन्धों या उद्योगों में लगा दिया था, जहाँ से ज़रूरत पर रुपया सुगमता से समेटा नहीं जा सकता था। इसके अतिरिक्त बैंकों का प्रबन्ध ऐसे पुरुषों के हाथ में था जो बैंक-कार्य से अनभिज्ञ थे। कई बैंकों ने बहुत-सा रुपया काल्पनिक व्यक्तियों के नाम पर उधार दे दिया था। कई बैंकों ने अपने हिस्सेदारों को लाभ-भाग मूलधन में से बाँटा। इन सब अनुचित व्यवहारों से बैंकों का टूटना स्वाभाविक था। लाभ उठाकर बहुत-सी बेपेंदी की कम्पनियाँ खुल जाती थीं। इससे केवल लोगों के धन की ही हानि नहीं हुई, वरन लोग कम्पनियों में रुपया लगाने से संकोच करने लगे। तब सरकार ने यह अपना कर्तव्य समझा कि धन लगानेवालों के हितों की रक्षा की जाय। अतएव १९३६ के नये कम्पनी-क़ानून में निम्नलिखित बातें रक्खी गई हैं—

(१) छली और जाली कम्पनियों पर प्रतिबन्ध लगाना।
(२) कम्पनियों के सूचना-पत्र में विस्तार-पूर्वक आवश्यक विज्ञापन का देना।
(३) कम्पनियों के हिस्सेदारों की आय-सम्बन्धी अवस्था का पूरे तौर पर परिचय कराना।
(४) हिस्सेदारों के अधिकारों का बढ़ाना।
(५) कम्पनियों के प्रबन्ध-सम्बन्धी प्रतिनिधियों के बारे में क़ानून को बदलना।
(६) बैंकिंग की कम्पनियों के बारे में क़ानून का संशोधन करना।

१९२९ में सरकार ने भारतीय बैंकों के व्यवसाय की जाँच करने के लिए प्रांतीय और केन्द्रीय बैंकिंग कमिटियाँ बिठाईं। बैंकों का जो नया क़ानून बनाया गया है वह इसी केन्द्रीय बैंकिंग कमिटी की सिफ़ारिशों के आधार पर बनाया गया है।

इस क़ानून के अनुसार बैंकिंग कम्पनी उसको ठहराया है जिसका मुख्य धंधा चालू जमा अथवा और तरह रुपया लेना है और रुपये की वापसी चेक और हुंडी के द्वारा देना है। इसके अतिरिक्त बैंकिंग-कम्पनी निम्नलिखित कार्य भी कर सकती है—

(१) ज़मानत या बिना ज़मानत के रुपया उधार देना।
(२) हुंडी-पुर्ज़ा, प्रोमिसरी नोट, सिक्युरिटीज़, जहाज़ी माल का हुंडी-पर्चा अथवा प्रतिज्ञा-पत्र का ख़रीदना, बेचना अथवा बट्टा काटना।
(३) विदेशी विनिमय का ख़रीदना।
(४) उधार के बीजक का देना अथवा स्वीकार करना।
(५) बीमा करना।

(७) ज़ेवर अथवा जोखिम के द्रव्य की रक्षा रखना।
(८) रुपये को वसूल करना और एक जगह से दूसरी जगह भेजना।
(९) किसी की जायदाद का प्रबन्ध करना अथवा ट्रस्टी बनना।
(१०) बैंक के व्यवसाय के लिए रुपया उधार लेना।
(११) माल-असबाब को गुदाम में रखने का काम करना।
(१२) उधार का प्रबन्ध करना।
(१३) अपना रुपया वसूल करने के लिए जंगम सम्पत्ति अथवा अचल सम्पत्ति का बेचना।

इस क़ानून में यह त्रुटि है कि जिस कम्पनी में दस मनुष्यों से कम व्यक्ति शामिल हों उस पर यह नया क़ानून नहीं लग सकता। इसी तरह जिन कम्पनियों का मुख्य काम तिजारत करना हो वे इस क़ानून के बाहर हैं, चाहे वे लोगों से रुपया जमा करने को लें और चेक के द्वारा काम भी करें। इसमें यह भी दोष है कि तिजारत करनेवाली कम्पनियाँ अपने बैंकिंग-विभाग से रुपया लेकर अपनी तिजारत में फँसा देती हैं।

जो भी बैंकिंग-कम्पनी १५ जनवरी १९३७ के बाद स्थापित होगी वह अपने प्रबन्ध के लिए प्रबन्ध-प्रतिनिधि नहीं नियुक्त कर सकती। इससे यह सुधार हुआ है कि बैंक का रुपया मैनेजिंग एजंट अपने धंधों में नहीं लगा सकते और बैंक मैनेजिंग एजंट से मुक्त रहेंगे।

निम्नलिखित धाराओं से बैंकों की आय-सम्बन्धी स्थिरता हो जायगी और बनावटी अथवा थोथी कम्पनियाँ नहीं खुल सकेंगी।

(१) कोई बैंकिंग-कम्पनी जो १५ जनवरी १९३७ के बाद स्थापित होगी, तब तक अपना काम नहीं शुरू कर सकती जब तक कम से कम ५०,००० रुपया कम्पनी की क्रिया-सम्पत्ति (Working Capital) न हो।
(२) जब तक स्थायी कोष प्राप्त पूँजी के तुल्य न हो तब तक कम्पनी के वार्षिक लाभ में से प्रतिशत स्थायी कोष में जमा किया जाय। स्थायी कोष सरकारी सिक्युरिटियों और ट्रस्ट-सिक्युरिटियों में ही लगाया जाय। समय ऋण का १½ प्रतिशत और उसके अस्थिर ऋण का ५ प्रतिशत हो।

इस नये क़ानून से पहले अगर कोई बैंक लोगों के माँगने पर उनका रुपया उन्हें पूरे तौर पर उनकी माँग पर नहीं दे सकता था तो उस बैंक को अपना काम बंद करना पड़ता था, चाहे उसकी असली हालत बिलकुल ठोस और आय स्थिर क्यों न हों। पर अब नये क़ानून के अनुसार बैंकिंग-कम्पनी कचहरी से प्रार्थना कर सकती है कि उसे अपने डिपाज़िटरों को रुपया कुछ देर के बाद देने की आज्ञा मिल जाय और इस समय में वह अपनी अल्पकालिक आय-सम्बन्धी कठिनाइयाँ ठीक कर सकें। इससे बैंक अपने को अनुचित दिवाले से बचा सकेंगे। परन्तु बैंक की प्रार्थना कचहरी तभी सुनेगी जब उस प्रार्थना के साथ कम्पनियों के रजिस्ट्रार का भी विज्ञापन हो।

कम्पनी अपने हिस्से अपने आप नहीं ख़रीद सकती, न वह किसी को अपने हिस्से ख़रीदने को रुपया उधार दे सकती है।

नया क़ानून और अन्य कम्पनियाँ

(१) कम्पनियों के डायरेक्टरों का चुनाव प्रतिवर्ष होगा।
(२) नई कम्पनियों में प्रबन्ध-प्रतिनिधि २० वर्ष से अधिक के लिए नियुक्त नहीं किये जायँगे।
(३) मैनेजिंग एजंट को नियुक्त करना, उनको हटाना और उनके पट्टे की शर्तें तय करना या बदलना, ये सब बातें कम्पनी की ऐसी सभा में तय होंगी जिसमें सब हिस्सेदार भाग ले सकेंगे।
(४) मैनेजिंग एजंट का वेतन कम्पनी के ख़ालिस मुनाफ़े पर प्रतिशत के हिसाब से होगा। अगर कम्पनी का ख़ालिस मुनाफ़ा कम होगा तो उन्हें निश्चित किया हुआ अत्यल्प वेतन और दफ़्तर चलाने का ख़र्च मिलेगा।
(५) कम्पनी की बड़ी मीटिंग साल में एक दफ़ा अवश्य होगी।
(६) कोई भी कम्पनी अपने डायरेक्टरों को उधार रुपया

इस कम्पनी का डायरेक्टर उस कम्पनी का भी डायरेक्टर या हिस्सेदार हो।

यह सुधार नई कम्पनियों के लिए बहुत ही उपयोगी होगा।

(७) मैनेजिंग एजंट के डायरेक्टर कम्पनी के कुल डायरेक्टरों के तृतीयांश से अधिक न होंगे।

पहले तो बहुधा कम्पनियों का असली प्रबन्ध मैनेजिंग एजंट के अधिकार में था और हिस्सेदार केवल नाम-मात्र के लिए थे। हाँ, उन्हें मुनाफ़ा ज़रूर मिल जाता था। परन्तु अब नई कम्पनियों के हिस्सेदार भी कम्पनी के प्रबन्ध में यथायोग्य भाग ले सकेंगे।

(८) कम्पनी की बड़ी मीटिंग में कम्पनी के हिसाब की जाँच करनेवाला अर्थात् आडीटर बुलाया जा सकेगा, और वह हिसाब की अपनी जाँच का मीटिंग में विवरण दे सकेगा।

हिस्सेदारों के दृष्टि-कोण से यह भी एक बहुत उपयोगी सुधार है।

दीपदान

लेखक, श्रीयुत द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण'

अरे साहसी! अरे वीर!
कुछ तिनकों की नौका लेकर किसे खोजने चले धीर?
आद्यन्तहीन सा जलमय पथ!
दूर-दूर तक नीर-नीर!
आस पास ये तम पिशाच—
हँस रहे खड़े धर तरु-शरीर।
अगणित लहरें चञ्चल-अधीर!

कौन बात लग गई अचानक
ऊब गया जो जग से मन?
किस सुख की आशा से निकले
तपश्चरण करने लघुतन!
तिल तिल जलते होती न पीर?
या बन्दी हो गये प्रणय के
समा गया उर में संताप!
प्रेमानल की जलती ज्वाला
चले जा रहे हो चुपचाप!
हो उदासीन, भाती न भीर?
द्रवित हुए किस दुखिया को
लख सूने तट बैठी रोती?

ढूँढ़ रहे हो जल-तल में
तुम जहाँ-तहाँ बिखरे मोती?
नीरव सरिता का वक्ष चीर!
स्वर्गङ्गा के स्नेह-हीन
तारा-दीपक की अमर किरन!
अरे! करोगे स्पर्द्धा कैसे
क्षण-भङ्गुर स्नेही-जीवन?
बह उठे न जाने कब समीर?

किसी एक अज्ञात शोध पर
कोमल प्राणों की बाज़ी!
पता नहीं, किस प्राप्ति-हेतु
इस क़ीमत पर तुम हो राज़ी।
मेटोगे सोने की लकीर?
कौन कहे मर मिटने की—
तुमको ऐसी इच्छा क्यों है?
... ...!
कौन कहे, जीवन क्यों है?
क्या जीवन ही है व्यथा-पीर?

ला हावर

लेखक, प्रोफ़ेसर सत्याचरण, एम० ए०

प्रोफ़ेसर सत्याचरण जी का मडेरा शीर्षक लेख हम 'सरस्वती' के पिछले अंक में छाप चुके हैं। अमरीका से योरप आते हुए उनकी यात्रा का यह दूसरा लेख है।

ब मडेरा द्वीप आँखों से बिलकुल ओझल हो गया था। फिर अटलांटिक की नीलिमामय जलराशि के अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं पड़ता था। आज लगभग १० दिन समुद्रतल पर बीत चुके थे। एम्स्टर्डम पहुँचने में अभी ६ दिन और शेष थे। इस बीच में प्लीमाउथ, ला हावर इन दोनों स्थानों पर जहाज़ को और रुकना था। मुझे सबसे अधिक उत्सुकता ला हावर देखने की थी, क्योंकि ऐतिहासिक स्थान होने के साथ साथ इसका सामुद्रिक महत्त्व भी है।

स्पेन के गृह-युद्ध का वर्णन दक्षिणी अमेरिका के पत्रों में भली भाँति पढ़ चुका था। यह भी पता लग गया था कि वायुयान दुश्मनों के जल-पोतों की ताक में उड़ा करते हैं और अवसर पाते ही उनका संहार कर देते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि हम लोग डच जहाज़ में थे, पर हमेशा इस बात का भय था कि कहीं धोखे से हमारे जहाज़ का सत्यानाश और हमारे जीवन की बलि न हो जाय। कप्तान एक चतुर व्यक्ति था। उसने सभी कर्मचारियों को आवश्यकता से अधिक सतर्क रहने की आज्ञा दे दी थी। जब तक जहाज़ पोर्चुगल और स्पेन के तट के पास से हो कर गुज़र रहा था तब तक किसी कर्मचारी को चैन नहीं थी।

यह यात्रा कुछ अद्भुत थी। हृदय सशङ्क रहता और बहुत-से लोग देर तक डेक पर समय गुज़ारते। जिस समय जिब्राल्टर के सीध में हमारा जहाज़ पहुँचा उस समय कितने ही जंगी और व्यापारी जहाज़ द्रुतगति से इधर-उधर आते-जाते दिखलाई पड़े। जंगी जहाज़ों का आकार दूसरी ही भाँति का होता है। उनकी रूप-रेखा देखते ही लोग उनके महत्त्व को समझ जाते हैं। जिब्राल्टर से उत्तर की ओर पोर्चुगल के किनारे पहुँचते ही कई वायुयान सब यही जानना चाहते थे कि ये वायुयान किस राष्ट्र के हैं। पर वे इतनी ऊँचाई पर थे कि जहाज़ के कर्मचारियों तथा यात्रियों में कोई उनकी पहचान नहीं सका, केवल अनुमान से सभी उन्हें स्पेन के बतलाते थे। और वे स्पेन-सरकार के थे अथवा विद्रोहियों के थे, यह भी ठीक ठीक कोई नहीं कह सकता था।

पोर्चुगल के तट से लगभग ४५ मील की दूरी पर हमारा जहाज़ जा रहा था। इतनी दूरी होने पर भी तट अच्छी तरह दिखलाई पड़ता था। भूरे पहाड़ी तट और हमारे जहाज़ के बीच अथाह जल-राशि थी। कभी कभी कोई दूसरा जहाज़ बीच में आ जाता था। अटलांटिक भिन्न भिन्न प्रकार की मछलियों के लिए प्रसिद्ध है। कभी चाँदी की तरह चमकती हुई उड़नेवाली मछलियाँ जहाज़ से थोड़ी दूर पर चक्कर काटती थीं। कुछ तो जहाज़ के पेंदे तक पहुँचने की धृष्टता करती थीं। सबसे अधिक आनन्द डालफ़िन मछली के देखने में आता था। डालफ़िन का कलेवर बड़ा और माँसल होता है। जल से इसके बाहर होते ही समुद्र में एक छोटी-सी चट्टान-सी प्रतीत होने लगती थी। डेक पर बैठे हुए इन जलीय जन्तुओं के देखने के अतिरिक्त और मनोरञ्जन का सामान ही क्या हो सकता है?

मेरे साथ एक मुलाटो-जाति के सज्जन थे। इनकी जन्म-भूमि डच-गायना थी और ये जावा में डच-सरकार के मातहत शिक्षा-विभाग के कर्मचारी थे। मुलाटो-जाति के लोग भारत के ऐंग्लो-इण्डियन की भाँति मिश्रित रक्त के होते हैं। इन सज्जन में डच और नीग्रो रक्त का संयोग था। अतः इनकी गणना गोरों में नहीं की जा सकती थी। ऐसे लोगों के साथ सामाजिक अवसरों पर कालों जैसा ही व्यवहार किया जाता है। अमरीका में काले और गोरों का भेद सर्वत्र दीख पड़ता है, अन्तर यही है

[ला हावर नगर तथा समुद्र-तट]

इन्हें एक घटना बड़ी अप्रिय लगी, जिसका उल्लेख करना आवश्यक समझता हूँ। जिस क्लास में ये महाशय यात्रा कर रहे थे उसी में एक अँगरेज़ महिला भी थी। इसे छोड़ कर उस क्लास में और कोई पूर्ण श्वेताङ्ग नहीं था। यह महिला मडेरा से ही जहाज़ में चढ़ी थी और प्लीमाउथ जा रही थी। इसके भोजन का ढंग कुछ विचित्र था, जो स्वाभिमानी यात्रियों के लिए अपमान की बात थी। बात यह थी कि उक्त महिला 'डाइनिंग-हाल' में सब यात्रियों के साथ भोजन न कर 'स्मोकिंग रूम' में ही भोजन मँगा लेती थी। स्टुआर्ड भी इस पर कोई आपत्ति नहीं करता था। आख़िर वह भी तो था श्वेताङ्ग ही। यह भेद-भाव सभी को खटकता था, पर कोई इस मामले को कैसे छेड़ता ? प्रबन्ध जहाज़ का था, उसमें हस्तक्षेप करने का किसी को अधिकार नहीं था। पर एक बात यात्रियों के हाथ में थी, वह थी 'टिप'।

भारत छोड़ते ही पश्चिमीय देशों में सभी जगह सेवकों को टिप देने की प्रथा है। किसी होटल में चले जाइए। भोज्य पदार्थ का मूल्य तो देना ही पड़ेगा, पर सेवक को भी 'टिप' देना आवश्यक है। यदि कोई व्यक्ति टिप की रस्म अदा नहीं करता तो कर्मचारी उसे बड़ी घृणा की दृष्टि से देखते हैं और उसे किसी नीच कुल और समाज का समझते हैं। जहाज़ों में भी टिप का देना आवश्यक समझा जाता है। मध्यम कोटि के लोग भी १ पौंड तक टिप दे देते हैं।

उक्त मुलाटा महाशय ने यह राय की कि जितने यात्री इस व्यवहार-भेद से खिन्न हैं वे सभी इस बात का संकल्प करें कि जहाज़ से उतरते समय स्टुआर्ड को एक एक लिफ़ाफ़ा दें और उस लिफ़ाफ़ा में यह पत्र लिख कर रक्खा हो कि जो व्यवहार-भेद हमारे साथ किया गया है उससे हम खिन्न हैं और टिप के स्थान पर यह पत्र है। मैंने इस राय की पुष्टि की। सोचा कि इस घटना से स्टुआर्ड महोदय को जन्म भर के लिए एक अच्छी शिक्षा मिल जायगी। पर यह बात जहाँ की तहाँ रह गई। स्टुआर्ड को इस बात की ख़बर मिल गई और उसने अनुनय-विनय कर उस अँगरेज़ महिला से डाइनिंग-हाल में ही भोजन करने का अनुरोध किया। दूसरे दिन जब लोग डाइनिंग-हाल में गये तब उक्त महिला को एक कुर्सी पर आसीन पाया। जिस बात के लिए उक्त संकल्प किया गया था उसका सहज ही निपटारा होते देख बात समाप्त कर दी गई।

बिस्के की खाड़ी में जहाज़ पहुँच चुका था। यह खाड़ी तूफ़ानों के लिए प्रसिद्ध है, पर सितम्बर का मास शान्त होता है। अतः किसी प्रकार का कष्ट नहीं हुआ। हम लोग स्पेन के तट से दूर निकल आये थे। जो शङ्का रह रहकर यात्रियों को सता रही थी वह दूर हो गई। अब लोगों के हृदय में प्लीमाउथ पहुँचने की उत्सुकता थी।

जिस समय हम लोग प्लीमाउथ पहुँचे उस समय अपराह्न का समय था। तट से दूर ही जहाज़ लग गया था। आलीशान मकान प्लीमाउथ की उत्कृष्टता की सूचना दे रहे थे। बहुत-से यात्री यहीं उतर गये। इनके लिए कम्पनी का बोट तट पर ले जाने के लिए लगा था। दक्षिणी अमेरिका से यहाँ तक रेडियो के समाचार के

[ला हावर के ला रूथियर्स स्ट्रीट का एक दृश्य।]

अतिरिक्त किसी पत्र को देखने का सौभाग्य नहीं हुआ था। मडेरा में पोर्चुगीज़ पत्र मिलते थे, जिन्हें मैं पढ़ नहीं सकता था। अतः टाइम्स की एक प्रति प्लीमाउथ में ख़रीदी। इसी पत्र-द्वारा प्रथम बार युक्तप्रान्त के भूतपूर्व शिक्षा-विभाग के डायरेक्टर मिस्टर मेकेन्ज़ी की मृत्यु का समाचार मिला।

हमारा जहाज़ प्लीमाउथ में मुश्किल से २-२॥ घंटे ठहरा। अब ला हावर की ओर चल पड़ा। हावर जानेवाले भी कई यात्री थे, जो प्रायः फ्रेंच थे। कुछ ऐसे भी थे, जो इटली और स्विट्ज़रलैंड जानेवाले थे। इन लोगों का विचार हावर उतरकर पेरिस होते हुए अपने अपने देशों को जाने का था। हावर के पश्चात् एम्सटर्डम ही जाकर जहाज़ को रुकना था। इसलिए यात्रियों की संख्या घटनी स्वाभाविक थी।

यदि योरप के नक़शे में ला हावर की स्थिति को देखें तो उत्तर-पश्चिम के सिरे पर उठे हुए एक भू-भाग का टुकड़ा दिखलाई देगा। यह भाग मीलों तक चला गया है। आगे चल कर तीन ओर से घिरा हुआ स्थान है जो हावर को एक उच्च कोटि के बन्दरगाह का रूप देता है। प्रातः-काल का समय था। जहाज़ इँग्लिश-चैनल को पार कर इसी भू-खण्ड के पास होकर जा रहा था। तट पहाड़ी है। इन ऊँचे स्थानों पर सैकड़ों मकान बने हुए हैं। जहाँ यह ऊँचा भाग आरम्भ होता है वहीं सिरे पर लाइट हाउस है। जो भी जहाज़ रात्रि के समय इँग्लिश-चैनल से हावर की ओर बढ़ता है उसे पहले इसी का दर्शन होता है।

[बोलवार्द दे स्त्रासबर्ग। फ्रांस और बेल्जियम हाथ मिला रहे हैं।]
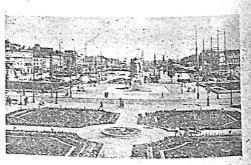
[ला हावर का गम्बेटा स्क्वायर।]

फ़्रांस देश के इस भाग के किनारे किनारे चलते कुछ समय बीत चुका था। दूर से ही ला हावर की धुँधली रूपरेखा दिखलाई पड़ने लगी। जहाज़ जिस क्रम से आगे बढ़ता था उसी क्रम से एक आकाश को छूनेवाला ऊँचा-सा स्तम्भ दिखलाई पड़ता था। पूछने पर मालूम हुआ कि वह विश्व-विख्यात फ्रेंच जहाज़ नारमण्डी के टिकने की जगह है। फ़्रांसीसियों ने विजय-गर्व के उल्लास में इस स्तम्भ की रचना की है।

ला हावर फ़्रांस का दूसरे नम्बर का बन्दरगाह है। सर्वप्रथम मार्सेल है। उसकी स्थिति भूमध्य-सागर में होने के कारण पूर्वी देशों से व्यापार आदि के लिए अधिक सुविधाजनक है। पर अटलांटिक महासागर के व्यापार के लिए ला हावर ही अधिक प्रसिद्ध है। अमरीका जानेवाले जहाज़ यहीं लगे रहते हैं। नारमण्डी का फ़्रांस और अमरीका के बीच आना-जाना लगा रहता है। इसी से इस विशाल पोत की स्थिति यहीं रहती है। प्राकृतिक दृष्टि से हावर बहुत सुरक्षित बन्दरगाह है। इँग्लिश-चैनल में बराबर तूफ़ान उठा करते हैं। पर तीनों ओर से पृथ्वी से घिरा होने के कारण हावर के पास तूफ़ान की आशंका नहीं रहती।

जहाज़ के तट पर लगते ही हावर नगर देखने की योजना हुई। १०-१२ आदमियों की एक पार्टी बन गई। इनमें ३-४ बच्चे भी थे। २ टैक्सियाँ किराये पर कर ली गईं और हम लोग शहर के भीतर दाख़िल हुए। जिस समय जहाज़ तट पर लगा था उस समय धूप थी। पर मुश्किल से थोड़ी दूर शहर के भीतर गये होंगे कि आकाश मेघाच्छन्न हो गया और बूँदें पड़ने लगीं। फ्रांस
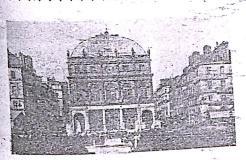
[ला हावर का थियेटर घर तथा नवीन उद्यान।]

और इँग्लेंड में यह कोई नई बात नहीं है। क्षण क्षण वायु-मण्डल में परिवर्तन हुआ करता है। एक क्षण धूप है तो दूसरे क्षण वर्षा होने लगती है और तीसरे क्षण यदि ओले पड़ने लगें तो क्या आश्चर्य! पर लोगों का आना-जाना बन्द नहीं होता। पुरुष और स्त्री दोनों ही बरसाती डाले अपने अपने काम में लगे रहते हैं।

मकानों की दृष्टि से हावर के विषय में क्या कहना है! पश्चिमीय योरप के सभी बड़े नगरों में सुन्दर विशाल मकान देखने में आते हैं। फ़्रांसीसी लोग बड़े कलाप्रिय होते हैं। हावर में उनकी इस परिष्कृत रुचि का पूर्ण परिचय मिलता है। सड़कें साफ़ और मज़बूत बनी हुई हैं। गर्द का कहीं नाम तक नहीं। दूकानें और रहने के मकान दोनों ही अच्छी तरह सजे हुए रहते हैं। फ़ुट-पाथ पर बराबर लोग आते-जाते रहते हैं। सबके मुख पर प्रसन्नता और स्वाभिमान के भाव साफ़ साफ़ झलकते रहते हैं।

साथ कई लोग थे और सबकी भिन्न आवश्यकतायें थीं। कई दूकानों में जाने का अवसर हुआ। लोगों ने मनचाही चीज़ें ख़रीदीं।

इसके बाद हम लोग सबसे पहले ला रू थियर्स स्ट्रीट पर पहुँचे। इस सड़क का नाम प्रसिद्ध फ़्रांसीसी प्रधान मन्त्री थियर्स के संस्मरणार्थ रक्खा गया है। उक्त प्रधान मन्त्री अपने समय में योरप के राजनैतिक आकाश का एक चमकता हुआ नक्षत्र था। इस सड़क के किनारे मकान मानों साँचे में ढले हुए बने हैं। बीच में ट्राम-वे और मोटर आदि के लिए विस्तृत सड़क है। सड़क के दोनों ओर चौड़े चौड़े फ़ुट-पाथ बने हुए हैं। इन्हीं फ़ुट-पाथों पर वृक्षों की सुन्दर पंक्तियाँ लगी हुई हैं। बीच में मकानों की क़तारें हैं। यदि इस प्रकार शहरों में भवन-निर्माण की व्यवस्था हो तो किसी का स्वास्थ्य असमय क्यों ख़राब हो?

विदेशों के मकानों और सड़कों के विषय में अधिक कहना पिष्ट-पेषण मात्र है। भारत से उनकी तुलना ही नहीं हो सकती। नक़्क़ाल भारत में विदेशी सभ्यता की वस्तुएँ जुट रही हैं। वह भी अर्धावस्था में। यदि मोटर है तो ठीक सड़क नहीं। पश्चिमीय देशों में मोटर के साथ अथवा उसके पहले लोगों ने सड़कों का मसला हल कर लिया था। भारत में प्रतिवर्ष मोटरों की संख्या-वृद्धि हो रही है, पर सड़कों की ओर कोई देखनेवाला नहीं। जब किसी सड़क से मोटर निकलता है, गर्द के बादल नीचे से ऊपर तक अपना साम्राज्य जमा लेते हैं और अपने भक्तों को (या शिकारों को) राजयक्ष्मा का प्रसाद बाँटते चले जाते हैं। इसकी ओर न नगर-पिताओं का ध्यान जाता है और न हेल्थ-आफ़िसरों का। जिसे इस समस्या की भयंकरता का अनुमान लगाना हो वे सरकार-द्वारा प्रकाशित राजयक्ष्मा से ग्रस्त रोगियों की क्रमशः संख्या-वृद्धि की रिपोर्टों को देखें। विदेशों में ये बातें सहन नहीं की जा सकती हैं। वहाँ तो दो ही विकल्प सामने हैं। या तो मोटरों का बहिष्कार अथवा सड़कों की ठीक अवस्था।

ला रू थियर्स स्ट्रीट देखने के पश्चात् 'बोलवार्द दे स्त्रासबर्ग' की ओर बढ़े। लोगों ने जहाज़ में ही इस स्मारक की चर्चा की थी। गत योरपीय महायुद्ध के पश्चात् प्रायः सभी पश्चिमीय योरपीय देशों में कुछ न

[हावर नगर का 'पेरिस ...']

कुछ स्मारक बने हैं। आज तो उनका तात्कालिक महत्त्व जान पड़ता है, पर कालान्तर में वे ही ऐतिहासिक स्थान का रूप लेंगे। ऐसे ही स्थानों में बोलवार्द दे स्त्रासबर्ग भी है। इसके साथ तीन देशों का इतिहास सम्बद्ध है, अर्थात् फ़्रांस, जर्मनी और बेल्जियम का।

जिन्होंने योरप के इतिहास का अध्ययन किया है उन्हें यह अच्छी तरह मालूम है कि फ़्रांस और जर्मनी का वर्षों पूर्व से मनमुटाव चला आ रहा है। सन् १८७० में फ़्रांस और जर्मनी में युद्ध हुआ। जर्मनी विजयी रहा और उसने फ़्रांस के अलसस और लोरेन नाम के दो प्रान्तों को अपने अधिकार में कर लिया। ये दोनों प्रान्त बड़े उपजाऊ और सघन रूप से आबाद हैं। फ़्रांस को इससे बड़ी क्षति हुई, पर विजित फ़्रांस कर ही क्या सकता था? समय का फेर होता है।

गत योरपीय महायुद्ध में पासा पलट गया। मदोन्मत्त जर्मनी का दर्प चूर हुआ और फ़्रांस ने वर्सलाई की सन्धि के अनुसार जर्मनी को पक्षहीन पक्षी की भाँति योरप के भाग्याकाश में छोड़ दिया। इसी समय उसने लगभग ५० वर्षों से खोये हुए अपने अलसेस और लोरेन प्रान्तों को प्राप्त किया। इसी के स्मारक में बोलवार्द दे स्त्रासबर्ग में दो मूर्तियाँ हाथ मिलाती हुई निर्माण की गईं। एक ओर तो बेल्जियम है और दूसरी ओर फ़्रांस। बेल्जियम ने इस युद्ध में फ़्रांस की सहायता ही नहीं की, वरन अपने को मिटा दिया था। फ़्रांस ने इस घटना के लिए उक्त स्मारक का निर्माण कर बेल्जियम के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित की है।
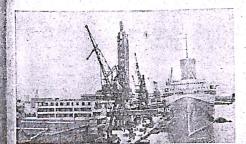
[हावर के ...तट पर नारमण्डी के टिकने का स्थल।]

[हावर बन्दरगाह में नारमण्डी के प्रवेश का दृश्य।]
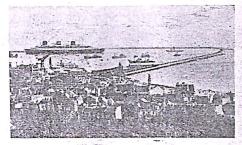
हावर देखनेवालों के लिए एक और स्थान अत्यन्त दर्शनीय है। वह है 'गम्बेटा-स्कायर'। इस स्थान का भी सम्बन्ध फ़्रांस की ऐतिहासिक लड़ाई से है। यह बतलाया जा चुका है कि सन् १८७० में जर्मनी और फ़्रांस में लड़ाई हुई थी। इसी समय फ़्रांस में एक प्रसिद्ध वीर था, जिसका नाम था गम्बेटा। जर्मन लोगों ने अपने अद्भुत पराक्रम से फ़्रांस की सीमा को पार कर पेरिस को घेर लिया था। इस घेरे के कारण पेरिस से बाहर निकलकर दूसरे स्थानों पर जर्मनी के विरुद्ध फ़्रांसीसी सिपाहियों का संचालन करनेवाला कोई व्यक्ति नहीं मिलता था। सारे फ़्रांस में आतङ्क छाया हुआ था। नेपोलियन (तीसरा) भी जर्मनों का बन्दी बन चुका था। उस समय गम्बेटा बड़ी वीरता के साथ बैलून के सहारे पेरिस से उड़कर बोर्दो पहुँचा और सैन्य का संचालन किया। दुर्भाग्यवश गम्बेटा इस लड़ाई में कृतकार्य नहीं हुआ। पर वीरतापूर्ण मुक़ाबिले का यह फल अवश्य हुआ कि जर्मन लोगों ने पेरिस को छोड़ दिया। गम्बेटा-स्कायर इसी घटना से सम्बद्ध है।

उक्त स्कायर के मध्य में एक स्वर्गीय देवी की बहुत ही मनोहर मूर्ति है। मूर्ति से थोड़ी दूर पर फूलों की क्यारियाँ बनी हुई हैं, जिनके किनारे रंग-बिरंगे पत्थरों से जड़े हैं। कितने ही फ़ौवारे हैं, जिनसे जल की क्षीण पर वेग-पूर्ण धारायें निकलती रहती हैं। कहा जाता है कि यह स्कायर प्रेमी और प्रेमिकाओं के मिलन के लिए प्रसिद्ध है।

यों तो आज-कल सिनेमा का प्रचलन सभी सभ्य देशों में है, पर यह निर्विवाद है कि फ़्रांस से बढ़कर नृत्य और
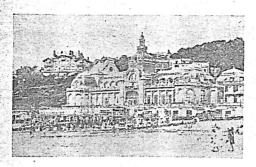
[हावर के समुद्र-तट पर जल और धूप-स्नान का स्थान।]

सिनेमा-प्रेमी कदाचित् ही कोई देश हो। अमरीका में इस दिशा में बड़ी उन्नति हुई है। वहाँ करोड़ों रुपये इन्हीं व्यवसायों में लगे हुए हैं, पर फ़्रांसीसियों के रक्त में थियेटर और नृत्य का प्रेम भिना है। ला हावर में भी इसी प्रकार का एक थियेटर है, जिसके साथ सुन्दर बाग़ लगा हुआ है। सारे नगर में यह सबसे उत्तम थियेटर माना जाता है। थियेटर का भवन तीन मंज़िला है। इसमें सुरापान का भी प्रबन्ध है। उसके लिए भी स्थान बने हुए हैं। यह थियेटर अधिक रात्रि तक लोगों का आमोद-प्रमोद करता है। दिन में तो वाटिका का ही आनन्द लेने लोग आते हैं।

हावर का 'पेरिस-म्यूज़ियम' भी देखने योग्य है। मध्यकालीन फ़्रांस की चित्रकारी और उद्योग-धन्धों का यहाँ अच्छा संग्रह है। साहित्यिकों के भी संस्मरण आदि हैं, जो समय देने पर देखे जा सकते हैं। सच बात यह है कि इन अजायबघरों के देखने के लिए विशेष समय चाहिए। जहाज़ के यात्रियों के लिए परिमित समय में सब वस्तुओं का ग़ौर से देखना कठिन है। फिर भी संग्रह के बहिरङ्ग को ही देखकर म्यूज़ियम की उत्तमता का अन्दाज़ा लगाया जा सकता है।

थियेटर के पास एक फ्रेंच सज्जन को अपनी ओर उत्सुकता-पूर्ण दृष्टि फेंकते हुए देखकर मैं कुछ क्षण के लिए रुक गया। वे भी आगे बढ़े और अँगरेज़ी में अभिवादन के शब्दों को बोलते हुए उन्होंने हाथ बढ़ाया। ये सज्जन बड़े बेतकल्लुफ़ और मिलनसार-से जान पड़े। यही अँगरेज़ और फ़्रांसीसियों की प्रकृति में अन्तर है। अँगरेज़ बिना परिचय कराये कठिनाई से किसी से मिलना-जुलना पसन्द करेंगे। मेरे पास समय तो नहीं था, फिर भी जो २-४ मिनट बातें हुईं वे बड़ी कौतुक-पूर्ण थीं। उन्होंने भारतीयों के प्रति अपना विशेष प्रेम बतलाया, जिसके लिए मैंने उन्हें धन्यवाद दिया। बातचीत के सिलसिले में मालूम हुआ कि गत महायुद्ध में उनका भारतीय सैनिकों के साथ सम्बन्ध हो गया था। उन्होंने दो वस्तुओं की प्रशंसा की; एक तो भारतीयों की पगड़ी की और दूसरे चपाती या रोटी की। उनकी दृष्टि में सर्द मुल्क के लिए पगड़ी लाभदायक है। मालूम होता है, किसी सिक्ख सिपाही ने इन्हें अपनी मीठी रोटी से ख़ूब प्रसन्न किया था, जिससे वे अब तक उसका स्वाद भूल नहीं सके थे।

समय अधिक हो चुका था। टैक्सीवाले को जहाज़ की ओर बढ़ने का आदेश दिया। इतने में हमारी पार्टी के एक सज्जन ने 'नारमण्डी' के टिकने के स्थान को देखने की इच्छा प्रकट की। ड्राइवर से कहा गया कि वह उसी ओर ले चले। जहाँ हमारा जहाज़ रुका था वहाँ से थोड़ी ही दूरी पर नारमण्डी के टिकने का स्थान था। थोड़ी देर में हम लोग वहाँ पहुँच गये। जिस समय हम लोग वहाँ पहुँचे, दुर्भाग्यवश नारमंडी न्यूयार्क के लिए प्रस्थान कर चुका था। पर उसी स्थान पर फ़्रांस का दूसरे नम्बर का जहाज़ 'इल दे फ़्रांस' था। यह लगभग ५५ हज़ार टन का जहाज़ है। फ़्रांस के दूसरे नम्बर के बन्दरगाह पर दूसरे नम्बर का जहाज़ देखने का सौभाग्य हुआ। अपने जीवन में 'इल दे फ़्रांस' से बड़ा जहाज़ और दूसरा कोई नहीं देखा था। इसकी उँचाई सौ फ़ुट से अधिक थी। हज़ारों यात्रियों के लिए स्थान था।

अब तक हावर के सम्बन्ध में एक बात नहीं बतला सका। वह है इसके समुद्रतट पर धूप और जल-स्नान का प्रबन्ध। तट पर कई विशाल भवन बने हुए हैं, जहाँ सुख की सामग्रियाँ जुटी रहती हैं। इन्हीं भवनों के नीचे छोटे-छोटे कमरे बने होते हैं, जिनमें लोग अपने कपड़ों को बदलते हैं। समुद्र का जल स्वभावतः ऐसे स्थानों पर छिछला होता है। इसलिए लोगों को स्नान करने में भय नहीं मालूम होता। किनारे पर दूर तक बालुकामय भूमि होती है; इसी पर लेटकर लोग धूप-स्नान करते हैं। धूप और जल-स्नान का प्रबन्ध देखकर हृदय बड़ा प्रसन्न हुआ। स्वास्थ्य के लिए समुद्र का जल-स्नान और वायु-सेवन से बढ़कर और कोई प्राकृतिक वस्तु नहीं है। राजयक्ष्मा के रोगियों तक के लिए यदि कोई वस्तु अत्यन्त हितकर है तो समुद्रतट का सेवन।

टैक्सीवाले से विदाई ले हम लोग अपने जहाज़ में आ धमके। १५-२० मिनट अभी जहाज़ खुलने में और बाक़ी थे। तब तक ला हावर की शोभा देखते रहे। थोड़ी देर में भूमि-खण्ड और जल-राशि घूमती-सी प्रतीत होने लगी। तट पर बड़े-बड़े मकान चक्र के समान घूमने लगे। फिर जिस भू-खण्ड के किनारे से होकर ला हावर पहुँचे थे उसी के किनारे से गुज़रने लगे। देखते ही देखते वह भू-खण्ड भी अदृश्य हो गया। केवल इँगलिश-चैनल की उत्तुंग लहरें ही समुद्र को लपेटे दिखलाई पड़ रही थीं।

दूरागत सङ्गीत

लेखक, श्रीयुत रामदुलारे गुप्त

दूर उस गहन शून्य से कौन
रश्मि-सा आता रेखाकार;
चन्द्रिका-स्नात व्योम-सा सौम्य,
स्नेह-सा बरसाता रसधार?

अलभ-जीवन के गत सुख-चित्र
मिटे-से, पुनः बनाता कौन,
जगाता सुप्त मुकुल मृदु-भार
उनींदे नयन शान्ति-से मौन?

आज विस्मृति में जुगनू-से
दमककर जगकर रह जाते
वायु में टूटे तारों-से
शुद्ध, सित, अस्थिर दिखलाते।

हृदय का प्रणयोत्पन्न अभाव
घना हो उठता रह रह कर
न जाने किस मधु-मदिरा में
और मैं चल देता बहकर।

गूढ़ छायापथ के मृदु-भाव
चमक जाते गुँथकर मिलकर,
पवन के मृदुल स्पर्श से सिहर
कुसुम ज्यों मुँद जाते खिलकर!

× × × ×

स्वर्ग-रश्मियों के निर्माता,
स्रष्टा, दूरागत सङ्गीत!
हृदय-देश में अपर-लोक के
भर दो संशय-स्वप्न पुनीत!

कहानी का अन्त

लेखक, श्रीयुत पृथ्वीनाथ शर्मा

झे उस दिन यहाँ के बड़े दफ़्तर में अपने एक मित्र के पास काम से जाना पड़ा। मैं अभी वहाँ जाकर बैठा ही था कि ज्योतिहीन परन्तु चंचल आँखों से मुझे घूरता हुआ एक व्यक्ति मेरे पास से निकल गया। बढ़ी हुई तथा मैली अधपकी दाढ़ी; अन्दर धँसे-हुए गाल, रेखांकित मस्तक, रूखे बाल, फटे हुए तथा मैले-कुचैले वस्त्र, पाँव नंगे, सिर नंगा। इतने बड़े सरकारी दफ़्तर में मानवता का यह विचित्र नमूना क्या कर रहा है, मैं सोचने लगा। ज़रा कुतूहल से अपने मित्र से पूछा—"यह दरिद्रता की मूर्ति कौन है?"

उसने मेरी अज्ञानता पर हँसकर जवाब दिया—"दरिद्रता की मूर्ति यह तो निरा सोना है सोना। इधर के दफ़्तरों में कौन है जो इसके व्यक्तित्व से अपरिचित हो। डेढ़ सौ पाता है और एक सौ चालीस बचाता है।"

"एक सौ चालीस!" मैंने आश्चर्य से उसकी ओर देखा।

"हाँ। और यह सब सोने के टुकड़ों में इसके यहाँ मौजूद है।"

"सोने के टुकड़ों में?" मुझे और भी आश्चर्य हुआ।

"हाँ, स्वर्ण ही इसके जीवन का ध्येय है। सोने से कभी एक साँस के लिए भी अलग नहीं होता। दिन भर अपने सोने के टुकड़ों की उधेड़-बुन में लगा रहता है। कभी उनसे काल्पनिक महल गढ़ता है और कभी उनका माया-जाल बुनकर अपने चारों ओर फैला लेता है। रात को अपने स्वप्नों-द्वारा सोने का एक संसार बसाकर उसी में मग्न हो जाता है। मुझे विश्वास है कि इस समय भी इसकी जेब में दो-चार सोने के टुकड़े अवश्य पड़े होंगे।

"सचमुच?"

उसने मेरे सन्देह का कुछ जवाब न दिया। और जिस राह से वह अद्भुत व्यक्ति गया था उसी राह से तेज़ी से चल दिया। कुछ ही क्षणों के बाद उसे साथ लेकर लौट आया।

"देखो भई जगतराम, ये कहते हैं, तुम्हारे पास इस समय सोना हो ही नहीं सकता।"

"मेरे पास!" उसने अभिमान से मेरी ओर देखा। और अपने कोट की भीतरी जेब में हाथ डालकर उसमें से सोने के पाँच-छः बड़े बड़े टुकड़े निकाल कर उन्हें मेज़ पर फेंकता हुआ बोला—"यह लीजिए। जगत का स्वर्ण-स्नेह झूठा नहीं है।"

कंचन के उस अद्भुत पुजारी की ओर मैंने ज़रा ग़ौर से देखा और मुस्करा कर पूछा—"सोने को छोड़कर क्या किसी और चीज़ से भी कभी आपने प्रेम किया है?"

"प्रेम!" सहसा उसके चेहरे पर एक अलौकिक मृदुलता खेल उठी। गम्भीर स्वर में बोला—"हाँ किया है।"

"किससे?"

"पूछते हो किससे"। उसके चेहरे पर की मृदुलता एक क्षण में ही लुप्त हो गई। अपने स्वर में एक तीखा व्यंग्य भर कर मेरे प्रश्न को कविता की भाषा में फँसाकर मानो मुझे लौटाता हुआ कहने लगा—"सर्दी में सुनहरी धूप से, वसन्त में सुनहरे फूलों से और पतझड़ में पीले पत्तों से।"

वह मेज़ पर पड़े हुए अपने सोने के टुकड़ों को उठाने लगा। उन्हें अपनी जेब में डालकर उसने मेरी ओर फिर देखा और सीधी भाषा में बोला—"बाबू जी प्रेम की कहानियाँ दिल में छिपी हुई ही शोभा पाती हैं। उन्हें छेड़कर जगाने से क्या लाभ?"

यह कहकर मुझे विस्मित-सा छोड़कर वह चुपके से वहाँ से चल दिया।

(२)

उस स्वर्ण-दीवाने की प्रेम-कहानी जानने के लिए मेरे हृदय में कुतूहल तो अवश्य उठता रहा। पर न तो कभी

अवकाश ही मिलता था और न इस विषय को लेकर उसके सम्मुख जाने का साहस ही होता था। इसलिए दिन पर दिन बीतते गये और उनके साथ ही कुतूहल भी मन्द पड़ता गया। यहाँ तक कि मैंने उससे मिलने का निश्चय ही लगभग छोड़ दिया। किन्तु विधि के ढंग निराले होते हैं। मेरे अनावकाश तथा भय से ऊपर उठकर उसने एक दिन सहसा उसे फिर मेरे सम्मुख ला खड़ा किया।

मैं अभी अस्पताल से लौटा था, थककर चूर हो रहा था, इसलिए आराम की आशा में अपने बैठने-वाले कमरे के एक कोने में आराम-कुर्सी पर आँखें मूँद कर जा लेटा। मुझे यों पड़े पड़े अभी कठिनता से दस मिनिट ही गुज़रे थे कि मेरी घंटी ज़ोर से बज उठी और इसके साथ ही नौकर ने कमरे में प्रवेश किया।

"क्या बात है?" मैंने ज़रा खीझकर पूछा।

"एक मनुष्य आपसे मिलना चाहता है किसी रोगी के विषय में।"

इच्छा तो बहुत हुई कि उसे जवाब दे दूँ। पर डाक्टर को यह अधिकार कहाँ? क्या जाने नवागन्तुक कौन-सी दुःख-गाथा लेकर आया है। मेरी ज़रा-सी देर भी अनर्थ ढा सकती है। इसलिए नौकर को उसे अन्दर लाने का आदेश देकर मैं उसी क्षण उठ खड़ा हुआ और रोगी देखनेवाले कमरे की ओर लपका। इतने में नौकर भी उसे लेकर आ गया। अरे यह तो वही कंचन-प्रेमी था! आज उसकी दाढ़ी और भी अधिक बढ़ी हुई थी, पर सिर पर एक मैली-सी पगड़ी रक्खे था, पाँव में एक टूटा-सा जूता भी था, नेत्रों में चंचलता के स्थान पर घबराहट थी, ललाट की रेखायें और भी गहरी हो उठी थीं।

"तुम!" मेरे मुख से अनायास निकल गया।

"जी। क्या आप ही डाक्टर अविनाश राय हैं?" उसने ज़रा आश्चर्य से पूछा। वह भी मुझे पहचान चुका था।

"हाँ, कहिए क्या आज्ञा है?"

"डाक्टर साहब, एक बड़ी आशा लेकर आपकी सेवा में आया हूँ।"

"क्या कोई बीमार है?"

"जी। मेरा बच्चा।" उसने मेरी ओर सहानुभूत्याकांक्षी दृष्टि से देखा और ज़रा घबरा कर बोला—"आप यदि उसे ठीक कर दें तो मैं अपना सारा स्वर्ण आपके चरणों में ला रक्खूँगा। क्या आप अभी उसे देखने के लिए चल सकेंगे?"

"क्यों नहीं।"

(३)

मैं उसके संग हो लिया। मेरा मोटर अभी बाहर ही खड़ा था। मोटर ने दस ही मिनिट में हमें उसकी बताई गली के बाहर ले जाकर खड़ा कर दिया। वह एक पतली-सी टेढ़ी-मेढ़ी गली थी। उसी के मध्य में छोटा-सा तथा बहुत पुराना इधर-उधर के मकानों में फँसा और शायद उनके सहारे ही खड़ा एक मकान था। मुझे लेकर वह उसी में घुस गया। मकान में कूड़े-कर्कट से भरा एक छोटा-सा आँगन था। उसके एक कोने में धूल से लथपथ दो-तीन बालक खेल रहे थे और उनसे कुछ दूरी पर बैठी एक अधेड़ अवस्था की मैली-कुचैली स्त्री उन पर खीझ रही थी। आँगन के अन्त पर एक ऊबड़-खाबड़-सा ज़ीना था। उसके द्वारा हम मकान की पहली छत पर जा पहुँचे। इसी छत की दाहनी ओर रोगी का कमरा था। कमरे में घुसते ही मैं दंग रह गया। वह इतना साफ़-सुथरा था कि आँगन तथा ज़ीने से उलझती आ रही आँखें उसे देखकर सचमुच चौंधिया गईं। कमरे के मध्य में दूध की भाँति एक स्वच्छ बिछौना बिछा था और उस पर पड़ा था मुरझाये कमल के फूल-सा एक आठ वर्षीय अबोध बालक। उसके चेहरे पर करुणा झलक रही थी, नेत्रों के कोनों से वेदना झाँक रही थी, पर होंठों पर अल्पस्फुटित मुस्कराहट थी।

चारपाई के निकट कुर्सी पर कोई लगभग साठ वर्ष की एक पतली-सी बूढ़ी औरत बैठी थी। उसकी साड़ी हिम की भाँति श्वेत थी और रंग संगमरमर की तरह। उसका चेहरा झुर्रियों से भरा था, पर आँखों में एक अद्भुत ज्योति थी, लावण्य था। ऐसा प्रतीत होता था जैसे किसी ने रातों-रात एक नवेली अप्सरा से छीनकर उन्हें, पुरानी आँखों के बदले, उसके चेहरे पर जड़ दिया हो। मुझे देखकर वह कुर्सी मेरे लिए छोड़ उठकर चारपाई पर जा बैठी। कुर्सी पर बैठते हुए मैंने बालक की कलाई हाथ में ली और जगतराम से पूछा—"इसे क्या कष्ट है?"

"डाक्टर साहब, क्या बताऊँ?" उसने एक दीर्घ

निःश्वास छोड़कर आरम्भ किया—"कभी तो दो दो चार चार घंटे इसी भाँति मुस्कराता रहता है, फिर सहसा पीड़ा से कराहने लगता है।"

"कहाँ पीड़ा होती है?"

"पेट में।"

जिनके चारों ओर चिन्ता मँडरा रही थी ऐसे चार उत्सुक नेत्रों के निरीक्षण में मैंने परीक्षा आरम्भ कर दी। दस ही मिनिट में मैंने रोग ढूँढ़ लिया। उसे अँतड़ियों का तपेदिक़ था और था भी काफ़ी पुराना।

"क्यों जी?" धड़कते हुए दिल से जगतराम ने मुझसे अँगरेज़ी में पूछा—

"मैं समझता हूँ इसे टी० बी० है।" मैंने भी अँगरेज़ी में जवाब दिया। मेरा ख़याल था कि जादू के नेत्रोंवाली वह बुढ़िया कुछ भी न समझ पायेगी, पर टी० बी० हमारी घरेलू बातचीत में इस आसानी से घुस चुका है कि उसे तो आज-कल अपढ़ भी समझ लेते हैं।

"टी० बी०!" बुढ़िया सहसा चिल्ला उठी। उसका हृदय वस्त्रों के बंधन तोड़कर धड़कता हुआ साफ़ दीखने लगा। उसके करुणाजनक नेत्रों में आँसू छलकने लगे—"तो यह अन्तिम किरण भी अब अस्त होने जा रही है।"

वह कराहती हुई कमरे से बाहर निकल गई और बाहर पड़ी चारपाई पर दोनों हाथों से मुँह ढाँप कर बैठ गई।

मुझे अपनी भूल पर पछतावा तो बहुत हुआ, पर आश्वासन देने के सिवा कर ही क्या सकता था। मैं कमरे से बाहर निकल कर उसके पास जा पहुँचा।

"परन्तु घबराने की कोई बात नहीं।" मैंने कहना आरम्भ किया—"यदि ठीक राह पर चला जाय तो मुझे लड़के के स्वस्थ होने की पूरी आशा है।"

"सचमुच?" चेहरे पर पड़े हुए हाथों के पर्दों को अपने नेत्रों से हटाकर अविश्वास-भरी दृष्टि से देखते हुए बुढ़िया बोली।

"तो बतलाइए राह।" जगतराम जो अब तक बाहर आ चुका था, बोला—"क्या बहुत कठिन है?"

"कठिन तो नहीं पर महँगा बहुत है। पहले तो जितनी जल्दी हो सके, रोगी को किसी पहाड़ पर ले जाना होगा।"

"पहाड़ पर?" बुढ़िया बीच में ही बोल उठी—"यह असम्भव है!"

"कुछ असम्भव नहीं।" जगतराम ने उसे रोक कर ज़रा उत्तेजित स्वर में कहा—"मैं एक दो दिन में ही इसका प्रबन्ध कर दूँगा।"

"तुम प्रबन्ध कर दोगे!" बुढ़िया चारपाई से उठ कर आँगन में टहलने लगी—"कब तक प्रबन्ध किये जाओगे? अपने बच्चों का पेट काट कर कब तक अपने गाढ़े पसीने की कमाई इधर बहाये जाओगे? नहीं। कुछ भी हो अब इस अन्याय को रोकना ही होगा।"

"न्याय और अन्याय उचित और अनुचित मैं तो आज तक इनके भेद को समझ नहीं पाया हूँ।" जगतराम ने आरम्भ किया।

इतने में रोगी के कमरे से एक क्षीण आवाज़ आई—"अम्मा।" इसे सुनते ही बुढ़िया अन्दर भाग गई, पर जगतराम कहता चला गया—"डाक्टर साहब जीवन की नीरसता और कटुता ने मेरे हृदय को इतना मसला है कि कोमलता और मधुरता के दो-एक बिन्दुओं को छोड़ कर वह इस समय पत्थर से भी कठोर हो चुका है और उन बिन्दुओं को वहाँ अंकित करनेवाली थी एक स्वर्गीय अप्सरा जो मेरी राह में पवन के झोंके की भाँति आई और चली गई। आज जीवन की घड़ियाँ केवल उसी की स्मृति के बल पर बिता रहा हूँ। यह रुग्ण बालक उसी देवी का स्मृति-चिह्न है। क्या इसकी देख-भाल करना मेरे लिये उचित नहीं? आप ही बतायें इसमें कौन-सा अन्याय है।"

यह कह कर वह सहसा रुक गया। उसने आधा क्षण मेरी ओर देखा और बोला—"क्षमा कीजिएगा। जिह्वा की उतावली के कारण मैंने अपनी रामकहानी से यों ही आपका अमूल्य समय नष्ट कर दिया। हाँ, पहाड़ के अतिरिक्त और हमें क्या करना होगा?"

"मैं कुछ दवाइयाँ लिखे देता हूँ। उनका इसे निरन्तर सेवन कराओ।"

"बस?"

"और यदि हो सके तो एक अच्छी-सी नर्स भी ठीक कर लो।"

"सब कल करूँगा और तब तक किये जाऊँगा जब

तक धातु का एक टुकड़ा भी पास में रहेगा।" वह फिर जोश में आ गया "पहाड़ कौन-सा ठीक होगा?"

"सोलन।" मैंने जवाब दिया और जेब से क़लम और काग़ज़ निकाल कर नुसख़ा लिखने लगा। इतने में बुढ़िया फिर बाहर आ गई। वह मुझसे कुछ पूछने के लिए मुँह खोलने जा रही थी कि जगतराम बोल उठा—"मैंने सब बात समझ ली है। इन्हें अब अधिक कष्ट देने की कोई ज़रूरत नहीं।"

मैं अब तक नुसख़ा लिख चुका था। उसे जगतराम के हाथ में देकर मैं उठ खड़ा हुआ।

"मैं परसों इसे पहाड़ पर ले जाऊँगा। क्या कल आप फिर आने का कष्ट न उठायेंगे?" मेरे कोट की जेब में नोटों का एक छोटा-सा पुलिन्दा डालते हुए जगतराम ने पूछा।

"बहुत अच्छा।" मैंने सीढ़ियाँ उतरते हुए जवाब दिया। मुझे क्या आपत्ति हो सकती थी?

(४)

एक डाक्टर का अपने रोगियों के साथ वही निर्लेप सम्बन्ध होता है जो कमल के पत्तों का जल से। जब तक रोगी के पास रहते हैं तब तक सबसे निकट, पर रोगी-गृह से बाहर निकलते ही उनके मस्तिष्क में उस ग़रीब के लिए प्रायः ज़रा-सा स्थान भी नहीं रहता। आख़िर इतने से मस्तिष्क में संसार भर की चिन्ताओं को कैसे बाँधें फिरें? परन्तु मनोविज्ञान के इस प्रसिद्ध सिद्धान्त को भी अब की बार मुँह की खानी पड़ी। आज जगतराम और उसके नन्हें रोगी को पहाड़ पर गये एक मास के क़रीब हो चुका था, पर न मुझे उस बालक की वह दुःख-भरी मुसकान भूली थी और न उस बुढ़िया की चमकती हुई तड़फनेवाली आँखें। पर मुझे सबसे अधिक परेशान कर रहे थे जगतराम और अतीत के आँचल में छिपी हुई उसकी प्रेम-कहानी। पता नहीं, वह कैसा अद्भुत प्रेम था, उसमें क्या जादू था। न मालूम मदन ने किस रस से सने शरों से उन दोनों के हृदयों को वेधा था कि आज माया-जाल का पुतला जगतराम भी इतना उग्र आदर्शवादी बन बैठा था। बात यहाँ तक बढ़ गई थी कि दोपहरी की तन्द्रा की आड़ में मेरी कल्पना ने कई बार उस बीते हुए प्रेम-नाटक को खेलने का प्रयास किया, पर दो-चार अतिरंजना भरे चित्रों को अंकित करने के अतिरिक्त कुछ न कर सकी। कभी मुझे वह जगतराम और उसकी नैसर्गिक प्रेमिका को फूलों के अथाह सागर में जुगनुओं की झिलमिलाती ज्योति में एक-दूसरे से उलझते हुए दिखा देती। कभी चाँद की चाँदनी में वे दोनों नदी के किनारे शिला-खण्ड पर बैठे हुए नदी की लहरों के गीत में अपने हृदय में उठती हुई प्रेम-हिलोरों के संगीत को छोड़ते हुए झलका देती और कभी बहियाँ में बहियाँ डालकर सूरज की किरणों पर पृथ्वी और आकाश के मध्य में नृत्य करते हुए दृष्टि-गोचर करवा देती। फिर सहसा आकाश में बादल छा जाते, सूर्य छिप जाता, किरणें सिमट जातीं और बेचारा जगतराम लुढ़कता हुआ पृथ्वी पर आ गिरता। पर उसकी प्रेमिका एक इन्द्र-धनुष के सहारे जो तब तक आकाश में बन चुका होता था, अटकी रहती। इसके आगे कल्पना कहीं भी न पहुँच पाती थी। इसलिए जब एक दिन मुझे सोलन से तार-द्वारा जगतराम का बुलावा आ पहुँचा तब मैंने फ़ौरन वहाँ जाने का निश्चय कर लिया। यद्यपि यहाँ काम बहुत था, फिर भी मैंने उसी दिन यात्रा की तैयारी कर दी। शायद इस कवित्वमय वातावरण में जगतराम अपनी 'रोमांस' की कहानी उगल दे।

(५)

बल खाती, हाँफती, दम लेती और यात्रियों को धुएँ से व्याकुल करती हुई बच्चा-गाड़ी-सी वह रेलगाड़ी सोलन की ओर बढ़ी जा रही थी और मुझे लिये जा रही थी उन दुःखियों की विचित्र टोली में। दोनों ओर क्षितिज तक फैले हुए पर्वत और घाटियाँ अपने मध्य में से गुज़रते हुए उस मानविक खिलौने को देखकर मुस्कराते-से प्रतीत होते थे। चारों ओर लगे हुए चीड़ के वृक्ष और कहीं कहीं से सिर निकालते हुए जंगली पुष्पों के झुण्ड हवा के झोंकों के द्वारा झूम रहे थे। बादलों के श्वेत और श्याम टुकड़े उन वृक्षों और फूलों के साथ टकराते हुए एक-दूसरे से उलझ रहे थे। कितनी मस्ती और आनन्द था उनकी उलझन में! कहाँ वह प्रकृति का हृदय-हारी सुन्दर और पीड़ा-रहित जगत और कहाँ मनुष्य का दुःखों और वेदनाओं से भरा संसार, जिसके कोने कोने में निराशा और चिन्ता घुसी बैठी है, जहाँ प्रसन्नता की आड़ में सदा कष्ट

छिपा रहता है। क्या मनुष्य उड़ कर उस जगत् में नहीं पहुँच सकता था? मनुष्य के साथ सृष्टिकर्ता ने इतना अन्याय क्यों किया? पर क्या सचमुच अन्याय किया है? कौन जाने, बादलों और फूलों की भी अपनी चिन्तायें हों, वेदनायें हों। उनके प्रेम में भी विरह हो। जी में तो आता था कि इस तर्क को मानूँ, पर बादल के टुकड़ों की उस पागल बनानेवाली सर्वांग सुन्दरता में असुन्दरता सूझती ही न थी। मैं बहुत देर तक इस समस्या में फँसा रहा। यहाँ तक कि वृक्षों और फूलों से खेलनेवाली हवा के झोंकों ने मुझसे भी छेड़छाड़ आरम्भ कर दी और उनमें छिपी हुई मादकता ने दो ही क्षणों में मुझे परास्त कर दिया। मेरे लाख रोकने पर भी मेरी आँखें मुँद गई और मेरा सिर बेंच की पीठ पर लुढ़क गया। कह नहीं सकता, कितनी देर तक मैं इस अवस्था में पड़ा रहा, कितने स्टेशन आये और चले गये। पर जब मेरी आँख खुली तब गाड़ी अपनी चाल धीमी करती हुई सोलन पर ठहरने जा रही थी। मेरे आँखें मलते मलते वह ठहर भी गई। मैंने उठकर खिड़की से बाहर झाँका। मलिन मुख लिये एक घिसा हुआ सा कम्बल ओढ़े और अपने उत्सुक नेत्रों को गाड़ी पर गड़ाये जगतराम एक लैम्प के खम्भे से लगा खड़ा था। मुझे देखकर वह मेरी ओर दौड़ा।

"क्यों। क्या कष्ट है उसे?" मैंने चिन्ता भरे स्वर में गाड़ी से उतरते हुए पूछा।

"निमोनिया।" उसने रुँधे हुए गले से जवाब दिया।

"निमोनिया?" यह तो अनर्थ हो गया। तपेदिक़ के रोगी के लिए यह प्रायः घातक ही सिद्ध होता है। पर एक डाक्टर इतना निराशावादी क्यों हो? शायद इसका आक्रमण इतना तीखा न हो। यत्न करने से शायद अब भी यह अभागा बालक बच जाय। "कब से है?"

"आज चौथा दिन है।"

"होश में तो है?"

"नहीं।"

इससे अधिक पूछना मैंने उचित न समझा। अपना सामान एक कुली के हवाले करके मैं जगतराम के साथ हो लिया। स्टेशन से कुछ ही दूरी पर चीड़ के वृक्षों से घिरे एक एकान्त और सुन्दर बँगले में जगतराम ने अपनी रोगग्रस्त धरोहर को लाकर रक्खा था। हम दस ही मिनिट में वहाँ पहुँच गये।

मकान के बाहर बरामदे में कम्बल लपेटे एक आराम कुर्सी पर बुढ़िया पड़ी थी। चेहरे पर उदासी छाई हुई थी, आँखें सूज रही थीं। मुझे देखकर बैठे बैठे ही निराशा भरे क्षीण स्वर में बोली—"आप आ गये। बड़ी कृपा की। आप भी लगा लीजिए ज़ोर।"

"आप घबराइए नहीं।" मैंने ढाढ़स देते हुए कहा—"ईश्वर ने चाहा तो सब ठीक हो जायगा।"

"ठीक!" बुढ़िया ने मुझे ऐसे देखा मानो एक नौसिखिया बालक हूँ। फिर एक वेदना भरी झूठी मुस्कान उसके होंठों को छूकर लुप्त हो गई।

बुढ़िया को वहीं छोड़कर बरामदा पार कर हम रोगी के कमरे में जा पहुँचे। दरवाज़े से ज़रा हटकर रोगी की चारपाई थी। उसी पर आँखें मूँदे और बेसुध वह बालक पड़ा था। साँस तेज़ी से चल रही थी। उसके पास ही एक कुर्सी पर बैठी नर्स अँगरेज़ी का एक उपन्यास पढ़ने में निमग्न थी। शायद स्वर्गीय गार्विस महोदय की कोई कृति थी। हमें देखकर वह झटपट उठ खड़ी हुई। किताब को बन्द कर कुर्सी पर रख दिया।

"ये लाहौर से डाक्टर आये हैं।" जगतराम ने मेरा परिचय कराया।

"ज़रा चार्ट तो दिखलाना।" मैंने पासवाली कुर्सी पर बैठते हुए कहा।

उसने चार्ट मेरे हाथ में दे दिया, जिससे पता चला कि लड़के को चौथे ही दिन से लगातार १०४ और १०५ डिग्री के क़रीब ज्वर आ रहा था और नाड़ी की गति भी बहुत तीव्र थी। बाक़ी बातें भी कुछ विशेष सन्तोष-जनक न थीं। मैंने चार्ट पृथ्वी पर रख दिया और स्वयं बच्चे की परीक्षा करने लगा। जितनी मैं समझता था, उसकी अवस्था उससे कहीं अधिक ख़राब थी। उसका शरीर अंगारे की भाँति जल रहा था। निमोनिया डबल था। दोनों फेफड़े बहुत बुरी तरह से ग्रसित थे। उन्माद के चिह्न भी साफ़ दीख रहे थे। ऐसी अवस्था में तो उसका वह रात काटना भी मुझे कठिन प्रतीत होता था।

"ज़रा नुसख़े तथा दवाइयाँ भी दिखाना।" मैंने नर्स से फिर प्रार्थना की।

उसने सब चीज़ें पास पड़ी हुई तिपाई पर मेरे सम्मुख रख दीं। मैंने सबको ग़ौर से देखा। चिकित्सा ठीक रास्ते पर हो रही थी।

"अभी यही दवाइयाँ दिये जाओ।" मैंने कहा और बाहर निकल आया। जगतराम मेरे पीछे था।

"बचा लोगे न?" जगतराम ने भरे हुए गले से पूछा। इतनी व्यथा थी, इतनी याचना थी उसके स्वर में कि मेरे जैसे डाक्टर का कठोर हृदय भी विकल हो उठा। ऐसी करुणा-जनक और असामयिक मृत्यु को पछाड़ने के लिए तो डाक्टरों के पास संजीवनी बूटी जैसी कोई वस्तु अवश्य होनी चाहिए। मुझे अपने सीमित ज्ञान पर क्रोध तो बहुत आया, पर कर क्या सकता था। अपने भावों को छिपाकर मैंने जवाब दिया—"हाँ यदि आज की रात निकल गई तो।"

बुढ़िया हमसे कुछ ही अन्तर पर थी। मेरी आवाज़ सुनकर वह उठकर तीर की तरह खड़ी हो गई। कम्बल को उतारकर कुर्सी पर फेंक दिया और मेरी ओर बढ़ती हुई गरजी—"क्यों छिपा रहे हो? साफ़ साफ़ क्यों नहीं बताते? यह क्यों नहीं कहते कि आज की रात बीतने से पहले पहले वह पार हो जायगा।" यह कहकर वह ज़ोर से रो पड़ी।

मैंने कुछ न कहा। ऐसी अवस्था में तो आश्वासन देते भी न बनता था। मैं चुपके से वहाँ से खिसक गया और रोगी के उपचार में जा लगा। रोगी की अवस्था क्षण प्रतिक्षण बिगड़ती जा रही थी। कोई एक घंटे के अनन्तर स्थानीय डाक्टर महोदय भी आ गये। उनसे सलाह करके हमने एक-आध इंजेक्शन भी दे दिया। परन्तु फल कुछ न निकला। हमारी सब की दौड़-धूप के बावजूद भी उसी रात बालक ने उस बुढ़िया—अपनी नानी—की गोद में सदा के लिए आँखें मूँद लीं।

जगतराम इस हृदय-विदारक दृश्य को देखने का साहस नहीं पकड़ सका था, इसलिए पिछले कोई बीस मिनिट से बरामदे में आकर बैठा आँसुओं-द्वारा अपनी बढ़ी हुई दाढ़ी को भिगो रहा था। मुझे बाहर निकलते देखकर वह उठ बैठा और हिचकी लेकर बोला—"चल दिया?"

"हाँ।"

जगतराम ने कोई आधा क्षण काले बादलों में से झाँकते हुए दो चार क्षीण ज्योतिवाले तारों की ओर शून्य दृष्टि से देखा। फिर उखड़े हुए स्वर में एक दीर्घ निश्वास छोड़कर बोला—"तो यह है मेरी प्रेम-कहानी का अन्त।"

हाँ अन्त! पर उस कहानी का आरम्भ क्या था, कथानक क्या था, यह उस समय उससे कौन पूछ सकता था।

गीत

लेखक, श्रीयुत कुँवर चन्द्रप्रकाशसिंह

आकर्षणमय विश्व तुम्हारा!
मज्जित इस छवि के समुद्र में
मिलता नहीं किनारा।

जलद-वेश्म सुरधनु-आरंजित
ऊपर नील-व्योम शशि-शोभित,
क्रीड़ित सतत अनन्त अङ्क में
किरण-कान्त कल तारा।

ऊर्मिल जलधि-केश उर्वी-उर
लहराता तम-वास असित-तर,
स्वप्न-विभोर निशीथ-शयन पर,
वह सरि-धारा—हारा।
मद-मरन्द-मूर्छित कलि के दृग,
बहता मलय मन्द गन्ध-स्रग,
ए अरूप, चिर अभिनव तेरी
रूपमयी यह कारा।

एज्युकेशन कोर्ट

लेखक, पंडित राजनाथ पाण्डेय, एम० ए०

"बड़े दिन" में जब कि लखनऊ प्रदर्शनी के दर्शकों के बीच "एज्युकेशन कोर्ट" की धूम थी, एक दिन रूमी दरवाज़े से घुसते ही बाईं ओर के विशाल "साँची-द्वार" के नीचे एक अमेरिकन पर्यटक को मन्त्रमुग्ध-सा खड़ा उक्त द्वार का अवलोकन करते देखा। लखनऊ आने के पहले वे साँची हो आये थे। उनका कहना था कि साँची-स्थित असली द्वार से भी यह द्वार कई बातों में अधिक स्पष्ट और प्रभावोत्पादक है। वे अभी तक साँची-द्वार तक ही अटक रहे थे। अशोक की लाट का ज़िक्र करने पर वे उसे भी देखने गये और उसी अन्वेषक दृष्टि से देखने लगे। उन्होंने उस पर की प्रतिलिपि की नक़ल की। बोले—प्रयाग जाकर मिलान करूँगा। केवल एज्युकेशन कोर्ट के बाह्य वातावरण में ही वे ऐसे विभोर हो गये थे कि उनकी सहधर्मिणी इस बीच नुमाइश के न जाने अन्य किस स्थल की ओर चली गई थीं इसका उन्हें पता ही नहीं था। बाक़ी चीज़ों के लिए बोले—फिर आकर देखूँगा। वास्तव में इस प्रकार का विस्मरण था भी स्वाभाविक। एज्युकेशन कोर्ट का बहिरङ्ग इतना कलापूर्ण और अतीत को पुनर्जीवित कर सामने रखनेवाला था कि पारखी ही नहीं साधारण आँखोंवाला व्यक्ति भी उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता था। शाम को हुसेनाबाद हाई स्कूल के लड़के बैंड बजाते धीरे-धीरे साँची-द्वार के नीचे से गुज़रते एज्युकेशन कोर्ट में प्रवेश कर रहे थे। उस समय ऐसा जान पड़ता था जैसे सदियों पूर्व

[एज्युकेशन कोर्ट में गवर्नर का आगमन।]
(बाईं ओर से—मेजर ब्रेट, कोर्ट का एक गाइड, पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी, हिज़ ऐक्सलैन्सी सर हेरी हेग, श्रीयुत आर० टी० शिवदसानी, एक दर्शक।)

अशोक की [illegible] सेना धर्म-विजय के बाद साँची-स्तूप की परिक्रमा करने आ रही हो। प्राचीन वातावरण में वर्तमान समय की सूक्ष्म से सूक्ष्म देश-विदेश की शिक्षा-प्रगति को रखकर दर्शकों के लिए तुलनात्मक दृष्टि से थोड़े ही समय में अनेकानेक विषयों का अवलोकन और मनन करने का अवसर उपस्थित कर देना वैज्ञानिक सूझ थी।

कोर्ट के भीतर लगभग ३५० फ़ीट लम्बी, ३० फ़ीट चौड़ी जगह में प्रायः दो फ़र्लाङ्ग लम्बी मेज़ों पर नाना प्रकार की असंख्य चीज़ों का संग्रह किया गया था। जगह अपर्याप्त और संग्रहीत सामग्री प्रचुर थी जिससे सारी जगह एक ठोस चीज़ मालूम पड़ती थी। प्रत्येक वस्तु सुरुचिपूर्वक समुचित श्रेणी में सजाई गई थी। संयोजक ने इतने थोड़े समय में ही अनेक प्रदेशों और संस्थाओं की सामग्री एकत्रित कर ली थी।

शिक्षा वास्तव में एक कला है और इसकी सफलता है इसकी लोकप्रियता। एज्युकेशन कोर्ट में प्रत्येक वय और रुचि के लोगों के लिए इतनी अधिक सामग्री एकत्रित थी कि किसी भी व्यक्ति को वहाँ से निराश लौटने का अवसर ही नहीं मिल सकता था। अपने जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली तथा अपने ज्ञान की परिधि की वस्तुओं से मिलती-जुलती चीज़ें ऐसे क्रम और सरल ढङ्ग से प्रदर्शित की गई थीं जिससे सबके लिए बोधगम्य थीं। मानव-समाज आज ज्ञान और सभ्यता की जिस सीमा पर पहुँच रहा है उसकी एक स्पष्ट झाँकी देकर जनता में ज्ञान और उत्साह का संचार करना ही अन्य शिक्षा-सम्बन्धी कार्य की तरह एज्युकेशन कोर्ट का भी ध्येय था। इस कोर्ट की अत्यधिक लोक-प्रियता इस बात का प्रमाण थी कि इस कोर्ट को आशातीत सफलता प्राप्त हुई।
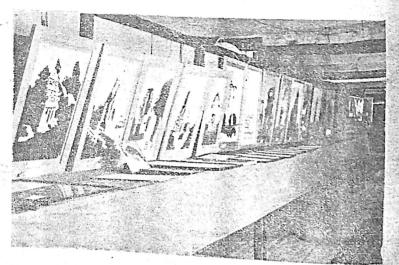
[चित्रशाला का एक भाग।]
(भारत की ऐतिहासिक इमारतों के चित्र।)

वस्तुओं का निर्माण करने तथा नई-नई चीज़ों के अवलोकन की उत्सुकता—ये दो प्रवृत्तियाँ बालकों में प्रबल होती हैं। लड़के अपनी बनाई चीज़ों के प्रति एक विशेष ममता, गर्व तथा अपनत्व का भाव रखते हैं। एज्युकेशन कोर्ट में देश के भिन्न-भिन्न स्कूलों के बालक-बालिकाओं तथा अध्यापकों-द्वारा बनाई हुई चीज़ें रक्खी गई थीं। लड़के
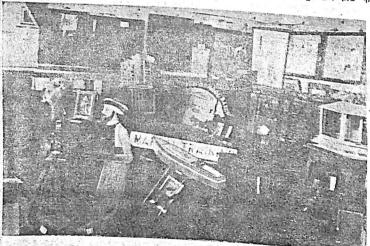
[युक्तप्रांत के बालकों के बनाये हुए लकड़ी के काम का प्रदर्शन।]
(पीछे दीवार में अध्यापकों के बनाये चित्रों का संग्रह है।)
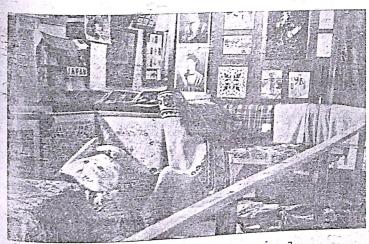
[अन्य देशों के विद्यार्थियों के काम का प्रदर्शन।]
(उसके नीचे युक्तप्रांत के विद्यार्थियों के बनाये हुए कपड़ों का संग्रह है।)

था लड़कियाँ अपने स्कूलों की चीज़ें बड़े चाव से देखने आती थीं। उनके साथ उनके अभिभावकों का भी आना होता था। पर हम जैसा पहले कह चुके हैं, एज्युकेशन कोर्ट बालक, युवा और सभी के लिए एक-मनोरंजक और ज्ञान-था। अवलोकन और मनन के लिए यहाँ पर परिमाण में सामग्री हुई थी।

दर्शक साँची-द्वार से अशोक की लाट होता, एज्युकेशन कोर्ट के द्वार पर आता था। द्वार पर ही उसे प्राचीन तथा नवीन की तुलना-त्मक झाँकी मिलती थी। दीवाल पर के एक बड़े 'चार्ट' से भारत

[युक्तप्रांत के बालिकाओं का काम।]

की वस्तु-निर्माण-कला के उत्तरोत्तर विकास का दिग्दर्शन होता था। यहाँ 'माता-शिशु' तथा 'कृषक' दो अत्यन्त भव्य चित्र प्रदर्शित थे। शिक्षा के ऊपर पहले और अब का व्यय किया गया गवर्नमेंट का धन तथा स्कूलों की संख्या की उत्तरोत्तर वृद्धि चार्टों-द्वारा दिखाई गई थी। द्वार से प्रवेश कर दर्शक पहले आर्ट गैलरी में पहुँचता था। वहाँ "शिकवये-इक़बाल" के कुछ अंश चित्रों में प्रदर्शित किये गये थे। "महे हैरत हूँ कि दुनिया क्या से क्या हो जायेगी" तो ख़ूब ही बन पड़ा था। इस कोष्ठ में अपने प्रान्त के स्कूलों तथा कालेजों के विद्यार्थियों और शिक्षकों की बनाई हुई कुछ तसवीरें और चित्रकारियाँ
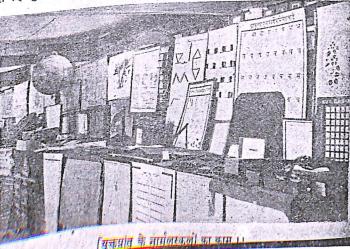
बड़े ही ऊँचे दर्जे की थीं। इन्स्पेक्टर आफ़ स्कूल्स की निगरानी में गोरखपुर के गवर्नमेंट जुबिली हाई स्कूल के विद्यार्थियों तथा ड्राइंग मास्टर-द्वारा तैयार की गई प्राचीन भवनों की तसवीरें बड़ी ही अच्छी थीं। इस कोष्ठ में लकड़ी के चिरे हुए चिकने तल पर केवल कोरों को उभाड़ या दबाकर निकाली हुई रवी बाबू तथा वृक्ष आदि की आकृति उच्च श्रेणी की कारीगरी का नमूना थी। श्री शम्भुनाथ मिश्र तथा प्रयाग-महिला-विद्यापीठ की प्रधानाध्यापिका तथा छात्राओं के बनाये चित्र और अजन्ता की चित्रकारियों की प्रतिलिपियाँ बहुत ही उत्तम और सराहनीय थीं।

प्राचीन शिक्षा-संस्थाओं (संस्कृत पाठशाला तथा अरबी मदरसों) ने अमूल्य हस्तलिखित पुस्तकें भेजी थीं। बनारस के बिड़ला-संस्कृत-पाठशाला का भेजा हुआ ... में प्रदर्शित छान्दोग्योपनिषद् बड़ा ही सुन्दर काम ...

[एज्युकेशन कोर्ट के पुस्तक-विभाग का एक अंश।]
(इण्डियन प्रेस, प्रयाग की पुस्तकों का प्रदर्शन)
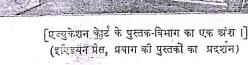
प्रान्त के लगभग सभी ट्रेनिंग कालेजों से अनेक सामान आये थे। प्रयाग के गवर्नमेंट ट्रेनिंग कालेज का भेजा हुआ दीवाल पर का लम्बा-चौड़ा चार्ट, जिसमें ईसा पूर्व २००० वर्ष पहले से लेकर वर्तमान काल तक का भारत का इतिहास प्रदर्शित था, दर्शकों का विशेष ध्यान आकर्षित करता था। गवर्नमेंट
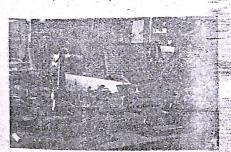
[एज्युकेशन कोर्ट में इँग्लेंड के स्कूलों के बालक-बालिकाओं के काम का प्रदर्शन।]

[शिक्षासंबंधी पत्र औ ड्रिल आदि की प्रतियोगितायें और बुद्धिमापक साहित्य

[अँगरेज़ी स्कूलों से आये हुए भौगोलिक और ऐतिहासिक 'माडल'।]

अँगरेज़ी स्कूलों के विज्ञान के विद्यार्थियों के कार्य का प्रदर्शन।]

मौ...
होकर, अ...
देखता, एज्युकेशन को...
के द्वार पर आता था। द्वार पर ही उसे प्राचीन तथा नवीन की तुलनात्मक झाँकी मिलती थी। दीवाल पर के एक विशाल 'चार्ट' से भारत
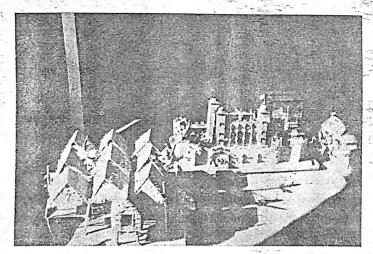
[युक्तप्रांत के स्कूलों के विद्यार्थियों के बनाये हुए लकड़ी के काम का प्रदर्शन।]

हाई स्कूल सीतापुर, गवर्नमेंट इंटर कालेज फ़ैज़ाबाद, दून स्कूल, देहरादून तथा थियोसॉफ़िकल स्कूल बनारस की भेजी हुई लकड़ी की चीज़ें प्रशंसनीय थीं। देश के सुदूर प्रान्तों से भेजी हुई दरियाँ, टेबुल-क्लॉथ, पर्दों तथा क़ालीनों की कारीगरी सराहनीय थी। नार्मल स्कूलों की भेजी हुई शैशव तथा प्रारम्भिक शिक्षा से सम्बन्ध रखनेवाली चीज़ें महत्त्वपूर्ण थीं। झाँसी नार्मल स्कूल की भेजी हुई भूगोल-सम्बन्धी भिन्न-भिन्न प्राकृतिक परिवर्तनों को पढ़ाने की सरल युक्तियाँ उल्लेखनीय थीं। पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी ने योरप, अमेरिका तथा जापान की लाई हुई शिक्षा-सम्बन्धी अपनी तसवीरों का संग्रह भेजा था। उन तसवीरों से विदेशों के स्कूलों में विद्यार्थियों के जीवन का आभास मिल जाता था। जापानी स्कूलों की तसवीरों के देखने से मालूम

[एज्युकेशन कोर्ट में चिकित्सा-विभाग। आँख के रोग और उसके साथ शीशियों में असाधारण बच्चे।]

[भारतीय पाठशाला का प्राचीनतम चित्र।]

(यह, भारुत स्तूप जो ईसा के पूर्व की तीसरी शताब्दी में निर्मित हुआ था, में खुदा हुआ पाया गया है। यह पण्डित श्रीनारायण चतुर्वेदी के 'भारतीय शिक्षा के चित्रमय इतिहास' नामक संग्रह में प्रदर्शित किया गया था।)

पड़ता था कि वहाँ के स्कूलों में बच्चों के खेल और विचरण पर विशेष ध्यान दिया जाता है। चेकोस्लावेकिया के स्कूलों में लड़कों को वहाँ की प्रधान कारीगरी शीशे के कामों में दक्षता प्राप्त करने पर विशेष ध्यान दिया जाता है। वे तसवीरें इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय थीं। शिक्षा-विभाग के वर्तमान डाइरेक्टर की भेजी हुई इँग्लेंड के स्कूलों के छोटे-छोटे बच्चों की बनाई हुई वस्तुओं का विशाल संग्रह प्रशंसनीय था।

यूनिवर्सिटियों के भेजे हुए चार्ट महत्त्वपूर्ण थे। उनसे अनेक नवीन बातों की जानकारी हो सकती थी। लड़कियों
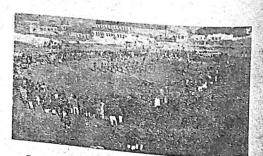
[एज्युकेशन वीक में ड्रिल आदि की प्रतियोगितायें हो रही हैं।]

[द्वार पर 'मातृस्नेह' और सरस्वती जी के चित्र पर सर्वप्रथम दृष्टि पड़ती थी।]

[प्रथम शताब्दी का खिलौना।]

(एक बालक खिलौने के घोड़े को डोरी से खींच रहा है। कौन कह सकता है कि यह खिलौना आज का नहीं किंतु प्रायः दो हज़ार वर्ष पहले का है। यह चित्र भी पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी के संग्रह से लिया गया है। यह नागार्जुन कोण्डा नामक स्थान के एक मंदिर में—जो प्रथम शताब्दी में बना था—पाया गया है।)

[illegible] की सजावट तथा कारीगरी की असंख्य वस्तुएँ थीं। इस कोष्ठ में सरहदी सूबे तक से लड़कियों ने अपनी सुन्दर सुन्दर चीज़ें भेजी थीं। प्रारम्भिक और सेकेंडरी [illegible] स्कूल के बच्चों और शिक्षकों की भेजी हुई चीज़ें मौलिक और प्रशंसनीय थीं। एज्युकेशन कोर्ट के संयोजक शिक्षा के इस अंग के स्वयं विशेषज्ञ हैं। उनके सर्किल के विद्यार्थियों और अध्यापकों पर उनके व्यक्तित्व और अनुभवों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है। बालि-

[एज्युकेशन वीक में लाठी के सामूहिक खेल का प्रदर्शन।]

ऐज्युकेशनकोर्ट का सिंहद्वार

[पंडित श्रीनारायण चतुर्वेदी के सौजन्य से

[एज्युकेशन कोर्ट में युक्तप्रांत की बालिकाओं के हस्तकौशल का प्रदर्शन ।]
(छत के नीचे काले चित्रों की माला देखने योग्य थी ।)

काओं के विभाग में इस प्रान्त के बालिका-विद्यालयों के कार्य का अनुपम प्रदर्शन था। उनके देखने से मालूम होता था कि हमारी कन्याओं में कितनी प्रतिभा है। इसी प्रकार बालक-बालिकाओं की चित्रकला के नमूने भी अपूर्व थे और इस बात के प्रमाण थे कि हमारे बालकों में कला-सम्बन्धी कितने ऊँचे दर्जे की प्रतिभा है। एज्युकेशन कोर्ट का अवलोकन समाप्त कर बाहर आने के कुछ पहले तसवीरों की एक पंक्ति प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय तक की शिक्षा-प्रगति को प्रदर्शित करती थी। भारतीय शिक्षा के इस चित्रमय इतिहास का संग्रह

[इतिहास-विभाग में अशोक के भारत और ब्रिटिश भारत का तुलनात्मक नक़्शा ।]
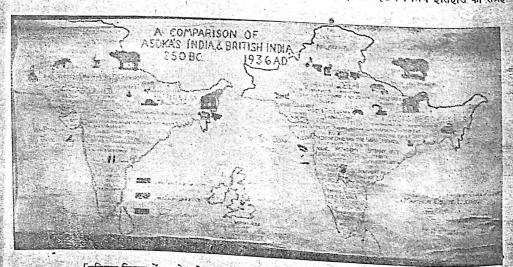
५० श्रीनारायण चतुर्वेदी ने प्रेषित किया था। इनमें अधिकांश तसवीर प्राचीन मूर्तियों की थीं। कुछ तसवीरें प्राचीन ग्रन्थों के उल्लेखों के अनुसार बनाई हुई थीं। इस गैलेरी में मुग़ल-काल की चित्रकारियाँ तथा वर्तमान समय के क्लासों की तसवीरें भी थीं। इन तसवीरों-द्वारा प्रदर्शित शिक्षा के इतिहास को एक पुस्तक की सामग्री समझिए। अस्तु। एज्युकेशन कोर्ट की सारी वस्तुओं का थोड़े में वर्णन करना असम्भव है। वास्तव में वे चीज़ें तो देखने से ही ताल्लुक़ रखती थीं। कम से कम ३-४ दिन में मोटे तौर पर वे देखी और समझी जा सकती थीं। मैंने यूनिवर्सिटी के एक विद्यार्थी को कई चार्टों की

[देहाती स्कूलों के विद्यार्थियों के कार्य का प्रदर्शन।]

[एक देहाती स्कूल की लाठी की टीम प्रतियोगिता के लिए तयार खड़ी है।]
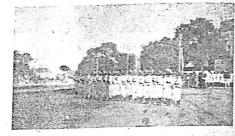
[एज्युकेशन वीक में देहाती स्कूलों से आई हुई 'लेज़िम' की एक 'टीम'।]
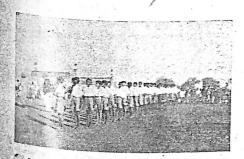
[एज्युकेशन वीक में एक देहाती स्कूल की टीम ड्रिल की प्रतियोगिता के लिए तयार खड़ी है।]
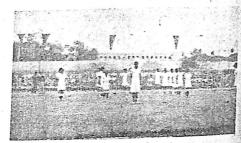
[एज्युकेशन वीक में कालविन तालुक़दार कालिज के विद्यार्थियों द्वारा ड्रिल का प्रदर्शन।]

नक़ल करते देखा। पूछने पर मालूम हुआ कि वे पिछले १५ दिनों से सन्ध्या का समय एज्युकेशन कोर्ट में बिताते हैं और जब तक यह कोर्ट रहेगा तब तक इसी प्रकार आते रहेंगे।

इस प्रकार एक के बाद एक असंख्य शिक्षाप्रद वस्तुओं का अवलोकन कर दर्शक कुछ अधिक शिक्षित हो बाहर निकलता था।* बाहर आते समय, दर्वाज़े पर दर्शकों के लिए यदि लिखना चाहें तो अपनी राय लिखने के लिए जो रजिस्टर रखा था, उसे देखकर उसे प्रसन्नता होती होगी कि देश तथा विदेश के सभी वय और परिस्थिति के लोगों का एज्युकेशन कोर्ट के सम्बन्ध में वही विचार है जो उसके। सभी लोगों का कहना था कि एज्युकेशन कोर्ट अत्यन्त शिक्षाप्रद, सुसज्जित और सारी नुमाइश में सर्वोत्कृष्ट कोर्ट था।† यही कारण था कि देश के अनेक ज़िम्मेदार लोगों की राय थी कि इस कोर्ट को एक स्थायी शिक्षा-प्रदर्शनी का रूप दे दिया जाय।

'एज्युकेशन कोर्ट' की ओर से एज्युकेशन सप्ताह मनाया गया था जिसमें प्रान्त भर के लगभग २५ हज़ार लड़कों ने

[एज्युकेशन वीक में 'मार्च पास्ट' के लिए बैण्ड के साथ विद्यार्थी तयार खड़े हैं। इसमें एक हज़ार से अधिक विद्यार्थी सम्मिलित हुए थे।]

भाग लिया था। इस सप्ताह के कार्य-क्रम का स्थान था नुमाइश का विशाल "ग्रेहाउंड स्टैडियम"। केवल एज्युकेशन सप्ताह के जलसों में ही यह विशाल "स्टैडियम" आदमियों से ठसाठस भरा हुआ देखा गया। अपने अनेकानेक खेलों से लड़कों ने दर्शकों को मुग्ध कर लिया था। बच्चों का इतना बड़ा सामूहिक और संगठित उत्सव प्रत्येक के जीवन पर एक स्थायी और अमिट छाप छोड़नेवाला था। पारितोषिक वितरण का दृश्य और भी प्रभावान्वित करनेवाला था। इस दिन माननीय विशेश्वरनाथ जी श्रीवास्तव चीफ़ जज, अवध, सभापति थे और श्रीमती खरेघाट ने पारितोषिक-वितरण किया था। चाँदी की २८ शील्डें और अनेक अन्य पारितोषिक दिये गये थे। चारों ओर नुमाइश भर में एज्युकेशन-सप्ताह की ही धूम थी।

[एज्युकेशन वीक के पारितोषिक वितरण में महिला-विद्यालय की लड़कियाँ मंगलाचरण कर रही हैं।]

---

* "We are over sixty years of age, but the saying "live and learn" has never been more fully impressed upen us by practical experience than to-day."—Rao Raja, Rai Bahadur Pandit Shyam Bihari Misra and Pandit Sukhdeo Behari Misra.

"I am going back, after a visit to this Court, a better educated man."—Hon'ble Pandit P. N. Sapru.

† "इस प्रदर्शनी के शिक्षा-भाग को देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ और मुझे शिक्षा भी मिली। अपने मित्र चतुर्वेदी जी को उनकी इस सुन्दर कृति पर बधाई देता हूँ।"—बाबू पुरुषोत्तमदास जी टंडन।

"It is the best of its kind I have so far seen in this country."—Mr. C. Y. Chintamani.

"There is nothing better, more instructive and more interesting that I have seen in the Exhibition than the Education Court."—The Right Honourable Sir Tej Bahadur Sapru and Srijut Sachchidanand Sinha.

[एज्युकेशन वीक की अंतिम प्रतियोगिता देखने के लिए ग्रैंडाउंड रेसिङ्ग स्टैडियम में दर्शकों की भीड़ ।]

[एज्युकेशन वीक में एक देहाती स्कूल के ड्रिल का प्रदर्शन ।]

एज्युकेशन कोर्ट का ऊपरी प्रबन्ध अद्वितीय था। चीज़ों की सजावट सुरुचिपूर्ण और मनोवैज्ञानिक ढंग पर थी। दर्शकों के छूने और हटाने पर भी चीज़ें सजी हुई रहती थीं। गाइड उत्साह और नम्रता से दर्शकों को समझाते थे। वे सभी उत्साही और शिष्ट नवयुवक थे। इस कोर्ट के संयोजक भी हर समय सामने नज़र आते थे—कभी स्वयं चीज़ों को साफ़ करते और ठीक स्थान पर सजाते, कभी दर्शकों को समझाते और कभी गाइडों को निर्देश करते हुए। इतने ठंढे दिनों में भी भीड़ की अधिकता से कभी कभी लोग मूर्च्छित हो जाते थे। ऐसी परिस्थिति के लिए 'फ़र्स्ट एड' का प्रबन्ध था। बाहर स्त्रियों के अलग बैठने तथा पुरुषों-स्त्रियों के पास पास बैठने की जगह का प्रबन्ध था। अगर लोग खेलना चाहें तो बैडमिंगटन का प्रबन्ध भी था। सन्ध्या को सिनेमा-द्वारा शिक्षा-सम्बन्धी तसवीरें दिखाई जाती थीं। एज्युकेशन कोर्ट में दर्शकों की सुविधा और उनसे सद्भाव रखने का पूरा ध्यान दिया गया था। यही कारण था कि यह कोर्ट सारी नुमाइश भर में सबसे अधिक लोक-प्रिय था और लोग एज्युकेशन कोर्ट

[स्कूलों के बाग़ों की उपज ।]

को देखकर इसके संयोजक पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी (एम० ए०, (लंदन), इन्स्पेक्टर आफ़ स्कूल्स, फ़ैज़ाबाद) की प्रतिभा, सौजन्य और संगठन-शक्ति से विशेष प्रभावित होते थे। वास्तव में इस कोर्ट की सफलता का सारा श्रेय उन्हीं को है।

हमारी राष्ट्र-भाषा कैसी हो

लेखक, श्रीयुत सन्तराम, बी० ए०

'हिन्दी-हिन्दुस्तानी' के सम्बन्ध में हम 'सरस्वती' के गत अंकों में दो लेख छाप चुके हैं। यह उसी विषय का तीसरा लेख है और इस लेख में विद्वान् लेखक ने अपने दृष्टिकोण को अधिक स्पष्ट रूप में उपस्थित किया है। आशा है, हिन्दी के अन्य विद्वान् भी इस विषय के विवेचन में प्रवृत्त होंगे, क्योंकि यह विषय उपेक्षणीय नहीं है।

थोड़े दिन से हिन्दुओं में एक ऐसी मंडली उत्पन्न होगई है जो हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनाने के बहाने उसमें अरबी-फ़ारसी के मोटे-मोटे गला-घोंटू शब्द ठूँसने की चेष्टा कर रही है। जहाँ तक मुझे ज्ञात है, इस मंडली के नेता श्रीयुत काका कालेलकर और इसके परम सहायक श्री हरिभाऊ उपाध्याय और श्री वियोगी हरि जी हैं। काका जी के हिन्दी लेख देखने का तो मुझे पहले कभी सुअवसर नहीं मिला, परन्तु वियोगी हरि जी, 'हरिजन-सेवक' के संपादक बनकर इस मंडली में सम्मिलित होने के पूर्व, जैसी सुन्दर और सरस हिन्दी लिखते थे, उसे पढ़कर मन आनन्द-विभोर हो जाता था। उनकी पहली हिन्दी और उनकी आज-कल की हिन्दी का एक-एक नमूना मैं यहाँ देता हूँ। इससे दोनों के अन्तर का पता लग जायगा।

वियोगी हरि जी की पहले की भाषा—"ब्रज-भाषा के साहित्य-सूर्य सूरदास के नाम से हम सभी परिचित हैं। छोटे से रुनकता गाँव के इस ब्रजवासी सन्त ने हिन्दी-भाषियों के घर-घर में श्रद्धा-भक्तिपूर्ण एक अजर-अमर स्थान बना लिया है। महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य के इस परम कृपा-पात्र ने 'अष्टछाप' का सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर श्रीकृष्ण-भक्ति को हमारे हृदय में सदा के लिए बसा दिया है। सूर-सागर के रत्न महोदधि के चौदह रत्नों से कहीं अधिक कान्तिमय और बहुमूल्य हैं। सूर के पद-रत्नों की आभा ही कुछ और है। सूर की सूक्ति-मणियों से भाषा-साहित्य अलंकृत होकर विश्वसाहित्य में सदा गौरव स्थानीय रहेगा, इसमें सन्देह नहीं।"

'हरिजन सेवक' की हिन्दी का नमूना—

"हिन्दी-हिन्दुस्तानी शब्द का मैंने यहाँ इरादतन प्रयोग किया है।.........इन बरसों के दरम्यान उनकी शैली में कितना अधिक अन्तर हो गया है। असल में यह दृष्टि-परिवर्तन खुद-ब-खुद तभी से व्यक्त होने लगा था।.........वे समाज के मौजूदा तअस्सुबों पर कटाक्ष तो करते थे, पर उन पर कभी सीधा हमला नहीं करते थे।"

श्रीयुत हरिभाऊ उपाध्याय ने श्री जवाहरलाल जी की अँगरेज़ी में लिखी आत्म-कथा का हिन्दी में अनुवाद किया है। हिन्दी पुस्तक का नाम 'मेरी कहानी' है। उसके आवरण पृष्ठ पर हमें लिखा मिलता है—

"यह तो समय-समय पर मेरे अपने मन में उठनेवाले ख़यालात और जज़बात का और बाहरी वाक़यात का उन पर किस तरह और क्या असर पड़ा, इसका दिग्दर्शन मात्र है।"

पिछले दिनों काका कालेलकर लाहौर आये थे। तब उनसे मिलने का मुझे अवसर मिला था। वे भारत में एक राष्ट्र-भाषा और एक राष्ट्र-लिपि के प्रचार के उद्देश से ही दौरा कर रहे थे। लाहौर में उन्होंने अनेक विद्वानों से इस विषय पर बात-चीत की थी। परन्तु जहाँ तक मुझे ज्ञात है वे, कम-से-कम पंजाब के सम्बन्ध में, किसी निश्चय पर नहीं पहुँच सके थे। इसके बाद 'राष्ट्र-भाषा हिन्दी का प्रचार, किस लिए ?' शीर्षक उनका एक लेख मुझे कलकत्ता के साप्ताहिक 'विश्वमित्र' में पढ़ने को मिला। उसके पाठ से इस राष्ट्र-भाषा-प्रचारक-मंडली के विचारों का और जिस प्रकार की वे हिन्दी चाहते हैं उसका बहुत कुछ पता लग गया। काका जी महाराष्ट्र हैं। संस्कृत के पण्डित, अँगरेज़ी के विद्वान् और मराठी एवं गुजराती के सुयोग्य लेखक हैं। उर्दू आप नहीं पढ सकते। परन्तु आपके

उपर्युक्त लेख में अँगरेज़ी, मराठी एवं गुजराती का तो कदाचित् एक भी शब्द नहीं, भरमार है केवल अरबी-फ़ारसी के शब्दों की। जैसे कि हरगिज़, नेस्तोनाबूद, मदद, तसफ़िया, तंगदिली, फ़िरक़ापरस्ती, ज़रिए, अँगरेज़ीदाँ, ख़तरनाक, चुनांचे, आमफ़हम, फ़ारसी रस्म-ख़त, ख़ानदान, दरमियान, हरूफ़, अजीबो ग़रीब, हङ्गामा, बुज़ुर्ग। इससे विदित होता है कि हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनाने का एक-मात्र साधन ये सज्जन उसमें अरबी और फ़ारसी के मोटे-मोटे शब्दों को घुसेड़ना ही समझते हैं। कदाचित् उनको आशा है कि इससे मुसलमान प्रसन्न होकर हिन्दी-भाषा तथा देवनागरी लिपि को अपनायेंगे। परन्तु मुझे तो उनकी यह आशा दुराशामात्र ही जान पड़ती है।

मैं दूसरी भाषाओं के शब्दों को लेने के विरुद्ध नहीं। इनसे हमारी भाषा का शब्द-भाण्डार बढ़ता है। परन्तु हमें केवल वही शब्द लेने चाहिए जिनके भाव को प्रकट करनेवाले शब्द हमारी भाषा में न हों। 'यदि' के रहते 'इफ़' और 'अगर' को लेना; 'विचारों, भावों और घटनाओं' के बदले 'ख़यालात, जज़बात और वाक़यात' लिखना, 'अक्षर, चित्र-विचित्र, और लिपि' को छोड़कर 'हरूफ़, अजीब ग़रीब और रस्म-ख़त' का प्रयोग करना सर्वथा अनावश्यक वरन हानिकारक है। यह हिन्दी पढ़नेवाले बच्चों पर अत्याचार है। मुझे यू० पी० का पता नहीं, परन्तु मैं निश्चय के साथ कह सकता हूँ कि पंजाब के स्कूलों की लड़कियाँ इन फ़ारसी-अरबी शब्दों को बिलकुल नहीं समझतीं। इन अनावश्यक शब्दों को लेना भाषा के भाण्डार को रत्नों के स्थान में घास-फूस और कूड़ा-करकट से भरने की व्यर्थ चेष्टा करना है। मानव-जीवन केवल बहुत-से शब्द सीखने के लिए ही नहीं। शब्द तो मानसिक विकास का साधन-मात्र हैं।

काका कालेलकर कहते हैं कि "राष्ट्र-भाषा का नाम शिक्षा और संस्कृति से सम्बन्ध रखता है। इसका सम्बन्ध न तो किसी क़िस्म की राजनीति से है और न किसी धर्म या संप्रदाय से।" काका जी की बात को मानकर भी मैं पूछता हूँ कि इस प्रकार के विदेशी भाषाओं के शब्द घुसेड़ने से शिक्षा या संस्कृति को क्या लाभ पहुँचता है? जज़बात की जगह यदि भावना लिख दिया जाय तो शिक्षा में कौन कठिनाई आ जाती है? बच्चे के मस्तिष्क में बहुत-से विदेशी पर्यायवाची शब्द ठूँसने से उसके बौद्धिक विकास में क्या सहायता मिलती है?

भाषा का संस्कृति के साथ सम्बन्ध मैं स्वीकार करता हूँ। इसी लिए मैं इन अनावश्यक शब्दों को लेने के पक्ष में नहीं। अरब की और फ़ारस की अपनी-अपनी संस्कृतियाँ हैं। उनकी भाषाओं के शब्द उन संस्कृतियों के भावों को प्रकट करते हैं। भारत की, विशेषतः यहाँ के हिन्दुओं की, अपनी एक विशिष्ट संस्कृति है। उसके भाव संस्कृत और हमारी प्रान्तीय भाषाओं के शब्दों में भरे हुए हैं। 'धर्म' शब्द जिस भाव का द्योतक है, 'मज़हब' उसको नहीं दिखलाता। अरबी और फ़ारसी संस्कृति एवं भाषा की रक्षा अरब और फ़ारस कर रहा है। उनकी रक्षा की चिन्ता भारतीयों को नहीं होनी चाहिए। हमें तो अपने धर्म, अपनी भाषा और अपनी संस्कृति की रक्षा की आवश्यकता है। सो हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनाने या भारत की सबकी समझ में आ जानेवाली भाषा बनाने के बहाने संस्कृत-शब्दों को कठिन या पण्डिताऊ बताकर उनका जो बहिष्कार किया जा रहा है इससे संस्कृत-भाषा और भारतीय सभ्यता की घोर हानि होने की आशंका है। इस समय भारत में कहीं भी संस्कृत नहीं बोली जाती। फिर भी यहाँ की सभी भाषायें अपना शब्द-भाण्डार संस्कृत से ही भरती हैं। संस्कृत सभी प्रान्तीय भाषाओं को एकता के सूत्र में बाँधनेवाला सूत्र है। यदि यह बात नहीं तो क्या कारण है कि एक हिन्दू के लिए संस्कृत सीखना जितना सुगम है, उतना एक अरब-निवासी के लिए नहीं? संस्कृत-शब्दों का प्रचार बंद हो जाने से हिन्दुओं के लिए भी संस्कृत-ग्रंथों का पढ़ना उतना ही कठिन हो जायगा जितना कि अरबों या तुर्कों के लिए है। ऐसी अवस्था में हमारे प्राचीन साहित्य, इतिहास, संस्कृति, धर्म और पूर्वजों से हमारा सम्बन्ध विच्छेद हो जायगा, जैसे उर्दू-फ़ारसी पढ़नेवाले भारतीय मुसलमानों का राम-कृष्ण आदि महापुरुषों और आर्य-संस्कृति से हो चुका है। यदि भारत में भारतीय भाषा और संस्कृति की रक्षा न होगी तो फिर और कहाँ होगी?

काका कालेलकर कहते हैं—"हम अपने यहाँ कोई नई भाषा नहीं बनाने जा रहे हैं। जिस भाषा के ...

हिन्दुस्तान के शहराती और देहाती लोग मिलकर बोलते हैं और जो सबों की समझ में बड़ी आसानी से आ सकती है उसी को हम भारत की राष्ट्र-भाषा—हिन्दुस्तान की कौमी ज़बान मानेंगे। हम अपनी राष्ट्र-भाषा को पण्डितों और मौलवियों की तरह संस्कृत या अरबी-फ़ारसी के शब्दों से लादना नहीं चाहते।"........इस सम्बन्ध में मेरा निवेदन है कि यदि 'जज़बात, ख़यालात, वाक़यात, फ़िरक़ापरस्ती' आदि शब्दों को आप बुरा नहीं समझते तो फिर मौलवी लोग और कौन-सी भाषा लिखते हैं? अरबी-फ़ारसी को संस्कृत के बराबर का स्थान देना बड़ा भारी अन्याय है। संस्कृत का भारतीयों पर विशेष अधिकार है। उसकी रक्षा और प्रचार हमारा परम कर्तव्य है। यदि भारतीय उसकी रक्षा नहीं करेंगे तो और कौन करेगा? इसका जितना अधिक प्रचार होगा, भारतीय भाषाओं में उतनी ही अधिक एकता स्थापित होगी। यह कहना ठीक नहीं कि कोई नई भाषा नहीं बनाई जा रही है। मैं कहता हूँ, बड़े यत्नपूर्वक बनाई जा रही है। आज से पच्चीस वर्ष पहले से लेकर आज तक हिन्दी में जितनी पुस्तकें या पत्रिकायें छपी हैं उनमें से किसी की भी भाषा वैसी नहीं, जैसी आज काका कालेलकर जी की मंडली बनाने जा रही है या जैसी 'मेरी कहानी' एवं 'हरिजन-सेवक' में देखने को मिलती है। पंजाब में सिख गुरुओं के समय में जैसी भाषा बोली जाती थी, उसका नमूना गुरुओं की वाणी में मिलता है। गुरु तेग-बहादुर का एक पद है—

काहे रे बन खोजन जाई।
सर्व-निवासी सदा अलेपा, तोहि संग समाई।
पुहुप मध्य जिमि बास बसत है, मुकुर माँहि जस छाई।
तैसे ही हरि बसै निरन्तर, घर हीं खोजहुँ जाई।
बाहर भीतर एकै जानहुँ, यह गुरु ज्ञान बताई।
जन नानक बिन आपे चीन्हें, मिटे न भ्रम की काई॥

इससे सरल हिन्दी और क्या हो सकती है। परन्तु जब से पंजाब में अदालत की भाषा उर्दू हुई है और जब से पंजाब के सभी सरकारी स्कूलों में उर्दू ही शिक्षा का माध्यम बना दी गई है तब से गुरु-वाणी को समझनेवालों का अभाव-सा हो गया है। अब पंजाब की कांग्रेसी स्त्रियाँ 'इन्क़लाब ज़िन्दाबाद' कहती हैं, 'क्रान्ति की जय!' नहीं। गाँव में भी लोग नज़र सानी, अमर तंकीह, मुद्दई, मुद्दा अलह आदि बोलने लगे हैं। यह क्यों? केवल इसलिए कि उन पर ये शब्द ठूँसे गये हैं। पंजाब की कन्या-पाठशालाओं में, विशेषतः आर्य-समाज और सनातन-धर्म की पुत्री-पाठशालाओं में, जो हिन्दी पढ़ाई जाती है वह शुद्ध संस्कृतानुगामिनी हिन्दी है। इसलिए उन पाठशालाओं की पढ़ी लड़कियों को "नेस्तोनाबूद, मयस्सर, लबालब, इत्तिफ़ाक़, ख़ुद-ब-ख़ुद' आदि शब्द ऐसे ही अपरिचित जान पड़ते हैं, जैसे चीनी या जापानी शब्द। परन्तु राष्ट्र-भाषा के नाम पर यह कड़वा घूँट उन्हें निगलना पड़ेगा। इसी प्रकार हैदराबाद (दक्षिण) की प्रायः नब्बे प्रति सैकड़ा जनता हिन्दू है। उसमें तेलगू, तामिल, कनारी और मराठी बोलनेवाले हैं। उनके लिए अरबी-फ़ारसी के शब्दों का शुद्धोच्चारण करना भी कठिन है। परन्तु निज़ाम साहब ने वहाँ की राजा-भाषा उर्दू बनाकर और उस्मानिया-विश्वविद्यालय स्थापित कर वहाँ की भाषा ही बदल दी है। जो उर्दू हैदराबाद के हिन्दुओं के पूर्वजों के लिए चीनी या लातीनी के समान अपरिचित थी वही अब राज्य के प्रचार से उनकी मातृ-भाषा-सी बनती जा रही है। सो यह तो यत्न और प्रचार की बात है। इँग्लैंड में थैकरे आदि के समय में जनता फ्रेंच और लातीनी शब्दों और वाक्यों का लिखना और बोलना एक बड़ी मान-प्रतिष्ठा की बात समझती थी। परन्तु तत्पश्चात् स्वदेश-प्रेमी अँगरेज़ लेखकों ने इस प्रकार सब शब्दों और वाक्यों को दूध में कुछ लाभ न होगा। निकाल कर बाहर फेंक दिया। ...उन न रहेगा और दूसरे

जिस वस्तु को मनुष्य अ...

स्वेच्छापूर्वक खाता है व... अध्याय 'मेरी कहानी' की भाषा बन जाती है और उस... कि यह अनुवाद बहुत कुछ श्री विपरीत जो वस्तु ब... भाषा में हुआ है। अर्थात् अगर मूल जाती है वह विजा... में लिखते तो वह हिन्दी ऐसी ही होती। शरीर पर जब रो... अटपटी भाषा लिखने के लि... भर्ती करने तब शरीर उनको ...हीं। श्री जवाहरलाल जी ... मौखिक और अधिकार नहीं पा स... प्रमाण हो सकते हैं, प... देने का प्रबन्ध है तब वे कीड़े उसमें घर... वे प्रत्येक बात में ...नत ज्ञान प्राप्त करने मुँह आदि के मार्ग ...गत कोई अँग... ...या। प्रयोगशालाओं है। यही दशा किसी ...या भी... भी काम करने की सुविधायें

विदेशी भाषाओं में से नये और उपयोगी शब्द लेकर आत्मसात् कर लेती है। फिर उनका ऐसा रूपान्तर होता है कि पता ही नहीं लगता कि वे शब्द किसी विदेशी भाषा के हैं या स्वदेशी भाषा के। परन्तु पराधीन निर्बल जाति पर जब कोई सबल जाति प्रभुत्व जमाती है तब वह अपनी भाषा, अपना रहन-सहन और अपना धर्म उसके गले में ठूँसने का यत्न करती है। निर्बल जाति कुछ काल तक तो विजेता के उस सांस्कृतिक और भाषा-सम्बन्धी आक्रमण का प्रतिवाद करती है, परन्तु जब उसमें जीवट नहीं रह जाती तब चुपचाप हार मानकर उन दासता के चिह्नों को आभूषण समझकर धारण कर लेती है।

यू० पी० में मुसलमानों का स्थिर राज्य देर तक रहा है। आगरा, लखनऊ, दिल्ली इस्लाम के केन्द्र रहे हैं। इसलिए यू० पी० ही उर्दू का गढ़ है। वहाँ हिन्दू-परिवारों की स्त्रियाँ भी 'नमस्ते' के स्थान में 'दुआ-सलाम' कहती हैं। यू० पी० की अदालत की भाषा भी उर्दू है। यद्यपि हिन्दी को भी अदालतों में स्थान दिया गया है, तथापि क्वचित् ही कोई ऐसा नगर होगा, जहाँ अदालत की भाषा हिन्दी हो। काशी तक में सारा अदालती काम उर्दू में होता है। श्री मालवीय जी जैसे हिन्दी-प्रेमियों के उद्योग के रहते भी अभी यू० पी० उर्दू-आक्रान्त ही है। उसी यू० पी० की भाषा को हिन्दी, हिन्दी-हिन्दुस्तानी और राष्ट्र-भाषा कहकर दूसरे प्रान्तों पर परन्तु म[illegible] रहा है। फिर आश्चर्य की बात यह है कि जिस स्कूलों की लड़कियाँ इन[illegible]भाविक रूप से चल रही है उसे उधर नहीं समझतीं। इन अनाव[illegible]या जा रहा है। पुस्तकों और भाण्डार को रत्नों के स्थान में [illegible]दाचित् यू० पी० में कहीं भी से भरने की व्यर्थ चेष्टा करना है तो अभी मुसलमानों की बहुत-से शब्द सीखने के लिए ही न[illegible]रही थी कि यह राष्ट्र-विकास का साधन-मात्र हैं। [illegible] और वाक़यात' के

काका कालेलकर कहते हैं कि [illegible] कह सकता, गोंडा, शिक्षा और संस्कृति से सम्बन्ध रखता है[illegible]ोग 'जज़बात और न तो किसी क़िस्म की राजनीति से है[illegible]र यह भाषा नगर धर्म या संप्रदाय से।" काका जी [illegible] भाषा बोल-चाल की मैं पूछता हूँ कि इस प्रकार के वि[illegible]तिहास और विज्ञान के घुसेड़ने से शिक्षा या संस्कृति को क[illegible]ही पड़ेंगे। यदि आप जज़बात की जगह यदि भावना लिख [illegible]दी-फ़ारसी से गढ़ेंगे तो

'घर से वैर अवर से नाता' की लोकोक्ति को चरितार्थ करते हुए आप भारत की भाषा-सम्बन्धी एकता साधित न करके अधिक पृथक्त्व का ही कारण बनेंगे। अँगरेज़ी विदेशी भाषा है। उसे सीखने में बरसों लग जाते हैं। परन्तु कितनी भी कठिन पुस्तक हो, कभी कोई भारतीय उसकी अँगरेज़ी के कठिन या दुर्बोध होने की शिकायत नहीं करता। इसके विपरीत संस्कृत का कोई छोटा-सा भी शब्द आ जाय तो भाषा की क्लिष्टता की शिकायत होने लगती है। इसका कारण कदाचित् यह है कि अँगरेज़ी से अनभिज्ञता प्रकट करना अपने को सभ्य-समाज की दृष्टि में गिराना समझा जाता है, परन्तु हिन्दी की क्लिष्टता की शिकायत करना बड़प्पन और भाषा-तत्त्व का विशेषज्ञ होने का लक्षण है। यदि फ़ारसी-अरबी के अनावश्यक और गला-घोंटू शब्दों का रखना अतीव आवश्यक है तो अँगरेज़ी ने ऐसा कौन भारी अपराध किया है? उसे अपनाने से तो सारे संसार के साथ सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। अरब और फ़ारस से अँगरेज़ सभ्य और शक्तिशाली भी अधिक हैं।

बात वास्तव में यह है कि केवल कोरी युक्ति और तर्क के घोड़े दौड़ाने से कुछ नहीं बनता। संगठित असत्य भी असंगठित सत्य को दबा लेता है। अन्याय पर होते हुए भी इटली अबीसीनिया को हड़प बैठा। संसार में कर्मयोगी की ही जीत है। दर्शन-शास्त्र के पुजारी हिन्दुओं की सौ सम्मतियाँ हैं। कोई कहता है, [illegible]गला राष्ट्र-भाषा होनी चाहिए, कोई अँगरेज़ी के गुण गा रहा है, कोई हिन्दी के साथ व्यभिचार करके ऐसी भाषा तैयार करने की चेष्टा कर रहा है जो आधा तीतर और आधा बटेर है, कोई "मेरा फ़ादर-इन-ला मेरी वाइफ़ को बहुत बुरी तरह ट्रीट करता है" ऐसी भाषा का ही प्रेमी बन रहा है। सारांश यह है कि हिन्दुओं के जितने मुँह उतनी ही बातें हैं। वाग्वीरता बहुत है, कर्मण्यता कुछ भी नहीं। उधर मुसलमान काश्मीर से कन्या-कुमारी तक एक स्वर से उर्दू के लिए पुकार कर रहे हैं। जिसका परिणाम यह है कि उन्हें सफलता हो रही है। बिहार जैसे प्रान्तों में भी उर्दू अदालत की भाषा हो गई है।

काका कालेलकर कहते हैं कि "हम राष्ट्र-भाषा में से संस्कृत और अरबी-फ़ारसी शब्दों के निकाल डालने के

पक्ष में नहीं हैं।" मेरा निवेदन है कि अरबी-फ़ारसी शब्द तो आप निकाल ही नहीं सकते। आपके ऐसी कोई चेष्टा करते ही देश का राजनैतिक वायुमण्डल बिगड़ जायगा, मुसलमान रूठ जायँगे। परन्तु संस्कृत के शब्दों का बहिष्कार तो आप न जानते हुए भी कर रहे हैं। 'समूल नाश' की जगह 'नेस्त-नाबूद,' 'फूट' की जगह 'नाइत्तिफ़ाक़ी' और 'भयावह' की जगह 'ख़तरनाक' लिखना संस्कृत के शब्दों का बहिष्कार नहीं तो और क्या है। यदि आप कहें कि समझाने के लिए लिखा है तो 'अनीहिलेशन', 'डिसयूनियन' और 'डेंजरस' भी तो कहीं लिखा होता। मुसलमान से डरना और अँगरेज़ के सामने अकड़ना, यह कहाँ का न्याय है? आप मुसलमानी संस्कृति को तो गले लगाते हैं, परन्तु "पश्चिमी संस्कृति की प्रभुता को मज़बूत" नहीं बनने देना चाहते। क्यों? इस्लामिक संस्कृति में ऐसे क्या सद्गुण हैं जो पश्चिमी संस्कृति में नहीं?

जो अरब और ईरानी भारत में आकर बस गये हैं अथवा जिन भारतीयों ने इस्लाम-धर्म ग्रहण कर लिया है, न्याय और देश-प्रेम चाहता है कि वे अरबी-फ़ारसी को छोड़कर इस देश की भाषा को ही अपनायें। हमने आज तक इँग्लैंड या जापान में बसनेवाले किसी अरब या ईरानी को अँगरेज़ों या जापानियों को अरबी-फ़ारसी शब्द अपनी भाषा में घुसेड़ने को विवश करते नहीं सुना। फिर भारत का ही बाबा आदम क्यों निराला है? राष्ट्र-भाषा के नाम पर जिस प्रकार की गँदली भाषा उपर्युक्त मण्डली लिखने लगी है, वैसी उर्दू या जिसे श्री कालेलकर जी फ़ारसी रस्म-ख़त में हिन्दी कहते हैं, लिखते मैंने एक भी मुसलमान विद्वान् को नहीं देखा। जिस प्रकार कांग्रेस ने मुसलमानों की अनुचित माँगों के सामने सिर झुकाकर और ख़िलाफ़त जैसा आन्दोलन खड़ा करके राष्ट्रीय दृष्टि से बड़ी भारी भूल की थी और जिसका कटु फल देश को अब चखना पड़ रहा है, मैं समझता हूँ, उपर्युक्त राष्ट्र-भाषा-प्रचारक मण्डली की चेष्टायें भी वैसे ही दुष्परिणाम उत्पन्न करेंगी। मुसलमान तो संस्कृत के शब्दों को अपनायँगे नहीं, हाँ, तर्क-जीवी हिन्दू संस्कृत का परित्याग अवश्य कर देंगे।

एक राष्ट्र-लिपि बनाने का विचार बड़ा शुभ है। परन्तु [illegible] हानिकारक सिद्ध होगी। पंजाब में उर्दू, गुरुमुखी और हिन्दी—तीन लिपियाँ प्रचलित हैं। सिख और मुसलमान तो गुरुमुखी और उर्दू को छोड़ने को तैयार नहीं, हाँ, नपुंसक हिन्दुओं में किसी बात पर दृढ़ रहने की शक्ति नहीं, उनको हिन्दी से हटा कर चाहे किसी ओर लगा दीजिए। नागरी-लिपि की काट-छाँट में जितना समय और श्रम व्यय किया जा रहा है, यदि उतना हिन्दुओं में नागरी के प्रति प्रेम को दृढ़ करने में लगाया जाय तो अधिक उपकार की आशा है। हमारी नागरी-लिपि जापान की लिपि से तो अधिक दोषपूर्ण नहीं। क्या जापान उसी लिपि को रखते हुए स्वतंत्र और एकता के सूत्र में आबद्ध नहीं? मैंने सुना है, जापानी-लिपि वर्णमाला नहीं, वरन उसका एक एक अक्षर एक एक शब्द या वाक्य का द्योतक है। उस अक्षर का उच्चारण जापान और चीन के भिन्न भिन्न भागों में चाहे भिन्न भिन्न हो, परन्तु लिखा जाने पर उसका अर्थ सर्वत्र एक ही समझा जायगा। रूसी सोविएटों ने अपनी एकता को दृढ़ करने के लिए किसी नई लिपि का निर्माण नहीं किया, वरन एक पुरानी वर्ण-माला का ही जीर्णोद्धार करके उसका प्रचार किया है। भारत की राष्ट्र-भाषा हिन्दी और राष्ट्र-लिपि नागरी होने से ही देश का कल्याण है, इस बात को स्वीकार कर हमें इनके प्रचार एवं उद्धार में दृढ़तापूर्वक लग जाना चाहिए। आपकी सफलता और शक्ति को देखकर दूसरे लोग, यदि उनमें देश-प्रेम की भावना है, स्वयमेव आपके साथ आ मिलेंगे। इस प्रकार मिन्नतें और चापलूसियाँ करने से कुछ लाभ न होगा। इससे हिन्दी-प्रेमियों का भी संगठन न रहेगा और दूसरे लोग भी आपसे न मिलेंगे।

श्रीयुत हरिभाऊ उपाध्याय 'मेरी कहानी' की भाषा के संबंध में कहते हैं कि यह अनुवाद बहुत कुछ श्री जवाहरलाल जी की भाषा में हुआ है। अर्थात् अगर मूल लेखक खुद हिन्दी में लिखते तो वह हिन्दी ऐसी ही हो[illegible]' मेरी राय में ऐसी अटपटी भाषा लिखने के लि[illegible] पर्याप्त कारण नहीं। श्री जवाहरलाल ज[illegible] विषयों में नेता और प्रमाण हो सकते हैं, [illegible] अर्थ बिलकुल नहीं कि वे प्रत्येक बात में [illegible] हैं। विलायत से नवागत कोई अँग[illegible] अथवा श्री सत्यमूर्ति [illegible]

[illegible]करने को मौलिक और [illegible] देने का प्रबन्ध [illegible]चित ज्ञान प्राप्त करने [illegible] गया। प्रयोगशालाओं [illegible] में भी [illegible]म करने की सुविधायें

हिन्दी बोलते हैं, क्या आप उसी ऊट-पटाँग हिन्दी में उनकी पुस्तकें लिखेंगे और उसका नाम 'राष्ट्र-भाषा यानी 'हिन्दी-हिन्दुस्तानी' रख कर सारे राष्ट्र को उसका अनुकरण करने का उपदेश देंगे ? मेरा विचार है, आप कभी भी वैसा दुस्साहस नहीं कर सकते। आज तक किसी जर्मन देशभक्त ने अपनी 'आत्म-कथा' अँगरेज़ी में, किसी अँगरेज़ ने 'फ्रेंच' में या किसी इटालियन ने 'फ़ारसी' में नहीं लिखी है। श्री जवाहरलाल जी ने ख़ुद हिन्दी में न लिख कर उसे विदेशी भाषा में लिखा है। इससे स्पष्ट है कि वे अपनी हिन्दी को साहित्यिक या अनुकरणीय नहीं समझते। पंडित महावीरप्रसाद जी द्विवेदी और बाबू श्यामसुन्दरदास जी आदि सज्जन हिन्दी के प्रामाणिक लेखक माने जाते हैं और साहित्यिक हिन्दी के लिए उनकी ही शैली का अनुकरण करना परम आवश्यक है। कल्पना कीजिए कि यदि श्री जवाहरलाल जी अपनी मूल अँगरेज़ी पुस्तक आपकी हिन्दी जैसी 'विकास-शील' अँगरेज़ी में लिखते और उसमें चीनी, जापानी और हब्शी भाषाओं के बहुत-से शब्द ठूँस देते क्योंकि इँग्लेंड में बहुत-से हब्शी भी बस गये हैं, तो उसकी कैसी मिट्टी ख़राब होती। महात्मा गांधी जी के अँगरेज़ी लेखों और जवाहरलाल जी की 'मेरी कहानी' की अँगरेज़ों में क़द्र होने का एक बड़ा कारण यह है कि वह परिमार्जित अँगरेज़ी में लिखी गई है। शुद्ध अँगरेज़ी के रोब से दब कर ही लोग उनके सामने सिर झुका देते हैं।

श्री हरिभाऊ जी कहते हैं—"यदि हमें सचमुच ही हिन्दी को राष्ट्र-भाषा के योग्य बनाना है तो उसमें हिन्दुस्तान में प्रचलित तमाम धर्मों और प्रान्तों की भाषाओं के सुप्रचलित शब्दों का समावेश अवश्य करना होगा।" और कि "३५ करोड़ हिन्दुस्तानियों की भाषा वही हो सकती है जिसको सब लोग आसानी से समझ सकें और बोल सकें।" अब देखना यह है कि 'मेरी कहानी' में तेलगू, तामिल, मलयालम, कनाड़ी, पंजाबी, सिंधी, मुलतानी, और झंगी आदि भारतीय भाषाओं के कितने शब्द हैं। मैं समझता हूँ, शायद ही कोई निकले। फिर क्या "ख़्वाहिशात, जज़बात और वाक़यात" को सब कोई समझता है ? मैंने तो फ़ौजी गोरों को देखा है। साधारण पढ़े-लिखे होने पर भी वे अँगरेज़ी की साहित्यिक पुस्तकों के बहुत-से शब्दों के अर्थ नहीं समझते। उनको उनके अर्थ समझाने पड़ते हैं। तो क्या घटना, भावना, लालसा आदि शब्दों को यदि मुसलमान न समझें या समझने का यत्न करने में अपना अपमान समझें तो उनको प्रसन्न करने के लिए साहित्यिक हिन्दी का ही मूलोच्छेदन कर दिया जाय ? यह सबको प्रसन्न करने या मुसलमानों के पदलेहन की कुनीति देश को ले डूबेगी। यह किसी बात को सत्य और उचित समझते हुए भी उस पर कटिबद्ध होकर डट जाने की शक्ति देशवासियों में न छोड़ेगी। इस दासता-सूचक प्रवृत्ति को जितना शीघ्र रोक दिया जाय उतना ही राष्ट्र का भला है।

सुबोध अदापाल

लेखक, श्रीयुत द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण'

बालापन क्यों विस्मृत होता ?
आज हमारे नयनों से मतवालापन क्यों निसृत होता ?
बालापन क्यों विस्मृत होता ?

केवल दो साथी को लेकर एक नया संसार बसाता;
मिट्टी के लघु महलों का निर्माण ताज का शीश झुकाता;
पर क्यों अब मेरा गृह बढ़कर पूरे जग में विस्तृत होता ?
बालापन क्यों विस्मृत होता ?

बादल ऊपर उठते, डरते, रोते, उनके आँसू बहते;
इन्द्रधनुष को पाने उससे तीर चलाने हम उठ पड़ते;
पर अब भोली प्रकृति नटी से विज्ञानी मन विकृत होता !
बालापन क्यों विस्मृत होता ?

माँ के अतुलित स्नेह-कणों को पाकर उसको प्यार किया था;
भाई बहनों की गोदी में चढ़कर उन्हें दुलार दिया था;
अब जग भर के सुख-दुख में पड़ पूर्ण-स्नेह क्यों अपहृत होता ?
बालापन क्यों विस्मृत होता ?

कानपुर का टेकनोलाजिकल इंस्टिट्यूट

लेखक, श्रीयुत श्यामनारायण कपूर, बी० एस-सी०

औद्योगिक तथा व्यावसायिक शिक्षा और भारतीय उद्योग-धन्धों की उन्नति के लिए भारतीय जनता विगत ५० वर्षों से बराबर आन्दोलन कर रही है। सन् १८८० में भारतीयों की इस माँग के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण रिपोर्ट भी प्रकाशित हुई थी। इस रिपोर्ट की अत्यन्त आवश्यक सिफ़ारिशों पर भी वर्षों तक कोई कार्यवाही नहीं की गई। फिर भी जनता की औद्योगिक शिक्षा की माँग बराबर बढ़ती गई और उसके लिए आन्दोलन भी जारी रहा। युक्तप्रान्त की अधिकांश औद्योगिक शिक्षण-संस्थाओं एवं कानपुर के हारकोर्ट-बटलर टेकनोलाजिकल इंस्टिट्यूट के स्थापित किये जाने का अधिकांश श्रेय इसी आन्दोलन को है।

सन् १९०७ में नैनीताल में औद्योगिक कान्फ़रेंस का अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन में युक्तप्रान्त में उच्च कोटि की औद्योगिक शिक्षा देने के लिए टेकनोलाजिकल इंस्टिट्यूट स्थापित करने का निश्चय किया गया। इस बात की सिफ़ारिश की गई कि इस टेकनोलाजिकल इंस्टिट्यूट का रसायन-विभाग युक्तप्रान्त के प्रमुख औद्योगिक नगर कानपुर में स्थापित किया जाय और इंजीनियरिंग विभाग रुड़की के इंजीनियरिंग कालेज में ही बना रहे। प्रस्ताव पास हो जाने के बाद फिर चुप्पी साध ली गई और उसे कार्य-रूप में परिणत करने के लिए कोई ख़ास कोशिश नहीं की गई। सन् १९१६-१८ के इण्डियन इंडस्ट्रियल कमीशन ने एक बार फिर औद्योगिक शिक्षा की आवश्यकता पर ज़ोर दिया और पिछले ३०-३५ वर्षों से निरन्तर आन्दोलन किये जाने पर भी इस सम्बन्ध में कोई काम न किये जाने पर खेद प्रकट किया।

सन् १९०७ में टेकनोलाजिकल इंस्टिट्यूट की स्थापना का प्रस्ताव पास हो जाने पर भी उसे कार्यरूप में परिणत करने में पूरे १४ वर्ष लग गये। १७ फ़रवरी १९२१ को युक्तप्रान्तीय सरकार ने एक प्रस्ताव पास करके कानपुर में 'टेकनोलाजिकल इंस्टिटयूट' की स्थापना की स्कीम को [illegible] के अनुसार उसी वर्ष युक्त-प्रान्त के तत्कालीन गवर्नर सर हारकोर्ट बटलर के नाम से सम्बद्ध करके टेकनोलाजिकल इंस्टिट्यूट का कार्य आरम्भ हो गया। १९२१ के नवम्बर में गवर्नर महोदय ने इंस्टिट्यूट की इमारतों का शिलारोपण-संस्कार भी सम्पन्न किया।

प्रान्तीय सरकार के इस निश्चय के पूर्व इस इंस्टिट्यूट की रूप-रेखा सर्वथा भिन्न रखने का विचार किया जा रहा था। आरम्भ में इसका प्रमुख उद्देश शिक्षण-संस्था जैसा न होकर प्रान्तीय उद्योग-धन्धों में सहायता पहुँचाने एवं उन्हें उन्नत बनाने के लिए अन्वेषण-कार्य करना था। इसी उद्देश को लेकर 'रिसर्च-इंस्टिट्यूट' के नाम से इसका काम शुरू भी हो गया था। सन् १९२० में इस मसले की जाँच के लिए एक कमिटी नियुक्त की गई। इस कमिटी ने सिफ़ारिश की कि इंस्टिट्यूट में अन्वेषण के साथ ही उच्च कोटि की औद्योगिक शिक्षा का भी प्रबन्ध होना चाहिए। इसी कमिटी की सिफ़ारिशों के फल-स्वरूप सरकार ने 'हारकोर्ट बटलर टेकनोलाजिकल इंस्टिट्यूट' की स्थापना का निश्चय किया।

१९२१ के सितम्बर में शिक्षण-कार्य आरम्भ हो गया। विद्यार्थियों के काम के लिए आरम्भ में आरज़ी तौर पर कुछ प्रयोगशालायें बनाई गईं। इंजीनियरिंग विभाग की शिक्षा का प्रबन्ध लखनऊ के सरकारी टेकनिकल स्कूल में किया गया। शुरू में सरकार ने इंस्टिट्यूट की स्थापना के लिए जो स्कीम मंज़ूर की थी उसके अनुसार इंस्टिट्यूट का उद्देश औद्योगिक रसायन की शिक्षा देना और उद्योग-धन्धों को सहायता पहुँचाने एवं उन्नत बनाने के लिए अन्वेषण-कार्य करना था। अस्तु इंस्टिट्यूट का पाठ्य-क्रम भी इन्हीं उद्देशों को लेकर तैयार किया गया। भारतीय विश्वविद्यालयों से विज्ञान में ग्रेजुएट होनेवाले विद्यार्थियों को इंस्टिट्यूट में भर्ती करने का नियम बनाया गया। विद्यार्थियों को मौखिक और व्यावहारिक दोनों प्रकार की शिक्षा देने का प्रबन्ध किया गया। प्रत्येक विषय का समुचित ज्ञान प्राप्त करने के लिए तीन साल का कोर्स रक्खा गया। प्रयोगशालाओं के अतिरिक्त स्थानीय मिलों में भी काम करने की सुविधायें

[इंस्टिट्यूट भवन।]

प्राप्त की गई। युक्तप्रान्त में औद्योगिक रसायन की शिक्षा देने का यह प्रथम प्रयत्न था। उच्च कोटि की औद्योगिक शिक्षा के लिए उन दिनों आन्दोलन अवश्य किया जाता था, परन्तु विद्यार्थियों में—ख़ास तौर पर विश्व-विद्यालयों की शिक्षा समाप्त करनेवाले विद्यार्थियों में—इस प्रकार की व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त करने की विशेष अभिरुचि न थी। अस्तु, विद्यार्थियों को इस प्रकार की शिक्षा के प्रति आकर्षित करने के लिए प्रान्तीय सरकार ने प्रथम वर्ष इंस्टिट्यूट में भर्ती होनेवाले सभी विद्यार्थियों को ७५) मासिक की छात्रवृत्ति देने का प्रबन्ध किया। व्यावहारिक शिक्षा का ठीक ठीक प्रबन्ध करने के उद्देश से विद्यार्थियों की संख्या बहुत ही सीमित रक्खी गई थी। प्रथम वर्ष केवल ३ विद्यार्थी भर्ती किये गये। प्रथम वर्ष केवल औद्योगिक रसायन की शिक्षा देने का प्रबन्ध किया गया। औद्योगिक रसायन की शिक्षा के द्वारा विद्यार्थियों को बहुत-से व्यवसायों का साधारण व्यावहारिक ज्ञान करा दिया जाता था। अगले वर्ष १९२२-२३ में विद्यार्थियों की संख्या बढ़ने पर तेल और चमड़े के विज्ञानों की शिक्षा देने के लिए और दो विभाग खोले गये। १९२६ में शकर-विज्ञान की शिक्षा देने का आयोजन किया गया। शकर-विभाग की उन्नति के साथ-साथ इस विभाग की भी उन्नति हो गई और अब इस विभाग ने दस वर्ष के अन्दर उन्नति करके 'इम्पीरियल इंस्टिट्यूट आफ़ शुगर टेकनोलाजी' नामक स्वतन्त्र संस्था का रूप धारण कर लिया है।

शुरू के छः-सात वर्ष तक इंस्टिट्यूट में शिक्षा प्राप्त करनेवाले विद्यार्थियों की संख्या बहुत ही सीमित रक्खी गई थी। प्रत्येक विभाग में प्रतिवर्ष केवल ३ विद्यार्थी दाख़िल किये जाते थे। प्रान्तीय सरकार प्रत्येक विद्यार्थी को ४०) मासिक की छात्रवृत्ति देती थी। इनके अतिरिक्त इंस्टिट्यूट के प्रिंसिपल को प्रत्येक विभाग में दो निःशुल्क विद्यार्थी दाख़िल कर लेने का अधिकार था। युक्त प्रान्त के अतिरिक्त दूसरे प्रान्तों के विद्यार्थियों को भी यहाँ शिक्षा की सुविधायें दी गई थीं, परन्तु उन्हें अथवा उनकी प्रान्तीय सरकार को उनकी शिक्षा का पूरा ख़र्च देना पड़ता था।

१९२६ तक सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डाक्टर ई० आर० वाटसन इंस्टिट्यूट के प्रथम प्रिंसिपल रहे। उनकी मृत्यु के बाद डाक्टर गिलबर्ट जे० फ़ाउलर स्थायी रूप से प्रिंसिपल नियुक्त किये गये। १९२९ के अन्त में डाक्टर एच० डी० ड्रेन स्थायी रूप से प्रिंसिपल बनाये गये। पर वे भी तीन वर्ष से अधिक समय तक इस पद पर न रह सके। उनके बाद इंस्टिट्यूट के ख़र्च में कमी करने के ख़याल से प्रिंसिपल का स्वतंत्र पद तोड़ दिया गया। प्रान्त के उद्योग-विभाग के डाइरेक्टर को एक्स आफ़िशियो के रूप से प्रिंसिपल के पद का भार सौंपा गया, परन्तु प्रबन्ध आदि के लिए इंस्टिट्यूट के अधिकारियों में से एक सीनियर मेम्बर कार्यकारी प्रिंसिपल बना दिया जाता है। डाक्टर ड्रेन के बाद युक्त-प्रान्तीय सरकार के तेल-विशेषज्ञ श्री जे० ए० हेयर ड्यूक कई वर्ष तक इस पद पर कार्य करते रहे। आज-कल तेल-विज्ञान के सुप्रसिद्ध पण्डित श्रीयुत दत्तात्रय यशवंत आठवले प्रिंसिपल का काम करते हैं।

अस्तु, १९२८ में सरकार ने इंस्टिट्यूट के पिछले सात वर्षों के कार्य की जाँच के लिए तथा इन सात वर्षों के कार्य से प्राप्त होनेवाले अनुभवों को दृष्टि में रखते हुए उसे भविष्य में और अधिक उन्नत एवं उपयोगी बनाने के सम्बन्ध में सिफ़ारिशें करने के लिए एक कमिटी नियुक्त की। इस कमिटी की सिफ़ारिशों के अनुसार इंस्टिट्यूट में बी० एस-सी० के बजाय विज्ञान में इंटर-मीडिएट पास विद्यार्थी भी भर्ती किये जाने लगे। दाख़िले के लिए प्रवेशिका-परीक्षा का

की संख्या तीन ही रक्खी गई। वज़ीफ़ा ४०) मासिक से घटा कर २५) मासिक कर दिया गया। दूसरे प्रान्तों के विद्यार्थियों से १५००) वार्षिक शुल्क लेना तय किया गया। इंस्टिट्यूट की उपयोगिता देखकर कुछ दूसरी प्रान्तीय सरकारों ने भी अपने प्रान्त के विद्यार्थियों को इंस्टिट्यूट में शिक्षा प्राप्त करने के लिए छात्रवृत्तियाँ देना आरम्भ कर दिया। यह क्रम अभी तक जारी है।

१९२८ के बाद १९३१ में शिक्षाविभाग के तत्कालीन डाइरेक्टर श्रीयुत मेकेन्ज़ी की अध्यक्षता में फिर एक जाँच-कमिटी नियुक्त की गई। इस कमिटी ने इंस्टिट्यूट के पिछले अनुभवों के आधार पर कई एक महत्त्व-पूर्ण सिफ़ारिशें कीं। इन सिफ़ारिशों के अनुसार इंस्टिट्यूट का चर्म-विभाग तोड़ दिया गया। बाद में इस विभाग के अन्तर्गत मेशीनें एवं प्रयोगशाला आदि के यंत्र आदि दयाल-बाग़ की औद्योगिक शिक्षण-संस्था को भेज दिये गये। अब चर्म-विज्ञान की शिक्षा भी दयाल-बाग़ में ही दी जाती है। इंस्टिट्यूट में शिक्षण-कार्य केवल शकर और तेल इन दो विभागों तक ही सीमित रक्खा गया। साधारण अनुसन्धान-विभाग में शिक्षण-कार्य बन्द कर दिया गया और केवल अनुसन्धान का प्रबन्ध रक्खा गया। इस कार्य के लिए प्रतिवर्ष दो विद्यार्थी लिये जाने लगे। शकर और तेल के विभागों में दस-दस विद्यार्थियों की शिक्षा का प्रबन्ध किया गया। आई० एस-सी० पास विद्यार्थियों का लिया जाना बन्द करके फिर से बी० एस-सी० पास विद्यार्थी लिये जाने लगे। कोर्स तीन

का कर दिया गया। वज़ीफ़ों की संख्या कम करके शकर और तेल के विभागों में केवल दो-दो रक्खी गईं। साधारण अनु-सन्धान-विभाग में केवल एक। इस कमिटी ने भी शिक्षा को निःशुल्क ही रक्खा। दूसरे प्रान्तों के विद्यार्थियों से फ़ीस लेने का नियम पूर्ववत् बना रहा। दो वर्ष की शिक्षा के बाद इंस्टिट्यूट से डिप्लोमा प्राप्त करनेवाले विद्यार्थियों को 'एशोसिएट आफ़ हारकोर्ट बटलर टेकनोलाजिकल इंस्टिट्यूट' (ए० एच० बी० टी० आई०) का टाइटिल तथा डिप्लोमा प्राप्त करने के बाद दो वर्ष तक अन्वेषण-कार्य करनेवाले विद्यार्थियों को फ़ेलो (एफ़० एच० बी० टी० आई०) का टाइटिल दिया जाने लगा। यह क्रम अभी तक जारी है।

अब इंस्टिट्यूट का शकर-विभाग इम्पीरियल कौंसिल आफ़ एग्रिकलचरल रिसर्च (शाही कृषि-अनुसन्धान-समिति) की सहायता से इम्पीरियल इंस्टिट्यूट आफ़ शुगर टेकनोलाजी नामक एक स्वतंत्र बृहत् संस्था में परिवर्तित कर दिया गया है। यह संस्था भी हारकोर्ट बटलर टेकनो-लाजिकल इंस्टिट्यूट की ही इमारतों में स्थित है। गत ३१
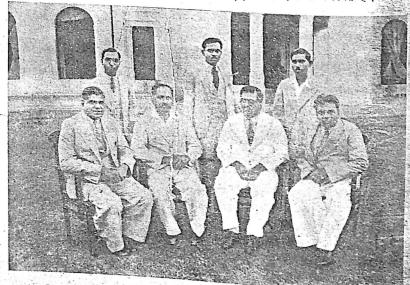
[साइंटिफ़िक सोसाइटी के पदाधिकारी।]
(बीच में इंस्टिट्यूट के वर्तमान स्थानापन्न प्रिंसिपल श्रीयुत पंडित दत्तात्रय यशवन्त आठवले और

मार्च १९३७ को वाइसराय की कार्य-कारिणी कौंसिल के सदस्य सर फ्रेंक नायस ने इसका उद्घाटन किया था। इस इंस्टिट्यूट में शकर-विज्ञान की सब प्रकार की शिक्षा का प्रबन्ध है। शिक्षण-कार्य के साथ ही साथ यह संस्था शकर-व्यवसाय-सम्बन्धी अन्वेषण-कार्य भी करती है। शकर-व्यवसाय को उन्नत बनाने के लिए यथासम्भव सब प्रकार की वैज्ञानिक सहायता देने का भी समुचित प्रबन्ध है। इम्पीरियल कौंसिल आफ़ एग्रिकलचरल रिसर्च के शकर-विज्ञान के विशेषज्ञ श्री आर० सी० श्रीवास्तव जो अब तक हारकोर्ट बटलर टेकनोलाजिकल इंस्टिट्यूट के शकर-विभाग के भी अध्यक्ष थे, इस नवीन संस्था के डाइरेक्टर नियुक्त किये गये हैं।

इस नवीन संस्था में शिक्षण-कार्य के लिए आगामी जुलाई मास से तीन कोर्स नियत किये गये हैं, शुगर-इंजीनियर, शुगर-केमिस्ट और शुगर-ब्वायलर। ये तीनों कोर्स तीन तीन वर्ष के होंगे। तीनों में १२-१२ विद्यार्थी भर्ती किये जायँगे। शुगर इंजीनियर शकर-मिलों के इंजीनियर का काम करेंगे। इस कोर्स की शिक्षा प्राप्त करने के लिए विद्यार्थियों का इंजीनियरिंग में बी० एस-सी० पास होना आवश्यक होगा। केमिस्ट-कोर्स के लिए साधारण विज्ञान के बी० एस-सी० लिये जायँगे। पैन ब्वायलर कोर्स जो अब तक केवल साल भर का था, बढ़ाकर तीन वर्ष का कर दिया जायगा। अब तक इस कोर्स के लिए इन्ट्रेंस पास विद्यार्थी लिये जाया करते थे, अब विज्ञान लेकर इन्टरमीडिएट पास करनेवाले विद्यार्थी लिये जायँगे। दाख़िले के लिए इम्पीरियल कौंसिल आफ़ एग्रिकलचरल रिसर्च को लिखना होगा। इन तीन वर्षों में प्रथम वर्ष तो इंस्टिट्यूट में पढ़ाई में लगेगा और बाक़ी दो वर्ष शकर के कारख़ाने में काम करना होगा। इस तरह तीन वर्ष बिताने के बाद सार्टिफ़िकेट प्रदान किया जायगा।

टेकनोलाजिकल इंस्टिट्यूट में अब केवल तेल-विज्ञान की शिक्षा दी जाती है। इस विभाग के कोर्स में भारतीय तेलहनों और उनसे तैयार होनेवाले समस्त तेलों का पूर्ण वैज्ञानिक ज्ञान, उनसे नवीनतम आधुनिक रीति से तेल तैयार करने एवं उनके शुद्धि करने की विभिन्न रीतियाँ, तेल-विज्ञान से सम्बन्ध रखनेवाले साबुन, रंग-रोग़न आदि विज्ञानों की भी शिक्षा शामिल है। सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों ही प्रकार की शिक्षा देने का यहाँ प्रबन्ध है। वास्तव में तेल-विज्ञान की इतनी पूरी शिक्षा देने का आयोजन भारत में इस संस्था के अतिरिक्त और कहीं नहीं है। इस इंस्टिट्यूट को भी कृषि-अनुसन्धान-समिति से आर्थिक सहायता मिलती है। इस सहायता के बदले में इंस्टिट्यूट में कृषि-अनुसन्धान-समिति की सिफ़ारिश से युक्तप्रांत के अलावा दूसरे प्रान्तों के पाँच विद्यार्थी दाख़िल किये जाते हैं। इनके अतिरिक्त पाँच विद्यार्थी युक्तप्रान्त के लिये जाते हैं। इन दस विद्यार्थियों के अतिरिक्त दूसरे प्रान्तों एवं रियासतों आदि के जो और विद्यार्थी इंस्टिट्यूट में शिक्षा ग्रहण करना चाहते हैं उनसे ५०) मासिक फ़ीस ली जाती है। नियमित रूप से डिप्लोमा की शिक्षा ग्रहण करनेवाले विद्यार्थियों के अलावा तेल-विज्ञान के विभिन्न अंगों, तेल, साबुन, रंग-रोग़न आदि की शिक्षा के लिए छः से आठ मास तक के छोटे-छोटे कोर्सों में भी कुछ विद्यार्थी दाख़िल किये जाते हैं। तेल-विज्ञान की साधारण शिक्षा समाप्त करने के बाद दो विद्यार्थियों को अनुसन्धान कार्य करने की भी सुविधा दी जाती है। इनमें से एक विद्यार्थी को प्रान्तीय सरकार दो वर्ष तक ६०) मासिक की छात्रवृत्ति देती है। तेल-विज्ञान के अतिरिक्त साधारण अनुसन्धान-विभाग में भी दो विद्यार्थी प्रतिवर्ष लिये जाते हैं। इन विद्यार्थियों के लिए कोई विशेष पाठ्यक्रम निर्धारित नहीं है। इन्हें कुछ महत्त्वपूर्ण औद्योगिक प्रश्नों का अनुसन्धान-कार्य करना होता है।

इस इंस्टिट्यूट के शिक्षण-कार्य का प्रमुख उद्देश ऐसे विद्यार्थी तैयार करना है जो शिक्षा समाप्त करने के बाद उद्योग-धन्धों में सहायता पहुँचावें, उनका संगठन एवं संचालन करें, मौक़ा मिलने पर अपना कारोबार भी शुरू करें और विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करनेवाले विद्यार्थियों की तरह बाबूगिरी के लिए मारे मारे न फिरें। इंस्टिट्यूट को अपने इस उद्देश में सफलता भी मिली है। इस उद्देश को ध्यान में रखते हुए इंस्टिट्यूट में आम तौर पर ऐसे ही विद्यार्थियों को भर्ती करते हैं जिन्हें उद्योग-व्यवसाय से विशेष अभिरुचि होती है या जो स्वयं पूँजी लगाकर अथवा उसका प्रबन्ध कर अपने निजी कारबार चलाने का प्रबन्ध कर सकते हैं अथवा शिक्षा समाप्त करने के [illegible]

स्थान प्राप्त करने की आशा रखते हैं। फिर भी इंस्टिट्यूट के अधिकारी इंस्टिट्यूट से शिक्षा समाप्त करनेवाले विद्यार्थियों को काम दिलाने अथवा अपना निजी कारबार शुरू करने पर यथासम्भव सब प्रकार की सहायता पहुँचाते हैं और उनसे बराबर सम्पर्क बनाये रखते हैं। शिक्षा समाप्त करने के वर्षों बाद भी वे अपने विद्यार्थियों की सहायता के लिए सदैव प्रस्तुत रहते हैं—साधारण कालेजों और विश्वविद्यालयों के समान शिक्षा समाप्त होते ही सम्बन्ध-विच्छेद नहीं कर देते। इसके फलस्वरूप इंस्टिट्यूट के विद्यार्थियों को काम मिलने में काफ़ी सुभीता होता है।

\+ \+ \+ \+

सभी प्रकार की आधुनिक औद्योगिक शिक्षाओं का आधारस्तम्भ रसायन है। रसायन-विज्ञान के दो प्रमुख विभाग हैं—सैद्धान्तिक और व्यावहारिक। भारतीय विश्वविद्यालयों में आम तौर पर सैद्धान्तिक रसायन की शिक्षा एवं अन्वेषण-कार्य ही पर अधिक ध्यान दिया जाता है। अब कुछ विश्वविद्यालयों ने औद्योगिक रसायन की शिक्षा का प्रबन्ध किया है। अब भी बहुत-से विश्वविद्यालयों में औद्योगिक एवं व्यावहारिक रसायन की शिक्षा का उल्लेखनीय प्रबन्ध नहीं है। युक्तप्रान्त में सर्वप्रथम व्यावहारिक एवं औद्योगिक रसायन की शिक्षा का प्रबन्ध करने का श्रेय टेकनोलाजिकल इंस्टिट्यूट को ही प्राप्त है। युक्तप्रान्त में ही नहीं, समस्त भारत में औद्योगिक एवं व्यावहारिक रसायन की शिक्षा देनेवाली समस्त संस्थाओं में बँगलोर की 'इंडियन इंस्टिट्यूट आफ़ साइंस' के बाद इसी संस्था को प्रमुख स्थान प्राप्त है। प्रान्तीय सरकार के प्रबन्ध से इस इंस्टिट्यूट को औद्योगिक शिक्षा देने की

प्राप्त हैं। व्यावहारिक एवं औद्योगिक रसायन की शिक्षा के लिए आम तौर पर तीन बातों की आवश्यकता पड़ती है। सैद्धान्तिक रसायन का समुचित ज्ञान एवं उसकी शिक्षा के लिए प्रयोगशालाओं की व्यवस्था, व्यावहारिक रसायन की शिक्षा के लिए उत्तम आधुनिक प्रयोगशालायें तथा मेकेनिकल एवं इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग की शिक्षा का प्रबन्ध। टेकनोलाजिकल इंस्टिट्यूट में इन तीनों ही बातों का समुचित प्रबन्ध है। इंस्टिट्यूट में भर्ती होनेवाले विद्यार्थी आम तौर पर विश्वविद्यालयों के बी० एस-सी० और एम० एस-सी० होने के नाते सैद्धान्तिक रसायन का समुचित ज्ञान रखते हैं। व्यावहारिक रसायन एवं इंजीनियरिंग की शिक्षा का इंस्टिट्यूट में अच्छा प्रबन्ध है। आम तौर पर व्यावहारिक एवं औद्योगिक रसायन की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता है। एक चतुर एवं व्यवहारकुशल रसायनज्ञ को इंजीनियरिंग के जितने ज्ञान की ज़रूरत होती है, विद्यार्थियों का उतना ज्ञान करा देने का यहाँ समुचित प्रबन्ध है। वास्तव में एक व्यावहारिक रसायनज्ञ से इंजीनियर होने की आशा भी नहीं की जा सकती, परन्तु उसके लिए यह ज़रूरी है कि वह इंजीनियर की भाषा समझ सके और अपने विचारों को इंजीनियर को समझा सके। उसे ज़रूरत पड़ने पर अपनी विशेष मेशीनों का आविष्कार भी करना होता है। इसके लिए इंस्टिट्यूट में मेशीन डिज़ाइन

एवं रचना की शिक्षा का प्रबन्ध किया गया है। विदेशों में प्रत्येक विषय के लिए अलग अलग विशेषज्ञ होते हैं। किसी भी विषय पर थोड़े से ख़र्चे में विशेषज्ञों की सम्मति आसानी से मिल जाती है। अतः वहाँ इंजीनियरिंग का ज्ञान न होने से भी काम चल जाता है। परन्तु भारत में विशेषज्ञों से कच्चे माल की ख़रीद से लेकर मेशीनों की ख़रीद, फ़िटिंग तथा मरम्मत के अतिरिक्त उत्पादन और बिक्री आदि की भी देख-भाल करनी पड़ती है। इन सभी बातों में पूर्णतया विज्ञ होना एक अत्यन्त कठिन कार्य है। परन्तु इंस्टिट्यूट में उसे यथासाध्य सभी आवश्यक विषयों का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने में सहायता दी जाती है। इंस्टिट्यूट में उत्तम आधुनिक प्रयोगशालाओं के अतिरिक्त छोटे-छोटे माडेल कारख़ानों का भी प्रबन्ध है। प्रयोगशालाओं में काम करने के साथ ही विद्यार्थी इन फ़ैक्टरियों में व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करते हैं। अपनी फ़ैक्टरियों में काम करने के अलावा प्रमुख औद्योगिक केन्द्रों की ख़ास ख़ास फ़ैक्टरियों के देखने और उनमें काम करने की व्यवस्था की जाती है। फ़ैक्टरियों को देखने से बहुत-सा ज्ञान अनायास ही प्राप्त हो जाता है। इतनी शिक्षा और व्यावहारिक ज्ञान के बाद विद्यार्थी अपने पैरों खड़े होने में समर्थ हो जाते हैं।

विद्यार्थियों में आत्मविश्वास उत्पन्न करने और कारख़ाना खोलने की पूरी जानकारी कराने के लिए इंस्टिट्यूट की निजी फ़ैक्टरियों का अधिकांश काम विद्यार्थियों को सौंप दिया जाता है। इंस्टिट्यूट के अधिकारी उन्हें आवश्यक परामर्श देते रहते हैं और उन पर नियंत्रण रखते हैं। इन फ़ैक्टरियों में तेल, साबुन, रंग-रोग़न और शकर की फ़ैक्टरियों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन फ़ैक्टरियों का उद्देश व्यापारिक न होकर शिक्षणात्मक ही है। यहाँ विद्यार्थियों को व्यापारिक ढंग से उत्पादन की शिक्षा दी जाती है और उनमें कारख़ानों जैसे वातावरण में काम करने की योग्यता उत्पन्न की जाती है। इन्हीं कारख़ानों में इंस्टिट्यूट में होनेवाले अनुसन्धान-कार्य के व्यावसायिक रूप की पूरी जाँच-पड़ताल की जाती है। इस अनुसन्धान के कार्य से केवल विद्यार्थियों को ही नहीं, बरन उद्योग-धन्धों के संचालकों को भी बड़ी सहायता मिलती है। स्वतन्त्र अनुसन्धान-कार्य के अलावा इंस्टिट्यूट के अधिकारी उद्योग-धन्धों के संचालकों की समस्याओं को सुलझाने के लिए भी बराबर प्रयत्नशील रहते हैं और उनसे बराबर सम्पर्क बनाये रखते हैं। स्वयं मिलों में जाकर मिलवालों की कठिनाइयों को समझकर उन्हें दूर करने के उपाय बतलाते हैं और कारख़ाने को उन्नत एवं लाभदायक बनाने के लिए परिवर्तन, परिवर्द्धन एवं सुधार आदि के लिए बराबर परामर्श देते रहते हैं। साधारण अभिरुचि की औद्योगिक समस्याओं पर कार्य करने के लिए इंस्टिट्यूट में किसी प्रकार की फ़ीस नहीं ली जाती। उद्योग-धन्धों के संचालन, व्यवस्था एवं मेशीन आदि से सम्बन्ध रखनेवाले नाना प्रकार के प्रश्नों के उत्तर दिये जाते हैं। वास्तव में उत्तरी भारत में उद्योग-धन्धों के

करने और तत्सम्बन्धी अनुसन्धान-कार्य करने के लिए यह इंस्टिट्यूट एक प्रामाणिक संस्था है।

प्रयोगशालाओं के ही समान इंस्टिट्यूट का पुस्तकालय और वाचनालय भी बिलकुल अप-टु-डेट है। पुस्तकालय में विज्ञान, कलाकौशल, उद्योग, व्यवसाय एवं टेकनोलाजी-सम्बन्धी सहस्रों श्रेष्ठ पुस्तकें मौजूद हैं। यहाँ इण्डियन पेटेन्ट स्पेसिफ़िकेशन की पूरी फ़ाइल भी रक्खी जाती है। प्रतिवर्ष टेकनिकल विषयों पर प्रकाशित होनेवाला नवीन सामयिक साहित्य भी बराबर आता रहता है। अँगरेज़ी के अतिरिक्त जर्मन और फ्रेंच भाषाओं की उत्तम वैज्ञानिक पुस्तकें एवं पत्र-पत्रिकायें भी मँगाई जाती हैं। यहाँ यह कहना असंगत न होगा कि जर्मन-भाषा का वैज्ञानिक साहित्य अँगरेज़ी से कहीं अधिक बढ़ा-चढ़ा है और अधिकांश प्रामाणिक वैज्ञानिक पुस्तकें जर्मन-भाषा से अनुवादित की जाती हैं। इंस्टिट्यूट के पुस्तकालय से विद्यार्थियों के अतिरिक्त मिल-मालिक और सर्वसाधारण भी लाभ उठा सकते हैं।

[पुस्तकालय—मुख्य भाग।]

इंस्टिट्यूट के विद्यार्थियों में वैज्ञानिक विषयों में अनुसन्धान की अभिरुचि उत्पन्न करने, वैज्ञानिक विषयों पर वाद-विवाद करने तथा उन्हें वैज्ञानिक लेख आदि लिखने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए 'साइंटिफ़िक सोसाइटी' नामक विद्यार्थियों की एक निजी संस्था है। इस संस्था की ओर से 'जरनल आफ़ टेकनोलाजी' नामक एक त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित की जाती है। इस पत्रिका ने भारत ही में नहीं, विदेशों में भी अच्छा सम्मान प्राप्त किया है। विद्यार्थियों-द्वारा होनेवाले अनुसन्धान-कार्य का विवरण भी इसी पत्रिका में प्रकाशित होता है। इस पत्रिका के अतिरिक्त सरकारी तौर पर भी समय समय पर विभिन्न विषयों पर होनेवाले अनुसन्धान-कार्य के विवरण बुलेटिनों के रूप में प्रकाशित होते रहते हैं। युक्त-प्रान्त के उद्योग-धन्धों से सम्बन्ध रखनेवाले ऐसे ३०-३५ बुलेटिन अब तक प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें से अधिकांश अँगरेज़ी में हैं।

अन्त में इस इंस्टिट्यूट से पास होनेवाले विद्यार्थियों की कुछ बातें बतलाना भी यहाँ आवश्यक है। इंस्टिट्यूट के पूर्व विद्यार्थियों में ९० से ९५ प्रतिशत तक विद्यार्थी काम में लगे हुए हैं। तेल और शकर-विभाग को अपने विद्यार्थियों को काम में लगाने में विशेष सफलता मिली है। भारतवर्ष में और युक्त-प्रांत में ख़ास तौर पर तेल-मिलों की अच्छी संख्या है। इन सबके संचालन के लिए विशेषज्ञों की सख़्त ज़रूरत थी। इंस्टिट्यूट में शिक्षा पाये हुए विद्यार्थियों के सहयोग का मिल-मालिकों ने पूरा लाभ उठाया और तेल-विज्ञान में विशेष योग्यता प्राप्त करनेवाले विद्यार्थियों की शीघ्र ही अच्छी माँग हो गई। तेल-मिलों के अतिरिक्त इनमें से कुछ को साबुन और रंग-रोग़न के कारख़ानों में अच्छी जगहें मिली हैं। कुछ ने अपने निजी कारख़ाने खोल लिये हैं। १९३५ तक पास होनेवाले विद्यार्थियों में बहुत थोड़े विद्यार्थी ऐसे हैं जो अब तक किसी काम से नहीं लग सके हैं। इंस्टिट्यूट के अधिकारियों एवं विद्यार्थियों से युक्त-प्रान्तीय तेल-व्यवसाय को ही नहीं,
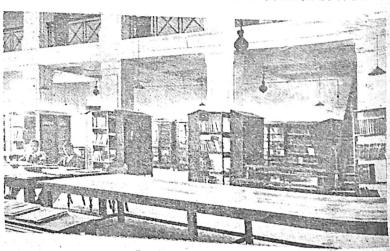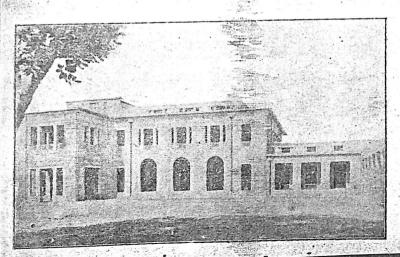
बरन भारतवर्ष के अन्य भागों के तेल, साबुन एवं रंग-रोग़न के कारख़ानों को समुचित लाभ पहुँचा है। वास्तव में युक्त-प्रान्त की तेल-मिलों को सुव्यवस्थित रूप से आधुनिक ढंग पर चलाने का अधिकांश श्रेय इस इंस्टिट्यूट को ही प्राप्त है।

शकर-विभाग को अपने विद्यार्थियों को काम में लगाने में पूर्ण सफलता मिली है। १९२६ के पहले जब इंस्टिट्यूट में शकर-विज्ञान की शिक्षा आरम्भ नहीं हुई थी, साधारण अनुसन्धान-विभाग के विद्यार्थी शकर-मिलों में ले लिये जाया करते थे। शकर-विज्ञान के विशेषज्ञ तैयार होने पर उनकी माँग और ज़्यादा बढ़ गई। इधर शकर-व्यवसाय की उन्नति ने इन विद्यार्थियों को काम दिलाने में और भी अधिक सहायता पहुँचाई है। फलस्वरूप आज भारत का विरली ही कोई शकर-मिल ऐसी होगी, जहाँ इस इंस्टिट्यूट से शिक्षा पाये हुए दो-एक केमिस्ट न हों।

साधारण अनुसन्धान-विभाग से बहुत थोड़े विद्यार्थी तैयार हुए हैं। इनमें से अधिकांश काम में लगे हुए हैं। इन्हें सभी प्रकार के रासायनिक उद्योग-धन्धों में जगहें मिली हैं। कुछ ने ओषधि बनाने के कारख़ाने खोले हैं। एक विद्यार्थी ने अपना काँच का कारख़ाना खोला है। कुछ को ओषधि-निर्माण करनेवाले कारख़ानों में जगहें मिल गई हैं। इंस्टिट्यूट के पूर्व के छात्रों-द्वारा अकेले कानपुर में कई कारख़ाने बहुत सफलता-पूर्वक काम कर रहे हैं। इनमें मारविल सोप वर्क्स, माथुर मंजूर लिमिटेड और पर्ल्स प्राडक्ट्स लिमिटेड, के नाम विशेषतया उल्लेखनीय हैं। इन तीनों ने थोड़ी सी पूँजी से शुरू करके काफ़ी उन्नति की है। कानपुर के अलावा युक्त-प्रान्त के दूसरे शहरों में भी इंस्टिट्यूट के पूर्व के छात्रों ने अपने कई कारख़ाने खोले हैं।

सिद्धान्त

लेखक, पण्डित रामचरित उपाध्याय

(१)

डरना किसी से नहीं, मरना स्वधर्म-हेतु,
कहना उसे ही जिसे करके दिखाना हो,
टलना प्रणों से नहीं, मिलना खलों से नहीं,
लिखना उसे ही जिसे सीखना-सिखाना हो।
चलना बड़ों की चाल, जलना किसी से नहीं,
रहना उसी के साथ जिसका ठिकाना हो,
पड़ना प्रलोभ में न, गुरु से अकड़ना क्यों?
अड़ना वहाँ ही जहाँ शत्रु को भगाना हो॥

(२)

माँगिए किसी से नहीं किन्तु यदि माँगे बिना—
काम न चले तो फिर माँगिए रमेश से,
क्लेश जो उठाना हो तो कीजिए किसी से प्रेम,
छोड़िए सभी को यदि छूटना हो क्लेश से।
चिन्ता को हटाना हो तो कीजिए न रंच चाह,
धर्म-चाह हो तो हट जाओ लोभ-लेश से,
वेश को बनाना हो तो बनिए उमेश-दास,
नाता जोड़ना ही हो तो जोड़िए स्वदेश से॥

मुन्नी
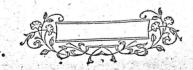
लेखक, श्रीयुत 'श्रीहर'

मैं ने एक बिल्ली पाली है—एकदम सफ़ेद बर्फ़ जैसी। उसकी इसी सुन्दरता की ओर मैं खिंच गया था, जब उसे दशहरे की छुट्टी में गाँव के पूरबी टोले की एक गली में देखा था। छोटे छोटे पैर, गठा-सा बदन और बड़ी बड़ी गोल गोल पैनी आँखें। वह बहुत दिन की हो गई थी, तो भी बिल्लियों के दो वर्ष के बच्चों के साथ बच्ची-सी ही लगती थी। सफ़ाई पर इतना ध्यान कि मेरी चारपाई पर यदि धुली हुई चादर बिछी होती तो पाँव तक नहीं रखती थी। एक दिन उसने रामू का सारा दूध पी डाला।--इस पर रामू ने उग्र रूप प्रकट किया। मा जी ने कहा—रामू, वह भी तो बच्ची ही है। बड़े भैया कहते हैं, मुन्नी को दही खिलाया करो। वह घर से सारे चूहे भगा देगी, और तुम प्लेग से बची रहोगी।

मुन्नी मुझसे कभी कभी नाराज़ हो जाती है, और इतना अधिक कि कुछ समय तक मेरे सामने भी नहीं आती। एक दिन मैं कुछ रुपये गिन रहा था। ज्यों ही मैं उन्हें हाथ में लेता, वह पंजा मारकर गिरा देती। दो-तीन बार तक तो मैं उसके इस नटखटपने पर हँसता रहा, किन्तु जब उसने मुझे न गिनने देना ही तय कर लिया, मैंने बनावटी क्रोध में उसकी ओर आँखें बदल कर देखा। वह दूर हटकर गुर्राने लगी, और जब मैं इतने पर भी उसे उसी तरह देखता रहा, वह वहाँ से धीरे धीरे चली गई। फिर मैंने उसे बार बार बुलाया, वह नहीं आई। उसने समझ लिया था, मैं उस पर क्रुद्ध हूँ। पर मैं मुन्नी को उस अवस्था में नहीं छोड़ सकता था। मुझे स्वयं उसके पास जाकर उसको मनाना पड़ा।

छुट्टियों में घर आने पर मैं उसके लिए तमाशा हो जाता हूँ और वह मेरे लिए खिलवाड़। मैं किसी के दरवाज़े जाता हूँ तो वह इश्तिहार का काम करती है। एक दिन सवेरे आठ बजे धोती और तौलिया कन्धे पर रक्खा और चप्पल ढूँढ़ने लगा। भाभी ने कहा—बाबू जी, वह तो आपकी रानी की तोशक बनी है। देखा, मुन्नी उसी पर पैर फैलाये सो रही है। चप्पल लेना पड़ा, क्योंकि उस दिन नदी नहाने का विचार था। मैं खूँटी के घाट पहुँचा। वहाँ स्त्रियों का मेला था। फिर कैंत के सामने गया। वहाँ भैंसें धोई जा रही थीं। फिर पुल के पास गया। वहाँ दिल नहीं लगा। मुड़कर देखा, मुन्नी रानी पीछे थीं। खेलते खेलते हम दूर निकल गये—साधु की कुटी के और आगे। एकदम निर्जन स्थान था। आस-पास छोटी छोटी झाड़ियाँ और छिछले गहरे नाले थे। स्थान मेरे लिए बड़ा सुन्दर था। मैंने उसे अपना घाट मान लिया। धोती-तौलिया एक जगह पर रख दी। मुन्नी ने तौलिये पर आसन जमा दिया। मुँह धोया, नदी के किनारे जाकर गीत गाया, फिर नदी में पैठकर स्नान किया। जब स्नान कर किनारे आया तब देखा, मुन्नी वहाँ नहीं है। समझा, वह नटखट है, किसी ओर निकल गई होगी, आ जायगी। धोती बदली। मुन्नी को आवाज़ दी—दो, तीन, चार—पचीसों बार। पर मुन्नी नहीं आई। मन में सोचा, क्या घर चली गई। किन्तु मुझे छोड़कर कैसे जा सकती है? बहुत घबराया।

मनुष्य कितना प्रेमी होता है! मिट्टी का एक कण भी उसे बाँध सकता है। छोटी-सी बिल्ली का क्या महत्त्व? किन्तु मैं उसके लिए परेशान था। उसकी खोज में आगे बढ़ चला। झाड़ियाँ हिलाईं, नाले झाँके, पर वह कहीं न मिली। बढ़ता ही गया। जहाँ नदी उत्तर को मुड़ती है, वहीं एक गहरे नाले में एक किनारे एक नाटे क़द का आदमी दिखाई दिया। उसका रंग काला, बदन खुला हुआ था। वह केवल एक मैली तौलिया लपेटे बैठा था। उसका मुँह नदी की ओर, सिर के बाल बड़े बड़े, दाढ़ी कुछ बढ़ी हुई, जैसे वह कोई नया साधु हो। उसी के हाथों में मेरी मुन्नी थी। मैं पास के एक बबूल की ओट में हो गया। वह मेरी रानी को छाती से दबाये नदी की लहरों को देख रहा था। एकाएक वह मुन्नी को देखकर कहने लगा—

तुम ज्यों की त्यों वैसी ही छोटी बिल्ली बनी हुई हो। तीन वर्ष के बाद भी वही चंचलता; वही घुड़दौड़! चूहे के साथ खेलती खेलती यहाँ आ गई। बड़े झटके से पकड़ा, नहीं तो तुम भाग ही जातीं। तुम्हारी आँखों में अभी तक वही चमकता सौन्दर्य और तेज मौजूद है। लेकिन तुमने मुझे नहीं पहचाना। जब आदमी नहीं पहचानते तब तुम कैसे पहचानतीं? मेरी उम्र के साथी मुझसे दूर रहते हैं। नहीं देखतीं, मेरे कपड़े से बदबू आ रही है। यह तौलिया वही है जिससे तुम खेलती थीं। दाँतों से दबाकर इस झोपड़ी से उस झोपड़ी में जाया करती थीं। अब तो फूस का वह घर भी नहीं रहा। महान् परिवर्तन हो गया है। मेरी देह की तुम एक-एक हड्डी गिन सकती हो। ज़रा तेज़ भागती तो मैं तुम्हें पकड़ भी न पाता। सूर्य की धूप मुझसे डरती थी जब मैं हल लेकर खेत में सुबह-शाम एक कर देता था। जवान बैल जब भागते थे, मिट्टी के बड़े बड़े ढेलों को चूर करता हुआ मैं उन्हें घेर लाता था। पर अब ....कुछ रुक कर वह फिर कहने लगा........मैं जानता हूँ, बिल्ली, यदि अभी तुमको छोड़ दूँ, तुम भाग जाओगी। कुछ दिन पहले जब तुम मेरी गोद में होतीं और सीता आकर तुम्हें खींचने लगता, तुम मुझसे और लिपट-सी जातीं। आज तो तुम अपनी विवशता दिखा रही हो। सीता को जानती हो? वही जिसकी थाली में तुम उसके साथ दही-भात खाती थीं। वह कहाँ है? तुम क्या जानों जब गाँव के लोग ही नहीं जानते हैं? ज़मींदारों के वे लड़के जो बचपन में उसके साथ पास के बग़ीचे में कबड्डी खेलते थे, कभी भूलकर भी उसकी खोज नहीं करते। वह पासवाले गाँव में एक बाबू के यहाँ पेट की रोटियों पर नौकर है। वहाँ से मैंने क़र्ज़ लिया था। रुपया न दे सका। वह गिरवी रख लिया गया है। वह अब बड़ा हो गया है। हाथ-पाँव काफ़ी मज़बूत हो चुके हैं। केवल पचीस रुपये का क़र्ज़ था। जोड़-जाड़ कर वह अब तीन सौ तक पहुँच गया है। सीता कहता है—बाबू जी, मुझे बाज़ार और पास के पजावे पर काम करने दीजिए। मैं कुछ ही दिनों में सारा ऋण अदा कर दूँगा। लेकिन मालिक नहीं सुनते। कितना अन्याय है! छः साल के अन्दर सीता ने अपने पौरुष से सैकड़ों रुपये की आमदनी उनको कराई, किन्तु इसका कोई विचार नहीं। रूखी-सूखी रोटी पर उसको परतंत्रता स्वीकार करनी पड़ी है।

मैं एक अजीब दुनिया में जा पहुँचा था। विचारों में एक नई हलचल मच गई। जी में आया, कह दूँ, चलो सीता को अभी छुड़ाता हूँ, किन्तु साहस नहीं हुआ। शिथिल होकर बबूल के पेड़ के सहारे खड़ा रहा। देखा, वह धीरे-धीरे मुन्नी की पीठ पर दाहना हाथ घुमा रहा था। चंचल मुन्नी चुपचाप उसकी ओर देख रही थी। उसे भाग जाने का मौक़ा था, किन्तु वह उसी को देखती रही। वह बालों को उठाते हुए कहने लगा—छोटी बिल्ली, तुम्हारे बाल कितने कोमल हैं। आओ, तुम्हें चूम लूँ। इससे एक मीठी सुगन्ध आती है। तुम्हारे नये मालिक ने तुम्हें साबुन से धोया है। लेकिन बिल्ली, तुमको अब मैं छोड़ दूँगा। मेरी देह पर मैल की कई तहें जमी हुई हैं। तुम मेरी देह के स्पर्श से गन्दी हो जाओगी। सम्भव है, तुम्हारा मालिक तुमसे अप्रसन्न हो जाय। मैं तुमको कितना प्यार करता हूँ बिल्ली! तुमने कभी यह विचार किया है कि तुम्हारे मालिक पैसे से साबुन ख़रीदकर तुम्हें धोते हैं और तुम्हारी बिमली जो तुम्हें पानी से सदा साफ़ रखती थी, पैसे की कमी से औषध बिना मर गई। कितना अनर्थ है बिल्ली! तुमने मेरी ऊख की खेती देखी थी। वहाँ तुम मचान पर खूब खेलती रहती थीं। कभी कभी कूदकर तितली पकड़ती और कभी उड़ती हुई पत्तियों के पीछे दौड़ती थीं। वह खेत मैंने लगान पर लिया था। ऊख की कमाई अच्छी तरह न हो पाई थी, क्योंकि मैं स्वयं कमला बाबू का हलवाहा था। जब कभी उनके काम से छुट्टी मिलती, अपनी ऊख पर दौड़ जाता था। किन्तु फिर भी मौक़े की गुड़ाई और सिंचाई की कमी से ऊख पतली ही रह गई। साल के अन्त में जब ऊख पक कर तैयार हुई, मैं पासवाले स्टेशन पर उसे मिल में देने के लिए सिर के बल रातों रात ढोने लगा। बैलगाड़ी मिलती थी, किन्तु भाड़ा कहाँ से आता! सात सात दिन तक ऊख यों ही पड़ी रहती, सूखकर काँटा हो जाती, फिर भी तीन-चार आना मन मिल जाता। उस समय से उसी से मैं अपने परिवार का पालन करता था, किन्तु लगान बाक़ी का बाक़ी ही रहता। ज़मींदार ने छप्पर से लगान वसूल किया। बिल्ली याद है जब छप्पर उजाड़ा जा रहा था और सीता की मा एक ओर रो

रही थी। उसने मुन्नी को सामने छोड़ दिया। वह उसी की ओर देखती रही।

फिर वह नदी की दौड़ती हुई लहरों को देखने लगा, जैसे वह कोई कवि हो। वह कहने लगा—खूब दौड़ लो लहरो। तुम भी तनिक भी रुकतीं तो सीता की मा ऊपर आ जाती। एक पर एक तुम आती ही रहती हो। वह बेगार में गई थी। तुम लोगों ने कैसे उसे पा लिया? यह भी एक रहस्य ही है। यही वह जगह है बिल्ली! तुम खूब आई। बिल्ली, मैं अब समझा। यह जीवन एक संग्राम है। उसमें मैं अमरत्व पा सकता हूँ—अपने अधिकार की कौन-सी बात—हम ग़रीबों में भी शक्ति है। कल सीता वहाँ नहीं रहेगा। वह प्रसन्न था। मैंने एक आह ली। मुन्नी ने इधर देखा। मुझसे आँखें चार हुईं। वह इधर ही बढ़ी। मैं भी बढ़ा। वह उसे पकड़ने के लिए बढ़ा, किन्तु मुझे बढ़ते हुए देखकर उसने कहा—यह आपकी बिल्ली है रमा बाबू?

मैंने कहा—हाँ।

जीवन का गान

लेखक, कुँवर सोमेश्वर सिंह, बी॰ ए॰, एल-एल॰ बी॰
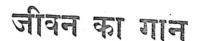
"दो दिन का यह वैभव है दो दिन की यह लाली है"
गाती मेरे जीवन की गाथा यह मतवाली है।

कलियों पर जाकर प्रतिदिन
मधुकर मत मँडराया कर
हो मस्त देख मेघों को
तू मोर न इतराया कर।

जल जल पतङ्ग दीपक पर
हसरत न मिटा दे अपनी
सपनों के पीछे प्रणयी
रातें न बिता दे अपनी।

"दो दिन का यह वैभव है दो दिन की यह लाली है"
गाती मेरे जीवन की गाथा यह मतवाली है।

पागल-सी चपल तरङ्गो,
नाचो मत उछल उछल कर
है चाँद तुम्हें ललचाता
नाहक ही निकल निकल कर।

फूले मत फूल वृथा ही
अपने इस लघु जीवन पर
संसार चकित है सारा
इस अनुपम भोलेपन पर।

"दो दिन का यह वैभव है दो दिन की यह लाली है"
गाती मेरे जीवन की गाथा यह मतवाली है॥

शनि की दशा

अनुवादक, पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र

राधामाधव बाबू एक बहुत ही आस्तिक विचार के आदमी थे। सन्तोष उनका एक-मात्र पुत्र था। कलकत्ते के मेडिकल कालेज में वह पढ़ता था। वहाँ एक बैरिस्टर की कन्या से उसकी घनिष्ठता हो गई। उसके साथ वह विवाह करने को तैयार हो गया। परन्तु वह बैरिस्टर विलायत से लौटा हुआ था और राधामाधव बाबू की दृष्टि में वह धर्मभ्रष्ट था, इसलिए उन्हें यह सह्य नहीं था कि उसकी कन्या के साथ उनके पुत्र का विवाह हो। वे उस बैरिस्टर की कन्या की ओर से पुत्र की आसक्ति दूर करने की चिन्ता में पड़े ही थे कि एकाएक वासन्ती नामक एक सुन्दरी किन्तु माता-पिता से हीन कन्या की ओर उनकी दृष्टि पड़ी। उन्होंने उसी के साथ सन्तोष का विवाह कर दिया। परन्तु सन्तोष को उस विवाह से सन्तोष नहीं हुआ। वह विरक्त होकर घर से कलकत्ते चला गया। इससे राधामाधव बाबू और भी चिन्तित हुए। वे सोचने लगे कि वासन्ती का जीवन किस प्रकार सुखमय बनाया जा सके। एक दिन उन्होंने तार देकर सन्तोष को बुलाया और समझा-बुझाकर उसे ठीक रास्ते पर लाने की कोशिश की। परन्तु पुत्र पर जब राधामाधव बाबू की बातों का ज़रा भी प्रभाव न पड़ा तब वे बहुत निराश हुए। उन्होंने एक दानपत्र के द्वारा अपनी सारी सम्पत्ति वासन्ती के नाम लिख दी और इस बात की व्यवस्था कर दी कि इस दानपत्र का भेद उनकी मृत्यु से पहले न खुलने पावे।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

रास्ते में मुलाक़ात

एक दिन की बात है। कुछ आवश्यक चीज़-वस्तु ख़रीदने के लिए सन्तोष बाहर निकला था। बाज़ार से निवृत्त होने पर वह धर्मतल्ला की मोड़ पर आकर खड़ा हो गया और ट्राम की राह देखने लगा। इतने में पीछे से एक मोटर की आवाज़ सुनाई पड़ी। वह उतावली के साथ एक किनारे की ओर हट रहा था कि एकाएक आरोही की ओर उसकी दृष्टि पड़ी। उसने देखा, उस मोटर में सुषमा बैठी थी और वह मुस्कराती हुई उसी की ओर ताक रही है। सुषमा की दृष्टि से दृष्टि मिलते ही सन्तोष ने उसकी ओर से अपनी दृष्टि फेर ली। क्षण ही भर के बाद उसने फिर देखा तो सुषमा उसे देख रही है।

रास्ते में सन्तोष को देखते ही सुषमा ने मोटर खड़ी कर दी थी। उसने उन्हें मोटर में बैठाल लिया और कहने लगी—कहिए सन्तोष भाई, आप यहाँ कैसे?

सुषमा को सामने देखकर सन्तोष लज्जा के मारे गड़ा जा रहा था। उसके जी में आता था कि मैं इसी समय मोटर पर से उतर जाऊँ, किन्तु पैर मानो उठना ही नहीं चाहते थे। बहुत दिनों के बाद सुषमा को देखकर मानो उसका शरीर सामर्थ्यहीन होता जा रहा था, उसके मुँह से कोई शब्द नहीं निकल रहा था, जिह्वा सूखी जा रही थी। वह किसी प्रकार भी अपनी अवस्था को छिपा नहीं सकता था। सुषमा उसका आन्तरिक भाव बहुत कुछ ताड़ गई और कहने लगी—कुछ बोलते क्यों नहीं हैं? क्या हम लोगों से रुष्ट हो गये हैं?

बड़ी देर के बाद किसी तरह अपने आपको सँभाल-कर रुँधे हुए कण्ठ से सन्तोष ने कहा—क्या बोलूँ, कोई ऐसी बात तो है नहीं।

सुषमा कुछ आश्चर्य में आ गई। वह कहने लगी—क्यों सन्तोष भाई, ऐसी कोई बात ही नहीं है जो कही जा सके?

सन्तोष ने कम्पित कण्ठ से कहा—नहीं, अब मेरे पास कहने को कुछ नहीं रह गया है, सब समाप्त हो चुका।

सुषमा ने मुस्कराहट के साथ कहा—वाह सन्तोष भाई, यह कैसी बात है? आपने विवाह कर लिया और हम लोगों को ज़रा-सी ख़बर तक न दी। क्या हम लोग इतने पराये हो गये हैं?

सन्तोष को निरुत्तर देखकर सुषमा फिर बोली—ख़बर नहीं दी तो न सही, इससे कोई हानि नहीं है, किन्तु भाभी जी से एक बार मुलाक़ात तो करा दीजिए। मेरे हृदय में इस बात की अत्यन्त अभिलाषा है कि मैं उनसे मिलकर ज़रा-सा बातचीत करूँ।

बड़ी देर के बाद सन्तोष ने कहा—ख़बर क्या देता सुषमा!

"क्यों, क्या वहाँ हम लोगों के जाने से आपकी कोई हानि होती?"

"नहीं, यह बात नहीं थी।"

"तो?"

सन्तोष ने दबी आवाज़ से कहा—यों ही इच्छा ही नहीं हुई।

सुषमा ने विस्मित स्वर से कहा—इसका मतलब?

"मतलब क्या है! वहाँ जाकर ही तुम क्या करतीं?"

सुषमा खिलखिला कर हँस पड़ी। उसने कहा—तब की बात तो तय थी! अब आपसे बतलाने में ही क्या लाभ है? आइए, अब घर चलें। मा आपके लिए बहुत अधीर हो रही हैं। आप आज-कल आते क्यों नहीं?

सुषमा को देखते ही सन्तोष का दुःख नया हो आया। उसमें इतनी भी शक्ति न रह गई कि वह ठीक ठीक बात कर सके। भर्राई हुई आवाज़ से उसने कहा—अब मैं न चल सकूँगा सुषमा।

"क्यों?"

"पता नहीं, क्यों? कहीं जाना अच्छा ही नहीं लगता।"

सुषमा ने विस्मित भाव से कहा—अच्छा क्यों नहीं लगता भाई? क्या विवाह हो जाने पर कोई दूसरों के यहाँ का आना-जाना ही बन्द कर देता है?"

कितनी वेदना सहकर सन्तोष ने पिता के गृह का परित्याग किया है! उसकी इच्छा थी कि वह सारा हाल सुषमा को बतला दे। परन्तु बतलावे कैसे? बार बार सोचने पर भी उसे कोई ऐसा उपाय नहीं सूझ पड़ा।

सन्तोष मन ही मन सोचने लगा कि मैं तो जल जल-कर मर ही रहा हूँ, क्या अब सुषमा को भी मेरे साथ जलना पड़ेगा? इससे तो यह कहीं अच्छा था कि मैं दूर से ही उसकी मूर्ति का ध्यान करते करते दिन काट दूँ। क्या वह अभी तक परिस्थिति को समझ नहीं पाई? सुषमा का भाव देखकर तो कोई ऐसी बात नहीं मालूम पड़ती कि मेरे विवाह का समाचार पाकर वह दुःखी हुई है! वह तो अब भी आनन्द कर रही है। वेदना का कोई चिह्न ही उसके मुख-मण्डल पर नहीं उदित हुआ है। तो क्या सुषमा मुझसे प्रेम नहीं करती थी? क्या मैं इतने दिनों तक अपने हृदय में एक मिथ्या आशा का पोषण करता आया हूँ? न, यह हो ही नहीं सकता। मेरा मन तो इस समय भी यही कह रहा है कि सुषमा मुझसे प्रेम करती है। परिस्थिति को अभी वह समझ नहीं रही है।

सन्तोष को चुप देखकर सुषमा ने कहा—क्या सोच रहे हैं? बात का उत्तर क्यों नहीं दे रहे हैं? बतलाया नहीं कि बहू कैसी मिली। आप इस तरह के कैसे हो गये?

विस्मित भाव से सुषमा के मुँह की ओर ताक कर सन्तोष ने कहा—किस तरह का हो गया हूँ सुषमा?

"और नहीं तो क्या! ठीक से बोलते नहीं हैं, बहू के बारे में कुछ नहीं बतलाते हैं। न जाने कैसे उद्विग्न से दिखाई पड़ रहे हैं! आपकी यह अवस्था कैसे हो गई?

एक हलकी-सी आह भर कर सन्तोष ने कहा—मुझसे कुछ न पूछो सुषमा। तुम मुझे क्षमा कर दो।

"क्यों? क्षमा किस बात के लिए?"

"न जाने क्यों, तुम्हारी एक भी बात का उत्तर मुझसे नहीं दिया जाता। शायद तुम मुझसे रुष्ट हो गई हो।"

सुषमा ने एक रूखी हँसी हँसकर कहा— नहीं, नहीं, रुष्ट क्यों होऊँगी? मैं तो आप लोगों की तरह ज़रा ज़रा-

सी बात में रुष्ट होनेवाली हूँ नहीं। अच्छा, आप सच सच बतलाइए कि भाभी आपको पसन्द आईं या नहीं।

सन्तोष ने गम्भीर कण्ठ से कहा—मेरी पसन्द या अपसन्द से क्या होना जाना है सुषमा? बाबू जी ने विवाह किया है, वे ही समझेंगे। मैं कौन होता हूँ?

सुषमा ने संशयपूर्ण कण्ठ से कहा—यह क्या कह रहे हैं भैया? आपके मुँह से तो इस तरह की बात नहीं शोभा देती। आप पढ़े-लिखे हैं। आप यदि मूर्खों के-से काम करेंगे तो भला दस आदमी आपको क्या कहेंगे? इस तरह की बात को मन में स्थान देकर क्या आप अन्याय नहीं कर रहे हैं? वह बालिका है। उसका क्या अपराध? उसे इस तरह उपेक्षामय अवस्था में रखना क्या उचित है? जिस दिन वह अपनी इस अवस्था का अनुभव कर सकेगी, उस समय उसका हृदय कितनी वेदना से परिपूर्ण हो उठेगा, यह भी आपने कभी सोचा है? ज़रा सोचिए तो कि आपके इस तरह के व्यवहार से कितने लोग दुःखी हो रहे हैं। सम्भव है कि यह बात आपको बहुत ही साधारण-सी जान पड़ती हो, किन्तु वास्तव में यह इतनी साधारण नहीं है। आपके वृद्ध पिता आपके व्यवहार से कितना कष्ट पा रहे हैं, क्या आपने कभी इस पर विचार किया है? उन्हें दुःखी करना क्या आपके लिए उचित है? सन्तान चाहे कितने भी अपराध करे, वह सब माता-पिता नीरव भाव से सहन करते जाते हैं। सन्तान के अमङ्गल की आशङ्का से नेत्रों का जल तक रोक रखने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु उनका हृदय कितनी वेदना से परिपूर्ण है, यह भी आपने किसी दिन सोचा है? इस वेदना का फल अवश्य ही हम लोगों को किसी न किसी दिन भोगना पड़ेगा। कर्मफल का भोग किये बिना कोई रह नहीं सकता। आप भी न रह सकेंगे।

क्षण भर चुप रहने के बाद सुषमा फिर बोली। वह कहने लगी—विवाहिता पत्नी के प्रति पुरुष का कर्त्तव्य क्या है, यह क्या आपको मालूम नहीं है? उसकी उपेक्षा करके आप कितना बड़ा अन्याय कर रहे हैं? इसे चाहे आप आज न भी समझ सकें, बाद को तो समझना ही पड़ेगा। उस समय आपको यह मालूम होगा कि अनुताप की पीड़ा कैसी होती है। अब भी मैं आपसे कहे देती हूँ। बुरा मानने की बात नहीं है। जो कुछ कर गये, वह कर गये, उसके लिए अब कोई उपाय नहीं है। अभी कुछ बिगड़ा नहीं है। आप ज़रा-सा सावधान होकर विचार कीजिए। ईश्वर पर विश्वास रखिए, एक दिन वह आपको शान्ति देगा। स्त्री को सुखी करने का प्रयत्न कीजिए, मोह त्याग दीजिए। स्मरण रहे कि मनुष्य के लिए असाध्य कुछ भी नहीं है। और एक—

सन्तोष इतनी देर तक मौन भाव से सुषमा की बातें सुन रहा था। उसके शान्त होते ही लड़खड़ाती हुई आवाज़ से उसने कहा—मुझसे कुछ मत कहो, मुझसे यह नहीं होने का। इससे अधिक वह कुछ भी नहीं कह सका, चुप होकर सुषमा के मुँह की ओर ताकने लगा। उसने देखा कि सुषमा के मुख-मण्डल पर क्रोध की रेखा उदित हो आई है।

क्षण भर के बाद सुषमा ने कहा—लीजिए, आपका मकान आ गया। अब आप उतर जाइए। मैं भी चलूँगी। विलम्ब हो गया है। मा मेरी राह देख रही होंगी। आप तो कभी आये ही नहीं।

मोटर द्वार पर आकर खड़ी होगई। सन्तोष उस समय सोच रहा था, सुषमा को यह समझा दूँ कि मैं क्यों नहीं उसके यहाँ जा सका, कितने कष्ट से मैंने उसने परिवार से सारा सम्पर्क छोड़ रक्खा है। क्या यह सुषमा समझ सकती है! वह यदि यह सब समझ पाती तो क्या इस तरह की बात कर सकती थी?

सन्तोष की विचार-धारा में व्याघात डालते हुए सुषमा ने कहा—घर आ गया है। उतरिए। इतना क्या सोच रहे हैं?

मोटर पर से उतर कर सन्तोष खड़ा हो गया। सुषमा ने कहा—तो अब मैं चलती हूँ सन्तोष भाई। कह नहीं सकती कि अब कब तक मुलाक़ात होगी।

सुषमा ने सोफ़र से घर चलने को कहा। मोटर चल पड़ी। अब सन्तोष के मन में यह बात आई कि सुषमा को ज़रा-सा रुक जाने को कहूँ। क्षण भर तक उसे और जी भर कर देख लूँ। क्या उससे फिर कभी मुलाक़ात हो सकेगी? सम्भव है कि यही अन्तिम भेट हो।

एकान्त में बैठ कर सन्तोष सुषमा के ही सम्बन्ध की तरह तरह की बातें सोचने लगा।

बारहवाँ परिच्छेद

पिता का वियोग

रात्रि का दूसरा प्रहर व्यतीत हो चुका था। कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के प्रगाढ़ अन्धकार से चारों दिशायें समाच्छादित थीं। आकाश में उदित होकर तारों का समूह क्षीण आलोक का वितरण कर रहा था। सारे गाँव में निस्तब्धता थी। समस्त दिन जो जन-कोलाहल मचा रहता था, उस समय उसका नाम तक न था। कहीं कहीं दो-एक पथिक अवश्य उस प्रगाढ़ अन्धकार को चीरते हुए अपना रास्ता तय करते हुए चले जा रहे थे।

सड़क के किनारे पर ही राधामाधव बाबू का सुविशाल भवन बना हुआ था। उसके एक कमरे से उतनी रात को भी आलोक की रेखा दृष्टिगोचर हो रही थी। सारे गाँव में नीरवता होने पर भी वसु महोदय की अट्टालिका पर से लोगों की बातचीत की अस्पष्ट ध्वनि मिल रही थी। कदाचित् उस समय भी उनके यहाँ के लोग सोये नहीं थे। एकाएक देखने पर यह कोई भी समझ लेता कि इन सभी लोगों के मुख पर एक प्रकार की उत्कण्ठा का चिह्न वर्तमान है, मानों सभी लोग बहुत ही व्यस्त हैं।

मकान की दूसरी मंज़िल के ऊपर एक बैठक बनी हुई थी। उसी बैठक में एक पलँग पड़ा था। वसु महोदय उसी पर लेटे हुए थे। बुढ़ापे के कारण उनका शरीर बहुत ही शिथिल हो गया था। रोग के कारण मुँह पीला पड़ गया था, उसके ऊपर मृत्यु का चिह्न स्पष्ट रूप से उदित हो आया था। सिरहाने के पास बासन्ती पंखा लिये हुए बैठी थी। वृद्ध के मुख पर दृष्टि स्थिर रख कर वह नीरव भाव से हवा कर रही थी। उसके मुख पर निराशा की रेखा विराजमान थी। बीच बीच में अञ्चल के छोर से वह आँसू पोंछ लेती थी, परन्तु इस बात का ध्यान रखती थी कि दूसरा कोई उसे आँसू पोंछते देख न सके। पास ही ताई जी भी बैठी थीं। वे वसु महोदय के शरीर पर हाथ फेर रही थीं। अपने दोनों ही अत्यन्त शिथिल एवं रक्त-मांस से हीन हाथों को वक्ष पर रखकर आँखें बन्द किये हुए वृद्ध सो रहे थे। बीच-बीच में यन्त्रणा की अधिकता के कारण वे कराहने का प्रयत्न [illegible] न निकल पाता। कमरे के भीतर एक दीपक टिमटिमा कर जल रहा था। उसके क्षीण आलोक में बासन्ती का वेदना से मुर्झाया हुआ मुख और भी मलिन जान पड़ता था।

पास ही एक दूसरे कमरे में दो-तीन डाक्टरों के साथ वृद्ध दीवान जी बैठे हुए थे। आज प्रातःकाल से ही वसु महोदय को एक प्रकार का हैज़ा-सा हो गया था। पहले तो उन्होंने किसी को कुछ बतलाया नहीं, किन्तु क्रमशः जब उसका प्रकोप बढ़ गया तब वे उसे छिपा न सके। लोगों ने जब देखा कि नाड़ी की गति क्रमशः मन्द होती जा रही है तब सन्तोष को तार दे दिया, परन्तु अभी तक वह आया नहीं था।

टेबिल पर घड़ी रक्खी हुई थी। उसमें एक बज गया। घड़ी का शब्द सुनकर वृद्ध ने आँखें खोल दीं। पास ही बैठी हुई बासन्ती की ओर देखकर उन्होंने कहा—क्या तुम अभी तक सोई नहीं हो? भाभी कहाँ हैं?

वृद्ध की ओर ज़रा-सा झुककर ताई जी ने कहा—कहो, कैसी तबीअत है? मैं यहीं बैठी तो हूँ।

वसु महोदय ने क्षीण कण्ठ से कहा—आप जाकर विश्राम कीजिए, मेरी तबीअत अब कुछ अच्छी मालूम पड़ रही है। बाद को उन्होंने बहू की ओर दृष्टि फेरी और कहने लगे—बिटिया, सुनो, तुमसे मुझे कुछ बातें कहनी हैं। अधीर न होना। संसार का यह नियम ही है। इससे कोई बच नहीं सकता। एक न एक दिन सभी को जाना पड़ेगा। यह क्या, रोती हो बिटिया! छिः! रोओ न। मैं जो कहता हूँ वह सुनो। बेटी, मैं ही तुम्हें इस दुःख में ले आया हूँ। उस समय मेरे हृदय में यह आशा थी कि तुम्हें सुखी कर सकूँगा। किन्तु तुम्हारी सुखमय अवस्था देखना मेरे भाग्य में नहीं था। आज मैं जा रहा हूँ। बेटी, मेरे हृदय को किसी प्रकार का भी क्लेश या दुःख नहीं है। केवल तुम्हें ही मैं अकेली छोड़े जा रहा हूँ, तुम्हें देखनेवाला कोई नहीं रह गया, मुझे केवल यही—वे और कुछ न कह सके। बासन्ती के दोनों ही कपोलों पर से आँसुओं की धारा बह चली। वसु महोदय ने ज़रा-सा अपने आपको सँभाल कर कहा—बेटी, मेरे जीवन-काल में जो लोग मेरे आश्रय में हैं, मेरी मृत्यु के बाद वे आश्रयहीन न होने पावें। उनके ऊपर तुम्हारी दृष्टि रहनी चाहिए। बेटी, देखो, तुम किसी दिन अभिमान में

आकर इस घर का परित्याग न करना। तुम बुद्धिमती हो, सभी समझ सकती हो। इस घर को छोड़ कर और कहीं भी तुम्हारे लिए ठिकाना नहीं है, यह बात सदा स्मरण रखना। एक बात मैं तुमसे और कहना चाहता हूँ। क्या तुम मेरी यह बात स्मरण रक्खोगी बेटी? बासन्ती उच्छ्वसित भाव से रो पड़ी।

बड़ी देर के बाद बासन्ती को किसी प्रकार शान्त करके वसु महोदय ने फिर कहा—बेटी, सन्तोष यदि किसी दिन अपनी भूल समझ सके और तुम्हारे पास क्षमा माँगने के लिए आवे तो उसे क्षमा कर देना बेटी, अभिमान में आकर उसे लौटाल न देना। बोलो, बेटी, तुम उसे क्षमा कर दोगी न।

आँसुओं से रुँधे हुए कण्ठ से बासन्ती ने कहा—आप आशीर्वाद दीजिए बाबू जी।

वसु महोदय ने कहा—मैं आशीर्वाद देता हूँ कि सन्तोष को क्षमा कर देने की शक्ति तुम्हें प्राप्त होगी। देखना, भाभी को किसी प्रकार का [illegible] न होने पावे। अब एकमात्र वे ही तुम्हारी सहायक रह गई हैं। ताई जी और बासन्ती दोनों ही रो पड़ीं। वसु महोदय के मुर्झाये हुए कपोलों पर आँसुओं की धारा बह चली।

दूसरे दिन प्रातःकाल वसु महोदय की नाड़ी की अवस्था बहुत ही ख़राब हो गई। यन्त्रणा के मारे वे छटपटाने लगे। सांसारिक ज्ञान से शून्य बासन्ती अनिमेष दृष्टि से उनके मुख का भाव देख रही थी। उसके अन्तःकरण से रुदन का जो आवेग उठता था वह उसके रोके नहीं रुकता था। आज वह अपने आपको नितान्त ही असहाय समझ रही थी। उसके मन में रह-रह कर यही बात आती कि बाबू जी यदि न जीवित रह सके तो उनके अभाव में मैं किसके पास खड़ी हो सकूँगी, यह अपरिमित दुःख सहन करती हुई मुझे [illegible] कितने दिनों तक जीवित रहना पड़ेगा।

दुःसह वेदना में सारा रास्ता [illegible]कर प्रातःकाल सन्तोष घर आ पहुँचा। सीढ़ी से चढ़[illegible] ही वह दूसरी मंज़िल पर पहुँचा, सामने वृद्ध दीवान सदाशिव दिखाई पड़े। उन्हें देखते ही उसने भग्न कंठ से [illegible]—दादा भाई, बाबू जी—

उसकी पीठ पर हाथ रखकर दीवान जी ने कहा—अच्छी तरह हैं भाई। घबराते क्यों हो?

भर्राई हुई आवाज़ से सन्तोष ने कहा—मुझे उनके पास ले चलिए।

दीवान जी ने कहा—भाई धीरे धीरे चलो, एकाएक तुम्हें देखने से उनकी साँस बन्द हो जाने की आशङ्का है। तुम अधिक उतावली मत करो।

वे दोनों ही नीरव भाव से रोगी के कमरे के द्वार पर उपस्थित हुए। कमरा खुला हुआ था। सन्तोष ने देखा, सामने ही उसके पिता सोये हुए हैं, सिरहाने के पास घूँघट से मुँह का कुछ अंश ढँके हुए एक किशोरी बैठी है। सन्तोष ने समझ लिया कि यह और कोई नहीं है, मेरी ही अनादृता पत्नी है। साथ ही साथ उसके मन में एक प्रकार का विद्वेष का भी भाव विकसित हो आया। वह सोच रहा था कि इसी के कारण आज मैं पिता के स्नेह से वंचित होकर घर से बहिष्कृत हो उठा हूँ। अतुल ऐश्वर का अधीश्वर होकर भी मैं आज यहाँ एक अतिथि मात्र हूँ। अभिमान और क्षोभ के मारे सन्तोष का वक्ष फटा जा रहा था। उसके मन में केवल यही बात आ रही थी कि इसके सामने ही पिता जी ने यदि कोई बात कह दी तो उस समय मुझे अपार लज्जा आवेगी, वह लज्जा मैं कैसे सँभाल सकूँगा। अपने काँपते हुए दोनों पैरों को किसी प्रकार खींचता हुआ वह कमरे में गया और पिता के चरणों के नीचे मुँह छिपा कर वह चुपचाप आँसू बहाने लगा।

सन्तोष को देखकर बासन्ती ने किसी प्रकार की भी कुण्ठा का भाव नहीं व्यक्त होने दिया। वह जैसे बैठी थी, वैसी ही बैठी रही। ताई जी पूजा-आह्निक के लिए उठ गई थीं। वह अकेली ही बैठी थी। समीप ही घड़ी रक्खी हुई थी, उसकी ओर देखकर बासन्ती ने उतावली के साथ पंखा रख दिया और टेबिल की ओर बढ़ी। वह पंखा उठाकर सन्तोष धीरे-धीरे झलने लगा। बासन्ती को उठती देखकर सदाशिव बाबू उसकी ओर अग्रसर हुए। बासन्ती ने मृदु कंठ से पूछा—कौन-सी दवा दूँ?

टेबिल पर से एक शीशी उठाकर दीवान जी ने उसे दे दी। बासन्ती जब चलने को उद्यत हुई तब दीवान जी ने मृदु-कंठ से कहा—यदि सोये हों तो [illegible]

देने की ज़रूरत नहीं है। यह बात कहकर वे चले गये।

बासन्ती हक्का-बक्का हो गई। वह कुछ सोच ही रही थी कि वसु महोदय ने क्षीण कंठ से पुकारा—बिटिया।

बासन्ती उतावली के साथ चलकर शय्या के पास पहुँच गई और उनके मुँह के सामने ज़रा-सा झुक कर कहने लगी—बाबू जी, क्या मुझे बुला रहे हैं?

वसु महोदय ने कहा—बड़ी प्यास लगी है।

बासन्ती ने शीशी से थोड़ी-सी दवा एक कटोरी में उँड़ेलकर उनके मुँह में डाल दी। वसु महोदय दवा पी गये। तब उन्होंने क्षीण-कंठ से पुकारा—भाभी?

बासन्ती ने कहा—ताई जी पूजा करने गई हैं।

वसु महोदय ने कहा—मुझे पंखा कौन हाँक रहा है?

बासन्ती इस प्रश्न का क्या उत्तर देती? वह मस्तक झुकाये हुए स्थिर भाव से खड़ी रही।

उन्होंने फिर कहा—बहू, सदाशिव? कोई भी उत्तर न पाकर उन्होंने कहा—सदाशिव, बोलते क्यों नहीं हो?

अब सन्तोष स्थिर न रह सका। उसने रूँधे हुए कंठ से कहा—बाबू जी!

वसु महोदय के शरीर से मानो बिजली का तार छू गया और उससे आहत होकर वे चौंक पड़े। उन्होंने आँख खोल दी और सिरहाने के पास बैठे हुए पुत्र को देखकर क्षीण-कंठ से कहा—सन्तू, बेटा!

पिता के मस्तक पर हाथ रखकर सन्तोष रो पड़ा। कुछ क्षण के बाद बासन्ती ने अश्रुगद्गद स्वर से कहा—बाबू जी कैसे होते जा रहे हैं! मैं मस्तक पर जल छोड़ती हूँ, तुम ज़रा ज़ोर से हवा करो।

पहले सन्तोष समझ नहीं सका। बाद को जब उसके मस्तक पर ठंडक मालूम हुई तब उसने मस्तक उठाकर देखा कि बासन्ती बरफ़ लेकर श्वशुर के मस्तक पर आहिस्ता-आहिस्ता रगड़ रही है। सन्तोष को तब तक इस बात का पता नहीं चल सका था कि पिता जी बेहोशी की हालत में हैं। उसकी समझ में यह बात न आ सकी कि उसे क्या करना चाहिए। इससे वह वहाँ से खिसक कर एक बग़ल बैठ गया। बासन्ती को उस समय क्रोध आ रहा था। मुँह से कुछ भी न कह कर उसने स्वयं बायें हाथ से पंखा झलना शुरू कर दिया। कुछ देर के बाद वसु महोदय को जब चेतना आई तब उन्होंने बहुत ही भर्राई हुई आवाज़ से पुकारा—बहू!

श्वशुर के मुँह के समीप झुककर उसने कहा—क्या है बाबू जी?

वसु महोदय ने कहा—वह कहाँ गया?

बासन्ती कोई भी उत्तर नहीं दे पाई थी। इतने में ताई जी आ गईं। सन्तोष को सामने देखते ही वे रोने लगीं, मुँह से कुछ कह न सकीं।

वसु महोदय ने कहा—सन्तू, पास आ जा।

ज़रा-सा आगे बढ़कर सन्तोष जैसे ही पिता के समीप आया, वे उसकी ओर ताक कर कहने लगे—सन्तू, बेटा, आज मैं चल रहा हूँ। आज तुझसे एक बात कहूँगा। मानेगा?

सन्तोष ने इस बात का कोई उत्तर न दिया। उसे चुप देखकर वसु महोदय ने फिर कहा—मुझे कष्ट न दे। इतने दिनों से कष्ट सहन करता आ रहा हूँ, आज तू 'नाहीं' मत करना। बोल बेटा, तू मेरी बहू को सुखी करेगा।

सन्तोष ने भर्राई हुई आवाज़ से कहा—बाबू—मुझे क्षमा करना, मैं—

वसु महोदय ने असन्तोषमय स्वर से कहा—बेटा, अब भी तू नहीं समझ सका! मृत्युकाल में भी मुझे शांति से न मरने देगा? किन्तु मैं कहे जाता हूँ, याद रखना, एक दिन इसके लिए तुझे……।

क्रमशः वसु महोदय के श्वास के लक्षण प्रकट होने लगे। डाक्टर ने आकर नाड़ी की परीक्षा की और कह दिया कि अब समय नहीं है। सन्तोष रोने लगा। उसने पिता के वक्ष पर मस्तक रख कर आँसुओं से रुँधे हुए कंठ से कहा—बाबू, बाबू—सुने जाइए—यदि मुझसे हो सका तो मैं आपकी……।

बाद को उसे और कुछ कहने की आवश्यकता न पड़ी। वसु महोदय ने क्षीण स्वर से लड़खड़ाती हुई जिह्वा से किसी प्रकार कहा—बहू! बाद को वे स्थिर हो गये। शान्ति का अन्वेषण करने के लिए उनकी आत्मा शान्ति-धाम में चली गई।

नई पुस्तकें

[प्रतिमास प्राप्त होनेवाली नई पुस्तकों की सूची। परिचय यथासमय प्रकाशित होगा]

१-८—भार्गव-पुस्तकालय, गायघाट, बनारस सिटी-द्वारा प्रकाशित ८ पुस्तकें—

(१) **धर्म और शिक्षा**—संग्रह-कर्त्ता, श्रीयुत जगन्नाथ-प्रसाद भार्गव और मूल्य १॥) है।

(२) **हिन्दी-अँगरेज़ी-मास्टर**—मूल्य १॥) है।

(३) **वीर परशुराम**—लेखक, श्रीयुत बेणीराम 'श्रीमाली' और मूल्य १॥) है।

(४) **भोजन-शास्त्र**—लेखक, श्रीमती रुक्मिणी देवी और मूल्य १॥) है।

(५) **समाज की खोपड़ी**—लेखक, श्रीयुत रमाकान्त त्रिपाठी, 'प्रकाश' और मूल्य १॥) है।

(६) **नाज़ी जर्मनी**—लेखक, श्रीयुत कन्हैयालाल वर्मा, एम० ए०, और मूल्य १) है।

(७) **मीराबाई नाटक**—लेखक, श्रीयुत मुकुन्दीलाल वर्मा, बी० ए० और मूल्य ॥=) है।

(८) **घरेलू सस्ती दवायें**—लेखक, आचार्य स्वामी विश्वनाथ शास्त्री 'विश्वेश' राजवैद्य और मूल्य १॥) है।

९—**गुप्त जी की काव्य-धारा**—लेखक, श्रीयुत गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' बी० ए०, प्रकाशक, छात्र-हित-कारी पुस्तकमाला, दारागंज, प्रयाग हैं। मूल्य २) है।

१०—**संध्या-रहस्य**—लेखक, श्रीयुत विश्वनाथ विद्यालंकार, प्रकाशक, गुरुकुल-विश्वविद्यालय, कांगड़ी, हरद्वार हैं। मूल्य १) है।

११—**शैतान की आँख**—लेखक, श्रीयुत राहुल सांकृत्यायन, प्रकाशक, हिन्दी-कुटिया, पटना हैं। मूल्य १॥) है।

१२—**हंसयोग-प्रकाश**—लेखक व प्रकाशक, श्रीयुत हंससमसिंह, 'हंसयोग'-आश्रम, सेड़िया, पो० आ० पोखड़ा, गढ़वाल, हैं।

१३—**युगान्त (कविता)**—लेखक, श्रीयुत सुमित्रा-नन्दन पंत, प्रकाशक, इन्द्रप्रिंटिंग वर्क्स, अलमोड़ा है। मूल्य ॥।) है।

१४—**ए हैंड बुक आव ग्वालियर (अँगरेज़ी)**—लेखक, श्रीयुत एम० बी० गर्दे, बी० ए०, प्रकाशक, आलीजाह दरबार-प्रेस, ग्वालियर, हैं।

१५-१७—**श्री विजयधर्म सूरि जैन ग्रन्थमाला, छोटा सराफ़ा, उज्जैन के द्वारा प्रकाशित तीन पुस्तकें**—

(१) **वक्ता बनो**—अनुवादक, श्री हमीरलाल जी मूरडिया और मूल्य ।=) है।

(२) **श्रावकाचार**—लेखक, श्री मुनिराज विद्या-विजय जी हैं।

(३) **अर्हत् प्रवचन**—संग्राहक, श्री मुनिराज विद्या-विजय जी और मूल्य ।-) है।

१८—**सन्त (विचित्र कथा)**—अनुवादक, श्रीयुत दीवान वंशधारीलाल, प्रकाशक, सन्त-कार्यालय, प्रयाग हैं। मूल्य ।=) है।

१९—**जैनसिद्धान्त-दिग्दर्शन**—लेखक, मुनिराज महाराज श्री न्यायविजय जी, प्रकाशक, भोगिलाल दग-डुशा जैन, मालेगाम (नासिक), हैं।

२०—**जवाहर का जौहर**—रचयिता, श्रीयुत राजा-राम श्रीवास्तव, प्रकाशक, पुनीत-आश्रम, टांडा, पो० बलुआ, ज़िला बनारस हैं। मूल्य -)॥ है।

२१—**स्वर्गीय पं० महावीर का परिचय**—लेखक, श्रीयुत जयदेव विद्यापति, प्रकाशक, श्रीयुत प्रेमी शर्मा, पो० चौमूँ, जयपुर हैं।

२२—**क़ानून बेनुल मुमालिक के उसूल और नज़ीरें (उर्दू)**—लेखक, श्रीयुत मुहम्मद इमीर उल्ला, मिलने का पता, मक़तब इब्राहीमिया हैदराबाद (दकन) हैं। मूल्य १।) है।

१—**ब्वाय-स्काउटिंग**—लेखक, श्रीयुत कृष्णनन्दन-प्रसाद प्रकाशक, सेन्ट्रल बुकडिपो, प्रयाग हैं। पृष्ठ-संख्या ४५०७ मूल्य २॥) है।

इस पुस्तक के लेखक बालचर्य-शास्त्र के अच्छे विद्वान् हैं। उन्होंने अपने कई वर्षों के अनुभव और अध्ययन के फलस्वरूप इस विषय का इतना अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया है कि वे इस पर एक ग्रन्थ लिख सकने के पूर्ण अधिकारी हो गये हैं। यह हिन्दी का सौभाग्य है कि उन्होंने अपनी पुस्तक हिन्दी में लिखी। हिन्दी के भाण्डार को भरने में श्री कृष्णनन्दनप्रसाद जैसे उत्साही कर्मवीरों का साहाय्य अमूल्य है। उनकी पुस्तक न केवल हिन्दी में अपने विषय की पहली पुस्तक है, न केवल वह अपने विषय की एक उच्च कोटि की पुस्तक है, वरन वह ऐसी पुस्तक है जिसका अन्य भाषाओं में अनुवाद कराने की लोगों को आवश्यकता प्रतीत होगी और इससे हिन्दी का सम्मान होगा।

इस समय बालचर्य जैसे विषय पर इतनी महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखना केवल बालचर्य की अथवा हिन्दी की ही नहीं, वरन देश की सेवा करना है। हमारे नवयुवक जिस अल्पायु में बालचर बन जाते हैं उस समय उनके लिए इसकी महत्ता, इसके वास्तविक रूप और उपयोगिता को पूर्णतया क्या, कुछ भी समझ सकना असम्भव होता है। फिर समय बीतते बीतते वे बालचर्य के सिद्धान्तों को रट कर, उसके बाह्य आडम्बरों से आकर्षित होकर उसके रंग में अवश्य रँग से जाते हैं, पर उसकी तह तक वे फिर भी नहीं पहुँच पाते। इस विश्व-विस्तृत बाल-आन्दोलन की आत्मा से उनका परिचय नहीं हो पाता, उनकी बालचर्य-शिक्षा अपूर्ण रह जाती है।

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने बालचर्य के सिद्धान्तों को सीधी-सादी किन्तु सजीव भाषा में समझाया है। बालचर्य का इतिहास, स्काउट शब्द का अर्थ, स्काउटिंग का महत्त्व आदि आदि विषयों पर उन्होंने केवल प्रकाश ही नहीं डाला है, उन्हें सजीव बना दिया है, उनको एक प्रणाली के रूप में नहीं, अपितु जीवन के एक आवश्यक अंग के रूप में दिखाया है।

इस पुस्तक का जितना अधिक प्रचार हो उतना ... के बालकों और नवयुवकों) को देशभक्ति, स्वावलम्ब, सत्यप्रियता, कर्तव्यपरायणता, निर्भीकता आदि की शिक्षा मिलेगी। पुस्तक न केवल बालचरों के ही पढ़ने की है प्रत्युत प्रत्येक बालक, युवक, अध्यापक और अभिभावक के मनन करने की वस्तु है।

—बालकृष्ण राव

२—**मिश्रबन्धु-प्रलाप (प्रथम भाग)**—लेखक, पंडित नारायणप्रसाद 'बेताब', प्रकाशक, आल इंडिया श्री भट्ट ब्राह्मण महासभा के महामंत्री हैं। आकार छोटा, पृष्ठ १२८ मूल्य ॥) है।

प्रस्तुत पुस्तक आज एक चिरपरिचित मित्र से सम्मत्यर्थ प्राप्त हुई है। विचार था कि अन्य आवश्यक कार्य निबटा कर कुछ दिन बाद इसको पढ़ूँगा। पर दो-चार पन्ने लौटते ही जी पूरी पुस्तक समाप्त किये बिना न माना।

पुस्तक में बेताब जी का एक फ़ोटो भी दिया हुआ है। दुर्भाग्य से मुझे उनका साक्षात्कार नहीं हुआ है, पर फ़ोटो से बेताब जी आकृति में एक गम्भीर पछाहीं आर्य-समाजी मालूम पड़ते हैं। किन्तु पुस्तक की चुलबुली भाषा और लच्छेदार शैली देखते ही बनती है। छपाई, शीर्षक देने का ढंग, भाषा, युक्तियाँ, उर्दू-फ़ारसी का पुट सभी बातों से फ़िल्म-कहानी-लेखक 'बेताब' का परिचय अधिक मिलता है, 'बेताब' गम्भीर समालोचक का कम। बेताब जी पिछली पीढ़ी के समालोचकों में से एक हैं, जिनमें दिवंगत पंडित पद्मसिंह शर्मा अग्रगण्य थे। बेताब जी शर्मा जी की ही तरह विपक्षी को शिकंजे में कसते हैं और अच्छी 'गति' बनाते हैं।

यह पुस्तक हिन्दी के सुविख्यात लेखक मिश्रबन्धुओं की छीछालेदर करने के लिए लिखी गई है। श्री ब्रह्मभट्ट ब्राह्मण सभा मिश्र-बन्धुओं से इस कारण नाराज़ है कि उन्होंने हिन्दी-नवरत्न में लिखा है कि "कोई भाट अपने विषय में नहीं कह सकता कि वह द्विज है। भाट प्रायः ब्रह्म भट्ट कहाते हैं।" (पृ० २२२)

एक गौण कारण यह भी है कि मिश्रबन्धुओं ने सूरदास, भूषण, मतिराम और बिहारीलाल इन चार रत्नों को ब्राह्मण तो माना है, पर ब्रह्म भट्ट नहीं और बेताब जी का कहना है कि ये महाकवि ब्रह्म भट्ट थे और ब्राह्मण।

ने तरह तरह के प्रमाणों का 'अम्बार' लगा दिया है, जिनको पढ़कर मुझ जैसे साधारण पाठक को यह विश्वास हो जाता है कि ब्रह्म भट्ट लोग जन्म से ब्राह्मण हैं। विशेषज्ञों की बात दूसरी है।

चन्द कवि को सभी भट्ट मानते हैं ही। सूरदास जी उनके ही वंशज हैं, इसलिए वे भी ब्रह्म भट्ट थे। भूषण 'कनौज कुल' के ब्रह्म भट्ट थे न कि कनौजिया ब्राह्मण, और मतिराम उनके भाई थे अतएव वे भी ब्रह्म भट्ट थे। बिहारीलाल भी ब्रह्म भट्ट थे न कि माथुर ब्राह्मण, क्योंकि वे 'कवि' थे और 'केसवराय' के पुत्र। और 'राय' उपाधि से प्रकट है कि वे ब्रह्म भट्ट थे। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि ये पाँचों महाकवि ब्रह्म भट्ट थे।

अपने को ऊँचे कुल का ब्राह्मण मानकर ब्रह्म भट्टों को ब्राह्मण मानने से इनकार करनेवाले मिश्रबन्धुओं को यह पुस्तक पढ़कर कुढ़न होगी। पर किया क्या जाय! उन्होंने बुरे घर बायन दिया। मेरी तो उनसे विनीत प्रार्थना है कि इस पुस्तक को पढ़कर वे इस महासभा को किसी प्रकार सन्तुष्ट कर दें, नहीं तो 'मिश्रबन्धु-प्रलाप' (दूसरा भाग) और 'विनोद-परीक्षा' रूपी दो प्रहार और उपस्थित होनेवाले हैं!

भगवान् की असीम कृपा होगी जब यह जन्म-जाति-पाँति का मिथ्या अभिमान हम भारतीयों के मस्तिष्क से निकलेगा। जाने, वह सुदिन कब आवेगा।

बाबूराम सक्सेना, एम० ए०, डी० लि०

३-४—पंडित गौरीशंकर भट्ट, अक्षर-विज्ञान-कार्यालय, मसवानपुर, कानपुर, की दो पुस्तकें—

(१) लिपि-कला—पंडित गौरीशंकर भट्ट लिपि-कला के विशेषज्ञ हैं। उन्होंने देवनागरी के अक्षरों को सुन्दर और सुसंगठित करने में अपना सारा जीवन लगाया है। खेद है कि हम हिन्दी-भाषी अब तक अपने इस एक-निष्ठ कलाकार की कृतियों का समुचित आदर नहीं कर सके। प्रस्तुत पुस्तक में भट्ट जी ने लिपि-कला और अक्षर-विज्ञान की आवश्यकता और उपयोगिता का [illegible]पादन और उसकी आवश्यकता न समझनेवाले [illegible] नभिज्ञ व्यक्तियों के भ्रान्त विचारों का उचित [illegible] किया है। सुन्दर और लिपि-विज्ञान के नियमों [illegible] मोदित नागरी अक्षर कैसे लिखे जा सकते हैं, [illegible] शिलालेख आदि में आलेख्याक्षर कैसे लिखे जाने चाहिए, मुद्राक्षर (मोनोग्राम) चित्रबन्ध (तुग़रा) नागरी अक्षरों से किस प्रकार बन सकते हैं, इत्यादि विषयों का उन्होंने सरल तथा हृदयग्राहिणी शैली में वर्णन किया है। पुस्तक के अन्तिम भाग आकृति-खण्ड में वर्गकोष्ठों पर चार प्रकार के आलेख्याक्षरों के बनाने की विधि प्रदर्शित की गई है, जिससे यह पुस्तक विद्यार्थियों, आलेख्याध्यापकों और शिलालेख तथा साइनबोर्ड लिखनेवालों के लिए अत्यन्त उपयोगी हो गई है। प्रत्येक विद्यालय में जहाँ हिन्दी-सुलेख तथा अक्षर-आलेख्य की शिक्षा दी जाती है, इस पुस्तक का प्रचार होना चाहिए। पुस्तक बड़े परिश्रम से लिखी गई है और निर्विवाद रूप से हिन्दी-लिपि-कला और अक्षर-विज्ञान पर एकमात्र प्रामाणिक पुस्तक है। इसका मूल्य ।) है।

(२) लिपि-कला का परिशिष्ट—हमारे प्रान्त में सभी स्कूलों में सुलेख की शिक्षा का प्रबन्ध है। उनमें प्रचलित, सोलह 'आदर्श लिपिमालाओं', लिपि पुस्तकों, माडल कापियों आदि लिपि-कला सिखाने के उद्देश से प्रकाशित लिपि-पुस्तकों की इस परिशिष्टाङ्क में भट्ट जी ने सप्रमाण समालोचना करके हिन्दी-लिपि-कला की उपयुक्त सेवा की है। उपर्युक्त लिपि-पुस्तकों के आदर्श-हीन, भ्रष्ट अक्षरों को उद्धृत कर उनके दोषों को उन्होंने बाण-चिह्नों-द्वारा दिखलाया है और उन्हीं के सामने आदर्श अक्षर रखकर तथा 'विशेष सूचना' के स्तम्भ में उन दोषों की चटपटी समीक्षा की है। प्रचलित और पाठ्य-विधि में स्वीकृत लिपि-पुस्तकों के अक्षरों को उन्होंने (१) अवैज्ञानिक, (२) अस्वाभाविक, (३) लेखनी-विरुद्ध, (४) अनुपात-हीन, (५) सौन्दर्य-हीन तथा (६) परस्पर विभिन्नाकार इन षट् दोषों से युक्त सिद्ध किया है।

इनके प्रकाशकों और पाठ्य-विधि-निर्माताओं को इस आलोचना की ओर ध्यान देना चाहिए। इससे हिन्दी और अबोध बालकों का बड़ा उपकार होगा। सुलेखाध्यापक और अपने बालकों को हिन्दी का सुलेख सिखाने के लिए इसमें सन्देह नहीं है कि भट्ट जी की 'आदर्श नागरी लिपि-पुस्तक' (भाग १-६) हिन्दी में सर्वश्रेष्ठ तथा एकमात्र वैज्ञानिक लिपि-पुस्तक है। इस 'परिशिष्ट' का भी मूल्य ।) है।

५—सौंदरनन्द-महाकाव्य—लेखक, अध्यापक रामदीन पाण्डेय एम० ए०, बी० एड० राँची कालेज (बिहार) और प्रकाशक गङ्गा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ हैं। मूल्य सादी पुस्तक का ॥) आठ आने और सजिल्द का १) एक रुपया है।

यह पुस्तक महाकवि अश्वघोष के इसी नाम के संस्कृत काव्य का सारांश है। मूल पुस्तक संस्कृत के श्लोकों में है और अनुवाद हिन्दी-गद्य में किया गया है। इस काव्य के नायक सुन्दर जिनका दूसरा नाम नन्द भी था, बौद्ध-धर्म के प्रवर्तक गौतम बुद्ध के छोटे भाई थे। बुद्ध जैसे त्यागशील तथा विषय-वासना से परे थे, सुन्दर वैसे ही भोग-निरत। क्षण भर के लिए भी अपनी परम सुन्दरी पत्नी का वियोग उन्हें सह्य नहीं था। अन्त में बुद्ध के सिद्धान्तों ने उन्हें अपनी ओर आकर्षित किया और वे सांसारिक सुखों से सर्वथा विरक्त हो गये।

सौन्दरनन्द महाकाव्य अठारह सर्गों में समाप्त हुआ है। इसके द्वारा जहाँ हमें बहुत-सी ऐतिहासिक बातों की जानकारी प्राप्त होती है, वहीं काव्य का भी आनन्द प्राप्त होता है। बौद्ध-धर्म के सिद्धान्तों का तो इसे ख़ज़ाना ही समझना चाहिए। इस पुस्तक में मनोवैज्ञानिक अध्ययन की यथेष्ट सामग्री है। बहुत ही नयनाभिराम तथा शरीर को सुसज्जित करनेवाले अनेक तरह के अंगरागों तथा वस्त्राभरण से सुसज्जित प्राणाधिक प्रिया पत्नी से ज़रा देर के लिए अवकाश लेकर नन्द का गुरु की पूजा के लिए जाना, लौटने में विलम्ब होने के कारण मन ही मन दुःखी होना तथा बौद्ध-धर्म की दीक्षा ग्रहण करना और अन्त में प्रेमाभिनय के तरह तरह के अप्रिय दृश्य देखकर सांसारिक सुखों से विरक्त होना आदि किसी भी मनोविज्ञान के विद्यार्थी के लिए बहुत रोचक प्रमाणित होंगे।

अनुवादक महोदय ने काव्य को संक्षिप्त कर दिया है। इससे अश्वघोष जैसे जगत्प्रसिद्ध कवि की रचना का सौन्दर्य कहाँ तक सुरक्षित रह सका है, यह विचारणीय है। हाँ, कथा का सन्दर्भ अवश्य नहीं टूटने पाया। भाषा भी सुन्दर है। किन्तु अनुवादक महोदय ने कदाचित् कहीं कहीं महाकवि की शब्दावली को बदल दिया है। यथा—ये वृक्ष 'अरेबियन नाइट' के भूगर्भस्थित उद्यान के वृक्षों को भी मात कर रहे थे। (पृ० ५०) यह उक्ति अश्वघोष की सी नहीं जान पड़ती। अनुवादक महोदय ने सम्भवतः इसे अपनी ओर से जोड़ दिया है, जो उचित नहीं है। अश्वघोष की टक्कर के महाकवियों की रचनाओं को वास्तविक रूप में ही प्रकाशित करना साहित्य के लिए हितकर है। अपनी मौलिक प्रतिभा की आभा तो स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखकर भी दिखलाई जा सकती है।

ठाकुरदत्त मिश्र

६-११—'गीता-प्रेस', गोरखपुर की ६ पुस्तकें

किसी भी प्राणी या पदार्थ की उन्नति या प्रचार उद्योग से तो होते ही हैं, परन्तु साथ में भाग्य का प्राबल्य और ईश्वर की सदिच्छा का सहारा भी काम करता है। इस समय के साहित्यिक साधनों में उक्त काम के लिए प्रबल प्रयत्न किये जाते हैं, किन्तु उन्नति या प्रचार में उपर्युक्त सहारा न हो तो सौ में दो सफल होते हैं। 'गीता-प्रेस' से प्रकाशित होनेवाले साहित्य की दिनोंदिन उन्नति होने में भी मैं तो उसी सहारे को मुख्य मानता हूँ। कहा जा सकता है कि साहित्यिक सामग्री का वे लोग सुचारु चुनाव करते हैं, परन्तु वह भी तो उसी हृद्गत ईश्वर का ही प्रकाश है। अस्तु। 'गीता-प्रेस' की छः पुस्तकों में—

(१) **वर्तमान शिक्षा**—के लेखक हनूमानप्रसाद जी पोद्दार हैं। इसमें आधुनिक शिक्षा-प्रणाली के गँदले या शुद्धतम पानी का बहाव कैसा और किस रुख का है, उसका सत्यस्वरूप स्पष्ट शब्दों में प्रकट किया है। वर्तमान शिक्षा से वर्तमान के बालक-बालिका या बड़े विद्यार्थी किस सीमा तक अपने पुरुषाओं के आचार-विचार, चरित्र-रक्षा, देश-प्रेम या आत्मज्ञान आदि का स्मरण रखते या बिगड़ते-सुधरते हैं आदि का संक्षेप में भी अच्छा दिग्दर्शन करा दिया है। इस अमूल्य शिक्षाप्रद ५० पृष्ठ की पुस्तिका का मूल्य -) है।

(२) **शतपञ्च चौपाई**—तुलसी-कृत रामायण के उत्तरकाण्ड में जो (११४ दोहा से १६ दोहों के अन्तर्गत आई हुई हैं) १०५ चौपाइयाँ हैं और उनमें रामचरितमानस के सम्पूर्ण विषयों का सारभूत अंश भलीभाँति भरा है उनके अमृतोपम आशय को 'भावप्रकाशिनी' टीका में प्रकाशित किया है। हर एक चौपाई के प्रत्येक शब्द का

असली भाव हृद्गत कराने के लिए अनेक जगह के सुगन्धयुक्त सुमन-स्वरूप वाक्यों का अच्छा समावेश हुआ है। ज्ञान के प्यासे और रामचरित के भूखे भक्तों के लिए यह पुस्तक अवश्य ही हृदयंगम करने योग्य है। इसमें 'शतपञ्च चौपाई' शब्द के जुदे जुदे अर्थ और शंका-समाधान भी सब हैं। पृष्ठ ३॥ सौ और मूल्य ॥=) है।

(३) भक्तियोग—इसमें नौ प्रकार की भक्ति के सभी अंग-उपांगों का ज्ञान और विज्ञान दोनों दृष्टियों से विचार किया है और उन सबकी सोपपत्तिक व्याख्या की है। भक्ति-सम्बन्धी सम्पूर्ण विषयों का भलीभाँति ज्ञान कराने में यह पुस्तक एक विशेषज्ञ वक्ता का काम देती है। इसमें भक्त स्त्री हो या पुरुष दोनों के जानने के ७६ विषय हैं, जिनमें उनके मनन करने की सब बातें आ गई हैं। पुस्तक बहुत बड़ी (७ सौ पृष्ठ की) होने पर भी मूल्य १=) ही है।

(४) माण्डूक्योपनिषद्—यह अथर्ववेदीय ब्राह्मण भाग के अन्तर्गत है। इस पर गौड़पादाचार्य की कारिका, भगवान् शंकर का भाष्य, मंत्रों का अर्थ और हिन्दी-अनुवाद सामने है। वेदों के वैज्ञानिक अंशों का गूढ़तम आशय समझने के सरल साध्य साधनों में उपनिषद् और पुराण उत्तरोत्तर सरल हैं। त्रिकालदर्शी तत्त्वज्ञ महर्षियों ने संसार की भलाई के लिए इनमें सर्वहितकारी विषय अच्छी तरह भर दिये हैं। उपनिषदों की सम्पूर्ण संख्या सौ से अधिक है, उनमें अधिकांश उपनिषद् तो अकेले विज्ञान के ही भण्डार हैं। उनके सिवा ३२ प्रसिद्ध और १० अप्रसिद्ध हैं। 'माण्डूक्योपनिषद्' उन्हीं में एक है। इसमें (१) आगम, (२) वैतथ्य, (३) अद्वैत और (४) अलात शान्ति के प्रकरणों में आत्मतत्त्व-सृष्टिक्रम पदार्थ-ज्ञान, असत्यत्व-प्रतिपादन-जाग्रत आदि के भेदभाव और आत्म के विविध उपाय आदि १४२ विषयों का समावेश हुआ है। लोकोत्तर ज्ञान की वृद्धि के लिए उपनिषद् ही सर्वोत्कृष्ट साधन हैं। इसका मूल्य १) और पृष्ठ ३ सौ हैं।

(५) तैत्तिरीयोपनिषद्—यह कृष्ण यजुर्वेदीय है। इसमें (१) शिक्षा, (२) ब्रह्मानन्द और (३) भृगु नाम की ३ वल्लियाँ हैं, जिनमें ओंकार आदि की उपासना हृदयाकाश आदि के वर्णन—अन्न, प्राण, मन, विज्ञान और आनन्दमय कोशों आदि के विज्ञान पूर्ण विवेचन—इन सबका ब्रह्मत्व प्रतिपादन—और गृहागत अतिथि आदि के सेवाधर्म आदि ३८ विषयों का विशद वर्णन या विवेचन है। उनमें एक एक में भी ज्ञातव्य विषयों का आनन्दपूर्ण समावेश हुआ है। आत्मज्ञान के लिए यह एक प्रकार का महाप्रकाश है। पृष्ठ २५० और मूल्य ॥।-) है।

(६) "ऐतरेयोपनिषद्"—यह ऋग्वेदीय है। इसमें तीन अध्यायों के यथाक्रम ३ और १-१ खण्ड में ३० विषय वर्णित हुए हैं। उनमें मुख्यतया सृष्टिक्रम, देव, मानव, मन और अनादि की उत्पत्ति या उनकी रचना का विचार, जन्मजन्मान्तर के विवेचन और प्रज्ञान तथा आत्म-ज्ञान आदि के कथनोपकथन हैं। पृष्ठ १०० और मूल्य ।=) है। इस सम्बन्ध में मेरे जैसे अल्पज्ञ का यह निवेदन निरर्थक न हो तो मेरी सम्मति में आधुनिक मनुष्यों के यथेच्छ फल-लाभ में उत्तेजनापूर्ण उम्रतम उपायों की अपेक्षा वेद-सम्मत (या वेदार्थबोधक) उपनिषदों में बतलाये हुए विविधोपायों में से जितने भी रुचि के अनुकूल हों और बन सकें, उनका अनुभव, अभ्यास या अनुशीलन करने के लिए उपनिषदों का अवलोकन करना ही कल्याणकारी है।

—हनुमान शर्मा, चौमू

वर्ग नं० १० का नतीजा

इस बार फिर शुद्धपूर्ति किसी की नहीं आई। एक अशुद्धि करने वाला भी कोई नहीं मिला। इसलिए प्रथम पुरस्कार २ अशुद्धि करनेवालों को दिया गया। पर तीन और चार अशुद्धिवालों की संख्या क्रमशः बहुत बढ़ी, इसलिए पुरस्कार इन्हीं अशुद्धियों तक परिमित रक्खा गया।

प्रथम पुरस्कार ३००) (दो अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ९ व्यक्तियों में बराबर बराबर बाँटा गया। प्रत्येक को ३३।-) मिला।

(१) जगन्नाथप्रसादसिंह मुख्तार, पो० सीतामढ़ी कोर्ट, ज़िला मुज़फ़्फ़रपुर (बिहार)।

(२) श्री मती शान्तिदेवी c/o बी० सी० सेठ, ट्रेज़री आफ़ीसर, बरेली।

(३) सावित्रीदेवी c/o बी० सी० सेठ, ट्रेजरी आफ़ीसर, बरेली।

(४) जानकीदेवी, चन्द्रप्रेस, फ़तहपुरी, देहली।

(५) श्रीमती लक्ष्मीदेवी कपूर c/o मि० हरीकृष्ण कपूर, टाइपिस्ट बोर्ड आफ़िसर, आगरा कैंट।

(६) रामकरणलाल अग्रवाल c/o रामेश्वरप्रसाद श्रीवास्तव बी० ए०, पुरानी बस्ती, रायपुर (सी० पी०)।

(७) शांतिदेवी c/o विश्वनाथ, पो० गुरुकुल काँगड़ी, सहारनपुर।

(८) राधाकृष्ण c/o भवानीप्रसाद, चन्द्र प्रिंटिंग प्रेस, फ़तेहपुरी, देहली।

(९) इक़बाल किशोरी c/o रामेश्वरनाथ चौधरी, एस० पी० खेतड़ी, राजपूताना।

द्वितीय पुरस्कार १६०) (तीन अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित २८ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को ५॥=) मिला।

(१) दीवानसिंह तिलाड़ा c/o बाबू प्रेमसिंह तिलाड़ा, पोखरखाली, अल्मोड़ा।

(२) भूपालसिंह तिलाड़ा c/o बाबू प्रेमसिंह तिलाड़ा, पोखरखाली, अल्मोड़ा।

(३) कु० राजकुमारीदेवी c/o ठाकुर प्रतापबहादुर-सिंह, हरिहरपुर, पो० चिलवाया, ज़ि० बहराइच।

(४) राजनारायण, राजोगली, मुरादाबाद।

(५) अमरचन्द्र सेठ, बाग़ मुज़फ़्फ़र ख़ाँ, आगरा।

(६) नारायणदत्त, पोखरखाली, बलढोटी, अल्मोड़ा c/o हेडमास्टर अल्मोड़ा दीन स्कूल।

(७) मि० हरीकृष्ण कपूर, टाइपिस्ट कण्टूमेंट बोर्ड आफ़िस, आगरा।

(८) राजेश्वरी कपूर c/o मि० हरिकृष्ण कपूर, टाइपिस्ट बोर्ड आफ़िस, आगरा कैंट।

(९) हनुमानप्रसाद c/o छन्नूलाल मोतीलाल परफ़्यू-मर्स, चौक बनारस सिटी।

(१०) किशोरीलाल वर्मा क्लर्क पोस्ट आफ़िस, अलीगढ़।

(११) एस० पी० खण्डेलवाल, सिविल लाइन्स, आगरा।

(१२) राधादेवी c/o डी० पी० वर्मा, इंजीनियर, लीडर प्रेस, इलाहाबाद।

(१३) गोविन्ददेव चावला c/o चक्रप्रेस, फतेहपुरी, देहली।

(१४) कृष्णकुमार चौबे, चौबे प्रेस, नयापारा, रायपुर (सी० पी०)।

(१५) श्यामादेवी अनद ९३ चौक गंगादास, इलाहाबाद।

(१६) गिरिजा रानी श्रीवास्तव, झूँसी, इलाहाबाद।

(१७) कृष्णकुमार c/o पं० सूर्यनारायण जी दीक्षित एडवोकेट, लखीमपुर-खीरी (अवध)।

(१८) कु० सुरेशचन्द्र सेठ c/o वी० सी० सेठ ट्रेजरी आफ़िसर, बरेली।

(१९) एम० एल० मट्टू स्क्वायर, ३ ए सी० फारेस्ट, सरगुदा (पंजाब)।

(२०) श्रीमती पन्नाकुमारी सेठ c/o वी० सी० सेठ ट्रेजरी आफ़िसर, बरेली।

(२१) राजरानी c/o वी० सी० सेठ ट्रेजरी आफ़िसर, बरेली।

(२२) बृजरमन मेहरा c/o बृजरतन मेहरा कूचा बृजनाथ, चाँदनी चौक, देहली।

(२३) कुँवर ब्रजेन्द्रसिंह, ब्रजेन्द्र-पुस्तक-माला, कार्यालय धौलपुर।

(२४) चौथमल c/o रामरतनदास मुरारीलाल, बनारस।

(२५) मदनमोहन माथुर, ईश-भवन, अर्दली बाज़ार, बनारस कैंट।

(२६) सुशीला c/o दुखहरननाथ ए०एस०, एम० रूरा।

(२७) सरस्वती देवी c/o दुखहरननाथ कौल, असिस्टेन्ट स्टेशन मास्टर, रूरा ज़िला कानपुर।

(२८) रामनिवास सोढानी, वकील सांभरलेक, (राजपूताना)।

तृतीय पुरस्कार ४०) (चार अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ८० व्यक्तियों में बराबर बराबर बाँटा गया। प्रत्येक को ||) मिला।

(१) श्रीमती विन्दवासुनि सिंहा, मु० पो० चौसी, जिला भागलपुर।

(२) सरलाकुमारी, गुरुकुल सुपा नवसरी, (सूरत)।

(३) रामचन्द्र सुल्लेरे, सेकंड मास्टर स्टेट हाई स्कूल, अजयगढ़ (सी० आ०)।

(४) आर० के० सिंह c/o रघुनाथसिंह चौहान, मालरोड, मुरार (ग्वालियर)।

(५) रघुनाथसिंह चौहान, मालरोड, मुरार (ग्वालियर)।

(६) रामप्रकाश पांडेय c/o सब पोस्टमास्टर, इंडियन प्रेस, पो० आ०, इलाहाबाद।

(७) सेक्रेटरी कपूर लाइब्रेरी, पिहानी (यू० पी०)।

(८) सौ० सुशीला जोशी c/o एस० के० [illegible], गवर्नमेंट हाई स्कूल, नैनीताल।

(९) सतीशचन्द्र पाठक, चन्द्रप्रेस, [illegible], देहली।

(१०) सिद्धेश्वरी देवी पुत्री पं० विष्णुनारायण मिश्र, सब-रजिस्ट्रार सफीपुर (उन्नाव)।

(११) योगेशचन्द्र सेठ, बाग़ मुज़फ्फर ख़ाँ, आगरा।

(१२) दिनेशचन्द्र सेठ, बाग़ मुज़फ्फर ख़ाँ, आगरा।

(१३) मेधातिथि पहारिया c/o साहित्य-सदन, चिरगाँव, झाँसी।

(१४) दौलतराम गुप्ता, बैंकर चम्बा, चम्बा-स्टेट, (पंजाब)।

(१५) रामनन्दन राम c/o गिरीशप्रसाद श्रीवास्तव शिवपुर, बनारस।

(१६) डा० रामेश्वरप्रसाद गुप्त, होमियोपैथ, पो० दाऊदनगर (गया)।

(१७) ठाकुर बैजनाथसिंह ट्रेनिङ्ग इन्स्ट्रक्टर, स्कूल, पो० महाराजगंज, रायबरेली।

(१८) सुशीला पुत्री लखपतराय श्रीवास्तव खेड़ा बुजुर्ग पो० बलरई (इटावा)।

(१९) वैद्य सत्यदेव वि० अ० पो० गुरुकुल काँगड़ी, ज़ि० सहारनपुर।

(२०) मैनेजर सरस्वती वाचनालय, जालौन (यू० पी०)।

(२१) यज्ञदत्त शुक्ल, नरही, लखनऊ।

(२२) पं० शशिभूषण वाजपेयी, लॉ जर्नल प्रेस, ५ प्रयाग स्ट्रीट, प्रयाग।

(२३) जी० एल० मैत्रा c/o जी० डी० मैत्रा, ११२६ बाग़ मुज़फ्फर ख़ाँ, आगरा।

(२४) ए० एल० मैत्रा, ११२९ बाग़ मुजफ्फर ख़ाँ, आगरा।

(२५) मिसेज़ एम० मैत्रा, ११२९ बाग़ मुज़फ्फर ख़ाँ, आगरा।

(२६) नित्यानन्द c/o रामेश्वर शास्त्री, गुरुकुल, वृन्दावन।

(२७) मिस्टर आर० के० मट्टू c/o एम० एल० मट्टू स्क्वायर, ई० ए० सी० फारेस्ट, सरगोधा (पंजाब)

(२८) सुशीला बाई c/o हरकिशनलाल हेडमास्टर, पंचमढ़ी, सी० पी०।

(२९) बालकृष्ण हेडमास्टर, हिन्दी माडल स्कूल, कोटा (रा० पू०)

(३०) सुधीन्द्र c/o बालकृष्ण हेड मास्टर, हिन्दी माडल स्कूल, कोटा (रा० पू०)

(३१) अविनाशचन्द्र चोपड़ा बाग़ मुज़फ्फर ख़ाँ, आगरा।

(३२) सालिगराम चोपड़ा, बाग़ मुज़फ्फर ख़ाँ, आगरा।

(३३) नागरमल सहल विशारद, सहल सदन, पो० आ० नवलगढ़, जयपुर।

(३४) कैलाशचन्द्र जैन, मुहल्ला ब्रह्मनान, बिजनौर।

(३५) जगदम्बा c/o डाक्टर परमात्माशरण, मु० ज़काती, बरेली।

(३६) खुशहालमणि पर्वतीय c/o आत्माराम हरिशंकर, कुंजगली, बनारस।

(३७) विद्यादेवी, साहित्यसदन, अलीगढ़।

(३८) चन्द्रकलादेवी 'भूषण', प्राग आइस फैक्टरी, मुरादाबाद।

(३९) लक्ष्मीबाई c/o वी० सी० सेठ, ट्रेजरी आफ़िसर, बरेली।

(४०) सुधांशु कुमार मिश्र c/o एच० एस० पाठक, डिप्टीकलेक्टर, रानीखेत।

(४१) धर्मानु c/o ला० केदारनाथ द्वारकानाथ, कूचा मोतीराम, समीप—आर्यसमाज मन्दिर, लोहगढ़, अमृतसर (पंजाब)।

(४२) रामजी वाजपेयी, अध्यक्ष विद्या-मन्दिर, ब्रह्मनाल, काशी।

(४३) दुर्गाप्रसाद वर्मा, इंजीनियर, लीडर प्रेस, इलाहाबाद।

(४४) छन्नूलाल c/o छन्नूलाल मोतीलाल, परफ़्यूमर्स, चौक, बनारस (सिटी)।

(४५) विद्यावती c/o किशोरीलाल वर्मा, क्लर्क पोस्ट-आफ़िस, अलीगढ़।

(४६) सरला देवी खंडेलवाल c/o एस० पी० खंडेलवाल, सिविल लाइन्स, आगरा।

(४७) कमलेश चन्द्र सेठ, बाग़ मुज़फ्फर ख़ाँ, आगरा।

(४८) चिरोंजीलाल, गुरुकुल, वृन्दावन।

(४९) कुमारी सुधा दीक्षित c/o पंडित सूर्यनारायण दीक्षित एडवोकेट, लखीमपुर-खीरी (अवध)।

(५०) पं० कृष्णचन्द्र पालीवाल c/o प० अमरचन्द्र मुंधा, चुल्हावली, टुंडला, आगरा।

(५१) जयगणेश मालवीय, भारतीभवन, इलाहाबाद।

(५२) रूपरानी माथुर c/o शंकरमोहन माथुर। अर्दली बाज़ार, बनारस कैंट।

(५३) जगन्नाथप्रसाद, ११३ हाशिमपुर रोड, इलाहाबाद।

(५४) एस० एम० एलियस स्कायर, २, ज़ीरो रोड, इलाहाबाद।

(५५) वीणा बाला c/o रमण, १८३ कटरा, प्रयाग।

(५६) सुरेशचन्द्र जैन, चन्द्रसदन, आरा।

(५७) गंगारानी क्रास्थवेट गर्ल्स कालेज, इलाहाबाद।

(५८) योगेश्वरी देवी गुप्त c/o ओंकारनाथ गुप्त, ७३ जानसेनगंज, इलाहाबाद।

(५९) ओंकारनाथ गुप्त, ७३ जानसेनगंज, इलाहाबाद।

(६०) बृजनारायण जौहरी, आफ़िस आफ़ चीफ़ इन्स्पेक्टेर आफ़ गर्ल्स स्कूल, यू० पी०, इलाहाबाद।

(६१) किशोरीलाल, आनन्द-भवन, इलाहाबाद ।

(६२) हरीमोहन c/o डाक्टर जी० पी० अग्रवाल, ८६ गाड़ीवान टोला, इलाहाबाद ।

(६३) पालीराम शर्मा c/o अनन्तलाल गोविन्ददास उर्दू बाज़ार, गोरखपुर ।

(६४) मोहम्मदहनीफ़ वेटनरी, कम्पाउंडर, हरसूद, ज़िला निमार ।

(६५) जयन्ती पाठक c/o एच० एस० पाठक, डिप्टी कलेक्टर, रानीखेत ।

(६६) भोलादत्त पांडे हेडमास्टर, टौन स्कूल, अल्मोड़ा ।

(६७) कुँवर नरेन्द्रकुमार सेठ c/o बी० सी० सेठ, ट्रेज़री आफ़िसर, आगरा ।

(६८) कुमारी सुन्दरीदेवी c/o पण्डित रामचीज़ पांडे, मो० पो० अखल (गया) ।

(६९) एच० पी० ज्योतिषी मास्टर, कृषी स्कूल, पाथरखेड़ा, होशंगाबाद, सी० पी० ।

(७०) सत्यवती c/o जगतप्रकाश शर्मा, छत्ता, गाज़ियाबाद ।

(७१) वंशीधर शर्मा, गोयनका स्कूल, डुण्डलोद, पो० नवलगढ़ ।

(७२) राजबाला रानी c/o रायबहादुर बाबू निहाल सिंह जी, ३४, गांधी गली, देहली ।

(७३) जगदीश किशन c/o मिस्टर हरिकिशन कपूर टाइपिस्ट, कैन्ट बोर्ड आफ़िस, आगरा ।

(७४) किशनसिंह असिस्टेंट टीचर, स्टेट हाईस्कूल, चूरू (बीकानेर)

(७५) गोपीकिशन c/o मिस्टर हरिकिशन कपूर, टाइपिस्ट कैंट बोर्ड आफ़िस, आगरा ।

(७६) बी० एस० c/o मास्टर एस० ए० वर्मा, मि०, स्कूल, हरसूद पो० हरसूद ज़िला निमार (सी० पी०)

(७७) मायादेवी c/o बा० मुकुटबिहारीलाल वकील, मुक़ाम आलमगीरगंज, बरेली ।

(७८) विमलचन्द्र अग्रवाल c/o रामेश्वरप्रसाद श्रीवास्तव, पुरानी बस्ती, रायपुर, सी० पी०

(७९) जयदेव घिलडियाल, डफरिन रोड, देहरादून ।

(८०) जय भगवानचन्द्र, मुहल्ला चाहशोर, मकान नं० ५७, शहर मेरठ ।

उपर्युक्त सब पुरस्कार २१ जून को भेज दिये जायँगे ।

नोट—(१) जांच का फ़ार्म ठीक समय पर आने से यदि किसी को और भी पुरस्कार पाने का अधिकार सिद्ध हुआ तो उपर्युक्त पुरस्कारों में से जो उसकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बाँटा जायगा ।

(२) केवल वे ही लोग जांच का फ़ार्म भेजें जिनका नाम यहाँ नहीं छपा है, पर जिनको यह सन्देह हो कि वे पुरस्कार पाने के अधिकारी हैं ।

(३) जिनको ॥) का पुरस्कार मिला है उन्हें ॥) का प्रवेश-शुल्क-पत्र भेज दिया जायगा । जो नियम ४ के अनुसार तीन महीने के भीतर इसके साथ एक पूर्ति भेज सकेंगे ।

व्यत्यस्त रेखा शब्द पहेली
CROSSWORD PUZZLE IN HINDI

३००) शुद्ध पूर्तियों पर

२००) न्यूनतम अशुद्धियों पर

नियम—(१) वर्ग नं०.११ में निम्नलिखित पारितोषिक दिये जायँगे । प्रथम पारितोषिक—सम्पूर्णतया शुद्ध पूर्ति पर ३००) नक़द । द्वितीय पारितोषिक—न्यूनतम अशुद्धियों पर २००) नक़द । वर्गनिर्माता की पूर्ति से, जो मुहर बन्द करके रख दी गई है, जो पूर्ति मिलेगी वही सही मानी जायगी ।

(२) वर्ग के रिक्त कोष्ठों में ऐसे अक्षर लिखने चाहिए जिससे निर्दिष्ट शब्द बन जाय । उस निर्दिष्ट शब्द का संकेत अङ्क-परिचय में दिया गया है । प्रत्येक शब्द उस घर से आरम्भ होता है जिस पर कोई न कोई अङ्क लगा हुआ है और इस चिह्न (■) के पहले समाप्त होता है । अङ्क-परिचय में ऊपर से नीचे और बायें से दाहनी ओर पढ़े जानेवाले शब्दों के अङ्क अलग अलग कर दिये गये हैं, जिनसे यह पता चलेगा कि कौन शब्द किस ओर को पढ़ा जायगा ।

(३) प्रत्येक वर्ग की पूर्ति स्याही से की जाय । पेंसिल से की गई पूर्तियाँ स्वीकार न की जायँगी । अक्षर सुन्दर, सुडौल और छापे के सदृश स्पष्ट लिखने चाहिए । जो अक्षर पढ़ा न जा सकेगा अथवा बिगाड़ कर या काटकर दूसरी बार लिखा गया होगा वह अशुद्ध माना जायगा ।

(४) प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए जो फ़ीस वर्ग के ऊपर छपी है दाख़िल करनी होगी । फ़ीस मनीआर्डर-द्वारा या सरस्वती-प्रतियोगिता के प्रवेश-शुल्क-पत्र (Credit voucher) द्वारा दाख़िल की जा सकती है । इन प्रवेश-शुल्क-पत्रों की किताबें हमारे कार्यालय से ३) या ६) में ख़रीदी जा सकती हैं । ३) की किताब में आठ आने [illegible]ल्य के और ६) की किताब में १) मूल्य के ६ पत्र बँधे [illegible] । एक ही कुटुम्ब के अनेक व्यक्ति, जिनका पता-[illegible]ना भी एक ही हो, एक ही मनीआर्डर-द्वारा अपनी [illegible] भेज सकते हैं और उनकी वर्ग-पूर्तियाँ भी एक ही लिफ़ाफ़े या पैकेट में भेजी जा सकती हैं । मनीआर्डर व वर्ग-पूर्तियाँ 'प्रबन्धक, वर्ग-नम्बर ११, इंडियन प्रेस, लि०, इलाहाबाद' के पते से आनी चाहिए ।

(५) लिफ़ाफ़े में वर्ग-पूर्ति के साथ मनीआर्डर की रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र नत्थी होकर आना अनिवार्य है । रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र न होने पर वर्ग-पूर्ति की जाँच न की जायगी । लिफ़ाफ़े की दूसरी ओर अर्थात् पीठ पर मनीआर्डर भेजनेवाले का नाम और पूर्ति-संख्या लिखनी आवश्यक है ।

(६) किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह जितनी पूर्ति-संख्यायें भेजनी चाहे, भेजे । किन्तु प्रत्येक वर्गपूर्ति सरस्वती पत्रिका के ही छपे हुए फ़ार्म पर होनी चाहिए । इस प्रतियोगिता में एक व्यक्ति को केवल एक ही इनाम मिल सकता है । वर्गपूर्ति की फ़ीस किसी भी दशा में नहीं लौटाई जायगी । इंडियन प्रेस के कर्मचारी इसमें भाग नहीं ले सकेंगे ।

(७) जो वर्ग-पूर्ति २३ जून तक नहीं पहुँचेगी, जाँच में नहीं शामिल की जायगी । स्थानीय पूर्तियाँ २३ ता० को पाँच बजे तक बक्स में पड़ जानी चाहिए और दूर के स्थानों (अर्थात् जहाँ से इलाहाबाद डाकगाड़ी से चिट्ठी पहुँचने में २४ घंटे या अधिक लगता है) से भेजनेवालों की पूर्तियाँ २ दिन बाद तक ली जायँगी । वर्ग-निर्माता का निर्णय सब प्रकार से और प्रत्येक दशा में मान्य होगा । शुद्ध वर्ग-पूर्ति की प्रतिलिपि सरस्वती पत्रिका के अगले अङ्क में प्रकाशित होगी, जिससे पूर्ति करनेवाले सज्जन अपनी अपनी वर्ग-पूर्ति की शुद्धता अशुद्धता की जाँच कर सकें ।

(८) इस वर्ग के बनाने में 'संक्षिप्त हिन्दी-शब्दसागर' और 'बाल-शब्दसागर' से सहायता ली गई है ।

अङ्क-परिचय

बायें से दाहिने

१—ग़रीबों के मालिक ।
५—कायर मनुष्य इससे पहचाना जाता है ।
७—सिलगना ।
८—कोई कोई बात ऐसी ही होती है ।
९—वर्म या बक्तर ।
१०—इससे सम्बन्ध रखनेवाले पृथ्वी पर बड़ा प्रभाव रखते हैं ।
११—इसकी सहायता से स्त्रियाँ अपना लोक-परलोक दोनों सुधार सकती हैं ।
१२—हीरा ।
१४—इसे आप स्थिर न पायेंगे !
१६—दूत ।
१७—दाल यहीं की गई थी ।   १८—दिन ।
१९—इससे अधिक सर्वप्रिय कोई मुश्किल से मिलेगा ।
२४—हठ-धर्मियों की मति यदि ऐसी निकले तो कोई आश्चर्य नहीं ।
२६—प्रकृति इस रूप में सुन्दर भी है और भयानक भी ।
२७—सहारे से जल्द लगे है ।
२८—इसकी चंचलता प्रसिद्ध है ।
२९—मिट्टी का वह छोटा बर्तन जिसमें किसी वस्तु को सहज ही में धर-उठा सकते हैं ।

ऊपर से नीचे

१—इसमें ज्योति न होते हुए भी मनुष्य के कार्य में कुछ बाधा नहीं पड़ती ।
२—एक तीर्थ का नाम, जो दक्षिण-भारत में है ।
३—हिलता हुआ ।
४—मकड़ी के जाले का यह देखकर प्रकृति की कारीगरी पर आश्चर्य होता है ।
५—जादूगरनी ।   ६—नाम रखने का संस्कार ।
८—यह कभी कभी ऐसी आ पड़ती है कि कुछ बस नहीं चलता ।
१०—कितने ही मनुष्य इसे स्वाद लेकर खाते हैं ।
१३—लज्जा से परिपूर्ण......में आकर्षण की शक्ति प्रबल होती है ।
१४—इसकी शीतलता रसिक जनों के लिए भाव-प्रेरक होती है ।
१५—कहा जाता है कि जिस घर में स्त्री पुरुष से......हो वहाँ दुख की कमी नहीं !
१६—इसके वश होकर प्रायः नीचा देखना पड़ा है ।
१८—बहुत-से ग़रीब ऐसे भी हैं जिनके लिए हर नया यह चिन्ता का प्रेरक होता है ।
२०—इसके न मिलने पर प्राण तक चले जाते हैं ।
२१—गर्मी में लू उतनी नहीं...जितनी कि बरसात की उमस ।
२२—देहाती घरों की कच्ची दीवारें इसी से मिट्टी लेकर उठाई जाती हैं ।
२३—एक तरह के काम की मज़दूरी ।   २५—मैं का बहुवचन ।

नोट—रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रा-रहित और पूर्ण हैं

वर्ग नं० १० की शुद्ध पूर्ति

वर्ग नम्बर १० की शुद्ध पूर्ति जो बंद लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दी गई थी, यहाँ दी जा रही है । पारितोषिक जीतनेवालों का नाम हम अन्यत्र प्रकाशित कर रहे हैं ।

ज	ग	दी	श्व	र		य	यो	चि	त
ग	ल	न		ह	ना	श		त	स
ह		ता	प	स		स्वी	का	र	
	अ		ल		ध		म	ना	
स	प		का		र	च	ना		अ
ह	य			प	नी	ला		क	पा
ला		व	स	न			अ	ज	र
ना	द	र		प	ल		ह	रा	[illegible]
		डा	ग	ना		ख	रा		[illegible]

यादवाश्त के लिए वर्ग ११ की पूर्तियों की नकल यहाँ पर कर लीजिए और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए ।

विन्दीदार लकीर पर से काटिए

वर्ग नं० ११ फ़ीस ।।)

दी	ना	ना	य				भा		ना
		सि			ना				
			य		व	र			
	पा						ती		
र		न		चं		ल			रा
सा					ली		वा		
		न					स		
नि	ह		ल		गा				ता
या			ती		र			र	ई

(रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रा-रहित और पूर्ण हैं)
मैनेजर का निर्णय मुझे हर प्रकार स्वीकृत होगा । पूर्ति नं० ....
पूरा नाम ....
पता ....

(रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रा-रहित और पूर्ण हैं)
मैनेजर का निर्णय मुझे हर प्रकार स्वीकृत होगा । पूर्ति नं० ....
पूरा नाम ....
पता ....

जाँच का फ़ार्म

वर्ग नं० १० की शुद्ध पूर्ति और पारितोषिक पानेवालों के नाम अन्यत्र प्रकाशित किये गये हैं । यदि आपको यह संदेह हो कि आप भी इनाम पानेवालों में हैं, पर आपका नाम नहीं छपा है तो १) फ़ीस के साथ निम्न फ़ार्म की ख़ानापुरी करके १५ जून तक भेजें । आपकी पूर्ति की हम फिर से जाँच करेंगे । यदि आपकी पूर्ति आपकी सूचना के अनुसार ठीक निकली तो पुरस्कारों में से जो आपकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बाँटा जायगा और आपकी फ़ीस लौटा दी जायगी । पर यदि ठीक न निकली तो फ़ीस नहीं लौटाई जायगी । जिनका नाम छप चुका है उन्हें इस फ़ार्म के भेजने की ज़रूरत नहीं है ।

वर्ग नं० १० (जाँच का फ़ार्म)

मैंने सरस्वती में छपे वर्ग नं० १० के आपके उत्तर से अपना उत्तर मिलाया । मेरी पूर्ति

नं०........में { कोई अशुद्धि नहीं है । / एक अशुद्धि है । / दो अशुद्धियाँ हैं । / ३, ४ हैं । }

मेरी पूर्ति पर जो पारितोषिक मिला हो उसे तुरन्त भेजिए । मैं १) जाँच की फ़ीस भेज रहा हूँ ।

हस्ताक्षर ________
पता ________

विन्दीदार लाइन पर काटिए

इसे काट कर लिफ़ाफ़े पर चिपका दीजिए

मैनेजर वर्ग नं० ११
इंडियन प्रेस, लि०,
इलाहाबाद ।

प्रतियोगियों की बातें

कुछ नई शङ्कायें

१—बली क्यों, छली क्यों नहीं ?

श्रीयुत सम्पादक जी।

मार्च १९३७ की वर्ग-पहेली में बायें से दाहने नं० ६ में बली एवं छली दो शब्द बनते हैं। इसका संकेत 'कृष्ण को बहुतेरे ऐसा समझते हैं', यह दिया गया है।

अब हमें इस पर विचार करना है।

कोई भी बलयुक्त शरीरी बली हो सकता है, न कि कृष्ण ही। साथ ही संस्कृत-काव्य-साहित्य में बली शब्द कृष्ण के लिए प्रयुक्त नहीं किया गया है। इसके विपरीत हिन्दी ही नहीं, संस्कृत-काव्य-साहित्य में भी कृष्ण को छलिया-छली कहकर अधिकांश में सम्बोधित किया गया है। फिर "कृष्ण को बहुतेरे ऐसा समझते हैं", इसके लिए बली शब्द प्रयुक्त करना संयोजक पहेली की नई सूझ है।

—रमेशचन्द्र शर्मा देहली

२—स्त्रीलिङ्ग या पुँल्लिङ्ग

श्रीमान् सम्पादक जी,

वर्ग नं० ९ के 'अटकन' शब्द को लीजिए। बाबू रामचन्द्र वर्म्मा जी उसे पुँल्लिङ्ग बनाये बैठे हैं, किन्तु संकेत में है, "यदि बड़ी हुई तो कोई कोई बच्चा रो उठता है।" अब आप ही कहें, प्रतियोगीगण क्या करें? या तो वे कोश के सम्पादक को ग़लत क़रार दें या वर्गनिर्माता की भूल मान कर हानि उठावें? अतः आपसे मेरी प्रार्थना है कि आप इस पत्र को अपनी सम्मानिता पत्रिका में स्थान देकर अन्य प्रतियोगियों की सम्मति लेकर निर्णय कर डालिए कि उपर्युक्त दोनों महोदयों में कौन सही है और कौन ग़लत?

सी० के० डी० तिवारी, पी० ए० था० रुधौली, बस्ती

नोट—आशा है, प्रतियोगीगण इनका भी उत्तर देंगे।

पिछली शङ्काओं के उत्तर

(१)

'पातर' नहीं, 'पामर' ही ठीक था। 'पातर' का उद्देश नीच नहीं होता। हाँ, अधिकांश नीच वृत्ति धारण कर लेती हैं। पर इससे यह नहीं कह सकते कि इनका उद्देश ही नीच है। संकेत में जो 'ही' शब्द रक्खा हुआ है वह साफ़ बतलाता है कि उसका नीच उद्देश के सिवा उच्च उद्देश हो ही नहीं सकता। कई वेश्यायें अपना उद्देश उच्च कोटि का रखती हैं तथा प्रत्येक मनुष्य पर उनकी इज़्ज़त का प्रभाव पड़ता है। ऐसी अवस्था में पातर हो ही नहीं सकता।

अब 'पामर' को लीजिए। पामर का पर्यायवाची शब्द 'नीच' होता है। नीच वही मनुष्य कहलाता है जो हमेशा ही नीच कार्य करता रहता और नीच बातें ही सोचा करता है। नीच का उद्देश ही नीच होता है। यदि किसी मनुष्य का उद्देश नीच न हो तो वह नीच कभी नहीं कहा जा सकता। इसलिए 'इसका उद्देश ही नीच है', इस संकेत में 'पामर' ही ठीक जमता है, 'पातर' नहीं।

हरकिशनलाल अग्रवाल, हेड मास्टर, पचमढ़ी।

(२)

'पामर' और 'पातर' के कर्तव्यों और उद्देशों पर भी विचार कर लेना चाहिए। 'पामर' अर्थात् नीच कैसा भी कर्तव्य करे, उसका उद्देश सदा ही नीच रहेगा। पातर अर्थात् वेश्या का कर्तव्य या कर्म अवश्य नीच होता है। परन्तु इसका उद्देश तो नहीं। वह किसी को धोखे में डाल कर हानि नहीं पहुँचती।

इसके साथ ही एक शङ्का अप्रचलित तथा किसी कोश में न मिलनेवाले शब्दों की है। ज्ञात होता है, शङ्का करनेवाली महोदया ने प्रतियोगिता की नियमावली जो प्रतिमास प्रकाशित होती है, पढ़ने का कष्ट नहीं उठाया, अन्यथा कोश का नाम और शब्दों का अर्थ न पूछतीं। आपको नियम नं० ८ में दिये गये कोशों में ये सब शब्द मिल जायेंगे।

—कैलाशचन्द्र सेठ
बाग़ मुजफ़्फ़र ख़ाँ आगरा

५००) में दो पारितोषिक

इनमें से एक आप कैसे प्राप्त कर सकते हैं यह जानने के लिए पृष्ठ ६०१ पर दिये गये नियमों को ध्यान से पढ़ लीजिए। आप के लिए और दो कूपन यहाँ दिये जा रहे हैं।

बिन्दीदार लकीर पर से काटिए

वर्ग नं० ११ — फ़ीस ।|)

१ दी	ना	२ ना	३ थ		४		५ भा		६ ना
		७ सि			ना				
	८		य		९ व	र			
१०	या					११	ती		
१२ र		१३ न		१४ चं	१५	ल		१६	रा
सा				१७	ली		१८ वा		
	१९	न					स		
२०			२१		२२				२३
२४ नि	२५ ह		ल		२६ गा			२७	ता
या			२८ ती		र		२९	र	ई

(रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रा-रहित और पूर्ण हैं)

मैनेजर का निर्णय मुझे हर प्रकार स्वीकृत होगा। पूर्ति नं० ....

पूरा नाम ....

पता ....

बिन्दीदार लकीर पर से काटिए

बिन्दीदार लकीर पर से काटिए

वर्ग नं० ११ — फ़ीस ।|)

१ दी	ना	२ ना	३ थ		४		५ भा		६ ना
		७ सि			ना				
	८		य		९ व	र			
१०	या					११	ती		
१२ र		१३ न		१४ चं	१५	ल		१६	रा
सा				१७	ली		१८ वा		
	१९	न					स		
२०			२१		२२				२३
२४ नि	२५ ह		ल		२६ गा			२७	ता
या			२८ ती		र		२९	र	ई

(रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रा-रहित और पूर्ण हैं)

मैनेजर का निर्णय मुझे हर प्रकार स्वीकृत होगा। पूर्ति नं० ....

पूरा नाम ....

पता ....

बिन्दीदार लकीर पर से काटिए

दी	ना	ना	थ				भा		ना
		सि			ना				
			य		व	र			
	या						ती		
र		न		चं		ल			रा
सा					ली		वा		
		न					स		
नि	ह		ल		गा				ता
या			ती		र			र	ई

दी	ना	ना	थ				भा		ना
		सि			ना				
			य		व	र			
	या						ती		
र		न		चं		ल			रा
सा					ली		वा		
		न					स		
नि	ह		ल		गा				ता
या			ती		र			र	ई

अपनी याददाश्त के लिए वर्ग ११ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ कर लीजिए, और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

आवश्यक सूचनायें

(१) स्थानीय प्रतियोगियों की सुविधा के लिए हमने प्रवेश-शुल्क-पत्र छाप दिये हैं जो हमारे कार्य्यालय से नक़द दाम देकर ख़रीदे जा सकते हैं। उन पत्रों पर अपना नाम स्वयं लिख कर पूर्ति के साथ नत्थी करना चाहिए।

(२) स्थानीय पूर्तियाँ 'सरस्वती-प्रतियोगिता-बक्स' में जो कार्यालय के सामने रक्खा गया है, दिन में दस और पाँच के बीच में डाली जा सकती हैं।

(३) वर्ग नम्बर ११ का नतीजा जो बन्द लिफ़ाफ़े में मुहर लगा कर रख दिया गया है, ता० २६ जून सन् … को सरस्वती-सम्पादकीय विभाग में ११ बजे दिन में सर्वसाधारण के सामने खोला जायगा। उस समय जो सज्जन चाहें स्वयं उपस्थित होकर उसे देख सकते हैं।

(४) नियमों में हमने स्पष्ट कर दिया है कि प्रवेश-शुल्क मनिआर्डर द्वारा या हमारे कार्य्यालय से ख़रीदे गये प्रवेश-शुल्क-पत्रों के रूप में ही आना चाहिए; फिर भी कुछ लोग डाक के टिकटों के रूप में प्रवेश-शुल्क भेज देते हैं। यहाँ हम एक बार फिर स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि इस प्रकार टिकटों के साथ आई हुई पूर्तियाँ अनियमित समझी जाती हैं और इस प्रकार आये हुए टिकटों के भी हम ज़िम्मेदार नहीं होंगे।
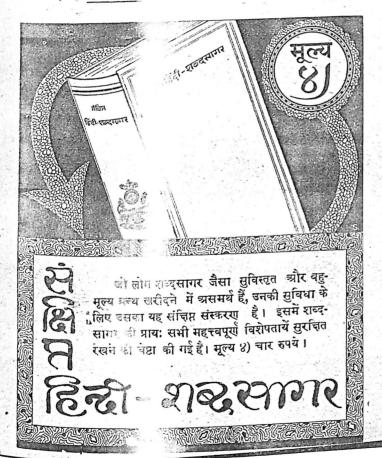
कहते हैं, कवि अपने समय का गायक होता है, वह निर्जीवों में जान डालता है, सोतों को जगाता है और जाति को जीवन-युद्ध के लिए तैयार करता है। अच्छी कविता से चित्त में उत्साह, हृदय में आनन्द और मन में शान्ति पैदा होती है। मैं जब कोई कविता पढ़ता हूँ तब मेरे सामने यह दृष्टिकोण बराबर रहता है।

× × ×

उस दिन एक पुस्तकालय में मुझे बड़ी देर तक एक मित्र की प्रतीक्षा में बैठना पड़ा। चित्त अशान्त और उदास था, इसलिए सोचा कि हिन्दी की कुछ ताज़ी कवितायें पढ़कर अपने हृदय के आनन्द और उल्लास से क्यों न भरूँ। मेज़ पर गत मास की प्रायः सभी मासिक पत्रिकायें पड़ी थीं। मैंने उन्हें एक एक करके उठाया और प्रत्येक पत्रिका की प्रथम पृष्ठ पर छपी कविता पढ़ गया। परन्तु पढ़ने के बाद मुझे घोर निराशा हुई।

× × ×

आज-कल 'सरस्वती' की बड़ी धूम है। सबसे पहले मैंने यही पत्रिका उठाई। प्रथम पृष्ठ पर ठाकुर गोपालशरणसिंह की कविता छपी है। उसकी अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

अन्धकारमय ही भविष्य का चित्र नज़र आता है।
धीरे धीरे भाग्य विभाकर अस्त हुआ जाता है॥

मैंने 'सरस्वती' बन्द कर दी। भारतीयों का भविष्य अन्धकारमय नहीं है। उनमें जागृति है। फिर ठाकुर साहब यह किसका प्रतिनिधित्व कर रहे हैं?

× × ×

ख़ैर, मैंने 'सरस्वती' बन्द कर दी और 'विशाल भारत' उठाया। इस पत्रिका में पहले पृष्ठ पर कोई कविता न पाकर मैंने कुछ पृष्ठ और उलटे। पहली कविता श्री भगवतीचरण वर्मा की है। वर्मा जी नवयुवक और उत्साही हैं। फिर भी आप लिखते हैं—

मैं एक दया का पात्र अरे!
मैं नहीं रख स्वाधीन प्रिये!

× × ×

एक नवयुवक भारतीय की लेखनी से ऐसी निराशापूर्ण पंक्तियाँ निकल सकती हैं, यह मैंने पहले नहीं सोचा था। मैंने 'विशाल भारत' जहाँ का तहाँ रख दिया और 'माधुरी' उठाई। देखा, पहले पृष्ठ पर श्री कुँवर चन्द्रप्रकाशसिंह जी रो रहे हैं—

जीवन का प्रतिचरण मरण रे!

इतना सुन्दर नाम और इतनी निराशापूर्ण कविता। मैंने इस कविता को आगे पढ़ना मुनासिब नहीं समझा।

× × ×

मेरी दृष्टि 'सरस्वती' के ही समान आकर्षक 'विश्वमित्र' पर गई। उसके प्रथम पृष्ठ पर श्री …प्रसाद वाजपेयी की 'पनघट पर' शीर्षक कविता … है। शीर्षक देखकर मैंने सोचा इस कविता में अवश्य जीवन और उत्साह होगा। पर उसमें निम्न पंक्तियाँ पढ़कर मेरा हृदय बैठ गया—

मैं दैन्य दुर्दशा की तड़पन,
मैं दुर्बलता का नाश … ॥

× × ×

मुझे अपना दुःख भूल गया … मैं सोचने लगा कि हिन्दी के कवियों में यह दीनता, … और बन्धन का इतना भाव क्यों है? और य… … समय और राष्ट्र का प्रतिनिधि कहें तो क्या य… … और समय का स्वर है?

× × ×

कुछ पत्रिकायें और पड़ी थीं … खोलने की इच्छा ऊपर के अनुभवों से दब चुकी … पर मैं इन कवियों जैसा निराश नहीं। इसलिए … एक और पत्रिका उठाई। यह 'सुधा' थी। इसके … पृष्ठ पर छपी कविता

का शीर्षक था दिल के फफोले और लेखक थे श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'। शीर्षक से ही मैंने समझ लिया था कि कवि को किसी से कुछ शिकायत है। कविता में हरिऔध जी ने कवि के दुखी मन को इस प्रकार सान्त्वना देने की चेष्टा की है—

मतलबी दुनिया होती है, कराहें क्यों भर-भर आहें।

× × ×

मैंने एक और पत्रिका उठाई। उसके प्रथम पृष्ठ पर श्री मैथिलीशरण गुप्त की असफल शीर्षक कविता छपी है। प्रथम पंक्ति इस प्रकार है—

रहूँ आज असफल मैं।

इसमें सन्देह नहीं कि गुप्त जी ने सफलता का भी इस कविता में आह्वान किया है। पर असफलता की याद उन्हें एक मिनट भी नहीं भूलती। वे कहते हैं—

मरण ताकता है तू मुझको पर मैं क्यों देखूँ तुझको ?

मैंने एक और रँगी-चुँगी पत्रिका उठाई। यह 'चाँद' था। आवरण-पृष्ठ का मान-चित्र आकाश को भी दीप दिखा रहा था। पर अन्दर कुमारी सरला वर्मा ने एक चित्र बनाकर पाठकों को क़ब्र की याद दिलाई थी और श्री रामकुमार वर्मा ने गर्व के साथ लिखा था—

यह टूटी-सी क़ब्र और टूटी-सी अभिलाषा मेरी।

क़ब्र और वह भी टूटी। निराशा की हद हो गई!

यह माना कि भारत पराधीन है। बेकारी, ग़रीबी और महामारी का चारों ओर दौरदौरा है। पर देश की आत्मा इन सबके भीतर से वैसी ही उठ रही है जैसे वर्षा में मिट्टी के भीतर से वनस्पतियों के नवांकुर उठते हैं। उस जीवन को हमारे कवि लोग क्यों नहीं देखते? यह एक प्रश्न है जिस पर प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी को विचार करने की आवश्यकता है।

'अख़बार-कीट'

व्यङ्ग्य-विहारी

चित्रकार, श्रीयुत केदार शर्मा

डिगत पानि डिगुलात गिरि,
लखि सब ब्रज बेहाल।
कंप किसोरी दरस तें,
खरे लजाने लाल॥

चित्र-संग्रह

पोलो के प्रसिद्ध खिलाड़ी जयपुर के महाराज।

कुमारी दिनेशनन्दिनी चोरड्या। इनको 'शबनम' नामक कृति पर इस वर्ष हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की ओर से ५००) का सेकसरिया-पारितोषिक मिला है।

श्रीयुत के० बी० सिनहा अपनी जापानी पत्नी और पुत्र के साथ। जापान में १३ वर्ष रहने के बाद आप हाल में इंजीनियरिंग में दक्ष होकर भारत लौटे हैं।
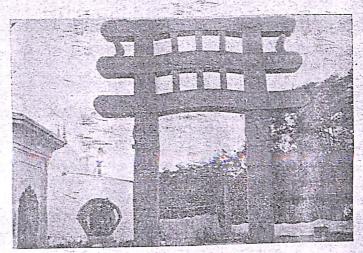
एज्यूकेशन कोर्ट का सिंहद्वार।
इसमें, फाटक के चित्रों का विवरण देखिए। बीच में अशोक स्तम्भ की प्रतिलिपि है।
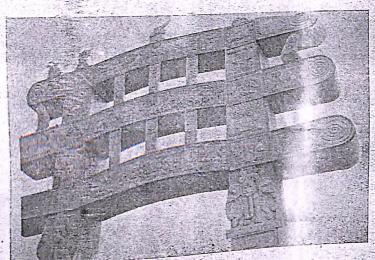
एज्यूकेशन कोर्ट के फाटक के मस्तक का विवरण।
ऊपर की आड़ी शहतीर में स्तूप की पूजा, बीच में छन्दक जातक की कथा और नीचे बोधिवृक्ष की

सामयिक साहित्य

हिन्दी, हिन्दुस्तानी और उर्दू

हिन्दी, हिन्दुस्तानी और उर्दू का झगड़ा अभी चला ही जा रहा है। हाल में इस सम्बन्ध में श्री राहुल सांकृत्यायन, प्रोफ़ेसर अमरनाथ झा और पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपने विचार प्रकट किये हैं। श्री राहुल सांकृत्यायन का कहना है कि यह दो संस्कृतियों का झगड़ा है और तब तक समझौते की सूरत नहीं निकल सकती जब तक अरबी-फ़ारसी के हिमायती भारतीय संस्कृति से सुलह करने की इच्छा न करें। प्रोफ़ेसर अमरनाथ झा उर्दू को शहरी और हिन्दी को जनता की भाषा कहते हैं और हिन्दुस्तानी के रूप में दोनों का सम्मिलन उन्हें पसन्द नहीं है। पंडित जवाहरलाल जी का कहना है कि भाषायें ज़बरदस्ती नहीं बनतीं। मुक़ाबिला नहीं, सहयोग के भाव से हिन्दी-उर्दू दोनों की उन्नति हो सकती है। नीचे हम इन तीनों विद्वानों के वक्तव्यों के कुछ महत्त्व-पूर्ण अंश उद्धृत करते हैं।

श्री राहुल सांकृत्यायन के विचार

हिन्दी-उर्दू का झगड़ा बहुत पुराना है। बीच में लोग उसे भूल-से गये थे; लेकिन इस साल से फिर उसकी आवाज़ सुनाई देने लगी है। कुछ लोग इसके लिए बहुत लालायित हैं कि किसी तरह यह दूर किया जाय। यदि हिन्दी-उर्दू का झगड़ा किसी प्रकार दूर हो जाय तो सब को प्रसन्नता होगी; किन्तु इस झगड़े के कारण को अच्छी तरह से जाने बिना इसे शान्त करने का प्रयास करना 'नीम हकीम ख़तरए-जान'-सा ही होगा। वास्तव में हिन्दी-उर्दू के झगड़े का मूल कारण है दो संस्कृतियों का पारस्परिक झगड़ा। इनमें से एक भारतीय संस्कृति है, जो हिन्दी की हिमायती है और दूसरी विदेशी संस्कृति है, जिसने अपने मूल रूप से बहुत-से अंशों में विकृत हो जाने पर

नहीं की। उसने पहले तो भारतीय संस्कृति का नाम और निशान तक मिटा देना चाहा था; किन्तु इसमें उसे सफलता न मिली। यह विदेशी संस्कृति असहयोग कर के अलग ही रहती तो उतनी कड़वाहट कभी न पैदा होती; किन्तु उसका ध्येय तो हमेशा अपनी प्रतिद्वंद्वी संस्कृति पर प्रहार करने का रहा। जब भारतीय और अरबी संस्कृति का यही भाव गत सात सौ वर्षों से आज तक चला आ रहा है तो किसी पारस्परिक समझौते की क्या आशा हो सकती है?

कुछ भाई अपनी निष्पक्षता दिखलाने के लिए यह भी कहने लगे हैं कि हमें हिन्दी को न संस्कृत शब्दों से भरना चाहिए और न अरबी शब्दों से। यह भी भारी भूल है। अरबी भारतीय भाषा नहीं है और न जिस भाषा-वंश से भारतीय भाषाओं का सम्बन्ध है उससे इसका सम्बन्ध ही है। इसके विपरीत संस्कृत हिन्दी की जननी है। हिन्दी की विभक्तियाँ और क्रियापद तक संस्कृत पर अवलम्बित हैं। इस प्रकार यदि विचार कर के देखा जाय तो संस्कृत का यह स्वाभाविक अधिकार है कि वह हिन्दी-कोष को अपने शब्द-कोष से भरे। हाँ, इसमें यह ख़याल तो ज़रूर ही रखना पड़ेगा कि शब्द उतने ही परिमाण में लिये जायँ, जितने आसानी से हज़म हो सकें। कुछ लोगों का कहना है कि हमें क्या आवश्यकता है शब्दों को संस्कृत से लेने की? हमें गाँवों की ओर चलना चाहिए। यदि आप तनिक विचार करें तो यह बात भी हास्यास्पद ही होगी। भला, गाँवों से इस वैज्ञानिक युग के लिए अपेक्षित शब्द कहाँ से मिलेंगे? किसी समय इसी धुन में मस्त एक पंजाबी सज्जन ने 'छात्रावास' का पर्याय 'पढ़ा-कुआँ-कोठा' बनाया था। वास्तविक बात तो यह है कि हमारे आज के प्रयोग के लिए अपेक्षित वैज्ञानिक शब्दों की प्राप्ति के लिए ग्राम की साधारण जनता की बोलचाल

बिजली की कलों की शक्ति को बाबा आदम से चले आये हलों में ढूँढ़ना।

प्रोफ़ेसर अमरनाथ झा का वक्तव्य

मैंने हिन्दी और उर्दू, दोनों भाषाओं को पढ़ा है, मुझे दोनों के साहित्य से प्रेम है और यद्यपि मैं जानता हूँ कि दोनों ही भाषाओं का जन्म इसी देश में हुआ है; किन्तु फिर भी दोनों का विकास दो भिन्न-भिन्न दिशाओं में हुआ है। दोनों की अपनी-अपनी परम्परायें और अपने-अपने आदर्श हैं, जिनको त्याग देने से उनकी अवनति ही होगी। दोनों भाषाओं के पास अपना-अपना सम्पन्न साहित्य है, विशेषतः अपने कविता-साहित्य में तो उनके पास ऐसी निधियाँ हैं जो किसी भी भाषा के लिए गौरव की वस्तु हो सकती हैं। दोनों भाषाओं के विकास के साथ उनकी भिन्न-भिन्न विशेषतायें पैदा हो गई हैं, जो हमारी राष्ट्रीय संस्कृति का स्थायी अंग बन गई है। एक भाषा के सृजन के उद्देश से हिन्दुस्तानी के अभिभावकों को बहुत-सी बाधाओं का सामना करना पड़ेगा, जिनमें से कुछ दुर्जेय भी होंगी। लिपि कि समस्या ही सबसे बड़ी समस्या नहीं है—यद्यपि बड़ी समस्याओं में से यह भी एक है। समस्या वास्तव में यह है कि दोनों भाषाओं की पृथक्-पृथक् साहित्यिक विशेषतायें हैं और दोनों की संस्कृतियाँ भी भिन्न-भिन्न हैं, साथ ही दोनों के अपने-अपने प्रेमी और अभिभावक हैं।

उर्दू लगभग एक शताब्दी से उत्तरी भारत में शहरों की भाषा रही है, जहाँ मुस्लिम संस्कृति के केन्द्र होने के कारण मुस्लिम संस्कृति का अधिक प्रभाव रहा है। उस संस्कृति के प्रभुत्व के कारण उर्दू शाही दरबारों की भाषा बन गई और जिन लोगों का दरबार अथवा शासन से सम्पर्क रहा उन्होंने इस भाषा को अपना लिया।

हिन्दी का कई शताब्दियों का अपना अनवरुद्ध इतिहास है। हिन्दी कविता-साहित्य को—तुलसीदास और सूरदास की अमर निधियों को भी—गाँवों की जनता पढ़ती और समझती है। उत्तरी भारत में शायद ही कोई ऐसा गाँव हो जहाँ शाम को पेड़ के नीचे अथवा अलाव के पास आप ग्रामीणों की टोली में हिन्दी

भी विशेषता है, उसका उद्गम शुद्ध संस्कृत से है, जिसके कारण हिन्दी का सम्बन्ध बँगला, मराठी, गुजराती, तामिल, मलयालम, तैलगू, कर्नाटकी तथा भारतवर्ष की अन्य मुख्य भाषाओं से भी है। दक्षिण-भारत की भाषायें यद्यपि जन्म से द्रविड़ हैं, किन्तु संस्कृत का उन पर इतना अधिक प्रभाव है और उनके शब्द-कोष में संस्कृत के इतने सहस्र शब्द हैं कि मातृभाषा से भिन्नता होने पर भी दक्षिण-भारत के निवासियों को हिन्दी के समझने में अधिक कठिनाई नहीं मालूम होती। मदरास-प्रान्त और मैसूर में हिन्दी-प्रचार के कार्य की आशातीत सफलता का कारण केवल यही नहीं कि हिन्दी सीखने में सुगम है बल्कि यह भी है कि भारतवर्ष के अधिकांश भागों में समझी जा सकनेवाली भाषा, हिन्दी को सीखना उपादेयता की दृष्टि से भी अच्छा है। दोष रहित निस्सन्देह हिन्दी भी नहीं है। देहात की भाषा होने के कारण हिन्दी शहर की भाषा की भाँति मार्जित, सुकुमार और नागरिक नहीं है। किन्तु अपने इस दोष के कारण ही तो वह सजीव बनी रह सकी है, इसी कारण वह जरा-जीर्ण, निष्प्राण और नीरस होने से बच सकी है।

जब हम लोगों में इस क़दर पारस्परिक अविश्वास और सन्देह है तो फिर इस वक्त 'हिन्दी' और 'उर्दू' की जगह 'हिन्दुस्तानी' का नाम लेना उचित नहीं। जहाँ मैं दोनों भाषाओं के पृथक्-पृथक् अस्तित्व की बात कहता हूँ, वहाँ मैं यह भी कह देना चाहता हूँ कि युक्तप्रांत में रहनेवालों का कर्तव्य है कि उन्हें हिन्दी और उर्दू, दोनों को ही सीखना और जानना चाहिए। एक समय था जब नार्मल और हाई स्कूल में दोनों भाषाओं की जानकारी अनिवार्य थी। शायद काग़ज़ पर तो यह नियम अब भी मौजूद है, लेकिन आवश्यकता इस बात की है कि यह कार्यान्वित भी किया जाय। यदि शिक्षकवर्ग को कुछ उत्साह हो और शिक्षा-विभाग की तरफ़ से कुछ सख़्ती की जाय तो उसका फल आश्चर्य-जनक होगा। यदि दोनों भाषाओं का अध्ययन होने लगेगा तो उससे लाभ ही होगा। दोनों के साहित्य के ज्ञान से सहृदयता बढ़ेगी और वास्तविक साहित्य-प्रेम का प्रादुर्भाव होगा। मैं इसके पक्ष में नहीं कि आज तक के ऐतिहासिक विकास को भुलाकर

उर्दू दोनों को ही जीने का अधिकार प्राप्त है—यह अधिकार उन्हें अपने इतिहास से प्राप्त हुआ है।

श्री जवाहरलाल नेहरू के विचार

कुछ दिन से फिर हिन्दी और उर्दू की बहस उठी है, और लोगों के दिलों में यह शक पैदा होता है कि हिन्दी-वाले उर्दू को दबा रहे हैं और उर्दूवाले हिन्दी को। बग़ैर इस प्रश्न पर ग़ौर किये जोशीले लेख लिखे जाते हैं और यह समझा जाता है कि जितना हम दूसरे पर हमला करें उतना ही हम अपनी प्रिय भाषा को लाभ पहुँचाते हैं। लेकिन अगर ज़रा [illegible] विचार किया जाय तो यह बिलकुल फ़िज़ूल मालूम होता है। साहित्य ऐसे नहीं बढ़ा करते।

मेरा पूरा विश्वास है कि हिन्दी और उर्दू के मुक़ाबिले से दोनों को हानि पहुँचती है। वह एक-दूसरे के सहयोग से ही बढ़ सकती हैं [illegible]और एक के बढ़ने से दूसरे को भी फ़ायदा पहुँचेगा। [illegible] उनका सम्बन्ध मुक़ाबिले का नहीं होना चाहिए, [illegible] वे कभी अलग-अलग रास्ते पर क्यों न चलें। दूसरे [illegible] तरक्क़ी से ख़ुशी होनी चाहिए, क्योंकि उसका नतीजा [illegible]नी तरक्क़ी होगी। योरप में जब नये साहित्य (अँगरे[illegible] फ्रेंच, जर्मन, इटालियन) बढ़े तब सब साथ बढ़े, ए[illegible] दूसरे को दबाकर और मुक़ाबिला करके नहीं।

हिन्दी और उर्दू [illegible] सम्बन्ध बहुत क़रीब का है, और फिर भी कुछ दूर होता [illegible] रहा है। इससे दोनों की हानि होती है। एक शरीर प[illegible] सिर हैं और वे आपस में लड़ा करते हैं। हमें दो बातें समझनी हैं और हालाँकि वह दो बातें ऊपरी तौर से कुछ विरोधी मालूम होती हैं, फिर भी उनमें कोई असली [illegible]विरोध नहीं है। एक तो यह कि हम ऐसी भाषा हिन्दी और उर्दू में लिखें और बोलें जो कि बीच की हो, और जिसमें संस्कृत या अरबी और फ़ारसी के कठिन शब्द कम हों। इसी को आम तौर से हिन्दुस्तानी कहते हैं। कहा जाता है, और यह बात सही है कि ऐसी बीच की भाषा लिखने से दोनों तरफ़ की ख़राबियाँ आ जाती हैं, एक दोग़ली भाषा पैदा होती है जो किसी को भी पसन्द नहीं होती और जिसमें न सौन्दर्य होता है, न शक्ति। यह बात सही होते हुए भी बहुत बुनियाद नहीं [illegible]

हम एक बहुत ख़ूबसूरत और बलवान् भाषा पैदा करेंगे, जिसमें जवानी की ताक़त हो और जो दुनिया की भाषाओं में एक माक़ूल भाषा हो।

यह बात होते हुए भी हमें याद रखना है कि भाषायें ज़बरदस्ती नहीं बनतीं या बढ़तीं। साहित्य फूल की तरह खिलता है और उस पर दबाव डालने से मुर्झा जाता है। इसलिए अगर हिन्दी-उर्दू अभी कुछ दिन तक अलग-अलग झुकें, तो हमको उस पर एतराज़ नहीं करना चाहिए। यह कोई शिकायत की बात नहीं। हमें दोनों को समझने की कोशिश करनी चाहिए, क्योंकि जितने अधिक शब्द हमारी भाषा में हों उतना ही अच्छा।

हिन्दी और हिन्दुस्तानी शब्दों पर बहुत बहस हुई है और ग़लत फ़हमियाँ फैली हैं। यह एक फ़िज़ूल की बहस है। दोनों ही शब्द हम अपनी राष्ट्र-भाषा के लिए कह सकते हैं, दोनों सुन्दर हैं और हमारे देश और जाति से सम्बन्ध रखते हैं। लेकिन अच्छा हो, अगर इस बहस को बन्द करने के लिए हम बोलने की भाषा को हिन्दुस्तानी कहें और लिपि को हिन्दी या उर्दू कहें। इससे साफ़-साफ़ मालूम हो जायगा कि हम क्या कह रहे हैं।

मुसोलिनी स्वस्थ क्यों है ?

मुसोलिनी का शारीरिक स्वास्थ्य बहुत अच्छा है। इसका रहस्य क्या है ? इस सम्बन्ध में कुछ प्रश्नोत्तर 'प्रताप' में प्रकाशित हुए हैं, जो यहाँ उद्धृत किये जाते हैं।

हाल में मुसोलिनी से कुछ प्रश्न किये गये थे जिनका उत्तर देते हुए उन्होंने बतलाया है कि उनका स्वास्थ्य इतना अच्छा क्यों है। १९२५ से अब तक वे एक दिन भी बीमार नहीं पड़े। उनसे प्रश्न किया गया—"क्या आप कोई नियमित भोजन किसी ख़ास मात्रा में ही करते हैं ? यदि हाँ तो वह चीज़ क्या है ?"

इसका उत्तर देते हुए उन्होंने कहा कि मैं शराब को स्वास्थ्य के लिए हानिकर समझता हूँ। मैं शराब कभी नहीं पीता। मैं सिर्फ़ बड़े भोजों के अवसर पर ही थोड़ी-सी शराब पीता हूँ, किन्तु विगत महायुद्ध के बाद से तो मैंने सिगरेट कभी नहीं पी।

उत्तर—मैं सिर्फ़ सीधा-सादा खाना खाता हूँ, वैसा खाना जैसा किसान खाते हैं। मैं फल बहुत खाता हूँ।

प्रश्न—क्या आप चाय क़हवा अथवा ऐसी ही और कोई चीज़ सेवन करते हैं ?

उत्तर—मैं चाय अथवा-क़हवा नहीं सेवन करता।

प्रश्न—आप नित्य कितनी देर तक और कौन-सा व्यायाम करते हैं ?

उत्तर—मैं ३०-४० मिनट तक नित्य व्यायाम करता हूँ तथा सब प्रकार के खेलों का अभ्यास करता हूँ। गरमी के दिनों में मैं तैरना अधिक पसन्द करता हूँ और जाड़े के दिनों में मैं स्काइंग (काठ के यंत्र पैरों में पहनकर बरफ़ पर फिसलना) का मुझे बहुत शौक़ है। मैं प्रतिदिन घोड़े की सवारी करता हूँ। मैं मशीनवाले सभी खेलों में दक्ष हूँ, जैसे साइकिल, मोटर साइकिल, मोटर और हवाई जहाज़ चलाना।

प्रश्न—सोने के सम्बन्ध में आपकी आदतें कैसी हैं ?

उत्तर—मैं नियम-पूर्वक रात को ७-८ घंटे सोता हूँ। रात को लगभग १० बजे सो जाना और सवेरे ७ बजे तक उठ पड़ना मेरा नियम है। मैं दिन को कभी नहीं सोता। अधिक खाना खाने से ही दिन में नींद आती है।

श्री सुभाषचन्द्र बोस की पाँच बातें

यह प्रसन्नता की बात है कि सरकार ने श्री सुभाषचन्द्र बोस को बिना किसी शर्त के छोड़ दिया है। छूटने के बाद ही कलकत्ता में उनका सार्वजनिक रूप से अच्छा स्वागत हुआ। उस अवसर पर भाषण करते समय उन्होंने भारतीयों को पाँच बातों पर बराबर ध्यान रखने की सलाह दी। वे पाँच बातें इस प्रकार हैं—

पहली बात जिसे हमें कभी न भूलना चाहिए यह है कि संसार आज किधर जा रहा है। हिन्दुस्तान की तक़दीर दुनिया की तक़दीर के साथ है। अतएव संसार की मौजूदा परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए ही हमें हिन्दुस्तान के आन्दोलन के रुख़ को ठीक रखना है। कोई भी चाल चलने के पहले हमें अच्छी तरह सोच लेना चाहिए कि हमें आगे कौन चाल चलनी है।

साम्राज्यवाद है। साम्राज्यवाद—किसी रूप में भी क्यों न हो, संसार के लिए किसी हालत में भी हितकर नहीं हो सकता। साम्राज्यवाद चाहे लोकतन्त्र-शासन के रूप में हो (जैसा कि पश्चिमी योरप में है) और चाहे वह फ़ासिस्ट तानाशाही के रूप में (जैसा कि मध्य-योरप के देशों में है) हम एक स्वातन्त्र्य-प्रेमी की हैसियत से उसकी क़द्र नहीं कर सकते।

तीसरी बात जिसे हमें कभी न भूलना चाहिए वह यह है कि हिन्दुस्तान की राष्ट्रीयता एक चीज़ है। यदि हम उन्नति करना चाहते हैं तो हमें याद रखना है कि हिन्दुस्तान के विभिन्न प्रान्तों और सम्प्रदायों को एक झंडे के नीचे अपनी ताक़त संगठित करनी है। इसी से हमारा कल्याण हो सकता है। प्रान्तीय अथवा साम्प्रदायिक भेद-भाव को महत्त्व देना हमारे लिए बहुत ही घातक है। देशहितैषी का कर्तव्य है कि वह देश की सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को विस्तृत दृष्टिकोण से विचार करे।

चौथी बात हमारे लिए यह ज़रूरी है कि हम देश के किसानों और मज़दूरों का संयुक्त मोर्चा बनाकर उन्हें साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष में एकत्र करें। देश की सभी साम्राज्यवाद-विरोधी शक्तियों को कांग्रेस के नेतृत्व में आज़ादी की लड़ाई लड़नी चाहिए।

अन्तिम महत्त्वपूर्ण बात जिसे हमें कभी न भूलना चाहिए अहिंसा का सिद्धान्त है।

हिन्दू-हित और नये मंत्रिमंडल

कांग्रेस के मन्त्रि-पद न स्वीकार करने पर प्रान्तीय सरकारों ने अपने जो मंत्री नियुक्त किये हैं उनमें मुसलमानों की संख्या हिन्दुओं की अपेक्षा बहुत अधिक है। इस पर कुछ समाचार-पत्रों ने जिनका कांग्रेस से मत-भेद है, यह आन्दोलन आरम्भ किया है कि कांग्रेस के पद न ग्रहण करने का एक परिणाम यह हुआ है कि जिन प्रान्तों में हिन्दुओं का बहुमत है वहाँ भी मुसलमान प्रधान मंत्री हो गये हैं। इस प्रकार हिन्दुओं की हानि हुई है और आगे भी उनके हितों पर कुठाराघात होता रहेगा। इस भ्रम-

लेख का उत्तर देते हुए बड़े सुन्दर ढङ्ग से खंडन किया है। वह लिखता है—

मुसलमान मन्त्रियों के कारण हिन्दुओं पर कौन-सी विपत्ति टूट पड़ेगी और मुसलमान जनता को कौन-सा बिहिश्त मिल जायगा, यह 'लीडर' ही समझता होगा। जिन्हें देखने को आँखें और समझने के लिए बुद्धि है वे जानते हैं कि नवाब, राजा और 'सर' की श्रेणी के लोग, चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान, आर्थिक तथा राजनैतिक दृष्ट्या एक ही हैं। इसी प्रकार किसान और मज़दूर, चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान, एक ही हैं। हम 'लीडर' से पूछते हैं कि देश के सामने मुख्य प्रश्न क्या है? जनवर्ग की दरिद्रता, किसानों की तबाही, मज़दूरों की दुर्दशा, मध्यवर्ग का आर्थिक पतन या यह कि किस सम्प्रदाय के कितने लोग मन्त्रिमण्डल में वर्तमान हैं। सहयोगी को इतना समझने की बुद्धि तो होगी ही कि राजा और नवाब, चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान, अपने किसानों की तबाही के लिए समान रूप से ज़िम्मेदार हैं। मुसलमान नवाब क्या हिन्दू किसानों से अधिक लगान वसूल करेगा और मुसलमान असामियों का सारा बक़ाया और क़र्ज़ माफ़ कर देगा? यदि नहीं तो उनके मन्त्री बनने से मुसलमान जनता को कौन-सा राज्य मिल गया और कौन-सी विपत्ति हिन्दू जनता के सिर पर मँडरायेगी? व्यर्थ में हिन्दू-मुसलिम प्रश्न को इस स्थान पर घुसेड़कर मुख्य प्रश्नों को पीछे ठेल देना कहाँ की देश-सेवा है? जनता ऐसी मूर्ख नहीं है जो किसी के बहकावे में आ जाय। वह देख रही है कि हिन्दू-हित के रक्षक आज मन्त्री बनने के लिए उन्हीं मुसलिम मन्त्रिमण्डलों में सम्मिलित हो रहे हैं जिन पर 'लीडर' रो रहा है। तिरवा के राजा साहब किसी समय इस प्रान्त की हिन्दू-सभा के प्रधान थे। पर आज वे छतारी के नवाब की दरबारदारी कर रहे हैं। मन्त्रित्व मिलते देखकर उनका हिन्दू-प्रेम काफ़ूर हो गया। सीमाप्रान्त की हिन्दू-सभा के प्रधान को मुसलिम प्रधान मन्त्री का हाथ बँटाने में कुछ भी संकोच नहीं हो रहा है। पंजाब के प्रायः सारे हिन्दू-हित-रक्षक मुसलमान प्रधान मन्त्री के सहयोगी बन गये हैं। 'लीडर' के हृदय में यदि वस्तुतः मुसलिम मंत्रिमण्डलों की स्थापना का दुःख है तो वह इन हिन्दू-हित-रक्षकों के नाम पर रोये जो आज उन मन्त्रिमण्डलों की स्थापना के कारण तथा उनके अस्तित्व के समर्थक हो रहे हैं।

चीन में अफ़ीमचियों को फाँसी

अफ़ीम ने चीनियों का बहुत अहित किया है। इस नशे ने एक प्रकार से उनका जीवन ही बरबाद कर दिया है। अफ़ीम से छुटकारा पाने के लिए वहाँ की सरकार ने अब कड़े नियम बनाये हैं। यहाँ तक कि जो अफ़ीम न छोड़े उसे फाँसी तक की सज़ा देने का क़ानून बन गया है। इस सम्बन्ध में 'भारत' में हाल में एक ज्ञातव्य लेख प्रकाशित हुआ है। उसे हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

ईस्ट इंडिया कम्पनी ने चीनवालों में अफ़ीम का जो ज़बरन प्रचार किया था उसका मूल्य चीन को अपनी स्वाधीनता से देना पड़ा है। इतना ही नहीं, अब तक उसका अपने सैकड़ों निवासियों के प्राण देकर भी अभिशाप से छुटकारा नहीं मिल सका है।

चीन की सरकार ने सन् १९३५ में चियांग-काई-शेक की देख-रेख में अफ़ीम के विरुद्ध जिहाद खड़ा करने का निश्चय किया। सरकार ने इस विषय में कड़े नियम बनाये। पहली बार अपराध करनेवालों को गरम लोहे से दागने की सज़ा दी जाने लगी और बार-बार अपराध करनेवालों को फाँसी की सज़ा का नियम बना दिया गया। इस नियम के अनुसार १९३५ में ९६५ व्यक्तियों को फाँसी दी गई। गत वर्ष इससे भी अधिक व्यक्तियों की जानें अफ़ीम के कारण गईं। फिर भी इस सत्यानाशी नशे में कमी न हुई। इस वर्ष यह नियम बनाया गया है कि प्रत्येक अफ़ीम खानेवाले को प्राणदंड दिया जायगा। इससे अवश्य उल्लेखनीय कमी हुई है। चीन की सरकार दण्ड देने के सिवा अफ़ीमचियों की आदत में सुधार करने का भी प्रयत्न करती है। इसके लिए देश भर में सेनेटोरियम जैसी संस्थायें खोल दी गई हैं, जिनमें लोगों का इलाज मुफ़्त किया जाता है। प्रदर्शन के लिए अफ़ीम की होली भी सार्वजनिक स्थानों में जलाई जाती है।

सन् १७७३ के पहले चीन में कोई अफ़ीम का नाम भी न जानता था। १७७६ में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने केन्टन के बन्दरगाह में अफ़ीम की १००० पेटियाँ उतारीं।

१७८० में ५००० और १८२० से १८३० के बीच १६,००० पेटियाँ वार्षिक के हिसाब से अफ़ीम इस अभागे देश में खप गई। सन् १८३६ में सम्राट् टाऊ काना के मंत्री ने उनसे इस बात की शिकायत की कि अँगरेज़ व्यापारियों का उद्देश चीनियों को अफ़ीम खिला खिला कर कमज़ोर बनाना है। कुछ समय बाद सम्राट् के पुत्र की अधिक अफ़ीम खाने के कारण मृत्यु भी हो गई। तब सम्राट् ने आज्ञा निकाली कि चीन के किसी भी बन्दरगाह पर 'जंगली लोग' उतरने न पावें। एक दूसरी आज्ञा में कहा गया—'कितने ही जहाज़ों में छिपा कर अफ़ीम की १०-१० हज़ार पेटियाँ लाई जा चुकी हैं। इस तरह की जितनी भी अफ़ीम मिले, सरकारी ख़ज़ाने में जमा कर दी जाय ताकि वह नष्ट की जा सके और देश इस व्याधि से मुक्त किया जा सके। विदेशियों से इस बात का वचन लिया जाय कि वे कभी इस देश में अफ़ीम न लावेंगे।'

इस तरह ईस्ट इंडिया कम्पनी को अफ़ीम की २०,२८३ पेटियों से हाथ धोना पड़ा। २ लाख पाउन्ड की यह अफ़ीम सम्राट् की आज्ञा से जला दी गई। परन्तु चीन की आपत्तियों का फिर भी अन्त न हुआ। १८३९ में इँगलेंड के दो जंगी जहाज़ों का मुक़ाबिला चीन के समस्त जंगी बेड़े से हुआ, जिसमें १६ छोटे जहाज़ थे। एक घंटे के अन्दर चीनी जहाज़ों में से कुछ डुबा दिये गये, कुछ भाग गये और केन्टन का बन्दरगाह चारों तरफ़ से घेर लिया गया। इसके सिवा अन्य बन्दरगाहों पर भी ब्रिटिश जहाज़ों ने गोलाबारी की, यहाँ तक कि १८४२ तक चीन की सभी तरफ़ हार ही हार होती दिखाई पड़ने लगी। आख़िर सम्राट् को सन्धि करनी पड़ी।

इस सन्धि के अनुसार अँगरेज़ों को व्यापार के लिए हाँगकाँग दिया गया। केन्टन, एमोय, फ़ूचू, निंगपो और शांघाई में अँगरेज़ों को रहने का अधिकार दिया गया और उनके जान-माल की ज़िम्मेदारी ली गई। सम्राट् ने कम्पनी से छीनी हुई अफ़ीम का दाम तथा युद्ध के ख़र्च की पूर्ति भी करने का वचन दिया। इस तरह चीन अफ़ीम के कारण विदेशियों के चंगुल में फँसा।

चीन की वर्तमान सरकार का अनुमान है कि वह सन् १९४० तक देश से अफ़ीम की आदत छुड़ाने में सफल हो जायगी।

गुरुकुल के नव-स्नातकों को ख़ान अब्दुल गफ़्फ़ार ख़ाँ का आशीर्वाद

इस वर्ष गुरुकुल-काङ्गड़ी के वार्षिक महोत्सव के अवसर पर ख़ान अब्दुल गफ़्फ़ार ख़ाँ भी उपस्थित थे। आपने नव-स्नातकों को आशीर्वाद देते हुए कहा—

यहाँ आते हुए मैंने महात्मा जी को भी आप लोगों की तरफ़ से निमंत्रण दिया था, मगर वे न आ सके। उन्होंने निम्न सन्देश आप लोगों के लिए भेजा है—

"गुरुकुल और ऐसे ही दूसरे मदरसे हिन्दू-मुस्लिम एकता के गढ़ होने चाहिए।"

मेरा भी आप लोगों को यही सन्देश है। स्टेशनों पर 'हिन्दू चाय' 'हिन्दू पानी' तथा 'मुस्लिम चाय' 'मुस्लिम पानी' की आवाज़ को सुनकर मुझे बड़ा दुःख होता है। इसी लिए तो दूसरे मुल्कों के लोग हम पर हँसते हैं। हिन्दू-मुस्लिम एकता केवल बातें बनाने से न होगी। हमारे देश के युवकों को कुछ करके दिखाना चाहिए।

मैं अपने तजुर्बे की बिना पर कह सकता हूँ कि ख़ुदाई ख़िदमतगारों ने सीमान्त के हिन्दू-मुसलमानों में भाई-भाई की भावना को पैदा करने में बहुत कुछ किया है। इसमें आनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को बिना किसी धर्म और जाति का भेद किये मानव-जाति की सेवा की शपथ लेनी होती है। नव-स्नातको! मैं तुमसे आशा करता हूँ कि तुम लोग ख़ुदाई ख़िदमतगार बनोगे और हिन्दू-मुसलमानों में एकता स्थापित करोगे।

सम्पादकीय नोट

सम्राट् जार्ज का राज्याभिषेक

१२ मई को लन्दन में सम्राट् जार्ज का राज्याभिषेकोत्सव बड़े धूमधाम के साथ हो गया। इस अवसर पर लन्दन में साम्राज्यान्तर्गत देशों के प्रतिनिधियों के सिवा संसार के भिन्न भिन्न देशों के राज-प्रतिनिधि भी एकत्र हुए थे। इस महोत्सव के सिलसिले में ब्रिटिश साम्राज्य के वैभव और सामर्थ्य का जो विराट् प्रदर्शन हुआ था वह वास्तव में असाधारण था।

सम्राट् छठे जार्ज का पूरा नाम एलवर्ट फ़्रेडरिक आर्थर जार्ज है। आप स्वर्गीय सम्राट् जार्ज (पंचम) और राजमाता मेरी के द्वितीय पुत्र हैं। आपका जन्म १४ दिसम्बर सन् १८९५ को हुआ था। आप इस समय ४१ वर्ष के हैं। बचपन में आपका नाम प्रिंस एलबर्ट था। १३ वर्ष की आयु तक आप राजमहल में शिक्षा पाते रहे। इसके बाद आप आसबोर्न के जहाज़ी शिक्षा के कालेज में भर्ती हुए। आप वहाँ दो वर्ष तक रहे। फिर दो वर्ष तक डार्टमाउथ में रहे। इन कालेजों में आपको साधारण शिक्षा के अतिरिक्त भौतिक विज्ञान, विद्युत् विज्ञान, इंजीनियरी, जहाज़ संचालन तथा जल-सेना के इतिहास का अध्ययन करना पड़ता था। १७ वर्ष की आयु होने पर सन् १९१२ में आप कम्बरलैण्ड जहाज़ पर व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजे गये। तब आप कालिंगवुड जहाज़ पर मिडशिपमैन बना कर भेजे गये। वहाँ अपने अन्य साथियों के समान ही आपको भी अत्यन्त परिश्रमपूर्ण और सादगी का जीवन बिताना पड़ता था।

इसी समय योरप में महायुद्ध छिड़ा और आप भी जहाज़ी सैनिक की हैसियत से उसमें भेजे गये। महायुद्ध में भाग लेते समय आप बीमार हुए और आपको छुट्टी लेकर स्वदेश लौटना पड़ा। जटलेंड की महत्त्वपूर्ण समुद्री लड़ाई के पहले आप पूर्ण स्वस्थ होकर फिर अपने काम पर पहुँच गये और आपने उस युद्ध में ऐसे धैर्य और वीरता से भाग लिया कि आपका उल्लेख युद्ध-सम्बन्धी सरकारी ख़रीतों में भी हुआ। इस लड़ाई के बाद आप फिर बीमार होकर वापस आ गये। किन्तु अच्छे हो जाने पर हवाई सेना में भर्ती हो गये और सन् १९१८ के प्रारम्भ में क्रैनवेल के हवाई स्टेशन में नियुक्त हुए। कुछ ही मास में आपने हवाई जहाज़ का संचालन सीख लिया और उसी वर्ष अक्टूबर में आप हवाई बेड़े के साथ युद्ध-क्षेत्र में भेज दिये गये। सन् १९१९ में आप हवाई विभाग में स्काडरन-लीडर नियुक्त हुए और उसके दूसरे वर्ष विंग-कमान्डर बना दिये गये। बाद को आपने जल-सेना और हवाई सेना दोनों से त्यागपत्र दे दिया और शान्तिमय नागरिक जीवन व्यतीत करने लगे।

इसके बाद आपके पिता ने आपको कैम्ब्रिज-विश्वविद्यालय के ट्रिनिटी कालेज में अध्ययन के लिए भेजा। कालेज में आपने कोई डिग्री पाने के लिए बाक़ायदा अध्ययन नहीं किया, किन्तु आप स्वतन्त्र रूप से इतिहास, अर्थ-शास्त्र और भौतिक विज्ञान का विशेष अध्ययन करते रहे।

२३ जून सन् १९२० में सम्राट् के जन्म-दिवस के अवसर पर आपको ड्यूक आफ़ यार्क का पद प्राप्त हुआ और उसी वर्ष आपने लार्ड-सभा में स्थान ग्रहण किया। आपको औद्योगिक प्रश्नों से विशेष दिलचस्पी है और आपने छोटे तथा बड़े, उच्च और निम्न वर्गों को एक-दूसरे के अधिक निकट लाने का प्रशंसनीय प्रयत्न किया है।

आप भी समय समय पर अन्य देशों के महान् अवसरों पर ब्रिटेन के राज-परिवार की ओर से सम्मिलित होते रहे हैं। सन् १९२२ में आप यूगोस्लेविया के बादशाह और रूमानिया के बादशाह की द्वितीय पुत्री के विवाह में सम्मिलित हुए थे। उसी वर्ष रूमानिया के नये बादशाह के राज्याभिषेक के अवसर पर आप अपने पिता के बदले उपस्थित हुए थे। इन दोनों ही अवसरों पर उपस्थित व्यक्तियों पर आप के व्यक्तित्व और व्यवहार का बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा था।

सम्राट् छठे जार्ज

सम्राज्ञी एलिज़ाबेथ

सम्राज्ञी एलिज़ाबेथ स्काटलेंड के एक अत्यन्त उच्च प्रतिष्ठित परिवार की कन्या हैं। विवाह के पूर्व आपका नाम लेडी एलिज़ाबेथ एंजेला माग्यूरिट बोजलिअन था।

आपका जन्म ४ अगस्त सन् १९०० को हार्टफ़ोर्डशायर में हुआ था। इस प्रकार आप ३६॥ वर्ष की हैं। बचपन में आप बड़ी सुन्दर और सुकुमार थीं। आपकी माता काउन्टेस स्ट्रैथमोर ने आपको प्रारम्भिक शिक्षा दी थी। आपका बचपन अधिकांश में स्काटलेंड के ग्लेमिस स्थान में बीता। योरपीय महायुद्ध का प्रारम्भ होने पर आपके चार बड़े भाई उसमें भाग लेने के लिए चले गये और आपने एक नये जीवन में प्रवेश किया।

आपके माता-पिता ने अपने ग्लेमिसवाले महल में युद्ध के घायलों के लिए अस्पताल खोल दिया और आप भी घायल सैनिकों की सेवा में अपनी माता का हाथ बँटाने लगीं। आपका अधिकांश समय घायल सैनिकों की सेवा और उन्हें प्रसन्न तथा उत्साहित करने में बीतता था। सन् १९२० में आपके माता-पिता लन्दन के बटन-स्ट्रीट में आकर रहने लगे।

सन् १९२१ में आपकी माता बीमार हुईं और ग्लेमिस-महल में उनके चीरा लगाया गया। उसी बीच राजपरिवार के कुछ लोग आपके यहाँ आकर ठहरे, जिनमें ड्यूक आफ़ यार्क और उनकी बहन मेरी भी थीं। माता के बीमार होने के कारण शाही मेहमानों के सत्कार का भार आप ही पर पड़ा और अपने भावी पति के साथ बातचीत और बैठने-उठने का आपको बहुत काफ़ी अवसर मिला। धीरे-धीरे दोनों की घनिष्ठता बढ़ी और दोनों एक-दूसरे पर अनुरक्त हो गये। सन् १९२२ के अन्त में ड्यूक आफ़ यार्क के साथ आपका विवाह होने की अफ़वाह फैलने लगी और जनवरी १९२३ में इसकी और भी पुष्टि हुई जब ड्यूक आफ़ यार्क आपके पिता के वेल्डनबरीवाले निवासस्थान में आपके साथ जाकर ठहरे। इन दोनों का प्रेम होना सम्राट् और सम्राज्ञी को भी प्रिय था और

[सम्राट् और सम्राज्ञी अपनी दोनों पुत्रियों के साथ]

थोड़े ही दिनों के बाद इन दोनों की सगाई की घोषणा हो गई। कुछ सप्ताहों के बाद ड्यूक आफ़ यार्क आपको साथ लेकर सैंड्रिंघम महल में अपने माता-पिता के पास आये। अन्त में उसी वर्ष २६ अप्रैल को वेस्ट-मिन्स्टर एबी में बड़ी शान शौकत के साथ आप दोनों का विवाह हुआ।

विवाह के बाद सन् १९२४ में ड्यूक आफ़ यार्क अपनी पत्नी को साथ लेकर अफ़्रीका की लम्बी यात्रा करने गये। इस यात्रा में आप केनिया, युगेन्डा, नील नदी के तट के प्रदेश और खारतूम आदि में घूमते हुए पोर्टसूडान से वापस आये। हर जगह आप लोगों का खूब स्वागत हुआ। आप लोग २० अप्रैल १९२५ को लन्दन वापस आगये।

सन् १९२६ के अप्रैल मास में डचैस आफ़ यार्क ने अपने पिता के ब्रटन स्ट्रीट के लन्दनवाले मकान में प्रिंसेस एलीज़बेथ को जन्म दिया। इसके बाद से आप लोग लन्दन के पिकेडेली मोहल्ले में अपने अलग मकान में रहने लगे।

इसी बीच आप लोगों ने आस्ट्रेलिया की यात्रा की। वहाँ नये गवर्नमेंट-हाउस का उद्घाटन करना था। आस्ट्रेलिया के लिए आप दोनों 'रिनाउन' जहाज़-द्वारा सन् १९२७ में रवाना हुए। पहले आप लोगों ने न्यूज़ीलेंड की यात्रा की। वहाँ से रवाना होकर आप सिडनी-बन्दरगाह पहुँचे। सिडनी से आप लोग क्वीन्सलेंड और फिर टस्मानिया गये।

आस्ट्रेलिया की यात्रा के बाद आप लोग जब स्वदेश वापस आये तब सम्राट् और सम्राज्ञी स्वयं आप लोगों के स्वागत के लिए विक्टोरिया स्टेशन पर पहुँचे। इसके अतिरिक्त ब्रिटेन की जनता भी भारी तादाद में आप लोगों के स्वागत के लिए उपस्थित थी। रेलवे-स्टेशन से आप लोग सीधे बकिंघम पैलेस गये, जहाँ प्रिंसेस एलीज़बेथ अपनी माता से मिलने के लिए उनकी उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रही थीं। इस यात्रा के सकुशल समाप्त होने पर लन्दनवासियों की ओर से गिल्डहाल में आप लोगों को सार्वजनिक रूप से बधाई दी गई।

इस प्रकार आपने अपने साम्राज्य का भी काफ़ी परिचय प्राप्त किया है। इससे आप अपने वर्तमान परमोच्च पद का भार वहन करने में पूर्णरूप से सफल-मनोरथ होंगे। इस शुभ अवसर पर हमारी यह मंगल कामना है कि सम्राट् दीर्घजीवी हों और आपके शासनकाल में ब्रिटिश साम्राज्य और भी अधिक गौरव प्राप्त करे।

आयलैंड मिस्टर डी वेलरा के शासन में ... से अँगरेज़ी साम्राज्य से अलग-सा होता जा रहा है। सन् १९२१ में आयलैंड के विद्रोही सिनफ़िन-दल के लोगों से अँगरेज़ी सरकार की जो सन्धि हुई थी उसके अनुसार उत्तरी आयलैंड को छोड़कर शेष आयलैंड का 'फ़्री स्टेट' नाम का एक नया राज्य बनाया गया था और उसे आत्म-शासन-प्राप्त राज्य का दर्जा दिया गया था। परन्तु डी वेलरा ने अपने शासन-काल में फ़्री स्टेट के शासन-विधान में ऐसे परिवर्तन कर दिये हैं कि उसका अब दूसरा ही रूप हो गया है, जिससे 'फ़्री स्टेट' 'डोमिनियन' न रहकर बहुत कुछ 'प्रजातन्त्र-राज्य' बन गया है। और इधर जब से सम्राट् अष्टम एडवर्ड ने सिंहासन का त्याग किया है तब से तो फ़्री स्टेट की सरकार की विलगता का भाव और भी स्पष्ट हो गया है। सिंहासन-त्याग-सम्बन्धी क़ानून के ब्रिटिश पार्लियामेंट में पास करने के पहले उस सम्बन्ध में अन्य डोमिनियनों की सरकारों के साथ आयरिश फ़्री स्टेट की सरकार से भी अँगरेज़ी सरकार ने सलाह ली थी। उस समय प्रधान मंत्री डी वेलरा ने यह उत्तर दिया था कि हम अपने यहाँ अपनी डेल (पार्लियामेंट) की बैठक करने जा रहे हैं, जिसमें उस सम्बन्ध में आवश्यक क़ानून पास करेंगे। फलतः उन्होंने हाल में दो क़ानून पास किये हैं। एक के अनुसार फ़्री स्टेट के भीतरी मामलों में अब बादशाह का नाम नहीं प्रयुक्त किया जाया करेगा, साथ ही गवर्नर-जनरल का पद भी तोड़ दिया गया। भविष्य में गवर्नर-जनरल की जगह डेल के प्रेसीडेंट डेल की बैठक बुलाया करेंगे तथा उसे स्थगित किया करेंगे। इसके सिवा बिलों पर भी वही हस्ताक्षर किया करेंगे। गवर्नर-जनरल का शेष कार्य कार्यकारिणी के प्रेसीडेंट किया करेंगे। दूसरे क़ानून के द्वारा बाहरी कार्यों के सम्बन्ध में यह व्यवस्था की गई है कि कार्यकारिणी के परामर्श के अनुसार ब्रिटिश साम्राज्य के बादशाह अन्तर्राष्ट्रीय समझौते तथा राजदूतों आदि की नियुक्ति आदि का कार्य किया करेंगे। अब वहाँ की पार्लियामेंट का नया निर्वाचन होने जा रहा है। अतएव प्रधान मंत्री डी वेलरा ने शासन-विधान में क्रान्तिकारी परिवर्तन करने की घोषणा की है, जो इस प्रकार है—(१) गवर्नर-जनरल का पद तोड़ दिया जायगा और उनके ... (२) पुराना ... नई सभा स्थापित की जायगी। इसके ११ सदस्य ... मंत्री मनोनीत करेगा और शेष जनता-द्वारा चुने हुए होंगे। (३) आयरिश-भाषा राज्य की सरकारी भाषा होगी और राष्ट्रीय झंडा हरा, सफ़ेद और नारंजी इन तीन रंगों का होगा। (४) तलाक़ के क़ानून में सुधार होगा जिससे तलाक़ दिया जाना क़ानून से सम्भव न होगा। (५) फ़्री स्टेट का नाम आयर (Eire) होगा।

इन बातों से यही प्रकट होता है कि डी वेलरा साम्राज्य के भीतर रहते हुए एक सर्वतंत्र स्वतन्त्र प्रजातंत्र की स्थापना करने जा रहे हैं और वे यह सब काम दिन-दोपहर लन्दन से कुछ ही अन्तर पर रहते हुए अँगरेज़ी साम्राज्य के सूत्रधारों की जानकारी में कर रहे हैं। उनके इस साहस और सफलता का मूल कारण यह है कि उनके पीछे उनके राष्ट्र का बल है।

पूर्वी योरप का नया संगठन

इस समय योरप में जो कुछ हो रहा है उससे यह बात पूर्णतया स्पष्ट हो गई है कि योरप में अब कोई किसी का धनी-धोरी नहीं रहा। एक राष्ट्र-संघ था सो अबीसीनिया के मामले ने उसका दिवाला निकाल दिया। यही कारण है कि योरप के बड़े राष्ट्रों को छोड़कर और सभी राष्ट्र अपने भविष्य की चिन्ता से आकुल-व्याकुल हैं। यहाँ तक कि जिस बेल्जियम की रक्षा की गारंटी फ़्रांस और ब्रिटेन जैसे महान् राष्ट्र दिये हुए थे उसने भी अपने उन संरक्षकों से नमस्कार कर लिया है और अपनी रक्षा के लिए वह अपने पैरों खड़ा होना मुनासिब समझता है। बेल्जियम की तरह स्वीज़लेंड, हालेंड, डेन्मार्क आदि राष्ट्र भी चिन्तित तथा सतर्क हैं। परन्तु इनकी अपेक्षा विकट समस्या है पूर्वी योरप की, जहाँ के राष्ट्र अपने लिए एक पृथक् संघ की रचना कर रहे हैं। वे इस बात से पहले से ही डर रहे हैं कि अगले युद्ध में जर्मनी का पैर पूर्वी योरप की ओर ही बढ़ेगा, और उस दशा में आस्ट्रिया और हंगेरी भी अपनी-अपनी पहले की सीमायें प्राप्त करने के लिए उत्साहित होंगे। यह एक स्पष्ट बात है और पूर्वी योरप के जो ...

सीमा-प्रान्त का उपद्रव

सीमा-प्रान्त में इस समय सरकार से स्वतन्त्र क़बीले-वालों से युद्ध-सा हो रहा है। ... नहीं, जन की भी हानि हुई है। यही नहीं आक्रमणकारी कुछ प्रजाजनों को अपने साथ पकड़ भी ले गये हैं। इनकी संख्या २६ पहुँच गई है। इस लूट-मार

.... को देखते ...... रह सकते हैं ? रूमानिया के नेतृत्व में पोलेंड, ज़ेचोस्लेवेकिया, जुगो-स्लाविया, यूनान और तुर्की का जो नया संघ बन चुका है वह योरप की इस काल की एक महत्त्वपूर्ण घटना है। इन छः राज्यों के एकता के सूत्र में आबद्ध हो जाने से योरप के इस अञ्चल में एक महत्त्वपूर्ण शक्ति अस्तित्व में आगई है, जो एक ओर जर्मनी तथा इटली की तानाशाहियों से टक्कर ले सकेगी तो दूसरी ओर सोवियट रूस को जहाँ का तहाँ रोके रखने में समर्थ होगी। इन राज्यों का सम्मिलित सामरिक बल इस समय इस प्रकार है—

	सेना	जहाज़	वायुयान
रूमानिया	३,२५,०००	१०,०००	८००
जुगो-स्लाविया	१,५०,०००	९,५००	६२०
ज़ेचोस्लेवेकिया	२,००,०००	......	५६६
पोलेंड	३,८०,०००	१२,१९९	७००
तुर्की	२,१२,०००	५३,७००	३७०
यूनान	७०,०००	४०,४५०	११९
कुल	१३,३७,०००	१,२५,७४९	३,१७५

पूर्वी योरप का यह मित्रदल यदि कुछ काल तक ऐक्य के सूत्र में आबद्ध रहा और इसने एकमत से काम किया तो पश्चिम में न तो जर्मनी को, न पूर्वी भूमध्य-सागर में इटली को कोई दुस्साहस का कार्य करने की हिम्मत होगी। यही नहीं, योरप की क्या, संसार की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भी इस बलशाली संघ का ख़ासा प्रभाव पड़ेगा। योरप में यह संघ एवं एशिया में मुसलमानी राज्यों का संघ ये दोनों भविष्य में अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अपना असाधारण महत्त्व प्रकट करेंगे, यदि इनमें परस्पर एकता और सद्भाव आज जैसा ही बना रहा।

———

जापान की सफलता

जापानियों की राष्ट्रीय प्रगति एक प्रकार का संसार का एक नया चमत्कार है। सौ वर्ष के भीतर ही उन्होंने सभी दिशाओं में अपनी ऐसी उन्नति की है कि स्वयं उन्नत से ...... लन्दन के ...... मोहल्ले में अपने अलग मकान में रहने लगे।

...... इधर ...... जब वायुयानों का योरप में अत्यधिक प्रचार हुआ तब जापान में उनके प्रति वैसा उत्साह नहीं दिखाई दिया, जिससे यहाँ तक कहा गया कि इस क्षेत्र में जापान योरप की प्रतिद्वन्द्विता नहीं कर सकेगा, क्योंकि फेफड़ों के कमज़ोर होने के कारण जापानी लोग वायुयानों का सञ्चालन जैसा चाहिए, नहीं कर सकेंगे। परन्तु अब इसका प्रत्यक्ष प्रमाण मिल गया है कि इस 'सूर्योदय के देश' ने वायुयानों के निर्माण तथा उनके सञ्चालन में आशातीत उन्नति की है। अभी हाल में जापानी उड़ाकों ने तोकियो से लन्दन की यात्रा ३ दिन, २२ घंटे और १८ मिनट में पूरी की है। सन् १९२५ में जब जापानी उड़ाके लन्दन के लिए तोकियो से उड़े थे तब उन्हें उस यात्रा में एक महीना से अधिक समय लगा था। सन् १९२८ में फ्रेंच उड़ाकों ने यही यात्रा ६ दिन और २१ घंटे में पूरी की थी। पर वही यात्रा जापानी उड़ाकों ने अपने यहाँ के बने हुए वायुयान से उपर्युक्त समय में पूरी की है। उनकी इस सफलता के उपलक्ष्य में जापान में तीन दिन तक उत्सव मनाया गया। तोकियो और लन्दन का हवाई मार्ग १० हज़ार मील है। जापानी यान-वाहक २०० मील फ़ी घंटा के हिसाब से उड़े थे। सारी यात्रा में उसके सञ्चालक ने उबले हुए चावल के सिवा और कुछ नहीं खाया। और यात्रा के ९४ घंटों में वे कुल १० घंटे सोये। यान-सञ्चालक का नाम मसाकी इनूमा है। आज सारा जापान उसके लिए गर्व कर रहा है।

———

प्रारम्भिक शिक्षा की रिपोर्ट

सन् १९३४-३५ की प्रारम्भिक शिक्षा की रिपोर्ट भारत-सरकार के शिक्षा-कमिश्नर ने हाल में प्रकाशित की है। यह रिपोर्ट काफ़ी देर के बाद निकली है। तब ऐसी दशा में १९३५-३६ की रिपोर्ट के निकलने की इस वर्ष कैसे आशा की जा सकती है? ख़ैर, इस रिपोर्ट से देश के शिक्षा-प्रचार की वर्तमान अवस्था पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। इसमें बताया गया है कि स्कूलों में जा सकनेवाले लड़कों में कुल ५० फ़ी सदी ही लड़के स्कूलों में पढ़ने जाते हैं। अर्थात् शेष ५० फ़ी सदी लड़कों के उनके माता-पिता किन्हीं अनिवार्य कारणों से स्कूलों

———

में या तो ख़ुद भर्ती नहीं कराते हैं या उन्हें स्कूल ही सुलभ नहीं हैं। और जब लड़कों का यह हाल है तब लड़कियों के सम्बन्ध में क्या कहा जाय? उनका औसत तो १६.५ फ़ी सदी ही है। रिपोर्ट में यह भी लिखा गया है कि चौथे दर्जे तक शिक्षा पा जाने पर ही कोई लड़का या लड़की साक्षर कहलाने का अधिकारी हो सकता है। परन्तु दुर्भाग्य की बात है कि प्रारम्भिक शिक्षा में चौथे दर्जे तक केवल २६ फ़ी सदी ही लड़के पहुँच पाते हैं। अर्थात् ५० फ़ी सदी लड़कों में भी २४ फ़ी सदी लड़के चौथे दर्जे तक नहीं पहुँच पाते और बीच में ही पढ़ना छोड़ बैठते हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि लड़के पहले या दूसरे दर्जे से ही स्कूल जाना छोड़ देते हैं। ऐसी दशा में साक्षर लड़कों का औसत भारत में कुल २६ फ़ी सदी ही है। इसी तरह स्कूल जा सकनेवाली लड़कियों में १०० में केवल १३ लड़कियाँ चौथे दर्जे तक पहुँच पाती हैं। इससे प्रकट होता है कि स्कूल जा सकनेवाली लड़कियों में साक्षर लड़कियों की कितनी कम संख्या है। यह अवस्था वास्तव में खेदजनक है। स्कूल में जाकर लड़कों का बीच में ही पढ़ना छोड़ बैठना शिक्षा-प्रचार के मार्ग में एक बड़ा विघ्न है और जो अब स्थायी व्याधि का रूप धारण कर गया है। इसके प्रतीकार का समुचित उपाय होना चाहिए और उपाय एकमात्र यही है कि प्रारम्भिक शिक्षा बालकों और बालिकाओं दोनों की सारे देश में अनिवार्य कर दी जाय। परन्तु वर्तमान आर्थिक संकट-काल में यह सम्भव नहीं है, तो भी यह ज़रूर सम्भव है कि शिक्षा-विभाग इस बात का समुचित प्रयत्न करे कि स्कूल में जानेवाले लड़के सेंट पर सेंट चौथे दर्जे तक ज़रूर पढ़ें। अधिकारियों को व्यावहारिक प्रयत्नों की खोज करनी चाहिए, जिसमें प्रारम्भिक शिक्षा पर ख़र्च होनेवाली रक़म सार्थक हो। यह सच है कि अधिकांश माता-पिता शिक्षा के प्रति उपेक्षा भाव रखने या अपनी ग़रीबी के कारण अपने बच्चों को प्रारम्भिक शिक्षा भी नहीं देते। इस जानकारी से भी समुचित लाभ उठाना चाहिए।

———

सीमा-प्रान्त का उपद्रव

सीमा-प्रान्त में इस समय सरकार से स्वतन्त्र क़बीलेवालों से युद्ध-सा हो रहा है। यह संघर्ष ...... की ख़ैसोरा-घाटी में हो रहा है। विरोधी क़बीलेवालों में तोरीखेल के लोग मुख्य हैं। इनका नेता इपी नाम के स्थान का एक युवा फ़क़ीर है। यह तोरीखेल-जाति का है, जिस पर उसका पूरा प्रभाव है। यह अँगरेज़-सरकार के विरुद्ध स्वतन्त्र क़बीलों में बहुत पहले से प्रचार करता आ रहा है। वज़ीरी, महसूद, मद्दाखेल आदि अन्य क़बीलों पर भी इसका काफ़ी प्रभाव है। परन्तु सरकार की सौम्य नीति के कारण ये क़बीलेवाले फ़क़ीर के कहने में नहीं आये और शान्त बने रहे। यह फ़क़ीर इस समय ख़ैसोरा और शाकातू की घाटियों के बीच में एक कन्दरा में रहता है। इसकी उम्र ४२ वर्ष है। यह बन्नू से कोई १२ मील पर स्थित इपी गाँव का निवासी है। बन्नू से मिलानी को जो सड़क गई है वह इपी होकर गई है। कहते हैं कि किसी समय यह सरकार के मैकैनिकल इंजीनियरिंग डिपार्टमेंट में मेट था। कंट्रेक्टर से न पटने पर इसने काम छोड़कर साधु का बाना धारण कर लिया और अपने तप के प्रभाव से कोई दस-बारह वर्ष के भीतर इसने स्वतन्त्र क़बीलों पर अपनी ऐसी सत्ता स्थापित कर ली है कि आज हज़ारों आदमी उसके कहने से जान देने को तयार हैं। वह अपनी कन्दरा से बहुत कम बाहर आता है, अपनी ध्यान-धारणा में ही लगा रहता है। उसकी कन्दरा के द्वार पर पहरा रहता है। पहरेदारों की अनुमति के बिना कोई भी आदमी फ़क़ीर से मिल नहीं सकता है। इस बीच में फ़क़ीर को एक बहाना मिल गया। अस्तु बन्नू में एक हिन्दू लड़की मुसलमान बना ली गई। इस पर वहाँ के हिन्दू बहुत असन्तुष्ट हो गये। यह देखकर सरकार ने उस लड़की को हिरासत में लेकर उसके मा-बाप को सौंप दिया। कहा जाता है कि बन्नू के मुसलमानों ने सरकार के इस व्यवहार की इपी के फ़क़ीर से फ़रियाद की। फ़क़ीर मौक़े की खोज में था ही। इस बात के बहाने उसने लूट-मार करने का आदेश अपने अनुयायियों को दे दिया, जिसके फल-स्वरूप सरकारी इलाक़े के कई गाँव व बाज़ार अब तक लूटे जा चुके हैं। इन हमलों में निरस्त्र प्रजा के धन की ही नहीं, जन की भी हानि हुई है। यही नहीं, आक्रमणकारी कुछ प्रजाजनों को अपने साथ पकड़ भी ले गये हैं। इनकी संख्या २६ पहुँच गई है। इस लूट-मार

ख़ासदारों की चौकियों पर भी उनके हमले शुरू हुए तब सरकार का आसन डिगा और उसने उपद्रवियों के केन्द्र-स्थान ख़ैसोरा-घाटी में अपनी सेना भेजकर उपद्रवियों का दमन करना प्रारम्भ कर दिया। इधर अँगरेज़ी इलाक़े में सरकार निरस्त्र लोगों के सशस्त्र करने की योजना भी काम में ला रही है ताकि क़बीलेवालों के आक्रमण करने पर वे उनसे अपनी रक्षा कर सकें। आशा है, इस बार सरकार ऐसी कोई स्थायी व्यवस्था ज़रूर कर डालेगी जिससे स्वतन्त्र क़बीले भविष्य में फिर ऐसे उपद्रव न करें और यदि कभी कर बैठें तो उस दशा में अँगरेज़ी इलाक़े के प्रजाजन उनका पूरा मुक़ाबिला कर सकें।

पंजाब-सरकार का एक सत्कार्य

गत १ अप्रेल से भारत का शासन एक नये विधान के अनुसार हो रहा है, परन्तु अभी तक इस बात का आभास तक नहीं मिला है कि शासन-कार्य में कोई विशेष परिवर्तन हुआ है। कहा जाता है कि सभी प्रान्तों के मंत्रि-मण्डल इस समय ऐसी क्रान्तिकारी योजनायें सोच रहे हैं जिनके कार्य में परिणत होते ही इस अभागे देश की सारी आधि-व्याधि और दैन्य-दुःख अनायास ही दूर हो जायँगे। इसके लक्षण भी दिखाई देने लगे हैं। अभी पंजाब में वहाँ की सरकार ने जो व्यवस्था संकटग्रस्तों की सहायता करने के लिए की है वह आशाजनक है। हाल में मुलतान की कमिश्नरी में ओलों से वहाँ की फ़सल को बड़ी हानि पहुँची थी। इसकी ख़बर पाते ही सभी उच्च अधिकारियों ने मौक़े पर पहुँच कर हानि की जाँच की और उसकी सूचना सरकार को तार से दी। फलतः सरकार ने लगान में १८ लाख रुपये की छूट देने की और ५ लाख रुपये की तक़ावी बाँटने की आज्ञा दी। इसके सिवा विपद्ग्रस्तों की आवश्यक सहायता करने में एक लाख रुपया और ख़र्च किया गया। और यह सब काम कुल १४ दिन के भीतर हो गया। इस तरह की सहायता पहुँचाने में पहले इतनी शीघ्रता से काम नहीं लिया जाता था। वास्तव में पंजाब की नई सरकार का यह श्री गणेश शुभ का सूचक है। अन्य प्रान्तों की सरकारों को पंजाब-सरकार की इस सुयोग्यता से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

एक विचित्र रवाज़

सिंध के एक अञ्चल में हिन्दू और मुसलमानों में भी अन्तर्जातीय विवाह होता है, इसका पता पि निर्वाचन के समय लगा है। सिन्ध में थर और परकर ज़िले में एक तालुके में राजपूतों की एक जाति रहती जो अपने पड़ोस के एक जाति के मुसलमानों को विवाह अपनी लड़कियाँ देती है। ये मुसलमान अरबाब कहर हैं और उन राजपूतों को छोड़कर और किसी के यहाँ अ लड़कों का विवाह नहीं करते। विवाह कन्या के पिता के में होता है और हिन्दू-प्रणाली से होता है। पर जब व ससुराल जाती है तब वहाँ उसका मुसलमानी रीति से विवाह होता है, पर कन्या न तो उस समय मुसल बनाई जाती है, न उसके बाद ही कभी। यही नहीं, अपने पति के घर में स्वेच्छापूर्वक हिन्दू-धर्म के अनु अपना जीवन यापन करती है। वह हिन्दू भोजन करती अपने घर में तुलसी की पूजा करती है, व्रत आदि र है। उसी तरह उसका पति अपने धर्म के अनुसार अ जीवन-यापन करता है। पर इन बातों को लेकर उ कभी किसी तरह की खटपट नहीं होती। हाँ, उनके ब मुसलमान ही होते हैं, जिनमें लड़कियाँ तो मुसलमानों ब्याही जाती हैं। और यह व्यवस्था उनमें एक युग से च आ रही है। ये दोनों भिन्न जातियाँ वहाँ परस्पर प्रेमपू अब तक रहती चली आई हैं। बाहर के लोगों को इ पता भी न लगता, यदि गत निर्वाचन-काल में कट्टरप मुसलमान अरबाब मुसलमान उम्मेदवारों का यह क विरोध न करते कि वे हिन्दू-पक्षीय मुसलमान हैं और स मुसलमानों को उन्हें वोट नहीं देना चाहिए।

भूल-सुधार

'सरस्वती' के इस अंक में ५७८ पृष्ठ पर 'सु अदापाल'-शीर्षक एक कविता श्रीयुत द्विजेन्द्रनाथ 'निर्गुण' के नाम से छपी है। ये दोनों बातें ग़लत छप हैं। वास्तव में उस कविता के रचयिता का नाम 'श्री सुबोध अदावाल' है, और कविता का शीर्षक '?' पाठक सुधार कर पढ़ने की कृपा करें।